श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत

(अमर ज्योति)



श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी
श्री आनन्दपुर

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत

(अमर-ज्योति)



लेखक तथा प्रकाशक

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी

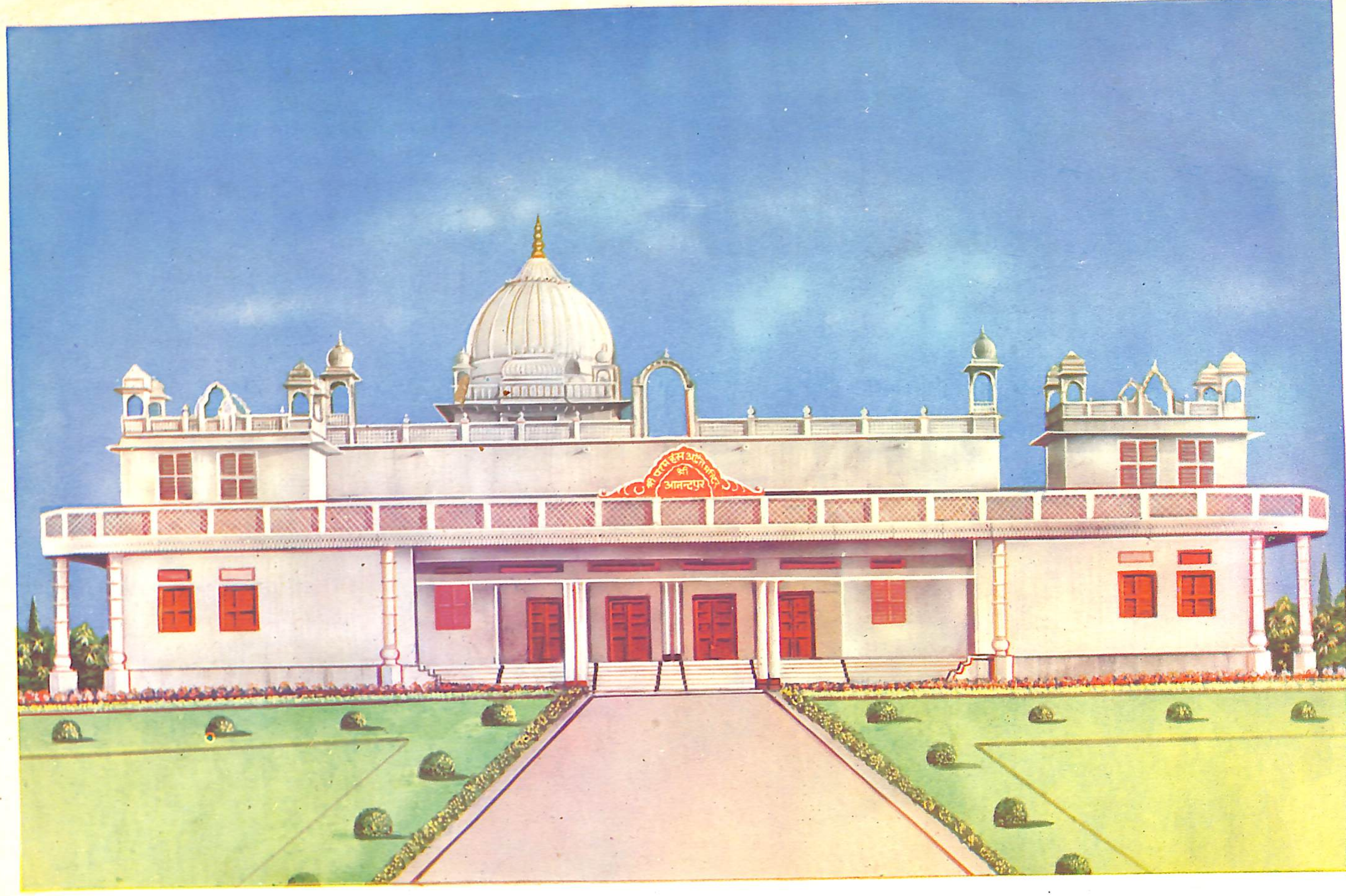
श्री आनन्दपुर

मूल्य ४० रुपये

पुस्तक मिलने का पताः—
कार्यालय आनन्द सन्देश
पोस्ट ऑफिस—श्री आनन्दपुर
ज़िला गुना (म० प्र०)
पिन—४७३-३३८

चतुर्थ संस्करण ५०००
सितम्बर १९८३

मुद्रकः—
आनन्द प्रिंटिंग प्रेस,
श्री आनन्दपुर



श्री परम हंस अद्वैत मन्दिर, श्री आनन्दपुर

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत

विषय-तालिका



प्रस्तावना



जीवन एक द्वन्द्वमय क्रीड़ास्थल है। इस के अतिरिक्त व्यावहारिक कार्य तथा साधन भी पेचीदा हैं। द्वन्द्वमय जीवन आदिकाल का अटल सिद्धान्त है। विजय-पराजय, शत्रु-मित्र, जीवन-मरण, प्रकृति और पुरुष द्वन्द्व के दो पहलू हैं। जीव यदि पुरुष का सत् चेतन अंश है तो प्रकृति मूक रूप से जड़ अंश मात्र है। इसी प्रकार ब्रह्म और माया भी द्वन्द्व हैं। ब्रह्म कर्त्ता है तथा माया कारण। इन में सूक्ष्म और स्थूल सत्ता का सम्बन्ध है। 'परिवर्तन' प्रकृति का मुख्य अंग है। जीवन में यदि परिस्थिति अनुसार परिवर्तन होता है तो प्रकृति भी बदलती रहती है। संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। प्रथम मनुष्य जीवन को ले लीजिये। इस में प्रथम बाल्यावस्था, पुनः किशोरावस्था, यौवन तथा बुढ़ापा आता है। जितना सौन्दर्य तथा अभिमान यौवन में होता है उतना बुढ़ापे में क्या हो सकता है? प्रकृति के नियमानुसार प्रथम तो शक्ति, बल, पौरुष अपनी चरम सीमा तक जीव में पैदा होते हैं। पुनः धीरे-धीरे उन का ह्रास (नाश) हो जाता है।

इसी प्रकार कालचक्र परिस्थितियों में परिवर्तन लाता ही रहता है। उत्पत्ति तथा प्रलय इस काल चक्र के दो अंग हैं। जिस प्रकार लकड़ी को यदि दीमक लग जाए तो वह लकड़ी को एक दम से समाप्त नहीं कर देती अपितु धीरे धीरे उसको खोखला बना देती है। इसी कालचक्र के अनुसार भक्ति तथा माया अपना रूप प्रदर्शित करते हैं। जब भक्ति का पक्ष सबल हो जाता है तो सत्यता-धर्म-शान्ति का चहुँ ओर डंका बज जाता है। विपरीत इस के जब माया का पक्ष

सबल हो जाता है तो अशान्ति—अधर्म तथा असत्यता का साम्राज्य हो जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि सत्यता, परमार्थ तथा धर्म एक दम लुप्त हो जाते हैं तथा अधर्म ही अधर्म की बहुलता हो जाती है। होता ऐसा है कि सात्त्विक कर्म तथा सद्‌गुणों पर माया 'लकड़ी का दीमक' बन कर धीरे धीरे तामसी--प्रवृत्तियों की ओर अधिकांश का ध्यान आकर्षित कर देती है। तब सत्त्वगुण के स्थान पर रजोगुण—तमोगुण प्रधान हो जाता है। राक्षसी, दुराचारी और अधर्म वृत्ति के लोगों की संख्या अधिक हो जाती है। धरती पर पापों का बोझ बढ़ जाता है। धरती भी किसी महान् व्यक्तित्व सम्पन्न महापुरुष की आवश्यकता की करुण पुकार करती है। उस के साथ साथ भक्तजन उस धरती की आर्त्त पुकार के साथ अपने हृदय की आर्त्त ध्वनियों को वायु के साथ नभ में भेजते हैं। वह 'करुण--क्रन्दन' अथवा 'आवश्यकता की पुकार' जब धुआंधार बन गगनमंडल में विचरण करती है तो देवता, किन्नर, गन्धर्व इस आतुर स्वर के साथ अपना विह्वल स्वर मिलाते हैं। उस समय प्रकृति द्वारा उसका प्रबन्ध कर दिया जाता है। तब अनामी लोक से सन्त-महापुरुषों का अवतरण होता है। एक उक्ति है कि 'आवश्यकता अविष्कार की जननी है' एवं लिखा भी है कि:—

॥ चौपाई ॥

सृष्टि में मोह तम अति छाए। रजो तमो विस्तार फैलाए॥
भक्तन की कछु बनि नहिं आवे। धर्म सत्य न काहु सुहावे॥
विप्र—गुरु का होहिं अपमाना। कुटिल पाखण्डी करहिं ज्ञाना॥
धरा—धाम बने नरक द्वारा। कर्म धर्म का रहे न विचारा॥
भक्त—विप्र—धरा करहिं दुहाई। तजहु न प्रभु अपनी प्रभुताई॥
काल चक्र परिस्थिति अनुसारा। प्रगटत प्रभु सर्गुण अवतारा॥

इस प्रकार से सन्त-महापुरुषों का इस धरा—धाम पर अवतरण होता है। उन के आगमन से सृष्टि में आनन्द, शान्ति तथा प्रेम की एक लहर सी आ जाती है।

जिस प्रकार अत्यधिक गर्मी के पश्चात् मेघच्छटा अत्यन्त शोभनीय, सुखदायी तथा आनन्दमयी प्रतीत होती है, उसी प्रकार सन्त महापुरुष भी संतप्त (दुःखी) हृदयों को अमिय वचनों से प्रशान्त एवं आनन्दमय बना देते हैं। कभी कभी ऐसा भी होता है कि प्रकृति के नियमानुसार भविष्यद्रष्टा महापुरुष अत्यन्त मोह माया तथा अधर्म अनाचार के फैलने से कुछ समय पहले जबकि अभी सात्त्विक प्रवृत्तियों युक्त लोग धर्म पर आचरण कर रहे होते हैं तब इस धराधाम पर भक्ति पथ की नींव को सुदृढ़ करने के लिए अवतरित होते हैं। सन्त महापुरुष जो भी पावन लीलाएँ या अमर प्रवचन अपने जीवनकाल में करते हैं वे लेखनी बद्ध होकर एक पुस्तक अथवा ग्रन्थ की रचना के रूप में सब के सम्मुख आ जाते हैं ताकि उनके पावन यश तथा गुणवादों को गाकर भावी लोग भी लाभ उठा सकें। वे जिन नियमों व सिद्धान्तों को बनाते हैं, उन्हें भावी पीढ़ियां पढ़कर उस दिव्य ज्योति के प्रकाश में अपना मार्ग निर्धारित कर लेती हैं। उदाहरणतया–श्रीमद् भागवत, श्रीमद् भगवद्गीता, श्री रामायण, महाभारत हमारे भारतीय धार्मिक ग्रन्थ हैं। जिन में राजनीति, दर्शन-योग, अर्थ शास्त्रादि विविध विषयों का प्रामाणिक समावेश है। उन्हें आज भी पढ़ कर आत्म–ज्ञान की ज्योति को प्राप्त करने का उत्साह पैदा होता है। जो नवधा भक्ति का उपदेश श्री रामचन्द्र जी महाराज ने शबरी को दिया, वही योग रूप में श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने तथा अन्यान्य महापुरुषों ने अपने अपने युग की वाणियों में दिया। वास्तविक अर्थों में यही धार्मिक ग्रन्थ ही 'अन्धेरे का चिराग' पथ-प्रदर्शन तथा जीव को अध्यात्म–पथ पर आरूढ़ करने के ज्योति स्तम्भ हैं। इन्हीं धार्मिक ग्रन्थों में ही तो 'गुरु की आवश्यकता' पर बल दिया गया है। इनके पढ़ने एवं श्रवण करने से पूर्ण गुरु की प्राप्ति के लिये उत्सुकता तथा उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती है। इन सद्ग्रन्थों के मनन एवं अनुशीलन से जब यह अभिलाषा उग्र रूप धारण कर लेती है तो पूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति भी हो जाती है। श्री रामायण में नवधा भक्ति का उपदेश देते हुये श्री रामचन्द्र जी ने शबरी से कहा है:—

॥ चौपाई ॥

प्रथम भक्ति सन्तन कर संगा ।
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा ॥

अरण्य काण्ड

जब उत्तमोतम ग्रन्थों में भी 'सन्तों के संग' को सर्वतोमुखी मुख्यता दी गई है तो क्या इससे श्रोताओं के हृदय में पूर्ण सन्त सद्गुरु की प्राप्ति की अभिलाषा जागरूक न होगी ? अवश्य होगी। आवश्यकता इन सद्ग्रन्थों के स्वाध्याय और उन पर अमल करने की है ।

जिस प्रकार अमावस्या की घनघोर अन्धेरी रात्रि में दीपकों की जगमगाहट कितनी प्यारी लगती है । इसको देखते ही मन आनन्द विभोर हो जाता है । हृदय में उल्लास सभी दुःखों व कष्टों को भुला देता है । अन्धेरा किसे प्रिय है ? हर स्थान पर प्रकाश का ही सम्मान होता है । रात्रि के घटाटोप अन्धेरे के उपरांत ऊषावेला में सूर्योदय होता है । दसों दिशाएँ आलोक से भर जाती हैं । पशु-पक्षी, वनस्पति जगत्, मानव तथा वसुन्धरा के कण-कण में एक आनन्द की लहर झूम उठती है । पूर्णिमा की रात्रि में जब चन्द्रमा सर्व कलाओं से युक्त नभोमण्डल पर उदित होता है तो रात्रि भी आनन्दमयी बन जाती है । पालने में पड़ा हुआ शिशु भी कहीं जलती हुई प्रकाश रश्मि को अपने ध्यान का केन्द्र बनाता है । जब कुछ बड़ा हुआ तो उसका ध्यान चन्द्रमा की ओर आकर्षित होता है । ज्योति अर्थात् प्रकाश से सब को प्यार है । प्रकाश से उत्पन्न हुआ हुआ मनुष्य जीवन भर प्रकाश से प्यार करता हुआ प्रकाश की राहों में चलने का इच्छुक है । जब आत्मा इस देह से विलग हो जाती है, पाँच भौतिक शरीर अपने तत्त्वों में मिलने को तत्पर होता है तो भी प्रकाश रूप में उसके लिये दीपक जलाया जाता है । अन्त में अग्नि उसका सम्मान प्रकाश रूप में करती है ।

यह तो हुआ बाह्य जगत् में प्रकाश से प्यार किन्तु इसी आत्मिक प्रकाश की पहचान कराने के लिये सन्त महापुरुष अवतरित होते हैं। वे आत्म-ज्योति को जीवन का लक्ष्य तथा ध्येय बताते हैं। योगी, ऋषि, मुनि, तपस्वी 'घट में ही खोज प्यारे' का शब्द उच्चारण कर जीवन पर्यन्त इसी घट-ज्योति का दर्शन करने के लिये साधना करते हैं। पूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति पर तथा उनकी अनुकम्पा से शीघ्र ही इस ज्योति के दर्शन हो जाते हैं। तो क्यों न हम उस आत्मिक-ज्योति के आनन्द को प्राप्त करें, जिस से सर्वदा के लिये उस ज्योति में समा कर पुनः आवागवन के चक्र से छुटकारा पाएँ।

महात्मा बुद्ध ने कहा था—"बोधिसत्त्व" (आत्म विज्ञान और प्रभु स्मरण) का दीप जला कर आगे बढ़ो। संसार में किसी स्थान पर आप को भय न होगा। अर्थात् आत्मिक ज्ञान ही यथार्थ ज्योति है। समयानुसार सन्त महापुरुष इसी आत्मिक-ज्योति को ही जगत् में प्रकाशित करते आए हैं।

प्रकाश और अन्धकार का संघर्ष आदिकाल से चला आ रहा है। जब तक संसार रहेगा, धर्म का अधर्म से, सत्य का असत्य से युद्ध चलता रहेगा। कभी यह युद्ध श्री रामचन्द्र जी महाराज तथा लंकेश रावण के रूप में हुआ, कभी श्री कृष्णचन्द्र जी के युग में महाभारत के नाम से कुरुक्षेत्र में हुआ तो कभी मन की आसुरी शक्तियों का विनाश करने के लिये इस कलिकाल में परम सन्त श्री कबीर साहिब जी, श्री गुरु नानकदेव जी तथा सन्त तुलसीदास जी अवतरित हुए और इस परम्परा अनुसार श्री परमहंस सन्त सत्पुरुषों का अवतरण हुआ।

"श्री परमहंस अद्वैत मत" के उन्नायक, महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज हुए जिन्होंने उसी ज्योति को जगत् में प्रकट किया जिसकी अभिलाषा संतप्त हृदयों को थी अथवा भविष्य के लिये जिस की आवश्यकता अनुभव होनी थी। उन्होंने

मन के प्रति संघर्ष करने के लिये शूरवीरता का पाठ पढ़ाया और अपने अनुयायियों तथा सर्व संसार को इस संघर्ष से जूझने के लिये 'नाम' रूपी शस्त्र दिया। युग–युगान्तरों तक भूली-भटकी मानवता को मार्ग दर्शाने हेतु वे रूप बदल बदल कर 'श्री परमहंस' विभूतियों के रूप में हमारे समक्ष आते रहे और इस प्रेरणामयी श्रृंखला को बाँध गये। उनके विविध स्वरूपों में जो जो लीलाएँ तथा श्री अमृत भरे प्रवचन हुए उन सब का दिग्दर्शन इस ग्रन्थ में संगृहीत किया गया है ।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी की असीम कृपा तथा वरद् प्रेरणा से यह पावन चरित लिखा गया है। उन के इस अगाध उपकार के लिये कोटिशः कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हम अज्ञानी, पथ–विचलित जीवों के लिये असीम उपकार किया है। उन्होंने साकार ब्रह्म रूप में 'श्री परमहंसों' की सुदुर्लभ झांकियों को हमारे सम्मुख प्रदर्शित कर अनुगृहीत किया है। यह ग्रन्थ मंगलकारी, ज्योतिर्मय, प्रेरणादायक, आनन्द–शान्ति तथा सुख का स्रोत है। यह ग्रन्थ भव-सिन्धु का एक तट है, जिस भवनिधि का पर्यवेक्षण किया जा सकता है।

इस ग्रन्थ में 'श्री परमहंस विभूतियों' के जीवन झलकियों रूपी अमूल्य मणि माणिकों को संगृहीत किया गया है । श्री अद्वैत मत के उन्नायक श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी से लेकर श्री परमहंस सद्गुरु देव जी महाराज श्री चौथी पादशाही जी तक—उनकी जीवन घटनाएँ, मुखवाक्य, भक्ति-परमार्थ के सिद्धांतों का जिस ढंग से उन्होंने प्रतिपादन किया, इन सब का विशद् वर्णन है। जैसे समुद्र में गोता लगाने से ही मालूम होता है कि उसमें कितनी बहुमूल्य निधियाँ हैं। ऐसे ही श्री परमहंसों के जीवन चरित्र का अध्ययन करके ही विदित होगा कि आत्मिक आनन्द, मानसिक शान्ति तथा शाश्वत सुख-समृद्धियों का अलौकिक भण्डार है यह ग्रन्थ। इस अनुभव को केवल हृदय ही बताने में समर्थ होगा, जिह्वा नहीं। इस ग्रन्थ का एक एक शब्द, एक एक वाक्य, एक एक जीवन झलकी कितने ही रहस्यों को लिये हुये है। इसे आरम्भ करते ही दिल चाहता है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ का स्वाध्याय कर लिया जाए। एक-एक महान् विभूति की जीवन

झलकियों को इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है कि पढ़ते समय बिल्कुल चलचित्र (फ़िल्म) की तरह वे आँखों के सम्मुख सजीव दिखाई देते हैं। इन विचारों में लीन होकर ही वास्तविक आनन्द मिलता है ।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में:—इस ग्रन्थ को मुख्य सात प्रकरणों में विभक्त किया गया है । श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी से लेकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी तक अलग अलग चार प्रकरण हैं। पाँचवां प्रकरण 'श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम'। छटा एक आदर्श जीवन तथा सातवाँ है उपासना के पवित्र स्थान। इसके अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे प्रकरण जैसे मंगलाचरण, वन्दना, सद्गुरु उपदेश, सन्त मत क्या है? श्री परमहंस अद्वैत मत का प्रारम्भ, सम्प्रदाय के पंचम जानशीन युग सम्राट्, श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम के शरणागत स्थायी निवासियों के लिए नियम, हार्दिक अभिलाषा तथा सद्गुरु की देन आदि प्रकरण भी अपनी ही शोभा लिए हुए हैं। मुख्य चार प्रकरण देदीप्यमान सूर्य हैं और अन्य प्रकरण उनकी रश्मियां। श्री परमहंस विभूतियों में विवरण इस प्रकार दिया गया है कि श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी में उन के जीवन तथा उनके समय में प्रेमी भक्तों की भक्ति का भी कुछ सीमा तक वर्णन किया है। श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी के समय में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी का जीवन केवल संकेतात्मक दिया गया है। ऐसे ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के जीवन चरित्र में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी का जीवन चरित्र संकेतमात्र है । क्रम से पुनः भी ऐसे ही लिखा गया है । सम्पूर्ण जीवन झलकियां प्रत्येक महापुरुष के अपने अपने जीवन में मिलेंगी।

'श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम' की रचना तो एक अनूठी रचना है। इस को पढ़ते ही श्री आनन्दपुर का एक एक दृश्य आँखों के सामने घूमने लगता है ।

जिन प्रेमियों ने १९४०–४१ में श्री दर्शन कर के अब इस रचना को देखा होगा उन के सम्मुख तो यथार्थ तथा वास्तविकता से एक एक कर के दृश्य चलते दिखाई देंगे जैसे कि अभी यह सब कुछ हो रहा है। अधिक उपमा न करते हुए बस इतना ही लिख देना काफ़ी है कि इस ग्रन्थ को पढ़ कर जो भी महापुरुषों के वचनानुसार अनुसरण करेगा वह निश्चय ही भव-बन्धनों से मुक्त हो सकता है। आशा है कि प्रेमीजन, गुरुमुख, भक्तजन तथा भक्ति के जिज्ञासु इसे पढ़ कर जन्म-जन्मान्तरों की तृषा को मिटाएँगे तथा इस आध्यात्मिक सरोवर में मज्जन कर कृतार्थ हो जाएंगे।



श्री सद्गुरु देवाय नमः

मंगलाचरण



॥ दोहा ॥

कोटि-कोटि करूँ वन्दना, सतगुरु परम कृपाल ।
श्री परमहंस दयानिधि, भक्तन के प्रतिपाल ॥

दिनकर हैं परमार्थ के, उदित हुए जग माहिं ।
श्री परमहंस दयाल जी, जिन सम दूजा नाहिं ॥

'अद्वैत-पथ' दर्शाय के, कियो सुमंगल काज ।
द्वैत-त्रैत के तिमिर को, दूर किया महाराज ॥

वृष्टि करत आनन्द की, श्री परमहंस अवतार ।
नेति नेति करि रह गये, महिमा अपरम्पार ॥

प्रेमभक्ति पथ दृढ़ कियो, श्री दयालु करुणेश ।
चरण–शरण में ठौर दी, दीनबन्धु परमेश ॥

आतम सुख की सम्पदा, मुक्त हस्त दें दान ।
करुणासिन्धु जगत् में, श्री परमहंस महान ॥

कलिमल कलुष विभंजना, सुख के सदन गुरुदेव ।
काल की त्रास निवारहि, तव चरणन की सेव ॥

गंगा यमुना सरस्वती, तव प्रभु चरण सरोज ।
तीनों ताप विनाशी है, प्रेम अमियरस ओज ॥

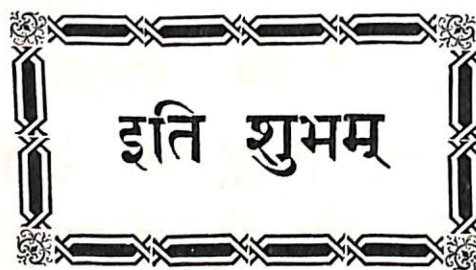
पुञ्ज परम परकाश के, उज्ज्वल जोत प्रतिपाल ।
परमारथ-पथ भक्तिमत, प्रकट्यो रुचिर विशाल ॥

आनन्दरूप चिन्तामणि, गुरु की किरपा एक ।
मनवांछित वरदायिनी, सद्गुरु दीन्हीं टेक ॥

कृपा अमित मुझ पर करो, जड़मति हूँ अल्पज्ञ ।
गुण गण तव कैसे लिखूँ, तुम विराट् सर्वज्ञ ॥

वरदात्री सद्गुरु कृपा, जासु जीव पै होइ ।
मूक होइ वाचाल, पंगु लँघै गिरि सोइ ॥

'दासनदास' याचै सदा, तव कृपा-दृष्टि की कोर ।
'श्री परमहंस अद्वैत मत', लिख पाऊँ ध्यान विभोर ॥



वन्दना



॥ दोहा ॥

चरण-कमल में वन्दना, करहुँ कोटिन-कोटि ।
तव अनुकम्पा से प्रभो ! कबहुँ न आवै तोटि ॥
अपराधी हूँ जन्म का, अवगुण चित्त न धरो ।
आरत तोहि पुकारहि, अनुग्रह दृष्टि करो ॥
अति मंजुल सद्गुरु चरण, वन्दौं मन चित लाय ।
श्री पद-नख की रश्मि से, ज्ञान चक्षु खुलि जाय ॥

हे अघ-पुञ्ज-विनाशक, भव-पोत, भक्त-वत्सल, परात्पर परिपूर्ण ब्रह्म, सच्चिदानन्दघन, सर्वेश्वर, अन्तर्यामी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ! मैं आपके चरण-सरोरूहों में शत-शत कोटि दण्डवत्-वन्दना करता हूँ । आप की ही अनुपम कृपा के लिये मैं द्वार पर दामन पसारे खड़ा हूँ । मुझ तुच्छ अवगुणयुक्त अपराधी जीव के अवगुणों की ओर न निहारते हुए मुझे वह ज्ञान-ज्योति दीजिए जिस से कि मैं आप का कृपा पात्र बन कर आपके गुणवादों का गायन कर सकूँ । आप के गुणों का गायन तो वेद, पुराण, शेश, शारदा, कवि, कोविद तथा ब्रह्मा तक भी नहीं कर सकते तो यह वराकमति जीव क्या कर सकेगा ? मैं तो समुद्र की एक तरंग, मरुस्थल की एक बालू-कण से भी तुच्छ हूँ । आप की असीम कृपा से जो 'श्री परमहंस अद्वैत मत' लिखने की उत्कट अभिलाषा हृदय में उत्सुकता भर रही है उसे परिपूर्ण करने के लिए आप की असीम शक्ति तथा अनन्य कृपा ही मुझे अपेक्षित है । आप सर्वज्ञ, घट-घट वासी, सर्वशक्तिमान् निर्विकार प्रभु हैं । आप भक्तों की आतुर विनय सुन कर साकार रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुए हैं । आप के परम दिव्य, देदीप्यमान तेजोमय स्वरूप का 'श्री परमहंस'

के रूपों में अवतरित होने के उपकारों का किस मुख से वर्णन किया जाए ! आप ने मोह-निद्रा में सोई मानवता को सत्-मार्ग दर्शाने तथा उन्हें प्रबुद्ध करने के लिये जिन अगणित कष्टों को सहन किया, उन उपकारों का बदला हम तुच्छ जीव कैसे चुका सकते हैं। एक जन्म तो क्या यदि हम लाखों जन्मों में भी आप के उपकारों से उऋण होना चाहें तो भी असम्भव है। हम ऐसे ही ऋणी बने रहना चाहते हैं। आप ही दया करके युग युग में मनोहारी दिव्य स्वरूप में आते रहिये और हम युग युगान्तरों तक आप के श्री सुभग, मृदुल चरणार-विन्दों की चरण-शरण में बने रहें। आपने कितने ही रूपों में हमारा कल्याण किया:—

॥ दोहा ॥

प्रखर ज्योति जग में लसी, 'श्री परमहंस दयाल' ।
अद्वैत-पथ प्रचलित कियो, काट दिये जंजाल ॥
अग-जग के सिरताज बन, आए 'श्री महाराज' ।
जिन के सुमिरण मात्र से, होय सुमंगल काज ॥
प्रेम पयोधि सद्गुरु, 'श्री परमहंस अवतार' ।
करुणा-दृष्टि निहारि के, भवनिधि करते पार ॥
सत्-मार्ग दर्शावने, देने सत्य सन्देश ।
प्रकटे दीनदयाल जी, त्रिभुवन के अखिलेश ॥
चरण कमल की टेक दे, क्षण में किया निहाल ।
कर्णधार भव-जलधि के, 'श्री सद्गुरु दाता दयाल' ॥

त्रिभुवन मोहन, कृपालु, शरणागत वत्सल प्रभो ! आप ने हम कलि कुटिल जीवों का उद्धार करने के लिये किस प्रकार विविध रूपों में एक अखण्ड ज्योति को जगाए रखा है। अब आप के अतिरिक्त मेरा इस जहां में कोई नहीं है। आप ही जीवन सर्वस्व हो । मुझ पर अनुग्रह दृष्टि कीजिये । प्रभो ! पसीजिए। आप की ही अकारण कृपा से इस तुच्छ लेखनी ने कलियुग के विकराल तम में घनी-घनी निराशा के भव-कूप में से आशा की नई किरण प्राप्त कर के

विश्व कल्याणकारी 'श्री परमहंस अद्वैत मत' को रचना के रूप में जन्म देना है। मैं तो गुणहीन एक तुच्छ कीट हूँ। मुझ में इतनी शक्ति कहाँ है प्रभो ! मैं अविद्या के पाश में जकड़ा हुआ बुद्धि, विद्या और बल से हीन आप का चरण-रेणु सम सेवक हूँ। मुझे चरण-रेणु के रूप में आप अस्वीकार न कीजियेगा। इसे चरण-कमल में आश्रय दीजिये।

जीवन की इस अनुपम उमंग को, आशा की एक तरंग को तथा उत्कण्ठा के नये रंग को प्रभो ! अपने ज्ञान से इस प्रकार भर दीजिये जिस से निर्विघ्नतया यह शुभ कार्य सम्पूर्ण हो जाये।

॥ चौपाई ॥

श्री परमहंस की अनुपम गाथा। गावत ही मन आनन्द राता ॥
आर्त्त दीन की सुनि पुकारा। प्रगटै प्रभु सर्गुण अवतारा ॥
कीन्हें अति उपकार विशेषा। मोह तन्द्रा कलि रह्यो न शेषा ॥
अग–जग परमारथ दर्शायो। वेद कतेब भेद नहिं पायो ॥
दीन–बन्धु करि कृपा विसेखी। वाल्मीकि तुलसी जस लेखी ॥
दीजो प्रभु ज्ञान उजियारा। तम बिनसत नहिं लागै बारा ॥
मोह माया रत हूँ अज्ञानी। दीजो भक्ति सर्व सुख खानी ॥
तव शुभ चरित सुखद भवहारी। पढ़त मिटै हिय का दुःख भारी ॥
'दासन दास' चरण अनुरागी। रहै सदा तुव सँग लौ लागी ॥

अतुल, अचिन्त्य, अनन्त सद्गुणों के शुचितम आकर, अखिल विश्वगत प्राणिमात्र के सहज समर्थ सुहृद-वर ! श्री सद्गुरुदेव परमहंस जी के श्री सुमञ्जुल, सुभग, सुकोमल चरणार-विन्दों में साष्टांग कोटि-कोटि दण्डवत्-वन्दना कर यही वर मांगता हूँ कि प्रभो ! अब बस स्वकीय वरद कर-कमलों से इस तुच्छ लेखनी को शक्ति प्रदान कीजिये। यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है तथा जीवन की चरम साध है।

सद्गुरु–उपदेश



जीवन में एक नया रंग भरने—जीवन को लक्ष्य का पथ दर्शाने—जन्म-जन्मान्तरों से पथ भटकी सुरति को सन्मार्ग पर लगाने—अज्ञान-तिमिर मिटा कर ज्ञान-ज्योति जलाने—चौरासी लाख योनियों के चक्र से छुड़ाने के लिये केवल-केवल सहायक हैं पूर्ण सन्त सद्गुरु के 'श्री वचन'। जिन को दूसरे शब्दों में सद्गुरु–उपदेश भी कहा जाता है। सद्गुरु उपदेश वे अमृत-तुल्य प्रवचन हैं जिन के श्रवण से तथा उन पर आचरण करने से मानव-जीवन का ध्येय प्राप्त हो जाता है। जीवन को वास्तविक अर्थों में यथार्थ जीवन मिलता है। यद्यपि सन्त-सत्पुरुषों का एक ही सदुपदेश जीवन की समस्त धारा को बदल देता है तो भी जीव आदिकाल से काल और माया का ग्रास बन कर कष्ट उठा ही रहे हैं। इसीलियेः—

कि संसार में प्राणी मन और माया का शिकार बना हुआ है। जगत् के सुख व भोगैश्वर्य तथा रसोपभोगों की ओर इस की रुचि अत्यधिक है। यथार्थ का इसे ज्ञान ही नहीं। यह मन और माया के धोखे में आया हुआ जीव अपनी निजी-पूँजी आत्म-ज्ञान को तो बिल्कुल भुला चुका है। इस संसार में सर्वोत्कृष्ट मानव-जन्म का लक्ष्य तो इसे विदित ही नहीं कि क्या है? इसीलिये वर्तमान समय के महापुरुषों का विश्व को पथ-प्रदर्शन आवश्यक है। वे इस ज्ञान और भक्ति के पूर्ण वेत्ता होते हैं तथा रुहानियत अर्थात् आत्मिक-ज्ञान की प्राप्ति के लिये उन के श्री वचनों पर चलना परम आवश्यक हो जाता है। उन का ध्येय तो केवल भूली-भटकी मानवता को सन्मार्ग पर लाना ही है। इसीलिये मनमति का त्याग

कर गुरुमति का ग्रहण करना, अपने बल, विद्या, बुद्धि, चतुराई तथा अहंभाव का त्याग कर उनके पावन सदुपदेशों को जीवन का ध्येय बना कर मन को उस सांचे में ढालना ही जीवन का परम प्रथम कर्त्तव्य है। जैसा कि श्री कृष्णाचन्द्र जी महाराज ने गीता में उपदेश दिया है:—

॥ श्लोक ॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

गीता अ० ३ श्लोक ४०

इस प्रकार 'काम' के द्वारा ज्ञान को आवृत बतलाकर अब उसे मारने का उपाय बतलाने के उद्देश्य से उसके वास स्थान और उसके द्वारा जीवात्मा के मोहित किये जाने का प्रकार बतलाते हैं:—'इन्द्रियां, मन और बुद्धि'—ये सब इस के वास स्थान कहे जाते हैं। यह काम इन मन-बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित कर के जीवात्मा को मोहित करता है।

जीव यदि गुरु उपदेशानुसार चलेगा तो माया का झीना आवरण (पर्दा) हट जाएगा। यदि मनमति अनुसार कर्म करेगा तो रूह अर्थात् आत्मा कमज़ोर हो जाएगी। पुनः उपदेश देते हैं, हे अर्जुन! तू ज्ञान मार्ग पर चल। साथ में यह भी उपदेश दिया कि मन और बुद्धि को मेरे हवाले कर तभी लक्ष्य को पा सकेगा।

सोचने का विषय है कि शारीरिक निर्वाह के लिये, प्रत्येक विद्या को ग्रहण करने के लिये उसी अनुरूप गुण सम्पन्न शिक्षक की आवश्यकता होती है तो आत्मिक ज्ञान के लिये आध्यात्मिक-गुरु की शरणागति तथा उपदेश की क्या आवश्यकता न होगी? आदि काल से बड़े बड़े महापुरुषों अवतारों ने भी सद्गुरु से ही ज्ञान प्राप्त किया। 'अद्वैत मत' के संस्थापक कलियुग के भवपोत 'श्री परमहंस दयाल जी' ने साक्षात् परब्रह्म होते हुये भी गुरु-दीक्षा ली। सन्त

सहजो बाई जी ने भी अपनी वाणी में 'गुरु की आवश्यकता' के विषय में इन सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है:—

॥ दोहा ॥

हरि किरपा जो होय तो, नाहीं होय तो नाहिं ।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जाहिं ॥

अर्थात् भगवान् की कृपा यदि होती है तो अच्छा है—परन्तु पूर्ण सन्त महापुरुषों की चरण-शरण तो प्राप्त होनी ही चाहिये। उन की दया बिना जीव की बुद्धि, चतुराई सब निरर्थक हैं।

यही भक्ति जिसे दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक विद्या भी कहते हैं, बिना सन्त महापुरुषों की संगति के प्राप्त नहीं होती। इसका दूसरा नाम है परा—विद्या। उपनिषद् वाक्य में जिस विद्या को परा—विद्या का नाम दिया गया है, यदि इसके सर्वसाधारण शब्दार्थ पर ध्यान दिया जाये तो यही कहा जा सकता है कि—'परे से परे' मानो यह ज्ञान सर्वोपरि है। कर्म और ज्ञानेन्द्रियों की पहुँच से परे, इन्द्रियों तथा ऐन्द्रियक विषयों से परे, देवी-देवताओं की शक्ति से भी परे।

"यया तदक्षरमधिगम्यते सा परा"
(मुण्डकोपनिषद्—मुण्डक १—खण्ड १—मंत्र ५)

जिस विद्या के द्वारा उसी अविनाशी ब्रह्म को प्राप्त किया जा सकता है।

अर्थात् परमतत्त्व। इसी परमतत्त्व का गुप्त रहस्य तत्त्वदर्शी सद्गुरु की कृपा से उपदिष्ट मार्ग पर चल कर ज्ञात होता है। जिस प्रकार विद्युत (बिजली) धारा का सम्बन्ध यदि हीटर प्रेस आदि से जोड़ा जाये तो वह प्रज्वलित होकर उष्णता प्रदान करती है। यदि पंखे या फ्रिज से जोड़ा जाये तो ठंडी हवा तथा ठंडक प्रदान करते हैं। इसी प्रकार यदि मन का सम्बन्ध माया से होगा तो काम—क्रोध-

लोभ-मोह-अहंकार की विष भरी ज्वाला में जलता हुआ जीव दुःखी, अशान्त तथा अधीर रहेगा। यदि सन्त—महापुरुषों के पावन आनन्दमय सदुपदेशों पर चलेगा तो आनन्दमय बन जाएगा, क्योंकि वास्तव में यह जीव सत्-चित-आनन्द है और उस सच्चिदानन्दघन का ही अंश है। श्री रामायण में लिखा है कि:—

॥ चौपाई ॥

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी॥
सो मायावश भयउ गुसाईं। बंधेउ कीर मर्कट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई। यदपि मृषा छूटत कठिनई॥

यह जीव अविनाशी ईश्वर का ही अंश है जो चेतन, पाप रहित स्वाभाविक ही सुख का निधान है। फिर भी उसी माया के वश होकर जीव ऐसा बंध गया है जैसे तोता और बन्दर स्वयं बंध जाते हैं। (बन्दर तंग मुँह वाले बर्तन में हाथ डाल कर मुट्ठी बन्द करने पर फिर नहीं खोलता, इसलिए फँस जाता है और तोता नलकी में फँसता है) जैसे बन्दर और तोता चैतन्य रूप होकर भी जड़ वस्तु में फँस जाते हैं वैसे ही जीव माया में फँस कर छूट नहीं सकता। जड़ (माया) और चेतन (जीव) में गाँठ पड़ गई, यद्यपि जीव में माया की गाँठ मिथ्या है, परन्तु इसका छूटना कठिन है। इसलिए उस ईश्वर की चेतन सत्ता में मिलकर जब तक आनन्दमय न बन जाएगा तब तक विश्राम प्राप्त नहीं कर सकता। आवागवन के चक्र से नहीं छूट सकता। श्री रामायण के उत्तरकाण्ड में गोस्वामी तुलसीदास जी ने इसी भाव का इस प्रकार वर्णन किया है:—

॥ चौपाई ॥

गुरु बिनु भव निधि तरै न कोई।
जो विरंचि शंकर सम होई॥

गुरु के बिना संसार सागर से कोई पार नहीं हो सकता। चाहे कोई ब्रह्मा

या विष्णु के समान ही क्यों न बन जाए। भाव यह है कि संसार में आकर जीव को आन्तरिक शान्ति और शाश्वत सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। अनेक योगी, ऋषि, मुनि और तपस्वी इस चिरंतन सुख की खोज कर चुके--वह दिव्य आनन्द गुरु के बिना उन्हें कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ।

हमारे धार्मिक ग्रन्थ तथा सन्त--महापुरुषों की वाणियां इसी तथ्य का प्रतिपादन करती हैं कि सद्गुरुदेव के बिना एवं पूर्ण सद्गुरु की प्राप्ति के बिना आध्यात्मिक ज्ञान में पूर्णता नहीं हो सकती क्योंकि सन्त-महापुरुष ही इस ज्ञान में पारङ्गत होते हैं। सद्गुरु उपदेश की महिमा का वर्णन करती हुई पार्वती जी सप्तर्षियों को प्रबोध देती हैं कि:---

॥ चौपाई ॥

तजउँ न नारद कर उपदेशू। आपु कहहिं शत बार महेशू ॥
नारद वचन न मैं परिहरऊँ। बसौं भवन उजरौ नहिं डरऊँ ॥
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही ॥

बाल काण्ड

अर्थः---जब सातों ऋषियों ने पार्वती जी को तप का त्याग करने के लिये कहा तो पार्वती जी ने उत्तर दिया--मैं नारद जी (गुरु जी) के उपदेश को न त्यागूंगी, चाहे मुझे शिव जी स्वयं सौ बार भी क्यों न कहें। मैं नारद जी अर्थात् गुरुदेव के वचनों का उल्लंघन नहीं करूँगी। चाहे अब मेरा घर बसे अथवा उजड़े, इस से नहीं डरती; क्योंकि जिसे गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं उसे स्वप्न में भी सुख और सिद्धि प्राप्त नहीं होती अर्थात् सद्गुरु-वचन ही शान्ति, हर्ष और आनन्द का स्रोत हैं। सद्गुरु के वचन ही जीवन की पूंजी हैं।

महर्षि नारद जी ब्रह्मा जी के पुत्र होते हुए भी गुरु-दीक्षा बिना अधूरे थे। जब उन्होंने ब्रह्मा जी के कथनानुसार गुरु-दीक्षा ली तो उन्हें आत्म-ज्ञान के रहस्य

का ज्ञान हुआ। शुकदेव मुनि योगीश्वर होते हुए भी गुरु-दीक्षा बिना बैकुण्ठ से लौटा दिए गए। भाव यह है कि गुरु-उपदेश वह संजीवनी है जिस का पान करने से काम-क्रोध-लोभ-मोह आदिक मानसिक रोग दूर हो जाते हैं और जीव चौरासी लाख योनियों के आवागवन से छुटकारा पा लेता है। यह वह अमृत है जिसे पीते ही मानुष-जन्म का ध्येय उद्भासित हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वन्दना–प्रसंग में वर्णन किया है:—

॥ सोरठा ॥

वन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥

अर्थः—श्री सद्गुरुदेव महाराज जी दया के सागर मनुष्य रूप में साक्षात् परब्रह्म हैं। उन के श्री चरण-कमलों में मैं वन्दना करता हूँ। उनके श्री प्रवचन सूर्य की किरणों के समूह हैं, जिन से घना-घना मोह का अन्धकार नष्ट हो जाता है अर्थात् सद्गुरु के वचन तथा उपदेश जीव के सारे जीवन को बदल देते हैं। सन्त-महापुरुष अपनी वाणियों द्वारा जीव के मन पर चोट कर आत्म-ज्ञान का लेप करते हैं। जैसे कि सन्त-महापुरुषों के एक वचन ने वाल्मीकि डाकू को ऋषि बनाया–सन्त बुल्लेशाह के गुरुदेव ने केवल इतना ही कहा था कि:—

"बुल्लेया शौह दा की पाणां, इधरों पुट्टणां ते ओधर लाणा"

इस उपदेश ने बुल्लेशाह के समस्त जीवन को परिवर्तित कर दिया। जीवन में स्फूर्ति ला दी। अब तो बुल्लेशाह की समस्त चित्तवृत्तियों का केन्द्र श्री गुरुदेव के श्री वचन बन गए। बुल्लेशाह संसार को भूल गए और शाह के स्थान पर सन्त बन गये। कितनी शक्ति है सन्त-महापुरुषों के वचनों में। इसीलिये तो सन्त-महापुरुषों की आवश्यकता होती है तथा जीव सुधार हेतु ही वे उपदेशामृत की पावन गंगा बहाया करते हैं। यही उपदेश समय समय पर सन्त महापुरुष

देते आये हैं और दे रहे हैं कि सन्त-वचन अटल, सुखदायी तथा कल्याणकारी होते हैं। यही वचन ही तो उनका सदुपदेश है। महापुरुष फ़रमाते हैं कि:—

॥ दोहा ॥

दीपक सतगुरु वचन है, लेकर चले जो हाथ ।
जगत अन्धेरी कोठरी, कबहुँ न भटके पाथ ॥

जो प्राणी श्री सद्गुरुदेव जी के उपदेशानुसार अपने जीवन को उन के सांचे में ढाल लेता है वह संसार रूपी अन्धेरी कोठरी में कभी भटकने नहीं पाता। इस में जाति-पाँति, ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं। जिसने भी इन अमूल्य लालों को ग्रहण किया, इन मुक्ताकणों को चुगा वही जीवन के लक्ष्य को प्राप्त कर गया। भक्त रैदास चमार थे, उन्होंने अपने गुरुदेव स्वामी रामानन्द जी के उपदेशानुसार जीवन बिताया जिस से आज भी उन का नाम उच्चकोटि के सन्तों में लिया जाता है। श्री अनाथदास जी ने भी यही लिखा है:—

॥ दोहा ॥

प्रगट अवनि करनार नव, रत्न ज्ञान विज्ञान ।
वचन लहर तन परसत, अग्यो होत सुजान ॥

ज्ञान और विज्ञान गुरु रूपी सागर के रत्न हैं। उनके वचन लहरों के समान हैं जिनके द्वारा अनेक अनमोल रत्न बाहर निकलते हैं। अज्ञानी जीव उन अनमोल वचन रूपी रत्नों को संचित कर दैवी सम्पत्ति रूपी धन पाकर सुजान हो जाते हैं। किसी फ़कीर का कौल है:—

॥ शेयर ॥

जो है ज़ौके नज़र कामिल, तो कर ख़िदमत फ़कीरों की।
नहीं मिलता है यह जौहर, बादशाहों के ख़ज़ाने में ॥

सारांश यह है कि गुरु–उपदेश तथा गुरु–वचन ही मनुष्य जन्म की पूँजी हैं। गुरु के उपदेश से प्राणों में नई शक्ति संचरित होती है, स्फूर्ति आती है, मनुष्य इन वचनों को हृदयंगम कर जीवन का लक्ष्य प्राप्त कर सकता है एवं समय समय पर सन्त महापुरुष भी इस उपदेशामृत की पावन गंगा बहाने के लिये युग युग में अवतरित होते हैं।

इस अनादिकाल के प्रचलित नियमानुसार 'श्री परमहंस अद्वैत मत' में भी सभी सन्त महापुरुषों ने इस उपदेशामृत की पावन धारा को बहाकर कृतार्थ किया और कर रहे हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों, शरणागतों तथा जिज्ञासुओं के लिये सद्‌गुरु-उपदेशानुसार जीवन व्यतीत करना ही सब का परम कर्त्तव्य है। अपनी मनमति अर्थात् मन, बुद्धि के विचारों, संकल्प-विकल्पों को त्याग कर गुरु-मति को अर्थात् गुरु उपदेशानुसार आत्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर होना ही ध्येय है। समय समय पर महापुरुष जो उपदेशामृत की पावन गंगा बहाते हैं, उस में सर्व साधारण भी मज्जन कर सुख-शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त करते हैं। जितनी माया है प्रबल कलियुग की, उतनी ही तीव्र गति से यह अघ-पुंज-विनाशक (पापों को दूर करने वाली) उपदेश सुधा की पावन गंगा जन जन को आत्मिक मग पर ऊर्ध्वगति से (ऊपर की ओर) ले जा रही है। इस सम्प्रदाय के महापुरुषों का वही उपदेश है जो सन्तमत के आचार्यों का चला आ रहा है। साथ ही भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज जी के निष्काम कर्मयोग की शिक्षा के अनुरूप जीवन को आचरण के सांचे में ढाला जाता है।



महापुरुषों का अवतरण
एवं
सन्त मत क्या है ?



प्रत्येक युग के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि समयानुसार महापुरुष, सन्त, अवतार, पीर पैगम्बर तथा ईश्वरीय विभूति कहलाने वाले उच्च कोटि के व्यक्तित्व अन्धकारमय जगत् को सुमार्ग दिखाने के लिए प्रकट हुआ करते हैं। वे संसार में विकृत होते हुए धर्म को पुनः नया जीवन प्रदान करते हैं। उनके जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य होता है जगत की कुप्रवृत्तियों तथा त्रुटियों को दूर करना। निष्प्राण तथा घायल मानवता में प्राण संचरित करना। वे सृष्टि में अघ-पुँज-विनाशक (पापों के समूह का नाश करने वाले) सूर्य बन कर प्रकट होते हैं। जैसे सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है, सब जगह प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है जिस से अन्धकार में रहने वाले कृमि, मच्छर, कीटाणु आदि नष्ट हो जाते हैं। ऐसे ही सन्त-महापुरुषों के अवतरित होने पर रजोगुण, तमोगुण तथा आसुरी स्वभाव जगत् से दूर होने आरम्भ हो जाते हैं। सात्त्विक गुण अपना शासन स्थापित करता है। उन महान् आत्माओं का अवतार ही केवल ऐसे समय में होता है जब कि:—

जब जब जनसाधारण इन्द्रियतृप्ति एवं विषयोन्मुखता को ही जीवन का लक्ष्य समझने लगते हैं, शारीरिक सुखोपभोग, विषय-विलास, भोग-ऐश्वर्य को ही जीवन-दायिनी संजीवनी समझा जाता है। सत्त्वगुण, ज्ञान तथा आत्मा की उन्नति को जीवन-स्तम्भ मानने के स्थान पर रजोगुण, तामसी-प्रवृत्तियां, स्वार्थपरता तथा भोग लिप्सा का सहारा लिया जाने लगता है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-अंहकार रूपी शत्रुओं

को मित्र समझ कर उन के इशारों पर नृत्य होता है। मन-माया के अधीन हो कर मानव दिन-रात चौबीस घण्टे माया प्राप्त करने में संलग्न हो जाता है। संसार बुराई, कुप्रवृत्तियों तथा रजो-तमोगुण से घिर कर इन्हें जीवन का आदर्श मान लेता है। भाव यह है कि शारीरिक सुख-भोगों के पीछे आत्मिक-आनन्द को बिल्कुल भुला देता है तो ऐसे समय में बुराई, आसुरी प्रवृत्तियों तथा पापों का समूल (जड़ सहित) नाश करके भलाई, सचाई तथा पुण्य का बीज बोने के लिये सत्त्वगुण का उज्ज्वल, धवल प्रकाश फैलाने तथा जनसाधारण के मध्य फैलते हुए भयंकर मानसिक रोगों का मूलोच्छेदन कर के सृष्टि को मानसिक स्वास्थ्य तथा समृद्धि लाभ कराने हेतु ऐसे युगपुरुषों का अवतरण होता है।

यह प्रकृति का अटल नियम है कि सृष्टि कर्त्ता परम पिता परमेश्वर ने इस धरती, आकाश तथा समस्त संसार को एक विशेष नियम में बाँधा हुआ है। प्रकृति को हर क्षण निहारने से, इसके गूढ़ रहस्य विचारने से मालूम होता है कि सृष्टि की कोई भी वस्तु अनियमित नहीं। रात्रि के अन्धकार को मिटाने के लिये युग-युगान्तरों से सूर्य उदय होता चला आया है—धधकती दोपहर की रश्मियों और कड़कती धूप को शान्त करने के लिये मन्द-मन्द पवन, प्रकाश तथा तिमिर को अन्तस्तल में छुपाये शीतलता-दायिनी संध्या वेला आती है—गर्मी से झुलसे, आतुर मानवों, पशु-पक्षियों, स्वल्प सलिला नदियों तथा वनस्पतियों के लिए वर्षा ऋतु मेघ गर्जन के साथ पदार्पण करती है। शिशिर के अनन्तर ऋतुराज बसन्त ने आकर प्रकृति के प्रांगण को सरसा दिया—पत्तों से सूने पादपों पर नई कोंपलें फूट पड़ीं—कलियों ने आँखें खोलीं—मलय समीर ने दसों दिशाओं को सुरभित कर दिया।

इस प्रकार प्रत्येक युग में कई सामाजिक व आर्थिक क्रान्तियां हुईं, परन्तु प्रकृति अपने उसी नियम पर अविचल भाव से कार्य कर रही है।

इतिहास साक्षी है कि जब जब मानव माया-विष्ठा का कीट (दास) बना; तृष्णा-लोभ की ज्वाला में झुलसा—माया के आवरण से इस ने आत्म-ज्ञान को भुला

दिया—सत्य, धर्म, पुण्य, भक्ति तथा ज्ञान का विनाश हुआ—युग परिस्थिति के अनुसार उन परिस्थितियों का सुधार करने हेतु महापुरुषों ने अवतार धारण किया। प्रमाणतः परम सन्त श्री कबीर साहिब जी, श्री गुरु नानक देव जी, सन्त पलटू दास जी, सन्त दादू दयाल जी, सन्त सहजो बाई जी, सन्त दया बाई जी तथा अन्यान्य दिव्य विभूतियां भक्ति एवं अध्यात्मज्ञान से अनुप्राणित समयानुसार प्रकट हुईं और उन्होंने जगत् को प्रेम, भक्ति, त्याग, वैराग्य, आत्म—ज्ञान एवं भजन अभ्यास सम्बन्धी उपदेशों से आत्म—साक्षात्कार का पथ दर्शा कर मृतप्राय सृष्टि में नव—जीवन का संचार किया है।

श्रीमद्भगवद् गीता में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज कथन करते हैं कि:—

॥ श्लोक ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

गीता अ० ४ श्लोक ७—८

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज फ़रमाते हैं—"प्रत्येक युग में जब जब भी धर्म का पतन होता है, राक्षसी व दुराचारी प्रवृत्तियां प्रबल हो जाती हैं। संसार में दुष्ट तथा अधर्मी बढ़ जाते हैं। जब दुर्जन क्रूरता पूर्ण कर्मों से साधु-वृत्ति भक्तों तथा महात्माओं को सताने लगते हैं—धर्म, परमार्थ, सचाई व भक्ति के लक्षण दब जाते हैं—आत्मिक-ज्योति मध्यम पड़ जाती है—कुकर्मियों और अधर्मियों की बन आती है। ऐसा कुसंकट का दुःखदायी समय देख कर धर्म, सत्य तथा ज्ञान की ध्वजा फहराने के लिए तथा तत्कालीन अनाचारमयी परिस्थिति को बदलने के लिये स्वयं मैं मानव शरीर धारण करके आया करता हूँ।" श्री रामायण में भी इसी

कथन की पुष्टि इस प्रकार हुई है:—

॥ चौपाई ॥

जब जब होय धर्म की हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
करहिं अनीति जाय नहिं बरणी । सीदहिं विप्र धेनु सुर धरणी ॥
तब तब प्रभु धरि विविध शरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा ॥

श्री रामायण—बालकाण्ड

शिवजी पार्वती जी से अवतरण के विषय में कहते हैं कि ऐ पार्वती ! भगवान् भक्तिरत जीवों की रक्षा के लिए समय अनुसार अवतार धारण करते हैं । जैसे भक्त प्रह्लाद् के परित्राण के लिए भगवान् विष्णु जी को नरसिंह रूप में प्रकट होना पड़ा और भक्त सैन के लिये नाई रूप धारण करके आ गये । इस प्रकार परमात्मा स्वयं हर युग में, हर देश में, हर जाति में (धर्म—निष्ठ महापुरुष बनकर) अवतार धारण करते हैं । वे कभी निमित्त रूप में तो कभी नित्य रूप में । निमित्त अवतार सम्पूर्ण बल, पौरुष से सम्पन्न होकर विशेष युग में नव परिवर्तन लाने के लिए ही अभ्युदित होते हैं । नित्य अवतार होते हैं सन्त-महापुरुष पूर्ण सद्गुरु । जो सदा काल माया के पंजे में आये हुये जीवों को चिताने, दुःखी जीवों को सुख रूप बनाने, स्वार्थमय जीवन बिताते हुए संसार को परमार्थ तथा परोपकार में लगाने, ज्ञान—विज्ञान की मन्द पड़ती हुई ज्योति को पुनः जगाने, आत्म स्वरूप की पहचान कराने, सब के जीवन में मधुर प्रेम का संगीत भरने, कर्त्तव्य और धर्म पथ पर सब को दृढ़ करने, जीवन को मंगलमय, कल्याण रूप तथा बन्धन मुक्त कराने के लिये प्रकट होते हैं । इन सत्पुरुषों तथा परमात्मा में कोई भेद नहीं होता, स्वयं ब्रह्म स्वरूप ही होते हैं । फ़क़ीरों का कौल है:—

॥ शेयर ॥

हर कि ख़्वाहद हमनशीनी बा ख़ुदा ।
गो नशीं अन्दर हज़ूरे—औलिया ॥

जो कोई परमात्मा के समीप बैठने का इच्छुक है, वह सन्त-महापुरुषों की हुज़ूरी में जाकर बैठे। क्योंकि उन महापुरुषों तथा पूर्ण आत्म-ज्ञान के धनियों की हुज़ूरी ही परमात्मा की हुज़ूरी है। उनकी पावन संगति ही उन की समीपता है। वे परमात्म रूप सन्त रूप में धर्म, सत्य तथा ज्ञान के अग्रदूत सोई मानवता को जीवन के लक्ष्य का सन्देश देने आते हैं। सन्तों का वचन है:—

॥ दोहा ॥

आग लगी आकाश में, झरि झरि परत अंगार।
सन्त न होते जगत में, जरि जाता संसार॥

भाव यह कि संसार काम-क्रोध-लोभ-मोह की अग्नि में दिन-रात चौबीस घंटे जल रहा है। यदि सन्त-महापुरुष ज्ञान रूपी अमृत न बरसाते तो यह संसार राग-द्वेष, ईर्ष्या आदि की अग्नि में झुलस जाता।

यों तो प्रत्येक देश में समयानुसार ऐसे महापुरुषों का अवतरण होता ही रहता है; परन्तु भारतवर्ष को विशेष गौरव प्राप्त है। इस देश में सत्पुरुषों के आविर्भाव की परम्परा शताब्दियों पुरानी है। परम पुरातन काल से ही हमारा भारत आत्म-ज्ञान तथा भक्ति का बृहत् स्रोत रहा है। इसी पवित्र भूमि पर ही वेद-शास्त्रों के रचयिता दिव्य ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले ऋषियों ने जन्म लिया। सन्त-महात्मा, ज्ञानी, योगी, सिद्ध-साधक तथा भक्त जनों ने अवतार धारण कर ज्ञान-भक्ति की गंगा बहाई तो इसी धरा पर प्रकट होकर। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज, श्री राम चन्द्र जी महाराज, महर्षि गौतम, श्री वेद व्यास जी तथा ब्रह्मर्षि वशिष्ठ जी ने इसी भारत-भूमि पर जन्म लेकर भक्ति के अनुपम रहस्य बता कर इसे गौरवान्वित किया। ऊपर जिन महान् व्यक्तियों अथवा सन्त-महापुरुषों के नामों का उल्लेख हुआ है, ये सब भारत में ही विभिन्न विभिन्न युगों में प्रकट हुए। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर तथा पुरातन कलियुग इस अमरसत्य के साक्षी हैं। आत्म-ज्ञान तथा भक्ति-

सम्पदा का बृहत् भण्डार होने के कारण समस्त संसार यहीं से ज्ञान-लाभ करता रहा है। जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट है:—

॥ श्लोक ॥

एतद् देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

मनुस्मृति अ० २ श्लोक २०

अर्थः—पृथ्वी के समस्त मानव प्राणी इस देश के पूर्वजों, विद्वानों तथा आचार्यों से लाभान्वित हो कर अपने अपने चरित्रों का निर्माण किया करते थे। इस दृष्टि से यदि भारतवर्ष को सम्पूर्ण जगत् का गुरु अथवा पथ-प्रदर्शक कहा जाए तो अनुचित न होगा। आज के वैज्ञानिक युग में सभी विज्ञान द्वारा अन्वेषित सुख-साधनों का श्रेय वेदों को ही है। वेदों में जहाँ ज्ञान-विज्ञान, आत्म-परमात्म, साधन-योग का रहस्य दिया है वहाँ प्रकृति पर विजय पाने का अनुपम उल्लेख अथर्ववेद में दिया गया है।

जगत् के तथाकथित सुधारकों अथवा सन्त-महापुरुषों के नाम तथा रूप चाहे भिन्न रहे हों, किन्तु ध्येय सब का एक ही रहा है जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ है।

जनसाधारण में आत्म विद्या एवं भक्ति और ज्ञान का प्रचार करके जगत् की दुर्दशा को सुधारना, सुरत-शब्द-योग साधना से आत्मिक उन्नति करवाना, परमार्थ-पथ दर्शाना—इस पवित्र तथा महान् उद्देश्य को प्रचलित भाषा में 'सन्तमत' कहा जाता है। सन्तमत रुहानियत तथा भक्ति का साधन है। सन्त-महापुरुष राग-द्वेष, ईर्ष्या, वैर विरोध से निर्लिप्त एवं समदर्शी होते हैं। वे समान भाव से वचनामृत वृष्टि द्वारा जन जन का कल्याण करते हैं। वेदों, शास्त्रों तथा ग्रन्थों ने भी इस सत्यता की पुष्टि की है। यहां तक कि आध्यात्मिक महानुभावों ने भी इस अटल सत्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि वे कोई नया धर्म नहीं चलाने आए बल्कि केवल पुरातन काल से अवतारों तथा महापुरुषों के बताये हुए मार्ग को दर्शाने आये

हैं। जिसे सुरत-शब्द-योग का मार्ग भी कहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों से जीव काल और माया के धोखे में आया हुआ मालिक से बिछुड़ कर संसार में कष्ट और चिन्ताओं का शिकार बना हुआ है। इस बिछुड़ी सुरति को मालिक से मिलाना तथा आत्मा का सम्बन्ध परमात्मा से जोड़ना ही सन्तमत का सिद्धान्त और वास्तविक उद्देश्य है। यही वेदों, पुराणों व सद्शास्त्रों तथा प्राचीन सन्तों का ध्येय रहा है।

प्रथम पादशाही श्री गुरु नानकदेव जी महाराज से लेकर श्री गुरुगोबिन्द सिंह जी महाराज तक दस पादशाहियों ने भी इसी सार तत्त्व भक्ति का उपदेश दिया है। यही भक्ति का उपदेश श्री रामचन्द्र जी महाराज ने भरत जी को, पुनः अयोध्यावासियों को किया है। तुलसीकृत रामायण के उत्तरकाण्ड में इस का विशद् वर्णन मिलता है। अन्य देशों व जातियों में भी महापुरुषों तथा नबियों ने यही कहा है। बाईबल में हज़रत यीशु मसीह का कथन है—"यह न समझो कि मैं व्यवस्था और नबियों के लेखों का लोप करने आया हूँ, मैं लोप करने नहीं वरन् पूर्ण करने आया हूँ।" सन्त महापुरुष मानवता की विह्वल पुकार सुनते हैं। जीव को परमार्थ–पथ दर्शा कर ब्रह्म का साक्षात्कार करने का आदेश देते हैं। वे सुरत–शब्द–योग के द्वारा ब्रह्म–साक्षात्कार करने के आदर्श को स्थापित करते हैं।

इन के मौलिक सिद्धान्त एक हैं। सभी अवतारों, सन्त महापुरुषों और दरवेश लोगों ने इन्हीं सिद्धान्तों को मान्यता दी है। इस दृष्टि से सभी सन्त महापुरुष और दरवेशों का ध्येय एक ही है तथा वे वस्तुतः एक ही रूप हैं। रूप तथा नामों के भिन्न भेदों से उनके ध्येय व सिद्धान्तों में कोई विषमता उत्पन्न नहीं होती। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने योग के विषय में अनादिकाल से चले आ रहे इसी उपदेश को गीता में स्वयं श्री मुख से दोहराया है कि:—

॥ श्लोक ॥

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥

एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥

गीता अ० ४. श्लोक १–२

"ऐ अर्जुन ! जो उपदेश मैंने तुम्हें दिया है, यह वस्तुतः पुरातन काल से चला आ रहा है। पहले यह अमर सत्य मैंने सूर्य के प्रति कहा था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु को तथा मनु ने इक्ष्वाकु को दिया। इस प्रकार परम्परा से प्राप्त हुए इस योग को राजर्षियों ने जाना, परन्तु हे अर्जुन ! वह योग बहुत काल से इस पृथ्वी लोक में विलुप्त हो गया था।" श्री व्यासदेव जी, शुकदेव जी तथा अन्यान्य ऋषि मुनि जन भी इसी मार्ग से गुज़रे हैं। इसी प्रकार अद्वैत रूप से यह ज्ञानामृत की पावन धारा पुरातन काल से बहती चली आ रही है और बहती रहेगी।

इसी सिद्धान्त व इसी ध्येय को लेकर पीड़ित मानवता की विह्वल करुण पुकार सुन कर परिस्थिति व देश काल के अनुसार श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज ने अवतार धारण कर जन जन को नाम का अमृत पिलाया तथा वेदना से समस्त संसार को विमुक्त किया। इस धरती के भाग्य जगाये। उनके द्वारा प्रचलित 'अद्वैत–मत–संस्था' आज भी विश्व भर के कोने कोने में उनके ही सत्य रूपी नाम का सन्देश जन जन तक पहुँचा रही है। सरल भाषा में श्री परमहंस दयाल जी का वही उपदेश था जो सन्त मत के आचार्यों का है। इस प्रकार 'सन्त मत प्रणाली' के अनुसार श्री सद्गुरुदेव दयाल जी ने जन जन को लाभान्वित किया तथा उन्हीं के श्री वचनानुसार उस उदात्त परम्परा को अग्रसर किया जा रहा है।



श्री परमहंस अद्वैत मत का प्रारम्भ

समय की गति अबाध (न रुकने वाली) है। समय अनुसार सृष्टि में कई क्रान्तियां हुईं। परिवर्त्तन प्रकृति का अटल नियम है। कभी मरुस्थल भी लहलहाने लगते हैं तो कभी हरे-भरे खेत तथा उपजाऊ प्रदेश भूमि के गर्त में समा जाते हैं। यह संघर्ष तो परम्परा से चलता आ रहा है कि हर्ष-शोक, हानि-लाभ, धूप-छाया, विजय-पराजय तथा धर्म और अधर्म—ये प्रकृति के दो पक्ष (पहलू) हैं। कभी एक पक्ष प्रबल हो जाता है तो कभी दूसरा। इस नियमानुसार भक्ति और माया भी एक दूसरे से विपरीत पक्ष हैं। कभी माया अपना प्रपंच फैलाती है, जीवों पर मोहिनी शक्ति डाल कर उन्हें लक्ष्य से दूर कर देती है तो कभी सन्त--महापुरुष प्रकट होकर भक्ति की मधुर धाराएँ बहाते हैं। यह भक्ति का अमृतमय स्रोत महापुरुषों की वाणी से प्रस्फुटित (झरता) होता है। एक दिव्य तेज उनके वदन पर झलकता है जिससे आकर्षित होकर सर्वसाधारण जीव उन पावन वचनों से अपना जीवन आनन्दमय बनाते हैं। जब तक ये महान् व्यक्ति संसार में रहते हैं तब तक शान्ति, सत्य, सदाचार का साम्राज्य अधिक परिव्याप्त (फैला) रहता है। इसके विपरीत जब महापुरुष संसार से लुप्त होते हैं तो परिस्थितियां विपरीत हो जाती हैं। विराट् सत्य, सदाचार तथा अध्यात्मवाद घटने लगते हैं। लोग महापुरुषों के अमर-वचनों को भूलकर जीवन को दूषित बनाने लगते हैं। माया-मोह प्रबलता के साथ अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। ऐसा नहीं कि आध्यात्मिकता का बिल्कुल लोप हो जाता है परन्तु इतना अवश्य होता है कि आध्यात्मिकता के पुजारी कम रह जाते

हैं। दुष्ट प्रकृति के लोग बहुधा साधु प्रकृति के भक्त जनों का अपमान करते हैं। पुनः इन पवित्र आत्माओं की करुण पुकार आकाश में मूक स्वर में गूँजती है जो मालिक के द्वार से निराश नहीं लौटती। उस आर्त्त स्वर को सुन कर संसार में सन्त–महापुरुषों का पुनः आगमन होता है। वे भूतल पर आ कर इस विकट परिस्थिति का सुधार करते हैं।

तथैव ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में विश्व परिस्थितियाँ बिगड़ने लगीं। बहु संख्यक लोग सन्त मत के उच्च आदर्शों को भूलकर पाप, अनाचार की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। जन साधारण की वृत्ति भोग–विलास की ओर बढ़ती जा रही थी। शारीरिक सुखोपभोग तथा इन्द्रिय तृप्ति ही जीवन का ध्येय बन चुका था। आत्म–ज्ञान, भक्ति एवं प्रेम, सचाई व पवित्रता मानो मृतप्राय होने लगी थीं। लगभग पूर्ण देश पथ भ्रष्ट हो रहा था। असत्य, अधर्म और अज्ञानता की आँधी छूत के समान देश विदेश के कोने कोने में फैलती जा रही थी। धर्म और अध्यात्मवाद का सूर्य मानो अस्त हो रहा था।

तब जगत् को सन्मार्ग दर्शाने के लिये, पापाचार एवं अधर्म की बढ़ती हुई शक्ति को दबाने के लिये तथा जगत् की क्षण-प्रतिक्षण बिगड़ती परिस्थितियों को सुधारने के लिये और भविष्यत् में बढ़ती हुई मोह माया की आंधी से संघर्ष करने के लिये प्रकृति के मौलिक नियमानुसार किसी उच्च-कोटि के महापुरुष, सुधारक की नितान्त आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। जन जन के हृदय से उठती हुई गुहार एवं करुण वेदना को विधाता ने सुना। समय की मांग को पूरा किया। उस समय समस्त संसार को सद्भावना, सच्चाई एवं आत्म-विद्या की ज्योति से प्रकाशमान करने वाले प्राचीन भारत ने जिन पुरातन ऋषियों, मुनियों को अपनी गोदी में प्रकट किया, उसी भारत माँ की पुनीत गोदी में सर्वगुण सम्पन्न स्वनाम धन्य, वैराग्य-पुञ्ज महान् तत्त्ववेत्ता ब्रह्मदर्शी श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज अवतरित हुए। आप ने जगत्

में प्रेम, त्याग, वैराग्य, ज्ञान तथा भक्ति की धारा बहाई। सत्यता का पथ दिखाने के लिये तथा धर्म, सदाचार और मृतप्राय ज्ञान को नवजीवन देने के लिये उग्र साधना की। आप के द्वारा चलाये गये सन्तमत का सम्प्रदाय आप के शुभ नाम से सम्बन्धित हो कर 'श्री परमहंस अद्वैत मत' कहलाता है। जो तब से लेकर वर्त्तमान समय तक भक्ति-ज्ञान की उच्चतम शिक्षा से सर्वसाधारण को लाभान्वित कर रहा है। जैसा कि पहले वर्णन हो चुका है कि नामों का भेद कोई महत्त्व नहीं रखता। सन्तमत के मौलिक नियम अटल एवं अभिन्न रहेंगे। इस मत में भी ऐसे ही महापुरुषों ने अवतार लिया जिन्होंने अद्वैत रूप से अनादि काल से चले आ रहे उसी उपदेश को दोहराया जिसका वर्णन वेदों तथा ग्रन्थों में मिलता है। जन जन तक इस सन्देश को पहुँचाने के लिये श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी ने भक्ति के इस भवन की नींव रखी तथा इनके अनुयायियों ने इस पथ पर अग्रसर हो कर इसे उन्नति दी और दे रहे हैं। उन सब का पावन वृत्तान्त आगामी पृष्ठों में अंकित किया जाता है जिसे आप सब पढ़ कर कृतार्थ होंगे।



श्री श्री १०८ श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज

॥ दोहा ॥

सुभग मृदुल पद पद्म में, शत शत कोटि प्रणाम ।
प्रकटे प्रथम स्वरूप में, श्री परमहंस सुखधाम ॥
तव चरणन में वन्दना, करहूँ बारम्बार ।
भक्ति पथ दर्शावने, लिया दिव्य अवतार ॥
भक्तन हिय पुलकित भया, निरखत ब्रह्म स्वरूप ।
प्रेम भक्ति का सरल पथ, दर्शा दिया अनूप ॥
घना तिमिर था छा रहा, माया मोह कराल ।
उदित हुए नव सूर्य सम, श्री परमहंस दयाल ॥

अवतरण

भारत के नभोमण्डल पर खुशियों का एक नया रंग छा रहा था। जन जन का हृदय आनन्द में विभोर हो रहा था। चारों दिशाओं से वायु सुगन्धि छिटकाने लगी। न जाने इतना उल्लास कहाँ से आ रहा है? प्रत्येक प्राणी के हृदय में हर्ष था। परन्तु किसे क्या मालूम कि सृष्टि का भार हलका करने को तथा मोह माया में सोये हुए प्राणियों को जाग्रति का सन्देश देने के लिये स्वयं सन्त रूप में भगवान् प्रकट हो रहे हैं। घर में एक अलौकिक प्रकाश हुआ। यही वह शुभ दिन था 'रामनवमी' का जिस पुनीत दिवस में मानवता में भक्ति-ज्ञान की

ज्वाला प्रज्वलित करने के लिये श्री परमहंस दयाल जी श्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज का शुभ अवतरण हुआ। श्री परमहंस दयाल जी ५ अप्रैल सन् १८४६ ई० तदनुसार २३ चैत्र संवत् १९०३ रविवार पुष्य (पुख) नक्षत्र सुकर्मा योग में रामनवमी के दिन, बिहार की पुण्य भाग्यशालिनी भूमि, कसबा छप्परा, ज़िला सारन के उच्च ब्राह्मण कुल पाठक वंश में अवतरित हुए। आप जन्मजात अवतार तथा महापुरुष थे। आप के पिता श्री तुलसी राम जी पाठक अत्यन्त सुशील तथा परोपकारी थे। जब सम्बन्धियों ने श्री परमहंस दयाल जी के जन्म-महोत्सव मनाने के लिये उन्हें कहा तो आप के पूज्य पिता जी ने फ़रमाया—"हमारे घर में जन्मोत्सव मनाने की ऐसी क्या विशेषता है? आज के दिन तो सम्पूर्ण भारतवर्ष में ही राम जन्मोत्सव का आनन्द पहले ही मनाया जा रहा है।"

वास्तव में यह रामनवमी महोत्सव त्रेतायुग के अवतार श्री रामचन्द्र जी के अतिरिक्त युग की पुकार सुनने वाले कलियुग के अवतार श्री परमहंस दयाल जी का जन्म महोत्सव था। तदनुसार पिता जी ने आपका शुभ नाम 'राम रूप' और 'राम नारायण' रखा। वे आपको प्यार से 'राम याद' भी बुलाते थे। 'यथा नाम तथा गुण' बड़े होने पर यह बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई।

आपके जन्म पर घर में हर्ष ही हर्ष छा गया। आनन्द ने डेरे डाल लिये परन्तु पिता जी के लिए यह प्रसन्नता अधिक समय तक न रह सकी क्योंकि जब आपकी आयु लगभग नौ मास की हुई होगी कि आप माता जी की छत्र-छाया से वंचित हो गये। इधर आपके जन्म लेने की ख़ुशी उधर धर्मपत्नी के स्वर्ग सिधारने का दुःख। कैसी कुदरत की रचना है कि:—

॥ शेयर ॥

फ़लक जिन्हें ऐश देता है, उन्हीं को ग़म भी होते हैं।
जहाँ बजते हैं नक्कारे, वहाँ मातम भी होते हैं॥

अब आपके पूज्य पिता जी को आप के पालन-पोषण की चिन्ता हुई। उनके हज़ारों ही शिष्य, सेवक व श्रद्धालु थे परन्तु उनका विशेष प्रेम एक सज्जन लाला नरहर प्रसाद जी कायस्थ (श्री वास्तव) से था। श्री वास्तव जी का घर नये बाज़ार में था और उनका व्यवसाय वकालत करना था। श्री वास्तव जी व उनकी धर्मपत्नी दोनों बड़े साधु-सेवी थे। वे अपने गुरु अर्थात् आपके पिता जी के अत्यधिक श्रद्धालु थे। उनका इकलौता लड़का आप से छः मास बड़ा था। अचानक ही आपकी माता जी के स्वर्ग सिधारने से एक मास पूर्व उनके पुत्र का देहान्त हो गया। वे अपने पुत्र के दुःख में अत्यन्त दुःखी रहते थे। अब आपकी माता जी की मृत्यु के पश्चात् आपके पिता जी ने आपको लाला नरहर प्रसाद जी तथा उनकी धर्मपत्नी को सौंप दिया। उन्होंने आपका पालन-पोषण बड़े लाड़ प्यार से किया। उनके दिल में सदा यही इच्छा रहती कि आप अपने माता-पिता की ओर तनिक भी ध्यान न दे सकें। इसलिए वे सदा आपको मातृ-पितृ सुलभ स्नेह से पूर्ण करते। आपने पाठक वंश में जन्म लेकर कायस्थ माता के दूध का बल प्राप्त किया। दिन-रात प्रत्येक क्षण उनका ध्यान आपकी देख-रेख तथा सेवा में व्यतीत होता, परन्तु जो स्वयं सृष्टि के कर्त्ता-धर्त्ता हों उनका पालन-पोषण कौन कर सकता है? आप स्वयं सृष्टि के नायक तथा पालनहार थे। सांसारिक दृष्टि-कोण से आप अवतार होते हुए भी मानव सिद्धान्तों को चरितार्थ कर रहे थे।

प्रकृति का खेल कि संवत् १६०८ तदनुसार सन् १८५१ में जब आपकी अवस्था अभी पाँच वर्ष की हुई तो पूज्य पिता श्री तुलसीराम पाठक जी का देहावसान हो गया। अब तो लाला साहिब जी का ध्यान और भी अधिक आप की ओर हो गया। उनके दिल में यह ख़्याल था कि जो उमंगें आपके पूज्य पिता जी आपकी ओर से अपने दिल में ले गए उनको पूरी कोशिश से पूरा किया जाए ताकि उन की आत्मा को शान्ति मिले। उन्होंने आपके साथ इस तरह लाड़-प्यार तथा स्नेह का व्यवहार किया कि आप भूल कर भी माता–पिता को याद न करें। इतना लाड़ प्यार होते हुए भी आपको सर्वसाधारण बालकों की तरह खेलना पसन्द न

था। आप बाल्यकाल में अपनी ही मस्ती में मस्त रहते। एकान्त तो आपका प्रिय मित्र था। प्रकृति जिन की चरण रज छू लेने को आतुर हो, ऋद्धियां-सिद्धियां चरण छांव का आश्रय प्राप्त करना चाहती हों वे भला इस संसार को क्या समझते हैं। फिर भी लाला श्री वास्तव जी ने यथासम्भव अपने कर्त्तव्य को पूर्ण रूप से निभाया। सांसारिक दृष्टिकोण से आपकी शिक्षा-दीक्षा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, अरबी एवं फ़ारसी में हुई।

जब आप की अवस्था नौ वर्ष की हुई तो एक दिन सत्संग में यह चर्चा हुई कि अधिकतर साधु-महात्माओं को ऐसी सिद्धि प्राप्त हो जाती है कि वे गुटका मुँह में ले कर इस स्थूल शरीर से आकाश में उड़ने लगते हैं। किसी अन्य व्यक्ति ने कहा—"गुटका आदि कुछ नहीं होता केवल विचार शक्ति अथवा प्राणायाम से यह सिद्धि प्राप्त हो जाती है।" यह सुन कर आपके मन में भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि हमें भी ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि उड़ने लगें। जहाँ भी दिल चाहा उड़कर क्षण में पहुँच गये। पग पग पर इस भारी शरीर का बोझ उठाने की क्या आवश्यकता है? आप को इस विधि के विषय में किसी नियम का पता न था और न ही किसी से इस के विषय में पूछा। आप स्वयं श्वास रोक कर बैठ जाते और यह विचार करते कि उड़ूँ। शरीर को काबू में रखना अति आवश्यक था। फिर क्या था—थोड़े दिनों के अभ्यास से शरीर एक मंज़िल मकान तक उड़ने लगा। कुछ दिन पश्चात् आप को ऐसा उड़ते हुए देख कर लाला नरहर प्रसाद जी तथा अन्य सम्बन्धी आप को पकड़ने के लिए दौड़े। उन्होंने शोर मचाया तो आप नीचे उतर आये। उन्होंने आप को धमकाया और बहुत डराया कि आप यह क्या कार्य कर रहे हैं। इसका परिणाम बुरा होगा। किसी दिन बहुत ऊँचाई से गिर पड़ोगे तो हाथ पाँव टूट जाएँगे। इस में सन्देह नहीं कि मृत्यु भी हो जाए। आप ने उनके डराने धमकाने पर भी यह अभ्यास न छोड़ा। जब आप की उड़न-सिद्धि की महिमा अन्य लोगों में भी फैल गई तथा साथ में लाला जी ने एक दो बार प्यार से समझाया कि ऐसा करना उचित नहीं है। आप ने सोचा कि सिद्धि शक्तियां गुप्त रहनी चाहिएं। इस की चर्चा से शक्ति

कम हो जाती है; तब आप ने यह कार्य कुछ समय तक गुप्त रूप से किया। पुनः इस में अत्यधिक विशेषता न पाकर इस अभ्यास को धीरे धीरे छोड़ दिया। आप की आत्मा ने गुरु बन कर आप को यह उपदेश दिया था; और भी कई बातें आत्मिक ज्ञान की ख़्यालों में आती रहती थीं।

आप के पिता जी को श्री परमहंस जी (केदार घाट काशी वालों) से ब्रह्म-विद्या का उपदेश मिला था। इसीलिये श्री परमहंस जी आप के घर प्रायः आते रहते थे। लाला नरहर प्रसाद जी आप के पिता जी के उपदेशी, विशेष श्रद्धालु तथा साधु सेवी थे। अतएव श्री परमहंस जी केदारघाट वाले लाला जी के घर भी कभी कभी पधारते थे। सन् १८६० ई० में जब आप की आयु चौदह वर्ष की हुई तो लाला नरहर प्रसाद जी का भी देहान्त हो गया। लाला जी की मृत्यु के पश्चात् उनकी धर्मपत्नी के जीवित रहने तक श्री परमहंस जी (केदारघाट काशी वालों) का वहां आना जाना रहा। श्री परमहंस जी केदारघाट वाले भी पहुँचे हुए उच्च कोटि के सन्त थे। वे बड़े प्यार से आप को 'हापू बाबा' के नाम से बुलाया करते थे। सब से पहले तो ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश तथा आध्यात्मिक लाभ आपको इन्हीं महापुरुष से हुआ।

लाला नरहर प्रसाद जी की मृत्यु के पश्चात् एक बार जब श्री परमहंस जी आप के यहां पधारे तो आप ने अपनी हार्दिक अभिलाषा (कामना) श्री चरणों में प्रकट की कि हमारा ख़्याल गृहस्थ आश्रम में न पड़ कर साधु होने का है, आप की क्या आज्ञा है? श्री परमहंस जी ने फ़रमाया-"भाई हापू! संसार में जो काम नियम व ढंग से किया जाता है वही अच्छा होता है। आप का ब्रह्मचर्य पूरा होने वाला है। अब गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करो पुनः वानप्रस्थ से संन्यास आश्रम लो। साधु होने की अभी से क्या सूझी? आदर्श गृहस्थी बन कर दीनों की सहायता करो।" आप ने उत्तर दिया-"आप का कथन सत्य है। मुझे गृहस्थ आश्रम से कोई घृणा नहीं, परन्तु जहां तक मैंने देखा या सुना है और विचार

किया है मुझे इस में कोई सार मालूम नहीं होता। मोह में फँस कर दीन दुःखी रहना और भगवत् भजन से विमुख रह कर जन्म को व्यर्थ गंवाना है।"

॥ शेयर ॥

हम ख़ुदा ख़्वाही व हम दुनिया-ए-दूँ।
ईं ख़्याल-स्तो मुहाल-स्तो जनूँ॥

अर्थः—यदि कोई अपने मन में यह आशा रखे कि मैं दुनिया के काम भी करता रहूँ और मुझे ईश्वर की प्राप्ति भी हो जाए तो इस ख़्याल को दिल से निकाल दे। यह कभी नहीं हो सकता।

॥ दोहा ॥

जब लग हरि सिमरे नहीं, जो सन्तन के मीत।
वे दिन गिनती में नहीं, गए वृथा सब बीत॥

यह मोह की जंज़ीर बहुत कड़ी है। जब तक इस के बन्धन में न पड़ा जाए तब तक तो कुशल है। इस बन्धन के पड़ जाने पर इसे काटना कठिन सा हो जाता है। श्री रामायण का कथन हैः—

॥ दोहा ॥

चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि।
जिमि हरि भक्ति पाय श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण से कहते हैं कि जैसे शरद् ऋतु को पाकर राजा, तपस्वी, व्यापारी और भिखारी आनन्द से घर छोड़कर अपने अपने कामों को चलते हैं ऐसे ही ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, संन्यासी हरिभक्ति को पाकर अपने अपने आश्रम छोड़ देते हैं अर्थात् जब भी जिस आश्रम में वैराग्य की प्राप्ति हो जाए, उसी आश्रम में ही सर्वस्व त्याग साधु बन सकता है। इस में किसी नियम का बन्धन नहीं है।

आप ने फ़रमाया कि जिस दिन वैराग्य हो जाए उसी दिन संन्यासी बन जाए। फिर न जाने कब विघ्न पड़ जाए क्योंकि एक समय में एक ही काम ठीक प्रकार से हो सकता है। ऐसा न हो कि "दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम।"

यह सुन कर श्री परमहंस जी ने फ़रमाया—"भाई! साधु होना तो दुनिया भर की ज़िम्मेवारी सिर पर लेना है। तुम्हारा जो यह ख़्याल है कि साधु बन कर कोई चिन्ता न रहेगी, यह भी ठीक नहीं है क्योंकि और बातों के अतिरिक्त मुख्य चिन्ता खाने—पीने, पहरने की हुआ करती है। यह सब के लिए ज़रूरी है।" आपने उत्तर दिया—"पेट भरने के लिए मनुष्य कुछ भी खा सकता है। कन्द—मूल, फल—फूल इसके अतिरिक्त परमात्मा ने सैंकड़ों प्रकार की वनस्पतियां और भिन्न भिन्न प्रकार के अनाज बनाये हैं। इन वस्तुओं से निर्वाह सरलता से हो सकता है। यह आवश्यक नहीं कि हलुवा, कलाकन्द और स्वादिष्ठ भोजन ही मिलें। क्या जंगल के फल-फूल खाकर मनुष्य जीवित नहीं रह सकता? जिस तरह से इस शरीर को रखना चाहें रह सकता है। दूसरी बात है खान-पान, अन्न-जल के विषय में—इस के लिये जहां भी इस शरीर के निमित्त जो कोई वस्तु हो वह स्वयं ही प्राप्त हो जाती है।"

॥ दोहा ॥

पहले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहीं बांधे धीर॥

श्री परमहंस जी केदारघाट वाले बोले—"निश्चय हो जाना आसान बात नहीं है, फिर सब से बढ़ कर संस्कार की बात होती है।" आप ने प्रार्थना की—"मैंने तो अपना निश्चय प्रकट कर दिया है। अब रही संस्कारों की बात, सो उन से भी मेरी बात दृढ़ है क्योंकि माता जी और पिता जी का तो पहले ही देहान्त हो चुका है। स्त्री और पुत्र के लिये इच्छा ही नहीं है। अब संस्कारों में शेष क्या कमी रह गई है। आप अन्तर्यामी हैं। आप स्वयं ही इस विषय पर विचार करें

क्योंकि प्रकृति ने जो वातावरण बनाया है उससे प्रतीत होता है कि उस ने किसी विशेष काम के लिए ही इस शरीर को उत्पन्न किया है।" क्योंकि कहा भी जाता है:—

॥ दोहा ॥

जैसी हो भवितव्यता, वैसी उपजै बुध ।
होनहार हिरदै बसै, विसर जाय सब सुध ॥

अर्थः—जैसा जिस ने भविष्य में बनना हो, वैसी ही उस की बुद्धि तथा विचार बचपन में होते हैं। होनी बलवान् है इसीलिए वही होनहार बुद्धि में पहले से ही आकर स्थिर हो जाती है। अतः उन के विचार पहले से ही उच्च उद्देश्य को लिये हुए थे।

आप जी की पवित्र भावनाओं तथा उच्च विचारों को सुनकर श्री परमहंस जी केदारघाट वाले कुछ समय तो मौन होकर कुछ सोचते रहे, इसके पश्चात् फ़रमाया—"भाई हापू ! यदि तुम्हारा ऐसा ही ख़्याल है तो ठीक है, ऐसा ही करो। परन्तु एक बात तो तुम्हें माननी ही होगी। वह यह कि लाला नरहर प्रसाद और उनकी धर्मपत्नी ने आप का पालन-पोषण अपने सुपुत्र की भांति किया है। अब चूँकि लाला जी का देहान्त हो गया है, उनकी धर्मपत्नी का कोई आश्रय नहीं, उसे केवल तुम्हारा ही सहारा है। अतएव उस की सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। उसकी मृत्यु के उपरान्त आप का जैसे दिल चाहे वैसे करना। उपदेश के अनुसार भजन-अभ्यास तथा आन्तरिक मंज़िलों को पार करने का कार्य करते रहो। अपना यह ख़्याल अभी लाला जी की पत्नी पर प्रकट न करें। इस से वृद्धावस्था में उसे असहनीय दुःख होगा।

सत्य ही तो कहते हैं कि जब महान् विभूतियां किसी महान् कार्य तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार में आती हैं तो उन की व्यक्तिगत महानता तथा प्रतिष्ठा के विशेष लक्षण तथा चिन्ह उनकी बाल्यकाल की झांकियों से स्पष्ट होने

लगते हैं। क्या सुन्दर उत्तर दिये आपने। जिन्हें बचपन से ही मोहिनी माया की झिलमिल आकर्षित नहीं कर पाई वही माया क्यों न सन्त-महापुरुषों की चरण-रेणु बनने को आतुर हो।

वास्तविक अर्थों में श्री परमहंस जी केदारघाट वाले गुरु-शिष्य की परम्परा अनुसार अपने शिष्य की परीक्षा ले रहे थे और श्री परमहंस दयाल जी भी शिष्य रूप में परीक्षा में पूर्ण रूप से सफल हो गये।

इस के पश्चात् श्री परमहंस जी ने आप को कुछ विशेष उपदेश दिया। आपकी गुरु-दीक्षा का नियम पूरा हुआ। आप भी अपने सद्गुरु श्री परमहंस जी के उपदेशानुसार कार्य करने लगे।

सन् १८६३ ई० में जब आप की अवस्था १७ वर्ष की हुई तो लाला जी की धर्मपत्नी का भी देहान्त हो गया। उन का दाह संस्कार कर के व कर्म-काण्ड से निवृत्त होकर आप अपने गुरुदेव श्री परमहंस जी के उपदेशानुसार जो आन्तरिक वेष था उसे प्रत्यक्ष कर लिया। आप ने मन में विचारा कि परमात्मा ने अब स्वतन्त्र कर दिया है। अब संसार की ओर देखने की आवश्यकता ही नहीं।

आप के माता पिता तथा लाला साहिब की सब धन–सम्पत्ति का कोई उत्तराधिकारी न था। परन्तु सब को मालिक की देख-रेख में छोड़कर छप्परा से बकसर की ओर चल दिये। बकसर में पहुँच कर आप ने गंगा के पावन जल में स्नान किया और धोती इत्यादि जो कुछ वस्त्र पहने हुए थे सब वहीं छोड़ दिए। केवल एक लंगोट धारण कर लिया। बकसर से अकबरपुर के जंगल की ओर जाने का विचार किया। मार्ग में आप दो दिन के लिये नौहट्टा गांव में ठहरे। यहां से फिर आप आगे चल पड़े और लंगोट इत्यादि भी त्याग दिया तथा दिगम्बर वेष में रहने लगे। किसी उर्दू कवि का कथन हैः—

॥ शेयर ॥

तन–ए–उरयानी से बेहतर, नहीं दुनिया में लिबास ।

यह वोह जामा है कि जिसका नहीं सीधा उलटा ॥

अर्थः—इस शरीर से बढ़ कर दुनिया में कोई अच्छी वेष-भूषा नहीं। यह वह पहरावा है जिस का आगा पीछा (उलटा सीधा) नहीं देखना पड़ता ।

यहां से आप डेरीघाट होते हुए तलुथु पहुँचे। तलुथु से अकबरपुर गये। यह स्थान बहुत सुन्दर तथा रमणीक था। यहां निर्जन वन और पर्वत थे। यह स्थान आप को बहुत पसन्द आया और लगभग छः वर्ष तक आप यहीं एकान्त वास करते रहे। आपने रहने के लिए कोई मठ अथवा झोंपड़ी नहीं बनवाई बल्कि इसी प्रकार नग्न और स्वतन्त्र रूप में रहे। यहां तक कि कोई कर–पात्र, कमण्डलु आदि भी पास नहीं रखा। इस साधना काल में आपने मौन व्रत धारण कर रखा था। यहां वन्य पशु शेर, चीते, रीछ, भेड़िये इत्यादि भी बहुत थे और दिन में पांच छः बार आप को उन्हें देखने का अवसर भी मिल जाता था। वैराग्य अवस्था के कारण आप को इन से कोई भय प्रतीत नहीं होता था। आप केवल फलाहार ही किया करते थे। कई बार उपवास भी हो जाता था। उसका कारण यह था कि वैराग्य वृत्ति के कारण आप किसी से मांगना पसन्द न करते थे।

एक दिन स्वप्न में आप को अपने गुरुमहाराज जी के दर्शन हुए । उन्होंने आदेश दिया कि बैठने से भ्रमण अच्छा है। प्रातः होते ही आप वहां से चल दिये और चौगाएँ, नवां नगर व डेरीघाट होते हुए डुमराऊँ में निवास किया। यहाँ आप ने भोज–पत्र की कोपीन धारण कर ली और लगभग दो तीन मास तक यहीं रहे। आप महाराजा साहिब के तालाब पर ठाकुर जी के मन्दिर के समीप बैठे रहते थे। कभी कभी नन्दन वन की ओर भी चले जाते। अब आप यहाँ से आगे चल दिए ।

डुमराऊँ से चलते समय आप के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि तीन दिन

से अधिक एक स्थान पर ठहरना उचित नहीं है। आप पटना की ओर चल पड़े। मार्ग में महाराज गंज, आरा, दीनापुर तथा बाँकीपुर होते हुए पटना पहुँचे। यहाँ पर लाला जयप्रकाश लाल जो कि बड़े सत्संगी और हरिभक्त थे, उन के पास आप अधिकतर ठहरा करते थे। उन्होंने आप की बहुत सेवा की। गंगा जी का यह पावन तट शान्त और रमणीय होने के कारण आप को बहुत अच्छा लगा। इसीलिये आप दो-चार वर्ष इधर ही भ्रमण करते रहे। आप केवल चने अथवा सूखी रोटी खाते थे। यहाँ से मोतीहारी, सोनपुर, हरिहर क्षेत्र और गंगा इत्यादि क्षेत्रों में घूमते रहे। गंगा के दक्षिण तटवर्ती क्षेत्रों में भ्रमण करने के पश्चात् फिर आप बलिया, गाजीपुर, सारन होते हुए उत्तर की ओर रियासत बेतिया में चले गए। भ्रमणकाल में आप को अच्छे अच्छे योग अभ्यासी सन्तों फ़क़ीरों से मिलने का अवसर मिला। उन से काफ़ी वार्त्तालाप होता रहा। वैराग्य की प्रबल स्थिति होने के कारण आप को सांसारिक बातें अच्छी न लगती थीं।

१८६३ से १८७८ ई० तक निरन्तर सोलह वर्ष तक भ्रमण करने के पश्चात् जब आप बेतिया रियासत में विराजमान थे तब एक दिन आपके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि कोई एकान्त स्थान नगर के बाहर मिलता, जहाँ शौच-क्रिया व जल आदि की भी सुविधा होती तथा जहाँ रह कर दिव्य आनन्द की भी अनुभूति कर पाते। इन विचारों के उत्तर में श्री सद्गुरु जी की ओर से आपको अन्दरूनी तौर से आदेश हुआ कि अब आप काठियावाड़, द्वारका जी की ओर भ्रमण करो। यह आदेश पा कर आप वहाँ से अयोध्या की ओर चल पड़े। इस प्रकार पैदल भ्रमण करते करते मथुरा जी पहुँचे। यहाँ पर आप को एक महापुरुष के दर्शन हुए जो कि आप को बड़े प्यार से मिले और कहने लगे—"परमहंस राम याद! आओ मिलो।" उनको मिलने से आपको हार्दिक प्रसन्नता हुई क्योंकि वे भी पूर्ण पुरुष प्रतीत होते थे। अपने अनुरूप पथ पर चलने वाले महापुरुष से मिल कर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए। ऐसी अवस्था में आप को व्रज-भूमि अर्थात् नन्द गांव, गोकुल, मथुरा व वृन्दावन की सैर बहुत अच्छी लगी।

आप कई महीने यहाँ पर विराजमान रहे। मथुरा से आप पैदल ही जयपुर पहुँचे। यहाँ कुछ दिन निवास करके आप साँभर चले गए। साँभर से देववाणी, अजमेर, पुष्कर जी आदि तीर्थस्थलों की यात्रा की। फिर आप को उस ब्रज वाले महापुरुष से मिलने की इच्छा हुई। अतः आप मथुरा जी लौट आए।

मथुरा जी में आप ने उस महापुरुष की स्वाभाविक ही खोज की परन्तु उनका कोई पता न चला। एक दिन आप उनकी खोज के विचार में कालीदह के समीप सो गए तो स्वप्न में उन के दर्शन हुए। उन्होंने फ़रमाया—"मुझ को क्यों ढूंढते फिरते हो ? अपने आप को देखो। क्या मैं और तुम पृथक्-पृथक् हैं।" इसके पश्चात् फिर वह महापुरुष अन्तर्धान हो गए। ऐसी दिव्य अवस्था में आप को ब्रज का भ्रमण बहुत अच्छा लगता था। भक्ति-भाव और प्रेम से छाती भर भर आती थी। आप अपना ही बनाया हुआ यह भजन अधिकतर गाते थेः—

भजन

टेकः—करहूँ मैं भक्ति सिंगार नाथ महारानी होइयों ॥

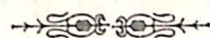
१—सत्य के सिन्दूर इंगुर, सुकृत मन्दिरा काजल देहूँ।
मांग टीका त्रिकुटी लौ लागे, दर्शन हरि जी के पइयों ॥

२—बाजूबन्द ज्ञान दृढ़ तिलरी, नथिया बुध चमकइयों।
मन कर बिन्दी सन्तोष की चूड़ी, पिय-हिय हर क्षण रहियों ॥

३—दया के कंगन, अक्रोध पछैली, धर्म की हंसली पहनइयों।
कनक फूल अनहद बाजत, बीसर विषय भुलइयों ॥

४—सार सुर्त की अंगिया साज के, सुमति की साड़ी ओढ़इयों।
सहज समाधि बुद्धि चित्त लंहगा, पल में पिया को रिझइयों ॥

५—"राम याद" प्यारी पिया हो के, सोतो माया तमकइयों ।
सुहागिन हो के पिया के रिझाई, रज तम मैल दुरइयों ॥
करहूँ मैं भक्ति सिंगार नाथ महारानी होइयों ॥



इस भजन में श्री परमहंस दयाल जी ने यह दर्शाया है कि केवल श्री इष्ट देव ही एक मात्र प्रियतम (नर-रूप) हैं शेष सब संसार नारी रूप है। माधुर्य भक्ति अर्थात् अपने परम इष्टदेव जी को पति का रूप मान कर अपने को कान्त-भाव से उन की अराधना, उपासना और नवधा भक्ति के द्वारा अपने आप को इस योग्य बनाना जो अपने मालिक के हृदय को भा सकूँ। वे मेरी भावना को देख कर मुझे अपने हृदय में स्थान दे दें। इसे कहा जाता है "माधुर्य भक्ति"। कान्त-भाव से प्रियतम को भजना। इसी भाव को लेकर इस भजन की रचना की गई है ।

सुरति को प्रेयसी का रूप दिया गया है । वह अपने प्राणेश प्रियतम से निहोरा करती हुई कहती है कि:—

"ऐ नाथ ! मेरे जीवन धन ! मैं भक्ति भरा शृंगार करके आपकी महारानी बनना चाहती हूँ।"

१. मेरी मांग में सत्य का सिंदूर भरा होगा। पुण्य कर्मों का मन्द्रा (गहरा) काजल मेरी आँखों में होगा। त्रिकुटी में बसा हुआ ध्यान ही मेरे लिए मांग-टीका (माथे पर पहनने वाला गहना) होगा। इस तरह से मैं अपने शृंगार से अति सुन्दर बन कर पिया के दर्शन पा लूँगी ।

२. ज्ञान ही मेरा बाजूबन्द (अनन्त=बाँह पर पहनने वाला कड़ा) तथा बाजूबन्द का टिक्का दृढ़ विश्वास का हो। निर्मल बुद्धि को ही अपनी नाक में नत्थ (नाक का आभूषण) बना कर चमकाऊँ, मनोहर बिन्दी मेरी ठोढ़ी पर होगी, सन्तोष की चूड़ियाँ पहन कर मैं अपने प्रियतम के हृदय में सदा के लिये स्थान

पा लूंगी ।

३. कलइयों में दया के कंगन व शान्ति की पिछली चूड़ियाँ तथा धर्म की हंसली गले में पहनूंगी । अनहद शब्द (अन्दर बजने वाले सुरीले राग) मेरे कर्ण फूल (कानों में पहनने वाला गहना) होंगे । इन सुरीले रागों में रम कर मैं विषय को भुला कर आनन्द में झूमूँगी ।

४. सार-सुरत अर्थात् मलीन माया से सुरक्षा अथवा हर समय इष्ट देव मालिक के ध्यान में सुरति को जोड़ना ही मेरी चोली होगी, सुमति (अच्छी बुद्धि) की साड़ी पहनूँगी । सहज समाधि के अद्भुत नज़ारों से मेरी बुद्धि के नेत्र खुल जाएँगे और चित्त को (स्मरण शक्ति) लंहगा बना कर हर समय प्रियतम को प्रसन्न करूँगी ।

५. "राम याद" (हमारे श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी का प्रथम नाम) श्री परमहंस दयाल जी फ़रमाते हैं कि मेरी सुरति महारानी इस भक्तिमयी अनुपम वेष-भूषा में सजधज कर अवश्य ही सोती माया अर्थात् सौतिन को धोखा दे देगी और फिर अपने प्राणधन को पाकर, सुहागिन होकर सदा ही सत्त्वगुण में निवास करती हुई रजोगुण और तमोगुण की सम्पूर्ण मैल को धो डालेगी ।

आप ने भक्तिमय इस भजन की रचना कर यह दर्शा दिया कि आप अपने रोम-रोम में दिव्य प्रकाश की आभा लिए हुए थे । जैसे कि कहा गया हैः—

॥ दोहा ॥

दर द्वार दर्पण भया, जित देखूं तित तोय ।
कांकर पाथर ठीकरी, भये आरसी मोय ॥

ओ मेरे प्राणेश्वर ! मेरी काया के सकल द्वार मानो दर्पण रूप बन गये हैं— मैं संसार में जिधर भी देखता हूँ मुझे आप की ही मनमोहिनी छवि दिखाई देती

है। सृष्टि का कण-कण मेरी नज़रों में आप की ही प्यारी छवि को अपने में छुपाये हुए है। अणु-अणु में मुझे आप ही नज़र आते हैं।

आपने सुरत-शब्द-योग के लिये यही उपदेश दिया कि:—

॥ दोहा ॥

कबीर सोया क्या करे, जागि जागि अब जागि ।
जा के संग से बीछुड़ा, ताहि के संग लागि ॥
शब्द बिना सुरत आंधरी, कहो कहाँ को जाय ।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥
लाख कोस जो गुरु बसें, दीजे सुरत पठाय ।
शबद–तुरी असवार हो, पल पल आवे जाय ॥

सुरति तब तक कभी शान्त नहीं हो सकती, जब तक कि उस का योग शब्द से न हो जाए। संसार के अनगिनत शब्द उसे थोड़ी देर के लिये सुख दे सकते हैं, परन्तु पूर्ण शान्ति नहीं। सुरति की सम्पूर्ण व्याकुलता तब तक बनी ही रहेगी जब तक सन्त-सत्पुरुषों की अपनी अकारण कृपा से प्रदान किये हुए नाम-शब्द के साथ उसका मिलाप नहीं हो जाता।

शब्द से बिछुड़ी हुई सुरति ही हाहाकार करती है—उसे हम साँसारिक भोग्य-पदार्थों का लालच दे दे कर चुप कराना चाहते हैं। परन्तु वह अपनी माँ से बिछुड़ी हुई बालिका के समान किसी तरह भी चुप नहीं हो सकती।

गुरुभक्ति मार्ग में प्रियतम और प्रेमिका का सम्बन्ध अत्यन्त गम्भीर, कठिन और कंटीला है, बहुत ही नाज़ुक है नाता। प्रेम के तार बड़े ही भीने भीने होते हैं।

श्री सद्गुरुदेव जी को रिझाने के लिए आवश्यक हो जाता है कि प्रेमी अपनी सुरति का मनमोहक श्रृंगार करे— उसे इतनी सजधज से सजाए—उस के अंग अंग का बनाव ऐसे हो कि प्रियतम के सम्मुख जाते ही इष्टदेव उसे एकटक से देखते

ही रह जाएं। इसी पवित्र भावना को लेकर आलंकारिक रूप से सुरति को भक्ति के गहनों से सजाकर आपने इस उच्चपद के भजन की रचना की।

इस प्रकार एक दिन रात्रि को स्वप्न में आप को गुरुदेव के दर्शन हुए। उस में उन्होंने फ़रमाया कि एक बार तुम्हारे मन में एक स्थान पर बैठ कर भजन करने का संकल्प उठा था किन्तु अब आप द्वारका जी जाने का विचार कर चुके हो, इसलिए जयपुर होते हुए द्वारका जाना। इस प्रकार सन् १८८४ में आप पुनः जयपुर पधारे। वहाँ पर श्री जगन्नाथ जी के मन्दिर में ठहरे। वहाँ से आप लाला महावीर प्रसाद के घर गए। लाला महावीर प्रसाद आप को दारोग़ा रामचन्द्र जी की हवेली में ले गए। यहां आप की भेंट श्री स्वामी आनन्दपुरी महाराज जी से हुई। उन से सत्संग वार्त्तालाप हुआ। इन्होंने स्वयं ही बड़े प्रेम से आप को भजन-अभ्यास की कई युक्तियाँ बतलाईं, जिनका आपको पहले से ही ज्ञान था किन्तु आपने अपने गुरुदेव श्री परमहंस जी केदारघाट काशी वालों के आदेश से किसी पर यह रहस्य प्रकट नहीं किया।

जब श्री स्वामी आनन्दपुरी जी महाराज की आयु लगभग ६० वर्ष की हो गई तो उन के शिष्यों ने देखा कि स्वामी जी का प्रेम श्री परमहंस दयाल जी से अधिक था। उन के शिष्यों में से एक शिष्य लाला महावीर प्रसाद जी ने एक दिन श्री आनन्दपुरी जी के चरणों में विनय की कि महाराज! आपके बाद आप का उत्तराधिकारी कौन होगा? स्वामी आनन्दपुरी जी ने एक कागज़ पर उर्दू में लिख दिया--"परमहंस राम याद को मानो।" उस समय श्री परमहंस दयाल जी निकटवर्ती स्थान पर गये हुए थे। जब स्वामी आनन्दपुरी जी का अन्तिम समय निकट आ पहुँचा तो उन्होंने श्री परमहंस दयाल जी को बुलवा लिया। श्री आनन्दपुरी जी के निजधाम सिधारने के पश्चात् दारोग़ा रामचन्द्र तथा अन्य शिष्यों ने आप के ऊपर एक कीमती दोशाला डाल दिया। आप स्वतन्त्र प्रकृति होने के कारण एक स्थान पर अपने को सीमित रखना पसन्द नहीं करते थे। आप ने श्री स्वामी आनन्दपुरी जी के एक-दो प्रमुख शिष्यों को वहाँ का सेवा कार्य सौंप कर

अपना दामन छुड़ाया। शिष्यों के अत्यधिक आग्रह करने पर आपने फ़रमाया—"हम भजन-पूजन तथा परमार्थ के लिये फ़क़ीर हुए हैं। हम इस समय एक स्थान पर सीमित रहना नहीं चाहते।" इस प्रकार वहां से चलकर स्वतन्त्र रूप में द्वारका की ओर भ्रमण करने लगे।

महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी इत्यादि महापुरुषों ने जब तप की अग्नि में स्वयं को तपा कर भक्ति का कुँदन बना लिया और आत्म-साक्षात्कार के धनी हो गये तो अन्तःप्रेरणा ने इन्हें जन जन के संतप्त हृदयों को शीतलता प्रदान करने का आदेश दिया, तब जा कर इन्होंने परोपकार पथ ग्रहण करके जन जन तक इस निर्विकार ज्ञान, भक्ति के सन्देश को पहुँचाया। इस प्रकार श्री परमहंस दयाल जी जिस महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए संसार में आये थे, उसकी पूर्ति का समय सम्भवतः निकट आ पहुँचा। अन्तःप्रेरणा से आप अठारह वर्ष तक योग साधना कर बिहार प्रान्त से उत्तर-प्रदेश, सी० पी० और राजस्थान में रमता-राम अवधूत के रूप में घूम कर सत्य नाम का अमृत पिलाने के लिये चल दिए।

श्री परमहंस दयाल जी ने अठारह वर्ष वनों में रह कर सुरत-शब्द-योग द्वारा आत्म-साक्षात्कार किया। इन अठारह वर्षों में उन्होंने जो जो कष्ट सहन किये उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। अठारह वर्षों में कितनी ऋतुएँ आईं और अपना रंग छिटका कर चल दीं लेकिन इन को किसी से कोई प्रयोजन न था। सर्दी, गर्मी, वर्षा, ओले, आँधी, तूफ़ान सब कुछ सुकोमल वदन पर सहन किया। अपनी दिव्य मस्ती में लीन श्री परमहंस दयाल जी किसी उत्कृष्टतम लक्ष्य की प्राप्ति में मग्न थे। आपने भक्ति-सम्प्रदाय की नींव साधना से सुदृढ़ की।

यह सब कुछ आपने केवल हम अधम कलियुगी जीवों के उद्धार के लिये ही किया क्योंकि आपने जिस भक्ति-परमार्थ के भवन की नींव रखी, उसी पर आपके अनुयायियों ने श्री आज्ञानुसार जो भवन खड़ा किया, वह आज भी हमारे सामने प्रत्यक्ष रूप में है। ऐसा सरल पथ बनाया, जिस पर सर्वसाधारण जीव भी चल

कर अपना कल्याण कर सकते हैं। आपने गुरुभक्ति के नियमों को सुदृढ़ किया। यही गुरुभक्ति ही इस सम्प्रदाय का मुख्य सिद्धांत एवं उद्देश्य है।

द्वारका से लौटते हुए, इसी भ्रमण के बीच में फिर आप उदयपुर पहुँचे। वहाँ पर अहंकार दमन तथा परोपकार का अद्भुत चमत्कार दिखाया, जिसे देख कर लोग दंग रह गये। आप लाला हज़ारीमल के मकान में ठहरे हुए थे। एक फ़कीर ने नीचे से आवाज़ लगाई—"मैं भूखा हूँ मुझे कुछ खाने-पीने को मिले।" लाला जी का छोटा पुत्र गुरुबख़्श रोटी व पानी ले कर नीचे गया और उस को भोजन दिया। भोजन खा कर व पानी पीकर उस फ़कीर ने बच्चे से कहा कि मुझे लोटा दे दो। बच्चे के इन्कार करने पर फ़कीर ने कहा लोटा नहीं देगा तो मैं तुझे अभी भस्म कर दूँगा। बच्चे ने उत्तर दिया कि यदि तुम मुझे भस्म कर दोगे तो हमारे गुरु जी मुझे जीवित कर लेंगे। श्री परमहंस दयाल जी ने बच्चे को अत्यधिक देर नीचे लगाते हुए देख आवाज़ लगाई। बच्चे ने उत्तर दिया—"यह फ़कीर मुझसे लोटा माँगता है।" आप ने फ़कीर तथा बच्चे को ऊपर बुलाकर वृत्तान्त पूछा व फ़कीर से कहा कि लोटा तो उसके माता-पिता से पूछ कर मिल सकता है। शेष रही भस्म करने की बात तो यह इसे लीजिए और भस्म कीजिए। बच्चा उसके सामने खड़ा कर दिया। वह फ़कीर क्रोधवश हाथ पर कुछ पढ़ने लगा। मन्त्र पूरा हो गया परन्तु मन्त्र का कोई प्रभाव न पड़ा तो आप ने कहा कि लो अब हम मन्त्र पढ़ते हैं। तब फ़कीर ने आप की प्रभावशाली वाणी व दिव्य स्वरूप की शक्ति देख श्री चरणों में क्षमा मांगी। आप ने फ़रमाया—"साधु को अहंकार कदापि शोभा नहीं देता। मालिक की भक्ति कर फ़कीर को भक्ति का धन जमा करना चाहिए, न कि क्रोधवश इन छोटी छोटी बातों में अपनी कमाई को समाप्त कर देना चाहिए। अहंकार तो भक्ति के संचित कोष को शीघ्र ही ख़ाली कर देता है। अपनी भक्ति को सुरक्षित रखने के लिए इस से बचने की नितान्त ज़रुरत है।" यह सुन कर फ़कीर ने नमस्कार कर पुनः क्षमा माँगी और हर्षित होकर वहाँ से चला गया।

एक दिन एक फ़कीर बड़ी शान-शौकत व चमक-दमक की वेष-भूषा पहन कर

आप के समीप आया। आपने फ़रमाया–"यह क्या? आप और ऐसी वेष–भूषा!" प्रेम से उसका कोट उतारा, टोपी उतारी और लम्बा सा चोला पहना दिया। वह फ़क़ीर मस्ती में नाचने लगा। किसी ने कहा कि महाराज! आप ने इस पर कितनी असीम कृपा की? आप ने उत्तर दिया कि अमानत लौटाना और हिस्सा देना एहसान की बात नहीं अर्थात् भूले हुए को मार्ग पर लगाना ही हमारा कर्त्तव्य है।

आपने तो जन-जन में आत्म-ज्ञान की चिनगारी लगानी थी। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप स्थान-स्थान पर भ्रमण करने लगे। सहजयोग, भक्ति, परमार्थ का सन्देश जन-जन तक पहुँचाया। आपने सम्पूर्ण भारतवर्ष के कण-कण में इस ज्योति के प्रकाश को पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया। आप की इस श्री मौज को आप के परम शिष्यों ने पूर्ण रूप से निभाया। परिणामतः आज समूचे भारत में ही नहीं, अपितु विदेश में भी इस अमर-ज्योति की आभा जगमगा रही है। आप आगरा, उत्तर प्रदेश तथा मध्यभारत में ज्ञान की धारा प्रवाहित करते हुए पुनः जयपुर पहुँचे।

यहां श्री परमहंस दयाल जी कुछ समय स्थिर रूप से रहे। पारमार्थिक उपदेश तथा जीवों के कल्याण का कार्य आरम्भ किया। यद्यपि मत की स्थापना आगे चल कर हुई तथापि सत्संग का आरम्भ जयपुर में ही हुआ। यहां बहुत बड़ी संख्या में आपके प्रेमी हुए हैं। इन प्रेमियों तथा सत्संगियों के प्रबल आग्रह से उन्हें परमार्थ लाभ कराने हेतु आप ने यहां रहना स्वीकार किया। श्री अमृत-प्रवचनों से जन-साधारण को मुदित करने लगे। सुन्दर शरीर, अत्यन्त तेजस्वी मुखारविन्द, दिव्य मूर्ति जब भी श्री अमृत-वचन धारा प्रवाहित करते तो प्रकृति स्तब्ध (मौन) हो जाती। दिशाएँ जयकारों की ध्वनि से गुँजित हो उठतीं। देवी देव भी उस तेजस्विनी मूर्ति के सम्मुख सिर झुका शरणागत होने के इच्छुक होते। आप की वाणी में मधुरता तथा आकर्षण और आपका जीवन तप एवं वैराग्ययुक्त होने से प्रभावित करने वाला था। यही कारण था कि सर्वसाधारण स्वयं प्रभावित

हो आप की ओर खिंचे चले आते। आप में भी यह एक विशेष गुण था कि जिस प्रकार का प्रेमी हो उस के साथ वैसा ही व्यवहार करते। यहाँ ऊँच-नीच, अमीर-गरीब का कोई भेद-भाव न था। बस आप तो प्रेम के ही भूखे थे।

एक दिन श्री परमहंस दयाल जी और महन्त रामेश्वर दास जी मोती डोंगरी से वापिस जयपुर जा रहे थे। रास्ते में एक कुम्हार गधे लिये जा रहा था। श्री परमहंस दयाल जी को देख कर उसने बड़े प्रेम से विनय की कि महाराज! आप मेरे घर चलें। आप उसके साथ हो लिए। उस के घर कोई बिस्तर भी न था। उसने एक फटी हुई पुरानी कथड़ी बिछा दी। आप उस पर विराजमान हो गए। कुम्हार ने दो मोटी मोटी जौ की रोटियां तथा एक मिट्टी का प्याला छाछ से भर कर श्रद्धा से आपके आगे रख दिए। आप ने बड़े प्रेम से रोटियां खाईं और छाछ का प्याला भी पी लिया। ज़रा सा टुकड़ा रोटी का महन्त जी को भी दे दिया। परन्तु महन्त जी जाति-धर्म का भेद रखते थे, अतः उन्होंने इसे खाया नहीं, एक ओर रख दिया।

जब निवास स्थान पर आये तो माता जी से महन्त जी ने इस बात की चर्चा की और कहा कि आज तो श्री परमहंस दयाल जी को अवश्य कष्ट होगा। इतना अधिक भोजन खा लिया। उनकी माता जी ने कहा कि फ़क़ीरों के संबंध में अधिक बातचीत करना उचित नहीं, मगर महन्त जी न माने। श्री परमहंस दयाल जी से कहने लगे कि आप घर पर एक छटांक (६० ग्राम) चावल भी मुश्किल से खाते हैं। आज यह जौ की मोटी-मोटी रोटी तथा इतनी छाछ कैसे पी गये? श्री परमहंस दयाल जी ने हँसकर फ़रमाया कि कुम्हार की श्रद्धा पूरी करने के लिए। देखो! कैसी मुहब्बत और नम्रता से उसने बुलाया और खाना खिलाया। यदि उस के घर में न जाते और खाना न खाते तो वह समझता कि साधु लोग अमीरों के यहां जाते हैं और मेवे मिठाइयां खाते हैं। गरीबों से मिलना ही इन्हें अच्छा नहीं लगता और उसका बढ़ता हुआ प्रेम दब जाता। शेष आप ने देख लिया है कि कितने प्रेम से उसने खिलाया और हम ने खाया है। जब दोनों तरफ़ ऐसा प्रेम हो,

तो खाने-पीने की वस्तु क्या; यदि विष भी मिल जाए तो भी कष्ट न होगा। इस प्रकार श्री परमहंस दयाल जी ने यह दिखला दिया कि महापुरुष सदा प्रेम के भूखे होते हैं, धन-सम्पत्ति के नहीं। जिस ने भी प्रेम से, हार्दिक श्रद्धा से भगवान् को पुकारा वे उसी के हो गए। भगवान् सदा अपने प्रेमियों के वश में होते हैं। इसके पश्चात् वह कुम्हार सन्तों की सेवा श्रद्धा से करने लगा।

आप का जीवन त्याग और तपस्या का साक्षात् प्रतीक है। आप परम कृपालु स्वभाव के थे। एक दिन सर्दी की ऋतु में एक जागीरदार साहिब ने एक बहुमूल्य काबुली दोशाला लाकर आप को ओढ़ा दिया। अभी जागीरदार वहीं खड़े थे कि एक फ़क़ीर जो सर्दी से कांप रहा था वहां आया और कहने लगा—'बाबा! जाड़ा लगता है हमें कुछ पहनाओ।' आप ने अपना चोला उतार कर दे दिया और पूछा कि और कुछ? उसने उत्तर दिया कि ओढ़ने की आवश्यकता है। आपने वही दोशाला ओढ़ने को दे दिया और पूछा अब? उसने कहा सिर नंगा है। आप ने अपनी टोपी भी उतार कर दे दी। उसने फिर प्रार्थना की कि टांगें नंगी हैं। आपने धोती उतार कर दे दी और एक लंगोट में ही बैठ गए। आपने पूछा—"कहिए और कुछ चाहिए?" उसने कहा बस, और प्रसन्न हो कर चल दिया। वहां पर जो भक्त बैठे थे उन में से कुछ अपने घरों में भागे भागे गए। कोई आप के लिए चोला ले आया और कोई धोती। इस प्रकार से वहां पर कितने ही चोले और कितनी ही धोतियां इकट्ठी हो गईं। आपने फ़रमाया कि देखो! त्याग में कितनी शक्ति है। एक धोती और चोला त्याग करने से कितने ही वस्त्र मिल गए। कुछ कहने या मांगने की ज़रूरत नहीं, त्याग करो कुदरत स्वयं मददगार बनती है।

श्री परमहंस दयाल जी ने परमार्थ कार्य के लिये सांभर जाना था। एक दिन सायं लगभग चार पांच बजे का समय था। आप कुछ प्रेमियों के साथ जयपुर स्टशेन पर गए। प्लेटफार्म पर अत्यधिक चहल-पहल थी। कारण यह था कि प्लेटफार्म पर वायसराय के आगमन हेतु शामियाने लगाए गए थे। प्लेटफार्म पर छिड़काव किया गया था। वहां पर एक ओर सुन्दर कालीन बिछा हुआ था और

उस पर एक विशेष कुर्सी वायसराय के लिए रखी हुई थी।

इसी समय में आप कुछ प्रेमी भक्तों सहित प्लेटफार्म पर पधारे। दारोग़ा रामचन्द्र जो सरकारी कर्मचारी थे, आप के परम श्रद्धालु थे। वे वायसराय के आगमन तथा स्वागत हेतु प्लेटफार्म पर घूम रहे थे। जब आप को आते हुए देखा तो शीघ्र एक कुर्सी तथा कालीन ले आए। वायसराय की कुर्सी से कुछ दूरी पर सामने ही वह कुर्सी तथा कालीन बिछा दिया। आप को उस पर विराजमान होने के लिए विनय की। आप वहां पर विराजमान हो गए तथा वे स्वयं अन्य प्रेमियों के साथ आप के श्री चरणों में बैठ गए। अन्य कर्मचारी यह देखकर हैरान थे कि दारोग़ा रामचन्द्र जी (जो उच्च पद पर थे) ने यह क्या किया। उधर निर्धारित गाड़ी आने का समय समीप था, इधर दारोग़ा जी श्री दर्शन तथा प्रवचनामृत पान करने में मग्न हो गये। एक एक करके कर्मचारी अपने कमरे से बाहर आकर आपको देखते। अलौकिक छटा को लिये हुये अत्यन्त तेजस्वी स्वरूप में दर्शकों को आपका व्यक्तित्व असाधारण प्रतीत हो रहा था।

नियत समय पर निर्धारित रेलगाड़ी आ गई। श्री परमहंस दयाल जी ने दारोग़ा रामचन्द्र जी को फ़रमाया कि भक्त जी! अब जाओ और स्वागतादि का कार्य करो। वे श्री आज्ञा पा कर वायसराय के स्वागतार्थ रेलगाड़ी तक पहुँचे। जब वायसराय गाड़ी से नीचे उतरे तो सामने की ओर बैठे हुये महान् व्यक्तित्व श्री परमहंस दयाल जी की ओर देखते ही खड़े रह गये। दारोग़ा रामचन्द्र जी से पूछा कि क्या आप इन महापुरुष से कुछ परिचित हैं? तब उसने श्री परमहंस दयाल जी के विषय में कामिल मुर्शिद फ़कीरी वेष में असाधारण व्यक्तित्व का श्रद्धायुक्त परिचय दिया। वायसराय ने यह सुनकर तथा देखकर श्री परमहंस दयाल जी को श्रद्धायुक्त नमस्कार कर के यह कहा कि यह सचमुच कोई महादिव्य व्यक्तित्व वाले सन्त हैं। इसके पश्चात् अपनी कुर्सी पर जा कर बैठ गया।

इस अद्भुत दृश्य को देखकर सभी लोग हैरान थे कि कहां तो वायसराय

के स्वागत के लिये जनता तैयार खड़ी थी और कहां वायसराय ने सब के सामने ही श्री परमहंस दयाल जी का अभिनन्दन एवं अभिवादन किया। महापुरुष जिस पर भी कृपादृष्टि करें वही इस ज्योति को पहचान सकता है। इसके पश्चात् किशनगढ़ वाली गाड़ी आई तो आप उस पर विराजमान होकर सांभर चले गए।

उन दिनों जयपुर राज्य में स्थित साँभर झील पर नमक बनाने का कार्य शासन की ओर से होता था। इसके लिए एक विभाग स्थापित था। इसी शासकीय नमक विभाग में कसबा टेरी ज़िला कोहाट (उत्तर-पश्चिमी प्रान्त) के दीवान भगवानदास जी क्लर्क पद पर नियुक्त थे। दीवान साहिब स्वभाव से ही साधु-सन्तों के प्रेमी तथा सत्संग की लगन रखने वाले भद्र पुरुष थे। जहां कहीं सन्तों के आगमन तथा सत्संग की बात सुन पाते, बड़े चाव से भागे-भागे जाते तथा लाभ प्राप्त करते। दरवेशों के निम्न कथन को वे बहुत मानते थे:—

॥ शेयर ॥

सुहबते—साहिब दिलां कज़ शौक जौ।
फ़र्के—सर पाये बिकुन बा ज़ौक औ॥

पद्यार्थ:—जहां मिले सन्तन की संगति मंगलकारी।
विलम्ब न कीजे, सिर बल जाइये, सहित स्नेह अति भारी॥

अर्थात् साधु सन्तों तथा भद्र पुरुषों की खोज बड़े चाव से करनी चाहिये। जहां कहीं ऐसी संगति (सत्संग) का संयोग प्राप्त हो, वहां पर सिर के भार भी चल कर जाना उचित है।

संयोगवश श्री परमहंस दयाल जी भी कसबा सांभर में पधारे, जो झील सांभर के तट पर स्थित है। जब दीवान साहिब ने यह सुना कि अपने ही नगर में एक परिपूर्ण सन्त महापुरुष विराजमान हैं और सत्संग की धारा प्रवाहित हो रही है; तो तुरन्त आप के श्री दर्शन करने और सत्संग श्रवण करने की इच्छा से

श्री चरणों में उपस्थित हुए। कुछ पूर्व जन्मों के संस्कार और सद्भाव ही ऐसे थे कि दीवान साहिब का श्री चरणों में प्रगाढ़ अनुराग और अचल विश्वास हो गया। दीवान भगवानदास जी के दिल में यह इच्छा थी कि वह क्लर्क से इन्सपैक्टर बन जायें। जब वे श्री चरणों में उपस्थित हुए तो आप ने उनसे कार्य व्यवहार के विषय में पूछा। उन्होंने विनय की कि प्रभो! नमक विभाग में क्लर्क हूँ। आपने निजी मौज में फ़रमाया कि तुम्हें तो इस विभाग में अधीक्षक का पद मिलेगा। कुछ समय बाद यह वरदान फलीभूत हुआ। श्री परमहंस दयाल जी से नामोपदेश ले कर वे भक्ति के पथ पर अग्रसर हुए। उन्होंने अत्यधिक रुचि से शब्द (नाम) की कमाई की। इस प्रकार श्री परमहंस दयाल जी की पावन संगति से दीवान साहिब ने भक्ति-प्रेम का अपार लाभ प्राप्त किया तथा अपनी जन्म भूमि टेरी को कृतार्थ करने के लिए श्री चरणों में विनय की। आप ने फ़रमाया—"फिर कभी जाएंगे।"

जैसे कि ऊपर वर्णन हुआ है कि श्री परमहंस दयाल जी एक स्थान पर स्थिर रहना पसन्द नहीं करते थे; वे तो रमता राम योगी थे। आप ने श्री रामायण में बालकाण्ड में लिखी इस चौपाई को अक्षरशः सत्य सिद्ध किया कि:—

॥ चौपाई ॥

मुद मंगलमय संत समाजू। जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा। सरस्वती ब्रह्म विचार प्रचारा॥
विधि निषेधमय कलिमल हरणी। कर्म कथा रविनंदिनि वरणी॥

॥ श्लोक ॥

साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं फलति कालेन, सद्यः साधु समागमः॥

अर्थः—सन्तों की संगति आनन्ददायिनी होती है, जो संसार में चलता फिरता प्रयागराज है। जैसे प्रयागराज में गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों नदियों का

मिलाप होता है, इसी प्रकार सन्तों के सत्संग रूपी प्रयागराज में भी गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों नदियों का सङ्गम होता है। सन्तों के सत्संग में जो प्रेम भक्ति का अंग होता है, वह गंगा की धारा है। ब्रह्म-ज्ञान सरस्वती तथा कर्म-काण्ड अर्थात् अमुक कर्म करने योग्य है अथवा त्यागने योग्य है ऐसा वर्णन यमुना नदी की धारा है।

सन्तों ने तीर्थ तीन प्रकार के कहे हैं। १–स्थानीय (मुकामी) तीर्थ। २–जंगम तीर्थ ३–घट का तीर्थ। मुकामी तीर्थ वह है जहाँ पर सन्त-महापुरुष प्रकट हो कर किसी आश्रम या सरोवर की स्थापना करते हैं। वहाँ पहुँचने पर मनुष्य के विचारों में स्वयं पवित्रता आनी शुरु हो जाती है। महापुरुषों के श्री चरण–कमलों की रज के जो कण उड़ते हैं वे वायुमण्डल को पवित्र बना देते हैं। जैसे अग्नि के समीप गर्मी तथा जल के समीप शीतलता अनुभव होती है; उसी प्रकार सन्त–महापुरुषों की समीपता में शान्ति, आनन्द तथा प्रसन्नता का मिलना स्वाभाविक है।

दूसरा तीर्थ है जंगम—जब सन्त–महापुरुष एक स्थान से दूसरे स्थान पर जीव–कल्याण हेतु पधारते हैं तो वह जंगम तीर्थ कहलाता है। दूर व समीप से भाग्यशाली जीव आकर दर्शन करते हैं तथा सत्संग लाभ प्राप्त करते हैं। यह जंगम अर्थात् चलता फिरता तीर्थ दूर दूर देशों में जा कर तथा स्थानों पर पहुँच कर जन–जन को स्नान कराता हुआ पापों को हरता है।

तीसरा है घट का तीर्थ–जब सन्त महापुरुष अपनी शरण में आये हुए जीवों को रूहानी उपदेश की दात बख़्शते हैं और जीव की बाह्य पदार्थों से सुरति हटा कर ब्रह्माण्ड देश में ठहराने का उपाय बताते हैं और साधक लक्ष्य पर सुरति ठहराना सीख जाता है तो यह घट तीर्थ का दर्शन कहलाता है। जैसे प्रयागराज में तीन नदियों का संगम होता है, वैसे ही घट में इड़ा, पिंगला, सुषुम्णा तीनों नाड़ियों का मिलाप होता है। जिस का पूर्ण रहस्य सन्त–सद्‌गुरु ही बता सकते

हैं। जिसने इस तीर्थ में स्नान कर लिया, वह मालिक का प्यारा बन गया।

श्री परमहंस दयाल जी तीनों तीर्थों के सिरमौर थे। आप ने टेरी में आश्रम की स्थापना कर मुकामी तीर्थ बनाया तथा रमता राम होने के कारण बिहार, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान तथा सीमा प्रान्त के नगर–नगर में जाकर सहजयोग और भक्ति का पथ दर्शा कर सर्वसाधारण को जंगम तीर्थ में स्नान कराया। शरणागत सेवकों को ऐसे वैराग्य का उपदेश दिया कि संसार को एक क्षण निहारने के लिये भी उन के नयन नहीं चाहते थे। सहस्रों लोगों ने इस घट–तीर्थ का स्नान किया और कृतकृत्य हो गए। उन में से प्रमुख इसी मत के द्वितीय जानशीन श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज हुए। इन्होंने श्री परमहंस दयाल जी की प्रत्येक मौज व आज्ञा में तनिक भी असावधानी न की अपितु जी–जान से सर्व कठिनाइयों को सहन किया, तभी तो आप ने उन को अपना ही रूप बना लिया। इन के अतिरिक्त इस मत के तृतीय उत्तराधिकारी श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज भी आप के अनन्य शिष्य थे। इन का पावन जीवन चरित्र आगामी पृष्ठों पर मिलेगा।

दीवान भगवान दास जी जिन का वर्णन पीछे हो चुका है, कसबा टेरी, ज़िला कोहाट (सीमाप्रान्त) में इन का जन्म हुआ। श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में इन्होंने वहीं साँभर में ही यह विनय की थी—"कृपालु प्रभो! इस स्थान (टेरी) को भी पवित्र कीजिये।" सेवक के आग्रह पर आप टेरी सन् १६०४ में पधारे। यह वही पवित्र स्थान है जहाँ इस सम्प्रदाय (मत) की स्थापना की गई और सत्संग का प्रारम्भिक महान् केन्द्र वहीं स्थापित हुआ। इसी केन्द्र के सत्संग से सत्संग प्रचार के वास्तविक कार्यों को यथार्थ रूप में उन्नति तथा प्रगति प्राप्त हुई। साथ में यह वह भाग्यशालिनी तथा सुकर्मण्य भूमि थी जहाँ पर इस सम्प्रदाय के द्वितीय महा सम्राट् श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज प्रकट हुए और दो महान् आत्माओं अर्थात् श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी व श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री द्वितीय पादशाही जी का संगम

हुआ। वास्तव में आप अपने परम हितैषी निज-रूप शिष्य श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज को मिलने आए थे। दीवान जी का आग्रह तो केवल निमित्त था।

श्री परमहंस दयाल जी से श्री सद्गुरु देव श्री दूसरी पादशाही जी का मिलाप

श्री सद्गुरु देव जी महाराज श्री दूसरी पादशाही जी टेरी स्थान में अवतरित हुए। बाल्यकाल से ही इन की स्वच्छन्द प्रकृति थी तथा अपने ही दिव्य आनन्द में लीन रहते थे। बचपन में ही पर्वतों की कन्दराओं में बैठे रहना तथा आत्म-स्वरूप का अलौकिक आनन्द प्राप्त करते रहना इन का नियम था। यह जन्मजात अवतारी विभूति थे। अतः जब सन् १९०४ ई० में श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी महाराज दीवान भगवान दास जी के साथ टेरी पधारे तब वहां सत्संग उपदेश की पावन धारा निरन्तर बहाने लगे।

जब उन (श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री दूसरी पादशाही जी) को पता चला कि एक परिपूर्ण महापुरुष टेरी में ही पधारे हैं तो उनके दिल में भक्ति-भावनाएँ जो पहले से ही उमड़ती रहती थीं मचल उठीं। सुनते ही श्री दर्शनों के लिए श्री चरणों में जा पहुँचे। ज्यों ही श्री परमहंस दयाल जी के सामने उपस्थित होकर वन्दना की, त्यों ही श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया—"भैय्या आ गए! हम आपके लिए ही यहाँ आए थे।" श्री स्वामी जी श्री दूसरी पादशाही जी ने मस्तक झुकाया। उस समय श्री स्वामी जी श्री दूसरी पादशाही जी ने श्री परम हंस दयाल जी से विधिवत् गुरु-दीक्षा भी ली। श्री गुरु आज्ञा में निज जीवन ढाला और स्वकीय ध्येय को सफलतापूर्वक प्राप्त किया। परम श्रद्धेय इस महान् आत्मा का सम्पूर्ण विवरण उनके जीवन चरित्र में आगे दिया गया है।

सन्त महापुरुष अपनी मौज में आकर कई प्रकार की लीलाएँ करते हैं जिन

का रहस्य जानना सामान्य बुद्धि से परे की बात है। एक बार टेरी में श्री परमहंस दयाल जी महाराज सत्संग-उपदेश कर रहे थे कि उनके दिल में यह ख़्याल आया देखें! यहाँ इतने प्रेमी गुरुमुख एकत्रित हुये हैं इनके दिल में किस प्रकार की भक्ति व प्रेम है। सत्संग उपरांत आपने प्रत्येक सत्संगी व गुरुमुख प्रेमी से यह वचन फ़रमाए कि आप जो कुछ चाहते हैं मांगो। इस प्रकार एक एक से पूछा—"अच्छा, आप क्या चाहते हो?" किसी ने समाधि लगाने के विषय में विनय की, किसी ने शब्द सुनने की इच्छा प्रकट की। इस प्रकार क्रम से सब ने अपनी अपनी इच्छा व्यक्त की। श्री परमहंस दयाल जी भी उसी अनुरूप युक्ति बतलाते जा रहे थे। अन्त में जब सब से पूछ चुके तो एक कोने में एक व्यक्ति दुबका हुआ बैठा था। उस पर कृपा-दृष्टि हुई। श्री परमहंस दयाल जी ने उस ओर संकेत कर कहा—"कहो साहिब! आप क्या चाहते हो?" उसने फ़ारसी में यह शेयर पढ़ा कि:—

॥ श्लोक ॥

न जाह—ो—जलाल किबरया मे ख़्वाहिम।
न दर्द तुरा हेच दवा मे ख़्वाहिम॥
हर कस ज़ोरे तू मतलबे मे ख़्वाहिद।
मा खस्ता दिलां अज़ तू तुरा मे ख़्वाहिम॥

अर्थः—प्रेमी ने विनय की—'ऐ मेरे इष्टदेव, मेरे मालिक! मैं आप से बड़ाई या मान अथवा ऐश्वर्य के सामान (जाहो जलाल) नहीं चाहता। मैं आप से अपने दर्द के लिये कोई दवा (औषधि) भी नहीं मांगता कि मेरे दुःख दर्द का इलाज करो। इन दुःखों को दूर करो। दुनिया का प्रत्येक प्राणी आप से अपनी विवशता प्रकट कर अपना स्वार्थ सिद्ध कराना चाहता है। लेकिन ऐ मेरे प्यारे! यह (दास) तो केवल तुम से तुम्हीं को ही मांगता है, किसी और वस्तु की इच्छा नहीं है।'

तब श्री परमहंस दयाल जी ने मुस्कराते हुए उस प्रेमी पर कृपा भरी दृष्टि

से देखा और फ़रमाया—"ठीक है, रुहानियत में सब से उत्तम एवं श्रेष्ठ मांग यही होती है। सच्चे प्रेमी की यही भावनाएं हुआ करती हैं। जैसी जिसकी भावना हो उसे तद्नुरूप फल मिलता है।" इन श्री अमृत प्रवचनों को श्रवण कर तथा श्री परमहंस दयाल जी की दिव्य ज्योति के दर्शन करते हुए उस प्रेमी ने अपने अन्दर एक दिव्य तेज आलोकित होते हुए पाया। इस प्रकार कृतार्थ हो मुक्त कण्ठ से आप की महिमा गाने लगा।

अर्थात् जो सच्चा प्रेमी होता है उसे दुनिया की किसी वस्तु से प्रयोजन नहीं है। उसे वास्तव में जीवन के वास्तविक गूढ़ रहस्यों का पता चल जाता है। अतः वह मालिक से केवल उसी को ही मांगता है क्योंकि जब मालिक ही अपना बन गया तो उस की दासियां (ऋद्धियां सिद्धियां) स्वयं उस के श्री चरणों में आ जाती हैं। माया, मायापति की दासी है। इसके विपरीत यदि माया की इच्छा करो तो यह अपनी नहीं बनती। अन्त में धोखा दे देती है। अतः सच्चा प्रेमी वही है जो केवल अपने इष्टदेव मालिक के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता। सन्त-महापुरुष तो दयालु होते हैं। वे अपनी कृपा से सब का दामन भरते हैं। अब यह जिज्ञासु की अपनी भक्ति-भावना पर निर्भर है, जितना पात्र होगा उतना ही ग्रहण कर सकेगा। क्या सुन्दर उत्तर दिया उस प्रेमी ने—"आप के सिवाय मुझे कुछ नहीं चाहिये।" जिस दिल में सद्गुरु का निवास हो गया वहां कमी किस चीज़ की शेष रह गई? ध्यान, समाधि, साधन, संयम सब उसी में समा गये। इसीलिये जिज्ञासु को सर्वदा अपने मालिक से उसी को ही मांगना उचित है।

वैसे तो महापुरुष परा-विद्या के स्वामी होते हैं। वे सर्वगुण सम्पन्न तथा जन्म से ही अवतारी विभूति होते हैं। वे किसी से ज्ञान लेते नहीं अपितु देने के लिये आते हैं। फिर भी सांसारिक दृष्टिकोण से वे स्वयं वही कार्य करते हैं जिस पर संसार चल सके। इसी प्रकार श्री परमहंस दयाल जी ने अवतारी विभूति होते हुए भी संसार के सामने यह आदर्श रखा कि लोग कैसे बड़े बनें और महान्

बनने के लिये क्या किया जाए व कैसे करना चाहिये ? आप फ़रमाते थे कि:—

॥ शेयर ॥

तवाज़ा को ज़मीं से हम ने पाया ।
हिल्म का सबक मुर्दा ने पढ़ाया ॥
सख़ावत का सबक पाया अब्र से ।
छुपाना ऐब का शब ने सिखाया ॥
सब्र का सबक आतिश ने पढ़ाया ।
हवा ने लफ़्ज आज़ादी सुनाया ॥
मुरव्वत का सबक लिया शजर से ।
तराज़ू से अदल का हुनर पाया ॥
करो इख़लास सब से एक जैसा ।
महताबां ने यह नुस्ख़ा पढ़ाया ॥

१. तवाज़ा को ज़मीं से हम ने पाया ।

अर्थात् तवाज़ा—ख़ातिरदारी या आदरभाव । सम्मान देने का गुण धरती से लिया है । इस का अर्थ यह है कि धरती में इतनी सहनशीलता है कि सब प्रकार की वनस्पतियां, अनाज ज़मीन पर पैदा होते हैं । समग्र विश्व के लोग इस से अपना पालन-पोषण करते हैं । ज़मीन पर कोई कुआं खोदता है, कोई मकान बनाता है, कोई गड्ढे खोदता है, धरती से सब को सब तरह से आराम मिलता है, किन्तु वह किसी को भला बुरा नहीं कहती । ज़मीन पर बग़ीचे लगाओ अथवा कांटे लगाओ, धरती की ओर से किसी को आपत्ति नहीं होती । मतलब यह है कि धरती सब का आदर समभाव से करती है । क्योंकि कहा भी है कि:—

॥ दोहा ॥

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय ।
कुटिल वचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥

इसीलिये सन्त-महापुरुष उपदेश देते हैं कि ऐ जिज्ञासु! अपने आप को ज़मीन की तरह बना। अपने अन्दर सहनशीलता का इतना गुण भर दे कि कभी किसी के प्रति कोई भी बुरा शब्द नहीं निकले और न ही दिल में किसी प्रकार का बुरा या कमज़ोर ख़्याल ही आवे। धरती से यह शिक्षा मिलती है जिसे सन्त-महापुरुष अपनाते हैं और उच्च पद प्राप्त करने के अभिलाषी को भी इस गुण को अपनाने का उपदेश देते हैं।

२. हिल्म का सबक मुर्दा ने पढ़ाया।

हिल्म कहते हैं—हलीमी, नम्रता, आजज़ी। जैसे मृतक शव को जिस जगह रखो, जहाँ रखो, ज़मीन में दफनाओ या जलाओ अथवा नदी में प्रवाहित करो, वह कुछ भी नहीं कहता। इसी तरह ऐ जिज्ञासु! तुम्हें भी मुर्दे से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि सद्गुरुदेव जी जो कुछ भी कहें, जैसे कहें, उन वचनों को शिरोधार्य कर उन पर आचरण करना चाहिये। अपने मन में, अपने ख़्यालों में, अपने व्यवहार में इतनी नम्रता लानी चाहिये कि हमेशा छोटा बन कर नम्र भाव से परमार्थ के पथ पर रहने में ही लाभ है। जिसने अपने आप को छोटा माना उस ने ही सब कुछ प्राप्त कर लिया। सन्त सहजो बाई जी ने कहा है कि:—

॥ दोहा ॥

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे नांव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पांव॥

मनुष्य के शरीर के अंगों में सिर, मुँह, नाक, कान ये उच्च पद पर स्थित हैं, परन्तु पांव नीचे होने के कारण सब कोई पांवों (चरणों) की ही पूजा करता है। चरणोदक और चरण-रेणु ही सर्वश्रेष्ठ मानी जाती हैं। इसी प्रकार सन्त कबीर साहिब जी ने भी लिखा है कि:—

॥ दोहा ॥

ऊँचे पानी न टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भर पिवै, ऊँचा प्यासा जाय॥

प्रकृति के नियमानुसार पानी हमेशा नीचे की ओर ही बहता है व नीचे स्थान पर स्थिर रहता है (ठहरता है)। ऊँची जगह पर पानी नहीं ठहरता। पानी पीने के लिये मनुष्य को नीचे झुकना पड़ता है। इस तरह से जिस ने नम्रता ग्रहण की वही सब कुछ प्राप्त कर सकता है। फल लगने पर डाली हमेशा झुक जाती है। नम्रता आने पर सभी गुण स्वयं आने आरम्भ हो जाते हैं।

३. सख़ावत का सबक पाया अब्र से।

सख़ावत कहते हैं उदारता या विशाल दिल को। अब्र=बादल। बादल में उदारता (परोपकार) का गुण सर्वश्रेष्ठ है। जैसे बादल निःस्वार्थ भाव से सब जगह पानी बरसाता है। बादल के लिये बंजर, उपजाऊ, अनुपजाऊ अथवा अत्यधिक उपजाऊ, कल्हड़, पहाड़ी, चट्टानी, मैदानी, तालाब, नदी, नाले सब बराबर हैं। बादल सब पर बिना किसी स्वार्थ के सम भाव से बरसता है। बादल में एक विशेष गुण यह भी है कि वह समुद्र से खारा पानी लेकर मीठे जल के रूप में बरसता है। इसी प्रकार बादल की तरह ऐ जिज्ञासु ! तू भी केवल उपकार करना ही सीख।

॥ दोहा ॥

देह धरे का गुण यही, देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह से देह ॥

अर्थात् इसी जन्म में जो कुछ करना है कर ले। परोपकार कर ताकि अपने ध्येय को पा सके। कोई तेरे साथ जैसा भी व्यवहार करे तू उसके साथ अच्छा व्यवहार ही कर। नेकी कर दरिया में डाल। अपने दिल में किसी से बड़ा बनने की इच्छा न रख।

४. छुपाना ऐब का शब ने सिखाया।

ऐब कहते हैं बुराई को और शब अर्थात् रात्रि। रात्रि सब की बुराइयों पर पर्दा डालती है। अपराधी अपराध करे, चोर चोरी करे अथवा कोई कुछ भी करे

परन्तु रात्रि का अन्धेरा सब कुछ छुपा लेता है। वैसे तो प्रकृति की ओर से अच्छे-बुरे कर्मों का फल देने का प्रबन्ध है।

॥ शेयर ॥

कौन कहता है कि ज़ालिम को सज़ा मिलती नहीं।
नेक कामों की भला किस को जज़ा मिलती नहीं॥

अच्छे बुरे किये हुए कर्मों का फल कर्म अनुसार सब को मिल जाता है, परन्तु रात्रि यही सिखाती है कि किसी की बुराई का भेद न खोलो। इसीलिये ऐ जिज्ञासु! तेरा इतना विशाल दिल और गम्भीर स्वभाव हो, किसी की छोटी छोटी ग़लती पर ध्यान न दे। दूसरे के दोषों को गिनना अच्छा नहीं है। अपने अवगुणों की तरफ़ देख।

॥ दोहा ॥

दोष पराया देख कर, चलै हसन्त हसन्त।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अन्त॥

मनुष्य यदि अपने अन्तर्मानस में झाँक कर देखे तो पता चलता है कि स्वयं में कितने अवगुण हैं। इसीलिए अपने सुधार की चिन्ता करनी चाहिये।

५. सब्र का सबक आतिश ने सिखाया।

सब्र कहते हैं सन्तोष व धैर्य को। आतिश अर्थात् आग। जिस प्रकार आग में ईंधन फैंकने पर आग उसे जला कर राख बना देती है। आग में जो भी वस्तु डालो वह उस में जल जाती है। इसी प्रकार मनुष्य को सन्तोष पूर्वक ज़िन्दगी व्यतीत करनी चाहिये। रूखा-सूखा चिकना जैसा भी मिले उस पर सन्तोष रखना चाहिये। सदा प्रसन्नचित्त मालिक के भजन में लीन रहना चाहिये। ज्ञान रूपी अग्नि को जला कर उस में तृष्णा, लोभ, संकल्प-विकल्पों की लकड़ियां झोंक दे ताकि वे इस अग्नि में जलकर राख हो जाएं और जीव चौरासी लाख योनियों के

चक्र से बच जाये। प्रारब्ध तो अवश्य मिल जाएगी। यदि इन्सान इच्छाओं को बढ़ाता जाए तो वह स्वयं दुःख रूप बना रहेगा क्यों कि:—

॥ दोहा ॥

कर्म कमंडलु कर गहै, तुलसी जहँ लगि जाय।
सरिता सागर कूप जल, बूँद न अधिक समाय॥

अर्थात् अपने प्रारब्ध को अपनी भाग्य की रेखाओं में बन्द किये हुए जीव जहां भी जाएगा उसे अपने पिछले किए हुए कर्मों का फल तो अवश्य ही मिलना है सो वही मिलेगा। तृष्णा जीव को अपने प्रारब्ध पर राज़ी नहीं रहने देती। इसीलिये जीव सदा दुःखी बना रहता है। सुख उसके मानो भाग्य में ही नहीं। यदि अपने प्रारब्ध पर प्रसन्न रहे तो उसे पता चले कि कितना सुखी है। ऐ जिज्ञासु! तू भी अपने प्रारब्ध पर सन्तोष रख कर मालिक की भजन बन्दग़ी में दिल लगा ताकि सुखमय बन सके।

६. हवा ने लफ़्ज़ आज़ादी सुनाया।

अर्थात् हवा ने आज़ाद रहने का सन्देश दिया। आज़ाद=रूह की स्वतन्त्रता। वसे आज़ादी का अर्थ होता है मुक्त होना। मुक्ति उस समय मिलती है जब रूह पर किसी प्रकार का बन्धन न हो। मनुष्य की रूह जो काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार आदिक बन्धनों में बँध चुकी है। हवा कहती है कि जैसे मैं स्वतन्त्र हूँ वैसे तुम भी रूह को इन बन्धनों से आज़ाद करो। परन्तु यह रूह आज़ाद हो कैसे?

॥ दोहा ॥

बन्धे को बन्धा मिलै, छूटे कौन उपाय।
कर सेवा निरबन्ध की, पल में लेत छुड़ाय॥

यह जीव तो माया मोह के बन्धनों में जकड़ा हुआ है जिसे समय के सन्त

महापुरुष जोकि स्वयं इन बन्धनों से मुक्त होते हैं, वही जीव को आधि, व्याधि, उपाधि त्रय तापों से मुक्त करा सकते हैं, अन्यथा जीव इन विकारों से निकलने के लिये स्वयं समर्थ नहीं है। सन्त-महापुरुष जिस भक्ति पथ को दर्शाते हैं वे भी यही कहते हैं कि भक्ति स्वयं स्वतन्त्र है। इस मार्ग पर चलने से ही जीव स्वतन्त्र हो सकता है क्योंकि जो स्वयं आज़ाद (बन्धन मुक्त) होगा वही बन्धन में पड़े हुए को छुड़वा सकता है। जो स्वयं बन्धन में पड़ा हुआ हो वह दूसरों को कैसे छुड़वाएगा। अतः सन्त–सद्गुरु की शरण में आकर ही जीव बन्धन से मुक्त हो सकता है। इसलिए ऐ जिज्ञासु ! बन्धन से मुक्त होने का साधन कर। सन्त महापुरुषों की संगति को शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त कर, तभी तो माया के बन्धनों से आज़ाद हो सकेगा।

७. मुरव्वत का सबक लिया शजर से।

मुरव्वत का अर्थ है हमदर्दी (लिहाज़) शजर कहते हैं वृक्ष को। सन्त महापुरुषों ने वृक्ष को परमार्थ की श्रेणी में गिना है। वृक्ष, तालाब, मेघ तथा सन्त जन ये संसार में परमार्थ के लिये ही आते हैं। ये लोगों को लाभ ही पहुँचाते हैं। वृक्ष के विषय में पंजाबी कवि ने लिखा हैः—

बन्दे कोलों रुख चंगेरा, जेहड़ा लग पवे बिन लायों।
ढीमा खाये ते फल खवाये, अते फरक न करदा छायों ॥
चंगा खावें ते चंगा पहने, अते रब्ब दा नाम भुलायों।
आख ग्वाला मोयां जीवंदीया, तू केहड़े कम्म आयों ॥

अर्थात् वृक्ष का यह स्वभाव होता है कि वे जंगलों में तो बिना उगाये ही उगते हैं कुदरत की ओर से। कहीं कहीं पर स्वयं लगाने पड़ते हैं। फिर उसके स्वभाव की विशेषता का वर्णन करते हैं कि जब उस पर फल लगता है तो वह नीचे की ओर झुक जाता है। लोग उस को पत्थर मारते हैं और वह उन पत्थरों के बदले में मीठे, स्वादिष्ट फल प्रदान करता है। जिसके सेवन से स्वास्थ्य बनता है। वृक्ष

के पत्तों से झोंपड़े बनाये जाते हैं, खाद बनाई जाती है। वृक्ष की लकड़ी मकानों में घरेलू वस्तुओं अर्थात् मेज़, कुर्सी, चारपाई, आग जलाने आदि के प्रयोग में लाई जाती है। किसी कवि ने तो इतने तक कहा है कि मनुष्य का जन्म, यौवन, प्रौढ़ावस्था, बुढ़ापा और अन्तिम मृत्यु समय तक लकड़ी से ही सम्बन्ध है। जन्म के बाद शिशु का झूला, कुछ बड़ा होने पर बाल्यावस्था में तख़्ती, खेलने का सामान, यौवन में ठाठ-बाट के लिये लकड़ी का सोफ़ा, मेज़, कुर्सी आदि एवं बुढ़ापे में लाठी के सहारे चलना, अन्तिम समय दाह संस्कार भी लकड़ी से होना अर्थात् आदि से अन्त तक मनुष्य का लकड़ी से सम्बन्ध होता है। यह लकड़ी ही वृक्ष का दूसरा नाम है।

सम्पूर्ण जीवन ही मनुष्य का लकड़ी से सुखदायी बनता है। विचार किया जाए तो वृक्ष को अपने तन से कोई स्वार्थ नहीं। वह कटने के लिये कभी निषेध नहीं करता चाहे उसे कोई कुल्हाड़ी से काटे अथवा आरे के नीचे रख कर। चाहे किसी जाति का मनुष्य उस की छाया में बैठ जाए वह सब को छांव देता है। उसके लिये ऊँच-नीच सब बराबर हैं। इसी प्रकार ऐ जिज्ञासु! अपने जीवन को वृक्ष की न्याईं परमार्थी बना। क्योंकि कहा भी जाता है:—

॥ दोहा ॥

भले से भला करे, यह जग का व्यवहार।
बुरे से भला करे, ते विरले संसार॥

सर्व साधारण का यही स्वभाव होता है कि जो भलाई करे, उसके साथ ही भलाई (उचित-व्यवहार) करते हैं परन्तु जो बुराई करने वाले के साथ भी भलाई करे वे मनुष्य संसार में कोई कोई ही मिलते हैं। वृक्ष उन में से एक है।

८. तराज़ू से अदल का हुनर पाया।

अदल—इन्साफ़ या न्याय करना। यह तो सबको विदित ही है कि तराज़ू

सब को न्याय सिखाता है। ज़रा सी वस्तु घट बढ़ जाने पर पलड़ा नीचे ऊपर हो जाता है। इसी तरह प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा की तुलना दूसरों से करनी चाहिये। इस का अर्थ यह है कि जिस काम को तुम स्वयं अच्छा नहीं समझते, जो तुम्हें स्वयं अच्छा न लगे, ऐसा व्यवहार दूसरों के लिये मत करो। दूसरों को अपने से हीन समझना अपनी ही हीनता है।

॥ शेयर ॥

हर चे बर खुद न पसन्दी, ब दीगरां म पसन्द ॥

जैसा व्यवहार तुम अपने साथ चाहते हो वैसा दूसरों से करो।

६. करो इख़लास सब से एक जैसा। महताबां ने यह नुस्ख़ा पढ़ाया॥

इख़लास=व्यवहार, बर्ताव, महताबां=चाँद। जैसे चाँद सब के साथ सम भाव से व्यवहार करता है अर्थात् सब को समान रूप से रोशनी तथा ठंडक प्रदान करता है, इसी तरह जीव (इन्सान) को भी इससे यह पाठ पढ़ कर शिक्षा लेनी है कि सदा दूसरों के साथ मीठा बोलो, सरल स्वभाव से दूसरों के दिल पर ऐसा प्रभाव डालो कि वह ज़िन्दगी भर भूलने न पाए। जैसे चांद की रोशनी से भूले भटके प्राणी को रोशनी प्राप्त होती है इसी प्रकार ही पथ-प्रदर्शक बन कर दूसरों को मार्ग दिखाओ। ऐ जिज्ञासु! यदि तुझे ध्येय प्राप्ति की अभिलाषा है तो सब के साथ समान भाव, निःस्वार्थ व्यवहार कर तभी तू मंज़िल पर पहुँच सकेगा। कितना परमार्थ भरा है एक एक पवित्र वचन में।

श्री परमहंस दयाल जी फ़रमाते हैं कि ऐ जिज्ञासु! प्रकृति की प्रत्येक जड़ वस्तु भी तुझे शिक्षा प्रदान करती है। तू उन से शिक्षा लेकर अपने जीवन को तदनुरूप आचरण में ढाल। हम ने भी इन जड़ वस्तुओं से शिक्षा ग्रहण कर जीवन को उनकी शिक्षानुसार बनाया तभी अपने ध्येय को प्राप्त कर सके हैं और सदा सन्त महापुरुष इसी मार्ग पर ही चलते आए हैं और चलेंगे। परमार्थ, परोपकार, समदृष्टि,

न्यायोचित व्यवहार, सचाई तो उन के मुख्य नियम व सिद्धान्त हैं जिन पर वे चल कर सन्त महापुरुषों की पदवी प्राप्त करते हैं। अतः आचरण ही जीवन है। आचरण ही ध्येय प्राप्ति का एक मात्र साधन है। इसी मार्ग को अपना कर मंज़िल पर पहुँच जाओ।

टेरी तथा सीमाप्रान्त को कृतार्थ कर आप आगरा में गए और कई वर्ष कृष्ण-द्वारा आगरा में रहे। आप आगरा से कई बार परमार्थ-भक्ति का सन्देश देने के लिये अन्य स्थानों पर भी जाते थे। इस प्रकार आप एक बार आगरा से गोपाल नगर पधारे। वहां नगर के सभी स्त्री-पुरुष सत्संग में आये। इस शोभा का वर्णन लेखनी द्वारा नहीं हो सकता। वहां तो साक्षात् बैकुण्ठ का दृश्य था। अमृत वचन सुनकर सब के हृदय की तपन दूर हो गई। उस नगर का सेठ जिस का नाम करोड़ी मल था, सत्संग में आया हुआ था। जैसा उसका नाम था, उतना ही उसके पास धन था। घर में एक वृद्ध माता भी थी, जो सत्संग में न जा सकती थी। सेठ जी ने श्री चरणों में प्रार्थना की कि श्री महाराज जी! हमारे घर को भी अपने चरणों से पवित्र कीजिये। आपने उसकी श्रद्धा व नम्रता को देख कर यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। जब आपने सेठ के घर कृपा की तो सेठ जी ने अपनी माता जी के कमरे में आप का सिंहासन बनाया। जब उस पर आप विराजमान हुए तो ऐसे शोभा दे रहे थे कि उसके सामने इन्द्रासन भी लजा रहा था। आपने वहाँ वचन फ़रमाये कि इस जीव का सच्चा साथी सद्गुरु और उनका शब्द है। इसके अतिरिक्त संसार की कोई भी वस्तु जीव का साथ नहीं दे सकती। नाम अर्थात् शब्द की कमाई से ही जीव वास्तविक आनन्द को प्राप्त कर सकता है। नाम से जन्म-जन्मान्तरों का कलुषित मन साफ़ हो जाता है।

॥ दोहा ॥

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बन्धन मोह॥

वास्तविक पूँजी नाम है। यह नाम पारसमणि है, मन लोहे के समान है।

जैसे पारसमणि लोहे को स्पर्श करते ही सोना बना देती है इसी प्रकार मन (लोहा) भी नाम से स्पर्श करते ही सोना बन जाता है अर्थात् मोह के बन्धन टूट जाते हैं। मन स्वयं इस शब्द में लगना आरम्भ हो जाता है जिससे ज़िन्दगी में एक अनूठे आनन्द का अनुभव होने लगता है।

संसार की कोई भी वस्तु परलोक में साथ नहीं जा सकती। यहाँ तक कि अपना शरीर भी यहीं रह जाता है। परन्तु सद्गुरु द्वारा दिया हुआ शब्द एवं इस शब्द की कमाई ही साथ जाने वाली है। इस प्रकार बहुत समय तक प्रवचन होते रहे। सत्संग की समाप्ति पर घर के सभी सदस्यों ने 'नाम' की दीक्षा माँगी और आपने उनकी श्रद्धा व प्रेम देख कर उन्हें नाम दान देने की कृपा की। आप के अनुपम दर्शन तथा सच्चे नाम से प्रभावित होकर सेठ जी की वृद्ध माता को बहुत आनन्द आया और उस की सुरति ध्यान में लीन हो गई। उस संस्कारी आत्मा की सुरति जब शब्द में जुड़ गई तो वह 'सच खण्ड' के नज़ारों में मग्न हो गई। सेठ जी की माता जी जब 'धुरधाम' का दृश्य देखकर वापिस इस पिण्ड देश में आई तो आप पर बलिहार बलिहार जाने लगी और कहने लगी कि "हम जीव कितने भाग्यशाली हैं कि आज स्वयं खण्डों ब्रह्मण्डों के मालिक हमारे घर में चल कर आये हैं। ऋद्धियाँ सिद्धियाँ जिन के आगे हाथ बाँधे खड़ी हैं। सब देवी देवता जिन की सेवा के इच्छुक हैं।" सेठ जी ने श्री चरणों में विनय की कि भगवन्! यह कमरा जिस में आप विराजमान हैं वह आप अपना ही समझिये और हमारी यह इच्छा है कि हम प्रतिदिन यहाँ आप की आरति व भजन-अभ्यास किया करें। आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर फ़रमाया—"ठीक है।"

श्री परमहंस दयाल जी श्री पावन वचनों की वृष्टि कर अन्यत्र चले गए। तीन दिन पश्चात् अचानक ही सेठ जी की माता स्वर्ग सिधार गई। सेठ जी को अत्यन्त शोक हुआ। उनके दिल में तरह-तरह के संकल्प उठने लगे।

इसी शोक युक्त विचार में जब सेठ जी को रात्रि समय नींद आई तो क्या

देखते हैं कि श्री परमहंस दयाल जी हीरे लाल जवाहरात जड़ित सिंहासन पर विराजमान हैं, जिस के आगे अनेकों सूर्य की ज्योति भी लजाती है। ऐसे दिव्य सिंहासन के समीप सेठ जी की माता जी श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों की ओर बैठी हैं। सेठ जी ने श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! मेरे माता जी तो आप के सुकोमल चरण छत्रच्छाया में मुस्करा रही हैं और हमें इन का अत्यन्त शोक हुआ है। आपने फ़रमाया सेठ जी! तुम्हारी माता जी उच्च संस्कारी आत्मा थी। नाम-दीक्षा से ही इसकी सुरति ब्रह्माँड में शीघ्र ही पहुँच गई थी। इसने सुरति को सद्गुरु के प्रेम के अटूट बन्धन में बाँध दिया था अतः इसे अपनी कमाई और भावनानुसार श्री चरणों में स्थान मिला है। इस के बाद सेठ जी की नींद खुल गई।

सेठ जी ने यह स्वप्न वाली बात सब लोगों पर प्रकट कर दी और सब लोग सुन कर कृतकृत्य हो गये तथा अपने भाग्यों की सराहना करने लगे तथा श्री परमहंस दयाल जी की जय जयकार करने लगे।

कुछ दिनों बाद श्री परमहंस दयाल जी ने रामनगर में कृपा की। वहाँ पर एक प्रेमी ने जिसका नाम चौधरी प्रेमचन्द था, श्री चरणों में आकर प्रार्थना की— "श्री महाराज जी! मैं बहुत समय से शुभ कर्म कर रहा हूँ। दिन में चार घंटे तो पूजा-पाठ करता हूँ और चारों धाम घूम कर आया हूँ फिर भी मुझे शान्ति प्राप्त नहीं हुई।" यह सुन कर श्री परमहंस दयाल जी ने मुस्करा कर फ़रमाया—कि इस मन की चंचलता समय के सन्त सद्गुरु के उपदेश की कमाई तथा सद्गुरु की कृपा से दूर हो सकती है दूसरा कोई उपाय इस मन को एकाग्र करने का नहीं। जब तक मन एकाग्र नहीं होता, तब तक पूर्ण शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। यह तो तुम स्वयं सोच सकते हो कि दुनिया की कोई भी वस्तु किसी के सुपुर्द हुए बिना उत्तम नहीं बन सकती तो यह जन्म-जन्मान्तरों का अपवित्र मन बिना सन्त-सद्गुरु की शरण में जाने के कैसे निर्मल हो सकता है? तुम जो ग्रन्थों का स्वाध्याय करते हो, इन की समझ-बूझ और इन वचनों पर चलना भी

तब हो सकेगा जब समय के पूर्ण सद्गुरु की शरण मिलेगी। वे ही वेद के भेद को जानने वाले होते हैं। क्या इस समय के रोगी को हज़ार वर्ष पहले वाले वैद्य से औषध मिल सकती है? यह सुन कर वह श्री चरणों में गिर पड़ा। जैसे ही श्री चरणों की धूलि उस के मस्तक पर लगी तो उस की बुद्धि में प्रकाश होने लगा और सुरति मनोहर छवि की ओर आकर्षित हो गई। श्री परमहंस दयाल जी ने उस पर कृपा दृष्टि की और उसकी विनय करने पर उसे शब्द का भेद बताया।

जब उसने अभ्यास की कमाई की और सुरति को अन्तर्मुख किया तो उस नाम की कमाई के कारण अन्तःकरण में आत्मिक दृश्य देखे। जिस स्थान पर वह पहले सत्संग के लिये जाता था, वहां गया तो सभी अन्य लोग चौधरी प्रेमचन्द के बदले हुए रंग-ढंग को देख कर चकित हो गये। अब तो उसकी आँखों में निराली ज्योति और हृदय में अनूठी मस्ती की लहर झूम रही थी। सबने मिल कर उसे पूछा—"तुम्हें क्या हो गया है?" उसने उत्तर दिया—बलिहार जाऊँ मैं अपने श्री सद्गुरु देव जी पर, जिन्होंने मुझ जैसे भूले भटके को अपना घर दिखाया और सुरति को इस संसार के मोह से स्वतन्त्र करा कर अन्तर्मुख कराया और शब्द का भेद बताया। इस प्रकार वह मुक्त कण्ठ से श्री परमहंस दयाल जी के गुणानुवाद गाने लगा।

उस की बातें सुनकर सत्संग में आने वाले अन्य लोगों में भी श्रद्धा उत्पन्न हुई। वे भी चौधरी प्रेमचन्द जी के साथ श्री परमहंस दयाल जी के श्री दर्शन के लिए गए। श्री दर्शन कर सब ने श्री चरणों में प्रार्थना की—महाप्रभु! आप कुछ दिन यहाँ रह कर अपने वचनों से हमें भी कृतार्थ करें। उन का श्री चरणों में प्रगाढ़ प्रेम तथा श्रद्धा देखकर श्री परमहंस दयाल जी ने उन की विनय स्वीकार की।

एक दिन सत्संग में श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया—इस जीव का सच्चा साथी केवल सन्त सद्गुरु ही हैं। शेष जितने भी साँसारिक सम्बन्ध हैं इनका आत्मा से कोई भी सम्बन्ध नहीं। इन का सम्बन्ध मनुष्य के शरीर से ही है।

जैसे मार्ग में यात्री आपस में मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं ऐसे ही मनुष्य का संसार से सम्बन्ध है। इसी प्रकार दो दिन अमृत-वचन होते रहे।

तीसरे दिन चौधरी प्रेमचन्द सड़क पर चलते चलते गिर पड़ा और शरीर छोड़ गया। तब सब सत्संगी आपस में कहने लगे कि वह तो (चौधरी प्रेमचन्द) कहता था कि मैंने अपना घर देखा है और श्री परमहंस दयाल जी ने मुझे अपना घर दिखाया है परन्तु वह तो अकाल मृत्यु ही मर गया।

रात को उस सत्संग के मुखिया लाला निर्मल दास जी को स्वप्न आया। क्या देखता है कि श्री परमहंस दयाल जी हज़ारों प्रेमियों के मध्य में चमकते हुए सिंहासन पर 'सचखण्ड' में विराजमान हैं और दोनों ओर से एक एक सेवक चँवर झुला रहा है। उसने दरवाज़े से चौधरी प्रेमचन्द को अन्दर आते हुए देखा। जब पास आया तो श्री परमहंस दयाल जी ने मुस्कराते हुए फ़रमाया—प्रेमचन्द जी आ गये! उसने श्री चरणों में सिर झुका कर विनय की—हाँ श्री प्रभु जी। श्री परमहंस दयाल जी ने एक चँवर झुलाने वाले को आज्ञा दी—यह चँवर झुलाने की सेवा प्रेमचन्द को दे दो और तुम किसी दूसरी सेवा में लग जाओ। श्री आज्ञा पाकर उस सेवक ने चँवर चौधरी साहिब को दे दी और स्वयं दूसरी सेवा में लग गया।

मुखिया निर्मल दास जब नींद से उठा तो स्वप्न वाली घटना को याद कर बहुत प्रसन्न हुआ और दूसरे दिन सत्संग में जाकर हर्ष में कहने लगा—मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ कि श्री परमहंस दयाल जी स्वयं परब्रह्म हैं और कलि-काल के जीवों के उद्धार के लिये ही धुरधाम से आये हैं। यह सुन कर सब प्रेमियों के संशय निवृत्त हो गये और वे श्रद्धा व प्रेम के साथ ही श्री परमहंस दयाल जी के गुणवाद गाने लगे। तब सब संगत ने श्री चरणों में प्रार्थना की कि हमें भी सच्चे नाम की दीक्षा दी जाय। श्री परमहंस दयाल जी ने उनका अगाध प्रेम देख कर उन्हें नाम-धन से कृतार्थ किया। वे लोग कृतकृत्य हो गये।

कुछ दिन वहाँ अमृत वर्षा करने के बाद फिर श्री परमहंस दयाल जी आगरा में पधारे। जहाँ भी सत्संग प्रचार अथवा जीव कल्याण हेतु आश्रम स्थापित करते उसका शुभ नाम 'कृष्ण द्वारा' रखा जाता। फिर आगरा से टेरी पधारे। पुनः आपने अधिक समय टेरी में व्यतीत किया। टेरी में शीत की अधिकता थी परन्तु आप केवल एक मलमल का चोला पहनते थे। सर्दी के कारण ११ फ़रवरी १९१५ को आप के श्री सुकोमल तन के दाहिने भाग पर पक्षाघात (फ़ालिज) के चिन्ह प्रतीत हुए। बन्नू, कोहाट तथा अन्य स्थानों से डाक्टर बुलाए गए। परन्तु वहां डाक्टरों की क्या दाल गलती थी। वे स्वयं परब्रह्म, सृष्टिकर्त्ता एवं कर्णधार थे। उन्हें भला सर्दी क्या कष्ट दे सकती थी। आप ने जब कि बाल्यकाल से ही योग साधना से देहाध्यास पर विजय प्राप्त कर ली थी। यह तो आपकी निजी मौज थी, न मालूम किस परमार्थ कार्य की सिद्धि हेतु अथवा किस दैवी विपत्ति का निवारण करने के लिये स्वयं अपने तन पर कष्ट सहन कर रहे थे। एक दिन आप ने वचन फ़रमाये कि "लोगों ने यह समझ रखा है कि हम बीमार हैं किन्तु वे भला क्या जानें इस रहस्य को। यह गुप्त भेद हैं, आप इन्हें नहीं जान सकते।"

वास्तव में सन्त महापुरुषों के हृदय समुद्र से भी गहरे, आकाश से असीम उच्च तथा धरती सम सहिष्णु होते हैं। वे गुप्त रूप से मायावी जीवों का कष्ट अपने पर लेकर उन्हें भक्ति का सुखद मार्ग बतलाते हैं। इन रहस्यों को जीव बुद्धि समझ सकने में असमर्थ है। आपके आगमन से पहले सीमाप्रान्त में अधिकांशतः लोग भक्ति मार्ग से भटक चुके थे। अतएव मोह-ममता एवं तृष्णा की ज्वाला में रात दिन झुलस रहे थे। आपने निरन्तर सदुपदेशों की पावन धारा बहा कर संतप्त हृदयों को शीतलता प्रदान की। इस प्रकार प्रत्येक कष्ट को सहन करते हुए आप ने सीमाप्रान्त की दशा को सर्वथा पलट दिया। आपने सन्त महापुरुषों के स्वाभाविक लक्षणों को श्री रामायण की इस चौपाई के अनुसार सत्य सिद्ध कर दिया:—

॥ चौपाई ॥

साधु चरित शुभ सरिस कपासू । निरस विशद गुणमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । वन्दनीय जेहि जग जस पावा ॥

श्री रामायण—बालकाण्ड

सन्तों के चरित्र कपास के समान कल्याणकारी हैं । यह चरित्र देखने में तो हैं रस रहित, परन्तु उनका फल बड़ा गुण युक्त है । जिस प्रकार कपास में रस तो कुछ नहीं परन्तु उसका फल गुण युक्त है । कपास जंगल में गर्मी, शीत, वर्षा सहन कर उत्पन्न होती है । केवल दूसरों के भले की ख़ातिर कि वह कपड़ा बन कर दूसरे के तन को ढकती है । अर्थात् आप दुःख सहन कर दूसरों को सुख पहुँचाती है । इसी प्रकार सन्त महापुरुष भी संसार में पहले कठिन साधना करके फिर संसार में अनेक कष्ट सहन कर के अथवा जीवों के अवगुणों को न देखते हुए उनका सुधार करते हैं । इसी से वे वन्दना के योग्य हैं ।

टेरी से आप १३ अक्टूबर १९१५ को आगरा पधारे । आगरा से जयपुर गये । यहाँ भी आप ने सत्संग के लिये आश्रम तैयार करवाया । राजस्थान का मुख्य केन्द्र जयपुर को ही बनाया । आपने सत्संग-वृष्टि से जन-जन के अन्दर एक जागृति ला दी । सत्य पथ का मार्ग दर्शा कर भूली भटकी मानवता को सन्मार्ग पर लगाया । पुनः आप को टेरी निवासी लेने के लिए आए । तब आप कोहाट से होते हुए टेरी पधारे ।

श्री परमहंस दयाल जी टेरी को अपने वचनामृत से लाभान्वित कर रहे थे । आप की महिमा आस-पास के क्षेत्रों में भी फैली हुई थी । अतः एक दिन पंडित भगवानदास नरयाब निवासी आप के श्री दर्शन को टेरी आये । भक्ति तथा वैराग्य की अवस्था में आँखों में आंसू भर कर श्री चरणों में प्रार्थना की कि महाराज ! मेरा उद्धार तो असम्भव नज़र आता है । मैंने ऐसे ऐसे कर्म किये हैं जिनका वर्णन नहीं हो सकता । लाखों जीव शिकार में मारे हैं और क्या क्या विनय करूँ ।

जब उनके सम्बन्ध में सोचता हूँ तो निराश हो जाता हूँ। श्री परमहंस दयाल जी ने उन्हें धैर्य देते हुए फ़रमाया कि अब आप उनका कोई भी ख़्याल दिल में न लायें और भजन किये जायें। आप का अवश्य उद्धार होगा। देखो! वाल्मीकि जी डाकू थे। उन्होंने अनेकों मनुष्यों का वध किया। राम राम की जगह मरा मरा जपा अर्थात् अजपा जाप के अभ्यास से ऐसे उच्च सन्त हुए कि उन्होंने श्री रामचन्द्र जी के जन्म से हज़ारों वर्ष पहले श्री रामायण लिख कर रख दी और श्री रामचन्द्र जी की धर्म पत्नी सीता जी भी उनका पानी भरती थी फिर आपका तो ब्राह्मण का शरीर है। यदि आप भजन करोगे तो आप की मुक्ति में क्या सन्देह है? श्री कृष्णचन्द्र महाराज जी ने भी फ़रमाया है कि जब शूद्र और वैश्य सब का उद्धार होता है तो हे अर्जुन! तू तो क्षत्रिय है, तेरी मुक्ति और उद्धार में क्या सन्देह है? श्री परमहंस दयाल जी ने पंडित भगवानदास को फ़रमाया कि आप भजन-ध्यान में लगे रहो—धीरे धीरे सब ठीक हो जाएगा।

आप के दो अनन्य, परम श्रद्धालु भक्त साहिब चन्द जी तथा भक्त धनीराम जी थे। इन दोनों की प्रगाढ़ निष्ठा, अनन्य अनुराग और अचल श्रद्धा से आप अत्यन्त प्रसन्न थे। इन्हीं दिनों भक्त साहिब चन्द जी ने श्री आरति एवं स्तोत्र आप की कृपा से रच कर श्री चरणों में समर्पित किए। जिन को आपने बड़े प्रेम व ध्यान से पढ़ा। उसने श्री आरति के प्रथम पद में लिखा था कि:—

परमारथ हित अवतार जगत में, गुरु जी ने है लीन्हा।
हम जैसे मूरखन को गृह दर्शन दीन्हा॥

श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया—आप पूर्ण सन्त महापुरुषों की शरण प्राप्त कर चुके हो। इसलिये आप मूर्ख नहीं अपितु भाग्यशाली हो। अतः आप यहां मूर्खन के स्थान पर भागियन लिखो व ऐसे पढ़ो कि:—

"हम जैसे भागियन को गृह दर्शन दीन्हा।"

उसने श्री आज्ञानुसार आरति में परिवर्तन कर दिया । निज सम्प्रदाय के गूढ़ रहस्यों तथा भक्ति-परमार्थ के रहस्य का प्रतिपादन इन रचनाओं में पाकर आप अत्यन्त प्रसन्न हुए और फ़रमाया—"यह श्री आरति व स्तोत्र सदा के लिए इस सम्प्रदाय के लिए मान्य होंगे ।" श्री वचनानुसार यही श्री आरति आज तक प्रत्येक घर, प्रत्येक ग्राम, प्रत्येक नगर एवं सम्प्रदाय के प्रत्येक आश्रम में अथवा जहां जहां भी इस सम्प्रदाय के अनुयायी हैं प्रातः व सायं पूजा के लिए गाई जाती है ।

आरति का अर्थ ही यही है—आ+रति, आ=सब ओर से, रति=प्रेम अर्थात् प्रेम से ओत प्रोत हो कर इष्टदेव की स्तुति करना । इस श्री आरति तथा स्तोत्र में अध्यात्म (रुहानियत) के गूढ़ रहस्य समाहित हैं जिन्हें अर्थों सहित यहां दिया जा रहा है ताकि सब प्रेमियों को समझने में सुविधा हो ।

आरति

ॐ जय श्री जगतारण, स्वामी जय श्री जगतारण ।
शुभ मग के उपदेशक, यम त्रास निवारण ॥ ॐ जय०

(१)

परमारथ हित अवतार जगत में,
गुरु जी ने है लीन्हा; मेरे स्वामी जी ने है लीन्हा ।
हम जैसे भागियन को, गृह दर्शन दीन्हा ॥ ॐ जय०

(२)

कलि कुटिल जीव निस्तारण को,
प्रभु सन्त रूप धर के; स्वामी सन्त रूप धर के ।
आतम को दर्शावत, मल धोये हैं मन के ॥ ॐ जय०

(३)

आप पाप त्रय ताप गये,
जो गुरु शरणी आये; मेरे स्वामी शरणी आये ।
गुरु जी से लाल अमोलक, तिस जन ने पाये ॥ ॐ जय०

(४)

सहज–समाधि, अनाहत–ध्वनि,
जप अजपा बतलाये; स्वामी अजपा बतलाये ।
प्राणायाम की लहरें, मेरे मन भाये ॥ ॐ जय०

(५)

हरि किरपा कर जन्म दियो,
जग मात पिता द्वारे; स्वामी मात पिता द्वारे ।
उन से अधिक गुरू जी हैं, भवनिधि से तारें ॥ ॐ जय०

(६)

तले की वस्तु गगन ठहरावे,
गुरु के शब्द शर से; सतगुरु के शब्द शर से ।
सो सूरा सो पूरा, बल में वह बरते ॥ ॐ जय०

(७)

तत्—स्नेह, प्रेम की बाती,
योग अगनि जिन के; स्वामी योग अगनि जिन के ।
आरति लायक सो जन, जो हैं शुद्ध मन के ॥ ॐ जय०

(८)

श्री परमहंस–सतगुरु जी की आरति,
अष्टपदी रच के; स्वामी अष्टपदी रच के ।
साहिबचन्द ने गाई, पद रज सज कर के ॥ ॐ जय०

सरलार्थ

ॐ—हे सर्वरक्षक !

टेक—ऐ संसार को भव से तराने वाले इष्टदेव मालिक ! आपकी जय हो। आप सत्य-पथ अर्थात् मोक्ष मार्ग का उपदेश करने वाले हैं और महाकाल के भय से छुड़ाने वाले हैं।

(१)

आप ने परोपकार के लिए ही इस संसार में अवतार धारण किया है। हम जैसे भाग्यशाली (जो जीव सद्गुरु की चरण-शरण को प्राप्त कर चुके हैं) जीवों को घर बैठे ही श्री दर्शन देकर कृतार्थ किया है अर्थात् हम जीवों को भू लोक पर दर्शन देकर हमें भाग्यशाली बनाया है।

(२)

कलियुग के कठोर (छल-कपट) स्वभाव वाले जीवों का उद्धार करने के लिए आप सन्त स्वरूप में आये हैं। मन की मलिनताओं को दूर कर आत्मा का साक्षात्कार (निज स्वरूप का दर्शन) कराते हैं।

(३)

जो जीव सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण कर लेता है वह आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक तीनों तापों से मुक्त हो जाता है। वह सेवक सद्गुरुदेव जी से अमूल्य नाम-शब्द रूपी लाल को प्राप्त कर लेता है।

(४)

सहज समाधि, अनाहत ध्वनि और अजपा जाप, यह तीनों युक्तियां (सुरत-शब्द-योग) सद्गुरुदेव जी पूर्ण रूप से बतलाते हैं जिस से कि आन्तरिक ज्योति के दर्शन होते हैं। इस के साथ साथ प्राणायाम अर्थात् श्वास ऊपर ले जाना पुनः नीचे लाना की ज़रब सिखाते हैं। जब यह प्राणायाम उचित रूप से आरम्भ हो जाता है तो मन आनन्द की लहरों में झूम उठता है। यही लहरें आपके दासों को बहुत प्रिय लगती हैं।

(५)

परमेश्वर ने कृपा कर के हमें माता-पिता के घर में जन्म दिया था परन्तु आप तो उन से भी अधिक उपकारी हमें मिल गये जो जन्म-मरण से जीव को छुड़ा देते हैं।

(६)

जो साधक पिण्ड देश में रमी हुई सुरति को गुरुदेव जी के दिये हुए शब्द रूपी बाण के द्वारा ब्रह्माण्ड देश में स्थिर कर लेता है वह शूरवीर है, पूर्ण है और शक्तिशाली बन कर सब कार्य करता है।

(७)

तत्–स्नेह=ज्ञान रूपी तेल, प्रेम रूपी बत्ती और सुरत-शब्द-योग की अग्नि के द्वारा जिन्होंने अपने अन्दर दीपक जला लिया है और जिन का मन निर्मल हो गया है वे ही अपने सद्गुरुदेव जी की आन्तरिक आरति उतारने के योग्य हैं।

(८)

श्री परमहंस सद्गुरु देव जी की यह आठ पदों की आरति दासानुदास साहिबचन्द ने उनकी चरण-धूलि को मस्तक पर चढ़ा कर के गाई है।

स्तोत्र

जय सत्-चित्-आनन्द मूरति, स्वामी जो के चरण वन्दनम्।
जो दे उपदेश क्लेश नाशैं, कलि के कलुष विभञ्जनम् ॥ १ ॥

जो ज्ञान–निधि विज्ञान–दायक, घायकं सब दुष्कृतम्।
युत योग भोगहिं रोग जानैं, सुख–दुखं सम अरि–मितम् ॥ २ ॥

परमारथपथ भेद वेद के, खेद बिन जो दायकम्।
शरणागत के भरम हत के, सत् ही के कर लायकम् ॥ ३ ॥

मलयदल–अमल अचल पदाम्बुज, सद्गुरु के जो ध्यावतम्।
सुख सुयश सुगति सुबुद्धि सुशान्ति, बिन प्रयास सो पावतम् ॥ ४ ॥

है जग जन्म सफल तिसका, जो गुरु–पद्–रज मन लावहिं ।
ज्यों पारस परसि कुधातु सुधरे, त्यों फिर जन्म न आवहिं ॥ ५ ॥

दया के सिन्धु ज्यों, शीतल इन्दु ज्यों, ॐ के बिन्दु ज्यों भासतम् ।
तेजमय भानु ज्यों, विद्या की खान ज्यों, अहनिशि ध्यान में वासतम् ॥ ६ ॥

परम धर्म श्री सद्गुरु की सेवा, विदित नरक निवारणम् ।
जासु शब्द भव–बन्धन काटत, समझ पड़त यहि कारणम् ॥ ७ ॥

सन्त महात्मा और बुध–जन, वेद पुराण यहि गावहिं ।
प्रभु ते अधिक गुरु जो सेवत, सो निश्चय प्रभु पावहिं ॥ ८ ॥

शुक–सनकादिक, ध्रुव–नारदादिक, गुरु–उपदेश ते अमरणम् ।
ऋषि मुनी जन प्रकृत जग में, ले दीक्षा प्रभु सुमिरणम् ॥ ९ ॥

गुरु–यश दिक्–पद अहनिशि गावत, दसहुँदिशि भ्रम दुःख जारतम् ।
गुरु–पद्–जलज अलि मन जाको, 'साहिब चन्द' उच्चारतम् ॥ १० ॥

सरलार्थ

(१)

मेरे सद्गुरु ! आप (सत्) सदा अंग-संग हैं, (चित्) ज्ञान स्वरूप हैं और आनन्द निधान हैं। आप की जय हो । आपके चरण-कमलों में मेरा प्रणाम हो । जिन के उपदेश से सभी कष्ट क्लेश नष्ट हो जाते हैं तथा कलियुग के पापों का नाश हो जाता है ।

(२)

आप सम्पूर्ण ज्ञान और विज्ञान अर्थात् विशेष ज्ञान के भण्डार हैं। सब दुष्कर्मों के विनाशक हैं। योग से युक्त हो कर संसार के भोगों को रोग रूप जानते हैं। आपकी दृष्टि में सुख और दुःख, शत्रु और मित्र एक समान हैं।

(३)

परमार्थ के मार्ग में वेदों के जो गूढ़ भेद हैं, उन्हें आप बिना खेद के अर्थात् सरल ढंग से समझाते हैं। आप शरण में आये हुए जीवों के संशय-भ्रम का नाश करके उन्हें सत्य पथ पर लगा देते हैं।

(४)

चन्दन के पत्ते के समान निर्मल और एक रस आपके श्री चरण-कमलों का जो ध्यान करता है, वह परम सुख, विमल यश, मुक्ति, सुबुद्धि और पूर्ण शान्ति बिना प्रयास के आप ही आप प्राप्त कर लेता है।

(५)

संसार में उसी का जीवन सफल है जिसने गुरु-चरणों की रज को श्रद्धा सहित हृदय में धारण किया अर्थात् सत्-उपदेश अनुसार आचरण किया। वह आवागमन से मुक्त हो गया, जिस प्रकार लोहा पारस के छू जाने से अपनी हालत को बदल कर कंचन बन गया।

(६)

आप दया के सागर हैं, चाँद के समान शीतल हैं और तीनों गुणों अर्थात् सत्त्व, रज, तम से न्यारे ओङ्कार में बिन्दु रूप सुहाते हैं, आप सूर्य में तेज हैं, विद्या के निधि हैं—आप का ध्यान सदा मुझ में बना रहे।

(७)

"श्री सद्गुरु जी की सेवा परम धर्म है" और यह धर्म जीव के नरक-दण्ड का निवारण करने के लिए प्रसिद्ध है। गुरु का शब्द संसार के बन्धनों को काटता है और इसके द्वारा ही भव-बन्धन का जो मूल कारण अर्थात् बीज है वह समझ में आने लगता है।

(८)

सन्त महात्मा और विद्वान् पुरुष, चार वेद (ऋक्, यजुर, साम, अथर्व) एवं अठारह पुराण इसी सच्चाई का बखान करते हैं। जो साधक प्रभु से भी अधिक गुरु की सेवा करता है वह निश्चय ही प्रभु को पा जाता है।

(९)

श्री शुकदेव जी, ब्रह्मा जी के चार मानस पुत्र (सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार) भक्त ध्रुव, देवर्षि नारद तथा अन्य ऋषि-मुनि व उत्तम संस्कारी जीवों ने संसार में आकर गुरु-दीक्षा लेकर ही नाम की कमाई की तथा गुरु के उपदेशानुसार चल कर अमर पद को प्राप्त हुए ।

(१०)

श्री परमहंस सद्गुरुदेव दयाल जी के परम शिष्य 'भक्त साहिबचन्द जी' ने अपने मुख से ऐसा उच्चारण किया है कि जो आठों पहर इन दस पदों का गायन करता है तथा जिसका मन श्री सद्गुरुदेव जी के चरण-कमलों का भंवरा बना रहता है, उसके दसों दिशाओं के दुःख और संशय नष्ट हो जाते हैं ।

भक्त साहिब चन्द जी ने भक्ति, प्रेम व ज्ञान के रहस्यों का उद्घाटन कर कई भजनों की रचना भी की । भक्त साहिबचन्द जी की सेवा, प्रेम एवं त्याग के विषय में अन्य भक्तों के सम्मुख श्री परमहंस दयाल जी स्वयं निज मुख से कई बार महिमा किया करते थे। इस प्रकार श्री चरणों की सेवा करते हुए उन्होंने पांच भौतिक शरीर त्याग दिया ।

इसी प्रकार भक्त धनीराम जी भी श्री परमहंस दयाल जी के अत्यधिक श्रद्धालु भक्त थे। यह दरसमंद के निवासी थे। ये भाव और प्रकृति से बहुत भोले थे। श्री परमहंस दयाल जी इन्हें भोला भक्त कहते थे। इन की धर्मपत्नी भी बिल्कुल इन के स्वभाव जैसी ही थी। इन का सदा का यह नियम था कि जब कभी भी श्री दर्शन के लिये आते जहां श्री परमहंस दयाल जी विराजमान हों उस आश्रम या मकान के दरवाज़े (Main gate) से लेकर श्री परमहंस दयाल जी के पलंग तक पति व पत्नी दोनों साष्टांग दण्डवत् करते हुए श्री चरणों में पहुँचते। कई कई बार चरण चूमते और कई कई बार परिक्रमा करते। श्री चरणों में यथाशक्ति बहुत से पदार्थ भेंट के लिए लाते। इस के अतिरिक्त मूलियां भी लाते थे जो तोल में एक मूली दस सेर से भी अधिक भारी होती थी। श्री परमहंस

दयाल जी इन मूलियों को उपहार (तोफ़ा) के रूप में दूर दूर तक भेजते थे ।

जब लाला धनीराम जी परलोक सिधार गये तो किसी सेवक ने श्री परमहंस दयाल जी के चरणों में विनय की–प्रभु ! भक्त साहिबचन्द जी व भक्त धनीराम जी को शरीर छोड़ने के बाद क्या गति मिली है ? श्री अमृत वचन हुये कि भक्त साहिबचन्द जी तो परम धाम सिधार गये हैं और भक्त धनीराम जी को अभी जन्म लेकर रूहानी कमाई और करनी पड़ेगी क्योंकि इस जन्म में अभी उसकी कमाई अधूरी रह गई है। वह अगले जन्म में पूरी करेगा। जैसा कि गीता में भी कहा गया है:—

॥ श्लोक ॥

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥

अ० ४ श्लोक ५

श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज बोले–हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत से जन्म हो चुके हैं, परन्तु हे परंतप ! उन सब को तू नहीं जानता है और मैं जानता हूँ ।

आप (श्री परमहंस दयाल जी) परमार्थ पथ पर दिन रात अग्रसर रहे । आप का स्थूल शरीर अब कुछ सुकोमल हो गया था फिर भी आप सन् १९१५ से १९१९ ई० तक कभी आगरा, जयपुर और कभी टेरी में सत्संग उपदेश की पावन धारा बहाते रहे । १९१९ सन् में आप टेरी में विराजमान थे । १३ जनवरी १९१९ को आप ने श्री मुख से अर्शाद फ़रमाए–"संसार में चार प्रकार की सेवा की जाती है । १. दरम २. जिस्म ३. क़दम ४. सुखन । दरम अर्थात् धन की सेवा, जिस्म–तन से सेवा, क़दम–चल फिर कर सेवा भेंट लेकर लंगरादि में लगा देना, सुखन–सत्संग प्रचार । सेवकों ने इन चार प्रकार की सेवाओं को प्राणपन से निभाया है । जो व्यक्ति जिस सेवा के योग्य थे उन्होंने उसी प्रकार अपना कर्त्तव्य समझ कर सेवा की है ।"

महानिर्वाण

अब आप अधिकतर मौन रहने लगे। कभी श्री मौज में कुछ श्री वचन फ़रमा देते। एक दिन आपने वचन फ़रमाते हुए भविष्य वाणी की–"अब हम ने जाना है। पुराने वस्त्र तो त्यागने ज़रूरी हैं।" सेवक इन प्रवचनों के रहस्य को न समझ सके। जिस किसी ने कुछ समझा भी तो मुँह से कहते कुछ न बनता था। श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में कैसे विनय करें कि वे अपने श्री दर्शन से कृतार्थ करते रहें। अपनी निजी मौजानुसार आप ने निजधाम पधारने से २ मास सात दिन पूर्व ३ मई १६१६ सन् को भक्त ख़ानचन्द जी (महात्मा योगात्मानन्द जी) तथा भक्त अमीर चन्द जी को बुलाया। उसी दिन टेरी में उत्तराधिकारी (जानशीनी) के विषय में श्री आज्ञा-पत्र भक्त अमीरचन्द जी से लिखवा कर निज कर कमलों से भक्त ख़ानचन्द जी को देकर फ़रमाया कि इसे सम्भाल कर रखें, समय पर काम आएगा। इस श्री आज्ञा पत्र में इस प्रकार अर्शाद थे:—

अज़ीज़म ख़ान चन्द जी,

साहिब सलमहू

बाद दावयियात मज़ीद हयात के वाज़े हो कि आप सब सत्संगी साहिबान कदीम व जदीद पर इज़हार कर दें कि श्री महाराज जी का अर्शाद है कि दो तरह के जानशीन होते हैं एक जिस्मानी और एक रूहानी। जिस्मानी जानशीन तो बाबा विशुद्धानन्द जी अरसा यकनीम साल (डेढ़ साल) से हो चुके हैं और यह सब पर ज़ाहिर है।

और रूहानी जानशीन श्री बाबा स्वरूप आनन्द जी हैं। उन से जो कोई सत्संग करेगा या रूहानी उपदेश लेगा उस को बरकत मिलेगी। यह हमारी दुआ है और बाई योगानन्द जी व भक्त अमीर चन्द जी को भी चाहिए कि सब पर इज़हार कर

दें कि रूहानी जानशीन श्री बाबा स्वरूप आनन्द जी हैं। मुकर्रर आंके श्री महाराज जी की यह भी आज्ञा है कि श्री बाबा स्वरूप आनन्द जी के दस हज़ार से ज़्यादा उपदेशी होंगे, जो उन से सत्संग करेगा या उपदेश लेगा उस को बरकत मिलेगी।

उसी दिन ३ मई १९१९ को श्री दूसरी पादशाही जी महाराज को भक्त खान चन्द जी के साथ टेरी से रवाना कर दिया। दोनों टेरी से चलकर बहादुरखेल में दीवान भगवान दास के पास आये और अर्शाद नामा दीवान भगवान दास को दिखाया। इस के पश्चात् कक्कियां गए और एक सप्ताह यहां पर रह कर कुलाची की ओर पधारे।

१५ जून १९१९ को आप जो आहार मात्र थोड़ा सा भोजन लेते थे वह भी छोड़ दिया। केवल पानी का आधार ही रह गया।

९ जुलाई १९१९ ई० को सायं समय दीवान भगवान दास जी श्री दर्शन के लिए टेरी पहुँचे और श्री परमहंस दयाल जी ने उन से धीरे धीरे एक दो प्रवचन किये। अब अपनी मौज अनुसार १० जुलाई १९१९ को बृहस्पतिवार तदनुसार २७ आषाढ़ शुदी द्वादशी सम्वत् १९७६ वि० को प्रातः काल छः बजे श्री परमहंस दयाल जी निजधाम पधारे जहां से वे जन कल्याण हेतु मर्त्यलोक के भाग्य जगाने के लिये आए थे। आप जो कुछ करना चाहते कर सकते थे। परन्तु आप की श्री मौज ही ऐसी थी जिस के सम्मुख सब शक्तियां क्षीण हो गईं। शास्त्रीय मर्यादा अनुसार आप को टेरी में भक्त अमीरचन्द के मकान में ही श्री समाधि दी गई। हृदय-विदारक दुःखद समाचार टेरी के कुछ भक्तों व अन्य स्थानों पर रहने वाले प्रेमियों को पहुंचाया गया। समस्त प्रेमी विरह-सागर में डूब गये। परन्तु हो ही क्या सकता था? कई गंगा, यमुनाएं आँखों से बह निकलीं। भक्तों के हृदय की दशा कौन जाने कैसी थी। उस प्रभु की मौज में कौन हस्तक्षेप कर सकता था। जैसे तैसे दुःखी हृदय लेकर तन-बदन की सुधि भूले हुये प्रेमी टेरी पहुंचे। श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी श्री दूसरी पादशाही जी महाराज भी प्रेमियों सहित व्यास पूजा

के शुभ पर्व को मनाने के लिये टेरी आ रहे थे। आते ही इस दुःखद समाचार को सुन कर अत्यन्त शोकातुर हुए। पुनः स्थान स्थान से अनन्य सेवकों को बुलवाया तथा श्री गुरुदेव श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा करवाया।

अब प्रेमियों के नयन उस दिव्य ज्योति को निहारने के लिये आतुर हो रहे थे। हृदय में आशा निराशा के बवण्डर उठते थे कि अब क्या होगा? कुछ एक को तो पहले ही ज्ञात था और शेष प्रेमियों को भी सांकेतिक भाषा में धैर्य दिया गया। प्रेमियों को श्री परमहंस दयाल जी के संकेत स्मरण हो आए जब कि हमेशा श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी को श्री परमहंस दयाल जी "भैय्या" शब्द से सम्बोधित करते थे। आप ने दो मास पूर्व ही आत्म-शक्ति की पवित्र दात इन्हें सौंप दी थी। सर्व संगत को वह पवित्र वचन याद हो आए जब श्री सद्गुरुदेव जी महाराज (श्री दूसरी पादशाही जी) को श्री परमहंस दयाल जी ने आगरा में यह प्रवचन फ़रमाये थे—"भैय्या रास्ता छोड़ दो, देखो परमहंस जी आ रहे हैं।"

१३ जुलाई सन् १९१९ को श्री व्यास पूजा के दिन सब संगत को रूहानी जानशीनी (उत्तराधिकारी) का हुक्मनामा सुनाया गया और २ अक्टूबर सन् १९१९ को रूहानी जानशीनी की रीति (रस्म) का दिन निश्चित किया गया। श्री वचनों को याद कर हृदय को धैर्य देते हुए सब ने श्री गुरु आज्ञा शिरोधार्य की। श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज को प्रणाम किया। इस प्रकार श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी महाराज ने भौतिक रूप से अपने तेजोमय स्वरूप को हमारे अभागे नयनों से ओझल कर दिया और आत्मिक रूप में द्वितीय ज्योतिर्मय रूप में प्रकट हुए।

श्री परमहंस दयाल जी नीति निधान तथा मर्यादा-पुरुषोत्तम थे। भविष्य में आपके प्रमुख शिष्यों ने आध्यात्मिक जगत् में परमार्थ का जो कार्य करना था उस के लिये यह एक प्रकार की आधार शिला रखी। आप गुरु-भक्ति, सहज योग, ब्रह्म-

ज्ञान तथा वेदान्तादि विभिन्न विषयों पर सत्संग किया करते थे। जिस प्रकार से आपने अपने जीवन को योग, तपस्या और कठिन साधना में ढाला, तद्नुरूप ही इस सम्प्रदाय के अन्य महानुभाव भी हुए। परमार्थ-भक्ति की जो रूप रेखा आपने बनाई, उसे आपके परम शिष्यों ने साकार रूप दिया। आपने जितना अपने आपको संसार से दूर रखना चाहा उतना ही आप को तपोमय जीवन के प्रभाव से विमुग्ध लोक कल्याण हेतु संसार के समक्ष आना पड़ा। आपने आत्मिक पुकार तथा आन्तरिक शक्ति की प्रेरणा से जो सत्संग प्रचार का कार्य किया वह युग युगान्तरों तक अविस्मरणीय रहेगा। आपके ही पावन पथ पर अग्रसर हो कर आज यह सम्प्रदाय दिन दुगुनी रात चौगुनी भक्ति--ज्ञान तथा प्रेम की धारा में जन जन को मज्जन करा रहा है। आप के इस महामहिम उपकार के लिए समस्त प्रेमी जनों के हृदय कृतज्ञ हैं और रहेंगे।



श्री मुख प्रवचन



श्री परमहंस दयाल जी ने परमार्थ–पथ पर अग्रसर होकर सत्संग उपदेश की धारा निरन्तर बहाई। उन में से कुछ विशेष श्री मुख प्रवचनों को जीव–कल्याण हेतु संगृहीत किया गया है। वे निम्नलिखित हैं:—

प्रवचन १. मनुष्य का मन ऐसी प्रकृति का बना हुआ है कि जिस पर प्रत्येक प्रकार का भाव अंकित हो जाता है जिस को संस्कार कहते हैं। मन की ऐसी अवस्था है कि यह निन्दा, बुराई तथा अपनी प्रशंसा की बातों को तो दूर से ही सुन लेता है। यही बातें विचार का रूप धारण कर लेती हैं और विचार ही संस्कार बनते हैं। जिस प्रकार घर की सफ़ाई करने में तो अधिक समय लगता है परन्तु कूड़ा करकट बिखेरते समय देर नहीं लगती अथवा पानी को ही ले लो। पानी में यदि रेत, मिट्टी आदि डाल दी जाए तो वह पानी शीघ्र ही गंदा हो जाता है। परन्तु उस पानी को साफ़ करने के लिए कितने ही साधन अपनाने पड़ते हैं। उसे फिल्टर करना, छानना आदि कई ढंग अपनाने पड़ते हैं तब कहीं जाकर पानी साफ़ होता है। इस प्रकार मन को यदि सत्पुरुषों की सुसंगति तथा सद्गुरु के बताये हुए उपदेश (सुरत–शब्द–योग) से इस मन पर बुरे संस्कार न पड़ने दिए जाएं तो यह मन मायावी संस्कारों से विमुक्त हो जाएगा और आत्मिक आनन्द को प्राप्त कर लेगा परन्तु यदि इसे इधर उधर के विचारों में उलझा दिया तो यह बुरे विचार संस्कार रूपी बीज बन जाएंगे जिन में से उसी प्रकार के वृक्षों की उत्पत्ति होगी और वैसे ही फल लगेंगे। इसीलिए सन्त महापुरुष उपदेश देते हैं कि—

॥ दोहा ॥

आँख कान मुँह ढांप के, नाम निरंजन लेय ।
भीतर के पट तब खुलें, जब बाहर के पट देय ॥

अर्थात् ये आँखें, कान और मुँह तीनों प्रधान ज्ञानेन्द्रियां हैं, इन तीनों से भले तथा बुरे विचार इन्सान के अन्दर प्रविष्ट होते हैं। आँखों को बन्द करना सहज समाधि का संकेत है तथा कानों को बन्द करना अनाहत ध्वनि एवं मुँह बन्द करना अजपा जाप का संकेत है अर्थात् आँखों से किसी बुरी ओर न देखो। जिस वस्तु को आँखें देखती हैं इस का प्रभाव मन पर पड़ता है फिर वह विचार रूप धारण कर के संस्कार बन जाते हैं तभी तो सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि हर समय इष्टदेव मालिक का ध्यान करो ताकि अन्तर्मानस में कोई और न बस सके जिस से कि सुरति एकाग्र रह कर शब्द में लीन हो जाए। कान के द्वारा ऐसी बाता को मत सुनो जिस से कि दिल में बुरे विचार पैदा हों। यह श्रवण रस ऐसा है कि शीघ्र ही दूर से कोई निन्दा, चुगली अथवा अपनी प्रशंसा की बात हो रही हो तो उसे सुन लेता है। पुनः वही विचार ही संस्कार बनते हैं। मुँह से ऐसी वाणी न निकले जिस से कि पीछे पछताना पड़े। इसलिए सन्त महापुरुष उपदेश करते हैं कि मन को बुरे विचारों से बचाने के लिए सदा मालिक के भजन सुमिरण में चित लगाओ अन्यथा इन मायावी संस्कारों का परिणाम अधिक कष्टदायक होगा। जैसे संस्कार बनते हैं वैसे कर्म भी स्वाभाविक होते जाते हैं। अतः यदि लक्ष्य को पाना चाहते हो तो ऐसे विचार ही पैदा न करो जिस से बुरे कर्म हों और वही कर्म फिर संस्कार बन जाएँ।

शुभ कर्म अर्थात् सन्त महापुरुषों की पावन संगति से शुभ विचार मिलते हैं। शुभ विचारों से शुभ संस्कार बनते हैं। शुभ संस्कारों से मन शुद्ध होकर आत्म–आनन्द को प्राप्त करने में समर्थ होता है। अतः सन्त महापुरुषों की संगति ही मनुष्य के शुभ संस्कारों को बनाने के लिए अति आवश्यक है।

प्रवचन २. सच्चा शिष्य वही है जो खुदी को मार दे। आप के प्रवचन हैं—साधारणतः मनुष्य किसी न किसी को अपना पीर (मुर्शिद) अथवा गुरु किसी न किसी रूप में मानता है। वास्तव में मुरीद नाम है मुर्दे का। जिस प्रकार मृतक (मुर्दा) प्राणी का शव कुछ भी नहीं कहता, चाहे उसे जल में बहाओ अथवा चिता में जलाओ--वह तो जीवित मनुष्य के हाथ में होता है। उसी प्रकार जीते जी सेवक को गुरु के सम्मुख बनना चाहिए। गुरु जो कुछ कहें, उनके वचनानुसार चले। किसी भी बात में अपनी बुद्धि की चतुराई न दिखावे। उनकी मौज में सदा प्रसन्न रहे। जब मन और मुर्शिद दोनों सम्मुख खड़े हों तो उस समय मन को छोड़ कर मुर्शिद की आज्ञा माने। जब यह अवस्था आ जाय तो वास्तविक अर्थों में वह मुरीद है। जब तक यह अवस्था न आये तब तक मुरीद नहीं कहला सकता। ऐसी अवस्था पूर्ण सद्गुरु की संगति तथा उन को चरण शरण ग्रहण कर सर्वस्व उन के चरणों में समर्पित करने से आती है।

अर्थात् भक्ति और अहंकार दोनों एक स्थान पर नहीं ठहर सकते। इन दोनों का आपस में वैर है। जिस हृदय में भक्ति का निवास है, वहां अहंकार का कोई काम नहीं। जिस हृदय में अहंकार ने निवास किया वहां से भक्ति दूर हो गई। जिस के दिल में अहंकार समाया हुआ हो और वह यह भी समझे कि मैं भक्ति कर रहा हूँ, यह उस की नितान्त भूल है।

भक्ति करने के लिये अथवा मुरीद बनने के लिये मान, बड़ाई, कीर्ति, अहंकारादि सब से दूर रहना पड़ता है। यह मन है ही ऐसा कि तनिक सा गुण प्रवेश करने पर इसमें अहंकार आ जाता है परन्तु अहंकार का डंक अत्यन्त भयानक है। जैसे किसी भरे हुए दूध के बर्तन में तनिक सी खटाई डाल देने पर अथवा अमृत के बर्तन में थोड़ा सा विष डाल देने पर परिस्थिति सर्वथा बदल जाती है ऐसे ही अहंकार के आने से भक्ति का रूप बिल्कुल बदल जाता है। अहंकार भक्ति की कमाई को बिल्कुल नष्ट कर देता है। सन्त चरन दास जी

फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान ।
मुक्ति मूल अधीनता, नरक मूल अभिमान ॥

अर्थः—नम्रता से ही मुक्ति मिलती है अर्थात् मुरीद बनने के लिये नम्रता का गुण आवश्यक है । अभिमान तो पतन की ओर ले जाने वाला है । अतः जब तक अहंकार की भावना विद्यमान है तब तक मुरीद नहीं कहला सकता ।

इसीलिए तो गुरुभक्ति को श्रेष्ठता दी जाती है क्योंकि अन्य साधन जप, तप, संयम, व्रत आदि मनमति अनुसार करने से स्वाभाविक ही अहंकार आ जाता है और अहंकार के आने से किए गए जप, तप का फल नष्ट होने लगता है । गुरुभक्ति में मन की साधना है । बिल्कुल मनमति का त्याग करे । किसी भी कार्य में अपने मन के ख़्याल पैदा न करे कि ऐसा क्यों हो रहा है । फिर सर्व प्रकार से अपने आप को मिटा दे तभी पूर्ण शिष्य अथवा मुरीद कहला सकता है । यह तभी हो सकता है जब समय के सन्त सत्पुरुषों की सङ्गति प्राप्त हो ।

श्री दादू दयाल साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

दादू आपा जब लगै, तब लग दूजा होइ ।
जब यहु आपा मिटि गया, तब दूजा नहीं कोइ ॥

अर्थः—जब तक ख़ुदी है तब तक परमात्मा का स्वरूप भिन्न रूप नज़र आता है । जब आपाभाव (अहंकार) मिट गया तो आत्मा और परमात्मा का एक ही स्वरूप दिखाई देने लगा ।

अतएव आप शिष्यों के लिये भी यही आवश्यक नियम बताते थे कि अहंकार एक भारी शत्रु है जो भी इस का त्याग करे, विषय वासना से रहित हो,

गुरु की सेवा तन, मन, धन से करे, गुरु के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखे वही सच्चा शिष्य है।

प्रवचन ३. जिज्ञासु की सुरति को साधना और अभ्यास में जिन आन्तरिक मंज़िलों में से होकर गुज़रना पड़ता है उनका विशद वर्णन आप सुचारू रूप से किया करते थे। अजपा-जाप, अनाहत-शब्द और सहज-समाधि के विषय में साधक के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का समाधान भी आप ऐसे सरल ढंग से किया करते थे कि साधक को शीघ्र ही समझ आ जाती। पिंड देश में चक्र-वेधन कैसे किया जाये और ब्रह्मांड में सुरति किस प्रकार निवास करती है, इस के विषय में आप फ़रमाते थे कि--स्थूल शरीर में मन, बुद्धि और चित्त ये अंश हैं। पृथ्वी यही देह है। प्रथम सुरति की धारा पिंड देश से चलती है, फिर कई कठिनाइयों को पार करती हुई ब्रह्मांड में पहुँचती है। नाभि से हृदय, हृदय से कण्ठ, कण्ठ से ललाट तक तो माया का पसारा है। इस से आगे भृकुटी के मध्य में जो लोक हैं उसे सहस्र दल कमल कहते हैं। यहां से ब्रह्मांड की मंज़िलें आरम्भ होती हैं जो सन्त महापुरुषों की चरण-शरण ग्रहण कर उन की कृपा से पार की जा सकती हैं। आप ने इस के आगे दसवें द्वार का पूर्ण रहस्य बताया जो केवल समय के सन्त-सत्पुरुषों की चरण-शरण में जाने से ही जाना जा सकता है। क्योंकि लिखने से तो वह केवल वाचक-ज्ञान बन कर रह जाता है। पुस्तकीय ज्ञान से भक्ति को आन्तरिक मंज़िलों को पार करना असम्भव है। इसी आन्तरिक मार्ग को पार करने के लिए परम सन्त श्री कबीर साहिब जी भी उपदेश देते हैं कि:—

॥ दोहा ॥

अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरु दया तें पावई, सुरत निरत करि देख॥

जो आत्मा अवर्णनीय है, जिसका कोई रंग रूप नहीं, उसे सद्गुरु की दया से देखा जा सकता है। उनके शब्द में सुरति लगा कर देखो अर्थात् पूर्ण सन्त

महापुरुषों की संगति तथा सद्गुरु के ध्यान से ही जीव आन्तरिक दृश्यों को देख सकता है।

प्रवचन ४. अपने मालिक श्री इष्टदेव के ध्यान में एकाग्रता के विषय में आप यह भजन उच्चारण करते थे कि:—

मन के लगावे सो हरि पावे, योगी या विधि मन को लगावे ॥
जैसे पतंग जरे दीपक में, प्रीत से प्राण जलावे ॥
जगमग जोत सही नहीं जावे, जोत में आन समावे ॥
जैसे नारि पनघट को जात है, सिर गागर भर लावे ॥
सखी संग से बोलत चालत, सुर्त गागर से लावे ॥
जैसे नट कला के कारण, गाढ़ा ढोल बजावे ॥
अपना बोझ साध सिर ऊपर, सुर्त बाँस से लावे ॥
मन के लगावे सो हरि पावे, योगी या विधि ध्यान लगावे ॥

अर्थः—जो प्राणी मन को ध्यान में जोड़ देता है वही मालिक को प्राप्त कर सकता है। प्रभु को प्राप्त करने के अभिलाषी ! इस साधन से मन को इष्टदेव के साथ जोड़—जैसे पतंगा दीपक पर जल जाता है और अपनी प्रीति को दृढ़ करता है। उस दीपक की ज्योति सहन नहीं हो सकती। वह ज्योति अत्याधिक प्रकाशमयी होती है तो पतंगा भी उसी ज्योति में जलकर ज्योतिर्मय हो जाता है। जैसे पनिहारिन कुएं पर पानी लेने के लिए सिर पर गागर उठा कर ले जाती है, पुनः लौटते हुए सिर पर भरी हुई गागर उठाती है। रास्ते में सखियों के संग बातें भी करती है परन्तु उसकी सुरति गागर में ही होती है कि गागर कहीं डोलने न पाए। जैसे नट अपनी कला दिखाने के लिये रस्सी पर चढ़ कर अपना ढोल बजाता है, उस का ख़्याल ढोल की सुर में होता है। इसी प्रकार ही साधु जन अपने ध्यान का केन्द्र श्री सद्गुरु के उपदेश को बनाकर अपनी सुरति को शब्द में लीन कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं।

सन्त सत्पुरुष उपदेश देते हैं कि एकाग्रता ही प्रत्येक काम की सफलता है। जिस काम को एकाग्रचित्त होकर किया जाये, वह कठिन से कठिन कार्य भी सरल बन जाता है। ऐसे ही प्रभु प्राप्ति में भी यदि मन को सांसारिक भोगैश्वर्यों से एकाग्र कर के भजन ध्यान में लगाया जाए तो अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। मन को एकाग्र करने के लिए तथा ईश्वर प्राप्ति के लिये आप चार साधन बतलाते थे—१. अभ्यास २. विचार ३. ध्यान ४. समाधि। फ़क़ीरों के क़लाम में इसे ज़िकर, फ़िकर, मराकबा और फ़ना कहा गया है। फ़ना के बाद बका है जिसे जीवन मुक्ति भी कहते हैं।

अभ्यास का अर्थ ही यही है कि किसी कार्य को नियम-पूर्वक करना अर्थात् चित्तवृत्तियों को एकाग्र करने के लिये हर समय अपने मन पर ध्यान रखना। पुनः यह विचार करते रहना कि कहीं यह चित्तवृत्तियां इधर उधर के ख़्यालों में न चली जाएँ। सुरति को शब्द में लीन करते हुये समाधि अवस्था तक पहुँचना। यही परम लक्ष्य है।

इसी प्रकार प्रभु प्राप्ति के अभिलाषी जिज्ञासु जन इन चार साधनों को ध्यान में रखते हुए अपनी चित्तवृत्तियों को माया की ओर से समेटते हैं, भक्ति की ओर लगाते हैं तथा अपने ध्यान का केन्द्र सद्‌गुरु के शब्द को बनाते हैं। सद्‌गुरु के वचन ही उनकी पूंजी बन जाते हैं। अपने जीवन को सद्‌गुरु के उपदेशानुसार बना कर लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग सुगम बनाते हैं तथा लक्ष्य को प्राप्त करते हैं।

प्रवचन ५. इन्सान का मन मोम के समान है। फिर भी न जाने मनुष्य क्यों मन की शिकायत करता है कि नाम-सुमिरण में मन नहीं लगता। यह साधारण सा दृष्टान्त कितने गूढ़ रहस्य को लिये हुए है कि जैसे मोम को पिघला कर उसे किसी भी आकार में ढाला जा सकता है। चाहे तो उसे दीपक में भर कर दीपक का आकार बना लो, चाहे गिलास में डालकर उसे गिलास का आकार बना लो, चाहे उसी पिघले हुए मोम को बूँद बूँद कर के मिट्टी में मिला दो; यह मनुष्य पर निर्भर है जैसा चाहे मोम की शक्ल बना दे। इसी प्रकार मन भी मोम

की न्याईं है। इस पर चाहो तो माया अथवा माया के विचारों का प्रभाव डालो अथवा सन्त महापुरुषों की संगति का। यह मन उसी सांचे में ढल जायेगा।

यदि इस मन पर मायावी विचारों का प्रभाव पड़ गया तो यह जीव चौरासी लाख योनियों में; आवागवन के चक्र में फँस जाएगा जिस से छुटकारा मिलना अति कठिन है। यदि सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त की जाए तो अपने मानव जन्म के लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल होगा। जैसे मोम को यदि जलाया जाए तो वह जल कर रोशनी देती है और स्वयं जल कर समाप्त हो जाती है। ऐसे ही मन को यदि गुरु भक्ति के साधनों में साध लिया जाए तो मन के विचार एवं संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं। अन्तर में उजाला हो जाता है तो क्यों न गुरु-भक्ति के संस्कार इस मन पर डाले जाएं जिस से जीव को जन्म-जन्मान्तरों तक चौरासी की यातना न झेलनी पड़े।

प्रवचन ६. समयानुसार कई बातों में परिवर्तन होता रहता है। सर्व साधारण का कथन है कि सत्य युग में मनुष्य की आयु लम्बी होती थी, स्वास्थ्य बहुत अच्छा होता था इसीलिए जीवन का आनन्द प्राप्त करते थे। कलियुग में थोड़ी आयु में स्वास्थ्य खराब हो जाता है इसलिये थोड़ी आयु में ही जीवन का आनन्द ले लेना चाहिये। इस का यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि थोड़ी आयु होने पर सुख, ऐश्वर्य-भोगों में आनन्द प्राप्त कर लिया जाए। इस का वास्तविक रहस्य सन्त महापुरुष यह बताते हैं कि सत्ययुग में भी लोग अत्यधिक समय तपस्या, साधना, गुरुभक्ति में व्यतीत करते थे। सुरत-शब्द-योग के अभ्यास से धीरे धीरे आत्म-साक्षात्कार हो जाता है, जिससे कि सत्ययुग के जीव जीवन का आनन्द प्राप्त करते थे। इसी प्रकार ही यदि कलियुग में भी सुरत-शब्द-योग साधना, गुरुभक्ति की ओर ध्यान दिया जाये तो थोड़े समय में आत्म-साक्षात्कार हो सकता है और जीवन का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि सुख भजन-अभ्यास तथा आत्मिक उन्नति पर निर्भर है, आयु पर नहीं। सन्त महापुरुष चेतावनी देते हैं कि इसी थोड़ी आयु में ही भजन सुमिरण कर जीवन का वास्तविक

आनन्द प्राप्त करो ।

प्रवचन ७. एक रोज़ अर्शाद हुआ कि:—

॥ दोहा ॥

काह न पावक जरि सकै, काह न समुद्र समाइ ।
काह न करे अवला प्रवल, केहि जग काल न खाइ ॥
यश नहीं पावक जरि सके, मन न समुद्र समाय ।
सुत नहीं अवला जन सके, नाम काल नहीं खाय ॥

आग में कौन सी वस्तु नहीं जलती ? समुद्र में क्या नहीं समा सकता ? वह कौन सा प्रबल कार्य है जो अबला नहीं कर सकती ? संसार में वह कौन है जिसे काल नहीं खा सकता ? इस का उत्तर यही है कि यश अर्थात् लोकोत्तर महापुरुषों की महिमा ऐसी है जिसे आग जला नहीं सकती। मन समुद्र से भी विशाल है। यह एक मन ही ऐसा है जो समुद्र में नहीं समा सकता। असमर्थ एवं गुणहीन नारी को अबला कहा गया है। ऐसी नारी समस्त श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न सन्तान को जन्म नहीं दे सकती। नाम अर्थात् सद्गुरु का प्रदान किया हुआ अन्तर का शब्द ही ऐसा है जिसे काल नहीं खा सकता अपितु नाम से तो काल भी भय खाता है।

अर्थात् श्री सद्गुरुदेव दयाल जी ने बताया कि संसार में रह कर सन्त महापुरुषों की चरण-शरण ग्रहण कर उन से नाम दीक्षा लो जिससे काल भी भय खाता है और समुद्र से भी विशाल मन को जीता जा सकता है। मन को समुद्र से भी विशाल इसीलिये कहा है कि मन एक सैकिंड में सात समुद्रों से पार की यात्रा कर आता है। जैसे समुद्र की सतह को पाना कठिन है वैसे ही इस मन के संकल्प-विकल्पों का मिटाना समुद्र की सतह पाने से भी अधिक कठिन है।

जहाँ किसी इन्द्रिय की पहुँच नहीं, वहां मन जाग्रति में भी सैर करता है। बिना किसी प्रकट अवस्था के कभी रोता है कभी हँसता है, कभी ठण्डे श्वास लेने लगता है। यह अपने ख़्याली पुलाव बनाता ही रहता है। कभी अपने आप

को कंगाल मानता है तो कभी लखपति। संकल्प के अनुसार उन भोगों को भी भोग लेता है जो उपस्थित भी न हों। एक सैकिंड में सात समुद्र अंड-ब्रह्मांड में सैर कर आता है। उस वस्तु को जिस को कभी देखा भी न हो या सुना भी न हो, अनुमान से सिद्ध करके देखता है। अपने आप ही प्रारब्ध को ऐसे सुनहरे भविष्य का रूप बना देता है जिस की कल्पना कई जन्मों तक नहीं की जा सकती। इसी तरह सोये हुए भी मन अपना काम करता है। शरीर तो सोया रहता है परन्तु मन स्वप्नावस्था में भी देश देशान्तरों की सैर करता है। इससे प्रकट हुआ कि यह मन अधिक बलवान् है। आप श्री परम सन्त कबीर साहिब जी का यह भजन उच्चारण करते थे:—

यह मन ज़ालिम ज़ोर री, बरजै नहिं मानै ॥ टेक ॥
जो कोई मन को पकरा चाहे, भागत सांकर तोर ॥ १ ॥
सुर नर मुनि सब पचि पचि हारे, हाथ न आवै चोर ॥ २ ॥
जो हंसा सतगुरु के होई, राखै ममता कोट ॥ ३ ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बचो गुरुन की ओट ॥ ४ ॥

अर्थः—ऐ जीव! यह मन अत्यधिक बलवान् है। इसे कितना ही रोको, फिर भी यह नहीं मानता। जो कोई इसको पकड़ना चाहे, दरवाज़े तोड़ कर अर्थात् सब साधनों को निष्फल कर भाग जाता है। देवता मनुष्य और मुनि जन सब इसे वश में करते हुए हार गए हैं परन्तु यह चोर हाथ ही नहीं आता, जो सद्गुरु का बन कर उन के श्री चरणों में इसे जोड़ देता है, गुरु की चरण-शरण ग्रहण कर लेता है केवल वही इसे काबू कर सकता है।

जहां पर मन की इतनी प्रबल शक्ति है वहाँ पर सद्गुरु की शक्ति भी अनन्त है इसे पराजित करने के लिये। सद्गुरु का शब्द, सेवा, ध्यान इसे वश में करने के अंकुश हैं। जब यह मन निष्क्रिय हुआ तो जीव को गिरावट की ओर ले जाने लगा। महापुरुष फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

यह मन भूत समान है, दौड़े दाँत पसार ।
बाँस गाड़ि उतरै चढ़ै, सब बल जावै हार ॥

यह मन भूत के समान है जब इसे ख़ाली छोड़ दो तो यह खाने को दौड़ता है । सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि जब इस का कोई काम न हो तो इसे बाँस पर उतरने चढ़ने के काम पर लगा दो तो उसकी शक्ति समाप्त हो जाएगी । अतः हर समय सद्गुरु के शब्द में मन को लगाए रखना चाहिए ताकि लक्ष्य को प्राप्त कर सके । यह बाँस अजपा--जाप का संकेत है । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ही इस की युक्ति बतलाते हैं । उनकी आज्ञा में, उनके श्री वचनानुसार चलने से ही इस बलवान् मन को वश में किया जा सकता है ।

प्रवचन ८. हमारे धार्मिक ग्रन्थों में मनुष्य की अवस्थाओं को चार भागों में विभक्त किया गया है । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास । ब्रह्मचर्य प्रथम पच्चीस वर्ष तक विद्याध्ययन, दूसरे भाग में अर्थात् गृहस्थ में अपना और अपनी सन्तान का पालन पोषण करना । तीसरी अवस्था में इन सबसे उदासीन हो कर एकान्त में अपने मन को साधना तथा चौथी अवस्था में संन्यासी बन जाना या संन्यास धारण कर लेना । इस का वास्तविक रहस्य सन्त महापुरुष यह बताते हैं कि प्रथम आयु ज्ञान प्राप्त करने के लिये है । इस आयु में जीव को आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए क्योंकि बचपन में जो संस्कार जीव के मन पर पड़ जाएँ वही बड़े होकर फलते फूलते हैं । ज्ञान लाभ ही प्रथम अवस्था है । परन्तु होता इसके विपरीत है कि इस जीवन में केवल पुस्तकीय ज्ञान को ही ब्रह्मचर्य माना जाता है ।

ज़रा विचार करके देखो कि केवल सांसारिक पुस्तकीय ज्ञान हमारी आत्मोन्नति का साधन बन सकता है ? यह ज्ञान तो शारीरिक भरण-पोषण और सांसारिक आचार-व्यवहार की शिक्षा प्रदान कर सकता है परन्तु आत्मिक विद्या का नहीं ।

ब्रह्मचर्य का अर्थ ही यही है कि ब्रह्म अर्थात् आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना। इस आयु में इस विद्या का ज्ञान आरम्भ न किया तो बड़े होकर इस विद्या को प्राप्त करने में अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि बाल्यावस्था में मायावी संस्कारों का इतना प्रभाव नहीं होता जितना बड़े होकर बढ़ जाता है। बचपन में चित्तवृत्तियों को एकाग्र करना अत्यन्त सरल है इसीलिए तो ऋषि मुनि जन अपने बच्चों को बाल्यकाल से ही आश्रमों में अध्यात्म-विद्या ग्रहण करने के लिये भेजते थे। अतएव ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ यही है कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करना।

इच्छाओं तथा वासनाओं की बढ़ोत्तरी ही गृहस्थ जीवन है। यौवन में इन्सान की इच्छाएं तथा वासनाएं बढ़ जाती हैं जो व्यक्ति इन से घिर जाता है, इनकी पूर्ति को ही अपना जीवन समझता है वही वास्तव में गृहस्थी है। सन्त महापुरुषों की दृष्टि में सन्त महात्माओं की सेवा करना तथा संसार में प्रत्येक भोगैश्वर्य के सामानों का उपभोग करते हुए विषय-वासनाओं में आसक्ति न होने का नाम ही उत्तम गृहस्थ जीवन है। सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं:—

॥ शेयर ॥

हो तू दुनिया में मगर, दुनिया का तलबगार न हो।
सिर्फ़ बाज़ार से गुज़रे, पर इस से सरोकार न हो॥

अर्थात् संसार में रहते हुए दुनिया के समस्त बाज़ार के राग-रंग तो देख मगर इन पर मोहित न हो इस तरह से ध्येय की प्राप्ति सुगम हो जाएगी।

वानप्रस्थ का यह अर्थ नहीं कि संसार को छोड़कर वनों में एकान्त में बैठ रहना। मन इतना चंचल है कि यह एकान्त में भी इसे न छोड़ेगा। जो संस्कार बाल्यकाल तथा यौवन में इस पर पड़े हुए होंगे उन की ओर बार बार दौड़ेगा। वानप्रस्थ का अर्थ है मन के ख़्यालों पर प्रतिबन्ध लगाना, चित्तवृत्तियों को विषय विकारों से एकाग्र करना। जब बचपन से ही दुष्संस्कार मन पर न पड़े हुए होंगे

तो ख़्यालों का केन्द्र लक्ष्य की प्राप्ति की ओर लगाने में देर न लगेगी। मायावी विचारों और ख़्यालों पर संयम करने के लिए श्री सद्गुरु के उपदेशानुसार धीरे धीरे प्रवृत्तियां बदलने से मन का रुख़ आत्मिक विद्या की ओर चला जाता है। बस मन को मायावी संस्कारों से मोड़ कर आत्म-ज्ञान की ओर लगाना ही वानप्रस्थ है।

संन्यास का अर्थ है शुद्ध पवित्र भावनाओं से युक्त आत्म-भाव में स्थित होना। जब जीव मन पर विजय प्राप्त कर सब इच्छाओं तथा वासनाओं से मन को मुक्त कर दे तो वही संन्यास है अर्थात् सन्त-महापुरुषों ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास के वास्तविक तत्त्व को समझाया है कि आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही इन अवस्थाओं को बनाया गया है। अतएव आत्म-ज्ञान जीवन का विशेष अंग है, वास्तविक विद्या है—जिसे ग्रहण कर जीवन बनाना है।

जैसे बादल के हट जाने पर सूर्य का दर्शन, दर्पण की मैल दूर करने से मुख का प्रतिबिम्ब या हिलते हुए पानी के ठहर जाने से उस में चेहरा प्रत्यक्ष दीख पड़ता है, उसी प्रकार मायावी बन्धनों से मुक्त होने पर आत्म-ज्ञान से हृदय बिल्कुल शुद्ध स्थिर हो जाता है तो इष्टदेव मालिक का स्वरूप दिल के दर्पण में दिखाई देता है। यही वास्तविक ध्येय है जिसे पाना है।

प्रवचन ६. किसी भक्त ने श्री चरणों में विनय की कि सन्त महापुरुषों का संसार में प्रकट होना क्यों आवश्यक है? श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया कि जैसे गोल पेंदे का घड़ा सीधा खड़ा नहीं हो सकता लेकिन जब उसके नीचे कुछ उड़कन लगा दी जाए तो उसके सहारे सीधा खड़ा हो जाता है। यदि उस उड़कन को नीचे से हटा दो तो फिर लुढ़कने लगता है। इसी प्रकार संसार एक भँवर है गोल घड़े के समान। सन्त महापुरुष इस भँवर में सहारा देने वाले हैं जिससे इस भंवर से बचना आसान हो जाता है। यदि सन्त महापुरुष इस संसार में प्रकट होकर सदुपदेशों का अमृत न बरसाएँ तो संसार इस भंवर में फंसकर काल व

माया का शिकार बन कर आवागमन के चक्र में फंस जाए जिससे छुटकारा मिलना कठिन है ।

सन्त महापुरुषों की संसार में प्रकट होने की यही विशेषता है कि एक ओर तो संसार में काल माया की अग्नि प्रज्वलित होती है, जिसमें फंसकर जीवात्मा झुलसने लगती है, दूसरी ओर सन्त महापुरुष इस अग्नि की ज्वाला को कम करने के लिये भक्ति रूपी मेघ बन कर आते हैं। विषय विकारों की अग्नि में झुलसते हुए जीवों को सदुपदेशों से सद्मार्ग दर्शाते हैं और उनकी मानसिक अग्नि को साधना द्वारा कम कर के शान्ति प्रदान करते हैं। जैसे अग्नि को शान्त करने के लिए पानी, भूख मिटाने के लिए भोजन, अन्धेरा दूर करने के लिए रोशनी की ज़रूरत है। अन्धेरा पानी अथवा भोजन से दूर नहीं हो सकता, अग्नि को शान्त करने के लिए रोशनी अथवा अन्य वस्तु सामर्थ्य नहीं रखती। ऐसे ही मानसिक शान्ति बिना सन्त सत्पुरुषों के मायावी पदार्थों से कदापि नहीं आ सकती।

मानसिक शान्ति ही जीवन का आश्रय है तथा सुखमय बनाने का एकमात्र साधन है। दुःखों से छुड़ाने की अचूक औषध है। जो जीव काम क्रोधादि विकारों की अग्नि में जलते रहते हैं, जिन्हें सत्पुरुषों की संगति प्राप्त नहीं हुई, उनकी मानसिक दशा देखो तो विदित होगा कि सुखैश्वर्य के साधनों की कमी न होते हुए भी उनका जीवन दुःख रूप बना हुआ है। चिन्ता की अग्नि में दिन रात झुलस रहे हैं और जीवन सांसारिक ऐश्वर्य की ओर से स्वर्गमय होता हुआ भी मानसिक शान्ति की तरफ़ से नरकमय बना हुआ है। ऐसे अगम, अथाह विषय विकारों के विष से भरे हुए संसार सागर में सत्पुरुष ही एकमात्र आश्रय हैं जो इसका तट दिखाते हैं, भंवर में डूबने से बचाते हैं। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं ।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकड़ै बाहिं ॥

भवसागर अर्थात् संसार रूपी सागर की भंवर अथवा आवागवन का चक्र इतना प्रबल है कि जीव इस भंवर से अपने बल से नहीं बच सकता। माया की वायु इस भंवर को और भी तेज़ कर देती है जिससे जीव बार बार अन्यान्य योनियों का शिकार बन कर भवसागर में ग़ोते खाता है परन्तु सद्गुरु ही ऐसे शक्तिशाली हैं जो इस संसार सागर में ग़ोते खाते हुए जीव की बांह पकड़ लेते हैं और सागर में डूबने के भय से बचा लेते हैं।

सभी ग्रन्थों की वाणियां तथा सत्पुरुषों के यही सदुपदेश हैं कि सद्गुरु के बिना भवसागर में सहारा देने वाला अन्य कोई नहीं। श्री दरिया साहिब जी अपनी वाणी में लिखते हैं—

॥ दोहा ॥

डूबत रहा भवसिंध में, लोभ मोह की धार ।
दरिया गुरु तैरू मिला, कर दिया पैले पार ॥

अतएव सन्त महापुरुष भव सागर के मांझी बनकर अवतरित होते हैं। सांसारिक दुःखों से छुटकारा दिला कर मानसिक प्रसन्नता प्रदान करते हैं। आवागमन के चक्र से छुड़ाते हैं इसीलिए संत सत्पुरुषों की नितांत आवश्यकता है।

प्रवचन १०. काले कम्बल पर यदि स्याही की बोतल भी उड़ेल दी जाए तो उस कम्बल के रंग रूप में कुछ अन्तर मालूम नहीं होता। स्याही तो बिल्कुल नज़र नहीं आती परन्तु जब कम्बल धुलेगा उस समय स्याही निकलेगी। परन्तु सफ़ेद कपड़े पर यदि ज़रा सी स्याही भी लगा दी जाये तो उसका धब्बा दूर से दिखाई देगा। इसी प्रकार इन्सान जन्म जन्मान्तरों से माया के पंजे में आया हुआ है कि काले कम्बल की न्याईं इसे पता ही नहीं चलता कि मुझ पर माया के कितने आवरण चढ़े हुए हैं। जब मनुष्य सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त करता है तो यह माया के झीने आवरण दूर होते हैं। मायावी जीव को इस का कुछ भी ज्ञान नहीं। इस की अपेक्षा गुरुमुख जन सफ़ेद वस्त्र के समान हैं जब भी माया

तनिक अपना प्रभाव उन पर डालने के लिए उद्यत होती है या डालती है तो सफ़ेद वस्त्र पर धब्बे की न्याईं दूर से दिखाई देती है। अतः गुरुमुख शीघ्र ही धब्बे को दूर करने में तत्पर रहते हैं।

गुरुमुख और मायावी जीव में कितना अन्तर है। कहां तो माया के इतने आवरण चढ़े हुये हैं कि उसे अपनी हानि लाभ का कुछ पता ही नहीं चलता। स्याह मन पर क्या पता चले कि सफ़ेदी किसे कहते हैं? जैसे अंधेरे में मार्ग दिखाई नहीं देता परन्तु चमगादड़ पक्षी अन्धेरे को ही प्रकाश समझता है, ऐसे ही माया की जंज़ीरों में जकड़े हुये मायावी जीव की दशा है। वह समझता है कि दुनियावी सुखैश्वर्यों के भोगों में विषय वासनाओं की पूर्ति करना ही जीवन है। यही कारण है कि तृष्णा, लोभ, वासनाओं में जकड़ा हुआ मनुष्य इसी अंधकार में ही भटक रहा है। उसे इस अन्धेरे में जीवन व्यतीत करना ही सुखमय प्रतीत होता है।

कितनी भूल है, कितनी अज्ञानता है कि विष को कोई अमृत समझ कर पी ले तो विष अपना प्रभाव अवश्य दिखाएगा ही। ऐसे ही मायावी जीव इस मायावी विषयों के विष को पीने में दिन रात लगे हुए हैं परन्तु उन्हें इस के प्रभाव का ज्ञान नहीं। इस का प्रभाव कितना भयंकर है कि आवागमन में चौरासी का चक्र तथा साथ में अत्यन्त दुःखदायी नरकों की असहनीय यातना सहन करनी पड़ेगी। इतना कुछ होते हुए भी मनमुख (मन के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले) इस ओर से बिल्कुल ही गाफ़िल हैं।

इसके विपरीत गुरुमुखजन जो कि माया और भक्ति के भेद को समझते हैं, जब भी माया उन पर अपना प्रभाव डालने लगती है तो वे शीघ्र ही इस ओर से बचने का उपाय करते हैं अर्थात् नाम और सद्गुरु के ध्यान तथा अभ्यास में अधिक चित्त लगाते हैं।

इस प्रकार गुरुमुख गुरु की कृपा के पात्र बने रह कर माया के अन्धेरे से बच कर

प्रकाश के मार्ग में चलते हैं और जीवन के ध्येय को प्राप्त कर लेते हैं।

प्रवचन ११. जिसके पास विद्या हो परन्तु नम्रता न हो वह मूर्ख है। विद्या वह कहलाती है जिस से मनुष्य ईश्वर-परायण हो जाए। जिसने विद्या का अर्थ धन जोड़ना और बुद्धिमत्ता दिखाना ही बना लिया उसने सोना दे कर मिट्टी ख़रीद ली। महापुरुषों का कथन है कि:—

॥ दोहा ॥

विद्या कर मद हत सुजन, खल को मद उपजन्त।
जिमि भानु प्रकाश ते, उल्लू अन्ध करन्त॥

विद्या सज्जन के पास गई हुई उसके (मद) अहंकार का नाश कर देती है परन्तु वही यदि दुर्जन के हाथ में चली जाए तो उसमें अभिमान को बढ़ाने वाली बन जाती है। जैसे सूर्य अपने प्रकाश से तीनों लोकों को जगमगा देता है परन्तु उल्लू नाम का पक्षी उस प्रकाश से अन्धा हो जाता है उसे अन्धेरे में ही रहना प्रिय लगता है।

प्रवचन १२ तीन का अक्षर (३) जीव है और छः (६) का अक्षर परमात्मा। संसारी जीवन छत्तीस (३६) अंक के समान है जिस में जीव की पीठ परमात्मा की ओर है और मुँह संसार की तरफ़ है। भक्तिवान् जीव ६३ के समान है जिस में जीव ईश्वर के सम्मुख है।

अर्थात् संसार में लिप्त जीव ३६ के समान है जब मनुष्य सन्त-महापुरुषों की चरण-शरण ग्रहण कर लेता है तो वह ६३ बन जाता है। इसका अर्थ यह है कि जीव (३ का अंक) इष्टदेव (६ का अंक) का ध्यान लगाए हुए है। जैसे सूर्य की ओर मुंह करने से परछाई पीछे पीछे भागती है और सूर्य की ओर पीठ करने से परछाई आगे आगे दौड़ती हुई हाथ नहीं आती। ऐसे ही माया का हाल है अतः इष्टदेव के उपदेशानुसार शब्द में सुरति लगाना ही जीव का परम कर्त्तव्य

है। सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है:—

॥ दोहा ॥

जग से छत्तीस होय रहो, राम चरण छः तीन ।
तुलसी हिये विचारिये, यह मत्तो परवीन ॥

अर्थः—संसार से ३६ बन कर अर्थात् पीठ देकर रहना चाहिए और भगवान् की ओर ६३ की न्याईं। अर्थात् हर समय इष्टदेव श्री सद्गुरु जी का ध्यान करना और उनके शब्द में सुरति जोड़नी चाहिए। सन्त तुलसीदास जी का कथन है कि ऐसा करना ही बुद्धिमत्ता है।

प्रवचन १३. परमात्मा एक है। उस तक पहुंचने के मार्ग अलग अलग हैं। योग, यज्ञ, तप, साधन, व्रत-नियम आदि सब उस मंज़िल तक पहुंचने के मार्ग हैं। परन्तु इन मार्गों में भी भेद है। जैसे एक मकान की छत तक पहुंचने का एक साधन सीढ़ियां हैं, दूसरा साधन लिफ़्ट है। अब विचार किया जाए तो मंज़िल पर तो दोनों मार्ग पहुंचा देंगे। लेकिन इन दोनों मार्गों में अन्तर है। सीढ़ियों से कुछ शारीरिक थकान भी होगी और कुछ समय भी लगेगा। लिफ़्ट से शीघ्र ही बिना थकावट के मनुष्य मंज़िल पर पहुंच सकता है।

ऐसे ही व्रत, तप, संयम, साधन परमात्मा से मिलने के साधन तो हैं परन्तु इस रास्ते से मंज़िल तक पहुंचने में समय अधिक लगता है। सन्त महापुरुष प्रेम-भक्ति को सर्वोत्तम साधन बताते हैं। उन का उपदेश है कि सद्गुरु का शब्द लिफ़्ट है। जब इस सुरति का शब्द रूपी लिफ़्ट से कनैक्शन जोड़ दिया तो यह सुरति मालिक के ध्यान में स्थिर होकर मंज़िल को शीघ्र प्राप्त करने में समर्थ हो जाएगी। यही प्रेम-भक्ति ही मालिक की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। अतः इस सर्वोत्तम साधन से मंज़िल को पाना ही मनुष्य जन्म का वास्तविक ध्येय है।

प्रवचन १४. बाहरी पदार्थों से उत्पन्न सुख से स्थायी सुख की आशा रखना

भ्रम है। कारण यह है कि बाहर के बाहरी भोग तो रोग के समान होते हैं क्योंकि जितनी भी भोगैश्वर्यों के साधन जुटाने की कामना बढ़ती जाती है उतना ही अधिक मनुष्य चिन्ताग्रस्त तथा अशान्त होता जाता है। चिन्ता तो चिता से भी अधिक हानिकारक है। चिन्ता से अनेकों शारीरिक व मानसिक रोग लग जाते हैं जिस का परिणाम यह होता है कि मनुष्य शारीरिक तथा मानसिक दुःखों से पीड़ित होकर सुख का सांस भी नहीं ले सकता।

इसके विपरीत सर्व सुखों को देने वाली गुरु भक्ति तथा निज स्वरूप का ज्ञान ही है। भक्ति से ही निज स्वरूप का ज्ञान होता है कि वह आत्मा उस परमात्मा का अंश है। यह भीतरी आनन्द है जो दिखाई तो नहीं देता परन्तु अनुभव होता है। इस आनन्द के आने पर मानसिक चिन्ताओं से मुक्ति मिलती है। इस लोक में सुख से जीवन व्यतीत करते हुए परलोक भी सुखमय बनता है।

प्रवचन १५. दूध और पानी सुगमता से आपस में मिल जाते हैं परन्तु दूध का मन्थन कर के माखन या दूध का दही जमा कर उसे मथ कर माखन निकाला जाए और फिर उस माखन को पानी में डालें तो माखन पानी में नहीं मिलता अपितु उस के ऊपर तैरने लगता है। इसी प्रकार भक्ति और माया दूध और पानी के समान हैं। कभी मन भक्ति की ओर जाता है तो कभी माया की ओर निरन्तर भटकता रहता है। जब सद्गुरु द्वारा बताए गए निरन्तर अभ्यास से मन को संसारी विषयों से हटाकर मालिक के शब्द में लगा दिया जाए, सुरति को उसी रूप में लीन कर दिया जाए तो फिर चाहे घर रहो अथवा जंगल में, वह मन फिर माखन की तरह माया से अलग रहता है।

प्रवचन १६. परमात्मा अलख, अगोचर और अनामी है। इसलिए उसका न कोई रूप है न नाम। जिस वस्तु का न कोई नाम हो और न रूप, वह इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता। जितनी भी नाम तथा रूप वाली वस्तुएँ हैं, ये सब माया के कार्यालय हैं। माया स्थूल रूप बना कर चमक दमक के साथ सब के सामने

आती है। चित्रों की वस्तुएँ बिल्कुल सत्य दिखाई देती हैं परन्तु यदि उन्हें कोई प्राप्त करना चाहे तो वह प्राप्त नहीं कर सकेगा। चित्रों पर बने हुए भोजनादि से किसी की भूख शान्त नहीं होती। यदि कोई इन से भूख मिटाना चाहे तो यह उस की नितान्त भूल है। यह तो यथार्थ की नकल है। महापुरुष फ़रमाते हैं:—

॥ शेयर ॥

बाग़े दुनिया ब–हक़्क़ीत, चमन–ए–तस्वीर अस्त।
ज़ीं गुलिस्तां गुले मक़्सूद, बदामां म–तलब ॥

ऐसे ही माया की सब सूरतें झूठी होकर भी सच्ची दिखाई देती हैं परन्तु यह विशेष विचार करना है कि संसार की माया न किसी की हुई है न है और न बनेगी ही। यह जिसके पास जाती है वह यह समझने लगता है कि अब यह मेरी बन गई परन्तु वह तो पारे की तरह हाथ से निकल जाती है। इस की रीति ही ऐसी है कि इस से सदा के लिये किसी को प्रसन्नता नहीं मिलती। आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस को संसार का जितना अधिक सुख तथा भोग मिलता है वह सदा उससे अधिक की इच्छा रखता है और प्राप्त न होने पर वह उस इच्छा की खोज में तड़पता है।

यही कारण है कि सन्त महापुरुष निज स्वरूप (अलख-अगोचर) का ज्ञान कराने के लिये स्वयं स्थूल शरीर को धारण करते हैं ताकि उस सत्-चित्-आनन्द का रूप दर्शा सकें। सन्त चेतावनी देते हैं कि ऐ जीव! तू माया को स्वप्नवत् समझ। उस परम आनन्द को प्राप्त कर, जिसको प्राप्त करने के पश्चात् किसी दुःख, ग़म व क्लेश का नाम ही न रहे। इस आनन्द को प्राप्त करने के बाद फिर किसी भी ऐन्द्रियक सुख की चाह न होगी। सन्त महापुरुष स्वयं इस आनन्द के दाता होते हैं और इसी आनन्द को प्राप्त करने की युक्ति बताते हैं।

प्रवचन १७. एक दिन सत्संग में एक भक्त ने विचार प्रकट किया कि जिस

समय मनुष्य के दिल में बुरे ख़्याल पैदा न हों तो समझना चाहिए कि उसका मन मर गया है। इस पर एक दूसरे भक्त जी बोल उठे कि यह ठीक नहीं है। वास्तव में मनुष्य से बुरे कर्म न हों तो उसका मन मरा हुआ समझना चाहिये परन्तु वे दोनों आपस में कोई निर्णय न कर सके। तब श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! आप ही कुछ फ़रमाइये। श्री वचन हुए कि जिस समय अच्छे या बुरे विचार दोनों उठने बन्द हो जायें उस समय समझना चाहिए कि मन मर गया है क्योंकि जब विचार ही नहीं उठेंगे तो कुकर्म स्वयमेव ही न हो पाएंगे। अच्छे या बुरे दोनों विचार हैं बन्धन का कारण ही—एक यदि लोहे की बेड़ी है तो दूसरी सोने की।

प्रवचन १८. गुरु शब्द की व्याख्या करते हुए आप फ़रमाया करते थे:—

॥ दोहा ॥

'गु' अन्धेरा जानिये, 'रू' कहिये परकास।
मेट अज्ञान ही ज्ञान दे, गुरु नाम है तास॥

अर्थ:—अन्दर के अज्ञान और अन्धकार को मिटा कर जो पूर्ण ज्ञान दे वही गुरु है। अर्थात् पूर्ण गुरु वही है जो पूर्ण भक्ति से सम्पन्न हो, अपने धर्म-ग्रन्थों, शास्त्रों और वेदों के आशय को समझने वाला हो, समद्रष्टा अर्थात् ईश्वर को सब में व्यापक एक समान देखने वाला हो। शिष्य को ईश्वर से मिलाने वाला, भक्ति में लगा देने वाला और उसकी शंकाओं का समाधान करने वाला हो वही सर्वगुण सम्पन्न गुरु-पद का अधिकारी है। आत्मिक दृष्टि द्वारा उन में कभी द्वैत—दृष्टि नहीं आती। वह श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, शौर्य आदि दैवी गुणों से सम्पन्न होते हैं। श्रोत्रिय वह है जो केवल शास्त्रों को जानता है। निष्ठावान् वह है जो केवल ब्रह्म को जानता है। निष्ठावान् गुरु ही ब्रह्म का साक्षात्कार करा सकते हैं। इन्हीं को सद्गुरु कहते हैं। ऐसे सद्गुरु ही दूसरों को आत्मा का वास्तविक रूप

दर्शाते हैं।

प्रवचन १६. संसार भी एक जीवन वृक्ष है जिस की डालें लोक-लोकान्तर तक फैली हुई हैं। इसका सर्वोत्तम फल मनुष्य शरीर है। इसीलिए इस की बड़ी महिमा है और इसे सर्वोत्तम माना गया है। मनुष्य जन्म को पाकर जब तक मनुष्य अपने आत्म स्वरूप को नहीं पहचानता तब तक यह अधूरा है। मनुष्य जन्म पाकर यदि काम अन्य योनियों अर्थात् पशुओं जैसा करे और समझे कि मैं श्रेष्ठ हूँ यह उसकी भूल है। यह काम तो उसने सामान्य बुद्धि से ही किया क्योंकि परमात्मा ने मनुष्य को दो प्रकार की बुद्धि प्रदान की है—

१. सामान्य बुद्धि २. प्रधान बुद्धि।

सामान्य बुद्धि वह है जिसमें विवेक-अविवेक की क्षमता न हो। जिस प्रकार अन्यान्य योनियां पेट पालन में लगी हुई हैं उसी प्रकार केवल शारीरिक सुखोपभोगों को जीवन का ध्येय समझना। प्रधान बुद्धि—सन्त सत्पुरुषों की संगति से जिस में सत् असत् के विवेक की क्षमता आ गई है और उसने सत् कार्य अर्थात् आत्मिकोन्नति के मार्ग की ओर क़दम बढ़ाने आरम्भ किये हैं वह प्रधान बुद्धि कहलाती है।

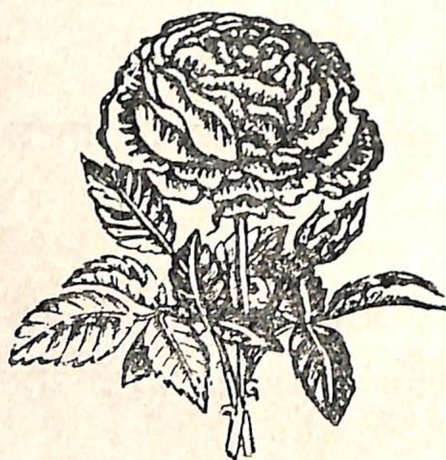
इस प्रकार यदि मनुष्य ने सामान्य बुद्धि से काम लिया तो मानो रूप और नाम से मनुष्य बन गया परन्तु पशु पक्षी आदि योनियों से उसका दर्जा श्रेष्ठ नहीं क्योंकि:—

पसू मिलहि चंगिआईआ खड़ु खावहि अंमृतु देहि॥
नाम विहूणे आदमी ध्रिगु जीवण करम करेहि॥

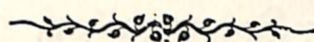
अन्य योनियों को तो ज्ञान बुद्धि प्राप्त ही नहीं हुई यह तो केवल मनुष्य को ही मिली है। फिर भी यदि मनुष्य सामान्य बुद्धि से काम लेता जाए, सत्पुरुषों

की संगति से वंचित रह कर आत्मिक उन्नति की ओर पग न बढ़ाए तो उस ने मनुष्य जन्म रूपी फल का दुरुपयोग किया । उसकी प्रधान बुद्धि ने सुप्तावस्था में ही अमूल्य मानव-हीरे को खो दिया । जब एक बार मानव जन्म हाथ से निकल गया तो चौरासी की यंत्रणाओं के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा, फिर चाहे कोई पश्चात्ताप करे अथवा सिर धुन धुन कर पछताए ।

अतएव इस मानव जन्म रूपी हीरे को पाकर प्रधान बुद्धि द्वारा इस जन्म की कीमत पहचाननी है और आत्मिक उन्नति करते हुए इस मनुष्य जन्म का लाभ उठाना है ।



श्री श्री १०८ श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज



॥ दोहा ॥

कोटि कोटि मम वन्दना, सन्तन के सरताज ।
प्रकटे दिव्य छटा लिये, श्री द्वितीय महाराज ॥
अनुपम तेज ललाट पर, अरुणाधर मुस्कान ।
रसना से मृदु मधु वचन, करत अजान सुजान ॥
जन जन में भरते रहे, आत्म ज्योति अपार ।
तिमिर अविद्या का मिटा, अतुल किया उपकार ॥
एक मेक जब होइ है, ध्याता ध्येय रु ध्यान ।
तब ही प्रभु को पाइये, यह तुम दीन्हा ज्ञान ॥

संसार को देखने से मालूम होता है कि इस का कण-कण एक विशेष नियम में बँधा हुआ है। सृष्टि नियन्ता (नियन्त्रण रखने वाला) ने जिस प्रकार इसे नियमों में बांधा है उसे देख कर मानव बुद्धि आश्चर्य में पड़ जाती है । प्रकृति मूक (मौन) रूप से अपने काम में लगी हुई है। वह कार्य की रूपरेखा का प्रबन्ध रंगमंच (Stage) पर नाटक खेलने से पहले ही कर देती है अर्थात् जिस मनुष्य ने जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करना हो उसे जन्म से ही उन भाग्य रेखाओं में बांध देती है। फलस्वरूप उधर श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी (श्री पहली पादशाही जी) भारत के बिहार, राजस्थान आदि प्रदेशों में सोई मानवता

में जागृति की धारा प्रवाहित कर रहे थे। सर्वसाधारण को भक्ति-परमार्थ का पथ दर्शा रहे थे। इधर सीमाप्रान्त में कसबा टेरी में इस अमर सत्यता की ज्योति को युग-युगान्तरों तक प्रज्वलित रखने के लिए प्रकृति ने पूर्व ही सुव्यवस्था कर दी थी।

प्रकृति के अटल नियमानुसार जहाँ प्यासा पानी की पुकार आतुरता से करता है तो पानी का प्रबन्ध भी वहीं हो जाता है। चात्रिक के लिए स्वाँति जल, चकोर के लिए चन्द्रमा, मयूर के लिए बादलों की मधुर छटा की सुव्यवस्था कर देना अनादिकाल का अटल नियम है अर्थात् जहाँ पर जितनी आकुलता से जिस वस्तु की मांग की जाती है उतनी ही जल्दी उस का प्रबन्ध भी पूर्व निश्चित है। अध्यात्मवाद में भी यह सिद्धान्त अर्थात् सीना-ब-सीना एक दिल से दूसरे दिल तक आत्मिक शक्ति का पहुँचना सनातन परम्परा है। इसीलिये महापुरुषों का अवतरण भी उसी स्थान व उसी निर्धारित समय पर होता है जहाँ उन्हें विह्वल स्वर से पुकारा गया हो। उस स्थान पर उस अभाव की पूर्ण रूप से प्रतीति होती हो।

इसी हेतु सम्पूर्ण भारत में जागृति लाने के लिए सन्त महापुरुषों के प्रकट होने की आवश्यकता थी। उस समय भारत में पाप वृत्ति का अधिक बोलबाला था। श्री परमहंस दयाल जी ने नामोपदेश का प्रचार तो आरम्भ कर दिया था; परन्तु सम्पूर्ण भारत में इसकी किरणें न पहुँच पाई थीं। जैसे कि ऊपर कहा गया है कि जो स्थान जितनी आतुरता से पुकार करता है वहीं पर सन्त-महापुरुष अवतरित होकर उसे आश्वासन देते हैं। इस नियमानुसार सीमाप्रान्त ने प्रभु आगमन के लिए उस काल में आतुरता प्रकट की; क्योंकि वहाँ सब स्थानों से अधिक अनाचार और पाप का विस्तार था। वहां इस अमर ज्योति की किरणें अभी न पहुँच पाई थीं। कुछ मनुष्य ऐसे भी थे जिनमें मानवीय भावनाएँ अर्थात् प्रभु के प्रति कुछ अनुराग था किन्तु वे इन राक्षसी वृत्ति के मानवों के भय से आतंकित थे। ऐसे भक्त लोगों की 'त्राहि-त्राहि' की पुकार वायु की तरंगों के साथ देवलोक में जा पहुँची। देव, किन्नर, गन्धर्व आदि देवता भी इसी पिशाचिनी

माया से पराभूत होने के भय से उद्विग्न थे कि कहीं भक्ति-परमार्थ और ब्रह्म-ज्ञान का सूर्य अस्ताचल की ओर न चला जाय, इस पथ को उन्नति के शिखर पर पहुँचाने के लिये उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की। फल यह हुआ उस समय सीमाप्रान्त की विचित्र कुप्रवृत्तियों से युक्त परिस्थितियों को बदलने की व्यवस्था प्रकृति ने कर दी। श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज अलौकिक प्रतिभा, अनुपम छटा और भक्त मनोहारिणी सुमंजुल छवि को धारण कर धुरधाम से दिव्य ज्योतिर्मय सन्त रूप में प्रकट हुए। उस समय वहां सीमाप्रान्त की दशा ठीक इस प्रकार थीः—

॥ चौपाई ॥

विपथ गामिनी भइ अस करणी। करहिं अनीति जाय नहिं बरणी ॥
धर्म हेतु जब भक्त पुकारा। सुनि क्रन्दन श्री करुणागारा ॥
प्रभु प्रकटै सद्गुरु स्वरूपा। नासत भव भय सकल अनूपा ॥

कि जब भक्तों ने व्याकुलता से पुकार की तब प्रभु सन्त रूप में अवतरित हुए। इस का अर्थ यह नहीं कि केवल प्रभु ने सीमाप्रान्त वासियों के कल्याणार्थ ही अवतार लिया, वे तो इस धराधाम पर जन जन को धुरधाम अनामी लोक का सन्देश देने के लिए आये थे। सीमाप्रान्त को तो महत्त्व इसलिये दिया गया है कि वहाँ की उस समय की परिस्थितियों ने किसी महापुरुष के आगमन की न्यूनता को प्रकट किया, जिस से सर्वज्ञ अन्तर्यामी प्रभु को जन्म-स्थान सीमाप्रान्त में टेरी ही बनाना पड़ा। जिस प्रकार एक निपुण किसान ही जानता है कि किस भूमि पर हल चलाना है, कहाँ पर बीज बोना है और कहाँ सिंचाई की आवश्यकता है। इसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ब्रह्मनिष्ठ परा-विद्या के स्वामी ही इन सब गुणों से सम्पन्न थे और पहचानते थे कि किस स्थान पर किस प्रकार से सत्य नाम का बीज डालना है तथा भक्ति के नन्हें पौधे को अंकुरित कर फल फूलों से भरना है। जिस स्थान पर महापुरुष, पीर, पैग़म्बर अवतार धारण करते हैं—उनके चरण-स्पर्श करते ही वह भूमि भाग्यशालिनी बन

जाती है। यही कारण था कि श्री सद्गुरुदेव जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने अवतार धारण करते समय सीमाप्रान्त के भाग्य जगा दिये।

अवतरण

बसन्त की सुहानी ऋतु–ऋतुराज बन कर ऋतुओं पर शासन करने आई। कलियों ने मुस्कान के साथ घूँघट खोले। नव–पल्लवों (नए पत्तों) ने कोमलांगों द्वारा ऋतुराज का स्वागत किया। भ्रमर पुष्प–पुष्प पर गुँजार भरने लगे। हरी हरी दूब ने पृथ्वी को मखमली गलीचे से ढक दिया। ऋतु के साथ प्रकृति भी मुस्कराई। नभ से देवताओं ने पुष्प–वृष्टि की। आह्लाद की एक मधुर झंकार के साथ भक्त–हृदय हर्षित हो उठे। सीमाप्रान्त के कोहाट ज़िला, बांडा तहसील में स्थित कसबा टेरी में तीन सम्भ्रान्त कुलों में से एक वासुदेव कुल था। इस वासुदेव कुल के उच्च प्रतिष्ठित घराने में हमारे चिरस्मरणीय अभिनन्दनीय श्री श्री १०८ श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज ने अवतार लिया।

आप ने वासुदेव कुल में दिनांक १ फ़रवरी सन् १८८४ ई० तदनुसार २० माघ संवत् १९४० विक्रमी बसन्तपंचमी शुक्रवार के शुभ दिन इस धरती के भाग्य जगाने के लिए अवतार धारण किया। पूज्य लाला प्रभु दयाल जी आपके पूज्य पिता जी तथा सुश्री राधा देवी जी को माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप का शुभ नाम श्री बेली राम जी रखा गया। संकटमोचन भक्त–वत्सल श्री सद्गुरु देव महाराज जी के अवतार धारण करते ही वासुदेव कुल सचमुच धन्य हो गया। कहा भी सत्य है कि:—

॥ दोहा ॥

धन्य मातु पितु धन्य कुल, भवन सुहृद परिवार।
ज्ञान भानु परकासिया, तिहुँ लोक उजियार॥

धन्य हैं टेरी भाग्य तव, प्रभु लीन्हा अवतार।
भव वारिधि से तारने, धरा रूप साकार ॥

शास्त्रों में भी उस कुल को पवित्र, माता को पवित्र तथा धरती को पुण्यवती कहा गया है। आप जन्म-जात अवतारी पुरुष थे। आपने जन्म से पहले ही अपनी अलौकिक प्रतिभा का प्रदर्शन करा दिया। कहा जाता है कि आप जब माता जी के गर्भ में थे तो माता श्री मति राधा देवी जी को अपने अन्दर से मूलमन्त्र तथा अनाहत ध्वनि में बांसुरी की आवाज़ आती थी। कई बार माता जी कहतीं– "पता नहीं मेरे कानों में कौन बांसुरी बजाता है?" आप के जन्म से कुछ समय पहले माता जी की वृत्ति दान–पुण्य में मुक्त हस्त (खुले हाथों) हो गई थी। यदि कोई रोकता तो उत्तर में माता जी कहतीं—"मेरे तो वश की बात नहीं। मेरे तो केवल हाथ हिलते हैं, आदेश किसी और का है।" इस प्रकार द्वार पर जो भिखारी, साधु, फ़कीर आया; कभी ख़ाली न लौटा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के जन्म के पश्चात् माता जी का अनाहत भी बन्द हो गया। जब आप ने जन्म लिया तो अन्य उपस्थित सम्बन्धियों तथा माता ने देखा कि सहसा एक दिव्य प्रकाश हुआ। जन्म के समय आप के मुखमण्डल पर साधारण बालकों जैसे रोने–धोने के चिन्ह न थे। अरुण अधरों पर मृदुल मुस्कान खेल रही थी। आप के शुभ आगमन से प्रकृति ने प्रसन्नता का शुभ सन्देश दिया। चारों ओर बहारें छा गई।

प्रायः देखने में आता है कि दिव्य विभूतियों का सम्मान इन चार स्थानों पर नहीं होता—१. जन्म स्थान २. बन्धु–बान्धव ३. अपना परिवार और ४. बाल सखा। आपने अलौकिक शक्ति से यह आश्चर्य में डाल देने वाला कार्य भी कर दिखाया कि सीमाप्रान्त में प्रकट होकर वहाँ के निवासियों में भक्ति की प्रज्वलित ज्योति को भर दिया।

आप ने टेरी में बाल–लीला से भक्ति–अमृत का ऐसा स्रोत बहाया कि सभी नगरवासी एवं घर में सब पर एक अनूठा प्रभाव पड़ा। वहाँ के वयोवृद्ध लोग

जब आप के दिव्य स्वरूप तथा अलौकिक लीलाओं को देखते तो सहसा कह उठते—यह तो कोई अवतार हैं, साधारण पुरुष नहीं। घर घर में आप की पूजा हुई। उन लोगों की श्रद्धा–विश्वास तथा प्रेम की अनन्यता का आदर्श अन्यत्र मिलना कठिन है।

प्रकृति का यह नियम है कि वह भावी निर्माताओं के लक्षण बाल्यकाल की झांकियों में प्रदर्शित कर देती है। इसी तरह आप के बाल्यकाल की अठखेलियां इसी सत्य को स्पष्ट करती हैं कि आप जन्म-जात अवतारी, पूर्ण तत्त्व–ज्ञानी महापुरुष थे। आप की अवस्था अभी चालीस दिन की ही थी कि एक जटाधारी फ़क़ीर आपके घर के बाहर आकर धूनि रमा कर बैठ गया। पूज्या माता जी द्वार पर आकर फ़क़ीर को देख अन्दर से कुछ भिक्षा देने के लिये पुनः बाहर आईं। फ़क़ीर ने कहा माई! हमें तो आप के बालक का दीदार करने की भिक्षा चाहिये। माता जी ने आप को बाहर न लाने के लिये स्पष्ट कह दिया। उस के दिल में विचार आया कि फ़क़ीर जन्त्र मन्त्र से न जाने बच्चे पर कोई प्रभाव न डाल जाए। माता जी ने अत्यधिक कहा कि बाबा! बच्चा तो किसी दशा में भी बाहर नहीं लाना परन्तु बाबा जी भी अपने हठ पर अड़े रहे तथा धूनि रमा कर अलख जगाने लगे।

इस वाद–विवाद को देखकर पड़ोसी स्त्रियों की भीड़ जमा हो गई। पंडित हेमराज जी भी किसी कार्यवश वहां आ पहुँचे और उन्होंने इस वृत्तान्त के विषय में पूछा। फ़क़ीर ने अपनी इच्छा प्रकट कर दी। पंडित जी कहने लगे—माता जी इस में हानि ही क्या है, एक बार बालक को बाहर ले आओ। फ़क़ीर सदा दुआ ही देते हैं। इतना कह कर वे स्वयं अन्दर गये और आप को लाकर बाबा के सामने किया। फ़क़ीर ने हाथ फैला कर आपको उठा लिया। कुछ देर तो वह आपको देखता रहा फिर उसने बड़े प्यार से धीरे से कहा–"क्या बाबा को पहचानते हो? आप उस के चेहरे पर देख कर हँसने लगे। उस ने एकदम आप को वक्षःस्थल से लगाया, प्यार किया और पुनः पंडित जी के हाथ में दे दिया।

पंडित जी आप को अन्दर सुलाने के लिए गये तो उन्हें ख़्याल आया कि फ़क़ीर को भोजन आदि अवश्य कराना चाहिये। वे आप को सुला कर शीघ्र ही बाहर आए और देखा तो फ़क़ीर जी न जाने कहां चल दिए। पंडित जी उन्हें ढूँढने लगे क्योंकि वे पहुँचे हुए फ़क़ीर दिखाई देते थे उन्हें भोजन अवश्य कराना चाहिये था परन्तु वे फ़क़ीर उन्हें कहीं भी न मिले। ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वर्ग से देवता भी आप के श्री दर्शन की इच्छा से वेष बदल कर अपनी मनोभावना पूर्ण करना चाहते थे। इस रहस्य को जीव बुद्धि नहीं समझ सकती कि वे बाबा जी कौन थे तथा आप ने मुस्करा कर उन की हार्दिक अभिलाषा को पूर्ण कर उत्तर दे दिया।

इसी प्रकार आपके बाल्यकाल की झांकी का एक अलौकिक दृश्य यह भी है– टेरी से तीन मील की दूरी पर एक पर्वत के एक पत्थर पर देवी का चित्र अंकित था। लोग हर नवरात्रों में उसकी पूजा करने के लिये जाया करते थे। अभी आप की आयु तीन मास की हुई होगी कि आप की माता पूज्या राधा देवी जी भी नवरात्रों का पूजन करने के लिए परिवार सहित उस पर्वत पर गईं। सारी रात जागरण होने के कारण उसने आप को एक ओर किसी पत्थर पर लिटा दिया। कुछ समय पश्चात् जब वह आपको देखने के लिये आईं तो आपको वहां न पाकर घबरा गईं। आप अलौकिक लीला दर्शाने हेतु अदृश्य हो गए।

माता जी इधर उधर सब ओर अच्छी तरह से देखभाल कर जब आप को प्राप्त न कर सकीं तो आप के पिता जी तथा परिवार के अन्य सदस्यों को पूछा परन्तु सभी आश्चर्य में थे कि आप कहां चले गये। प्रातः होते ही सब आप को पर्वत के आस–पास से खोज करने लगे। माता जी के दिल को तरह तरह की शंकाएँ आतंकित करने लगीं कि कहीं कोई जंगली जानवर ही यहां से न उठा ले गया हो। अत्यधिक ढूँढने पर जब आप न मिले तो निराश हो कर उस स्थान के प्रबन्धक पंडित हेमराज जी को सूचित कर सभी घर लौट आए। माता जी व बहिन ने इसी दुःख में तीन दिन भोजन भी न किया। पिता जी व अन्य

सम्बन्धी आप की खोज में लगे रहे।

इधर पंडित जी ने अन्य तीन चार पठानों को पर्वत के आस पास तथा जंगल में ढूँढने के लिये भेजा। तीन दिन के पश्चात् अचानक पठानों ने जंगल में एक पेड़ के नीचे एक बालक को सोए हुए देखा—बालक के ऊपर फनियर सर्प फण फैलाए बैठा था तथा बच्चा उसे देख कर प्रसन्नता से किलकारियां मार रहा था। वे पठान पंडित जी के पास दौड़े आए और सब समाचार कह सुनाया। पंडित जी उन के साथ उस स्थान पर पहुँचे तथा आप की देदीप्यमान छवि को दूर से निहारा। ज्यों ही पंडित जी पठानों सहित उस सर्प को मारने के लिये समीप गए त्यों ही सर्प स्वयं दूर चला गया। पंडित जी ने आपको उठाया और प्रसन्न-चित्त हो कर शीघ्र ही आप के घर गए। माता—पिता तथा अन्य सम्बन्धी आपको सकुशल पा कर प्रसन्नता में झूम उठे। माता जी ने आप को प्राप्त कर यथा-सम्भव मंगल कार्य किए। कौन जाने इस घटना में क्या रहस्य था? आप ने दर्शाया कि इसी प्रकार ही हम इस लोक में भी माया से स्वतन्त्र रहेंगे। इस प्रकार कई बार अदृश्य हो जाना तो आप का खेल सा बन गया था। माता जी तो बेचारी इस दुःख से सर्वदा दुखित रहतीं और पिता जी व भाई प्रायः आप की खोज में लगे रहते।

बाल्यकाल से ही आप स्वतन्त्रता प्रिय, एकान्त सेवी तथा भजन भक्ति में लीन रहने वाले थे। आप स्वाधीन प्रकृति होने के कारण प्रायः दो-दो, चार-चार दिन घर से निकल कर गिरि-गुहा में जा बैठते। पर्वत मालाओं में रहने वाले पठान पर्वत की कन्दराओं में आप को अकेला बैठा हुआ देख कर आप को घर तक छोड़ आते। टेरी में वैशाखी के शुभ पर्व पर वहां से कुछ दूरी पर मेला लगता था। लोग खान-पान तथा आमोद-प्रमोद में सारा दिन वहां व्यतीत करते थे। आप को भी पिता जी वहां अपने साथ ले गए परन्तु आप को तो इस दुनियावी मनोरंजन तथा सांसारिक कार्य व्यवहार से कोई सरोकार न था। अस्तु—आप अपने पिता जी से आँख बचा कर उन के हाथों से अपना हाथ छुड़वा कर पर्वतों की ओर निकल गये।

पिता जी की चिन्ता का ठिकाना न रहा। सारा दिन आप की खोज में लगे रहे। संध्या समय भक्त चूनी राम माटा ने जो श्री प्रभु दयाल जी से परिचित था—आप को पर्वतों पर भागते हुए देखा और एकदम आप के पीछे जाकर आप को पकड़ा और कन्धे पर बिठा कर घर की ओर चल पड़ा। उस समय आप की आयु चार-पाँच वर्ष की रही होगी।

जब आप की आयु आठ-नौ वर्ष की हुई तो आप नंगे पांव, नंगे सिर पर्वतों की गुफ़ाओं में जाकर बैठ जाते और भजनाभ्यास में मस्त हो जाते। घर वालों को यह चिन्ता रहती कि कहीं किसी जंगली पशु के पंजे में आप न आ जाएँ। कई बार बड़े प्यार से गोदी में बिठा कर माता जी पूछतीं कि क्या घर में कोई तुम्हें कष्ट तो नहीं है। आप उत्तर में मौन रहते। टेरी निवासी बड़े-बूढ़े सज्जन आप की अनूठी सुषमा को देख कर अपने पास आप को बिठा लेते और मुट्ठी बन्द कर के पूछते कि इस में क्या है? तब आप अपने भोलेपन से उत्तर देते कि अमुक वस्तु है। सभी विस्मय से यह देखते ही रह जाते कि वही वस्तु मुट्ठी से प्राप्त होती। इस लीला को देखकर वयोवृद्ध यही कहते कि यह कोई महान् विभूति है, साधारण मनुष्य नहीं। वे आप को अपने घर ले जाते, चरण चूमते और श्री वचनों का मधुर रस पान करने के लिए कुछ न कुछ चर्चा आरम्भ कर देते। आप अपने चरण-कमलों को छुपाते, कभी वहाँ से भाग जाते; परन्तु श्रद्धालु और सत्यता के उपासक प्रेमी आप को पकड़ कर आप के चरण चूम ही लेते। आप इस झमेले में न पड़ कर फिर वहां से पर्वतों की ओर निकल जाते। उस समय दशा यह होती कि चरणों के सुकोमल तलुवों में पैने कांटे चुभ जाते—पहरावा झाड़ियों में उलझ कर तार तार हो जाता, परन्तु आप को शारीरिक कष्ट की कोई चिन्ता न होती। भजन-बन्दगी में अधिकतर समय व्यतीत करते। आप के नेत्रों में एक दिव्य मस्ती, मस्तक पर अलौकिक प्रकाश की आभा विद्यमान रहती जो भक्त लोगों के हृदयों को आकर्षित करती थी। पर्वत-निवासी लोगों में से कुछ एक ने जब भी आप को मालिक की लगन में एकान्त में बैठे हुए देखा, एक विलक्षण तेज आप

के मस्तक पर उन्हें दिखाई दिया । वे उस दिन से आप को सच्चा फ़कीर मानने लगे तथा आप की ध्यानावस्था पर मुग्ध हो गए । वे कई घण्टों तक गुफ़ा के बाहर आप के श्री दर्शन की प्रतीक्षा में बैठे रहते । इन लोगों ने भी कई बार निकट सम्बन्धियों से जाकर कहा कि यह कोई पहुँचे हुए फ़कीर हैं । सांसारिक बन्धनों में जीवन व्यतीत करने के लिये पैदा नहीं हुये ।

आप को सांसारिक विद्या के लिये विवश किया जाता लेकिन जो स्वयं विद्या वारिधि हों, उन्हें तंरगों की क्या आवश्यकता । घर वाले विवशता पूर्वक बिठा कर आप को कभी कभी हिन्दी, गुरुमुखी पढ़ाते परन्तु किसी पाठशाला में जा कर आपने शिक्षा ग्रहण नहीं की । जब किसी ने पढ़ने के लिये कहा तो आप तत्काल किसी धार्मिक विषय पर उपदेश देने लगते । क्या केवल पुस्तकीय ज्ञान ही विद्वत्ता का मानदंड है ? महानता तो परा विद्या अर्थात् ब्रह्म-विद्या के जानने में है । यथार्थ ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में ही महानता का रहस्य छिपा है । सो आपने ऐसे अनुभव भरे उपदेशों तथा ग्रन्थों के रहस्यों का स्पष्ट रूप से वर्णन किया कि बड़े बड़े बुद्धिमान् भी चकित रह गये । जिन का वर्णन आप की जीवन झलकियों में आगे मिलेगा ।

बारह तेरह वर्ष की आयु में आप के पिता जी व माता जी का देहान्त हो गया । आप के भाई दुकान का कार्य व्यवहार करते थे । उन्होंने सोचा कि शायद अब आप उन के कार्य-व्यवहार में सहायता देंगे । परन्तु आप तो अनामी लोक से सत्यता के व्यापारी बन कर आये थे, सांसारिक उलझनों के नहीं । यही कारण था कि आप कभी भी इस ओर ध्यान ही न देते थे । जब कभी विवशता पूर्वक दुकान पर बैठ भी जाते तो अपने आनन्द में लीन । जो कोई वस्तु ग्राहक मांगता तो तोल कर दे देते । वह यदि स्वयं दाम दे जाए तो अच्छा, न दे तो परवाह नहीं । दाम मांगना आप की प्रकृति से बाहर था । बस फिर क्या था—ग्राहक बड़े भाई की उपस्थिति में या तो आते ही नहीं थे यदि आते थे तो बहुत कम । जब आप दुकान पर उपस्थित होते तो दुकान पर भीड़ जमा हो जाती । एक बार एक

मेधावी (विद्वान्) हिन्दू आपकी पावन संगति के लिये दुकान पर आया । आप चरण लम्बे कर के बैठे हुए थे । उस ने ज्यों ही श्री चरण कमलों में चक्र तथा महापुरुषों के लक्षण युक्त रेखाएँ देखीं तो सोचने लगा—यह क्या ! इन्हें तो बादशाह होना चाहिए था । यह इस छोटी सी दुकान पर कैसे बैठे हैं । परन्तु वह क्या जाने इस रहस्य को—कि शाहनशाह तो इन की चरण-रज की तुलना भी नहीं कर सकते । एक दिन बड़े भाई के रोष (गुस्सा) करने पर आप दुकान छोड़ कर आध्यात्मिक व्यापार के लिए चल पड़े । आप की उपमा का वर्णन किस प्रकार से किया जाए । उस समयः—

॥ शेयर ॥

कैसा अनूठा तेज और है झलक ये ।
छाया उजियारा है जिस से ज़मीं व फलक पे ॥
निज आनन्द में मग्न हुए, दी तन-बदन की होश भुला ।
ख़ेशो अकरबा से उन्हें कोई सरोकार न रहा ॥
वह गुलामी में किसी की आ सकते हैं क्या ।
हक परस्ती का जहां में जिस ने जलाना है दीया ॥
तायरे—आज़ाद को क्यों कफ़स रास आये ।
थे ख़ुद आज़ाद, करने सब को आज़ाद आए ॥

यहाँ श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की समस्त बाल लीलाओं को नहीं दिया गया क्यों कि उन के अलौकिक चरित्रों को किसी सीमा में बन्द नहीं किया जा सकता । वे तो पग पग पर नया रंग, नई लीला तथा नए रहस्यों का उद्‌घाटन करते थे । यहाँ तो केवल समुद्र की एक तरंग के समान चित्रण दिया गया है । जिन भाग्यशाली जीवों ने उनकी सुमञ्जुल छवि को निहारा है वे उनकी बाल—लीला का वर्णन करते हुए नहीं अघाते । धन्य हैं वे जीव जिन्होंने श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की पावन लीला का रस पान किया ।

समय के परिवर्तन के साथ साथ आप पथ-प्रदर्शन करने के लिये अपने जीवन को बदलते गये। आपने उन सब कार्यों को स्वयं पूर्ण श्रद्धा से किया जो आदर्श आप लोगों को दिखाना चाहते थे। प्रथम था गुरु शिष्य का नाता—जिसे आप ने प्राणपन से निभाया। अब आप को शिष्य रूप में लोक मर्यादा के अनुसार पूर्ण गुरु की आवश्यकता पड़ी। कहा जाता है कि शिष्य जब पूर्ण गुरु की प्राप्ति के लिये चाह करता है तो पूर्ण सद्‌गुरु स्वयं अपने शिष्य की खोज में होते हैं। इधर श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी (श्री प्रथम पादशाही जी) जिनके पावन चरित्र का पहले वर्णन हो चुका है, अपने पूर्ण शिष्य की खोज में थे। जिस प्रकार श्री स्वामी रामानन्द जी को श्री कबीर जी, श्री गुरु नानकदेव जी को श्री गुरु अंगद देव जी तथा स्वामी रामकृष्ण जी को स्वामी विवेकानन्द जी की प्राप्ति पर अपार हर्ष हुआ, इसी प्रकार श्री परमहंस दयाल जी (श्री प्रथम पादशाही जी) को अपने पूर्ण तत्त्व-ज्ञानी श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी की प्राप्ति पर असीम उल्लास हुआ।

यह वृत्तान्त उन दिनों का है जब दीवान भगवानदास जी ने साँभर क्षेत्र में श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में विनय की थी कि प्रभो! टेरी स्थान को भी पुण्यवान् बनाइये। श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया था कि कभी चलेंगे। इस विनय अनुसार कुछ समय पश्चात् अर्थात् सन् १६०४ ई० में श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी दीवान भगवानदास जी के साथ टेरी पधारे। यहाँ पर अपने पारमार्थिक उपदेशों से सत्संगियों को कृतार्थ करने लगे। तब श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज की आयु उन्नीस वर्ष की होगी। ज्यों ही सुना कि यहां एक परिपूर्ण महापुरुष पधारे हैं, उसी क्षण आप के चित्त में उन का दिव्य दीदार करने की दैवी प्रेरणा हुई। आप श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में उपस्थित हुए। जिस क्षण श्री चरणों में दण्डवत्-वन्दना करके मस्तक झुकाया, हृदय में आनन्द की लहरें मचल उठीं। उस समय आपको ऐसे प्रतीत हुआ जैसे कुमुद को चाँद, मीन को जल और और सूर्यमुखी को सूर्य की प्रभा प्राप्त हुई

हो। श्री परमहंस दयाल जी (श्री प्रथम पादशाही जी) को भी ऐसे ही अनुभव हुआ कि जैसे उन्होंने अपने ध्येय की पूर्ति करने वाले शिष्य को प्राप्त कर लिया हो। उस समय का दृश्य इस प्रकार थाः—

॥ शेयर ॥

क्या कहिए नज़ारा कैसा, अद्भुत रंग था छाया।
कि दो युग पुरुषों के संगम में, लहराता सिंधु उमड़ आया॥

हृदय खुशियां असीमित, रूहे फ़लक पे बर्क कौंधी।
मिटाने को जगत का तम, मोह अज्ञान की आँधी॥

गुरु ने शिष्य को पाया, शिष्य ने गुरु को अपनाया।
रूहानियत के मंच पर, तूलिका ने रंग बिखराया॥

श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी ने आपकी ओर देखते हुए कहा—"आ गए भैय्या!" दोनों हाथ जोड़ कर आप ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—हां महाराज जी, आ गया हूँ। तब श्री परमहंस दयाल जी ने यह फ़रमाया—"अच्छा हुआ कि आप आ गये अन्यथा स्वयं हमें चल कर आपके पास आना पड़ता।" बाहरी दृष्टि से तो ऐसा प्रतीत होता था कि एक शिष्य को गुरु की प्राप्ति हुई है परन्तु आन्तरिक दृष्टि से देखा जाये तो यह दो महान् आत्माओं का मिलन था। दो युग पुरुषों की भेंट थी। आध्यात्मिक रंगमंच पर जैसे किसी नव्य-भव्य नाटक का सूत्रपात हुआ हो। इस 'अद्वैत मत' के क्रान्तिकारी आन्दोलन की नींव रखी गई हो। जिस उद्देश्य को लेकर श्री परमहंस दयाल जी ने टेरी में पदार्पण किया वह पूर्ण रूप से फूला और फला। टेरी में दीवान साहिब की विनय तो केवल कारण मात्र थी। वास्तव में श्री परमहंस दयाल जी (श्री प्रथम पादशाही जी) अपने तद्रूप परम शिष्य को पथ-प्रदर्शक बनाने आये थे। मृतप्राय भारतवासियों में नए जीवन का संचार करने आये थे। इस दिव्य पुरुष की यह श्री परमहंस दयाल जी से प्रथम भेंट नहीं थी अपितु धुरदरगाही सम्मिलन था।

यह घटना श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी के महान् व्यक्तित्व का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है तथा इससे यह भी ज्ञात होता है कि पूर्ण पुरुषों का पारस्परिक प्रगाढ़ आत्मिक सम्बन्ध हुआ करता है। वे एक दूसरे को प्रथम दृष्टि में ही पहचान जाते हैं। उसी दिन ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने श्री परमहंस दयाल जी से विधिवत् गुरु-दीक्षा ग्रहण कर ली। इसके पश्चात् भजन-अभ्यास में पहले से भी अधिक निमग्न हो गये।

अब तो श्री सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी कहीं पर श्री गुरु नानकदेव जी सा कार्य करने लगते और कभी महात्मा बुद्ध जैसी कठोर साधना में लीन हो जाते, कभी सरल प्रेमभक्ति के भण्डारी बन बैठते। गुरु-दीक्षा के बाद सांसारिक कार्य-व्यवहार से तो बिल्कुल उपरामता हो गई। घर वालों को यह व्यवहार बिल्कुल अच्छा न लगता परन्तु आप अपनी मस्ती में उनकी ओर तनिक भी ध्यान न देते।

एक बार आप श्री परमहंस दयाल जी के श्री दर्शन के लिये आगरा जाने लगे। आपके भाई साहिब जी ने कुछ रुपये व्यापार के लिए आपको दिये कि आगरा से लौटते हुए कुछ सामान भी लेते आना। जो आध्यात्मिकता (आत्म-ज्ञान) के व्यापारी हों उन्हें संसार की अनित्य वस्तुओं से क्या प्रयोजन? सब धन परमार्थ अर्थ लगा दिया अर्थात् चुपचाप ही उस धन को आगरा के लंगर में खर्च कर दिया। जब घर लौटे तो घर वालों ने क्रोधवश इतना ही कहा—"जाइये जो आपका दिल चाहे करिये।" बस फिर क्या था? दिल की साध पूरी हुई। स्वतन्त्र वृत्ति तो बाल्यकाल से ही थी। गृह त्याग दिया, सांसारिक जंजालों से दामन छूटा। घर से (कसबा टेरी) काफ़ी दूर पर्वतों पर चले जाते। सारा दिन भजनाभ्यास में मग्न रहते। पर्वतों से नीचे उतरने पर भक्त ताराचन्द की धर्मशाला में रहते। दोपहर के समय पर्वत से नीचे उतर कर दो चार घरों से भिक्षाटन कर थोड़ा सा भोजन कर लेते। वह भी कभी दिल चाहा तो कर लिया और कभी न किया। आप के पिता जी ग्राम में बड़े प्रतिष्ठित पुरुष होने के कारण

आप को सभी पहचानते थे। इसीलिये वे धर्मशाला में ही भोजन पहुँचाने लगे। पर्वतों पर कंटीली झाड़ियां होने के कारण कांटे आपके सुकोमल तलुवों में इस प्रकार तीखे चुभ जाते कि सुमञ्जुल तलुवे छलनी हो जाते। आपको इन कष्टों की कोई चिन्ता न थी। घर वालों को इस बात का पता चला तो उन्होंने घर में रह कर भजनाभ्यास करने के लिये आग्रह किया परन्तु आप ने इस बात को स्वीकार न किया। कहते हैं कि ये (कांटों के चिन्ह) चिन्ह तो जब आप आध्यात्मिक सिंहासन पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के रूप में समासीन हुए, तब तक विद्यमान थे।

अब आप की कीर्ति सारे ग्राम में फ़ैल गई। आप टेरी से चल कर जट्टा इस्माइलखेल पधारे। यहां पर भक्त राम चन्द जी (महात्मा निज मुक्तानन्द जी) के घर ठहरे। दिन का समय तो जंगलों में व पहाड़ों पर व्यतीत कर आते। वहां पर कभी दिल चाहा तो जंगली फल खा लिए और कभी कभी चरवाहों के आग्रह पर थोड़ा सा दूध पी लेते। रात के समय भक्त रामचन्द जी के घर लौट आते। इस प्रकार नमक विभाग के कार्य कर्त्ता दीवान भगवानदास जी ने जब यह सब सुना तो वह आप को अपने घर में निवास करने के लिए विनय करने लगे। आप कभी भक्त दीवान भगवान दास जी के गृह को कृतार्थ करते तो कभी भक्त रामचन्द जी के गृह को। कभी कभी तो कई कई दिन गुफ़ाओं में ही ध्यान स्थित मस्त बैठे रहते। पर्वतों पर चरवाहों ने जब यह देखा कि यह तो कोई निराले ढंग के मस्त फ़क़ीर (सन्त-महापुरुष) हैं, जिनका सूर्यवत् प्रकाश स्वयं आकर्षित करता है, तो वे गुफ़ा के बाहर द्वार पर दूध लेकर खड़े रहते। इस प्रकार कभी दूध और कभी जंगली फलों व पत्तों का भोजन कर अत्यधिक रुचि से भजनाभ्यास में संलग्न हो जाते। नित्य नई युक्तियां सोचते और आविष्कृत करते; जिन की सहायता से समस्त चित्त-वृत्तियां सांसारिक, शारीरिक तथा इन्द्रिय सम्बन्धी आसक्ति तथा मलिनता से रहित होकर भजन ध्यान में एकाग्रता प्राप्त करें। जब किसी से कभी थोड़ा बहुत मिलने का संयोग हुआ तो आप अन्यों को भी यही परामर्श देते कि

श्री सद्गुरुदेव जी के श्री दर्शन करते समय तथा भजन-अभ्यास के समय भी चित्त को अन्यान्य प्रवृत्तियों से मुक्त कर के सारी वृत्ति ध्यान में लगा देना ही उचित है। इसी से ही लक्ष्य सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

एक बार जब आप भजनाभ्यास से उठे तो मौजवश एक चरवाहे से दूध मांगा। पठान ने विनय की–"महाराज! ये गौएँ दूध नहीं देतीं। सभी गर्भवती हैं।" श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने एक गाय की ओर संकेत कर कहा कि इस का दूध लाओ। यह लो लोटा शीघ्रता से दूध लाओ। वह पठान हैरान था कि यह गाय तो बिल्कुल दूध देती ही नहीं तो दूध लाऊँ कहाँ से। कितनी विमोहक लीला थी उन की कि कभी तो किसी को दर्शन तक नहीं होते; कभी कई कई दिन निराहार ही रहते और इस समय कैसी अनूठी अदा से आग्रह कर एक पठान से दूध मांगा। उस पठान ने सोचा सन्तों की गति न्यारी है। वह लोटा ले कर गाय के पास गया। ज्यों ही उस ने दूध निकालना आरम्भ किया देखता क्या है कि लोटा भी भर गया और अभी भी गाय दूध दिये जा रही है। यह गाय कितने दिनों तक दूध देती ही रही। अब वह पठान दूध लेकर श्री चरणों में पहुँचा तो वन्दना कर दूध भेंट किया। जब वह अपने गांव लौटा तो हर्ष दिल की सीमा से पार हो गया। सारे गांव में आप के उस अलौकिक चमत्कार का वर्णन किया और मुक्त कण्ठ से आप के गुणानुवादों को गाने लगा।

उसी गांव में लाला परमानन्द जी जो साधु-सेवी तथा भक्त थे; उस चरवाहे के साथ आपके श्री दर्शन के लिये आये और वह इस प्रकार नित्य प्रति श्री दर्शनों के लिये आते तथा श्री भोग के लिए भी कुछ न कुछ साथ लाते। कुछ दिन पश्चात् आप ने सोचा कि अब यह स्थान उपयुक्त नहीं। आप उस स्थान से उठ कर कहीं और चल दिये। जब दूसरे दिन लाला परमानन्द जी श्री दर्शनों के लिए उपस्थित हुए तो आपको उस स्थान पर न पाकर काफ़ी खोज की परन्तु दर्शन न कर सके।

इस के पश्चात् आप ने प्रेमियों से सुना कि आगरा में श्री परमहंस दयाल जी पधारे हैं तो आप उन के साथ श्री दर्शन के लिए श्री चरणों में उपस्थित हुए। आपके मन में यह अभिलाषा उठी कि स्वतन्त्र वेष धारण कर लिया जाए। श्री चरणों में पहुँच कर विनय की। श्री परमहंस दयाल जी ने आपको सन् १६०७ में साधु वेष प्रदान कर आप का शुभ नाम श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी रखा।

निर्भय पद

आप के हृदय में श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी के श्री चरणों के प्रति अनन्य अनुराग था। आप ने श्री मौज में अपने समस्त जीवन को समर्पित कर दिया तथा श्री प्रसन्नता से लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। जिस प्रकार गुरु द्रोणाचार्य के पास पाण्डव तथा कौरव शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाते थे, परन्तु निपुण अर्जुन ने गुरु की प्रत्येक मौज व आज्ञा में अपने सुख आराम को न्यौछावर कर दिया तो गुरु जी से उस ने वह धनुर्विद्या प्राप्त कर ली जिस की तुलना में अन्य कोई न था। गुरु जी तो समदृष्टि भाव से सिखाते थे परन्तु जिस ने जिस विद्या में अधिक रुचि रखी उसी विद्या में दक्षता प्राप्त कर ली। इसी प्रकार श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी उपदेशामृत की वृष्टि तो सब पर समान भाव से बरसा रहे थे किन्तु इस का शत-प्रतिशत लाभ केवल आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) ने ही प्राप्त किया। समुद्र से चाहे तो कोई मोती निकाले अथवा रत्नादिक। जितना अधिक परिश्रम होगा उतना अधिक लाभ होगा। यदि समुद्र के किनारे बैठ कर लहरों को ही देखते रहें और चाहें कि हीरे जवाहरात प्राप्त हो जाएँ ऐसा कदापि नहीं होगा। इस प्रकार आप ने श्री परमहंस दयाल जी (श्री पहली पादशाही जी) की आज्ञा रूपी उदधि (समुद्र) में गोता लगाया और लक्ष्य रूपी अमूल्य जवाहर को प्राप्त कर लिया। कहा भी है:—

॥ शेयर ॥

गुले मकसूद पा सकते नहीं इशरत के दीवाने ।
जिन्हें पुरखार राहों से गुज़र जाना नहीं आता ॥
तलाश–ो–जुस्तजूए–दोस्त लाज़िम है मगर गौहर ।
उसे पाते नहीं वे जिन को मिट जाना नहीं आता ॥

अर्थात् जो लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है उसे सुख ऐश्वर्य का त्याग करना पड़ता है । जो कष्टों से डरता है व मिटने से घबराता है, उस को उद्देश्य में सिद्धि नहीं मिलती । इसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में अनन्य अनुराग का आदर्श स्थापित किया । श्री चरणों में आप की श्रद्धा व प्रेम की भावनाएँ उच्चतम स्तर को स्पर्श करती थीं । परमार्थ व भक्ति के मार्ग में सदा प्रेम-प्रतीति तथा आत्मोत्सर्ग से ही कार्य सिद्धि सम्भव है । इन दोनों गुणों से आप सम्पन्न थे । फ़क़ीरों का कौल है:—

॥ शेयर ॥

ता तुई कै यार गर्दद यारे–तो ।
तू नबाशी यार बाशद यारे–तो ॥
तू मबाश असला कमाल ईं अस्त–ो–बस ।
तू दरो गुम शौ विसाल ईं अस्त–ो–बस ॥

अर्थात् आरिफ़ों के उपर्युक्त कथनानुसार परम पद की प्राप्ति का साधन तथा प्रेमभक्ति का उच्चतम लक्ष्य ही यही है कि जिज्ञासु उन पूर्ण पुरुष सन्त सद्गुरु देव जी के प्रेम में स्वयं को इस सीमा तक विलीन कर दे कि आपाभाव तथा स्वाभिमान का लेश तक भी शेष न रहे ।

भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज ने गीता के नवें अध्याय में परम सखा

अर्जुन को आत्म-समर्पण का उपदेश दिया है कि ईश्वर ही सब कुछ है। पुरुष को उस के अर्पित हो जाना चाहिये। यही बात परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने अपनी वाणी में कही है:—

॥ दोहा ॥

जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं॥

यही कुछ आपने किया। एक बार सत्संग के मध्य में श्री परमहंस दयाल जी (श्री पहली पादशाही जी) ने प्रवचन किये कि सभी प्रेमी नगर में आते जाते किसी स्थान पर कहीं भी परस्पर मिलो तो 'हरिहर' का शुभ नाम उच्चारण किया करो। बस फिर क्या था? आपने इस प्रवचन को निजी पूँजी तथा सर्वस्व मान लिया। इसे बिना मान मर्यादा का ध्यान रखते हुए जब भी किसी से मिलते मुख से 'हरिहर बोल' यह मन्त्र उच्चारण करते। सभी प्रेमी गुरुमुखों ने तो कोई न कोई समस्या सम्मुख रख कर अथवा किसी ने एक दिन किसी ने दो दिन इस आज्ञा का पालन कर पुनः श्री वचन भुला दिए; परन्तु आपने तो इस 'हरिहर' मन्त्र का सन्देश इस प्रकार सारे आगरा में गुँजा दिया कि बच्चे-बूढ़े सभी नगर वासी आपको 'हरिहर बाबा' के नाम से स्मरण करने लगे। पंजाबी में उक्ति है:—

पानी भरण पनिहारियां, रंगो रंग घड़े।
भरिया उसदा जाणिए, जिस दा तोड़ चढ़े॥

अर्थात् वास्तविक गुरुमुख तथा प्रेमी तो वही है जो श्री गुरु-आज्ञा का पूरा पूरा पालन करे तथा लक्ष्य तक पहुँचे। अब श्री परमहंस दयाल जी ने अपने प्रिय शिष्य को आध्यात्मिक युग निर्माता बनाने के लिए तथा शक्ति संचित करने के लिये आगरा में उपयुक्त स्थान जो आपको प्रिय हो खोजकर योग साधना व भजनाभ्यास की आज्ञा प्रदान की। अब उस समय की दशा का वर्णन कैसे किया जाय।

इधर आप के हृदय में वियोग का दारुण दुःख असह्य था उधर श्री परमहंस दयाल जी अपने परम अभिन्न प्रिय शिष्य के प्रेम में अभिभूत हो गए। स्वामी और शिष्य दोनों के नेत्रों से अश्रुधारा बह निकली। श्री परमहंस दयाल जी का दिल तो नहीं चाहता था कि शिष्य को विलग करें, परन्तु परिस्थिति तथा कार्य पूर्ति का लक्ष्य समक्ष रखते हुए उन्हें ऐसा करना पड़ा। इधर परम शिष्य भी श्री आज्ञा पालन में तत्पर अपनी दयनीय दशा की ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। श्री आज्ञा ही शिष्य का जीवन है, श्री आज्ञा ही प्रसन्नता है और श्री आज्ञा ही अपना सर्वस्व और लक्ष्य जान मुख से कुछ कहते ही न बनता था। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी ने इस लगन के विषय में कहा है:—

॥ दोहा ॥

लागी जाही के लगी, तन मन चित्त में लागि ।
धुआँ न बाहर प्रगटि है, अन्तर लागी आगि ॥
छाती धड़कै मन डरै, होंठ फरकते देखि ।
आँखिन सूँ आँसू बहैं, लगन का यही विसेखि ॥

अर्थः—कि जिसके दिल में प्रेम की चिनगारी लग गई वह तन, मन, चित्त सब की सुधि खो देता है। उसके तन मन में प्रेम की चिनगारी ऐसा प्रभाव डालती है कि धुआं बाहर तो दिखाई नहीं देता परन्तु अन्दर ही अन्दर यह आग भड़क उठती है। पुनः फ़रमाते हैं कि प्रेमी की दशा फिर कैसी हो जाती है—उस के दिल की धड़कन तेज़ और उसका मन प्रेम में कांपता है तथा ओंठ फरकते हैं। जब वह प्रेम विभोर हो जाता है तो आँखों से आँसू बहते हैं। यही विशेषता है सच्ची लटक की। फ़कीरों ने भी इस लगन के विषय में लिखा है किः—

॥ शेयर ॥

दर दिले आशिक चूं इश्क आतिश फ़िरोख़्त ।
हर चे जुज़ माशूक बूद ओ रा बिसोख़्त ॥

अर्थः—प्रेमी के दिल में जब प्रेम की अग्नि जल उठती है उस समय सिवाय अपने प्रियतम के जो कुछ भी अन्दर होता है उस को जला देती है। अर्थात् सिवाय प्रियतम के प्रेमी के दिल में सब कुछ जल जाता है।

ठीक यही दशा थी अब आप की। उस समय श्री परमहंस दयाल जी ने परम शिष्य को छाती से लगा लिया। योग वशिष्ठ का कथन हैः—

॥ श्लोक ॥

दर्शनात् स्पर्शनात् शब्दात् कृपया शिष्य देहके ।
जनयेद्यः समावेशं शांभवं स हि देशकः ॥

अर्थात् सच्चा गुरु वही है जो दृष्टि, दर्शन, स्पर्श, संकल्प, शब्द तथा भाव से शिष्य पर कृपा करते हुए उसे यह ज्ञान दे कि वह ईश्वर का ही अंश है और उसी अनन्त सिन्धु का एक बिन्दु है। श्री परमहंस दयाल जी (श्री पहली पादशाही जी) वास्तविक अर्थों में इन सब गुणों से सम्पन्न थे। आपको हृदय से लगाते ही उन्होंने पूर्णता का अनुभव करा दिया। इस प्रकार आपने श्री आज्ञा से एक निर्जन स्थान को भजनाभ्यास के लिए उपयुक्त निश्चित किया। श्री परमहंस दयाल जी ने पंडित जगन्नाथ को उस स्थान पर धूनि रमाने के लिये भेजा। स्वयं सीमाप्रान्त में परमार्थ कार्य के लिये चल दिए।

बस फिर क्या था कि आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) उस धूनि के किनारे समाधिस्थ हो गए। न आप को दिन की दोपहर, न रात्रि की सर्दी का कुछ अनुभव होता था। एक लम्बा चोला पहने रखते। श्री चरणों में पादुका पहनना भी भार मालूम होता। कभी कभी भजनाभ्यास से उठते और थोड़ा सा सत्संग आदि भी कर लेते। आगरा निवासी गुरुमुख प्रेमी आपके अमृत प्रवचन श्रवण करने के लिए आते और घण्टों तक प्रतीक्षा करते रहते, परन्तु आप अपनी ही मस्ती में मग्न किसी और ही लोक में विचरण कर रहे होते थे।

जब कभी उठते थोड़ा सा सत्संग कर लिया जब दिल चाहा तो थोड़ा सा कन्द मूल ले लिया। इस प्रकार ऋतु पर ऋतु बीतने लगीं। आपको किसी से प्रयोजन न था। कई आगरा निवासी तो आपके नाम धाम से परिचित न होते हुए भी एक दिव्य आभा से आकर्षित हो धूनि के समीप खाद्य पदार्थ रख कर देखते कि शायद अभी आप इन्हें स्वीकार करेंगे। परन्तु योगीश्वर का इन वस्तुओं से कोई सम्बन्ध न था। ऋतुएं आईं और अपना रंग छिटका कर चली गईं। मुनि अगस्त्य जी के परम शिष्य सुतीक्षण की न्याईं आप अपनी अनन्त साधना में लीन थे।

अब वर्षा ऋतु समीप आ गई। प्रेमियों ने कई बार श्री चरणों में विनय की कि महाराज! अब इस स्थान को छोड़ कर हमारे घर चलिये। आप उन के आग्रह की ओर तनिक भी ध्यान न देते। अपने ही आनन्द में लीन रहते। उस स्थान पर न कोई मकान था न टपरा। एक दिन जब कि श्री महाराज जी कुछ सत्संग उपदेश करके भजनाभ्यास पर बैठने लगे तो कुछ श्रद्धालुओं ने विनयपूर्वक आग्रह किया—महाप्रभु! अब इस स्थान को छोड़ कर हमारे घर चलिए, परन्तु अभी उन्हें किसी की विनय-प्रार्थना से कोई प्रयोजन न था। इस समय तो आप अपने श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा व मौज में निज जीवन को ढाल रहे थे। कुछ श्रद्धालुओं ने मिल कर श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में विनय पत्रिका लिखी जिसमें यह लिखा कि प्रभो! श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) तो अपने आनन्द में लीन—बिना किसी झोंपड़ी या मकान के खुले स्थान पर बैठे हैं। आप श्री आज्ञा भेजें कि वे वहाँ से उठें और हम कोई मकान आदि उनके लिये बना दें। उनके स्थूल शरीर को कष्ट होता होगा। उस समय श्री परमहंस दयाल जी टल ज़िला कोहाट में विराजमान होकर सत्संग कर रहे थे। जब विनय पत्रिका पढ़ी तो नयनों से अश्रुपात होने लगा। हृदय गद्गद हो गया। उपस्थित संगत ने उन की यह दशा देखी। श्री परमहंस दयाल जी ने फ़रमाया—"स्वामी स्वरूप आनन्द जी शेरों के बच्चे हैं। वे श्री आज्ञा में तत्पर रहने वाले हैं। वे ऐसे नहीं कि अपने आराम के लिए गुरु की आज्ञा को छोड़ दें। वे शेर हैं और शेरों की तरह

शक्तिशाली रहेंगे। जो उन की मौज हो वही करें।" पुनः विनय-पत्रिका का उत्तर भक्त काशीराम (महात्मा परमशान्त आनन्द जी) को कहा कि वहाँ पत्र भेजो जिसमें लिखो कि उन्हें कुछ न कहा जाए। उन्हें इसी स्थान पर रहने दीजिए और भक्त जन उनके चारों ओर टपरा (छाया) बना दें।

इसके पश्चात् श्री परमहंस दयाल जी टल से टेरी गये। वहाँ दीवान भगवान दास जी को अपने पास बुलाया और आगरा के पत्र का वर्णन करते हुए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के प्रेम को प्रकट करते हुए फ़रमाया—कि वैसे तो हम ने एक पत्र भक्त काशीराम जी द्वारा भिजवा दिया है। श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी तो अब ऐसी अवस्था में पहुँच चुके हैं जहाँ कुछ कहने कहाने की ज़रूरत शेष नहीं रह जाती। इसीलिए आप लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि जहाँ वे बैठे हैं उसी स्थान पर ही कोई मकान या छप्पर आदि तैयार हो जावे। इस श्री आज्ञा के होते ही धूनि की जगह पर मकान के लिये श्री आज्ञा भेज कर प्रबन्ध करवा दिया गया। श्री परमहंस दयाल जी टेरी से सीमाप्रान्त के कई स्थानों को पवित्र करते हुए अक्टूबर १९१५ में आगरा पहुँचे तथा उपदेशामृत की पावन धारा बहाने लगे।

आप (श्री सद्गुरु देव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) को पता चला कि श्री सद्गुरुदेव जी (श्री परमहंस दयाल जी) आगरा में विराजमान हैं तो आप श्री दर्शन के लिये चल दिये। जब श्री परमहंस दयाल जी के निवास स्थान पर पहुँचे तो उस समय श्री परमहंस दयाल जी पलंग पर विराजमान होकर सत्संग उपदेश कर रहे थे। प्रेमी श्रद्धालु संगत श्री वचनामृत श्रवण करने में संलग्न थी। आपको दूर से ही आते हुए देख कर श्री परमहंस दयाल जी ने संकेत से संगत को मध्य में रास्ता बनाने की आज्ञा दी और फ़रमाया—"रास्ता छोड़ दो, भैय्या परमहंस जी आ रहे हैं।" सब संगत एक ओर होकर इधर उधर देखने लगी परन्तु उन की समझ में कुछ न आया कि श्री परमहंस दयाल जी ऐसा क्यों फ़रमा रहे हैं। सत्य तो है कि महापुरुषों के रहस्य को समझने के लिये जीव में कहाँ शक्ति

है।

ज्यों ही आप श्री परमहंस दयाल जी के सम्मुख दण्डवत्-वन्दना कर समीप पहुँचे तो श्री परमहंस दयाल जी ने बड़े स्नेह से पूछा कि आप आ गए ? आपने विनय की—प्रभो ! श्री दर्शन की इच्छा ने हमें व्याकुल कर दिया सो हम श्री दर्शन के लिये उत्सुकता से आये। श्री प्रवचन हुए आप ने अच्छा किया नहीं तो हमें आपके पास धूनि पर आना पड़ता। श्री परमहंस दयाल जी आगरा में विराजमान थे तो जयपुर से लाला हज़ारी लाल व अन्य कई भक्त लोग आगरा में श्री दर्शन के लिये आए और श्री परमहंस दयाल जी को जयपुर में दर्शन देने के लिये विनय की। कुछ समय यहाँ रह कर ८ जून १९१६ को श्री परमहंस दयाल जी को जयपुर ले गए। श्री परमहंस दयाल जी जयपुर में विराजमान होकर पावन उपदेशामृत की धारा बहाने लगे।

महापुरुषों की प्रत्येक लीला में कोई न कोई रहस्य छिपा होता है। वे अपने शिष्यों की समय समय पर परीक्षा भी लेते हैं परन्तु बाहरी रूप से लोगों के सामने आदर्श रखने के लिए। अन्दर से कृपादृष्टि रखते हुए शिष्य को गुण सम्पन्न बना देते हैं। वे बिल्कुल ही ऐसा करते हैं जैसेः—

॥ दोहा ॥

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट ।
अन्तर हाथ सहारि है, बाहिर मारैं चोट ॥

जैसे कुम्हार बर्तन बनाते समय बर्तन के अन्दर तो अपना हाथ रख देता है और बाहर से चोटें मारता है। इसी प्रकार ही गुरु अपने शिष्य के प्रति करते हैं।

आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) के दिल में श्री दर्शन करने की तीव्र अभिलाषा जागृत हुई। श्री परमहंस दयाल जी को जयपुर में विराजमान हुए कुछ समय हो चुका था। अतः आप श्री दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा

के कारण जयपुर पहुँचे। वहाँ श्री परमहंस दयाल जी की मौज कुछ ऐसी हुई कि ज्यों ही आपने श्री दर्शन किए अभी आप दण्डवत् प्रणाम करके बैठने भी न पाए थे कि श्री आज्ञा हुई तुरन्त लौट जाओ। श्री आज्ञा पाते ही आप खड़े खड़े लौट आए। उस समय की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। उधर यह आज्ञा फ़रमाई जा रही थी कि "एक दम लौट जाओ" इधर अपने (श्री परमहंस दयाल जी) नेत्रों में पानी भर आया, परन्तु किसी से कुछ कहा नहीं। अन्दर ही पी गए। जिस स्थान पर श्री परमहंस दयाल जी विराजमान थे, उस स्थान से चल कर आप अभी थोड़ी दूर ही गये थे कि मार्ग में पंडित जगन्नाथ जी जो श्री परमहंस दयाल जी के श्री दर्शन के लिए घर से आ रहे थे, मिल गए और उन्होंने आप को अपने साथ घर ले जा कर स्नान करवा भोजन खिलाया और अपने लड़के को गाड़ी के किराये के लिए रुपये देकर आपके साथ स्टेशन पर भेज दिया। उससे कहा कि टिकट लेकर आराम से गाड़ी में बिठा आना। इस काम से निपट कर जब पंडित जी श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में पहुँचे तो उन्होंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के मिलने तथा भोजन आदि खिलाने का सब वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुन कर श्री परमहंस दयाल जी के नेत्रों से जल की धारा बह निकली और फ़रमाने लगे—पंडित जी! आपने बहुत अच्छा किया कि उनको खाना खिलाया। यहां तो सब दिल के अन्धे थे जो किसी ने उनको पानी तक न पूछा। हमारी तो ऐसी ही मौज थी और इस में एक गुप्त रहस्य भी था परन्तु किसी ने हमारी मौज को पहचाना नहीं। अतएव हम ने उन्हें आते ही वापिस जाने की आज्ञा दे दी। वे तो आरम्भ से ही हमारी आज्ञा का पालन करने में एक हैं। इसीलिए बिना कुछ कहे ही तत्काल लौट गये। हम आप से बहुत खुश हैं। आपने बहुत अच्छा किया। ऐसा फ़रमा कर श्री परमहंस दयाल जी मौन हो गये।

उधर आप ने पुनः आगरा में जाकर धूनि के समीप तपस्या आरम्भ कर दी। लोग आपको श्रद्धा से हरिहर बाबा कहते थे। उन्हें क्या मालूम कि आप केवल

कथन मात्र से नहीं अपितु वास्तव में हरिहर बने हुए हैं। कहते हैं कि जिस धूनि पर यह दिव्य महापुरुष समाधि लगाए रहते थे उस धूनि, उस वृक्ष तथा उस स्थान से 'हरिहर' की मधुर ध्वनि उठने लगी। इस ध्वनि को सुन कर कोई भी आकर्षित हुए बिना न रहता था।

इस प्रकार आप का मुखारविन्द कठिन तपस्या, श्री गुरु आज्ञा व श्री मौज में जीवन ढालने से सूर्यवत् देदीप्यमान् हो उठा। वैसे तो आप बाल्यकाल से ही साधु प्रकृति के थे, फिर भी आपने सन् १६०४ में गुरु-दीक्षा प्राप्त कर के सन् १६०७ तक पहाड़ों की कन्दराओं में तीन वर्ष तक अत्यधिक कठिन साधना की। पुनः सन् १६०७ ई० में श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी से साधु वेष प्राप्त कर उनकी श्री आज्ञानुसार सन् १६०७ से सन् १६१७ तक दस वर्ष निरन्तर आगरा में कठिन योग साधना में लीन रह कर लक्ष्य को प्राप्त किया।

अब साधना जिस लोक संग्रह अर्थात् जन-कल्याण हेतु की गई थी उसके फलीभूत होने का समय निकट आ गया। सन् १६१७ में श्री परमहंस दयाल जी ने आपको हर प्रकार से सर्वगुण सम्पन्न जान कर एक सेवक को आगरा भेज कर आपको अपने पास टेरी बुलवा लिया। दस वर्ष की कठिन योग साधना से आपका स्थूल शरीर कुछ सुकोमल हो गया परन्तु आप के चमकते हुए मुखमण्डल पर कोई भी एकटक न निहार सकता था। आपके परिश्रम से श्री परमहंस दयाल जी अति प्रसन्न हुए क्योंकि जिस अमर-ज्योति का उपदेश आपने देश विदेश के कोने कोने तक फैलाना, मोह ममता की गहरी नींद में सोए हुए जीवों को जगाना तथा अज्ञानता में भटकते हुए जीवों को सन्मार्ग पर लगाना—ये सब काम आपके लिए सरल हो गये थे। टेरी में कुछ दिन श्री परमहंस दयाल जी ने आप को अपने पास रखा और भक्तजनों से आप की सेवा सुश्रुषा करवाई तथा बाद में सत्संग का कार्य भी करवाने लगे। बाहर से जो भी संगतें श्री परमहंस दयाल जी के श्री दर्शन के लिये आतीं तो श्री परमहंस दयाल जी आप को ही सत्संग

उपदेश के लिये फ़रमाते। सब संगतें आप की मधुर वाणी में अमृत प्रवचन सुन कर कृतकृत्य हो जातीं। आई हुई संगतें आप का मुक्त कण्ठ से यश गातीं। कई भक्तजन आप को अपने गृह में पधारने के लिये आग्रह करते। कई भक्तजन तो श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में आपको अपने स्थानों पर ले जाने के लिए विनय करते। भक्तजनों की आपके प्रति अत्यधिक श्रद्धा एवं निष्ठा को देख कर श्री परमहंस दयाल जी ने आपको सीमाप्रान्त तथा निकटवर्ती स्थानों पर सत्संग, परमार्थ लाभ कराने हेतु श्री आज्ञा दी। श्री आज्ञा शिरोधार्य कर आप सोई हुई मानव सृष्टि को जागृति का सन्देश देने के लिये चल पड़े। सीमाप्रान्त के नगर नगर, गांव गांव में नामामृत की पावन वृष्टि करने लगे।

आप जिस नगर अथवा गांव में पधारते आप के दिव्य स्वरूप के तेज से संस्कारी आत्माएँ स्वयं आप की ओर खिचीं चली आतीं। प्रेमी भक्तों की भीड़ लग जाती। अधिकारी एवं संस्कारी आत्माएँ नाम-दीक्षा प्राप्त कर आप की पावन संगति रूपी जाह्नवी (गंगा) में मज्जन करने लगीं। जब आप श्री परमहंस दयाल जी के श्री दर्शन के लिए टेरी जाते तो अत्यधिक श्रद्धालु तथा श्री दर्शन के अभिलाषी भक्त जनों को साथ ले जाते। जब आप के श्रद्धालुओं की संख्या अत्यधिक हो गई और सीमाप्रान्त के कई नगरों व गांवों में आप की महिमा गाई जाने लगी तथा टेरी शहर के भक्त जन भी आप की स्तुति करने लगे तो एक दो भक्त जो श्री परमहंस दयाल जी की सेवा में रहते थे वे आप के बढ़ते हुए यश को सहन न कर सके। उनके हृदय में आप के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो गई। वे भक्त मन ही मन हैरान थे कि आप देखने में, वेष-भूषा में तो साधारण से प्रतीत होते थे और आप का प्रभाव अपरिमित था। इस के साथ आप श्री परमहंस दयाल जी के अत्यधिक स्नेह के पात्र थे। इसलिए वे बाहरी रूप से तो कुछ न कह सकते थे परन्तु दिल से आप के प्रति द्वेष करने लगे।

यह स्पष्ट प्रमाण है कि फूलों के साथ कांटे, छाया के साथ धूप तथा हर्ष के साथ शोक का परस्पर सम्बन्ध रहता ही है। ये प्रकृति के अटल सिद्धान्त हैं।

द्वन्द्व ही सृष्टि का नाम है। श्री चौथी पादशाही जी श्री गुरु रामदास जी के अपने ही पुत्र एवं शिष्य पृथीचन्द और श्री अर्जुनदेव जी थे। दोनों के स्वभाव में आकाश पाताल का अन्तर था। जहाँ श्री अर्जुनदेव जी अज्ञाकारी, सेवा-स्वरूप तथा प्रेम के आगार थे वहाँ पृथीचन्द जी ईर्ष्यालु, अहंकारी तथा विरोधी थे। इतना होते हुए भी पृथीचन्द जी की यह अभिलाषा रहती थी कि श्री अर्जुनदेव जी को श्री गुरु रामदास जी स्नेह भरी दृष्टि से न देखें परन्तु गुरु को आज्ञाकारी शिष्य तथा पिता को आज्ञाकारी पुत्र स्वभावतः ही सदा प्रिय होते हैं। वे श्री अर्जुन देव जी पर अपनी कृपा रखते थे। एक बार ऐसा हुआ कि श्री गुरु रामदास जी ने किसी कार्य के लिये लाहौर में जाने के लिए प्रथम पृथीचन्द जी को कहा परन्तु उस ने इस ख़्याल से कि कहीं मेरे पीछे श्री अर्जुनदेव जी को पिता जी उत्तराधिकारी न बना दें, जाने से इन्कार कर दिया। पुनः उन्होंने श्री अर्जुनदेव जी को आज्ञा फ़रमाई। श्री अर्जुनदेव जी तो सहर्ष श्री आज्ञा शिरोधार्य कर लाहौर चल दिये। उन के दिल में स्वामी और सेवक भाव का विमल प्रेम था। श्री गुरु रामदास जी ने फ़रमाया कि जब तुम्हें आज्ञा भेजें तब लौटना।

श्री अर्जुनदेव जी लाहौर चले गये। वहां जाकर इन का दिल श्री दर्शन के लिए तड़पने लगा। इन्होंने प्रेम विह्वल हो कर एक पत्रिका श्री चरणों में भेजी। ईर्ष्यालु पृथीचन्द ने उसे रास्ते में ही गुप्त कर दिया। पुनः दूसरी विनय पत्रिका भेजी तो भी पृथीचन्द ने उस पत्रिका को श्री चरणों तक नहीं पहुँचने दिया। जब तीसरी पत्रिका भेजी तो उस समय सन्देशवाहक को पत्रिका देते हुए यह भी समझा दिया कि इसे श्री गुरु महाराज जी के श्री चरणों में पहुँचाना, किसी के हाथ मत देना। उस समय श्री अर्जुनदेव जी का दिल प्रेम में 'बिन वारि मीन प्यासी' की तरह तड़प रहा था। जब यह पत्रिका श्री गुरु रामदास जी के पास पहुँची तो पहली पत्रिकाओं का रहस्य भी खुल गया। परिणाम यह हुआ कि गुरु गद्दी का उत्तराधिकारी आख़िरकार श्री अर्जुनदेव जी को ही बनाया गया।

इस मार्ग में तो सच्चाई, त्याग, सेवा और प्रेम की नितान्त आवश्यकता है।

इसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के प्रति श्री परमहंस दयाल जी का प्रगाढ़ स्नेह और उनकी अतुल्य कृपा को देख कर कई प्रेमी मन ही मन इनसे ईर्ष्या करते थे। उन में से एक तो ऐसा भक्त था जो श्री परमहंस दयाल जी के सम्मुख ही आप के विषय में स्पष्ट रूप से ईर्ष्या भरा व्यवहार करता। श्री परमहंस दयाल जी को यह अच्छा तो न लगता किन्तु फ़क़ीरी स्वभाव से वे किसी को कुछ न कहते। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है:—

॥ दोहा ॥

अहं अगनि निशदिन जरै, गुरु से चाहे मान।
ताको यम न्योता दियो, हो हमार महमान॥

इस प्रकार वह भक्त निशिदिन अहंता की अग्नि में जला करता। इधर श्री परमहंस दयाल जी अपने शिष्य के अन्तःस्थित (समीप) होते गये। श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी ने आपको सत्संग करने की आज्ञा प्रदान की। अब वही भक्त आपके सत्संग में तर्क-वितर्क करने लगा। आप सत्संग के मध्य अथवा पश्चात् में भी उसे चेतावनी देते रहते थे कि परमार्थ के पवित्र स्थान पर व सत्संग कार्यों में व्यर्थ का वाद-विवाद तथा अनुचित व्यवहार भक्तों को शोभा नहीं देता और इसका परिणाम भी अशुभ होता है परन्तु वह कहाँ मानने वाला था।

एक दिन भक्त रामचन्द (महात्मा निज मुक्तानन्द जी) ने आप के श्री चरणों में विनय की कि आप इस भक्त को कुछ न कहा करें, नहीं तो श्री परमहंस दयाल जी आप को नाराज़ होंगे। आप ने उत्तर दिया--"भक्त जी! जो कोई न्याय के विरुद्ध कार्य करे उसे कुछ न कुछ तो कहना ही पड़ता है। हमें भी यह गौरव है कि हम श्री परमहंस दयाल जी की शान के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर रहे।" भक्त जी ने कहा जैसे आपकी मौज हो करें। इस बात से आप ने अपने आप को प्रदर्शित नहीं किया अपितु जैसे सुतीक्ष्ण मुनि ने श्री रामचन्द्र महाराज जी के

श्री चरणों में विनय की थी कि:—

॥ चौपाई ॥

अस अभिमान जाय जनि भोरे ।
मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥

इस बात का स्पष्ट प्रमाण दिया कि श्री परमहंस दयाल जी मेरे हैं। भक्त रामचन्द जी ने इस घटना का उल्लेख इस प्रकार से किया है कि एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) प्रातः कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें वही भक्त मिला जो कि तर्क-वितर्क करता था। उसने ऐसे ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) की शान के विरुद्ध कुछ शब्द कहे तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उसे ज़ोरदार लहजा में समझाया और भविष्य में ऐसा न करने की चेतावनी भी दी परन्तु उस भक्त ने उन के वचनों को बुरा मान कर श्री परमहंस दयाल जी के चरणों में आकर उनके विरुद्ध ही शिकायत की। उस समय श्री परमहंस दयाल जी पलंग पर विश्राम कर रहे थे तथा मैं (भक्त रामचन्द) श्री चरणों की सेवा कर रहा था। जैसे ही उसने सम्पूर्ण वार्त्ता का वर्णन किया मैंने सोचा आज तो श्री परमहंस दयाल जी अवश्य ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) पर अप्रसन्न होंगे। परन्तु हुआ इस के विपरीत कि श्री परमहंस दयाल जी पाँच मिनट तो मौन रहे फिर प्रवचन किये—"बाबा स्वरूप आनन्द जी तो श्री कृष्ण जी की निर्भय पदवी को प्राप्त कर चुके हैं उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उन से जो लड़ेगा वह हारेगा।" अमृत प्रवचन श्रवण कर उस भक्त ने क्षमा मांगी और श्रद्धा विश्वास से आप के प्रवचनामृत श्रवण करने लगा।

आप श्री आज्ञानुसार सीमाप्रान्त के कोने कोने में आत्म-ज्ञान का सन्देश पहुँचाने हेतु नियमानुसार अपने कार्य में निरत रहे। आप इन दिनों आगरा में

भी कई बार सत्संग प्रचार के लिये जाते थे तथा कुछ समय पश्चात् पुनः सीमा-प्रान्त में लौट आते। आपके कई अनन्य श्रद्धालु तथा प्रेमी हुए। तभी तो श्री परमहंस दयाल जी ने एक बार फ़रमाया था कि जिस काम के लिये हम विश्व में आये थे उस काम को पूरा कर लिया है।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी से श्री स्वामी श्री तीसरी पादशाही जी का मिलाप

श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी) लक्की मरवत् ज़िला बन्नू में रहते थे। वे श्री सद्गुरुदेव जी के मिलाप तथा उनके सत्संग में जाने से पहले गीता तथा तुलसीकृत रामायण को अत्यधिक रुचि से पढ़ते थे। प्रातः मन्दिर में जा कर तीन-चार घण्टे तक गीता तथा रात्रि के समय तुलसीकृत रामायण का पाठ किया करते थे। भक्त साहिबराम जी श्री परमहंस दयाल जी के दृढ़निष्ठ उपासक थे। कुछ दिन श्री तीसरी पादशाही जी महाराज को भक्त साहिब राम जी की पावन संगति प्राप्त हुई। भक्त जी ने जैसे ही श्री परमहंस दयाल जी के शुभ नाम से उन से वार्त्तालाप व सत्संग किया वैसे ही उन के हृदय में गुरु भक्ति के प्रति अनन्य अनुराग उत्पन्न हो गया। यहाँ तक कि अभी इन्होंने श्री दर्शन भी नहीं किये थे फिर भी ये मन्दिर वाले पुजारियों तथा अन्य लोगों को यही कहते कि गुरु-भक्ति ही मानव-जन्म का ध्येय है। उस समय श्री परमहंस दयाल जी टेरी को कृतार्थ कर रहे थे और आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) आगरा तथा अन्य स्थानों को सत्संग-उपदेश से लाभान्वित कर रहे थे। आप इसी समय के मध्य में लक्की मरवत् ज़िला बन्नू में सत्संग प्रचार

के लिए भक्त साहिबराम जी के घर पधारे। भक्त साहिबराम जी तथा श्री सद्गुरु देव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) का आपस में प्रेम था। अतः भक्त साहिबराम जी ने उन (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) को बताया कि आज रात को हमारे घर सत्संग होगा। आप को सत्पुरुषों के पावन प्रवचन श्रवण करने की उमंग पहले से ही थी। रात्रि समय भक्त जी के साथ वहाँ गये। वहाँ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के श्री पावन वचनों से आपके हृदय में भक्ति-सेवा की चिंगारी लग गई। सत्संग की समाप्ति पर अन्य भक्तों के साथ आप घर लौट आए। परन्तु आप के हृदय में तो दिव्य ज्योति का प्रकाश तरंगायित हो रहा था। रात्रि भर विश्राम भी न किया। प्रातः होते ही स्नानादि से निवृत्त हो भक्त साहिबराम जी के घर गये। उन्हें साथ लेकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में उपस्थित हुए। पतंगा सदा शमा पर पहुँच कर ही आनन्द का अनुभव करता है। जल की बूँद समुद्र में मिल कर ही विश्राम पाती है। इसी प्रकार आप ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी से विधिवत् गुरु-दीक्षा ली तथा गुरु-भक्ति के पथ पर चल पड़े। आप ने गुरु-दीक्षा लेते ही गुरु-भक्ति के सांचे में जीवन ढाल लिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) की प्रत्येक आज्ञा व मौज को ही अपना परम कर्त्तव्य समझा। पुनः जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी के श्री दर्शन के लिए टेरी गए तो आप भी उनके साथ गये। ज्यों ही श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में पहुँच कर दण्डवत् वन्दना कर के उठे तो श्री परमहंस दयाल जी ने आपको देखते ही प्रथम दृष्टि में पहचान लिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को आप (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी) की ओर संकेत कर कहा कि इन्होंने भी परमार्थ का बहुत कार्य करना है। श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी ने गुरु भक्ति में दिल व जान से नाता जोड़ दिया। इनका पूर्ण महान् व्यक्तित्व उन के जीवन चरित्र में मिलेगा।

श्री दूसरी पादशाही महाराज जी को परम सन्त की पदवी

सर्वप्रथम तो पूर्ण सन्त महापुरुषों का मिलना कठिन है। यदि मिल भी जाएँ तो उन्हें पहचानना कठिन है। पुनः उनकी पावन संगति में कुछ ज्ञान हो जाये तो मन माया के विघ्नकारक आवरणों से मन को अलग रखना कठिन है। अर्थात् जब मनुष्य सन्त–महापुरुषों की पावन संगति प्राप्त करता है तो रास्ते में माया पग पग पर अपना जाल फैलाती है तथा जीव को भक्ति-पथ से हटाने के लिये कई ढंग खेलती है। जो उच्च संस्कारी आत्माएँ होती हैं वे माया के फंदे में न आती हुईं सद्गुरु की आज्ञा रूपी चप्पू को दृढ़ कर अपनी नाव को भवसागर से पार ले जाने में सफलता प्राप्त करती हैं। भक्ति-मार्ग जितना कठिन है उतना सरल भी। जो जीव मनमति अनुसार कार्य करता है अथवा गुरु-आज्ञा पालन में आलस्य कर देता है उसके लिए भक्ति कठिन से भी कठिन है। गुरु-आज्ञा भक्ति की प्रथम सीढ़ी है। जिस प्रकार किसी मंज़िल (चौबारे) पर जाने के लिये सोपानों (सीढ़ियों) की आवश्यकता होती है इसी प्रकार इन आन्तरिक मंज़िलों को पार करने के लिये भी सोपान (सीढ़ियां) हैं। जिसने भी गुरु-आज्ञा को शिरोधार्य किया, इसे अपनी पूँजी समझा, उसने वास्तविक अर्थों में ज़िन्दगी प्राप्त की।

इसी विषय में भक्त दीवान भगवान दास जी की इस घटना से ज्ञात होता है कि दीवान भगवानदास जी उच्च संस्कारी आत्मा थे। इनका जन्म टेरी में हुआ। यह साँभर झील पर नमक विभाग के अध्यक्ष पद पर थे। इन्होंने टेरी में किसी से यह वचन कहते हुए सुना कि आजकल श्री परमहंस दयाल जी श्री सद्गुरुदेव श्री दूसरी पादशाही जी को 'परम सन्त' के नाम से पुकारा करते हैं। अनन्य निष्ठा, उच्च भावना तथा श्री परमहंस दयाल जी की पावन संगति को प्राप्त कर आप के दिल पर भी प्रेम–भक्ति का उज्ज्वल रंग चढ़ा हुआ था। आप

भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को 'परम सन्त' के नाम से सम्बोधित करने लगे। जब भी कहीं किसी स्थान पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी मिलते, आप 'परम सन्त जी' कह कर नत-मस्तक हो जाते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को 'परम सन्त' बुलाते देख कर कुछ भक्तों के दिल में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उन्हें हर समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को 'परम सन्त' जी के शुभ नाम से बुलाना अच्छा नहीं लगता था। एक बार उन ईर्ष्यालु भक्तों में से एक भक्त ने दीवान भगवानदास जी को एकान्त में बुलाकर कहा—"आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को श्री परम सन्त जी मत बुलाया करें क्योंकि यह बात सब को अच्छी नहीं लगती। दुनियादारी भी कोई वस्तु होती है। वह परम सन्त बन थोड़े ही गए हैं या हमें ऐसा बुलाने के लिए आज्ञा दी गई हो जो आप उन्हें इस नाम से बुलाते हो। आप के प्रति सब के दिल में रोष सा पैदा हो गया है हमें यह अच्छा नहीं लगता। आप उन्हें बाहर या किसी के सामने इस नाम से बुलाना छोड़ दें।" किन्तु भक्त दीवान भगवानदास जी उन प्रेमियों में से नहीं थे जो लोगों की बातों में सद्गुरु की श्री मौज को न समझ सकते। उन्होंने उत्तर दिया—भक्त जी! क्या हुआ यदि लोगों को अच्छा नहीं लगता। इस में सन्देह की बात ही क्या है? यदि श्री परमहंस दयाल जी निज मुख से उन्हें 'परम सन्त' बुलाते हैं तो हमें उन के श्री वचनों को मानना है न कि दुनिया को देखना है। हमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) को 'परम सन्त' बुलाने में क्या आपत्ति है? वे तो निश्चय ही परम सन्त हैं। उस समय भक्त दीवान भगवानदास जी ने अपनी अचल निष्ठा का प्रमाण यूँ दिया। पंजाबी में लिखा है:—

सच्चे आशिक मूल न डरदे, दुःखां तानियां पासों।
लावण ते च तोड़ निभावण, भावें निकल जाण स्वासों॥

दिल कमज़ोर वसगा इस दुनिया, रीस प्रेमियां करदे।
उन्हां मंज़िल की तह करनी, जिन्हां दा दिल धड़के॥

भक्त जी तो अपनी निष्ठा पर अचल रहे। अपने मुख को इसी शुभ नाम से पवित्र करते रहे। उन्हें न दुनिया की परवाह थी न मान—अपमान की। वे अपने संकल्प के पक्के थे तथा श्री मौज को ही सर्वस्व समझने वालों में से थे। फलस्वरूप आगे चलकर उन्होंने त्रिलोकी—दुर्लभ श्री अमर—वचनों को श्रवण किया वे इस प्रकार हैं:—

एक बार श्री परमहंस दयाल जी विश्राम कर रहे थे। उस समय दीवान योगराज जी श्री चरणों की ओर बैठे थे तथा अन्य प्रेमी व वही ईर्ष्यालु भक्त भी समीप बैठे थे। बाहर से आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) का आगमन हुआ। साथ में दीवान भगवानदास जी भी थे। ज्यों ही आप ने श्री चरणों में दण्डवत् वन्दना की तो दीवान भगवानदास जी (जिन्हें लोग चाचा जी भी कहते थे) ने कहा—"योगराज जी! श्री परम सन्त जी आए हैं उनके लिए स्थान बनाओ।" दीवान योगराज जी उठ खड़े हुए और आप को बैठने के लिए आसन बना दिया। इतने में श्री परमहंस दयाल जी एक दम पूछने लगे क्या है भैय्या? दीवान योगराज जी ने उत्तर दिया कि बाबा स्वरूप आनन्द जी बाहर से आये हैं और चाचा जी ने कहा है कि परमसन्त जी आये हैं; इनके लिये स्थान बनाओ। श्री परमहंस दयाल जी आप का नाम सुनते ही प्रसन्नता में झूम उठे और फ़रमाने लगे—"भक्त भगवानदास जी ने ठीक ही तो कहा है। जब हम कहते हैं तो इसमें सन्देह ही क्या है? ये श्री कबीर जी की पदवी प्राप्त कर चुके हैं, श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज की निर्भय पदवी इन्होंने प्राप्त कर ली है। ये श्री गुरु नानकदेव जी की पदवी प्राप्त कर चुके हैं। श्री रामचन्द्र जी की पदवी भी इन को मिल चुकी है। यह चार कूट धरती को चिताएँगे। इन के लाखों ही शिष्य होंगे।" इन वचनों को सुनते ही दीवान भगवानदास जी ने भक्त योगराज जी को कहा कि सुन लिया। सब के हृदय में ठंड पड़ गई है। इतना

सुनते हुए भी आप के दिल में तनिक मात्र भी अपनी प्रशंसा के प्रति ख़्याल न उत्पन्न हुआ। नतमस्तक होकर आप ने वन्दना की। इस प्रकार दीवान भगवान दास जी अब और भी अधिक श्रद्धा व प्रेम से आप की सेवा करने लगे। कहा जाता है कि 'नीची डाली मीठे फल वाली'। जैसे जैसे श्री परमहंस दयाल जी आप के प्रति महानता के वचन फ़रमाते वैसे वैसे ही आप अधिक नम्रता ग्रहण करते जा रहे थे। आप को संगत तथा भक्तों से इतना सत्कार मिलने पर भी आप नम्रभाव से सब से वचन कहते। सत्संग से मलिन हृदयों को पवित्र बना देते।

टेरी के समीप गांव में भक्त जनों ने कृष्णद्वारा के उद्घाटन के लिए श्री परमहंस दयाल जी को वहाँ पर पधारने के लिये विनय की। श्री परमहंस दयाल जी ने प्रवचन फ़रमाए—"हमारे पास तो समय नहीं है हम अपने ही रूप बाबा स्वरूप आनन्द जी को आपके साथ भेज देते हैं। इन में और हम में कोई भेद नहीं है। यह आप को सत्संग सुनाएँगे। इन के रूप में आप हमारे ही द्वारा किये हुए इस उद्घाटन को जानो।" भाव यह कि श्री परमहंस दयाल जी अपने शिष्य को सब प्रकार से सम्पूर्ण जानकर अपनी आध्यात्मिक शक्ति उन्हें समर्पित करने को आतुर थे। जिस प्रकार से परम शिष्य श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज श्री परमहंस दयाल जी के श्री चरणों में सर्वस्व समर्पित कर प्रसन्नता का पात्र बन चुके थे वैसे ही श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी अब रूहानी दात शिष्य को सौंप कर निज रूप बनाना चाहते थे। लोगों को भावी विभूति के अवतरित होने का सन्देश दे रहे थे। वह रहस्य समय पाकर खुल गया कि श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी इस सम्प्रदाय के द्वितीय महाराजाधिराज, पथ-प्रदर्शक सन्त महापुरुष के रूप में प्रकट हुए।

श्री परमहंस दयाल जी की आज्ञानुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी सीमाप्रान्त के नगरों तथा गांवों में अपने इष्टदेव जी के पवित्र सन्देश को पहुँचाने के लिये भरसक प्रयत्न कर रहे थे। जन-जन में जागृति की क्रांति का आरम्भ हुआ।

रूहानी जानशीनी

आध्यात्मिक विद्या जिसे दूसरे शब्दों में परा-विद्या या ब्रह्म-विद्या भी कहा जाता है आदिकाल से एक दिल से दूसरे दिल तक क्रमशः आती रही है। अर्थात् गुरु अपने प्रमुख, प्रिय तथा सर्व प्रकार से योग्य शिष्य को इस रहस्य का पूर्ण ज्ञान बता देते हैं। समय समय पर शिष्य का निरीक्षण तथा परीक्षण करते हैं। वे स्वयं पारस होते हैं शिष्य को भी पारस बना देते हैं। जब शिष्य सर्वगुण सम्पन्न सब प्रकार से योग्य बन जाता है तो उसे अपनी समस्त शक्तियां सौंप कर फिर स्वयं ब्रह्म-स्वरूप में लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) भी अब भक्ति की परम पराकाष्ठा तक पहुँच चुके थे। वे श्री परमहंस दयाल जी की प्रसन्नता तथा कृपा के सर्वथा सत्पात्र बन चुके थे।

श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी ने अपनी मौज के अनुसार आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) को टेरी बुलवाया तथा वहाँ पर भक्त अमीर चन्द जी के घर निचले भाग में अपना और ऊपर के भाग (चौबारे) पर आपका स्थान बनवाया। निजधाम पधारने से कुछ समय पूर्व श्री परमहंस दयाल जी, आत्मिक ज्ञान के पूर्ण तत्त्ववेत्ता श्री स्वामी जी श्री दूसरी पादशाही जी को रात्रि समय नीचे बुला लेते तथा एकान्त में फ़क़ीरी अर्थात् आध्यात्मिक दात बख़्शने लगे। दो दिव्य शक्तियां आत्म-ज्ञान तथा जन कल्याण हेतु रात्रि के समय विचार-विमर्श किया करतीं। जब सृष्टि मोह-निद्रा में सो रही होती तो उस निद्रा से जगाने के लिये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के रूप में आध्यात्मिक सूर्य उदय होने की तैयारी कर रहा था। रात्रि में काफ़ी समय तक श्री परमहंस दयाल जी, श्री सद्गुरु देव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) को रुहानियत का गूढ़ भेद बतलाते रहते। घण्टों तक यह धारा निरन्तर बहती रहती। महापरिनिर्वाण से २ मास ११ दिन पहले उस रात्रि को श्री दूसरी पादशाही जी को नित्य प्रति की भाँति रात्रि के २ बजे श्री

परमहंस दयाल जी ने नीचे बुलाया। हृदय से लगाया और अपने ही स्वरूप का साक्षात् दर्शन आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) के घट में कराया। कमरे में प्रकाश ही प्रकाश फैल गया। इस देदीप्यमान् ज्योति से दो दिव्य पुरुषों का एकीकरण हो गया। श्री परमहंस दयाल जी अब बिल्कुल निश्चिन्त हो गए। उन्होंने निजधाम पधारने से दो मास पूर्व टेरी में एक आज्ञा-पत्र ३ मई १९१९ को लिखवाया था जिसमें अपने उत्तराधिकारी के विषय में पवित्र अर्शाद लिखवाए। अब दो दिव्य शक्तियां एकाकार हो चुकी थीं।

॥ दोहा ॥

सतगुरु शिष की आत्मा, शिष सतगुरु की देहि।
लखा जो चाहे अलख को, इन ही में लखि लेहि॥

अर्थात् सेवक और स्वामी एक रूप हो गए। इन दो शरीरों में आत्मा एक ही थी। अब जिस ने श्री परमहंस दयाल जी के रूप को देखना हो वह श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के स्वरूप को निहारे। इस प्रकार एकत्व और अभिन्नता स्थापित कर श्री परमहंस दयाल जी ने आप को फ़रमाया— "अब कुलाची की ओर जाइये। उपदेश सत्संग कार्य कीजिये और निश्चित समय पर आ जाना।" श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर आप महात्मा योगात्मानन्द जी के साथ जाने लगे तो उस समय कृपासिन्धु श्री परमहंस दयाल जी की दया फिर एक बार तरंगित हो उठी। आप के जाने से पहले फिर अर्शाद हुए—"हम दिल से दुआ देते हैं कि आप के लाख शिष्य होंगे। केवल लाख ही नहीं, लाख तो बीज मात्र हैं। आप कुलाची की ओर जाइये। आप हर तरह से परिपूर्ण हो, हमारी दुआ आशीर्वाद आप के साथ है। आप सोई हुई मानवता को परमार्थ का सन्देश दीजिये। यह हमारी अन्तिम आज्ञा है।"

आप बहादुरख़ेल से होते हुए बन्नू तथा लक्की गए। वहां पर कुछ दिन सत्संग का अमृत सब को पिला कर उन मोह-निद्रा में सोए हुए जीवों को जगाया; भक्ति

का पथ दर्शाया। यहां पर आपके बहुत से प्रेमी हुए जिन में से श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज, श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज, महात्मा निजात्म आनन्द जी तथा भक्त साहिब राम जी प्रमुख थे। लक्की से टांक, कुलाची होते हुए डेरा इस्माइलखाँ में पधारे। डेरा इस्माइलखाँ में आपने अत्यधिक प्रचार किया। सर्वसाधारण भी भक्ति के रंग में रंगे गये। आप दिन रात एक कर श्री गुरु-आज्ञा का पालन कर रहे थे। इधर श्री परमहंस दयाल जी का स्थूल शरीर सुकोमल हो चुका था। अतः अब श्री परमहंस दयाल जी की मौज इसे समेट लेने की हुई। दिनांक ३ मई १९१९ सन् ईस्वी तदनुसार वैशाख शुदी सप्तमी सम्वत् १९७६ को श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी को अपना आत्मिक जानशीन (उत्तराधिकारी) नियुक्त (स्थानापन्न) किये जाने की आज्ञा प्रदान कर इसके दो मास सात दिन पश्चात् अर्थात् १० जुलाई १९१९ सन् तदनुसार २७ आषाढ़ शुदी द्वादशी बृहस्पति के दिन प्रातः छः बजे श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी महाराज निज स्वरूप में लीन हुए। श्री सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी महाराज १२ जुलाई १९१९ ई० को स्वयं श्री दर्शन के लिए आ रहे थे क्योंकि १३ जुलाई को व्यासपूजा का शुभ पर्व था। यहां पर आते ही दुःखद समाचार को सुन कर अति व्याकुल हुए। परन्तु हो ही क्या सकता था। पुनः व्यास पूजा के दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने श्री गुरुदेव जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा करवाया और सब संगत को इसी दिन रूहानी जानशीनी का हुक्मनामा सुनाया गया और २ अक्टूबर सन् १९१९ को रूहानी जानशीनी की रीति (रस्म) का दिन निश्चित किया गया।

अब सब के नयन उस दिव्य ज्योति को निरखने के लिये व्याकुल हो रहे थे। २ अक्टूबर १९१९ सन् ईस्वी वीरवार को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने सब सत्संगियों को बुलवाया। बन्नू, लक्की मरवत्, कक्कियाँ, टल, लाची, कोहाट, जट्टा, बहादुरखेल, टाँक, कुलाची तथा सीमा प्रान्त के छोटे बड़े नगरों से हज़ारों की संख्या में प्रेमी जन टेरी पहुँचे। इसी अवसर पर दीवान

भगवानदास जी और भक्त ख़ानचन्द जी (महात्मा योगात्मानन्द जी) ने उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में श्री परमहंस दयाल जी का अशीर्वाद-पत्र सर्व संगत को पढ़कर सुनाया। उसी दिन अर्थात् २ अक्टूबर १६१६ सन् ई० तदनुसार १६ असौज संवत् १६७६ वीरवार के शुभ दिन शुभ मुहूर्त्त में सब सत्संगियों तथा गुरुमुखों ने मिल कर श्री श्री १०८ श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज को रूहानी उत्तराधिकारी होने के नाते केसर का तिलक लगाया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के रूप में परमार्थ के राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। सब संगत ने मिल कर आपकी श्री आरति-पूजा की। उसी दिन भण्डारा भी किया गया। इस प्रकार आध्यात्मिकता के सम्राट् हृदयों पर शासन करने तथा मलीन हृदयों को पवित्र बनाने के लिये परमार्थ की अनन्त यात्रा पर निकल पड़े।

सीमाप्रान्त में सत्संग

जगत् के समस्त जीव जो शोक, भय, वियोग, मोह के दुःख से दुःखी हो रहे थे। उनका उद्धार करने तथा उन्हें इन रोगों से छुटकारा दिलाने के लिये भव-रोग विनाशक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी वैद्य बन कर शब्द रूपी औषध प्रदान करने लगे। भारत के सीमा प्रान्त में जीव इन दुःखों से अत्यधिक दुःखी थे। अतएव सर्व प्रथम यहां ही नाम रूपी आनन्ददायिनी संजीवनी देकर लोगों को मानसिक दुःखों से छुटकारा दिलाने लगे। अपनी जन्म-जन्मान्तरों से बिछड़ी हुई पुरातन पवित्र आत्माओं को जागृति देने के लिए आप अत्यन्त साहस से इस पथ पर अग्रसर हुए। श्री परमहंस दयाल जी के श्री वचन थे "आप महापुरुष हैं, परमसन्त हैं, आपके लाखों शिष्य होंगे, आप चार कूट धरती को चिताएँगे।" उन्हीं श्री वचनों के फलीभूत होने का समय अब मानो निकट आ पहुँचा। श्री परमहंस दयाल जी की आशिष आप के साथ थी। कहा जाता है कि सन्तों का सहज में ही कहा गया वचन व्यर्थ नहीं जाता। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) पर तो श्री परमहंस दयाल जी

की असीम कृपा थी। अब भय तथा विघ्न की तो कोई बात ही नहीं थी।

सर्वप्रथम आपने लक्की मरवत् ज़िला बन्नू को सत्संग का मुख्य केन्द्र बनाया। भक्त साहिबराम जी के घर सत्संग का कार्य हुआ करता। आपने जिज्ञासुओं व गुरुमुखों को सरलता से उपदेशामृत का पान कराने हेतु लक्की में कुछ ज़मीन खरीदने को कहा, क्योंकि बढ़ती हुई नाम की महिमा से जिज्ञासुओं व गुरुमुखों की संख्या भी बढ़ रही थी। इसीलिये सत्संग हेतु आश्रम का होना ज़रूरी था। आपने सत्संग कार्य के लिए ज़मीन ख़रीदी। इसी हर्ष में कि यहां आश्रम निर्माण होगा। यहां पर भक्तों ने एक भण्डारा करवाया जिस में बन्नू, टांक, टेरी, टल, कुलाची, नौरंग, कक्कियां आदि के प्रेमी श्रद्धालु सम्मिलित हुए। आपने अधिकारी और संस्कारी आत्माओं को उपदेश देना आरम्भ किया।

भक्त साहिबराम जी आप के अनन्य भक्त थे। उन्होंने आपकी सेवा श्रद्धा व प्रेम से की। वे इतने प्रेमी थे कि जब भी श्री दर्शन करते तो मन्त्र मुग्ध हो जाते और तन बदन की सुधि भूल जाते। उनकी इस दशा से लोग अधिक आकर्षित होते कि इन महापुरुषों में ऐसी शक्ति है जो जीव मस्ती में सब कुछ भूल जाता है। इस प्रकार दूर दूर तक महिमा फैलती गई। दूर दूर से प्रेमी श्री दर्शन के लिये आने लगे। सचमुच ही वे श्री दर्शन कर एक अनूठी मस्ती अनुभव करते। कई तो बस एक झलक में ही समाधिस्थ हो जाते। आप अधिकतर 'नाम की महिमा' पर सत्संग उपदेश करते। आप फ़रमाते-"नाम वह अमृत है, वह औषधि है जिसके सेवन से काल-माया भी उस जीव से भय खाने लगते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि शत्रु तथा सब का सरदार मन भी नाम के प्रताप से हार मान कर जीव का ग़ुलाम बन जाता है।" आप फ़रमाते थे किः—

॥ दोहा ॥

नाम जो रत्ति एक है, पाप जु रत्ति हज़ार।
आध रत्ति घट संचरै, जारि करै सब छार॥

कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नांव ।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम विनु ठांव ॥

अर्थात् हज़ारों जन्मों के पाप-कर्मों को नाम क्षण भर में जला कर राख कर देता है । चाहे कितने युग में अन्य पुण्य कर्म किए जाएं परन्तु सन्त-महापुरुषों द्वारा प्राप्त मन्त्र रूपी नाम के बिना ठिकाना नहीं है । इसी प्रकार नाम अर्थात् शब्द की कमाई पर अधिक ज़ोर दिया । अधिकारी तथा संस्कारी आत्माएं परवानों की तरह शमा पर मंडराने लगीं । प्रचार अधिकाधिक होने लगा । इस बढ़ती हुई महिमा को देख कर कुछ लोगों ने मिथ्या अपवाद फैलाने आरम्भ कर दिये परन्तु क्या कभी सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश अपनी सत्ता रख सकता है या खद्योत (जुगनू) अन्धेरी रात का उजाला बन सकता है ? कदापि नहीं । इस प्रकार सन्त महापुरुष तो सूर्यवत अपना प्रकाश फैलाते हैं। उन्हें किसी की प्रशंसा अथवा निन्दा से कोई प्रयोजन नहीं ।

इस प्रकार आप बन्नू , कोहाट, टेरी, कुलाची, टांक, लक्की मरवत्, टल, नौरंग सराय, डेराइस्माइलखाँ आदि स्थानों पर इस उपदेश-धारा को अधिकाधिक बहाने लगे । सन् १६२१ में श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी मोज़ा कक्कियाँ ज़िला बन्नू (सीमा प्रान्त) में महात्मा योगात्मानन्द जी के घर सत्संग प्रचार के लिये ठहरे हुए थे । इन्हीं दिनों कक्कियाँ पर एक डाका पड़ा । डाकू लोग एक भक्त के लड़के को पकड़ कर ले गए । उस भक्त ने अगले दिन श्री चरणों में उपस्थित होकर विनय की कि मेरा लड़का डाकू पकड़ कर ले गए हैं । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि मालिक का भजन करो, सब ठीक हो जाएगा । उस समय तो भक्त वहाँ से चला गया । तीन दिन के पश्चात् डाकुओं की ओर से उस भक्त के नाम एक पत्र आया कि दस हज़ार रुपया अमुक स्थान पर भिजवा दो तो तुम्हारे लड़के को छोड़ दिया जाएगा नहीं तो इसके जीवन से हाथ धो बैठो—उसका केवल एक लड़का था । यह समाचार मिलते ही भागा भागा श्री चरणों में उपस्थित हुआ । सब वृत्तान्त डाकुओं का विनय किया ।

आप ने फ़रमाया कि तुम्हें पहले भी कहा गया है कि भगवान् का भजन करो। कुदरत सब काम ठीक करेगी। वह भक्त वहाँ से तो चुपचाप चला गया परन्तु मन में सोचने लगा कि मेरे लड़के के छूटने की कोई आशा नहीं हो सकती। न मैं इतना रुपया दे सकूँगा, न डाकू लड़के को छोड़ेंगे। उस समय का दस हज़ार रुपया आज के एक लाख के बराबर है। अब भक्त जी घर जाकर कुछ थोड़ा बहुत भजन-पूजन करने लगे।

॥ दोहा ॥

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय ॥

विधि के खेल—डाकू उस लड़के को साथ ले जाकर पहाड़ो के अन्दर छुप कर बैठे थे। लड़के को एक कोने में बिठाया हुआ था और उसके हाथ पाँव बँधे हुए थे। सब डाकू निश्चिन्त होकर खाना खा रहे थे। एकदम उन्हें उसी पहाड़ी पर एक सिपाही घूमता हुआ नज़र आया। एक डाकू ने कहा कि पुलिस आ गई। सब डाकू उस लड़के को वहीं तथा भोजन मध्य में ही छोड़ कर दौड़ पड़े। डाकुओं के भागने पर वह सिपाही नीचे उतर कर लड़के के पास आया। उस से सब हाल पूछा। लड़के ने अपना नाम, पिता का नाम व गाँव सब बताया। डाकुओं का सब हाल सिपाही को सुनाया। सिपाही ने उसके हाथ पाँव खोले और साथ ला कर उसके गाँव के पास लड़के को छोड़ दिया। लड़के ने सिपाही को घर चलने के लिए विवश किया परन्तु सिपाही ने कहा कि मेरा काम तो तुम्हें छुड़ाने का था सो हो गया, अब मैं जाता हूँ। उस लड़के ने घर पहुँच कर अपने पिता जी को सब आप बीती कह सुनाई। वह भक्त मन ही मन समझ गया कि श्री सद्गुरुदेव जी के अतिरिक्त इस विषम परिस्थिति में कौन वहाँ पहुँच सकता है? अवश्य ही श्री सद्गुरुदेव जी महाराज स्वयं वहाँ पहुँचे होंगे। दूसरे दिन वह भक्त उस लड़के को साथ लिए श्री चरणों में पहुँचा और आपका बहुत बहुत धन्यवाद कर क्षमा माँगने लगा। आपने वचन फ़रमाए कि अब तुम्हारा काम हो गया है सो पहले

से अधिक भजन किया करो। स्वयं करो तथा सम्बन्धियों से भी करवाओ। भजन करने से बाहर व अन्दर के डाकू (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार) सब डरते हैं। इसीलिए मन लगा कर अधिक भजन किया करो। जो मालिक का भजन करते हैं वे इस लोक व परलोक में सुखी रहते हैं।

इस प्रकार वहां सत्संग की पावन धारा बहा कर फिर डेराइस्माइलखां पधारे। डेराइस्माइलखां के कई लोग वाद-विवादी स्वभाव के थे। उन लोगों ने आप की गुप्त तथा प्रकट रूप से परीक्षा ली कि क्या ये योग-निष्ठ सन्त हैं? श्री सद्गुरु देव महाराज जी पूर्ण तत्त्वदर्शी थे। इन्हें किसी की क्या चिन्ता? कोई किस उपाय से परीक्षा ले। अन्त में सब ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को पूर्ण रूप से परीक्षा में सफल पाकर नतमस्तक हो उस दिव्य पुरुष की वन्दना की। उन सब घटनाओं का यहां वर्णन न करते हुए केवल एक घटना का यहां उल्लेख किया जाता है।

एक बार डेराइस्माइलखां में चार पाँच व्यक्तियों ने मिल कर आपकी परीक्षा लेने की ठानी। उन में से गुसाईं हरिचन्द जी जो उस समय अधलखों के कुल गुरु थे, इन्होंने आपस में यह सलाह की कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को भांग पिलाते हैं। यदि इस का प्रभाव पड़ा तो वे पूर्ण योगनिष्ठ नहीं, यदि प्रभाव न पड़ा तो वे पूर्ण योगीश्वर होंगे। उनका कथन है कि उन्होंने इतनी तेज़ भांग बनाई कि जिसे यदि पच्चीस व्यक्ति भी पी लेवें तो भी नशा तेज़ होगा। इतनी तेज़ भांग लाकर आप को पिला दी। आप ने भांग को देखा तो समझ गए कि परीक्षा हेतु ऐसा कर रहे हैं, आप भी इसे चुपचाप पी गए। रात्रि समय क्रम से दो दो व्यक्ति दो दो घण्टे के लिए सत्संग सुनने आए ताकि वे यह जांच कर सकें कि आप को नींद भी न आए और न ही वे स्वयं जागरण से ऊँघने लगें। इस प्रकार आप प्रवचन की अमृतवृष्टि जिस क्रम से कर रहे थे उसी तरह समान रूप से उस दिन रात्रि के समय करते रहे। प्रातः चार बजे जिन व्यक्तियों की बारी थी, वे ऊँघने लगे। आप के पास एक छड़ी पड़ी हुई थी। आपने वह छड़ी उठाई और उन व्यक्तियों को छड़ी से सचेत करते हुए कहा—"क्यों भई! योगारूढ़ की परीक्षा

करने आए हो और फिर नींद कर रहे हो ? भाँग तो पिलाई हमें और नींद करते हो तुम। ख़बरदार ! सावधान होकर बैठो। यहाँ नींद का कोई काम नहीं। जब तक सत्संग की धारा बहती रहे तब तक चैतन्य रहो।"

इस प्रकार कुछ समय तक निरन्तर उपदेशामृत की धारा प्रवाहित रही। आप को एक ऊँघ भी न आई और न आप सुस्ताए। यह देख कर वे सब हैरान रह गये और श्री चरणों में आकर क्षमा माँगी। आप ने फ़रमाया—"आगे से आप ऐसा मत करें। किसी की परीक्षा लेना स्वयं को लज्जित करना है।" सब के दिल में यह पूर्ण निश्चय हो गया कि यह दिव्य पुरुष पूर्ण योगीश्वर हैं। इन में से महन्त हरिचन्द जी ने तो आप की प्रभुता देखकर अपना समस्त प्रपञ्च, गृह, शिष्य एवं बन्धु-बान्धव सभी को त्याग कर श्री चरणों में शरणागति प्राप्त की। इसके कुछ समय पश्चात् साधु वेष भी धारण किया और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उन का नाम महात्मा अघट प्रेमानन्द जी रखा। संत तुलसीदास जी का कथन है:—

॥ चौपाई ॥

जो कोई कहे सन्त हम चीन्हा।
तुलसी हाथ कान धरि लीन्हा॥

सन्त महापुरुष समुद्र के समान अथाह होते हैं जिन का किनारा या सतह पाना कठिन ही नहीं असम्भव है। वे जन कल्याण हेतु पृथ्वी पर नर रूप में प्रकट होते हैं और नर-लीला के रूप में संस्कारी आत्माओं को इस भव से मुक्त कर देते हैं। इन्हें पहचानना या परीक्षण करना मानव बुद्धि से परे की बात है। वे अनन्त ही नहीं बेअन्त हैं। जो जीव मन, बुद्धि और अहंकार का त्याग कर शरण में आ जाता है वे उसे सच्ची निधि से मालामाल कर देते हैं। महापुरुषों कथन है:—

॥ दोहा ॥

गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान॥

अर्थात् सन्त महापुरुष दयालु होते हैं। जो शिष्य भिखारी बन कर उन के द्वार पर आता है वे उस के दामन में तीन लोकों का सुख भर देते हैं। जिन प्रेमियों ने भी श्री चरणों में आपाभाव समाप्त कर मन व चित्त की समस्त वृत्तियों को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा में जोड़ दिया वे ही उन के प्यारे बने। इन प्रेमियों की श्रेणी में भक्त साहिबराम जी, भक्त राम जी मल तथा अन्य भक्त भी थे।

भक्त राम जी मल सेवा, त्याग तथा प्रेम की साक्षात् मूर्त्ति थे। इन्होंने सेवक भाव से अपने इष्टदेव श्री सद्गुरु देव महाराज जी के श्री चरणों में रहकर अगाध प्रेम से निजी सेवा की। प्रेमी के दिल की तारें इष्टदेव के साथ जुड़ी हुई होती हैं। इस प्रमाण को इन्होंने सत्य सिद्ध कर दिखाया कि:—

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी रेलगाड़ी द्वारा कहीं जा रहे थे। भक्त राम जी मल भी उसी गाड़ी में ही तीसरे डिब्बे में पीछे बैठे हुए थे। श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को फ़रमाया कि जाओ भक्त राम जी मल को यहाँ बुला लाओ। इधर श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने प्रेमी को याद किया उधर प्रेमी के हृदय की तारें झनझना उठीं। सच्चे प्रेमी के प्रेम ने अन्दर ही अन्दर प्रेरणा दी कि उठो! श्री सद्गुरुदेव महाराज जी बुला रहे हैं। भक्त राम जी मल उठे और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जिस डिब्बे में विराजमान थे उधर चल दिए। जब महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी गाड़ी से नीचे उतरे तो सामने भक्त राम जी मल को आते हुए देखा। इन्होंने कहा कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आपको बुला रहे हैं। उत्तर मिला इसीलिये तो मैं आ रहा हूँ। बिना बुलाए ही वह श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में उपस्थित हुआ। प्रेम की कितनी महानता है बिना किसी सन्देश पहुँचाये ही दिल की तारें सन्देश देती हैं। सन्त दादू दयाल साहिब जी ने भी लिखा है कि:—

॥ दोहा ॥

दादू दिल दीदार दे, मतवाला कीया।
जहँ अरस इलाही आप था, अपना करि लीया॥

अर्थात् जब प्रियतम के दीदार में दिल मतवाला बना दिया तो उस मालिक ने उसे अपना ही बना लिया।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की से कलकत्ता में गए। वहाँ छः मास तक रहे। दिन रात नाम रूपी नौका पर जीवों को चढ़ाते रहे। उस समय सेवा में भक्त राम जी मल थे। उन्होंने हर समय श्री चरणों की सेवा को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य समझा हुआ था। इस सेवा में उन्होंने न दिन देखा न रात यहाँ तक कि वहाँ उन्हें ज्वर भी हो गया जिस से शरीर में निर्बलता आ गई फिर भी तन प्राण से यथासम्भव सेवा करते रहे। छः मास बाद लक्की मरवत् में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ लौट आए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं भी श्री मुख से भक्त राम जी मल के विषय में फ़रमाते थे कि "शरीर की सीमा से ऊँचा उठकर सेवा करना ऊँचे दर्जे की सेवा है।" इन्होंने इस प्रकार की सेवा की है। लक्की आने पर भक्त राम जी मल का स्वास्थ्य अधिक बिगड़ गया। देहान्त से पहले भक्त रामजी मल से किसी ने पूछा—क्या हाल है? उत्तर मिला—श्री सद्गुरु देव जी मेरे सम्मुख विराजमान हैं। इसी तरह श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में ध्यान लगाकर शरीर त्याग दिया। इस प्रकार की अटूट श्रद्धा और अचल अनुराग को देखकर सभी भक्त व गुरुमुख प्रेमियों के हृदय में उत्साह भर गया।

ऐसे ही भक्त गुरु दयाल जी टल वाले थे। उनकी अचल निष्ठा ने सब को चकित कर दिया। वे बिजली विभाग में कार्य किया करते थे तथा स्वयं भजन बना कर श्री चरणों में भेंट किया करते थे। उन्हें एक बार निमोनिया हो गया। सिविल सर्जन ने निराशाजनक उत्तर दिया किन्तु उनके माथे पर एक शिकन (चिन्ता की रेखा) भी न था। इतना होते हुए भी यदि कोई कुशल-क्षेम पूछने आता तो मुस्कराते हुए उत्तर देते कि मैं सकुशल हूँ। डाक्टरों ने पानी तक मना कर दिया था। मंगलवार के दिन उन्होंने थोड़ा सा पानी मांगा। भक्त बृजलाल जी (महात्मा योग विचारानन्द जी) ने पानी देने के लिये संकोच किया। भक्त गुरुदयाल जी ने कहा—"मुझे पानी दे दो। परसों तैयारी ही है।" सभी हैरान थे कि कहां जाना है,

किस तरफ़ जाना है। पूछने पर उत्तर मिला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बुलाया है। उसी कथन के अनुसार डाक्टर, सिविल सर्जन तथा अन्य लोग भी वहां पर पहुँचे कि वीरवार को भक्त गुरु दयाल जी ने किधर जाना है। ठीक तीन बजने में पाँच मिनट पर उनके मुंह पर हल्की सी मुस्कान आई। भक्त बृजलाल जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री मूर्ति को उनके सामने किया। भक्त गुरुदयाल जी ने यह संकेत दिया कि श्री दर्शन तो मुझे अन्दर हो रहे हैं। भक्त गुरुदयाल जी ने कहा अब तैयारी है। भक्त बृजलाल जी ने भक्त जी के लड़के को भक्त जी के सामने कर कहा कि अब इसका कौन सहारा होगा? भक्त जी ने उत्तर दिया—यह तीन मास बाद मेरे पास आ जाएगा। पुनः स्त्री का पूछा तो उत्तर मिला कि गुरु दरबार खुला है सेवा करेगी। उस समय इतना कह कर भक्त गुरुदयाल जी ने आँखें मूँद लीं और परलोक सिधार गए। सभी अस्पताल के डाक्टर, सिविल सर्जन, नर्स तथा अन्य लोग भक्ति के इस अन्तिम दृश्य को देखकर उनके गुणानुवाद गाने लगे तथा श्री चरणों के श्रद्धालु बन गए। ठीक तीन मास बाद लड़के का भी देहान्त हो गया। इसीलिए तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी फ़रमाते थे कि जो अत्यन्त भक्ति की अभिलाषा रखने वाले हों उन्हें उपदेश देना अधिक लाभदायक है। एक पूर्ण-निष्ठ तथा प्रेम से भरा हुआ गुरुमुख लाखों के समान है क्योंकि उस की ओर आकर्षित हो कर लाखों जीवों का सुधार हो जाता है।

लक्की मरवत् में ही अनन्य परम प्रिय शिष्य श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी) थे। इन्होंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की प्रत्येक मौज में जीवन समर्पित कर श्री प्रसन्नता तथा श्री कृपा के पात्र बने। ये भी जन्मजात अवतारी विभूति थे। ऐसे महापुरुष इस पृथ्वी पर आकर नहीं बनते बल्कि वे धुरधाम से ही अमर सत्यता के सन्देश को साथ लाते हैं। इन्होंने आप के श्री चरणों में अगाध प्रेम का सम्बन्ध जोड़ा और सर्वस्व समर्पण कर शरणागत हुए। इन के त्याग, वैराग्य एवं सेवा से आप अत्यधिक प्रसन्न थे। इन्हें परिपूर्ण रूहानी शक्ति का सत्पात्र जान कर इन्हें

कुछ समय पश्चात् साधु वेष प्रदान किया तथा कुछ समय श्री चरणों में रख कर पुनः फोर्ट सन्डेमन, बिलोचिस्तान तथा सिन्ध को चिताने के लिए भेजा और ये वचन फ़रमाये—"सिन्ध में जाकर अपने नाम से उपदेश देना आरम्भ करो। कुछ लोग इस विषय में आपत्ति करेंगे परन्तु उन की ओर ध्यान न देते हुए अपना कार्य करते जाओ। जैसे गुरु की आज्ञा हो उसे सम्मुख रख कर कार्य करो।" इस प्रकार श्री स्वामी जी (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) सत्य की ज्योति जलाने के लिये सिन्ध पधारे। वहां इन्होंने ऐसा प्रेम बरसाया जिसका अनुमान लगाना कठिन है। शेष इनका सम्पूर्ण विवरण उनके जीवन चरित्र की झांकियों में मिलेगा।

इसी लक्की मरवत् में ही आप के एक अनन्य तथा परम प्रिय शिष्य श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री चौथी पादशाही जी थे। ये भी गुरु-दीक्षा से पहले नित्य-कर्म को श्रद्धा पूर्वक किया करते थे। एक बार आप भक्त साहिबराम जी के घर विराजमान होकर पावन वचनामृत से प्रेमियों को कृतार्थ कर रहे थे। यह शुभ समाचार श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी के घर पहुंचा। इनकी माता जी ने इन्हें आप के आगमन के विषय में शुभ समाचार दिया तो यह शीघ्र ही श्री दर्शन के लिये चल दिये। सन्त महापुरुषों की संगति इन्हें आरम्भ से ही प्रिय थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करते ही इन के दिल में एक दिव्य ज्योति जगमगाई। उस ज्योति ने दिल दीवाना कर दिया। गुरु-दीक्षा लेकर अपने ध्यान का केन्द्र गुरु-भक्ति को बना लिया। सेवा एवं प्रेम की साक्षात् प्रतिमा बन गये। तन मन व हित चित्त से सेवा कर श्री प्रसन्नता को प्राप्त किया। आप (श्री सद्गुरु देव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) निज मुख से फ़रमाया करते थे—"ये हमारे (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज) दिल के टुकड़े हैं।"

इन्होंने अपने अनन्य प्रेम व सेवा से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को प्रसन्न कर रूहानी दात को प्राप्त किया तथा इस सम्प्रदाय के चतुर्थ महाराजाधिराज बन कर परमार्थ की ज्योति घट घट में जगाई। इस महान् व्यक्तित्व एवं दिव्य ज्योति की जीवन झलकियों का वर्णन उन के जीवन चरित्र में आगे दिया गया है।

लक्की मरवत् की तरह सराय नौरंग ज़िला बन्नू में भी आप (श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) का सत्संग केन्द्र था। सराय नौरंग की संगत आप जी के श्री चरणों में विनय कर आप को सराय नौरंग ले आते। यहाँ सत्संग का प्रवाह कई दिन तक चलता रहता। यहाँ कुछ एक परिवारों ने आप की चरण-शरण ग्रहण की। जिन में महात्मा सद्‌गुरु सेवानन्द जी एवं महात्मा रोशन-आनन्द जी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इसी सराय नौरंग में आप के दो अत्यन्त श्रद्धालु निष्ठावान् भक्त लक्ष्मी चन्द जी बड़े व भक्त किशनचन्द जी आयु में छोटे, ये दोनों सहोदर भाई थे। ये भजन भी बनाते थे। इसीलिए इन्होंने श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की महिमा में काफ़ी भजन बनाए व श्री चरणों में उपस्थित हो कर गाया भी करते थे। संसार से अत्यधिक वैराग्य और श्री चरणों में असीमित प्रेम था। अतः दोनों गृह त्याग कर श्री दरबार में सेवा करने लगे। कुछ समय सेवा करने के पश्चात् सन् १९२५ में आप ने इन को साधु वेष दे दिया। साधु वेष में भक्त लक्ष्मी चन्द जी का शुभ नाम महात्मा दयानन्द जी व भक्त किशन चन्द जी का शुभ नाम महात्मा श्रद्धानन्द जी रखा। दोनों दरबार की हित चित्त से सेवा किया करते थे। सचाई व प्रेम का साक्षात् नमूना थे। महात्मा श्रद्धानन्द जी का अपार प्रेम देख कर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी उन को परवाना (अनन्य प्रेमी) कहकर बुलाते थे। जब भी महात्मा श्रद्धानन्द जी श्री दर्शन के लिए आते तो इतने ऊँचे स्वर में जयकारा बोलते कि जयकारों की ध्वनि से हाल को गुँजा देते। एक बार चकौड़ी सन्त आश्रम में श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी विराजमान थे। काफ़ी महात्मा जन भी वहाँ उपस्थित थे। श्री सद्‌गुरुदेव जी सब से पूछ रहे थे कि किसी को किसी वस्तु की ज़रूरत हो तो तुम्हारा अपना घर है ले लो। सब ने अपनी ज़रूरत के लिए विनय की और वह पूरी कर दी गई। इतने में महात्मा श्रद्धानन्द जी भी आ गए। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने इन से भी पूछा कि किसी वस्तु की ज़रूरत हो तो बताओ। महात्मा श्रद्धानन्द जी ने विनय की कि आप के श्री चरण-कमलों की प्रीति की ज़रूरत है।

॥ दोहा ॥

भुक्ति मुक्ति मागूँ नहीं, भक्ति दान दे मोहि ।
और कछू याचूँ नहीं, निशिदिन याचौं तोहि ॥

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रसन्न हुए । कुछ समय तक तो उन्होंने चकौड़ी सन्त आश्रम पर जी जान से सेवा की। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कई महात्माओं को सत्संग की सेवा बख़्शी । इनके साथ ही दोनों भाइयों को भी सत्संग प्रचार की सेवा सौंप दी । पहले तो कुछ समय ये घूम फिर कर सत्संग प्रचार करते रहे । पुनः एक स्थान पर एकान्त वातावरण में मौज़ा गंधोवाल ज़िला शेख़ूपुरा में सत्संग आश्रम का निर्माण किया । श्री दरबार के कई महात्मा आते जाते हुए इस स्थान पर ठहरते और ये उन की अच्छी तरह से सेवा करते । लंगर (भोजन) व ठहरने का प्रबन्ध भी इतना अच्छा था कि आए हुए साधु महात्मा व अतिथि को हर प्रकार से आराम मिलता । श्री दरबार की अन्तिम श्वास तक श्रद्धा व निष्ठा से सेवा करते रहे । इन्होंने कई भक्तों को श्री चरणों में विनय कर के साधु वेष भी दिलवाया ।

इन प्रेमियों के साथ एक मुख्य भक्त साहिबराम जी की भी कुछ भक्ति, प्रेम, सेवा और श्रद्धा की झांकी दिखाई जाती है । इस में अतिशयोक्ति तनिक भी नहीं और न ही प्रशंसा हेतु कुछ लिखा गया है परन्तु वे भक्त रूप में भी किस प्रकार सर्वस्व समर्पण कर भक्ति प्रेम में लीन रहते थे। इस का साक्षात् प्रमाण केवल उन के जीवन से झलकता है ।

भक्त साहिबराम जी श्री सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी के अनन्य प्रेमी थे । वे तन, मन, धन से सेवा करते थे। उन्होंने अपने जीवन में तीन नियम दृढ़ कर लिये थे । कहते हैं कि दृढ़-संकल्प ही कल्प वृक्ष है । जो व्यक्ति दृढ़-संकल्पी होते हैं वे लाखों कठिनाइयों के आने पर भी अपने ध्येय को पाने में सफलता प्राप्त कर लेते हैं । नियम पर दृढ़ रहना भी एक प्रकार का उच्च गुण है,

जिस पर आचरण करते समय तो कठिनाई होती है; परन्तु नियम बन जाने पर वह पथ सरल बन जाता है। प्रथम नियम तो यह था कि भक्त साहिबराम जी निरन्तर नित्य प्रति भजनाभ्यास अवश्य करते थे। भजन किये बिना भोजन भी ग्रहण न करते। इस के साथ दूसरी बात यह थी कि जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शनों के लिये जाते तो लौटने के लिए स्वयं कभी भी आज्ञा न माँगते थे। छुट्टी चार दिन की हो चाहे आठ दिन ही क्यों न लग जाएँ। जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज आए तो स्वयं वापिस जाने के लिये फ़रमाते तब भक्त जी घर लौटते। इन नियमों की दृढ़ता का उस विभाग के कर्मचारियों पर (जिस विभाग में वे काम करते थे) इतना प्रभाव पड़ा कि वे कभी भी यह न पूछते कि आप इतने दिन कहाँ रहे।

तीसरा नियम यह था कि जो मासिक वेतन लेते वह लंगर की सेवा में लगा देते। सेवा, प्रेम तथा श्रद्धा की अतुलनीय प्रतिमा भक्त साहिबराम जी तन की सेवा अर्थात् सत्संग आश्रम में झाड़ू लगाना, लंगर का कार्य अपने हाथों से करना, पानी भरना आदि सब काम स्वयं हार्दिक श्रद्धा से करते थे। मन से अर्थात् पूर्ण श्रद्धा पूर्वक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में अति अनुराग रखते थे और निजी सेवा भी किया करते थे धन से लंगर की सेवा व उसकी सुव्यवस्था भी करते थे। गुरु-दरबार की सेवा तथा श्री आज्ञा पालन ही उनके जीवन का ध्येय था। हर समय श्री चरणों में सुरति की तार जोड़ कर उन की याद में खोए रहते। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने सेवक के कर्त्तव्य पर प्रकाश डालते हुए उपदेश दिया है:—

॥ दोहा ॥

सेवक सेवा में रहे, सेवक कहिये सोय।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहूँ न होय॥
सेवक सेवा में रहे, अनत कहुँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहै कबीर समुझाय॥

इसी प्रकार भक्त साहिबराम जी सेवा के स्वच्छ दर्पण थे। सेवा के साथ प्रेम

भी इन में इतना था कि कभी कभी तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इन के प्रेम से विवश हो घण्टों तक वचन फ़रमाते रहते थे।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी विश्राम कर रहे थे और भक्त जी पंखा लेकर सेवा कर रहे थे। रात्रि के बारह बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने करवट बदली और फ़रमाया—"पानी ले आओ, प्यास लगी है।" भक्त जी एक दम पानी लेने के लिये चले गए। ज्यों ही पानी लेकर लौटे तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पुनः विश्राम में हो गये। बाएं हाथ में पानी का गिलास एवं दाएं हाथ से पंखा करना आरम्भ कर दिया। प्रातः चार बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"पानी लाये हो, हमने पहले कहा था।" शीघ्र ही गिलास बढ़ा कर विनय की–"श्री महाराज जी ! ले आया हूँ।" भक्त जी रात भर खड़े रहे किन्तु थकने का नाम भी न लिया और न ही आराम के लिए ख़्याल ही पैदा किया। उन की पलकों ने भी मानो बन्द न होने की शपथ ले ली थी। वे इस में भी इतने प्रसन्न मानो उन्हें जीवन का अखुट खज़ाना मिल गया हो जिसे वे रात्रि भर दामन में भरते रहे। वे केवल एकटक श्री मुखारविन्द पर निहारते रहे। श्री दर्शन की अनूठी मस्ती के प्याले पीते रहे। लाखों वाचक ज्ञानी एवं वक्ता कथनमात्र से आत्मिक-आनन्द का भाषण देते रहते हैं परन्तु वे इस आन्तरिक आनन्द से सर्वथा वंचित होते हैं। भक्त जी ने उस दिव्यतम समाधि-अवस्था को वास्तविक रूप से प्राप्त कर लिया। योग का अर्थ ही यही है चित्तवृत्तियों को पूर्णतया एकाग्र करना। भक्ति स्वतन्त्र है किसी के अधीन नहीं। सो प्रत्येक क्षण इसी ध्यान में रहते कि कहीं श्री गुरुदेव जी की आज्ञा का उल्लंघन न हो जाए। वे प्रत्येक क्षण सतर्क रहते। श्री रामायण में सन्त तुलसीदास जी ने लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

भक्ति स्वतन्त्र अवलम्ब न आना।
तेहि अधीन ज्ञान विज्ञाना॥

अर्थात् जो भी भक्ति करना चाहे वह किसी जाति-कुल अथवा धर्म का हो, भक्ति किसी के अधीन नहीं बल्कि भक्ति के अधीन सभी ज्ञान विज्ञान हैं। सब विद्याएँ, सब गुण भक्ति में समाहित हैं। भक्त साहिबराम जी ने केवल भक्ति को ही जीवन का मुख्य अंग बनाया।

एक बार स्थान लक्की मरवत् में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी किसी बरामदे में विराजमान थे। प्रियतम को देखते ही प्रेमी यदि मतवाला हो जाता है तो प्रियतम भी ऐसे प्रेमियों के प्रेम बन्धन में बंध जाते हैं जिन से छूटना उन के लिए कठिन हो जाता है। रात्रि के ६-१० बजे का समय था। भक्त साहिबराम जी को सम्मुख देख कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रवचन-वृष्टि आरम्भ कर दी। उसी स्थान पर नीचे चींटियों के बिल थे। प्रेम मग्न श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को इस बात का ध्यान ही न रहा और न ही प्रेम-प्यासे चात्रिक भक्त साहिबराम जी को भी कुछ पता चला। रात्रि के दो बज गये। सभी सेवक इसी प्रतीक्षा में थे कि कब श्री प्रवचन समाप्त हों और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भोग लगाएँ तथा विश्राम करें। यहाँ तो सेवक स्वामी के प्रेम में तथा स्वामी सेवक की प्रेम-तृषा मिटाने में संलग्न थे। उन्हें और किसी की चिन्ता नहीं थी। सुबह के पांच बज गए सत्संग अभी भी जारी था। भक्त जी की दशा उस समय बिल्कुल ऐसे थी जैसे पपीहे को स्वाँति बूँद और भ्रमर को कमल की प्राप्ति हुई हो। उन का प्रेम श्री कबीर साहिब जी के कथनानुसार इस प्रकार थाः—

॥ दोहा ॥

प्रेम प्रेम सब कोई कहे, प्रेम न चीन्हे कोय।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय॥
प्रेम तो ऐसा कीजिए, जैसे चन्द चकोर।
घींच टूटि भुई मां गिरै, चितवै वाही ओर॥

कितना निराला आदर्श दिखाया प्रेम का। केवल श्री सद्गुरुदेव महाराज जी

ही उन के सर्वस्व थे। प्रेम विभोर चींटियों के काटने का भी किसी को पता न चला। केवल प्रेम का नाम लेना ही सरल है परन्तु इस पथ पर चलना कठिन है। यदि सेवक स्वामी की प्रत्येक मौज में सर्वस्व समर्पण करने को तत्पर हो तो स्वामी भी सेवकों के प्रत्येक कार्य का भार अपने पर ले लेते हैं। इन सब का स्पष्ट प्रमाण भक्त साहिबराम जी की घटनाओं से मिलता है। वे इस प्रकार हैं:—

भक्त साहिबराम जी लक्की मरवत् ज़िला बन्नू में रहते थे। एक बार ६–७ दिन की छुट्टी लेकर टेरी में श्री दर्शन के लिये गये। उन छः सात दिनों के बाद उनका अदालत में कोई आवश्यक काम था। जब श्री दर्शन करने गए तो वहाँ पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इन्हें वापिस जाने के लिए आज्ञा न दी और न ही ये स्वयं आज्ञा मांगते थे। १०–१२ दिनों के बाद श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने घर जाने की आज्ञा दी। पहले तो इन्हें अदालत का काम याद ही न रहा; जब घर पहुँचे तो स्मरण हो आने पर सीधा न्यायालय में जा पहुँचे। वहाँ जा कर कर्मचारियों तथा न्यायाध्यक्ष से समय पर न पहुँचने के लिये क्षमा मांगने लगे। न्यायाधीश व सब कर्मचारी हैरान थे कि साहिबराम जी क्या कह रहे हैं? उन्होंने कहा–"साहिबराम जी! आप स्वयं तो उस दिन आकर तथा कार्य करवा कर अपने हस्ताक्षर कर गये हैं और अब आप कैसे कह रहे हैं कि न आने के लिए मुझे क्षमा करें। फाइल निकाल कर हस्ताक्षर दिखा दिये। यह देखकर भक्त जी ने मन ही मन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को प्रणाम किया और वहां से चल दिए। घर आ कर यह वृत्तान्त सुना कर रो दिये कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस तुच्छ सेवक के कार्य के लिये स्वयं कष्ट उठाया है। महात्मा योगात्मानन्द जी भी वहां उपस्थित थे। उनके सामने ही यह घटना घटित हुई।

दूसरी घटना इस प्रकार है कि भक्त साहिबराम जी गिर्दावर कानूनगो थे। सराय गम्भीला में डिप्टी कमिश्नर (Collector) ने निरीक्षण के लिए आना था। इधर भक्त साहिबराम जी तथा इन के सगे बड़े भाई भक्त काशीराम जी पटवारी भी सराय गम्भीला में गए। वहां भक्त जी को पता था कि आज श्री सद्गुरुदेव

महाराज जी भी इसी स्टेशन से बन्नू की ओर जा रहे हैं। वे अपने भाई भक्त काशीराम जी को इतना कह कर स्टेशन पर चले गये कि मैं अभी थोड़ी देर में आ रहा हूँ। जब भक्त जी स्टेशन पर पहुँचे तो गाड़ी आने में अभी दस मिनट थे। दस मिनट पश्चात् गाड़ी आई। भक्त जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को वन्दना करने के लिए गाड़ी के अन्दर पांव रखा ही था कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रेम प्रवचन आरम्भ कर दिये। गाड़ी सराय गम्भीला से चल पड़ी। भक्त जी को यह मालूम था कि कार्य भी करना आवश्यक है परन्तु श्री सद्गुरुदेव जी के सम्मुख वह कार्य तुच्छ समझ कर श्री अमृत प्रवचनों का अनुपान करने में संलग्न हो गये। गाड़ी नौरंग सराय स्टेशन पर पहुँच गई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि भक्त जी! अब आप जाओ और अपना कार्य करो। श्री आज्ञा पाकर भक्त जी नीचे उतरे और पुनः सराय गम्भीला में टांगे पर लौटे। देर हो चुकी थी परन्तु वहां तो कुछ अजब लीला बन गई थी। डिप्टी कमिश्नर ने भक्त काशीराम जी को भक्त साहिबराम समझ कर उन से कुछ प्रश्न किए और यथोचित उत्तर पाकर अति धन्यवाद देता हुआ कार्य करके चलता बना। कैसी है प्रभु प्रेम की अद्भुत लीला जिसने अपना सब कुछ ही श्री सद्गुरुदेव जी को समर्पण कर दिया तो क्यों न प्रभु भी उनके सब काम स्वयं करेंगे।

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज कालाबाग़ में आश्रम बनाने की उठी। उन्होंने भक्त साहिबराम जी तथा श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (श्री चौथी पादशाही जी) को कालाबाग़ जाने के लिये फ़रमाया। भक्त जी घर गए तो उन्होंने देखा कि उन के लड़के का स्वास्थ्य अति विषम दशा में है। फिर भी श्री मौज व श्री आज्ञा का पालन करने के लिए लड़के की भी चिन्ता न करके लक्की के रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। किसी सम्बन्धी ने स्टेशन पर आकर सूचना दी भक्त जी! आपका लड़का अन्तिम श्वासों पर है। आप ने उत्तर दिया—"आप लोग प्रयत्न से इलाज करें। मैंने घर जाकर क्या करना है।" इतने में किसी अन्य सम्बन्धी ने आकर सूचना दी कि लड़के का देहान्त हो गया है। इन्होंने उत्तर

दिया—"चेतन आत्मा अपने अंशी में मिल गया शेष दाह संस्कार ही तो करना है। आप कर दीजिए।" स्वयं श्री मौज अनुसार कालाबाग़ चल दिये। जब वहां से वापिस आए तो सम्बन्धियों ने लड़के के लिए शोक प्रकट किया। आपने तनिक भी उदासी न प्रकट करते हुए कहा—"जिस की वस्तु थी उसने ले ली। इसमें विषाद् की क्या बात है।"

कुछ दिन पश्चात् भक्त जी का अपना स्वास्थ्य बिगड़ गया। इनके पिता जी ने कुरेशी साहिब हकीम को बुलवाया। हकीम ने नब्ज़ देखी। पूर्ण परीक्षण कर कहा कि इसे तो कोई और ही बीमारी है। शारीरिक रोग तो मेरी कुछ समझ में नहीं आता। कुछ दिन पश्चात् इनकी दशा अत्यधिक शोचनीय हो गई। इन के पिता जी ने श्री चरणों में विनय पत्र भेजा कि भक्त जी की अवस्था चिन्ता के योग्य है; इन्हें दर्शन दीजिए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कृपा-पत्र भेजा कि भक्त जी से पूछिये हमारे आने की आवश्यकता है? इनके पिता जी ने पूछा—'बेटा साहिबराम! श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को यहां बुलवा लें।' उत्तर मिला—"श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तो हमारे अंग-संग हैं, उन्हें बुलवाने की क्या ज़रूरत है?" जिस प्रकार हाथी के गले से फूलों की माला एकदम गिर जाये उसी प्रकार भक्त जी का शरीर शान्त हो गया। पिता जी ने पुनः श्री चरणों में तार डाली कि भक्त साहिबराम जी सफ़ेद् वस्त्रों में साधु थे उन्हें समाधि दी जाए या दाह संस्कार किया जाये। तब तार द्वारा उत्तर मिला कि चेतन आत्मा तो अपने रूप में मिल चुका है। अब इस शरीर को समाधि दो या दाह संस्कार करो एक ही बात है। जो आदिकाल से नियम है वही करें। आज्ञा पाकर नियमानुसार विधिवत् दाह संस्कार किया गया। भक्त साहिबराम जी के जीवन प्रसंगों का अध्ययन करने से पुरातन इतिहास—प्रेमी भक्तों के समक्ष राजा मोरध्वज तथा सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के जीवन वृत्तान्त पुनः सजीव हो उठते हैं कि किस प्रकार उन्होंने वचनों का पूर्णतया परिपालन किया था और किस प्रकार भक्त साहिबराम जी ने इस युग में कर दिखाया। इस प्रकार अनन्य प्रेमियों के जीवन के प्रभाव से लोगों की चित्तवृत्ति अधिकाधिक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की ओर खिंचती चली गई। जहाँ

प्रेमियों का इतना प्रभाव पड़ा वहाँ उनके कुल मालिक का कितना आकर्षण होगा उस का तो अनुमान लगाना भी कठिन है; फिर सन्त-महापुरुष पूर्ण सद्गुरुदेव महाराज जी की महिमा जिसे वेद भी 'नेति नेति' कहते हैं चाहे कितने ही वेद शास्त्र क्यों न भर दिये जाएँ; कवि, कोविद, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी निज मुख से नहीं गा सकते। उन की महिमा इस तुच्छ लेखनी से कैसे व्यक्त की जा सकती है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जहाँ जहाँ पर पवित्र चरणों से भूमि को सौभाग्य-शाली बनाते, वहाँ पर सहस्त्रों श्रद्धालु ब्रह्म-विद्या को प्राप्त करने के लिये श्री चरणों में विनय करते। परिस्थिति तथा देश काल के अनुसार ही प्रत्येक युग में महापुरुष उसी के अनुरूप कार्य करते हैं। यदि श्री गुरु नानकदेव जी ने अलौकिक चमत्कार दिखा कर लोगों को धर्म पर चलाया तो श्री गुरु तेग बहादुर जी ने युग परिस्थिति अनुसार धर्म के लिए बलिदान दिया। क्या श्री गुरु तेग बहादुर जी के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वे एक संकेतमात्र से सब परिस्थितियों को बदल देते, ऐसा करना उस समय उन्होंने उचित न समझा और उन्होंने वही किया जो करना उपयुक्त था। क्या श्री रामचन्द्र जी के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि अकेले ही रावण को मार देते? सर्वकला सम्पूर्ण होते हुए भी उन्होंने वानर सेना का सहयोग लिया क्योंकि उनका भी तो उद्धार करना था।

इसी प्रकार आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) ने कहीं पर अलौकिक चमत्कार दिखाए परन्तु फिर चमत्कार दिखा कर माया डाल देते थे। अब आप ने प्रेमियों के नम्र निवेदन को स्वीकार कर टल बुलन्द पधारना स्वीकार किया। कोहाट से होकर यह मार्ग पार करना था। मार्ग में पथरीली भूमि पर एक संगड़ोबा नाम की नदी बहती थी, इसे पैदल ही पार करना पड़ता था। जल कई फुट गहरा होने से सभी प्रेमी इसी उलझन में पड़ गये कि इसे कैसे पार किया जाए। परस्पर विचार विमर्श किया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को कन्धे पर बिठाकर नदी पार की जाए। सभी प्रेमी अभी इसी विचार में ही थे कि क्या

देखा—श्री सद्गुरुदेव महाराज जी नदी के उस पार सैर कर रहे हैं। सभी प्रेमियों ने नदी पार कर श्री चरणों में दण्डवत् कर इस रहस्य को जानने की विनय की। तब आपने फ़रमाया—"भाई हम ने भी ऐसे ही नदी पार कर ली है।" महापुरुष तो सर्व शक्तियों के भण्डार होते हैं। परन्तु वे इन शक्तियों का गुप्त रूप से प्रदर्शन करते हैं, बाह्य रूप से नहीं। उन की संकल्प शक्ति असम्भव कार्य को भी सम्भव कर देती है। इस प्रकार सगुण माया के द्वारा वे प्रेमियों के हृदय में एक कौतूहल का भाव जगा देते हैं। इस प्रकार प्रेम वार्त्तालाप करते हुए आप कृष्णाद्वारा टल बुलन्द पहुँचे। वहां पर नित्य प्रति उपदेश-अमृत की धारा से सर्वसाधारण को कृतार्थ करने लगे।

आप के अमृत-वचन प्रायः सुरत-शब्द-योग तथा अमली कार्रवाई के विषय में ही हुआ करते थे। आपके प्रवचनों में अधिकतर गुरु-भक्ति, वैराग्य, प्रेम तथा आज्ञा की महत्ता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। अब वहां परमार्थ भक्ति के रंग में जन समाज को रंग कर आप टेरी पधारे। वैसे तो आप कभी कभी लक्की में कृपा करते और कभी टेरी में। टेरी में सत्संग प्रवाह चलने लगा।

अब लक्की की धरती एक पावन तीर्थ बनने के लिये विह्वल पुकार कर रही थी। लक्की मरवत् स्थान के प्रेमी तथा भक्त जनों के दिल में भी प्रेम उमड़ आया। उन सब ने मिल कर विचार किया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को कुछ समय के लिए लक्की मरवत् में स्थायी निवास करने के लिए श्री चरणों में विनय की जाये ताकि हमारी जन्म-जन्मान्तरों से तृषित आत्मा को श्री दर्शन तथा श्री पावन वचनामृत पान करने का सौभाग्य मिल सके। अतः सब ने मिलकर कुछ समय तक लक्की में स्थायी रूप से सत्संग रूपी गंगा को बहाने हेतु टेरी पहुँच कर श्री चरणों में विनय की। मालिक तो सदा आतुर पुकारों को शीघ्रातिशीघ्र सुन कर पथ-प्रदर्शक बन कर सत्य की ध्वजा फ़हराने के लिए अवतार धारण करते हैं। फिर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उनकी विनय को कैसे अस्वीकार करते। सन्त-महापुरुष तो स्वभाव से दयालु होते हैं। सन्त तुलसीदास जी ने सन्त महापुरुषों

के करुण स्वभाव के विषय में उत्तरकाण्ड में लिखा है कि:—

॥ चौपाई ॥

सन्त हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहई न जाना ॥
निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दुख द्रवहिं सुसन्त पुनीता ॥

अर्थात् सन्त महापुरुषों का हृदय माखन से भी कोमल होता है । माखन को स्वयं गर्मी मिलती है तो वह पिघलता है परन्तु सन्त महापुरुषों का हृदय दूसरों के दुःख को देखकर स्वयं पिघल जाता है । लक्की मरवत् की भूमि तथा भक्त जनों की प्रेमभरी विनय सुनकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने टेरी से लक्की में पदार्पण किया । यह वही स्थान है जिस में आप ने उपदेश–अमृत की पावन धारा बहा कर इस स्थान को सीमाप्रान्त का मुख्य केन्द्र बनाया तथा 'तीर्थधाम' के नाम से प्रसिद्ध किया । इसी पुण्य भूमि पर इस सम्प्रदाय के तृतीय तथा चतुर्थ महा सम्राट् श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज और श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज ने अवतार लिया और उन्होंने यहाँ अलौकिक बाल-लीलाएँ करके अलौकिक शक्ति का परिचय दिया ।

लक्की मरवत् में आश्रम के निर्माण का कार्य आरम्भ हुआ । चहार दीवारी के मुख्य द्वार पर चौखट लगा दी गई । रात्रि के समय मनचले पठान लोग इसे उखाड़ कर ले गये । प्रातः भक्तों ने श्री चरणों में निवेदन किया कि दयानिधान ! क्षमाशील प्रभो ! रात्रि के समय न जाने कौन यहां से चौखट उखाड़ कर ले गया है । अब क्या किया जाए ? आप ने नई चौखट लगवाने की आज्ञा दी और प्रवचन फ़रमाए कि जो लोग दरवाज़ा ले गये हैं उन्हें कुछ मत कहो । सत्य है कि महापुरुषों का हृदय तो स्वभाव से ही राग-द्वेष से रहित होता है । उनकी समतापूर्ण दृष्टि प्रत्येक प्राणी पर एक समान होती है । कुदरत उनकी सहायक होती है । कुछ दिन पश्चात् उन्हीं पठानों ने किसी अन्य स्थान से सामान चोरी किया । उन में से कुछ पठान तो पकड़े गये और कुछ भाग गए । पकड़े गये पठान बन्दी बना लिए गए । जो पकड़े गए थे उन्होंने ही कृष्ण-द्वारा का दरवाज़ा उखाड़ा था । उन

पर मुकद्दमा चलाया गया और चोरी किया सामान एकत्रित किया जाने लगा। उन में वह दरवाज़ा भी था। जांच-पड़ताल करके पुनः दरवाज़े को कृष्ण-द्वारा में पहुँचा दिया गया। इस मुकद्दमे का शीघ्र ही निर्णय हो गया और अत्यधिक दण्ड न देते हुए पठान मुक्त कर दिये गए। जिन पठानों ने इसे चुराया था उन्होंने श्री चरणों में आकर विनय की कि श्री महाराज जी! हम निर्धनों पर भविष्य के लिए कृपा-दृष्टि रखें; विधाता ने हमें अपने किये हुए अपराध का दण्ड स्वयं दे दिया है। आप ने फ़रमाया—"यहां तो सब कार्य स्वतः हो रहे हैं। हम किसी को वरदान या शाप नहीं देते। सन्तों के हृदय में किसी के प्रति राग-द्वेष की भावना नहीं होती। तुम सच्चे दिल से विधाता से क्षमा मांग लो। हमने आपको क्षमा कर दिया। आप निश्चिन्त रहो।"

प्रेमियों के लिए कृष्ण-द्वारा का निर्माण तो पहले से ही आरम्भ हो चुका था। दिन प्रतिदिन जिज्ञासुओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। अब वहां पर जल की आवश्यकता प्रतीत हुई। कुछ भक्तों ने कुएँ के लिए श्री चरणों में विनय की। आप ने कुआँ खोदने की आज्ञा प्रदान कर दी। आप स्वयं डेराइस्माइलखाँ में उपदेश के लिए प्रस्थान कर गए।

इस कार्य में आप ने निःस्वार्थ सेवा का कैसा सुखद परिणाम होता है ऐसा एक कौतुक दिखाया और यह भी दर्शाया कि सद्गुरु सेवा का क्या महत्त्व होता है। वह वृत्तान्त इस प्रकार है:—

यह क्षेत्र (लक्की मरवत्) सारा मरुस्थल (रेतीला) इलाका है। पानी प्राप्त करने के लिए लोगों को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। पानी अधिक गहराई पर होने के कारण कुछ दिन तो खुदाई होती रही। फिर निश्चित गहराई आने पर एक लकड़ी का गोल घेरा जिसे चक कहते हैं वहाँ डाला गया। उस पर निर्माण का कार्य होने लगा। जब चक की ऊँचाई अधिक हुई तो रेत बार बार गिरनी आरम्भ हो गई। जो कार्य दिन को किया जाता वह रात्रि को सब समाप्त

हो जाता। रेत कुएँ में गिर जाती तथा उसका क्षेत्र बढ़ जाता। वहाँ पर एक मज़दूर श्रद्धा विश्वास से तथा निष्कामभाव से इस कार्य को गुरु-सेवा समझ कर किया करता था। एक दिन ज्यों ही वह कुएँ से रेत की टोकरी भर कर बाहर निकालने लगा त्योंही सैंकड़ों मन रेत दीवार से गिर कर उस पर जा पड़ी। वह मज़दूर नीचे दब गया। यह दुर्घटना देख कर सभी मज़दूर रोने लगे कि उन का एक साथी नीचे दब कर मर गया है। उस मज़दूर के माता पिता भी आकर रोने लगे।

अब सब भक्तों ने मिलकर उस रेत को हटाना आरम्भ कर दिया। सब को पूर्ण विश्वास था कि वह मर चुका होगा। जब चक के अन्दर की रेत हटाई गई तो सब लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा क्योंकि नीचे से आवाज़ आई– "भय की कोई बात नहीं, मैं बड़े आराम से हूँ।" जब वह मज़दूर बाहर निकला तो सब के कुशल-क्षेम पूछने पर उसने बताया कि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मैं एक बन्द कोठी में बैठा हुआ हूँ। किन्हीं अज्ञात हाथों ने मुझे फूल की तरह उठा कर मानो कोठी में रख दिया। यह अद्भुत दृश्य देखकर सब के हृदय पुलकित हो उठे तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन यश का गुणानुवाद करने लगे।

दूसरे दिन वह कुआँ बड़ी भयंकर अवस्था में पहुँच चुका था। उस मज़दूर के माता पिता ने अपने लड़के को काम पर जाने के लिए मना किया तो उसने कहा–"यदि मुझे कोई भी इस कुएँ के काम के लिये आकर रोके तो भी मैं नहीं रुक सकता। मैं उनके दरबार की सेवा बिना कुछ लिए ही करूँगा। मैं यह सेवा कदापि नहीं छोड़ सकता।" ये शब्द कहकर वह मज़दूर पुनः सेवा में लग गया।

कुछ दिन पश्चात् चक का कोना टेढ़ा होने से इस काम को असम्भव जानकर सभी मज़दूर इस कार्य को छोड़ कर चले गए। प्रेमियों ने श्री चरणों में विनय पत्रिका डेरा इस्माइलखाँ में भेजी। विनय-पत्र प्राप्त कर आपने ये वचन फ़रमा कर उन को लिख देने को कहा–"आप लोग अपना काम नियमपूर्वक करते

जाइए, सब काम ठीक हो जाएगा। दूसरी बात यह है इस कुएँ की सेवा निमित्त चाहे कोई एक पैसा भी श्रद्धा व प्रेम से दिया करे तो ले लिया करो। इस से उन का प्रेम बढ़ेगा और वे इस स्थान पर आने के लिये अपने को अधिकारी समझेंगे। यह स्वभाविक बात है कि 'जहाँ जाए धन वहाँ जाए मन'। माया और मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम सब में आत्मीयता उत्पन्न करना चाहते हैं।" यह आज्ञा पाकर सभी प्रेमियों ने श्री वचनानुसार कार्य आरम्भ कर दिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा से कुएँ के चक का टेढ़ापन स्वयं ठीक हो गया। महापुरुषों के वचनों में सुगुप्त आकर्षण होता है जिन से कि प्रेमी स्वयं खिंचे चले आते हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के आदेश के अनुसार पूर्ण सेवा कर लेने पर जब कुआँ बन गया तो स्थान लक्की मरवत् के क्षेत्र में पानी की असुविधा दूर हो गई। सभी लोग इस कुएँ के पानी को प्रयोग में लाने लगे और आप की असीमित महिमा का गान करने लगे। जैसे कोई मनुष्य अपने खून पसीने से एकत्र किया हुआ धन किसी सुरक्षित स्थान पर रख देता है तो हर समय उस की आँख उस खज़ाने पर लगी रहती है। उठते बैठते उसी का चिन्तन करता रहता है। इसी प्रकार इस प्रान्त के जिन लोगों ने इस कुएँ की सेवा में भाग लिया तो श्री सद्गुरु देव महाराज जी की कृपा से उन के जीवन में एक नये भक्ति भाव का रंग भर गया। त्याग, निष्काम सेवा तथा परोपकारिता उन के दिलों में कूट कूट कर भर गई। यह सब प्रभाव था श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के लक्की मरवत् में पदार्पण करने का। अब लक्की मरवत् एक तीर्थस्थल बन चुका था। आप पूरे सीमाप्रान्त में सत्संग उपदेश से सोई मानवता के भाग्य जगा रहे थे। प्रत्येक स्थान पर कुछ समय सत्संग उपदेश कर आप पुनः लक्की मरवत् ही अधिकतर लौट आते थे।

आपने यहाँ सत्संग उपदेश के साथ साथ शरणागति अर्थात् आत्म-समर्पण के लिये मार्ग खोल दिया। आत्मसमर्पण केवल यही नहीं कि शारीरिक रूप से सद्गुरुदेव के समर्पित होना, अपितु इस का अर्थ यह है कि अपनी मनमति का त्याग करके पूर्ण रूप से गुरुमति को धारण करने का व्रत लेना। श्री कृष्णचन्द्र जी

महाराज ने जैसे कि परम सखा अर्जुन को उपदेश दिया है:—

॥ श्लोक ॥

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

"हे अर्जुन ! तू सब भावों से अर्थात् तन-मन-धन से संकल्प-विकल्प सर्वस्व न्यौछावर कर मेरी शरण में आ। तुझे मेरी कृपा से शाश्वत् शान्ति तथा आन्तरिक आनन्द प्राप्त हो जाएगा।" यही सिद्धान्त आप ने सब के सम्मुख रखा। सैंकड़ों लोग शरणागति अर्थात् श्री चरणों में स्थायी निवास के लिए विनय करने लगे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अटूट निष्ठा व अतुल प्रेम के धनी आत्माओं को निज चरणों में शरण दी। उनमें से कुछ प्रेमी शरणागतों के नाम निम्नलिखित हैं:—

श्री स्वामी वैराग्यानन्द जी महाराज, श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज, महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा सत् विचारानन्द जी, महात्मा परम शान्त आनन्द जी, महात्मा सन्तोषानन्द जी, महात्मा दर्शनानन्द जी, महात्मा दयानन्द जी, महात्मा श्रद्धानन्द जी, महात्मा पुरुषोत्तमानन्द जी, महात्मा सद्गुरु ध्यानानन्द जी, महात्मा निजात्मानन्द जी, महात्मा रोशनानन्द जी, महात्मा योगात्मानन्द जी, महात्मा योग प्रकाशानन्द जी, महात्मा अखण्ड प्रकाशानन्द जी, महात्मा अभेद आनन्द जी, महात्मा अजूर्न्यानन्द जी, महात्मा अखण्ड शब्दानन्द जी, महात्मा चेतन ध्यानानन्द जी, महात्मा अटल प्रकाशानन्द जी, महात्मा ध्यान प्रेमानन्द जी, महात्मा योग विचारानन्द जी, महात्मा शान्तात्मानन्द जी, महात्मा अघट प्रकाश आनन्द जी, महात्मा अभेद शान्तानन्द जी, महात्मा अनमोल धर्मानन्द जी, महात्मा अमर श्रद्धानन्द जी, महात्मा अखंडानन्द जी, महात्मा भगवानानन्द जी, महात्मा हरकृष्णानन्द जी, महात्मा हरदेवानन्द जी, महात्मा परमात्मानन्द जी, महात्मा विवेक अलखानन्द जी, महात्मा अलेपानन्द जी, महात्मा ध्यान ब्रह्मानन्द जी, महात्मा त्यागानन्द जी, महात्मा गुरुचरणानन्द जी, महात्मा ध्यान योगानन्द

जी, महात्मा अमिटयानन्द जी, महात्मा सहज ध्यानानन्द जी, महात्मा गुरु प्रेम आनन्द जी, महात्मा अनादानन्द जी, महात्मा अलख योगानन्द जी, महात्मा शब्द विवेकानन्द जी, महात्मा निरभर्म ब्रह्मानन्द जी, महात्मा अभेद शब्दानन्द जी, महात्मा ध्यान अनादानन्द जी, महात्मा ध्यान दयानन्द जी, महात्मा सत प्रेम आनन्द जी, महात्मा सुख परमानन्द जी, महात्मा ध्यान अलखानन्द जी, महात्मा ध्यान मुक्तानन्द जी, महात्मा सत् ज्ञानानन्द जी, महात्मा अघट प्रेमानन्द जी, महात्मा योग विवेकानन्द जी, महात्मा आत्म अलखानन्द जी, महात्मा अभेद अखंडानन्द जी, महात्मा ध्यान अनमोलानन्द जी, महात्मा विवेक अखंडानन्द जी, महात्मा अमर शान्तानन्द जी, महात्मा सुखानन्द जी, महात्मा अमर ब्रह्मानन्द जी, महात्मा धर्म कृष्णानन्द जी, भक्त धर्म जस जी, भक्त रामजी मल जी, बाई शामानन्द जी, बाई आत्म ध्यानानन्द जी, बाई ध्यानानन्द जी, बाई सुख ब्रह्मानन्द जी, बाई विवेक परमानन्द जी, बाई प्रकाश रामानन्द जी, बाई आत्म देवानन्द जी, बाई धर्मात्मानन्द जी, बाई विवेकात्मानन्द जी, बाई प्रीतमानन्द जी, बाई अलख प्रकाश आनन्द जी, बाई सहज प्रकाशानन्द जी, बाई निर्दोषानन्द जी।

यह लोग लगभग अपने पूरे परिवारों सहित श्री चरणों में आए। इन के अतिरिक्त अन्य कई परिवार शरणागत हुए, परन्तु यहां उन में से कुछ एक के नाम दिये गए हैं। सब परिवार लगभग बाल-बच्चों व सम्बन्धियों सहित श्री दरबार में सेवा करने के लिये शरणागत हुये थे। ये सब धन-धान्य सम्पन्न परिवार थे। अपनी सम्पत्ति व जायदाद सहित इन्होंने श्री चरणों में सर्वस्व समर्पित कर दिया।

जिसे अपनी आत्मिक उन्नति का विचार हो उसे इन नश्वर वस्तुओं से क्या प्रयोजन। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में कोई लाखों की सम्पत्ति भेंट करे या सैंकड़ों की अथवा कुछ भी न करे, उन्हें तो इन वस्तुओं से कोई सरोकार न था। यदि कोई करता भी तो वे इस धन को परमार्थ अर्थात् लंगर या

शरणागतों की आवश्यकता पूर्ति में लगा देते । वे तो आध्यात्मिक-विद्या प्रदान करने आए थे । सर्वसाधारण तक उस दिव्य ज्योति को पहुँचाने आये थे । यह तो शरणागतों का अपना प्रेम था व उन की श्रद्धा थी जिससे प्रेरित होकर वे स्वयं आत्मिक कल्याण के लिए सर्वस्व न्यौछावर करते । वे स्वयं कहते थे किः—

॥ शेयर ॥

फ़कीरी में मज़ा जिसको, अमीरी क्या बेचारी है ।
मिला आनन्द है इस में, हुआ जीवन सुखारी है ॥

जब ये लोग श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में शरणागत हुये तो इन के सम्बन्धियों को (जो माया के मतवाले थे) बहुत दुःख हुआ । परिवार वालों ने इन को समझाया परन्तु उनके कथन का इन पर तनिक भी प्रभाव न पड़ा । यहाँ तक उन्होंने कहा कि आप (माता-पिता) भले ही भक्ति करो, अपने बच्चों को तो संसार में रहने दो । उन बेचारों ने अभी संसार का देखा ही क्या है; किन्तु उन की किसी ने भी एक न मानी । सब शरणागत परिवार श्री सद्गुरु देव महाराज जी की आज्ञा व मौज के अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे । जिस का परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय (दो तीन साल बाद) में ही इन लोगों की सचाई व निष्काम सेवा का सम्पूर्ण प्रदेश पर इतना प्रभाव पड़ा कि जो लोग श्री दरबार के विषय में मिथ्या प्रचार करते थे वे ही अपने अपराध को स्वीकार कर समय समय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री पावन दर्शनों के लिए आने लगे । जिन लोगों ने पहले दरबार के विषय में बुरा-भला कहा था वही अब स्तुति कर उसका गुणगान करने लगे । लंगर के लिए हर प्रकार से अनाज व धन की सेवा देने लगे ।

सत्य है कि दृढ़ संकल्प और सचाई से जो काम भी किया जाए उसका प्रभाव दूसरों पर अवश्य पड़ता है । दुनिया का वास्तविक रूप तो यह है किः—

॥ शेयर ॥

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम ।
अब जो नफ़रत हमने की, वह बेकरार आने को है ॥

अर्थात् जब दुनिया के भोग-ऐश्वर्य में सुखों की खोज की जाए तो वे मायावी सुख जीव के आगे आगे भागते हैं और जब इनकी इच्छा ही दिल से हटा दी जाए तब ये पीछे पीछे भागते हैं कि हमें कोई स्वीकार करे। ठीक उसी प्रकार जैसे सूर्य की ओर मुँह करके चलते जाओ तो मनुष्य की छाया पीछे पीछे भागती है। जब सूर्य की ओर पीठ करे तो परछाईं आगे और मनुष्य उसके पीछे पीछे भागेगा। परन्तु वह परछाईं हाथ आने की नहीं। इसी प्रकार माया तो सन्त-महापुरुषों की चरण-रज है। जो जीव सन्त महापुरुषों की शरण ग्रहण कर लेता है मायावी सुख-भोग के सामान उसके पीछे पीछे भागते हैं। बिल्कुल हुआ ही ऐसा कि अब वही लोग स्वयं दरबार की सेवा करने लगे और अन्य लोगों को सत्कार्य करने की प्रेरणा देने लगे। अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने साधु मंडली तैयार की और उन महात्माओं को सत्संग-उपदेश के लिए आज्ञा देकर उपयुक्त स्थानों पर श्री परमहंस दयाल जी की प्रेम-भक्ति तथा सुरत-शब्द-योग का उपदेश पहुँचाने के लिए भेजा।

जिस प्रकार स्वयं आप परिश्रमी, कर्त्तव्य-निष्ठ, गुरु-आज्ञा में तत्पर तथा परमार्थी थे उसी प्रकार आपके शिष्य भी तदनुरूप हुए। न उन्हें दिन का चैन और न रात्रि को विश्राम की चिन्ता थी। परमार्थ पथ पर श्री गुरु आज्ञानुसार जन जन तक अमर सत्य की ज्योति का प्रकाश फैलाना इन सब का परम कर्त्तव्य था। आप की शक्ति तथा सहयोग से सेवकों ने वह कार्य कर दिखाया जिस से यह सम्प्रदाय उन्नति के पथ पर अग्रसर होता गया। आप स्वयं लक्की मरवत् में ही सत्संग की पावन धारा बहा रहे थे। यहां पर प्रेमी परवाने बन शमा पर मिटने के लिये शीघ्रातिशीघ्र आ रहे थे। इस प्रकार श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अक्टूबर सन् १९१९ से सन् १९२४ तक सोमा-

प्रान्त के नगर-नगर गांव-गांव में उपदेशामृत से नव जीवन का संचार कर दिया।

पंजाब में

सीमाप्रान्त को कृतार्थ कर आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पाद्शाही जी) की मौज पंजाब को चिताने की हुई। क्योंकि सन्त-महापुरुषों का मिशन 'सर्वजन हिताय' होता है। श्री रामायण के उत्तरकाण्ड में सन्त-महापुरुषों की परोपकारिता का वर्णन इस प्रकार हुआ है:—

॥ चौपाई ॥

संत विटप सरिता गिरि धरणी। परहित हेतु सबन्ह की करणी ॥

सन्त महापुरुष, वृक्ष, नदी, पर्वत तथा पृथ्वी ये सब दूसरों की भलाई के लिए कार्य करते हैं। किसी एक के लिए नहीं अपितु 'बहुजन हिताय' सब के लिये समभाव से हित करते हैं। वृक्ष से चाहे कोई फल तोड़ ले, नदी में से चाहे कोई पानी पी ले अथवा जितना चाहे भर ले दोनों कुछ नहीं कहते। पृथ्वी अनेकों दुःख सहती हुई भी सम भाव से हित करती है। इसी प्रकार सन्त-महापुरुष परमार्थ तथा भक्ति की अमृत-वर्षा सर्वसाधारण पर समभाव से करते हैं चाहे कोई भी इस अमृत को अधिकारी बन कर पी ले। इसमें जाति-पाँति तथा ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं रखा जाता।

सन्त महापुरुष प्रकृति के अटल नियम के अनुसार सृष्टि के रंगमंच पर सूत्रधार बन कर प्रत्येक नाटक का सूत्रपात करते हैं। जिस प्रकार नाटक में प्रथम कारण, पुनः रचना तथा अन्त में परिणाम होता है वैसे ही सन्त महापुरुष परमार्थ के रंगमंच पर दैवी प्रेरणा से सेवकों को कारण बना स्वयं निर्देशक बनते हैं। जिस प्रकार कुरुक्षेत्र के युद्ध में शक्ति तो श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज की थी परन्तु सेवक का मान बढ़ाने के लिए नाम अर्जुन का था। कारण बनाया था दुर्योधन को। इसी प्रकार आप परमार्थ पथ पर आरूढ़ होकर सेवकों की विनय को कारण बना स्थान

स्थान पर मानसिक शान्ति रूपी औषध से जन जन के मानसिक रोगों का निवारण कर रहे थे। उस समय पंजाब को चिताने की श्री मौज हुई तो आप डेराइस्माइलखां में पावन उपदेश से सब को कृतार्थ कर रहे थे। आस पास के क्षेत्रों से प्रेमी भक्त तथा संस्कारी आत्माएँ अमृत प्रवचन श्रवण करने के लिए आने लगीं।

उन्हीं दिनों हरमिलापी साहिब जी की गद्दी पर भक्त परसराम जी थे। इन का गद्दी स्थान बुच्चियां, ज़िला सरगोधा पश्चिमी पंजाब में था तथा निवासी डेराइस्माइलखां के थे। वे भी आप की महिमा को सुनकर श्री पवित्र दर्शन तथा सत्संग के लिए आए। आप के अनमोल श्री वचनों को श्रवण कर तथा मनोहर दिव्य छटा को निहार कर 'कुल गुरु' परसराम जी मन ही मन सर्वस्व समर्पण करने को उद्यत हुए। उन्होंने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! दास को अपना शिष्य बनाइये। प्रार्थना को सुनकर आप ने फ़रमाया—"भाई! आप तो स्वयं कुल गुरु हैं, आप को गुरु धारण करने की क्या ज़रूरत है।" श्री वचनों को सुन कर भक्त परसराम जी ने विनय की—"दीन दयाल! कोई व्यक्ति डाक्टरी सिद्धान्तों को पढ़ कर ही डॉक्टर नहीं बन जाता उसे क्रियात्मिक रूप से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करना होता है। उस का लड़का भी बिना पढ़े ही डॉक्टर बनना चाहे तो क्या वह डॉक्टर बन जायेगा? उसे भी तो परीक्षा पास करनी ही पड़ेगी। हमारे पूर्वजों ने कठिन योग साधना से आत्म-साक्षात्कार किया तथा वे समय के कुल-गुरु बने। उनके पश्चात् श्रद्धालुओं ने हमें कुल गुरु मानना आरम्भ कर दिया। न मैंने योगाभ्यास किया है न कोई गुरु धारण किया है। आप जी के श्री पावन वचनों से ज्ञात हुआ कि पहले स्वयं गुरुमुख बनो फिर दूसरों के गुरु बन सकोगे।" उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर आप ने उनकी सच्ची श्रद्धा व उच्च भावना को देखकर उन्हें व सब परिवार को पवित्र सुरत-शब्द-योग का उपदेश दिया और उस प्रेमी ने भी गुरु-दीक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक लाभ प्राप्त किया।

अब भक्त परसराम जी ने पुनः विनय की कि नाथ! पंजाब में जो मेरे अन्य श्रद्धालु हैं उन को भी कृतार्थ कीजिये। इन शब्दों ने इस सत्यता की पुष्टि कर

दी कि चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो परन्तु 'सुरत-शब्द-योग' की प्राप्ति गुरु-दीक्षा के बिना पूर्ण नहीं होती। आप जी की मौज तो पहले ही पंजाब जाने की थी। भक्त जी को आश्वासन दिया कि अवश्य चलेंगे। डेराइस्माइलखां से होकर कुछ दिन बाद अपने कुछ प्रेमियों सहित १९८१ सम्वत् में कसबा टहलराम ज़िला बन्नू में पधारे। यहाँ पर आपने फ़रमाया जैसे गांव टहलराम का नाम एक व्यक्ति के नाम पर रखा गया है वैसे ही गुरुमुखों के लिए भी एक अलग नगरी बनेगी। आप के शुभ आगमन से सभी प्रेमी आनन्द विभोर हो उठे। नियमानुसार सत्संग कार्य चलने लगा। वहाँ पर भक्त परसराम जी ने फिर एक बार विनय की। भक्त जी का शरीर वृद्ध था परन्तु प्रेम तथा श्रद्धा ऊँचे दर्जे की थी। उस के अनन्य प्रेम व विश्वास को देख कर आप वहाँ से सराय नौरंग पधारे। वहाँ महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा रोशनानन्द जी, महात्मा दयानन्द जी तथा महात्मा श्रद्धानन्द जी के घर पधारे। सब को दर्शन देकर पंजाब के कार्यक्रम से अवगत कराया।

सराय नौरंग से लक्की पधारे। अब पंजाब ने भी सौभाग्यशाली बनने की तरंग आतुरता से उठाई। आपने प्रेमियों को पंजाब जाने का अपना विचार प्रकट किया। सभी प्रेमी यह सुन कर उदास हो गये। वे एक क्षण के लिये भी इतनी दूरी सहन न कर सकते थे। आप ने उन को धैर्य दिया और फ़रमाया—"आप सब प्रेमियों ने काफ़ी मौज ले ली है और जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त कर लिया है। अब पंजाब की बारी है।" इस प्रकार कुछ निजी सेवकों व भक्त परसराम जी के साथ लक्की मरवत् से पंजाब की ओर कालाबाग़, पुनः कालाबाग़ से सिन्धु नदी को जहाज़ द्वारा पार कर माड़ी इंडस से होते हुए मलकवाल (जंकशन) ज़िला सरगोधा में पदार्पण किया। मार्ग में भक्त परस राम जी को ज्वर हो गया। वृद्ध शरीर के कारण यात्रा में काफ़ी कष्ट हुआ। मलकवाल पहुँचते पहुँचते भक्त जी का शरीर अन्तिम श्वासों पर था। आपने फ़रमाया—"हम आपके विशुद्ध प्रेम पर अति प्रसन्न हैं। यदि चाहो तो अपना शरीर कुछ समय के लिये रख लो।" भक्त परसराम जी ने श्री वचनों का रसपान कर कृतकृत्य हो कर कहा—"प्रभो!

मेरे कितने अहोभाग्य हैं यदि श्री चरणों में ही आप की दिव्य छटा को निहारते हुए प्राण त्यागूँ। इस समय के लिए तो ऋषि, मुनि, तपस्वी तप करते हैं फिर भी अन्त समय का उन्हें कुछ विश्वास नहीं होता कि कैसा होगा? मेरे लिए इस से बढ़ कर भाग्यशाली समय फिर कब आएगा। मेरी अब यही इच्छा है कि श्री चरणों में दिव्य मनोहारी सूरत का दर्शन करते हुए आपके लोक में पहुंचूँ।" मलकवाल की एक धर्मशाला में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पलंग पर विराजमान हुए और भक्त परसराम जी ने सामने बैठ कर श्री छवि का ध्यान करते हुए समाधि अवस्था में शरीर त्याग दिया।

मलकवाल से भक्त जी को बुच्चियाँ ले जाकर उनका सनातन रीति से दाह संस्कार किया गया। सभी भक्त ऐसी अद्भुत लीला को देखकर हैरान हो गए। कहाँ तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को भक्त जी बुच्चियाँ में ले जा रहे थे और कहाँ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में उन्होंने प्राण त्यागे तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को भक्त परसराम जी को बुच्चियां पहुँचाना पड़ा।

आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी) भक्त जी के साथ सन् १६२४ में पंजाब पधारे। अब यहां आपने सत्संग उपदेश आरम्भ किया। ज़िला सरगोधा के अनेक गांवों से जिज्ञासु बुच्चियां में आने लगे। आप जी ने यहां प्रेम-भक्ति तथा परमार्थ की इस प्रकार धूम मचा दी कि यहाँ सैंकड़ों की संख्या में प्रेमीजन व जिज्ञासु श्री प्रवचन सुनने के लिए आने लगे। उन में से कई शिष्य भी बन गए। भक्त परसराम जी के सुपुत्र मुनि जी को परमार्थ-पथ पर लगाया। भक्ति तथा प्रेम की शुद्ध भावना उस में इस प्रकार भर गई कि वह स्वयं गांवों में प्रचार करने लगा। इन के समीप ही गांव ठक्कर, वरयाम, भाबड़ा और कोट मोमन से प्रेमी आए। प्रेम और आनन्द के वास्तविक जीवन को पाकर सब ने अपने अपने गांवों में आपको पधारने के लिए आग्रह किया।

आप भाबड़ा, ठक्कर, वरयाम होते हुए कोट मोमन में बूटाशाह भाटिया के

गृह में विराजमान हुए। दूर व समीप से संगतें आ रही थीं। महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी जो उस समय भक्त वेष में भक्त कर्मचन्द के नाम से विख्यात थे कुछ संगत साथ लेकर चकौड़ी से आए। श्री चरणों में पहुँचते ही आपकी श्री अनुपम मनोहारी छटा को निहारते ही सुधि भूल गये। दीवाने बन गये। संगत को भी यह ध्यान न रहा कि हम घर बार छोड़ आए हैं अथवा हमारे पीछे भी कोई काम है। आपके श्री चरणों में सर्व संगत ने चकौड़ी में पधारने के लिये विनय की। विनय स्वीकार हुई। इधर कोट मोमन के भक्तों में भी कुछ कम श्रद्धा न थी। कोट मोमन के प्रेमी भक्त आप जी को ठहराने के लिये भजन बोलते तो चकौड़ी की संगत भजन बोलती अपने साथ ले जाने के लिये। एक द्वन्द्व सा बन गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी इस अलौकिक लीला को रचाते हुए प्रेमियों की प्रेम परीक्षा कर रहे थे। आपने चकौड़ी की संगत को कहा—"भोजन कर लीजिये, लंगर तैयार है। अच्छा! आज नहीं कल आपके साथ अवश्य चलेंगे।" इस प्रकार दिन रात संकीर्त्तन के तारतम्य में सभी नर नारी अपने तन मन की सुधि-बुधि खोय उस अनूठे प्रेम में विलीन रहे। दस दिन बीत गए। अन्त में अधिक आग्रह पर आपने चकौड़ी के लिए प्रस्थान किया। कोट मोमन की संगत अति उदास हो गई परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने जिस भूमि को पुण्यवती बनाना हो वहाँ कैसे न जाते ? पंजाब प्रान्त के बड़े बड़े नगरों और कसबों को अपने सदुपदेशों से कृतार्थ करते हुए और शत-शत जीवों का कल्याण करते हुए आप चकौड़ी ज़िला गुजरात में पधारे।

दिलों को हरने वाली विशाल व सुन्दर छवि यहाँ के लोगों ने कब देखी थी। जो एक बार दर्शन कर लेता था, घर बार की सुधि उसे नहीं रहती थी और जिस घर में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का भोजन होता, सब संगत के साथ वहाँ भजन-कीर्तन करते हुए पधारते। वे भक्त भी यज्ञ व भण्डारे की भाँति विशाल हृदय से सब को भोजन खिलाते। उस समय की महिमा व लीला वर्णन से बाहर है। संगतें आपको अपने अपने घरों में ले जाने के लिए आपस में झगड़तीं। उनके प्रेम को देख कर आप अत्यन्त प्रसन्न होते। चकौड़ी गाँव के लोग अपने घरों के

काम को छोड़ कर सत्संग में पहुंचते। प्रेमियों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

चकौड़ी एक छोटा सा गाँव था जिस में हिन्दुओं के लगभग ३०–३५ परिवार रहते थे। गाँव में एक धर्मशाला भी थी जहाँ आरम्भ में आपको ठहराया गया। आप एक मास तक चकौड़ी गांव में विराजमान रहे और सत्संग का प्रवाह चलता रहा। लोगों का प्रेम श्री चरणों में अधिक बढ़ गया और इस क्षेत्र में नाम-उपदेश का बहुत प्रवाह चला क्योंकि आपकी निजी मौज ऐसी थी। हिन्दुओं के अतिरिक्त इस गांव में कई सम्मानित मुसलमान भी थे जो कि आप को सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

यहां की संगत ने प्रार्थना की कि प्रभो! आप हमारे गांव में ही ठहरने की कृपा कीजिए। महात्मा गुरु दर्शनानन्द जी व अन्य कई भक्तों ने परामर्श करके आपके श्री चरणों में चकौड़ी गांव में आश्रम बनाने की प्रार्थना की। उन लोगों का प्रेम देखकर आपने भी चकौड़ी गांव में स्थान बनाने की विनय को स्वीकार कर लिया। सन् १६२५ तदनुसार सम्वत् १६८२ में चकौड़ी गांव में उस आश्रम के निर्माण की नींव रखी गई। गांव के बाहर पूर्व दिशा की ओर खाली स्थान देखकर सब ने वहीं पर आश्रम बनाना उचित समझा। गांव के सब भक्तों ने अपने हाथों से इस आश्रम की सेवा की और थोड़े समय में वहीं आश्रम बन कर तैयार हो गया। इस स्थान का नाम चकौड़ी 'लोक की कुटिया' रखा गया। क्योंकि चकौड़ी ज़िला गुजरात पंजाब में 'लोक' गांव को कहा जाता है। इस आश्रम के बनने पर आप यहां पर ही ठहरते। आस-पास से आने वाली संगत को सब प्रकार से आराम मिलता। चकौड़ी गांव के भक्त बाहर से आई हुई संगत का आदर-सत्कार करते। कभी कभी तो बाहर से इतनी अधिक संगत आ जाती कि आश्रम' पर ठहरने की जगह न होती। तब बाहर से आई हुई संगत को भक्त लोग अपने घरों में आराम करने के लिये ले जाते। दिन प्रतिदिन सत्संग का कार्य बढ़ने लगा। कभी कभी दूसरे गांव के प्रेमी आप को अपने साथ ले जाने की प्रार्थना करते तो कुछ दिनों के लिये आप उन के साथ भी चले जाते। बाद में वापिस फिर 'लोक की कुटिया'

पर ही कृपा करते । इस तरह से ज़िला सरगोधा व ज़िला गुजरात में आप नाम की अमृत वर्षा करते रहे । इस आश्रम के बनने की प्रसिद्धि सीमाप्रान्त के सब छोटे बड़े शहरों उदाहरणतया लक्की मरवत्, टेरी, टल, नौरंग, डेराइस्माइलखां व कुलाची टाँक आदि तक फैल गई । अब वहां से भी संगतें श्री दर्शन के लिये आने लगीं । जो महात्मा लोग सत्संग प्रचार के लिये दूर दूर गए हुये थे वे भी श्रद्धालुओं को आप के श्री दर्शन के लिये लाने लगे । बढ़ती हुई संगतों को देखकर आप को 'लोक की कुटिया' छोटी प्रतीत हुई । अब श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की यह श्री मौज हुई कि एक खुला स्थान ऐसी जगह पर हो जहां जंगल ही जंगल हो । आबादी से दूर जहां सत्संग का कार्य भी हो और साधु महात्माओं को भजनाभ्यास की भी हर तरह से सुविधा हो ।

एक दिन आप संगत के साथ सैर करते हुए चकौड़ी गांव से एक मील दूर चले गए । उस जगह (गांव भुट्टा नौ) की कुछ बंजर भूमि थी । आप ने उस जगह को आश्रम के लिए पसन्द किया क्योंकि वह जगह आबादी से दूर जंगल में थी और चनाव नदी से एक मील की दूरी पर थी । श्री मौज को देख कर भक्तों ने उस ज़मीन को ख़रीद कर आश्रम बनवाना आरम्भ कर दिया । आरम्भ में यहाँ रहने के लिए तीन-चार मकान बनवाए गए और बाग भी लगाया गया । पहले तो आप चकौड़ी गांव वाले आश्रम पर विराजते थे। चकौड़ी सन्त-आश्रम के बनने पर आपने यहां स्थायी निवास कर लिया । यह आश्रम बहुत बड़ा था । पंजाब में सत्संग का बड़ा केन्द्र इसी को बनाया गया । सत्संग का कार्य अधिक बढ़ने पर आप सीमाप्रान्त, सिन्ध, ग्वालियर, उत्तर-प्रदेश व आगरा और भी जहां संगतों को श्री दर्शन देने के लिए पधारते तो बाद में यहीं चकौड़ी सन्त आश्रम में ही लौट आते ।

इस आश्रम पर पहुँचने वाली संगत रेलवे स्टेशन मण्डी भावलदीन पर उतरती थी । मण्डी भावलदीन चकौड़ी सन्त आश्रम से ३० मील की दूरी पर था । रेलवे स्टेशन से कादिराबाद तक कुछ कच्ची व कुछ पक्की सड़क पर बस व टांगे आते

रहते थे। चकौड़ी सन्त आश्रम में आने के लिये कादिराबाद से चकौड़ी तक भी टांगे आते जाते थे। आश्रम की आवश्यकता अनुसार हर प्रकार की वस्तु कादिराबाद से मिल जाती थी।

यह आश्रम आगे चल कर 'चकौड़ी सन्त आश्रम' के नाम से विख्यात हुआ तथा सत्संग का एक अनुपम धाम बना। दूर तथा निकट से सहस्त्रों की संख्या में अधिकारी और संस्कारी आत्माएँ यहाँ आ आकर सत्संग का भरपूर लाभ प्राप्त करने लगीं तथा उन में से बहुत से लोग श्री चरणों में सर्वस्व भेंट कर शरणागत हुए। शनैः शनैः यह आश्रम अति विशाल होता गया। बाद में यहाँ श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की मौज अनुसार भण्डार-गृह, सत्संग-गृह, विश्राम-गृह तथा अन्य कई कमरों का निर्माण करवाया तथा उद्यान भी लगवाए। यह पंजाब का मुख्य सत्संग केन्द्र बना। यहाँ पर सहस्त्रों की संख्या में अधिकारी तथा संस्कारी आत्माएँ उपदेशामृत की पावन धारा में मज्जन करने लगीं। इसी सुन्दर आश्रम से ही सत्संग, भक्ति एवं परमार्थ की शिक्षा की अविरल धारा सम्पूर्ण पंजाब, उत्तर-प्रदेश, सिन्ध तथा भारत के अन्य प्रान्तों में बहने लगी।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज यह थी कि भारत वर्ष के प्रान्त प्रान्त में सत्संग का प्रचार हो; जिससे कि देश का कोई भी कोना परमार्थ की ज्योति से वंचित न रहे। इस प्रयोजन के निमित्त आप ने 'चकौड़ी सन्त आश्रम' को सत्संग का स्थायी केन्द्र बना कर अपने प्रचारक महात्मा और सेवक सभी दिशाओं में प्रेम-भक्ति और परमार्थ का पवित्र सन्देश पहुँचाने के लिए भेजे। इन लोगों के अथक परिश्रम तथा प्रयासों के फलस्वरूप भारत के कई प्रान्तों का वातावरण भक्ति-परमार्थ की ज्योति से देदीप्यमान हो उठा।

यहां से पुनः बुच्चियां के प्रेमी आप को लेने के लिए आये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तो पलंग पर बैठे बैठे केवल प्रेमियों के हृदय की तार को हिला देते और स्वयं कौतुक देखते। महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी ने यहां पर आप बीती एक

बार की घटना का वर्णन सब के सम्मुख किया जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है:—

महात्मा गुरु दर्शनानन्द जी भक्त वेष में घर में रहते थे। एक बार वे दुकान में सोए हुये थे। चारपाई किवाड़ के आधी बाहर और आधी अन्दर थी। उन की कपड़े की दुकान थी। दुकान के बाहर की ओर छज्जा था। आधी रात के समय घटाटोप अन्धेरा था व वर्षा हो रही थी। छज्जा होने के कारण वर्षा किवाड़ तक न पहुँच पाती थी। दुकान के सामने एक मकान था। स्वप्न में क्या देखा कि किसी ने आकर कहा है—"खड़े हो जाओ।" ज्योंही चौंक कर आँखें खोलीं तो अपने को तीन चार फुट की दूरी पर दुकान के अन्दर खड़े हुए पाया। हैरान होकर इधर उधर देखने लगे कि कौन है, कोई है? इतने में दो मिनट बाद सामने के मकान की दीवार गिर गई। आधी दीवार उनकी चारपाई पर आ पड़ी। महात्मा जी के दिल में विचार आया कि मेरे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मेरी रक्षा की है। यदि मैं अब तक सोया रहता तो इस दीवार के गिरने पर शायद बचना भी कठिन था। अतः जिस शरीर के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी गुप्त रूप से रक्षा करने आए हैं, उस शरीर को उन की पावन श्री सेवा में लगाना चाहिए—यही कर्त्तव्य है। यह वृत्तान्त तथा विचार अपने सम्बन्धियों पर भी प्रकट किया। इस प्रकार इन के भाइयों व सम्बन्धियों के दिल में भी श्री दरबार की सेवा करने की उमंग पैदा हुई। महात्मा जी तथा इनके भाई एवं सम्बन्धियों ने श्री चरणों में विनय की और सर्वस्व भेंट कर सभी शरणागत हो गए। इस प्रकार भीतर ही भीतर प्रेम की तारें झनझना कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं निर्लिप्त बने रहते। श्री रामायण में सन्त तुलसी दास जी ने भी लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

उमा दारुयोषित की नाईं। सबहि नचावहिं राम गुसाईं॥

किष्किन्धाकाण्ड

शिवजी कहते हैं—हे पार्वती! काठ की पुतली की तरह भगवान् सब को नचाते हैं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी चकौड़ी से बुच्चियां गए और कुछ दिन बाद चकौड़ी ही लौट आए ।

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने परमार्थ पथ पर अग्रसर होकर जन कल्याण का जो पग उठाया उसे अविरत गति से बढ़ाते गये । कहां टेरी स्थान और कहां पंजाब । अब चकौड़ी सन्त आश्रम में जो शरणागत हुए उन में से कुछ एक को साधु वेष देकर प्रचार के लिए भेजा । पंजाब व अन्य प्रान्तों के शरणागत प्रेमियों के प्रमुख नाम भी यहां दिये गए हैं कि जिन्होंने सर्वस्व समर्पण कर श्री दरबार की हित चित्त से सेवा की ।

महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी, महात्मा आत्मदर्शनानन्द जी, महात्मा सत् ध्यानानन्द जी, महात्मा गुरु शब्दानन्द जी, महात्मा सार शब्दानन्द जी, महात्मा हीरानन्द जी, महात्मा सत निरभर्मानन्द जी, महात्मा धर्मात्मानन्द जी, महात्मा अनमोल प्रेमानन्द जी, महात्मा आद सन्तोषानन्द जी, महात्मा विवेक विचारानन्द जी, महात्मा सत् योगानन्द जी, महात्मा पूर्ण हीरानन्द जी, महात्मा ज्ञान शान्तानन्द जी, महात्मा दर्शन अलखानन्द जी, महात्मा सुरत शब्दानन्द जी, महात्मा प्रकाश विचारानन्द जी, महात्मा निर्वैरानन्द जी, महात्मा अनन्त प्रकाशानन्द जी, महात्मा विवेक सुखानन्द जी, महात्मा ध्यान प्रेमानन्द जी (भक्त कृपाराम जी), महात्मा शान्त विचारानन्द जी, महात्मा निर्वैर अखंडानन्द जी, महात्मा शब्द अलखानन्द जी, महात्मा सन्तोषात्मानन्द जी, महात्मा निजानन्द जी, महात्मा अनन्तानन्द जी, महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी, महात्मा अपारानन्द जी, महात्मा निज ध्यानानन्द जी, महात्मा हर प्रकाशानन्द जी, महात्मा भक्ति ध्यानानन्द जी, महात्मा शुद्ध ब्रह्मानन्द जी, महात्मा विवेक योगानन्द जी, महात्मा विवेक शब्दानन्द जी, महात्मा आत्म अखंडानन्द जी (भक्त गोविंद राम जी), महात्मा गोपाल श्रद्धानन्द जी, महात्मा धर्म श्रद्धानन्द जी, महात्मा भक्ति ज्ञानानन्द जी, महात्मा अमर शब्दानन्द जी, महात्मा सुखात्मानन्द जी, महात्मा योग युक्तानन्द जी, महात्मा नित्यानन्द जी, महात्मा आत्म विवेकानन्द जी, महात्मा सत्यानन्द जी, महात्मा परम ज्ञानानन्द

जी, महात्मा विज्ञानानन्द जी, महात्मा अनमोलानन्द जी, महात्मा ज्ञान अमरानन्द जी, महात्मा निरभर्मानन्द जी, महात्मा शुद्ध प्रेमानन्द जी, महात्मा अलखानन्द जी, महात्मा आत्म ब्रह्मानन्द जी, महात्मा ध्यान सन्तोषानन्द जी, महात्मा ब्रह्म योगानन्द जी, महात्मा प्रकाश ब्रह्मानन्द जी, महात्मा प्रेम सुखानन्द जी, महात्मा ब्रह्म सन्तोषानन्द जी, महात्मा निष्काम भक्तानन्द जी, महात्मा गुरु बचनानन्द जी, महात्मा विवेक सागरानन्द जी, महात्मा हर रामानन्द जी, बाई शब्द दर्शनानन्द जी, बाई अभेद ध्यानानन्द जी, बाई दयाल रामानन्द जी, बाई दयाल कृष्णानन्द जी, बाई अडोल विचारानन्द जी, बाई निर्वैर शान्तानन्द जी ।

ये लगभग सब परिवार सहित श्री दरबार में शरणागत रूप में आए । इन के अतिरिक्त और भी कुछ एक अकेले स्वयं श्री चरणों में शरणागत हुए ।

अब तो आप ने श्री परमहंस दयाल जी (श्री पहली पादशाही जी) की सत्य नाम रूपी ज्योति का प्रकाश हर स्थान पर फैलाने के लिए एक साधु मण्डली को तैयार कर स्थान स्थान पर भेजा । उन्हें यह आदेश दिया कि श्री सद्गुरुदेव जी के नाम पर सत्संग उपदेश तथा नाम-दीक्षा संस्कारी तथा अधिकारी आत्माओं को देवें ।

स्वयं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) सारे भारत का भ्रमण करने के लिये चल पड़े । आप के उपदेश से बंगाल, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, नैनीताल, अलमोड़ा, सीमाप्रान्त (Frontier) सिन्ध तथा बलोचिस्तान में काफ़ी सत्संग का प्रचार हुआ । यहाँ से आप अपने वचनों से सब को कृतार्थ करते हुए बम्बई, गुजरात–काठियावाड़ तथा लंका को भी पवित्र किया । उन दिनों यातायात के साधन सुलभ न थे । कहीं पर आप पैदल चल देते तो कहीं पर सवारी ले लेते । कहीं पर मौज अनुसार दो चार सेवक साथ ले लेते तो कहीं पर केवल एक ही सेवक के साथ चल देते । सब स्थानों पर भ्रमण करते हुए मुख्य स्थान सन्त आश्रम चकौड़ी को बनाया जहां पर पुनः लौट आते । यहाँ पर इस सम्प्रदाय के महात्मा जन तथा अन्य जिज्ञासु व शरणागतों के लिये नियत समय पर विचार

विमर्श सत्संग व श्री दर्शनों के लिए पहुँचना अति आवश्यक था।

एक बार आप लखनऊ पधारे । वहाँ पर आपने सत्संग उपदेश दिया। सत्संग के पश्चात् एक भक्त जी ने आपके श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! आप तो फ़रमाते हैं कि नाम जपने से जीव को सुख और आनन्द मिलता है। मैं तो रात्रि के दो बजे से दिन के बारह बजे तक सवा लाख मन्त्र जाप करता हूँ। यह जाप करते हुए मुझे तीस वर्ष हो गए हैं फिर भी मुझे मानसिक शान्ति प्राप्त नहीं हुई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"यह जाप आप केवल मुँह से उच्चारण करते हुये तथा हाथ से माला फेरते हुये करते हो। जब तक इस जाप में मन को सम्मिलित न किया जाये, तब तक मानसिक शान्ति कैसे प्राप्त हो। जिस प्रकार किसी पाठ को याद करने के लिये उसे मन चित्त लगा कर स्मरण करना पड़ता है। यदि केवल जिह्वा से ही उसे बार बार पढ़ा जाये, वह याद नहीं होगा। इसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी मन्त्र-जाप के लिये मन को शामिल करना अत्यावश्यक है। अतः सन्त सत्पुरुष ही वह युक्ति बतलाते हैं, जिस से मन भी एकाग्र होकर जाप में लग जाय तथा आन्तरिक आनन्द भी प्राप्त हो।

इन अमृतमय प्रवचनों को सुन कर प्रेमी की बुद्धि पर पड़ा हुआ माया का आवरण दूर हो गया। उस ने विनय की कि प्रभो! आप कृपा कर के इस भूले भटके जीव को सन्मार्ग पर लगाओ। जिसे मैंने जाप समझा था, वह तो मन का खेल निकला। अब मुझे ज्ञात हुआ है कि बिना श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा के जीव मानसिक शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकता। आपने उस प्रेमी पर अपार कृपा करते हुए सुरत-शब्द-योग के साधन समझाये। उन साधनों को करने से उस की चित्त-वृत्ति एकाग्र होती गई और वह आनन्द के सागर में झूमने लगा। कुछ समय पश्चात् वह श्री चरणों में शरणागत हो गया। आप ने उस को साधु वेष प्रदान कर उस का नाम महात्मा आत्म विवेकानन्द जी रखा। इस प्रकार आप जहाँ भी जाते, प्रेमियों, जिज्ञासुओं व शरणागतों के अन्तर्मानस की विह्वल वेदना को सुन कर उन की आत्मिक तृषा को बुझाते।

अब आप का पुनः पंजाब में आगमन हुआ। यहाँ पर महात्मा जनों के सत्संग से कुछ लोग तो उपदेशी बन चुके थे। कई तो आप के श्री दर्शन मात्र से ही श्रद्धालु एवं प्रेमी बन गये। आप सन् १९२६ में स्थान चकौड़ी पर विराजमान थे। उन दिनों लक्की मरवत् की संगत के प्रार्थना करने पर आप लक्की मरवत् उन के साथ गये और वहाँ सत्संग का प्रवाह चलने लगा। एक दिन आप ने मौजवश प्रवचन फ़रमाये:—

"एक दिन इस नश्वर संसार को छोड़ कर यहाँ से कूच करना होगा। इस दुनिया को इसलिये मुसाफ़िरखाना कहा गया है क्योंकि इसको एक दिन छोड़ना ही छोड़ना है। यह धन-दौलत, मकान व सामान जो इस मनुष्य ने बड़ी कोशिश से जमा किये हैं सबके सब यहीं पर पड़े व धरे रह जाएँगे। सम्बन्धी, परिवार जिन के साथ मनुष्य का बड़ा हित व प्यार है, जिन के मोह में मनुष्य ने सब कुछ भुला रखा है यह सब एक रैन बसेरा है। जैसे पक्षी रात्रि समय वृक्ष पर आकर इकट्ठे हो जाते हैं और दिन होते ही सब अपनी अपनी बोलियां बोल कर उड़ जाते हैं। इसी तरह से जीव ने भी एक दिन सबसे बिछुड़ जाना है। मनुष्य के जीवन को पानी की एक चलती धारा के समान कहा गया है जो ऊँचे नीचे रास्ते को पार करती हुई गुज़रती चली जाती है। मनुष्य की ज़िन्दगी भी इसी तरह है। मनुष्य का जीवन भी ऊँची नीची घाटियों को पार करता हुआ समाप्त हो रहा है। समय का सूर्य मनुष्य की ज़िन्दगी की बर्फ़ पर चमकता हुआ मनुष्य के जीवन को खत्म कर रहा है। श्वासों के आने जाने का आरा जीव की आयु के वृक्ष को हर समय काटता चला जा रहा है। सूर्य सुबह को निकलता है और सायं को अस्त हो जाता है। सितारे रात को निकलते हैं और प्रातः मन्द पड़ जाते हैं। सब ऋतुएँ अपने अपने समय पर आती और चली जाती हैं। वृक्ष भी बहार के मौसम में हरे-भरे होने लगते हैं। इसी तरह सृष्टि का चक्र चलता रहता है परन्तु अफ़सोस इस बात का है कि इस जीव की उम्र जब एक बार खत्म हो जाती है पुनः लौट कर नहीं आती। इस मनुष्य के लिए सिवाय अफ़सोस के कुछ

नहीं छोड़ जाती ।

॥ शेयर ॥

गुज़रती उम्र है यूँ दौरे आसमानी में ।
कि जैसे जाए कोई किश्ती, तुग़यानी में ॥

अब सोचना इस बात को है कि मनुष्य जन्म यूँ ही गुज़र जाए, इससे कोई काम न लिया जावे, यदि काम लिया जावे तो कौन सा ? क्या मनुष्य जन्म खाने-पीने और सोने के लिये मिला था ? इस बात पर ध्यान देना है । इस मनुष्य-जन्म में मनुष्य साधन करके अपने परलोक को सुधार सकता है । नीच योनियों का शिकार बनने से अपने आप को मुक्त कर सकता है । इसीलिए ही तो मनुष्य-जन्म मिला है । परन्तु साधारण मनुष्य इसकी क़दर नहीं करते । बचपन और बुढ़ापे में कोई साधन नहीं हो सकता । कारण यह है कि बाल्यकाल में यह जीव मालिक-प्राप्ति के ज्ञान को समझ ही नहीं सकता । बुढ़ापे में शरीर साधन करने में असमर्थ होता है । यदि यह जीव करना चाहे तो यौवन में अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है । जीवन के मध्य में हर प्रकार का साधन भजनाभ्यास आदि हो सकता है । परन्तु इस आयु में दुनिया की विषय-वासनाओं ने मनुष्य को इतना घेर रखा होता है कि मनुष्य की सारी भाग दौड़ इस आयु में संसार के लिये होती है । परिवार के मोह में व धन दौलत तथा माया के असत् पदार्थों के एकत्र करने में इतना लीन होता है कि इसको सिवाय दुनिया के सामानों के और कुछ नज़र ही नहीं आता । यदि मनुष्य करना चाहे तो भजनाभ्यास और योग साधन से मालिक को मिल सकता है । ये सब काम मनुष्य योनि में ही किये जा सकते हैं । शेष पशु योनियां तो केवल भोक्ता ही भोक्ता हैं । इसलिये मनुष्य का कर्त्तव्य है कि मनुष्य जन्म जो बहुत दुर्लभ है इसको पाकर सन्त सद्गुरु की शरण में जाकर भजनाभ्यास की कमाई से अपने मनुष्य जन्म के ठीक लक्ष्य को समझ कर मालिक के साथ मिलने की कोशिश करनी चाहिए ताकि समय के बीत जाने पर बाद में पछताना न पड़े ।"

दिनांक १६ सितम्बर १६२६ तदनुसार संक्रान्ति आश्विन (असौज) सम्वत् १६८३ को महात्मा परमशान्तानन्द जी व महात्मा योग प्रकाशानन्द जी तथा आठ दस भक्त लोग स्थान टल ज़िला कोहाट से श्री दर्शन हेतु लक्की मरवत् आये। सब ने मिल कर प्रार्थना की–प्रभु! टल की सब संगत श्री दर्शन के लिये तड़प रही है। उन लोगों के बार बार विनय करने पर ४ असौज तदनुसार १६ सितम्बर को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि चार पांच दिनों तक चलेंगे। आप वहां की संगत को सूचना दे देवें। महात्मा योग प्रकाशानन्द जी टल की संगत को सूचित कर सात आश्विन को अपनी बस टल से आप को ले जाने के लिये ले आए। २३ सितम्बर को आप लक्की मरवत् से पधारे। लक्की से टल तक पूरे रास्ते में यह खुशी का समाचार सब को मिल गया कि इसी रास्ते से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी टल पधार रहे हैं।

सब से पहले सराय नौरंग पहुंचे। महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा रोशनानन्द जी, महात्मा दयानन्द जी व महात्मा श्रद्धानन्द जी सैंकड़ों भक्त, भक्तानियों को साथ लिए हुए आप के स्वागत के लिए सड़क पर खड़े थे। श्री पावन दर्शन पाकर गद्गद होकर श्री चरणों में नौरंग सराय की नगरी को पवित्र करने की प्रार्थना की। महाप्रभु ने फ़रमाया–कि अब तो टल की संगत के साथ जा रहे हैं। वापिसी पर देखा जाएगा परन्तु प्रेमी कब मानने वाले थे। टल के भक्तों ने भी बहुत कुछ कहा कि अब हम श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को टल ले जा रहे हैं परन्तु सराय नौरंग की संगत ने अपने प्रेम के बन्धन में आप को बांध ही लिया। आप उनके प्रेम तथा भक्ति से प्रसन्न हो गये और फ़रमाया कि आज रात सराय नौरंग ठहरेंगे।

लक्की मरवत् से चलते समय कुछ टल की संगत, कुछ लक्की की संगत, कुछ पंजाब से आई हुई संगत जिन की संख्या लगभग दो सौ होगी, उन सब को रेलगाड़ी द्वारा बन्नू भेज दिया गया जोकि आपकी प्रतीक्षा में बन्नू बैठे थे। रात को सराय नौरंग ठहरने पर एक आदमी बन्नू भेज दिया गया और उन सब को

वापिस नौरंग बुलवाया। तीन बसें किराये पर लेकर वे सब लोग वापिस सराय नौरंग आ गये। सराय नौरंग की संगत ने आप के साथ आई हुई संगत तथा कसबा टहलराम, गंडीखानखेल, सराय गम्भीला आदि से आई हुई संगत का बहुत सत्कार किया। संगत को ठहराने के लिये सब लोगों ने अपने मकान खाली कर दिये। सराय नौरंग वालों को अपने शरीर की सुध भी नहीं थी। सब का यही ख़्याल था कि ऐसा स्वर्ण अवसर न जाने फिर कब मिलता है। इसीलिये सब ने सेवा में एक दूसरे से बढ़कर भाग लिया। नौरंग की संगत का प्रगाढ़ प्रेम देखकर सब मन ही मन उनकी प्रशंसा करने लगे। सब लोगों के ठहरने के लिये मकान आदि का प्रबन्ध करने तथा उन्हें भोजन खिलाने के बाद रात के बारह बज गये। फिर सब लोग जब श्री दर्शन के लिये पहुँचे तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सर्व संगत को बड़े प्रेम से निहारा। इसके बाद आप ने अमृत वचन फ़रमायेः—

"यह मानव शरीर जो मिला है जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों का फल है। यानि पूर्व जन्मों के कर्मों की कमाई के फलस्वरूप मिला है, न कि इस जन्म की कमाई से। प्रारब्ध-कर्म की साक्षात् प्रतिमा यह शरीर है अर्थात् अपनी प्रारब्ध अवश्य मिलेगी। सिवाय प्रारब्ध के कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए इच्छाओं की पूर्ति के लिए पुरुषार्थ करना निरर्थक है। भ्रम और अज्ञान के कारण इसे यह भासता है कि मैं पुरुषार्थ कर भरण-पोषण कर रहा हूँ। पूर्व जन्मों के कर्म अनुसार इस जन्म में शारीरिक निर्वाह के लिये प्रारब्ध से अधिक कुछ भी नहीं मिलेगा।

गुरुमुखो! यह मनुष्य जन्म पूर्व जन्म के संचित कर्मों का फल है। यह मनुष्य पूर्व जन्मों में जो कर्म करता है वह अगले जन्म के लिये प्रारब्ध बनती जाती है। जो पिछले जन्म में बोया है उसी का फल अगले जन्म में मिलेगा। यदि मनुष्य किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ न करे और चाहे कि वह वस्तु उसे मिल जाये तो यह सम्भव नहीं। इसीलिये शारीरिक सुखैश्वर्यों की पूर्ति में अपने अमूल्य जीवन की घड़ियों को खो देना ठीक नहीं। यदि केवल क्षणभंगुर सुखों के पीछे अथवा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये पुरुषार्थ करता रहा तो

शुभ कर्मों की पूँजी संचित न कर सकेगा। सन्त महापुरुष जीव को चेतावनी देते हैं कि ऐ जीव ! अपने खान-पान, पहरान आदि की इतनी अधिक चिन्ता न कर जिस से कि सारा समय इनकी पूर्ति में ही नष्ट हो जाए। मालिक पर भरोसा रख कर मालिक की बन्दगी कर। श्री गुरुवाणी में भी लिखा है कि:—

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पथर महि जंत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥१॥
मेरे माधउ जी सतसंगति मिले सु तरिआ ॥
गुर परसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥१॥ रहाउ ॥
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किस की धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु संबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥२॥
ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बचरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥
सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥

राग गूजरी महल्ला ५

अर्थः—ऐ मेरे मन ! तू अपने आहार को प्राप्त करने के लिए इतनी अधिक चिन्ता क्यों करता है जबकि मालिक को सब जीवों के पालन-पोषण की चिन्ता लगी हुई है। जब चट्टानों तथा पत्थरों में जो जीव पैदा हुए हैं, उन के लिए मालिक ने पहले से ही भोजन का प्रबन्ध कर दिया है। ऐ मन ! जो सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त करता है, वह संसार सागर से तर जाता है। गुरु की कृपा से ही परम पद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। सूखी लकड़ी के समान शुष्क हृदय भी हरे भरे हो जाते हैं। माता-पिता, संबन्धी, पुत्र तथा स्त्री कोई किसी का आधार नहीं है। जीवों को पैदा कर प्रत्येक प्राणी को यथोचित भोजनादि पहुँचाना उस मालिक का काम है तो फिर अपने खाने-पीने की व्यर्थ चिन्ता क्यों करता है। जैसे कि हिमालय पर्वत से सैंकड़ों मील दूर कूँजों का दल कार्तिक के महीने में

उड़ उड़ कर नीचे की ओर आता है और वह अपने बच्चों को पीछे ही छोड़ आता है। उन बच्चों को पीछे कौन खिलाता है और कौन दाना ला कर चुगाता है। परन्तु प्रत्येक क्रौंच (कूँज) अपने मन में बच्चे का स्मरण करती है। स्मरण करने मात्र से ही बच्चे का पालन-पोषण होता है। जब साधारण पक्षियों की ऐसी बात है तो फिर चिन्ता की क्या आवश्यकता है। सब खज़ाने, नौ निधियां एवं आठ सिद्धियां ठाकुर (मालिक) ने मनुष्य के हाथ पर रखी हैं। उस मालिक पर बलिहार जाना चाहिए जिस का कोई अन्त नहीं पाया जा सकता।

सन्त महापुरुष जीव को उपदेशों द्वारा जगाते हैं कि ऐ जीव! यदि मालिक कीट पतंगों, पशु, पक्षियों को प्रारब्ध दे सकता है तो तुझे कैसे भुलाएगा। अतः अपनी इच्छाओं को और न बढ़ा। यह मानव जीवन एक अमूल्य रत्न है। इसे मायावी कर्मों रूपी मिट्टी में न मिला अपितु इससे भक्ति रूपी रत्नों को भी संचित कर ताकि तुझे अगले जन्म में कष्ट न झेलने पड़ें। वासनाएं और इच्छाएँ कभी समाप्त होने वाली नहीं हैं। यह जलती पर तेल का काम करती हैं। जैसे जलती आग में यदि तेल डाल दिया जाये तो आग भड़क उठती है। उसका परिणाम यह होता है कि जिन लकड़ियों ने धीरे धीरे आग में जलना था जल्दी से जल कर भस्म हो जाती हैं। इसी प्रकार वासनाएँ और इच्छाएँ तेल हैं जो आयु की घड़ियों रूपी लकड़ियों पर पड़ कर इस अमूल्य समय को शीघ्र ही नष्ट कर देती हैं। दिल में एक इच्छा या वासना ने घर किया तो समझो कि वासनाओं का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। यह हालत उस समय होती है जब इन्सान के मन में एक इच्छा को पूर्ण करने का संकल्प उठा तो वह उसे पूरा करने में जुट गया। एक वासना के समाप्त होने से पहले अनेकों वासनाएँ अपनी ज़रूरत बताती हुई सामने आ प्रस्तुत होती हैं। बस इसी तरह से जीव को गुमराह (राह से भटका कर) कर जीव की आयु को समाप्त कर देती हैं।

निष्काम कर्म ही अगले जन्म के लिए सुन्दर प्रारब्ध बनाते हैं। यदि इन की ओर ध्यान ही न दिया जाए तो अन्त में पछताने के सिवाय कुछ हाथ न आयेगा।

यही वासनाएँ ही उस की चौरासी का कारण बनेंगी। अतः अपनी प्रारब्ध पर राज़ी रहकर मालिक के सुमिरण में दिल लगा। अमूल्य जीवन की घड़ियों को यूँ ही न खो दे। ऐसा न हो कि भोगों में ही यह जन्म विनष्ट हो जाए और आगे के लिए कुछ पूँजी संचित न होने पाए। जिन गुरुमुखों को सन्त महापुरुषों की पावन संगति प्राप्त हो गई है उन का कर्त्तव्य है कि सद्गुरु के उपदेशानुसार परलोक के लिये नाम की कमाई कर के पूँजी एकत्र करें जिस से बाद में पछताना न पड़े। यही जीव का वास्तविक ध्येय है।"

अगले दिन २४ सितम्बर को नौरंग से आपने प्रस्थान किया। सराय नौरंग से बन्नू १५ मील की दूरी पर था। रास्ते में बन्नू से होकर बहादुरखेल पहुँचे, जहाँ पर दीवान भगवानदास नमक विभाग के अध्यक्ष (Superintendent) रहते थे। दोपहर को श्री महाराज जी सब संगत के साथ बहादुरखेल ठहरे। दीवान भगवानदास व सब संगत ने उनका बहुत सत्कार किया। फिर बहादुरखेल से चलकर बाँडा दाऊदशाह पहुंचे। यह बात विशेष स्मरणीय है कि बाँडा दाऊदशाह टेरी से चार मील दूर पक्की सड़क पर था। यहाँ से टेरी को रास्ता जाता था। जब टेरी के लोगों को पता चला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी बाँडा से होकर टल पधार रहे हैं तो टेरी के सब लोग स्त्री-पुरुष, बच्चे व बूढ़े तक प्रेम विभोर होकर श्री दर्शन के लिये बांडा आए और सब संगत ने श्री चरणों में टेरी चलने की प्रार्थना की। टेरी के लोगों का प्रेम व श्रद्धा देखकर सब संगत जो साथ थी हैरान हो गई क्योंकि इतिहास में ऐसे प्रमाण बहुत कम मिलते हैं कि किसी भी महापुरुष या अवतार के प्रति अपने जन्म-स्थान के लोगों के दिलों में इतनी श्रद्धा हो परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) का टेरी जन्म-स्थान होने पर भी सब के दिल में उनके प्रति बहुत अधिक श्रद्धा थी। जब टेरी की संगत ने श्री चरणों में विनय की तो फ़रमाया—अब तो हम टल जा रहे हैं, वापिसी पर टेरी आवेंगे। परन्तु टेरी की संगत श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को साथ ले जाने का आग्रह करने लगी। सब लोगों ने सड़क पर दण्डवत् कर दी और रास्ता रोक लिया। टल की संगत आप को टल ले जाने के लिए विनय करती परन्तु टेरी वाले आप

को टेरी ले जाने के लिए आग्रह करते। इसी प्रकार दो घण्टे गुज़र गये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की यह लीला सब संगत देख कर खुश हो रही थी। अन्त में आप ने टेरी वालों को फ़रमाया कि अब टल की संगत प्रतीक्षा में होगी। आप लोगों की तृप्ति एक दिन या एक रात से तो हो नहीं सकती। इसीलिए किसी दूसरे अवसर पर काफ़ी दिनों का प्रोग्राम टेरी का रखा जाएगा। इस तरह से समझा बुझा कर टेरी वालों को आश्वासन दिया। बाँडादाऊदशाह से चलने के बाद इसी सड़क पर जट्टा इस्माइलखेल पहुँचे। महात्मा निज मुक्तानन्द जी व महात्मा ध्यान अलखानन्द जी संगत को लिए हुए सड़क पर खड़े थे। सब संगत ने बहुत प्रेम से श्री दर्शन किये। जट्टा से चल कर आगे स्थान लाची की संगत जो दोपहर से सड़क पर बैठी थी उन्हें प्रतीक्षा करते करते रात के आठ बज गए। महात्मा परमात्मानन्द जी (भक्त मेहरदास जी) व सब संगत के विनय करने पर श्री सद्गुरुदेव जी को सारी संगत के साथ लाची ठहरना पड़ा। लाची की संगत ने बड़े प्रेम से सब प्रेमियों की सेवा की। रात्रि समय आपने सत्संग उपदेश दियाः—

"मन काल देश का राजा है और गुरु दयाल देश का। मन की प्रीति पिण्ड देश से है (जो आँखों से नीचे है)। मन लकड़ी, लोहे, हाथी आदि से भी अधिक शक्तिशाली और कठोर है क्योंकि लकड़ी को जैसे गढ़ो, जैसे बनाओ वैसे बन जाती है। हाथी को वश में किया जा सकता है, मगर मन को बनाना बहुत कठिन है। इसीलिए मन को गुरु के अर्पित किया जाए।

जो जिस देश का वासी हो अथवा राजा हो उस के अधिकार में जो कुछ होगा वह वही वस्तु ही किसी को प्रदान कर सकता है। जैसे दूध बेचने वाले से दूध और नशे वाले से नशीली वस्तुएँ ही प्राप्त होंगी। इसी प्रकार मन के अधीन कलह--कल्पना और अशान्ति है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मन के वज़ीर हैं। यह (मन) उनका (सम्राट्) राजा है। इसका अधिकार पिण्डदेश पर है। अतः इसे ऐन्द्रियक सुख, विषय--भोग ही प्रिय हैं। जिनमें सुख नाम मात्र को भी नहीं। फिर भी जीव मन की इच्छा पर चल कर इन क्षणभंगुर सुखों में शाश्वत सुख की

खोज करता है। भला जौहरी की दुकान से भी कभी शाक-सब्जी मिली? जो मनुष्य जौहरी की दुकान से शाक तथा शाक बेचने वाले की दुकान से कोई हीरे ख़रीदना चाहे तो उसे कौन बुद्धिमान् कहेगा? यह मन जन्म-जन्मान्तरों से जीव को भटकाता रहा है और स्वयं भटक रहा है। यह जीव मनमति से मायावी वस्तुओं में सुख की खोज करता है। इन वस्तुओं में न कभी सुख मिला है, न ही मिलेगा। सुख, शान्ति व आनन्द का भंडार तो सद्गुरु हैं। उनकी पावन संगति के बिना अथवा उनकी राहनुमाई के बिना सुख कदापि नहीं मिल सकता।

यह मन लकड़ी, लोहे और हाथी के समान है। जैसे लकड़ी को बढ़ई के हाथ, लोहे को लुहार के हाथ सौंप दिया जाए तो वह तैयार होकर किसी न किसी सुन्दर रूप में बन जाती है। हाथी को अंकुश से वश में किया जा सकता है परन्तु यह मन ऐसा है कि इसे नित्यप्रति यदि सद्गुरु के उपदेश का चाबुक न लगाया जाए तब तक यह मन वश में आने का नहीं। यह बार बार जीव को धोखे में डालता है। जब तक इसका वश चलता है तब तक यह अपने पंजे से जीव को निकलने नहीं देता। सन्त तुलसी साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

मन तरंग तन में चलै, आठो पहर उपाव।
थाह कधी पावै नहीं, छिन छिन छल परभाव॥

कि मन समुद्र की लहरों के समान कभी भी स्थिर नहीं रहता। इसके ठहराने का उपाय करना चाहिये। इस की सतह को कोई नहीं पा सकता। यह प्रत्येक क्षण में जीव को छल कर उस पर अपना प्रभाव डालता रहता है। इसीलिए जीव को चाहिये कि मन के कहने पर न चलते हुए गुरु की आज्ञानुसार इस मन को सद्गुरु के अर्पण करे। गुरुबाणी में भी लिखा है कि:—

गुर की मति तू लेहि इआने॥ भगति बिना बहु डूबे सिआने॥

अतएव इस मन को सन्मार्ग पर लगाने के लिए गुरु की नितान्त आवश्यकता

है। गुरु ही इस जीव के मन को भक्ति मार्ग पर लगा सकते हैं। सभी सन्त महापुरुषों ने इस मन को वश में करने का एक ही ढंग बताया है। सन्त दादू दयाल जी भी उपदेश देते हैं कि:—

॥ दोहा ॥

सब जीवन कूँ मन ठगै, मन कूँ विरला कोइ ।
दादू गुरु के ज्ञान सूं, साईं सनमुख होइ ॥

सम्पूर्ण संसार को मन ठग रहा है। दादू दयाल जी कहते हैं कि गुरु के ज्ञान से ही सच्ची दरगाह में मुख उज्ज्वल होगा। अर्थात् यह मन जीव को अशान्ति, दुःख, क्लेश-कल्पना में हर समय कैद करने के प्रयत्न में रहता है कि कहीं जीव इसके पंजे से निकल न जाए। गुरु का ज्ञान ही इस मन की कैद से छुटकारा दिला सकता है। जैसे मकड़ी अपने मुँह से तारें निकालकर जाल बुन लेती है पुनः उस में फँसकर अशान्त और दुःखी होती है फिर उसको बाहर निकलने का रास्ता ही दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार जीव भी मन के कहने पर चल कर हर समय संकल्पों-विकल्पों, इच्छाओं-वासनाओं का ताना बुनता है। जब इसके जाल में उलझ जाता है तो पुनः कहता है कि मैं बहुत दुःखी हूँ। प्रायः सर्वसाधारण से यह कहते हुए सुना जाता है कि आज मेरा मन बहुत अशान्त है। मेरा मन बहुत दुःखी है। तो इस दुःख का कारण कौन है ? मन ही तो है। पहले स्वयं काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार के कहने पर चल कर फिर शिकायत करता है कि मैं दुःखी हूँ ।

आग के समीप जाकर गर्मी और पानी के समीप शीतलता मिलती है। यदि आग के समीप बैठ कर कोई शीतलता की अभिलाषा रखे तो यह उस की भूल है। आग के समीप तो गर्मी ही मिलेगी। अतः मन की संगति से कोई सुख, शान्ति और आनन्द की आशा रखे तो यह उस की सरासर भूल है। मन की संगति से तो विषय-वासनाओं, इच्छाओं, संकल्पों-विकल्पों की आग ही मिलेगी जो दिन प्रतिदिन अधिक भड़केगी परन्तु कम न होने पाएगी। जिसे सुख, शान्ति, आनन्द की इच्छा हो वह पूर्ण सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण करे।

सद्गुरु दयाल देश के वासी हैं। उन के अधीन शाश्वत् सुख, परम शान्ति और दिव्य आनन्द के खज़ाने हैं। वे स्वयं सच्चिदानन्दघन हैं, अतः वास्तविक आनन्द उन्हीं के द्वार से मिलेगा। इस मन को यदि गुरु के अर्पण कर दिया जाए तो यह भी आनन्द का भण्डार बन जाएगा। सन्त तुलसी साहिब जी ने लिखा है किः—

॥ दोहा ॥

जल ओला गोला भयो, फिर घुलि पानी होय।
संत चरन गुरु ध्यान से, मन घुल जावै सोय ॥

जैसे पानी जम कर ओले और बर्फ़ का रूप बन जाता है। इसी प्रकार सन्त महापुरुषों के श्री चरणों में जाने से तथा सद्गुरु के ध्यान से मन (जो कि पहले बर्फ़ और ओले की भाँति होता है) उन के शब्द में ऐसे घुल जाता है और वहाँ से आनन्द तथा शान्ति को प्राप्त करता है। इसीलिये सदा स्थायी रहने वाले सुख (आत्मिक सुख) को प्राप्त करने वाले जिज्ञासु को चाहिये कि मन को पूर्णतया गुरु के हवाले कर दे। गुरु उसे अपनी मौज अनुसार ही सेवा, सत्संग, भजन आदि के ढंग बता कर उसे ठीक रास्ते पर लगायेंगे। जब मन को पूर्ण रूप से सद्गुरु के अर्पण कर दिया जाये तो निश्चय ही सुख, आनन्द प्राप्त होगा। बस मन को सद्गुरु के उपदेशानुसार चलाना और अपने लक्ष्य को पाना ही जीव का असली कर्त्तव्य और धर्म है जिससे कि आनन्द-सुख-शान्ति को प्राप्त कर सदा सुखी बना रह सके।"

अगले दिन २५ सितम्बर को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लाची से सब संगत के साथ टल पधारे। टल की संगत अर्थात् सैंकड़ों भक्त—भक्तानियाँ टल शहर से तीन मील आगे की तरफ़ आप के स्वागत के लिये आए और भजन कीर्त्तन करते तथा जयकारे बोलते हुए आप को टल ले गये। आप अढ़ाई मास तक टल में विराजमान रहे। दूर दूर से संगत दरसमंद, कोहाट, पाराचनार, दरमलक, टेरी, सोमाप्रान्त व पंजाब तक के लोग श्री दर्शन के लिये आते और कई कई दिनों तक श्री दर्शन व

सत्संग का लाभ प्राप्त करते। वैसे तो हर रोज़ ही सत्संग की पावन गंगा की धारा बहती और कभी कभी तो दिन में दो-दो, तीन-तीन बार बाहर से आई हुई संगत को अपनी अमृत-वर्षा से कृतार्थ करते। यहाँ केवल एक दो सत्संग ही दिये जा रहे हैं। इन प्रवचनों को पढ़ कर प्रेमी गुरुमुख अपने जीवन को सफल करेंगे। एक दिन प्रवचन हुए कि:—

गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भगवान् फ़रमाते हैं कि यह मनुष्य उल्टा वृक्ष है। 'मैं मेरी' ममता रूपी धरती पर यह वृक्ष लगा हुआ है। कुटुम्ब-परिवार रूपी जेवड़ियों में बँधा हुआ है। जिस समय संत महापुरुष इस संसार में वेगवायु की तरह आते हैं तो इसे जड़ से उखाड़ देते हैं। काटने का उपाय सुनोः—

प्रथम तो कुटुम्ब के लोगों से मोह-ममता त्यागो। यहां सिद्ध होता है कि भक्ति-मार्ग पर चलने के लिए सब से पहले वैराग्य और त्याग चाहिये। श्री रामायण तथा अन्य ग्रन्थ इस के प्रमाण हैं।

॥ चौपाई ॥

मोह सकल व्याधिन कर मूला। जेहि ते पुनि उपजहिं बहु शूला ॥

श्री प्रवचन हुए कि "यह मनुष्य उल्टा वृक्ष कैसे है? वृक्ष की जड़ें भूमि में होती हैं और शाखाएँ, कोंपलें ऊपर। परन्तु मनुष्य की जड़ें ऊपर हैं तथा कोंपलें व शाखाएं नीचे की ओर क्योंकि सुरति की धारा मनुष्य के मस्तिष्क से नीचे की ओर उतरी है जहाँ पर माया के पसारे में फंस गई है। इस में मन, बुद्धि और चित्त जड़ें हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध यह पांचों स्थूल-देह और इन्द्रियों की अपेक्षा सूक्ष्म होने के कारण उन शाखाओं की कोंपलों के रूप में कहे जाते हैं। इस में मोह का विस्तार अत्यधिक है। मनुष्य मैं मेरी अर्थात् अपने आप को सब से बड़ा मानता है। इस मैं मेरी का अहंकार तथा मोह इसे माया के चक्र में ऐसा फँसा देता है कि इस से निकलना कठिन सा हो जाता है। जब सन्त—महापुरुषों का संसार में अवतरण होता है तो ज्ञान-भक्ति-परमार्थ की एक प्रकार से बाढ़ आ जाती

है। वे मोह-ममता आदिक को जड़ से उखाड़ते हैं तथा इस के स्थान पर सच्चे प्रेम को प्रदान कर ज्ञान-भक्ति से ओत-प्रोत कर देते हैं। इसीलिए सन्त-महापुरुष यही उपदेश देते हैं कि:—

मोह-ममता को त्यागना आवश्यक है। अतः बचपन से सत्पुरुषों की आज्ञा अनुसार कुटुम्ब के लोगों से मोह न बढ़ाओ। जब बचपन में ही मोह-ममता का बीज अन्दर नहीं पड़ेगा तो उस से मोह ममतादिक कोंपलों की उत्पत्ति भी न होगी। ऐ जीव! तू मोह-ममता में फँस कर अपने आपको बन्धनों में न जकड़। तेरे सम्बन्धी, बच्चे, स्त्री कोई भी अन्त में साथ देने वाला नहीं है जिनके पालन-पोषण में तू दिन रात लगा हुआ है। सब यहीं के यहीं रह जाएँगे। गुरुवाणी में लिखा है कि:—

बहु परपंच करि परधनु लिआवै ॥ सुत दारा पहि आनि लुटावै ॥ १ ॥
मन मेरे भूले कपटु न कीजै ॥ अंति निबेरा तेरे जीअ पहि लीजै ॥ १ ॥ रहाउ ॥

अर्थः—अनेक छल कपट करके दूसरों का धन लाकर तू पुत्र और स्त्री को देता है। सन्त उपदेश देते हैं—ऐ मन! भूलकर भी कपट-छल मत कर। अन्त समय तुझे अपने किए का फल मिलेगा।

इस प्रकार झूठी मोह ममता के त्याग से ही भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। जब तक मैं—मेरी के अहंकार को नहीं छोड़ा तब तक इस माया के बन्धन से छुटकारा पाना कठिन है। वैराग्य के लिए सब से पहले सब ओर से अपनी वृत्तियों को एकाग्र करना तथा मोह-ममता को त्यागना पड़ता है। तब सद्गुरु के शब्द में मन लगता है। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी का वचन है:—

॥ दोहा ॥

सलिल मोह की धार में, बहि गये गहर गम्भीर।
सुच्छम मच्छरी सुरत है, चढ़ि है उल्टे नीर ॥

यह मोह-ममता ऐसी नदी है जिसकी धारा में अत्यधिक बुद्धिमान् भी बह

जाते हैं। जिस प्रकार मछली पानी की धारा के उलटे प्रवाह में चली जाती है। ऐसे ही इस सुरति को शब्द द्वारा सूक्ष्म बनाकर मछली की न्याईं ऊपर चढ़ाओ तो मोह-ममता दूर होती है। अतः मोह-ममता को त्याग कर ही भक्ति की मंज़िल को पा सकता है। यही उपदेश श्री कृष्णचन्द्र महाराज जी ने अपने परम सखा अर्जुन को दिया था।

ऐसे ही मौजवश आपने एक दिन प्रवचन फ़रमाए:—

"मरते समय मनुष्य को दीपक दिखाया जाता है कि उसकी सद्गति हो जाए अथवा उसे मुक्ति मिल जाए। यदि केवल दीपक से ही सद्गति हो जानी होती तो बाद में उसके नाम पर दान-पुण्य करने की क्या ज़रूरत थी। दान-पुण्य इसीलिए करते हैं कि मनुष्य को भोजन मिले और वह भूखा न रह जाए। कई बार ऐसा भी होता है कि श्वास निकल जाते हैं और दीपक नहीं दिखाया जा सकता। तो उस के विषय में ऐसा कहा जाता है कि उसकी अकाल-मृत्यु हो गई। तब 'गया जी' में जाकर उस के नाम पिण्ड-संकल्प कराते हैं। इस का अर्थ यह हुआ कि या तो दीपक दिखाने से मुक्ति मिलती है अथवा मृत्यु के पश्चात् पिंड संकल्प कराने से ही सद्गति प्राप्त होती है।

वास्तविक रहस्य यह है कि मुक्ति वाला दीपक मनुष्य के अन्दर है। बाहरी दीपक उसका प्रतीक है अर्थात् आन्तरिक दीपक जलाने के लिए समय के सन्त सद्गुरु से नामोपदेश लेकर उसकी कमाई करो। सहज-समाधि (भजनाभ्यास) द्वारा आन्तरिक दीप जलाओ। बाहरी दीपक दिखाने का प्रयोजन केवल इतना ही है कि मृत्यु समय यदि ख़्याल किसी बाहर की वस्तु में चला गया है तो बाहर वाले दीपक को देखकर आन्तरिक दीपक का ध्यान आ जाए। वह बाह्य पदार्थों से अपनी सुरति को समेट कर भजनाभ्यास में लगाए। जिसने योगाभ्यास की युक्तियां ही नहीं सीखीं, सद्गुरु से नामोपदेश ही नहीं लिया, वह भला इस रहस्य को कैसे जान सकता है। प्राचीन ऋषियों ने इस परम्परा को इसी उद्देश्य हेतु ही प्रचलित किया था परन्तु अब तो केवल यह साधारण प्रथा ही बन गई है कि

यदि मृत्यु समय श्वास निकलने से पहले दीपक दिखाया गया तो सभी यही समझते हैं कि उसे मोक्ष मिल गया।

मृत्यु के पश्चात् ही मोक्ष मिल सकता है यह सर्वथा असत्य तथा अज्ञानता है। यदि केवल दीपक दिखाने से ही मोक्ष मिल जाता तो भजनाभ्यास, व्रत, दानादि कर्म करने की कोई आवश्यकता न पड़ती। सभी इसी प्रथा के अनुसार ही मोक्ष प्राप्त कर लेते। मोक्ष तो जीवन काल में ही इच्छाओं वासनाओं पर काबू पाकर भजनाभ्यास की कमाई से आत्म-साक्षात्कार कर प्राप्त हो सकता है। वास्तविक मोक्ष भी इसी का नाम है और जीवन्मुक्त भी वही मनुष्य है जिसने जीवनकाल में आन्तरिक ज्योति का साक्षात्कार कर लिया।

प्राचीन ऋषि मुनियों ने क्या ही सरल उपाय जीव को समझाने के लिये बताए हैं। परन्तु दुःख है कि दुनिया के लोगों ने इस का मतलब कुछ और ही समझ लिया है। जब तक अपने घट का प्रकाश जिसे 'शिव नेत्र' 'दिव्य दृष्टि' भी कहते हैं—इसे न देखेगा तो मोक्ष की प्राप्ति भी कदाचित् न होगी।

इसीलिए महापुरुष निरन्तर सदुपदेशों से जाग्रत करते हैं कि मनुष्य अपने कर्त्तव्य को पहचाने। सद्गुरु के उपदेश से भजनाभ्यास की कमाई करके अपने घट में आत्म-ज्योति का दीपक प्रज्वलित करे और मृत्यु समय उस दीपक में अपनी सुरति लगाए ताकि बिना उच्च गति के मृत्यु न हो पाए। यही महापुरुषों के उपदेशों का वास्तविक रहस्य है।"

टल की संगत ने बाहर से आने वाली संगत की बहुत ही प्रेम तथा हित चित्त से सेवा की। टल के मुख्य भक्तों के नाम जो बाद में परिवार सहित श्री दरबार में शरणागत हो गये थे सीमाप्रान्त के शरणागतों में ही उनके नाम दिए जा चुके हैं। इन के अतिरिक्त और भी काफ़ी भक्त थे जिन्होंने बड़े उत्साह के साथ सेवा की। अढ़ाई मास के पश्चात् भी टल की संगत आप के बाहर पधारने के लिए प्रसन्न न थी। परन्तु आपने इन्हें रोता हुआ छोड़ कर परमार्थ के काम के लिए पंजाब

की ओर कृपा की। टल से पंजाब के स्थान भखड़ेवाली व चकबन्दी की तरफ़ कृपा फ़रमाई। यहाँ कुछ दिन संगत को कृतार्थ करते रहे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी सिन्ध की संगत को साथ लेकर आपके श्री दर्शन करने के लिए यहाँ पधारे और उन्होंने आपके श्री चरण-कमलों में सिन्ध में कृपा करने के लिए विनय की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने उनकी विनय स्वीकार करते हुए चकबन्दी से सिन्ध प्रदेश की ओर प्रस्थान किया।

सिन्ध में

सन् १९२९ में आप सिन्ध पधारे। सिन्ध प्रान्त में स्थान लक्खी ज़िला सक्खर तथा सिंध के कई अन्य स्थानों अर्थात् बीचांजी, कासिम, खानपुर के प्रेमी जनों को सुन्दर दर्शन दिये तथा उपदेशामृत की पावन गंगा में सबको स्नान कराया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने देखा कि सिन्ध में हमारे अनन्य प्रेमी के कर्मण्य जीवन का कितना अद्भुत प्रभाव पड़ा हुआ है। आप के आगमन से सिन्ध में नव-उल्लास छा गया। प्रेमी जन श्री पावन दर्शन के लिए दूर दूर से आते। न उन्हें रात्रि को विश्राम की चिंता थी न दिन के समय कार्य-व्यवहार की। चकोर की न्याईं इसी बाट में रहते कि कब श्री दर्शन खुलें और कब इन तृषित नयनों की प्यास बुझाएँ। उनके इस अगाध प्रेम को देखकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। जिस प्रेम-भक्ति का अमिय रस श्री तीसरी पादशाही जी ने लोगों को पिलाया, वह अनूठी मस्ती आपके सम्मुख छलकने लगी। प्रेमी जन श्री दर्शन में इतने मस्त हो चुके थे कि एक क्षण के लिए विलग न होना चाहते थे। परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) एक स्थान पर अधिक समय नहीं ठहर सकते थे। जब आप ने किसी अन्य स्थान की यात्रा के लिए लौटना चाहा तो सब प्रेमियों एवं संगत ने आप को वहीं रहने के लिए आग्रह किया। आप ने प्रवचन फ़रमाए— "क्या आप नित्य प्रति यहाँ हमारे दर्शन नहीं कर रहो हो?" आप का संकेत

निज-तद्रूप श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी की ओर था। ऐसा कह प्रेमियों को आश्वासन दिया कि हम पुनः सिंध शीघ्र लौट आएँगे। तब वहाँ से प्रस्थान किया।

अन्य स्थानों पर सत्संग प्रचार करते हुए आप चकौड़ी सन्त आश्रम में पधारे। गुरु-पूर्णिमा (व्यास पूजा) का पर्व मनाने के लिये स्थान स्थान से महात्मा जनों तथा जिज्ञासु प्रेमियों को चकौड़ी में आने का आदेश दिया। यहाँ सिंध की संगत श्री दर्शन करने के लिये आई। श्री चरणों में आकर उन्होंने देखा कि यहां तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के नाम पर उपासना की जाती है। उनके नाम पर सब कार्य हो रहे हैं। एक भक्त नेवंदराम ने शंका प्रकट की कि वे (श्री तीसरी पादशाही जी) तो अपने नाम पर सिन्ध में उपासना करवाते हैं। श्री वचन हुए—"किसके पास इतनी शक्ति है जो स्वयं ऐसा काम करे। वे तो हमारी आज्ञा से सब कुछ कर रहे हैं। इसमें शंका उत्पन्न करने की आवश्यकता नहीं, हमारी मौज ही ऐसी है।" वह प्रेमी क्षमा मांग कर बैठ गया। सिंध में जाकर वह पहले से भी अधिक पूर्ण श्रद्धा से सेवा तथा श्री प्रवचनों का अनुसरण करने लगा।

हज़ारों की संख्या में प्रेमी जन आकर श्री दर्शन का लाभ उठाने लगे। सारा दिन विशेष सत्संग तथा विचार विमर्श के लिये महात्मा जन व अधिकारी प्रेमियों को समय दिया जाता। रात्रि के आठ बजे से दो बजे तक सर्वसाधारण के लिये श्री अर्शाद व सत्संग होता। कभी कभी श्री मौज अनुसार प्रातः चार बजे तक सत्संग का कार्यक्रम बना रहता। श्री चरणों में अनेकों भक्त साधु वेष धारण करने के लिये विनय करते। आप अटूट श्रद्धावान् तथा अचल-निष्ठ प्रेमी को साधु वेष प्रदान करते। यह देखकर द्वेषी लोगों के मन में द्वेष की भावना भड़क उठी। वे मन ही मन सोचने लगे कि बिना किसी विज्ञापन अथवा समाचार के यहाँ इतने लोग कहाँ से आ रहे हैं तथा साधु वेष धारण कर विरक्त बनते जा रहे हैं। उन्हें यह कहां ज्ञान था कि शमा कभी परवानों को सन्देश नहीं भेजा करती कि मैं यहां रोशन हो रही हूँ। मुझ पर मिटने के लिये आओ। परवाने तो स्वयं

सदा शमा पर मर मिटने को उद्यत होते हैं। जैसे वर्षा ऋतु में पतंगे शमा के चारों ओर एकत्रित हुए दिखाई देते हैं, वैसे ही प्रेमी जन श्री चरणों में आ रहे थे। किसी ने पूछा—"यह इतने लोग कहां से आ रहे हैं?" आप ने प्रवचन किये—"श्री परमहंस दयाल जी की शक्ति है, उन्हीं के प्रवचनों की बरकत है।" अब ईर्ष्यालु लोगों से सहन न हो पाया। वे स्थान स्थान पर मनमानी चर्चा करने लगे। लंगर के लिये सुचारू व्यवस्था देखकर कोई कहता कि यह सन्त रसायनी हैं, कोई कहता इन के पास नोट बनाने की मशीन है परन्तु उनकी बुद्धि की पहुंच यहाँ तक न थी कि वे समझ जाते कि सन्त महापुरुष विश्व के स्वामी हैं। कईयों ने साधु बनने के विषय में विरोध प्रकट किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को उनकी क्या चिन्ता थी। जिस प्रकार सूर्य उदय होने पर घना घना अन्धकार स्वतः दूर हो जाता है ऐसे ही श्री प्रवचनों से अज्ञानी जीव सन्मार्ग प्राप्त कर रहे थे। कुछ महात्माओं ने श्री चरणों में इस विषय में विनय की तो श्री प्रवचन हुए:—

॥ दोहा ॥

निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥

अर्थात् निन्दक हमारी सेवा कर रहे हैं। इस ढंग से सच्चाई, ज्ञान, त्याग, वैराग्य की महत्ता एवं पावन यश वेग गति से फैलता है। इधर प्रेमियों की दशा यह थी कि साधु वेष धारण करने हेतु कई प्रेमी दो-दो दिन तक दण्डवत् किये रहते थे। आप उन में से कुछ एक को ही साधु वेष प्रदान करते जिसे अधिकारी व संस्कारी समझते। विनय पर विनय, आग्रह पर आग्रह का अद्भुत दृश्य ऐसा था:—

काफ़—करुणाभण्डारी जी कर दया,
दीन याचक आए द्वार उत्ते ।
असी जन्म जन्मान्तरां तों भटकदियां दे,

जगा देवो हुए भाग सुत्ते ॥
करके दण्डवत् भुलां बख़्शावंदे ने,
कदों नज़र मेहर दातार होवे ।
बणा के साधु ते मन नूँ साध देवो,
चरण कमलां च अर्ज़ स्वीकार होवे ॥

आप के सम्मुख जैसा भी व्यक्ति आता, उस के मनोभावों के अनुरूप ही प्रवचन फ़रमाते । शंकित हृदय वाले का समाधान श्री दर्शन तथा सत्संग से हो जाता । अन्तर्यामी, सर्वज्ञ, शक्तिमान् प्रभु के लिए यह कार्य तो स्वाभाविक था ।

एक बार एक व्यक्ति के मन में यह विचार आया कि संसार की झिलमिल को छोड़ कर विरक्त हो जाना बहुत कठिन है परन्तु इन महापुरुषों के पास तो सब त्यागी ही बनते जा रहे हैं । यह कैसी अजब लीला है । यह सब कुछ देखने के लिए वह सत्संग में पहुंचा । सत्संग का कार्यक्रम चल रहा था । सत्संग की समाप्ति पर आपने उस व्यक्ति का हाथ निज कर-कमलों में ले लिया । उस व्यक्ति ने हाथ में सोने की अँगूठी पहनी हुई थी । आपने फ़रमाया—"यदि हम कुछ दिन पश्चात् इस सोने की बनी हुई अँगूठी को मिट्टी की बनी हुई अनुभव करा दें तो तुम क्या करोगे ?" उसने उत्तर दिया—यदि यह मिट्टी की बनी हुई दिखाई देगी तो इसे फैंक दूँगा । श्री अर्शाद हुए कि इस प्रकार सत्संग के प्रभाव से व पूर्ण पुरुषों की संगति से ये दुनियावी झिलमिल जो सोने की तरह चमकती हुई दिखाई देती है वह गुरुमुखों को मिट्टी की तरह भासती है तो वे भला इस मिट्टी को कैसे ग्रहण करें । श्री अमृत प्रवचन सुन कर उस व्यक्ति की आँखों से मायावी पर्दा दूर हो गया । सत्संग व श्री दर्शन के प्रभाव से उस के मन में विचार शक्ति उत्पन्न हुई । उस ने श्री चरणों में विनय कर अपनी भूल को स्वीकार कर नाम-दीक्षा प्राप्त की । इसी प्रकार नित्य प्रति सत्संग की अमृत धारा में संगतों को स्नान करा श्री परमहंस दयाल जी की मौज को साकार रूप दिया जिस से सर्वसाधारण भी मालामाल हो गए ।

अब आप के श्री चरणों में पंजाब के अन्य आश्रमों के महात्मा जनों ने (जिन को पहले श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सत्संग उपदेश के लिये भेजा था) उन आश्रमों पर भी श्री दर्शन देकर कृतार्थ करने के लिये विनय की। आप ने उन की विनय स्वीकार कर १६२७ से १६२६ सन् तक दो वर्ष में पंजाब के कुछ आश्रमों पर कृपा की और कुछ नए आश्रमों का निर्माण कराने की आज्ञा दी। यह आश्रम थे:—भखड़ेवाली, ४५ चक, भूरेकी, पगाला, रसालेवाला, सालम, गंधोवाल, सतराह, कोटली मुहम्मद सदीक, हकल, बैक, वर्णेकी तारड़, कोटली सूरतमली, पत्थरी ताल, सद्गुरु नगर, (कबरा कृष्णपुरा) बसोली, पिपल भुट्टा, डेला चट्ठा, भाबड़ा, मिर्ज़ा कबरपट आदि स्थानों पर श्री दर्शन देकर तथा सत्संग-उपदेश द्वारा इन के भाग्य जगाए। आपके सम्मुख कई प्रेमी अपने मन में कई प्रकार के विचार लेकर आते। आप सत्संग-उपदेश स्वाभाविक ही ऐसा करते थे कि उन व्यक्तियों को मुंह से कुछ कहने का अवसर ही न मिलता अथवा जिस के दिल में जैसी भावना होती उसे वैसे ही पूरा कर देते।

कोटली मुहम्मद सदीक में एक बार किसी थानेदार के दिल में यह ख़्याल आया कि यदि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी गुरुवाणी को मानते होंगे तथा मेरे साथ अपने आप श्री प्रवचन करेंगे तो मैं मानूंगा कि ये पूर्ण सन्त-महापुरुष हैं। संगत के साथ वह भी श्री दर्शन के लिये आश्रम में पहुँच गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सत्संग किया। जब सत्संग कार्य समाप्त हुआ तो उस थानेदार को समीप बुला कर कहा—"आप थानेदार होकर क्या काम करते हो?" उस ने बड़े विनम्र भाव से उत्तर दिया कि श्री दाता दयाल जी! जो कार्य थानेदार का होता है, वही मैं करता हूँ। हमारा कर्त्तव्य है कि चोरों डाकुओं को पकड़ कर उन्हें दंड देना। आपने फ़रमाया—"यदि अन्य व्यक्ति अर्थात् सरकारी कर्मचारी भी चोरों के साथ मिला हुआ हो तो उसे क्या दंड देना चाहिये?" उसने उत्तर दिया कि जैसा दंड चोरों को मिलना चाहिये वैसा ही उसे मिलेगा। सरकारी नियमानुसार उसको किसी प्रकार से क्षमा नहीं किया जा सकता। आप ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"ठीक है, तो आप भी चोरों के साथ मिले हुए हो, आप अपना दण्ड स्वयं

बता दीजिये।" वह बेचारा घबरा गया और इतना कहने के लिये मन ही मन में सोचा कि मैंने तो आज तक कभी चोरी नहीं की। इतने में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं कृपा करते हुए फ़रमाने लगे—"इन्सान के अन्दर काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार ये पाँच चोर हैं। संकल्प-विकल्प इन की सेना है, मन इन सब का सरदार (डाकुओं का नेता) है, आप केवल चोरों से नहीं अपितु उन के नायक से मिले हुए हो। आप इन सब से मिलकर भी यह सोच रहे हो कि कभी चोरी नहीं की। यह तो प्रत्येक क्षण आप को धोखा दे रहे हैं। हम प्रकृति के सरकारी कार्यकर्त्ता हैं। हम आप को चेतावनी देते हैं कि इन से बच कर रहो, नहीं तो सच्ची सरकार के दण्ड के भागीदार बनोगे। गुरुवाणी का भी कथन है:—

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥

थानेदार गुरुग्रन्थ साहिब जी को मानने वाला था। श्लोक सुनते ही नतमस्तक हो श्री चरणों में क्षमा मांगी। अपने मन का सब भेद प्रकट कर श्री चरणों में गुरु दीक्षा के लिये विनय की। आप ने उसे नाम की दीक्षा देकर कृतार्थ किया। आप तो प्रत्येक क्षण परमार्थ हेतु लगा रहे थे। अपने प्रवचनामृत द्वारा सब का कल्याण कर रहे थे।

एक बार पिपल भुट्टा ज़िला झंग में छः सात महात्मा जनों के साथ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने वचन फ़रमाये, "जो गुरु की आज्ञानुसार नहीं चलता उसकी भक्ति मनमति के अनुसार है। गुरु-आज्ञा मानना ही सेवक का परम कर्त्तव्य है। केवल प्रवचनों को श्रवण कर लेना ही गुरु-आज्ञा नहीं है। उस पर पूर्ण रूप से मनन करना गुरु-आज्ञा का वास्तविक अर्थ है। जो सद्गुरु की शरण ग्रहण करके भी आज्ञा में तत्पर रहना नहीं सीखा तो उसका जीवन आनन्दमय कैसे बनेगा? जो गुरु की आज्ञा में बंधा हुआ है वह निर्बन्ध हो जाएगा। जो गुरु की आज्ञा के बंधन से आज़ाद होना चाहता है वह मन के बन्धन में है। जो मन के बन्धन में बँध कर निर्बन्ध होना चाहता है वह बन्धन-मुक्त कदापि नहीं हो सकता। जो

गुरु की आज्ञा नहीं मानता उसे पछताना पड़ेगा। सन्त दादू दयाल जी भी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

सतगुरु बरजै सिष करै, क्यों करि बंचै काल ।
दह दिसि देखत बह गया, पानी फोड़ी पाल ॥

जिस काम के लिए सद्गुरु मना करें और शिष्य वही काम करे तो वह काल से कैसे बच सकता है। जिस प्रकार बाँध टूटने पर पानी दसों दिशाओं में फैल जाता है, इसी प्रकार वह जहाँ भी जाएगा काल की परिधि वहाँ होगी। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है:—

गुरु माथे से उतरे, शब्द विहूणा होय ।
ताको काल घसीटि है, राख न सकै कोय ॥

प्रत्येक गुरुमुख का यही कर्त्तव्य है कि गुरु-आज्ञा को हृदय में धारण कर उस पर मनन करे। यही गुरुमुख का निजी कर्त्तव्य तथा वास्तविक लक्ष्य है।"

इन स्थानों के भ्रमण के मध्य में आपने मध्य प्रदेश में भी पदार्पण किया। १९२९ में आप केवल महात्मा सत् विचारानन्द जी को साथ लेकर ग्वालियर राज्य में पधारे। यहाँ पर श्री आनन्दपुर की भूमि के कुछ भाग का सर्वेक्षण कर शीघ्र ही यहाँ से लौट गये।

जनवरी १९३० में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी खीवड़ा नमक मंडी तहसील पिण्डदादनखाँ ज़िला जेहलम में विराजमान थे। सीमाप्रान्त की काफ़ी संगत श्री दर्शन के लिये वहाँ आई हुई थी। उन में मुख्य भक्त निम्नलिखित थे—श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी, महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा योग प्रकाशानन्द जी, महात्मा योगात्मानन्द जी, महात्मा ध्यान योगानन्द जी, महात्मा शान्तात्मानन्द जी, (ये सब उस समय भक्त वेष में थे) भक्त धर्म जस जी व कुछ अन्य प्रेमी भी थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही

जी ने इन्हें अपने पास बुलाकर फ़रमाया कि ग्वालियर रियासत में एक आश्रम बनाना है, जहाँ पर गुरुमुखों का निवास होगा। इस समय वहाँ जंगल ही जंगल होगा। कौन कौन वहाँ सेवा के लिये जाना चाहता है। इन सब सेवकों ने श्री मौज को स्वीकार किया। आप ने फ़रमाया कि अच्छी तरह सोच लो। वहाँ जंगल में कई तरह के कष्ट सहन करने पड़ेंगे। सब ने प्रार्थना की प्रभो! आपकी प्रसन्नता के लिये हमें सब कुछ स्वीकार है। इस के अतिरिक्त अन्य दस-बारह परिवारों ने भी श्री चरणों में शरणागति प्राप्त की तथा ग्वालियर आने के लिये श्री आज्ञा माँगी। इस तरह से बीस परिवार उस समय ग्वालियर जाने को तैयार हो गये। आप ने सब को फ़रमाया—अच्छा तैयार रहो। जब जाना होगा, सूचित किया जावेगा।

महात्मा शान्तात्मानन्द जी व भक्त धर्म जस जी को ज़मीन का निरीक्षण करने के लिये भेजा और फ़रमाया कि ज़िला गुना तथा ईसागढ़ के पास की ज़मीन को भी देख लेना। जब यह दोनों ग्वालियर रियासत के जंगलों में पहुँचे तो इस निर्जन घने जंगल को देखकर हैरान हो गए कि इस धरती को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कैसे योग्य समझा है। इस धरती को उपजाऊ कैसे बनाया जाएगा। इस कठोर तथा पथरीली भूमि को सरकार भी उपजाऊ बनाने में असमर्थ है।

ज़िला ग्वालियर, शिवपुरी तथा ज़िला गुना की सब ज़मीन (चक) जो बिकाऊ थी, ग्वालियर राज्य के कर्मचारियों ने इन को दिखाई। कहीं पहाड़, कहीं पत्थर, कहीं घने बन तथा पानी के न होने का सब वृत्तान्त श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में लिख दिया। वहां से कृपा-पत्र आया कि सब ज़मीन छोड़कर केवल ईसागढ़ के समीप का वन्य प्रदेश (जहाँ आजकल श्री आनन्दपुर है) देखो। जब ये दोनों भक्त इस वन्य-प्रदेश में पहुँचे तो यह स्थान उन्हें बिल्कुल पसन्द न आया, क्योंकि यहां पानी की एक बूँद भी न थी। ग्वालियर राज्य के कर्मचारियों ने कहा कि यहाँ राज्य की ओर से एक कुआँ खुदवा दिया जाएगा। महात्मा शान्तात्मानन्द जी व भक्त धर्म जस जी ने श्री आनन्दपुर की भूमि का भी सारा हाल

श्री चरणों में लिखा कि यहाँ जंगल ही जंगल है। पथरीली और बंजर भूमि है।
पानी भी नहीं है। ईसागढ़ यहाँ से तीन मील की दूरी पर है। इस से तो ज़िला
ग्वालियर तथा शिवपुरी की ज़मीन ही अच्छी है जहाँ उपज भी हो सकती है।
पानी की भी सुविधा है। शहर भी साथ में ही है। इन का पत्र श्री चरणों में
पहुँचते ही वहाँ से कृपा-पत्र आया कि श्री आनन्दपुर वाली जगह लेनी है। इस
जगह को लेने का निर्णय हो गया। राज्य कर्मचारियों से श्री आनन्दपुर, शान्तपुर,
कुलवार की सीमाबन्दी करवाई गई और श्री चरणों में विनय-पत्रिका लिखी गई कि
डिपॉज़िट के लिये धन-राशि किसी के हाथ ग्वालियर (लश्कर) भेजी जाये। तब
वहां से श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज व महात्मा ध्यान योग
आनन्द जी राशि (रक़म) लेकर ग्वालियर पहुँचे। महात्मा शान्तात्मानन्द जी व
भक्त धर्म जस जी भी ग्वालियर पहुँच गये। ४ अगस्त १९३० को डिपॉज़िट जमा
करवा कर इन तीनों जगह का अधिकार प्राप्त कर लिया। अधिकार प्राप्त करने के
बाद महात्मा शान्तात्मानन्द जी इस ज़मीन की देख रेख के लिये यहाँ रह गये।
शेष सब लौट गये और श्री चरणों में पहुँच कर सारा वृत्तान्त प्रस्तुत किया। इस
प्रकार इस ज़मीन पर अधिकार प्राप्त करने में सात मास लग गये। जो भक्त लोग
खीवड़ा मण्डी में स्वयं को श्री चरणों में शरणागत कर चुके थे उन के नाम श्री
आज्ञा भेजी गई कि ग्वालियर जाने को तैयार हो जाओ। १८ अगस्त सन् १९३०
को दो परिवार महात्मा योगात्मानन्द जी (भक्त वेष में) व भक्त धर्म जस जी लक्की
मरवत् से चल कर २१ अगस्त को यहाँ पहुँचे। उस के बाद यहाँ और भी भक्त
श्री आज्ञा से आए। सब के लिये यह अचम्भे की बात थी कि सन्त महात्मा इस
भूमि को कैसे आबाद करेंगे। यह अचम्भा आज कार्य रूप में बदल कर सब के
सामने प्रकट है।

४ अगस्त १९३० को तीन चक श्री आनन्दपुर, शान्तपुर व कुलवार खरीदे
गए थे। कुछ समय के पश्चात् सुखपुर, टकनेरी व दयालपुर भी ग्वालियर राज्य
से डिपॉज़िट जमा करवा कर इन के भी अधिकार प्राप्त कर लिए गए। इन सब
चकों की भूमि बंजर तथा अनुपजाऊ थी। इसके अतिरिक्त एक चक शक्करा जो

आबाद था उस को भी ग्वालियर राज्य से ख़रीदा गया ।

यहाँ पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (भक्त वेष में) को इन सब चकों का मुखिया बनाया और शरणागत परिवारों की ज़रूरत को पूरा करने का आदेश दिया । १६३१ सन् में आप भखड़ेवाली में विराजमान थे । वहाँ पर श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री आज्ञानुसार श्री दर्शन के लिये आये । यहां पर आपने इन को साधु वेष प्रदान कर इन का शुभ नाम श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी रखा । आप ने इन के ज़िम्मे काफ़ी सेवा लगाई हुई थी, जिसको इन्होंने सम्पूर्ण शक्ति से निभाया। आप बड़े प्यार से इन्हें फ़रमाते थे—"यह तो हैं ही बेअन्त । ये दरबार के सच्चे लाल हैं । हमारे दिल के टुकड़े हैं ।" यही नाम इन का आगे चल कर यथार्थ रूप से सिद्ध हुआ । इन की दयालुता का भी अन्त न रहा और महिमा का भी । इन की विनय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर में कृपा की ।

उस समय तक श्री आनन्दपुर में अभी थोड़ी सी ज़मीन को साफ़ कर घास फूस की झोंपड़ियाँ ही बनाई गई थीं । यातायात के साधन सुगम न थे और न ही शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति के यहाँ साधन सुलभ थे । वर्षा-ऋतु में ये झोंपड़ियाँ अत्यधिक वर्षा के कारण बह जातीं तथा तेज़ हवाओं से छतें उड़ जाती थीं । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख बाहर से आई हुई संगत ने इन कठिनाइयों के लिए विनय की । आपने सब को आश्वासन दिया कि धीरे धीरे यहां सब कुछ बन जाएगा, घबराने की जरूरत नहीं । इस प्रकार उनको आश्वासन देकर तथा कुछ दिन यहां श्री दर्शन देकर पुनः सत्संग कार्य के लिए लौट आए । आप सब स्थानों का परिभ्रमण कर पुनः चकौड़ी सन्त आश्रम में लौट आते थे । इस प्रकार आप मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश को कृतार्थ कर पुनः पंजाब में आये ।

अब नित्यप्रति शरणागतों की संख्या बढ़ती जा रही थी । उनकी विनय करने पर आप जिसको अधिकारी तथा योग्य समझते उसको साधु वेष प्रदान कर देते। आप की लीला मन, वाणी से परे है । आप क्या क्या करते थे इस का विशद

विवरण देना अत्यन्त कठिन है ।

पुनः आपने १९३३ में शरणागतों के आग्रह पर श्री आनन्दपुर में कृपा की। यहां पर आप ने (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) श्री दर्शन के लिए संगतों को आने के लिये आज्ञा दी। श्री दर्शन के लिये यहां संगतें आने लगीं। केवल श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के लिए एक पत्थरों का कमरा बनवाया गया था। शेष सब झोंपड़ियाँ थीं। उस समय एक कृषि विभाग के कृषि मंत्री (Agricultural minister) श्री बापू राव पुवाँर भी श्री दर्शन के लिये आया। उसने श्री चरणों में विनय की कि महाराज ! इस भूमि को तो सरकार भी उपजाऊ बनाने के लिये असमर्थ है और कई लोग भूमि ख़रीद कर असफल हो इसे छोड़ कर चले गए हैं। आप इसे कैसे आबाद करेंगे। बंजर भूमि, घना बन है। श्री प्रवचन हुए—"यहाँ पर ढाक के स्थान पर अमराइयाँ झूमेंगी। चारों ओर उद्यान ही उद्यान होंगे। चिकित्सालय, भव्य-भवन, पाठशाला तथा पक्की सड़कों का निर्माण होगा। यहाँ एक तालाब होगा जिसके जल को लोग शीशियों में भर कर ले जाएंगे। यह एक तीर्थधाम बनेगा। यहाँ और कई कुछ होगा।" ये प्रवचन सुन कर वह कृषि मन्त्री नतमस्तक हो गया। उसने मन ही मन सोचा कि सन्तों की लीला न्यारी है। उनके रहस्यों को बुद्धि द्वारा जानना कठिन है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने कालान्तर में इन श्री वचनों को साकार रूप दिया और वर्त्तमान समय तक युग पुरुष समयानुसार महान् विभूतियाँ उन श्री वचनों को साकार रूप दे रही हैं। आप ने श्री आनन्दपुर में कुछ समय गुरुमुख शरणागतों को श्री दर्शन से कृतार्थ किया। श्री आनन्दपुर निवासी सेवकों को परिश्रम करके इसे आबाद करने की आज्ञा प्रदान कर स्वयं सत्संग उपदेश के लिए प्रस्थान किया। श्री आनन्दपुर का सम्पूर्ण हाल 'श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम' के प्रकरण में दिया गया है।

आप एक वर्ष में कितने स्थानों में विराजमान होते, इस कौतुक को शब्दों में बन्द नहीं किया जा सकता। कई बार आप मौज वश दो-चार मास भी एक स्थान पर ठहर जाते और कई बार चार मास में सम्पूर्ण पंजाब तथा सीमाप्रान्त,

उत्तर प्रदेश (जहां पर इस सम्प्रदाय के आश्रम स्थापित थे) को कृतार्थ कर देते। इन सब का मुख्य केन्द्र चकौड़ी सन्त आश्रम ही था जहां पर सब स्थानों का परिभ्रमण कर आ जाते थे।

एक बार आप इस आश्रम की हवेली जो चकौड़ी स्थान पर सत्संग के कमरे के आगे बनी हुई थी वहां पर टहल रहे थे। महात्मा रोशनानन्द जी व कुछ अन्य महात्मा जन भी आप के साथ थे। आप सत्संग उपदेश द्वारा यह समझाने की कृपा फ़रमा रहे थे कि भक्ति-मार्ग में मनुष्य किस प्रकार शीघ्र उन्नति कर सकता है। आप की दृष्टि धरती पर पड़े हुए कुछ गेहूँ के दानों पर पड़ी। आप ने फ़रमायाः—

"समय के सन्त सद्गुरु की यही विशेषता होती है कि वह प्रकृति की किसी वस्तु को लक्ष्य बना कर ऐसे सरल ढंग से जीवों को समझाने की कृपा करते हैं कि साधारण मनुष्य भी सरलता पूर्वक समझ जाते हैं। आपने धरती पर पड़े हुए कुछ दानों की ओर संकेत कर के साथ वाले महात्मा जनों को फ़रमाया कि अब देखो, ये थोड़े से गेहूँ के दाने देखने में कितने तुच्छ हैं और यहाँ से कितने आदमी गुज़रे होंगे। उन की दृष्टि भी इन गेहूँ के दानों पर पड़ी होगी, परन्तु इन को तुच्छ जान कर किसी ने इन की ओर ध्यान ही नहीं दिया। यदि मनुष्य इन दानों को समेट कर उठा ले और ले जाकर लंगर के लिये रखे तथा इन्हें गेहूँ में मिला दे तो उस मनुष्य की भक्ति का क्या कहना। वह तो यथार्थ में हीरा बन जाएगा।

पुनः फ़रमाया कि इसी प्रकार गुरुमुख जन जितनी श्री दरबार के लिए अधिक हित-चिन्ता (ख़ैरख़्वाही) करेंगे उतनी जल्दी ही भक्ति-पथ में उन्नति करेंगे। श्री दरबार में प्रत्येक गुरुमुख सेवक हृदय से इसे अपना घर समझे। जैसे अपने घर को या अपनी वस्तुओं को सदा सम्भाल कर रखा जाता है, उसी प्रकार श्री दरबार की प्रत्येक वस्तु को अपना घर समझ कर उसकी सम्भाल करे। इस में तनिक भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। यदि एक बार ग़फ़लत की तो मन इसे बार बार धोखा दे कर अवनति की ओर ले जाएगा। श्री दरबार के साथ सहानुभूति रखना

अपने साथ सहानुभूति रखना है। इस तरह से जीव भक्ति मार्ग में शीघ्र ही उन्नति कर सकता है। सद्गुरु के वचन तथा सद्गुरु के उपदेश ही गुरुमुख की अपनी पूँजी हैं। यही उपदेश ही समय समय पर जीव को गिरावट की ओर जाने से बचाते हैं। समय अनुसार सत्संग उपदेश से चैतन्य करते रहते हैं।" महात्मा रोशनानन्द जी श्री वचनानुसार उन गेहूँ के दानों को इकट्ठा कर लंगर में दे आए।

कितनी सहानुभूति है सन्त-सत्पुरुषों को जीव के साथ। समय समय पर जीव को सावधान करते रहना, उनके अवगुणों को न निहारते हुए सदा अपनी कृपा-वृष्टि करना तथा काल माया के चक्र से बचाने के लिए वे धुरधाम से मानव-वेष धारण कर अवतरित होते हैं। फिर हम अधम जीवों के लिए कितने कितने कष्ट सहन कर सन्मार्ग पर लगाते हैं। निरन्तर सर्दी, गर्मी, वर्षा इत्यादि सब कुछ सहन कर के वे सर्वदा परमार्थ पथ पर निरत रहते हैं। उन्हें अपने शारीरिक कष्टों की तनिक भी परवाह नहीं होती। उन के एक एक वचन में कितना रहस्य छिपा हुआ होता है। फिर भी वे दिन रात आठों याम वचनामृत की वृष्टि करते ही रहते हैं ताकि जीव जो जन्म-जन्मान्तरों से काल-माया के चक्र में आया हुआ है वह इन बन्धनों से मुक्त हो जाए। अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त कर आनन्द तथा शान्ति प्राप्त करे। यही समयानुसार सन्त महापुरुषों के अवतरण का मुख्य उद्देश्य होता है परन्तु वे नर-लीला में हमें साधारण प्रतीत होते हैं।

आप १६३१ सन् से १६३४ सन् तक सम्पूर्ण उत्तरप्रदेश, सीमाप्रान्त तथा पंजाब को श्री पावन वचनामृत द्वारा कृतार्थ करते रहे। इसी बीच सन् १६३४ में आप ने एक बार सिन्ध से श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी) को चकौड़ी सन्त आश्रम में बुलवाया और उन्हें फ़रमाया कि श्री आनन्दपुर का प्रबन्ध भी आप ने ही करना है। श्री आज्ञा पाकर श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज श्री आनन्दपुर में आए और कुछ समय यहां रह कर प्रबन्ध करके पुनः श्री आज्ञा मिलने पर सिन्ध लौट गये। सिन्ध में तो श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज प्रत्येक प्रेमी के हृदय पर समासीन

थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने प्रथम बार सिन्ध में प्रेमियों को फ़रमाया था कि हम पुनः सिन्ध में श्री दर्शन देंगे। अतः उन प्रेमियों की प्रार्थना को स्वीकार कर पुनः १९३४ में सिन्ध में कृपा फ़रमाई।

आप इस बार अधिकतर श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी से ही सत्संग करवाते थे परन्तु कभी कभी जब आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) मौज में आते तो छोटी छोटी बातों पर भी कितने ही रहस्यमय वचन फ़रमाते, जिन्हें श्रवण कर प्रेमीजनों के हृदय पुलकित हो उठते। ऐसे ही एक बार आपने महात्मा सुखात्मानन्द जी के विषय में भी रहस्यमय वचन फ़रमाए जिससे कि महात्मा सुखात्मानन्द जी के भी ज्ञान-चक्षु खुल गए और अन्य महात्मा जनों को भी सन्त महापुरुषों के सुखदायी एवं कल्याणकारी श्री वचनों को सुनने का अवसर मिल गया। महात्मा सुखात्मानन्द जी ने अपने इस वृत्तान्त का वर्णन इस प्रकार किया है:—

अभी मैं भक्त वेष में घर में ही रहता था। मेरे बड़े भाई महात्मा निजानन्द जी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के अत्यन्त श्रद्धालु तथा प्रेमी थे, परन्तु वे दैहिक रूप से सूरदास (नेत्रहीन) थे। जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने स्थान लक्खी ज़िला सक्खर (सिन्ध) में शहर वाले आश्रम में कृपा की तो मैं अपने बड़े भाई साहिब जी के आग्रह पर उनके साथ श्री दर्शन के लिए आश्रम पर गया। जब मैंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मनोहारी दिव्य छटा को निहारा तो मुझे अपनी सुधि बुधि ही न रही। श्री दर्शन कर सत्संग के पश्चात् मैं अन्य भक्त जनों की भाँति लंगरादि की सेवा में लग गया। मेरे मन में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों का प्रेम तरंगित हो उठा। मैंने अपने बड़े भाई महात्मा निजानन्द जी को आग्रह पूर्वक कहा कि मुझे भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से साधु वेष दिलाइये। पहले तो मेरे भाई साहिब जी ने मेरे साथ बहुत से प्रश्न किए कि संसार त्यागना कोई आसान काम नहीं। यहां अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है आदि आदि। लेकिन मैंने एक ही उत्तर दिया कि श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा से मन स्वयं मर

जाता है। मेरी अचल निष्ठा को देख कर भाई साहिब जी ने इस विनय को श्री चरणों में पहुँचाने के लिए मुझे विश्वास दिलाया।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इसी आश्रम के चौबारे में विराजमान थे। श्री चरणों में कुछ महात्मा जन भी बैठे हुए थे। इधर मेरे भाई साहिब जी ने मुझे लंगर से बुलवा लिया और उधर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में यह विनय कर दी कि प्रभो ! मेरा छोटा भाई आप के श्री चरणों में रह कर साधु वेष में जीवन पर्यन्त श्री दरबार की सेवा करना चाहता है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने ज्यों ही श्री प्रवचन फ़रमाने आरम्भ किये तो मैं अपने भाई के सन्देश अनुसार चौबारे पर पहुँच कर दण्डवत् कर उठ कर एक ओर दीवार के साथ खड़ा हो गया। मैंने सुना कि श्री सद्गुरुदेव जी फ़रमा रहे थे—"महात्मा निजानन्द जी ! क्या तुम्हारा छोटा भाई भी सूरदास (नेत्रहीन) है ?" महात्मा जी ने उत्तर दिया—महाप्रभु ! उस की आंखें ठीक ठाक (सुजाखा) हैं। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सब साधु महात्मा जनों से मौज वश पूछा कि क्या आप सब ने इस के छोटे भाई को देखा है, वह सूरदास है या सुजाखा ? सब महात्मा जनों ने विनय की कि प्रभो ! वह लंगर में बड़े हित चित्त से सेवा करता है तथा वह सुजाखा है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जो ने फ़रमाया कि महात्मा निजानन्द जी ! तुम यह बताओ कि तुमने उसे भक्ति पथ पर लगाया है या उसने तुम्हें रास्ता दिखाया है। महात्मा जी ने विनय की कि प्रभो ! वह भूला हुआ था। आप की कृपा से वह मेरे साथ श्री दर्शन के लिये आया और उस ने इस मार्ग को देखा। आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) ने फ़रमाया कि जब वह रास्ता भूला हुआ था और तुम्हारे द्वारा ही उसे ज्ञान प्राप्त हुआ तो वह आँखों वाला कैसे हुआ। क्योंकिः—

होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ पाइ ॥

यदि वह आँखें रखता तो रास्ता क्यों भूलता। अब उसे आँखें मिलेंगी। पुनः आप ने फ़रमाया कि सभी महात्मा जन गुरुवाणी का यह शब्द पढ़ोः—

अंधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ॥
अंधे सेई नानका खसमहु घुथे जाहि ॥

देह की आँखों से केवल माया के स्थूल पदार्थ ही देखे जा सकते हैं। ज्ञान-चक्षु (अन्दर की आँख) के मिल जाने पर ही जीव संसार के पदार्थों को यथार्थ रूप में देख सकता है। बाहर की आँख से अन्तरीव दृश्य नहीं देखे जा सकते। इस प्रकार श्री प्रवचन फ़रमाते हुए श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने पुनः सब महात्मा जनों को पूछा कि अब बताओ—महात्मा निजानन्द नेत्रों वाला है या कि उस का छोटा भाई भक्त मेहरचन्द। सब ने विनय की—प्रभो! महात्मा निजानन्द जी को ज्ञान-चक्षु प्राप्त हो चुके हैं। अतः वास्तविक अर्थों में वही नेत्रों वाला है।

श्री प्रवचनों की समाप्ति पर भक्त मेहरचन्द जी ने दण्डवत् वन्दना कर श्री चरणों में शरणागति तथा साधु वेष धारण करने के लिये विनय की। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने साधु वेष देने के लिए कई बार भक्ति-पथ की रुकावटों के विषय में प्रवचन फ़रमाए परन्तु इन के दृढ़ संकल्प को देखकर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने शरणागति के कुछ समय पश्चात् इन्हें साधु वेष देकर इन का नाम महात्मा सुखात्मानन्द जी रखा। महात्मा निजानन्द जी के एक और छोटे भाई थे। उन्होंने भी इन के साथ ही इस मार्ग को ग्रहण किया तथा श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने उन को भी साधु वेष देकर उनका नाम महात्मा नित सुखानन्द जी रखा। यह दोनों भाई गुरु-दरबार की सेवा हित चित्त से करने लगे।

इसप्रकार आप ने कई बार अपनी मौज अनुसार सिन्ध में श्री प्रवचन फ़रमा कर प्रेमी जनों को कृतार्थ किया। आप ने कई प्रेमियों को यहाँ गुरु-दरबार में शरणागति के लिए श्री आज्ञा दी। कितने ही भक्त जनों को उन की विनय पर उन्हें अपनी कृपा से साधु वेष प्रदान किया।

श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी ने सिन्ध की संगतों को भक्ति के अनुपम धन से मालामाल कर दिया था। प्रेम-भक्ति में सभी प्रेमी रंगे जा चुके थे। दीपावली का शुभ पर्व भी समीप था। प्रेमियों ने श्री चरणों में दीपावली का पर्व सिन्ध

में ही मनाने के लिए विनय की। उनकी विनय को स्वीकार कर आपने (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) दीपावली का शुभ पर्व सिन्ध में ही किया। आप के आगमन से और भी सैंकड़ों प्रेमी बन गए। सिन्ध में तो मानो प्रेम रूपी अमृत दिन रात ही बरस रहा था। प्रेमी जन सदा श्री दर्शन के लिए आतुर रहते। कई तो इतने मतवाले हो जाते कि जब आप सैर के लिए सायं समय बाहर जाते, साथ में श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज भी होते तो कई प्रेमी उन के नाम पर ही जयकारे बोलने आरम्भ कर देते। आप उन्हें इस मस्ती में डूबा हुआ जब देखते तो मन ही मन अत्यधिक प्रसन्न होते। सिन्धी लोगों ने आप का भाव भीना स्वागत किया। आपने कुछ समय तक सिंध को अपने पावन श्री वचनामृत तथा श्री दर्शन से कृतार्थ किया। पुनः वहां से आप ने अन्य स्थानों के भाग्य जगाने के लिए प्रस्थान किया।

इसके पश्चात् आपके श्री चरणों में श्री आनन्दपुर के प्रेमियों ने श्री दर्शन देने के लिए विनय पत्रिकाएँ भेजीं। उनकी विनय को स्वीकार कर आपने अप्रैल सन् १९३५ के आरम्भ में यहाँ कृपा की। अब तक यहाँ पर श्री आनन्दपुर निवासियों ने काफ़ी ज़मीन उपज योग्य भी बना ली थी। इस बार वैशाखी का पर्व श्री आनन्दपुर में मनाया गया। सीमाप्रान्त तथा पंजाब से संगतें श्री दर्शन के लिए आईं। उस समय पंजाब तथा सीमाप्रान्त की संगतों को श्री आनन्दपुर स्थान पर पहुँचना ऐसे लगता था जैसे भारत से कोई विदेश जा रहा हो; क्योंकि यातायात के साधन सुलभ न थे। कहीं बस पर जाना पड़ता था तो कहीं बैलगाड़ी पर। यहाँ तक कि कभी कभी तो पैदल यात्रा भी करनी पड़ती थी। चकों पर भी कुछ भूमि के भागों को साफ़ कर उन पर घास फूस के टपरे बना दिए गए थे। इसी पर्व पर सिन्ध से श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज भी आए। आपने उन को जाने से पहले श्री आज्ञा फ़रमाई कि अपने अधिकृत सम्पूर्ण क्षेत्र का निरीक्षण कर लो। आप भविष्य की जानते हुए फ़रमा रहे थे। क्योंकि श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज ने बाद में सम्पूर्ण श्री आनन्दपुर का निर्माण करना था। उन्होंने श्री आज्ञानुसार ऐसा ही किया।

पंजाब की संगतों ने श्री चरणों में पंजाब जाने के लिए विनय की। आप जब पंजाब के लिए विदा होने लगे तो श्री आनन्दपुर के निवासी प्रेमियों ने कार को घेर कर कार के आगे दण्डवत् कर दी। श्री आनन्दपुर के प्रेमी यह चाहते थे कि आप सदा हमारे पास रहें। आपने उस समय एक पलंग मंगवाया तथा उस पर विराजमान हो गए। सब प्रेमी पलंग को घेर कर खड़े हो गए। इधर ड्राईवर हरनाम सिंह (महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी) श्री आज्ञानुसार कार को फाटक (Gate) के पास ले गए। उधर आप प्रेमियों को श्री दर्शन से निहाल करने लगे। सभी प्रेमियों ने इस दर्शन रूपी स्वाँति अमृत को पिया। उस समय श्री प्रवचन हुए—"हम ने अब एक स्थायी स्थान पर विश्राम करना है। अब हम सड़क के मध्य में खड़े हैं। हमारा निवास स्थान भी मध्य में है और होगा।"

अर्थात् आप यह सांकेतिक भाषा में फ़रमा रहे थे कि सद्गुरु का सिंहासन जीव के शरीर के मध्य में हृदय स्थान पर स्थित है। दूसरा भक्ति परमार्थ का केन्द्र 'श्री आनन्दपुर' भारत के मध्य में मध्य प्रदेश में है इसलिए सब ओर से लोग यहाँ से ज्ञान लाभ प्राप्त करने में समर्थ होंगे। आप ने प्रवचन फ़रमा कर प्रेमियों को पलंग फाटक के पास ले जाने का आदेश दिया। फाटक के पास पहुँच कर कार पर विराजमान हुए और श्री आनन्दपुर को अन्तिम बार अपने पावन श्री दर्शन से कृतार्थ कर आप ने पंजाब के लिये प्रस्थान किया तथा चकौड़ी सन्त आश्रम में लौट आये।

कुछ झलकियां

१. एक बार आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) बैकी खुरद ज़िला गुजरांवाला से किसी दूसरे गांव में संगत की विनय पर उन के साथ जा रहे थे। मार्ग में एक जंगल था। साथ में महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी भी थे एवं दस बारह अन्य महात्मा भी थे। हरी हरी घास तथा स्वच्छ वातावरण को देख कर आपने वहां घोड़ा रोक लिया और घास पर आसन लगा कर बैठ गये।

समीप ही नहर सेम की खुदाई हो रही थी। उस के लिए पच्चास साठ मज़दूर किसी अन्य प्रान्त से आए हुए थे। वे विश्राम के लिए अवकाश में भोजनादि कर रहे थे। थोड़े समय के पश्चात् वे स्वयं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के समीप आ गए। आपने उनकी भाषा में अर्शाद आरम्भ कर दिए। सभी महात्मा जन यह देख कर चकित हो रहे थे कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी किस भाषा में सत्संग कर रहे हैं और उन्होंने यह भाषा कहां से सीखी है। भक्त महात्माओं को उनकी भाषा बिल्कुल ही समझ में न आ रही थी और वे मज़दूर सत्संग प्रवचन सुन कर मस्ती में झूम रहे थे। परा-विद्या के स्वामी सन्त-महापुरुषों के लिए कौन सा रहस्य गुप्त होता है। वे तो सर्व विद्या सम्पन्न परिपूर्ण पुरुष होते हैं। थोड़े समय के पश्चात् उन मज़दूरों ने जयकारों की ध्वनि से नभ को गुँजा दिया और श्री दर्शन पाकर धन्य-धन्य हो गए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उन्हें सत्संग-उपदेश का अमृत पिलाकर पुनः आगे चल दिये। महात्मा जनों ने परस्पर कहा कि इनका कोई पूर्व जन्म का सम्बन्ध है, जिस के लिये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं यहां पर ठहरे हैं।

२. भक्त थानाराम जी लक्की मरवत् ज़िला बन्नू के निवासी थे। एक बार अचानक वे बीमार हो गये। अत्यधिक चिकित्सा करने पर भी वे स्वस्थ न हो सके। रोग भयानक अवस्था में पहुँच गया। डाक्टरों ने निराशाजनक उत्तर दिया। भक्त थानाराम जी का कथन है कि जब उन्होंने अन्तिम श्वास में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का स्मरण किया तो क्या देखा कि श्वेत वस्त्र धारण किये हुये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी सुनहरी तख़्त पर विराजमान हैं और फ़रमा रहे हैं-"उठो! घबराओ नहीं। अभी आपने दरबार की सेवा करनी है।" मैं देखता ही रह गया, परन्तु न जाने वह सुनहरी तख़्त और दिव्य मूर्ति कहां लुप्त हो गई। ज्यों ही आँख खुली, परिवार वाले मुझे मृतक जानकर रो रहे थे और मैंने अपने आप को कुछ स्वस्थ पाया। धीरे धीरे पूर्ण स्वस्थ हो गया। पश्चात् में भक्त जी ने सोचा कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा से मैं स्वस्थ हो गया हूँ अब इस शरीर से गुरु-दरबार की सेवा करनी चाहिये। श्री वचनानुसार जीवन

बनाना ही गुरुमुख का धर्म है। पुनः वे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में सर्वस्व समर्पित कर शरणागत हो कर गुरु दरबार की सेवा करने लगे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इन्हें साधु वेष देकर इन का नाम महात्मा ध्यान युक्त आनन्द जी रखा।

३. एक बार पिपल भुट्टा भंग में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कुछ गुरुमुखों से श्री वचन फ़रमा रहे थे। इतने में एक भक्त जी भी श्री चरणों में उपस्थित हुए। भक्त जी ने नियम के विरुद्ध कोई कार्य किया था अतः वे श्री चरणों में पहुँच कर क्षमा मांगने लगे। अन्य भक्त जनों ने जब उसे क्षमा मांगते हुए देखा तथा साथ में उन्हें यह भी विदित हुआ कि इसने नियम तथा श्री मौज के विरुद्ध कोई कार्य किया है, इसीलिए ही क्षमा के लिए याचना कर रहा है तो उन में से सात-आठ भक्तों ने विनय की कि प्रभो! नियम के विरुद्ध कार्य करने पर कोई न कोई दण्ड अवश्य देना चाहिए ताकि कोई आगे से ऐसा न कर सके।

करुणागार श्री सद्गुरुदेव जी पहले पांच मिनट मौन रहे। पुनः उन से क्रमशः पूछने लगे कि इसे कौन सा दण्ड देना चाहिए। सब ने क्रम से अपनी अपनी बुद्धि अनुसार दण्ड बताया। किसी ने विनय की कि प्रभो! दो दिन यह अपनी सेवा के अतिरिक्त लंगर के सभी बर्तनों को साफ़ करे। एक ने कहा—दीन दयाल जी! बगीचे को पानी देने के लिए पूरा दिन इस से नल चलवाया जाए; किसी अन्य ने विनय की—महाप्रभु! इस से सारे आश्रम की सफ़ाई करवाई जाए। इस प्रकार क्रम से आठ भक्तों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुसार दण्ड नियुक्त किए।

क्षमाशील भक्त वत्सल प्रभु के हृदय से कृपा की लहर तरंगायित हुई। उन्होंने उन आठ भक्तों को एक ओर खड़ा कर दिया और नियम से विरुद्ध कार्य करने वाले भक्त को एक ओर खड़ा किया। पुनः उन आठ भक्तों की ओर संकेत कर फ़रमाने लगे कि तुम सब ने अपनी अपनी बुद्धि अनुसार दण्ड नियुक्त कर दिये हैं। अब केवल इतना बताओ कि इस उच्च दरबार की सेवा—जिस के लिए

देवी देवता भी तरसते हैं—अत्यन्त भाग्य के उदय होने पर ही मानव जन्म में प्राप्त होती है—उसे तुम सब दण्ड समझते हो—वह तो इन सब सेवाओं को प्राप्त कर भक्ति धन के हीरे लालों से मालामाल हो जाएगा तो उसे दण्ड किस बात का मिला ? सद्गुरु की सेवा तो अमूल्य देन होती है। बस ! आप सब की बुद्धि इसी परिधि में ही सीमित है कि सेवा को दण्ड समझ रहे हो।

मौज में आकर फ़रमाने लगे कि वह तो अपनी गलती पर पश्चाताप करता हुआ क्षमा याचना के लिए आया है। सत्पुरुष चूंकि दयालु होते हैं, वे जीव की तुच्छ गल्तियों पर ध्यान नहीं देते। जो नम्रता धारण कर दीन हीन बन कर क्षमा चाहता है—वे अपने करुणापूर्ण स्वभाव से उसे क्षमा कर देते हैं। अतः उसे क्षमा किया जाता है। इसके स्थान पर आप सब को यह दण्ड दिया जाता है—जिसे सत्पुरुषों के दरबार में वास्तव में दण्ड कहा जाता है कि आप सब जितने जितने दिनों के लिए जिसने उसे दण्ड देने का निर्णय दिया था—उतने उतने दिन तक किसी भी सेवा कार्य को हाथ न लगाएँ। भोजन भी तुम्हें बैठे बिठाए मिल जाएगा।

यह सुनकर सब के सब श्री चरणों में गिर पड़े—दण्डवत् वन्दना कर क्षमा मांगने लगे। क्षमाशील प्रभो कुछ समय मुस्कराते रहे—फिर फ़रमाने लगे—वास्तव में श्री दरबार का सब से अधिक दण्ड किसी को सेवा से वंचित कर देना है न कि उसे अत्यधिक सेवा प्रदान कर भक्ति धन से मालामाल कर देना। सेवा का अखुट खज़ाना पाकर वह तो निहाल हो जाएगा उसे कमी किस बात की। सेवा से ही मालिक प्रसन्न होते हैं—फिर अत्यधिक सेवा कर मालिक की प्रसन्नता से न जाने वह कितना धनाढ्य बन जाएगा—फ़कीरों के स्वभावानुसारः—

"आ जाएँ जब मौज में, कतरे से दरिया कर दिया।"

फिर सेवा तो धन ही ऐसा है जिसकी तुलना में संसार की समस्त ऐश्वर्य सम्पदा भी तुच्छ है। सभी भक्त जन पुनः पुनः क्षमा मांगने लगे तथा अपने कहे पर पछताने लगे। कृपासिन्धु प्रभु ने सब को क्षमा कर दिया। सत्य तो है कि

जीव की बुद्धि गूढ़ तत्त्वों को समझने की सामर्थ्य नहीं रखती। सत्पुरुष ही अवर्णनीय, अगम्य तथा अकथनीय हैं।

४. एक बार टेरी में कुछ प्रेमियों ने पानी की कठिनता का वर्णन करते हुए श्री चरणों में विनय-पत्र भेजा कि टेरी में कोई तालाब या कुआं नहीं है जिस से पानी सरलता से लिया जा सके। पहाड़ी के नीचे तोई नदी से पानी लाना पड़ता है। यदि श्री मौज हो तो पाइपों द्वारा पानी एकत्र कर एक तालाब बनवाया जाए, उसमें पानी जमा कर सुगमता से प्राप्त किया जा सके। कृपा-पत्र में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उत्तर दिलवाया और श्री प्रवचन फ़रमाए—"शायद आप को टेरी शीघ्र छोड़नी पड़े। हमने आप के लिए पहले से ही प्रबन्ध करवा दिया है।"

जीव बुद्धि भविष्य वाणी तथा महापुरुषों के संकेतों को कब समझ सकती है। समय पाने पर वे वचन सत्य होते हैं। यह प्रवचन देश विभाजन के विषय में संकेत दे रहे थे कि शायद आप को टेरी शीघ्र छोड़नी पड़े। साथ में यह प्रवचन भी हुए—"हमने आपके लिए पहले से ही प्रबन्ध करा दिया है।" इस में संकेत यह था कि श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम की स्थापना कर हमने गुरुमुखों प्रेमियों के लिए पहले से ही प्रबन्ध करा दिया है ताकि गुरुमुख प्रेमी अपने रुहानियत के पथ से भटक न जाएं।

लगभग साढ़े सोलह वर्ष श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सर्व साधारण को स्थान स्थान पर भ्रमण कर के सत्संग उपदेश से कृतार्थ किया। सन् १६३५ तदनुसार सम्वत् १६६२ को आप चकौड़ी सन्त आश्रम में विराजमान थे। यहां पर अपनी मौज के अनुसार सभी प्रचारक महात्माओं को तथा अन्य प्रबन्धकर्त्ता महात्मा जनों को बुला कर साढ़े चार मास यहीं रखा। महात्मा जनों की संख्या लगभग आठ-नौ सौ थी। श्री चरणों में संगतों ने कितने ही विनय पत्र महात्मा जनों को बुलाने के लिए भेजे, परन्तु आप ने किसी को भी जाने की आज्ञा न दी। इस मौज में बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ था। आप महात्माओं को आश्रम में रखकर उन के सम्मुख रुहानियत के रहस्य प्रकट करना चाहते थे तथा आप ने

ऐसा ही किया।

इस समय में कोई दिन ऐसा खाली न जाता जबकि श्री प्रवचन न होते। यही प्रवचन ही तो सेवकों की पूँजी होती है। जब भी महापुरुषों के प्रवचन याद आयें उन पर मनन किया जाए तो काल माया से त्राण पाया जा सकता है। इस प्रवचनामृत की वृष्टि में से दो-चार सत्संग प्रवचन यहां लिखे गये हैं जिन्हें पढ़ कर एवं मनन कर सभी लाभान्वित हों। एक दिन प्रवचन हुए:—

"कोई व्यक्ति जब किसी के घर अतिथि बन कर ठहरता है तो उस घर के निवासी उसका बड़ा सम्मान करते हैं। अच्छे अच्छे बर्तनों में भोजन परोस कर उसे खिलाते हैं। अच्छे से अच्छा बिस्तर उसे विश्राम के लिए देते हैं। स्वादिष्ट और उत्तम पदार्थ उसे खिलाए जाते हैं। प्रत्येक सेवन की आवश्यक वस्तुएं अतिथि के आगे लाकर रख दी जाती हैं। वह अतिथि भी अपने आपको इन वस्तुओं से न्यारा समझता हुआ किसी वस्तु में अपना दिल नहीं फंसाता। क्योंकि वह दिल में यह समझता है कि यह मेरा घर नहीं है और न ही यह वस्तुएं मेरी हैं। इसी लिये वह उस घर में सम्मान से रहता है और घर के मालिक भी बड़े हर्ष से उस का भाव भीना स्वागत कर उसे सहर्ष विदा करते हैं। यदि वही मनुष्य उस घर के सामान को देख कर उन पर मोहित हो जाए, उस घर के सामान को अपना समझने लगे और उन्हें अपने साथ ले जाने का प्रयत्न करे, या किसी भी वस्तु के लिए उस की प्रकृति उसे विवश करे तो उसका परिणाम यह होगा कि वही मनुष्य जिसे सम्मान मिलना था वह अपमानित किया जाएगा। अन्त में वे वस्तुएँ भी उससे छीन ली जाएंगी। अपमान उसे यूँ ही (मुफ़्त) सहन करना पड़ेगा। हाथ भी कुछ न आएगा। पुनः उस के हाथ पछताने के अतिरिक्त कुछ न रह जाएगा।

प्रायः देखा या सुना जाता है कि जब अतिथि दूसरे के घर को अपना घर न समझते हुए दो दिन निर्वाह करके वहां से चलने लगता है तो घर के मालिक उसे यही कहते हैं कि यह आपका अपना ही घर है जब भी आपका इधर आना हो तो इस घर को भी पवित्र कीजिएगा। परन्तु यदि अतिथि उस घर के सामान

अथवा किसी भी वस्तु को उठाकर अपने साथ ले जाने लगे तो फिर पता चलता है कि यह उसका अपना घर है या पराया ।

इस तरह सन्त महापुरुष कहते हैं कि संसार में अतिथि की तरह बन कर रहो। दुनिया के पदार्थ प्रयोग में लाओ, परन्तु इनके साथ दिल न लगाओ। बाल-बच्चों, परिवार का पालन-पोषण करो, परन्तु उन के मोह के ख़्याल दिल में एकत्र न करो। इनके साथ तो अस्थायी सम्बन्ध है। मालिक ने इस संसार रूपी घर में मनुष्य की प्रत्येक आवश्यक वस्तु को रखा है लेकिन तुम इनके मालिक नहीं हो। इन सब का मालिक कोई और है। यदि इन पदार्थों का मालिक बनने का प्रयत्न करोगे, इन सामानों के साथ लगाव रखोगे, मोह-ममता के विचार दिल में इकट्ठे करोगे तो इसका परिणाम यह होगा कि संसार से जाते समय बदनाम होकर जाओगे। सम्बन्धी व दुनिया के सामान मृत्यु समय तुम्हारे साथ नहीं जा सकते और इनके साथ लगाव की भी तुम्हें सज़ा चौरासी लाख योनियां भोगनी पड़ेंगी। धन का ख़्याल होने से सर्प की योनि मिलेगी। इसी प्रकार अन्यान्य योनियां मिलती हैं, जिन्हें भोगना पड़ेगा। दुनिया के सामान भी तुम से छीन लिये गये और सज़ा भी नीच योनियों के रूप में तुम्हें भोगनी पड़ेगी। यदि संसार में मेहमान की तरह रह कर दुनिया के सब सामान प्रयोग में लाओगे और किसी वस्तु के साथ दिल नहीं लगाओगे तो हँसते खेलते दुनिया से जाओगे। दुनिया से दिल लगा कर तो अन्त में यह हाल होता है कि:—

॥ दोहा ॥

दीन गँवायो दुनी संग, दुनी न चाली साथ ।
पाँव कुल्हाड़ा मारिया, ग़ाफ़िल अपने हाथ ॥

संसार में रहकर संसार से अलग हो कर रहना आसान नहीं है। इस का साधन समय के सन्त सद्गुरु ही जीव को बताते हैं। जिस मनुष्य ने भजनाभ्यास में अपनी सुरति को लगा लिया, जिस ने अपनी चित्त-वृत्ति को संयम में कर लिया, वही मनुष्य संसार में रहकर खाने-पीने की वस्तुओं को सेवन में लाता हुआ उन

में अपना दिल नहीं फँसाता। परिवार में रहता हुआ मोह के विचारों से बचा रहता है। इसलिये भजनाभ्यास करना प्रत्येक व्यक्ति के लिये बहुत आवश्यक है। भजन करने से ही मनुष्य संसार में निर्लिप्त रह सकता है।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री प्रवचन सत्यता और यथार्थ की कसौटी पर तुले हुए थे। अन्तिम समय तक वे परोपकार तथा परमार्थ के पथ पर आरूढ़ हो कर प्रवचन फ़रमाते रहे ताकि जीव इन पर चल कर अपना कल्याण कर सकें। एक दिन श्री प्रवचन हुये किः—

॥ शेयर ॥

सुबह होती है शाम होती है। उम्र यों ही तमाम होती है ॥

समय हर दशा में गुज़रा जा रहा है। इसी समय में जैसा भी काम कर लिया जावे मनुष्य को अधिकार है। समय यह किसी से नहीं कहता कि तुम इस समय यह काम करो या कोई अन्य काम मत करो। सूरज ने तो रोशनी देनी है चाहे उस में कोई ग्रन्थ पढ़ ले, चाहे कोई व्यवहार का काम कर ले, चाहे सो कर समय गुज़ार दे। काम का करना या न करना मनुष्य के अपने वश में है। इसी समय में गुरुमुख जन अपना परलोक सुधार लेते हैं और सुर्ख़रू हो कर संसार से मुख उज्ज्वल कर जाते हैं और मनमुख समय गँवा कर अपना नुकसान कर लेते हैं। मनमुख अपना सारा जीवन पेट के धन्धों में गुज़ार देते हैं और बिना रूहानी कमाई के खाली हाथ संसार से जाते हैं। परन्तु इसी समय में गुरुमुख भजनाभ्यास, सद्गुरु की सेवा तथा सत्संग का लाभ उठा कर अपने समय को सफल करते हैं। महापुरुष फ़रमाते हैं किः—

लख चउरासीह जोनि सबाई ॥ माणस कउ प्रभि दीई वडिआई ॥
इसु पउड़ी ते जो नरु चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइदा ॥
सोलहे म० ५

मनुष्य जन्म को इसीलिये श्रेष्ठ तथा उत्तम कहा गया है कि मनुष्य जन्म

में भजनाभ्यास और सत्संग सब ही काम हो सकते हैं। किसी अन्य योनि में ये काम नहीं हो सकते। जो लोग मनुष्य जन्म को पाकर अपना पूरा जीवन खाने-पीने और सोने में तथा मोह-ममता की पूर्ति में लगा देते हैं वे जीव अपने रास्ते से भूले हुए हैं।

जैसे दो मनुष्य किसी बाग़ की सैर के लिये गए। बाग़ के मालिक ने इनको एक घण्टा सैर की आज्ञा दी। उन में से एक ने तो उस समय में कुछ फल खा लिए और पेट भर लिया। दूसरा मनुष्य घण्टा भर वृक्षों व पौधों के पत्ते देखता व गिनता रहा। एक घण्टे के बाद बाग़ के मालिक ने दोनों को बाहर निकाल दिया। इस प्रमाण से स्पष्ट है कि जिस मनुष्य ने तो फल खाकर पेट भर लिया उसने समय का लाभ उठा लिया। इसके विपरीत जिस व्यक्ति ने केवल फूल, पत्ते, शाखाएँ गिनने में समय गँवा दिया उसे बाग़ के बाहर निकाल देने पर सिवाय पछताने के कुछ शेष न रह जाएगा क्योंकि उस ने वहाँ से कुछ प्राप्त न किया। इसी प्रकार मन की इच्छाओं को पूरा करना पत्ते गिनने के बराबर है। मनमति की कार्रवाई से मनुष्य की रूह को कोई लाभ नहीं। यदि शरीर का पालन-पोषण करके पूरी आयु उस में व्यतीत कर दी तो उसे क्या लाभ हुआ ? शरीर तो नाशवान् है। शरीर ने अन्त में एक दिन यहीं रह जाना है। वह कर्म जो रूह के काम आने वाले हैं उस की तरफ़ यदि मनुष्य ने ध्यान न दिया तो संसार से खाली हाथ जाएगा और नीच योनियों का शिकार होगा।

॥ दोहा ॥

आए हैं सो जाएंगे, राजा रंक फ़क़ीर।
इक सिंहासन चढ़ि चले, इक बांधे जात जंजीर ॥

दुनिया नाशवान् है। जो आया है उसने अवश्य ही एक दिन मृत्यु के मुँह में जाना है। मगर जाने जाने में अन्तर है। जो गुरुमुख हैं, जिन्होंने अपने जीवन को सद्गुरु की सेवा व भजनाभ्यास में लगा दिया वे उज्ज्वल मुख हो कर संसार से जाते हैं। सिंहासन पर चढ़ कर अर्थात् सम्मान के साथ जाते हैं।

जिन्होंने नाम व शब्द की कमाई नहीं की वे चौरासी लाख योनियों रूपी जंज़ीरों में बंधे हुए रोते हुए इस संसार से विदा होते हैं। इसलिये संसार में आकर गुरुमुखों वाला जीवन व्यतीत करो। संसार से उज्ज्वल मुख होकर जाओ ताकि तुम्हारा संसार में आना सफल हो।

एक दिन कुछ सेवक सेवा में लगे हुए थे। आप मौजवश उन के समीप आकर विराजमान हो गए और श्री प्रवचन फ़रमाने लगेः—

"गुरुमुखों का समय बड़ा कीमती है। गुरुमुख इसी समय में सद्गुरु की सेवा और भजनाभ्यास व सत्संग का लाभ उठा कर भक्ति वाला धन कमा रहा है जो आदि से अन्त तक काम आता है और मृत्यु के बाद रूह के साथ जाने वाली वस्तु है। संसारी लोग वह धन कमाते हैं जो न तो जीव के साथ आया है और न अन्त में उस के साथ जायेगा। वह धन केवल जीवन में व्यावहारिक रूप में काम आ सकता है। चाहे उस धन से कितना ही धनी क्यों न बन जाए और लाखों रुपये संचित कर ले। धन को सन्त-महापुरुषों ने जड़ माया कहा है परन्तु मनुष्य जो ईश्वर का अंश है यानि चेतन है धन में आसक्ति होने से उस में फंस गया है। यह कितनी भारी भूल है। जड़ ने चेतन को पकड़ लिया। धन के आने से क्रोध-मोह-लोभ और भी अधिक बढ़ जाते हैं। इन सब विकारों ने मनुष्य को अच्छी तरह से घेर लिया है। फिर उसी धन (जड़-वस्तु) ने मनुष्य को अपने बंधन में बांध लिया। सन्त तुलसी साहिब जी फ़रमाते हैंः–

॥ दोहा ॥

अरब खरब लौं दरब है, उदय अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरण है, तौ आवै केहि काज॥

मगर जो गुरुमुख होते हैं, जिन के संस्कार अच्छे होते हैं वे अपने धन को परमार्थ और सद्गुरु की सेवा में लगा कर उस के बदले भक्ति का धन प्राप्त करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह से वे सहज में ही छूट जाते हैं। मगर आम संसारी जीवों को भक्ति रूपी धन का कोई भी ज्ञान नहीं। गुरुमुख ही भक्ति के

धन को प्राप्त करते हैं। अतः गुरुमुखों का कर्त्तव्य है कि अपने इसी अमूल्य जीवन के समय में ही अपनी मंज़िल की ओर बढ़ने का प्रयत्न करें।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सरल ढंग से भक्ति-पथ दर्शाया और ऐसे प्रवचन किया करते थे जो सरलता से समझ में आ सकें लेकिन उनमें रहस्य अधिक होता था। एक दिन प्रवचन हुए कि:—

"नाम व रूप बनावटी हैं। इन की मुहब्बत चौरासी लाख योनियां हैं। यदि इनसे नज़र उठा दी जाए तो शेष एक ज़ात सत् वस्तु ही रह जाती है। दूध और पानी मिल कर एक रूप हो गए। इस को योग-अग्नि से गर्म करो, असत् रूपी पानी सूख जाएगा और नाम व रूप दूर हो जाएंगे और आत्मा का बोध होगा।

संसार में जितने भी प्राणियों के नाम हैं ये सब कारण नाम हैं अर्थात् सब मिथ्या हैं। इन नामों का व रूपों का परिणाम चौरासी लाख योनियां हैं। ये सब यहीं रह जाने वाले हैं। ये नाम इस संसार में ही आ कर बने हैं और यहीं रह जाएँगे। इन्हें माया का स्वरूप भी कहा जा सकता है अर्थात् जैसे मानव, पशु, कीट जीवों के भिन्न रूप हैं और राम, गोपाल, घोड़ा, मच्छर आदि ये उन के नाम हैं। जिस योनि में रूह जिस देह को ग्रहण करती है वही उसका नाम बन जाता है और वही रूप बन जाता है। यदि इस नाम व रूप से नज़र उठा दी जाये तो केवल एक ज़ात आत्मा ही रह जाती है जो सब के अन्दर विद्यमान है। परन्तु अपने कर्मों के अधीन होकर उसने वैसी ही देह को प्राप्त किया। भक्ति और माया भी दूध और पानी के समान आपस में मिले हुए हैं। जैसे दूध को अच्छी तरह आँच पर गर्म कर पानी सुखा दिया जाता है और शुद्ध दूध ही शेष रह जाता है। ऐसे ही योग-अग्नि द्वारा असत् (माया) रूपी पानी सूख जाता है और सत्-वस्तु आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। गीता के चौथे अध्याय के ३७वें श्लोक में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज परम सखा अर्जुन को उपदेश देते हैं कि:—

"ऐ अर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है वैसे ही ज्ञान

रूपी अग्नि सम्पूर्ण दुष्कर्मों को भस्मसात् कर देती है।" यह ज्ञान पूर्ण सन्त महापुरुषों से मिलता है। जिस के द्वारा जन्म-जन्मान्तरों के पाप भस्म हो जाते हैं। वे आत्म-स्वरूप को दर्शाते हैं। सभी सन्त महापुरुष, सन्त महात्मा यही उपदेश देते हैं कि यह संसार माया का पसारा है। इसमें दिल फंसाना उचित नहीं। आत्मा ही जीव का वास्तविक स्वरूप है। सन्त दादू दयाल जी ने कहा है किः—

॥ दोहा ॥

दादू नैनहुँ भरि नहिं देखिये, सब माया का रूप।
तहँ ले नैना राखिये, जहँ है तत्त अनूप॥

इस माया के स्वरूप को आँखों में भरना नहीं (बसाना नहीं)। लेकिन व्यवहार रूप में इसे देखना है। इन आँखों में मालिक का जलवा बसाना है। अपनी दृष्टि को सदा अपने लक्ष्य पर रखना है। उस परम सुन्दर तत्त्व (आत्मा) की ओर अपना ध्यान लगाए रखना है ताकि उस आत्म-स्वरूप में ध्यान जुड़कर आत्ममय ही हो जाय।

ऐसा तभी हो सकता है जब जीव भक्ति और माया के पारखू पूर्ण सन्त महापुरुष सद्गुरु से इस का ज्ञान लेता है। जब आत्मा का बोध हो जाता है तो जीव को पता चलता है कि उस का अपना वास्तविक स्वरूप क्या था। तब उसे झूठ और सत्य का ज्ञान होता है और वह सब में उस एक आत्मा को देखता है। इसीलिए ही तो सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं किः—

॥ दोहा ॥

छलावा छलि जाइगा, सुपिना बाजी सोइ।
दादू देखि न भूलिये, यहु निज रूप न होइ॥

यह संसार स्वप्नवत् छलावा है। जीव को जल्दी से छल लेता है। दादू दयाल जी फ़रमाते हैं कि इस संसार को देख कर भूलना नहीं चाहिये। यह उस का असली रूप नहीं है। यदि मानव जन्म इस छलावे में छला गया तो फिर

चौरासी लाख योनियों के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त न होगा । पुनः श्री कबीर साहिब जी भी फ़रमाते हैं किः—

॥ दोहा ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पिछानि ।
नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥

एक वस्तु के अनेकों ही नाम होते हैं । जैसे एक मनुष्य जिसे कोई भाई कहता है कोई पिता । किसी का वह चाचा है तो किसी का मामा । नाम भिन्न भिन्न हैं और मनुष्य एक है । इन नामों के भिन्न भेद में न पड़ कर सार वस्तु को पहचानना है कि वह मनुष्य क्या है ? वह चेतन है । उस परम पिता परमात्मा का अंश है, आत्म स्वरूप है । उसी आत्मस्वरूप (सार तत्त्व) की पहचान करनी है । अतः मानव जन्म को पाकर नाम और रूप को मिटाना है और अपनी सत्ता के नाम (आत्म स्वरूप) को पहचानना है । यही मानव जीवन के पाने का उद्देश्य है ।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मौज में आकर एक दिन गुरुमुख मण्डली को भजनाभ्यास के विषय में सरल ढंग से इस प्रकार समझाया और सद्वचन फ़रमायेः—

"त्रेतायुग में जब ऋषि विश्वामित्र ने यज्ञ करना चाहा तो राक्षस (खर-दूषण-ताड़का आदि) उस के यज्ञ में विघ्न डालते थे । मांस आदि डाल कर उसके यज्ञ को भ्रष्ट करते थे । तब ऋषि विश्वामित्र जी ने अयोध्या से श्री रामचन्द्र जी को लाकर अपने यज्ञ को सम्पूर्ण किया था ।

इसी तरह से यह जीव भी योग की अग्नि जला कर भजनाभ्यास का यज्ञ करता है । काम-क्रोध-मोह-लोभ-अहंकार रूपी राक्षस इसी यज्ञ में विषय-विकारों के ख़्यालों को उत्पन्न कर के भजनाभ्यास में विघ्न डालते हैं जिस के कारण यह जीव बहुत दुःखी होता है । जो संस्कारी जीव इन पांच राक्षसों की कुप्रवृत्तियों को समझ जाता है वह तो तुरन्त ही समय के सन्त महापुरुषों की खोज करता है जिन से ये पांचों राक्षस भय खाते हैं । सद्गुरु ही इस जीव के

भजनाभ्यास रूपी यज्ञ को सम्पूर्ण करा सकते हैं। नहीं तो ये राक्षस इतने शक्तिशाली हैं कि जीव अपनी शक्ति से इन से नहीं बच सकता।

माया रूपी ताड़का भी जीव को बहुत भय दिखाती है जिससे यह जीव बहुत दुःखी व अशान्त रहता है। जब तक यह जीव पूर्ण सद्गुरु का सहारा नहीं लेता तब तक इस का योग रूपी यज्ञ सम्पूर्ण नहीं हो सकता। सद्गुरु का सहारा लेने पर ही काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि राक्षसों से इस जीव को सरलता से छुटकारा मिल जाता है तब भजनाभ्यास से योग की अग्नि प्रचण्ड कर के यज्ञ सम्पूर्ण हो सकता है। जैसे श्री रामचन्द्र जी ने अपने बाणों से राक्षसों को समाप्त किया इसी तरह से सद्गुरु के शब्द रूपी बाण से ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार व राग-द्वेष रूपी राक्षस मारे जा सकते हैं। इसलिये समय के सन्त सद्गुरु की आज्ञा का पालन व सेवा इस जीव के लिए अत्यन्त अनिवार्य है। सद्गुरु की कृपा से ही इन पांचों राक्षसों अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि से यह जीव बच सकता है।"

एक दिन आपने सुरति को स्थिर करने के विषय में दोहा पढ़ा और उस पर समझाने के लिए व्याख्या इस प्रकार की कि:—

॥ दोहा ॥

कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय॥
बास सुरति लै आवई, सबद सुरति लै जाय।
परिचय सुरति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय॥

परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है कि वासनाएँ तथा इच्छाएँ ही संसार में आवागमन का कारण हैं। जब तक इच्छाओं पर नियन्त्रण नहीं होता तब तक प्राणी आवागमन के चक्र में फँसा ही रहता है। इच्छाएँ ही जन्म को देने वाली हैं। सद्गुरु से जब परिचय हो जाए तो उनके दिये हुए शब्द से सुरति स्वतन्त्र होकर जन्म-मरण से छुटकारा पाती है। ऐसा ही श्री गुरुदेव जी ने

समझाया है। अर्थात् जीव श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से विनय करता है कि सुरति को कौन आवागमन के चक्र में ले आता है और कौन इससे विमुक्त करता है ? स्थिर सुरति कौन सो है ? ऐसा मुझे बता दीजिये। उत्तर मिलता है कि (बास) वासनाएँ आवागमन में ले आती हैं। शब्द (सद्गुरु-उपदेश) विमुक्त करता है और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से परिचय होने से ही सुरति स्थिर हो जाती है ऐसा सन्त-महापुरुषों का कथन है। अतः शब्द से सुरति मिलाना ही गुरुमुख का कर्त्तव्य है।"

इस प्रकार समयानुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कभी साधु मण्डली को अलग और कभी सभी भक्तों के बीच में सब के सम्मुख प्रवचन करते रहे। अन्त में इस सम्मेलन के समाप्त होने से कुछ समय पहले गुप्त रूप से अन्दर ही अन्दर कुछ महात्मा जनों के सामने कुछ रहस्य प्रकट करने लगे। सब से पहले श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी), महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा सन्तोषानन्द जी, महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी को अन्दर बुला कर इनको अशीर्वाद किए—"अब हम आप को दर्शन दें या न दें जैसी हमारी मौज होगी करेंगे। परमार्थ का कार्य बढ़ चुका है। हम आप सब में से एक को मुखिया (बड़ा) नियुक्त करना चाहते हैं। जो वे आज्ञा करें सब को उन की माननी होगी। आप चारों में से कौन बड़ा हो ?" सब ने विनय की कि (श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी की ओर संकेत करते हुए) प्रभो ! ये बड़े होंगे। श्री प्रवचन हुए—"हमारी भी यही आज्ञा है, ये आप सब के बड़े होंगे। ये पलंग पर बैठेंगे, आज्ञा देंगे, आप सब को उस पर चलना होगा।" सब ने श्री मौज को स्वीकार कर विनय की—"प्रभो ! हमें आप की आज्ञा शिरोधार्य है।"

पुनः आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) ने इन सब के सम्मुख श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज का हाथ अपने सुकोमल कर कमलों में लेकर फ़रमाया ठीक है, ये आप सब के बड़े होंगे। क्या आप सब को स्वीकार है ?" सब ने नतमस्तक हो श्री मौज की स्वीकृति दी। इस प्रकार अन्दर ही अन्दर सब को यह निर्णय दिया और बाहर किसी को इस रहस्य का पता न चला।

५ अक्टूबर सन् १६३५ को सम्मेलन के सम्पूर्ण होने से एक सप्ताह पूर्व आपने सब महात्माओं के सम्मुख यह रहस्य प्रकट किया। सायं ४ बजे अन्दर की हवेली में श्री दर्शन खुले हुए थे। आप ने सब के सामने ये प्रवचन किए— "अब हम एकान्त में रहना चाहते हैं। अब हमारी अवस्था वृद्ध हो गई है। हम आप सब में से एक बड़ा नियुक्त करना चाहते हैं, जो आप सब के लिए सर्व-मान्य होगा। बताओ कौन बड़ा हो ?" फिर स्वयं महात्मा सद्‌गुरु सेवानन्द जी को बुलाकर पूछा कि आप सब में से कौन बड़ा होना चाहिये ? उस समय महात्मा सद्‌गुरु सेवानन्द जी ने कर-बद्ध प्रार्थना की कि "दीनदयाल जी ! ये (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी का नाम लेकर) बड़े होने चाहियें।" तब आप ने सब महात्माओं के सम्मुख यह प्रवचन फ़रमाये—"ठीक है, ठीक है, यही हमारी सलाह है। ये आप सब के बड़े होंगे। आप सब को इन की आज्ञा माननी होगी। जो महात्मा जन इन की आज्ञा मानने को तैयार हैं, वे हाथ खड़ा करें।" सब ने हाथ खड़े किये। पुनः हाथ नीचे करवाए। इस प्रकार तीन चार बार हाथ ऊपर नीचे करवाए और फ़रमाया--"इन की आज्ञा सर्वमान्य होगी। ये केवल पलंग पर बैठ कर आज्ञा देंगे। आप सब को उस आज्ञा को तन-प्राण से निभाना होगा।" पुनः फ़रमाया—"सभी कमर बाँध कर कहो कि आप सबको यह आदेश स्वीकार है।" सब ने कमर बाँध ली और आपने अपने बाएं कर कमल में श्री स्वामी जी (श्री तीसरी पादशाही जी) का हाथ पकड़ कर कहा कि ये बड़े गुरुमुख हैं। इन्होंने हमारी बड़ी सेवा की है। हम इन पर प्रसन्न हैं।

श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी इस सम्मेलन को साढ़े चार मास तक यहां रख कर भक्ति ज्ञान के रहस्यों का समाधान करते रहे। पुनः सब महात्मा जनों को अपने अपने आश्रमों पर जाने की आज्ञा दी। १३ अक्टूबर सन् १६३५ को आप ने देहली की ओर प्रस्थान किया। अब आप दस बारह दिन नंगली रहते और दस बारह दिन देहली रहा करते थे। इस प्रकार दो चार बार कार्यक्रम चला। देहली में आपने श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज को बुलवाया। आप ने उन को फ़रमाया—"अब हम ने यहां से जाना

है।" उन्होंने विनय की—"प्रभो! अभी कुछ समय और रहें।" आप ने फ़रमाया कि तुम्हारे कहने पर हम ने दो-तीन बार कार्यक्रम परिवर्तित किया है। अब हमारी मौज जाने की है। इस मौज को मत बदलो। श्री मौज के अनुसार श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी मौन हो गए। आप उन्हें रुहानियत के रहस्यों से परिपूर्ण करने लगे। २६ माघ १६६३ संवत् तदनुसार ७ फ़रवरी १६३६ को आप ने श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी को प्रवचन फ़रमाए—"ग्वालियर में श्री आनन्दपुर भक्ति परमार्थ का मूल केन्द्र है। सत्संग का महान् केन्द्र है। अतः हमारी यह आज्ञा है कि जो चक खरीदे गए हैं, उन्हें अवश्य आबाद करना है। सब बाइयां, महात्मा आप की सेवा करेंगे।" श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी ने नतमस्तक होकर श्री आज्ञा को शिरोधार्य किया।

इस प्रकार पुनः कुछ दिन पश्चात् आपने श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी को सद्वचन फ़रमाए—"इस समय एक सिन्ध के सत्संग का भार तुम पर नहीं अपितु सम्पूर्ण सृष्टि का भार तुम पर है। तुम शेर हो, शेर की तरह गरजो, हम तुम पर प्रसन्न हैं।" ऐसा कहकर आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) ने अपने एकरूप अनन्य शिष्य श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी (श्री तीसरी पादशाही जी) को हृदय से लगा लिया। दो दिव्य शक्तियां एक हो गईं। उस समय के दृश्य का किन शब्दों में वर्णन किया जाए। उस समय रात्रि का प्रातः से मिलन, गंगा यमुना का संगम अथवा कमल का सूर्य से मिलन कहा जाए कुछ समझ में नहीं आता। ऐसा अद्भुत दृश्य था।

दो दिव्य शक्तियां, इक रूप बन आई।
देखा ढंग अनोखा, प्रीत की रीत मुस्काई॥
देखें हम किसको, किसका दीदार करें।
दो रूपों के मिलन में, एकता ही नज़र आई॥

॥ दोहा ॥

दोऊ वदन इक रूप में, प्रभु ने दिया लखाय।
भिन्न भेद कछु नहिं रहा, द्वैत न दीसा आय॥

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अपने अनन्य शिष्य को परिपूर्ण कर उन्हें चकौड़ी जाने के लिये आज्ञा दी। श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी श्री आज्ञानुसार देहली से चकौड़ी आश्रम में गए।

श्री नंगली साहिब

सन्त-महापुरुष धुरधाम से पारमार्थिक कार्य की पूर्ति के लिये अवतरित होते हैं और इसी कार्य को ही करने में संलग्न रहते हैं। आप भी इसी नियमानुसार पारमार्थिक कार्य करते हुए प्रत्येक स्थान को अपने चरण कमलों से भाग्यशाली बना रहे थे। इस प्रकार आप स्वयं नंगली पधारे तथा भक्त गेंदा राम जी द्वारा समर्पित भवन श्री नंगली साहिब में विराजमान हुए। एक दिन आप ने प्रेमियों को फ़रमाया–"यहां पानी की बहुत कमी है, दर्शन करने वाली संगत को पूरा पानी नहीं मिलता। हमारी मौज है कि यहाँ एक नलका लगाया जाए।" श्री आज्ञा पाकर सेवक मिस्त्री ले आए। नल का सामान भी आ गया। श्री आज्ञानुसार शीघ्र नल लगवा दिया गया। इस में से मीठा, शीतल, स्वादिष्ठ जल निकला। महात्मा जनों ने विनय की कि यदि यहां कुआं भी खुदवा लिया जाए तो पानी अधिक मिलेगा। आप ने मुस्करा कर फ़रमाया कि यह साधारण नल नहीं, अमृत का स्रोत है। इस जल से अनेकों जीवों को लाभ पहुँचेगा।

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपने स्थायी निवास स्थान की ओर संकेत करते हुए फ़रमाया कि यहां एक बाहर का बड़ा द्वार होना चाहिये। हमारी आज्ञा है कि इसे शीघ्र बनाओ। प्रेमियों ने श्री आज्ञा शिरोधार्य कर सीमेंट, ईंटें, लकड़ी का सामान एकत्र कर कार्य आरम्भ किया। श्री प्रवचन हुए—"देखो! मुख्य द्वार का कार्य लम्बा न करो। अभी छोटा तथा सादा किवाड़ लगा लो, समय आने पर जैसा जी चाहे बनवा लेना। आई हुई ईंटें भी सेवकों से अलग रखवा लीं और

कहा कि इनकी हमें आवश्यकता पड़ेगी। कुछ सीमेंट भी अलग रख लो।" संकेत ही संकेत में श्री गुरुदेव जी सब कुछ कह गये परन्तु किसी को समझ न आई। उस समय आश्रम में कई महात्मा जन उपस्थित थे। श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (श्री चतुर्थ पादशाही जी) श्री आनन्दपुर में और श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी) तथा महात्मा सत् विचारानन्द जी, महात्मा निजात्मानन्द जी, महात्मा अजून्यानन्द जी, महात्मा अभेदानन्द जी चकौड़ी में किसी कार्यवश गए हुए थे।

इस प्रकार ३, ४, ५, ६ अप्रैल को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) नंगली साहिब से बाहर रहे। ७ अप्रैल को सकौती टांडा स्टेशन पर पधारे। अब आप अन्तिम समय तक प्रेमियों को कृतार्थ करने के लिए पारमार्थिक पथ पर अग्रसर रहे। मौजवश गाड़ी से उतर कर रेलवे कर्मचारियों के पास गए। उन्होंने आप का हार्दिक सत्कार किया। आप ने प्रवचन फ़रमाये कि सन्त महापुरुषों की संगति जब भी मिल जाये वही समय ही स्वर्ण अवसर होता है। शायद यह अवसर फिर हाथ न आ सके, क्योंकि हाथ से गया हुआ समय फिर नहीं लौटता। इसीलिए हाथ में आए हुए समय से लाभ उठा लेना चाहिए। वहाँ श्री अमृत प्रवचन फ़रमा कर पुनः सब को निज कर कमलों से प्रसाद दिया। आप अन्तिम समय तक श्री प्रवचनामृत की वृष्टि से जन जन को लाभान्वित करते रहे। क्योंकि सन्त महापुरुष सदा परमार्थ के लिये ही अवतार लेते हैं।

अतः आप सकौती टांडा से नंगली पधारे। यहां पर भी प्रेमियों को जी भर कर प्रसाद दिया। इस समय श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने महानिर्वाण के लिये स्पष्ट रूप से प्रवचन किए—"हम ६ अप्रैल प्रातः यहां से जाने वाले हैं। हमारे जाने के पश्चात् इस स्थान पर जहां दो शहतीर मिलते हैं और नीचे लकड़ी का जो स्तम्भ है उस स्तम्भ को और दोनों शहतीरों को हटा देना। इस कमरे को विशाल रूप में बना कर इस स्तम्भ के स्थान पर हमारे रहने का आसन बनाना।" इतने स्पष्ट वचन सुन कर कोई भी इस रहस्य

को न जान सका।

८ अप्रैल तक भी आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी) जीवोद्धार के लिए श्री प्रवचन फ़रमाते रहे। गर्मी के दिन थे। महात्मा अखण्ड शब्दानन्द जी जो आयु में वृद्ध थे, दोपहर के समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को पंखा करने लगे। अचानक उन्हें नींद आ गई और पंखा चलाना बन्द कर दिया। आपने मुस्करा कर इन्हें जगाया और शुभ प्रवचन फ़रमाने आरम्भ किए—"साधु का जीवन सदा परमार्थ के लिये होता है। जैसे किसान गेहूँ के बीज को त्याग कर बाहर खेत में फैंक देता है। समय आने पर वह गेहूँ का बीज फल देता है। ठीक ऐसे ही त्याग किया हुआ सुख बढ़ता है अर्थात् शारीरिक सुख त्यागने से आत्मिक सुख मिलता है। मानव जन्म जागने के लिए ही मिला है। सद्गुरु की सेवा करने से शारीरिक थकावट तो प्रतीत होती है। यही थकावट सुख का कारण बनती है। मज़दूर मज़दूरी करके अर्थात् खून पसीना एक करके रोटी का मुँह देखता है। जब पैसा कमाने के लिये इतना कष्ट करना पड़ता है तो भक्ति मार्ग में भी कुछ न कुछ तितिक्षा करनी चाहिए। अतः आपने सोने वालों को जगाना है। गुरुमुखों को ग़फ़लत के धोखे में नहीं पड़ना चाहिए।"

ये प्रवचन केवल महात्मा जी के लिए नहीं हुए बल्कि सब को चेतावनी देने के लिये थे। सूर्य तो अपनी किरणें समभाव से प्रकाशित करता है, चाहे उन से कोई लाभ प्राप्त करे या न करे। केवल अपने सुख के लिए आप ने ये श्री वचन नहीं फ़रमाये थे कि विश्राम के समय पंखा बन्द क्यों हुआ ? ये वचन तो अमूल्य हीरे जवाहरात हैं जिन्हें कोई भी ग्रहण कर सकता है। उन का यथार्थ रहस्य यह था कि मनुष्य जन्म बहुत कीमती है। इसे ग़फ़लत में यूं ही व्यतीत न किया जाए। गुरु-भक्ति, सेवा में सदा तत्पर रह कर तनिक भी प्रमाद न किया जाये। अन्य योनियां नींद करने के लिये तो हैं अर्थात् उन योनियों में सदा नींद की जा सकती है। आप स्वयं अन्तिम समय तक अथक प्रयत्न से अमृतोपदेश की पावन गंगा बहाते रहे। स्वयं कर्त्तव्य-निष्ठ होते हुए सेवकों को भी कर्त्तव्य-निष्ठ बनने का उपदेश आप ने दिया।

महानिर्वाण

८ अप्रैल को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्त ऐंशी लाल जी (महात्मा परमधर्मानन्द जी) को नया बिस्तर बनाने की आज्ञा दी कि इसे आज ही तैय्यार किया जाए। उसने श्री आज्ञानुसार ऐसा ही किया। अब वह हृदय विदारक दिन निकट आ गया, जिस की किसी को आशा न थी, जिस दिन के लिए श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने सांकेतिक तथा स्पष्ट रूप से वचन फ़रमाए थे जिसे जीव बुद्धि समझने में असमर्थ थी। ज्ञान-भानु की देदीप्यमान रश्मियों को समेटने के लिये रात्रि का आगमन हुआ। वह रात्रि केवल नित्यप्रति आने वाली रात्रि न थी, प्रेमियों के हृदय-मण्डल पर छा जाने वाली रात्रि थी। जिस दुःखद दिन की कोई कल्पना न कर सका वह साक्षात् रूप में सामने आ गया। रात्रि समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने थोड़ा सा भोजन लिया। फिर सेवादारों से कहा कि "हम ने प्रातः जाना है। आप लोग कमरे के बाहर बैठो, आवश्यकता पड़ने पर बुला लिया जायेगा।" सेवादार महात्मा जी ने विनय की—महाप्रभु! आप प्रातः जाने के लिये फ़रमा रहे हैं प्रातः नाशते और मार्ग के भोजन के विषय में आप की जो मौज हो, वैसा किया जाये। परन्तु श्री गुरुदेव जी ने हँस कर उत्तर दिया कि समय आने पर बुला लिया जायेगा। जाओ विश्राम करो।

वह हृदय को विदीर्ण करने वाला ९ अप्रैल का दिन भी आ पहुँचा, जब प्रेमियों की आतुर पुकार सुनने वाले विश्वपति प्रेमियों को सदा के लिए दारुण-दुःख दे गए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रातः चार बजे उठ कर पलंग पर विराजमान हुये। सेवादारों को अन्दर बुलाया। सब को एक कृपा-दृष्टि से निहारा, आशीर्वाद दिया और फ़रमाया—"अच्छा बाहर बैठ जाओ एक दो घण्टे के बाद जाना है।" सब निजी सेवादार कमरे के बाहर चले गए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कमरे का दरवाज़ा बन्द कर पद्मासन लगाकर समाधि—स्थित हो गए। उस समय प्रातः लगभग पाँच बजे का समय था। काफ़ी समय व्यतीत हो गया, सेवादार इसी प्रतीक्षा में थे कि कब उन्हें सेवा के लिए बुलाया जाता है। एक एक कर के घण्टे

बीतते चले गये। अन्दर ही अन्दर न जाने क्यों सब के दिल दहल उठे। इधर भक्त हरनाम सिंह जी (महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी) ने आकर कहा मैं कार तैयार कर आया हूँ। जब भी श्री गुरुदेव जी की मौज आए मुझे बुला लेना।

उधर श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ऐसी अखण्ड समाधि में लीन हुए जो फिर कभी न खुल पाई। सेवादारों के दिल व्याकुल हो रहे थे कि अभी तक हमें क्यों नहीं बुलाया गया ? वे कभी उठते और सुराखों में से झांक कर देखते, लेकिन अन्दर जाने का साहस न कर पाते। उनको क्या मालूम कि सुन्दर मुख से अब श्री वचन सुनाई न देंगे। लगभग ८ बजे अत्यन्त प्रतीक्षा के पश्चात् जब व्याकुलता ने धैर्य का बाँध तोड़ दिया तो सेवादार किवाड़ खोलकर अन्दर प्रविष्ट हुए। श्री चरणों में दण्डवत्-वन्दना की। श्री चरणों का जब स्पर्श किया तो श्री चरण ठण्डे पाए। उन्होंने सोचा शायद श्री प्रभु मौज में प्राणायाम का आनन्द ले रहे हैं या सर्दी लग गई होगी। दुशाला से श्री चरणों को ढाँप दिया, फिर प्रतीक्षा की। व्याकुलता तथा बेचैनी उन्हें कहाँ चैन लेने दे रही थी। थोड़ी देर बाद फिर देखा तो चरण-कमल ठण्डे पाए। अत्यन्त आश्चर्य ! न सुकोमल वदन का रंग बदला न ही मस्तक पर कोई शिकन दिखाई दिया। सुन्दर सुमंजुल वदन पर मुस्कान खेल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी योग-समाधि में लीन होकर अपने आनन्द में लीन हों। अधिक खोज करने पर विदित हुआ कि चेतन सत्ता योग सिद्धि द्वारा ब्रह्म-रन्ध्र से निकल कर अपने परमधाम में पहुँच चुकी है। अचानक इस दृश्य को देखकर सभी सेवादार चीत्कार कर उठे। किसी से कुछ कहते न बनता था।

सभी गांव वाले प्रेमी एकत्र हो गए। सभी करुण क्रन्दन कर रहे थे। कौन बताए कि श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी निज स्वरूप में लीन हो गये हैं। अपनी मौज वश उन्होंने जीवन-लीला संवरण कर ली है। अब प्रेमियों को ज्ञात हुआ कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ६ अप्रैल को जाने के लिए कह रहे थे। उनका तात्पर्य अनन्त यात्रा पर जाने का था। इस प्रकार श्री श्री १०८ श्री

सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी अद्वैत-मत के द्वितीय सम्राट् जन जन को भक्ति-पयोनिधि में आनन्दित कर बृहस्पतिवार ६ अप्रैल सन् १६३६ तदनुसार २८ चैत संवत् १६६३ विक्रमी वैशाख बदी दूज को निज-स्वरूप में लीन हुए।

मेरठ में आकर कुछ सेवादारों ने चकौड़ी सन्त आश्रम तथा भारत के विभिन्न सत्संग आश्रमों अर्थात् रियासत ग्वालियर में श्री आनन्दपुर, लक्की मरवत्, टेरी तथा भारत के छोटे बड़े शहरों में निज सम्प्रदाय के आश्रमों पर तथा भक्तजन, महात्माजनों तथा बाइयों को दुःखद समाचार की तारें दीं। समस्त प्रेमिजन शोक सागर में डूब गए। जहां जिस ने सुना बेसुध हो गया। सभी महात्मा जन व प्रेमी बड़ी कठिनाई से उस असह्य दुःख को हृदय में सम्भालते हुए श्री नंगली साहिब पहुँचे। सभी चकित थे कि अभी भी सुकोमल वदन पर लालिमा, अधरों पर मुस्कान खेल रही थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के मुखमण्डल पर ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे अभी श्री गुरुदेव जी कुछ अमृत प्रवचन फ़रमाने लगे हों। पर अब तो सुकोमल ओंठ खुलने का नाम ही न लेते थे। जहां जहां जिसे यह दुःखद समाचार मिला वहां वहां सब प्रेमियों के हृदय पर एक बिजली सी गिरी। आध्यात्मिक गगन में ब्रह्म-विद्या का महान् सूर्य अस्ताचल के दामन में छिप गया। अमावस्या का वियोग रूपी अन्धकार चहुँ दिशि फैल गया। चकौड़ी से श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) व महात्मा निजात्मानन्द जी तथा श्री आनन्दपुर से श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी (श्री चौथी पादशाही जी महाराज) यहां १० अप्रैल को पहुँचे। इस प्रकार जैसे जैसे यह दुःखद समाचार सब महात्माजनों एवं भक्तजनों को मिलता गया, सभी श्री नंगली साहिब में पहुँचते गये। ११ अप्रैल शनिवार को सायं समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को नए वस्त्र पहना कर श्री आरति उतारी गई।

इसके पश्चात् ११ अप्रैल शनिवार को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के सुकोमल शरीर को उन के श्री प्रवचनानुसार दाएँ हाथ वाले कमरे

में महा-समाधि दी गई। सब की आँखों से अश्रुधारा रुकने का नाम ही न लेती थी। पुनः पुरातन मर्यादानुसार १३ अप्रैल १९३६ सन् वैशाखी के दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भंडारा किया गया।

जब यह दुःखद समाचार महात्मा निजानन्द जी को मिला तो वे उस समय वहोआ आश्रम में सत्संग कर रहे थे। इस समाचार को सुनते ही बेसुध हो गए। चिकित्सा आदि करने पर जब उन्हें दो तीन घण्टे बाद सुधि आई तो उन्होंने कहा कि जब हमारे प्राणेश श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ही इन नयनों से ओझल हो गए तो हमें इस जीवन से क्या लेना है? यह शब्द उच्चारण कर भजनाभ्यास में समाधि स्थित हो कर शरीर त्याग दिया।

यह चकौड़ी सन्त आश्रम से दूर वहोआ ज़िला डेरा गाज़ीखां में रहते थे तथा इनकी स्मरण शक्ति इतनी तेज़ थी कि परम सन्त श्री कबीर साहिब जी की वाणी, श्री रामायण, श्री गुरुग्रन्थ साहिब व कई सन्तों की वाणियां इन्हें कंठस्थ (ज़बानी याद) थीं। सत्संग में व्याख्यान देने लगते तो चार पाँच घण्टे से अधिक समय तक देते ही रहते थे। भजनाभ्यास में भी उच्च दर्जे तक पहुँचे हुए थे। अटल श्रद्धा व विश्वास से गुरु दरबार की सेवा करते थे। परिवार सहित श्री चरणों में शरणागत थे। श्री चरणों में भी इतना अनुराग था कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के निज स्वरूप में लीन होने का समाचार सुनते ही पहले तो बेसुध हो गए। पुनः होश में आए तो भजनाभ्यास में समाधि-स्थित होकर शरीर त्याग दिया।

महापुरुषों की मौज का रहस्य प्रकृति भी नहीं जान पाती। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने इस भक्ति पथ को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने का भरसक प्रयत्न किया। आत्मिक रहस्य अपने परम निष्ठ शिष्य श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज (श्री तीसरी पादशाही जी) को समझाते रहे। यहाँ तक कि अपने होते हुए सिन्ध में उन की उपासना भी करवाई। अपने शिष्य को सर्वगुण सम्पन्न जान कर अपनी रूहानी शक्ति उन्हें समर्पण कर स्वयं

निश्चिन्त हो गये । श्री आज्ञानुसार अभी इस रहस्य का भेद प्रकट न करना था। अतः जहाँ तहाँ प्रेमी जन व्याकुल और अधीर हो गये । वे विरह के सागर में ग़ोते लगा रहे थे परन्तु उन्हें किनारा न मिल रहा था । वे बेचारे दिल ही दिल में प्रार्थना कर रहे थे कि प्रभो ! सहारा दीजिये । बिना मांझी के पतवार कौन चलाएगा। उन की पुकार थीः—

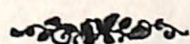
॥ दोहा ॥

विरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय ।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढि फिर जाय ॥
विरह जलंती देख कर, साईं आए धाए ।
प्रेम बूंद से छिरकि के, जलती लई बुझाय ॥

यह रहस्य तीन मास पश्चात् सब पर प्रकट किया गया और प्रेम के देव, करुणा के आगार श्री श्री १०८ श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज परमार्थ पथ के सम्राट् तृतीय रूहानी उत्तराधिकारी के रूप में प्रकट होकर शोकाकुल हृदयों के आधार बने ।



श्री मुख प्रवचन



श्री सद्गुरुदेव महाराज जी समयानुसार परमार्थ हेतु श्री मुख से प्रवचन फ़रमाते थे। जैसा प्रेमी, जिज्ञासु अथवा शरणागत देखते उस के अनुरूप सत्संग करते और उनकी शंकाओं का समाधान बिना कुछ कहे ही हो जाता। श्री सद्गुरु देव महाराज जी जो विशेष रूप से अमृत प्रवचन कभी कभी किया करते थे, उनमें से कुछ श्री अमृत प्रवचनों का संग्रह यहाँ किया गया है। उन के श्री प्रवचनः—

प्रवचन १. गीता में भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! इन आँखों से तू मेरा स्वरूप नहीं देख सकता। जब कि उन का स्थूल शरीर मौजूद था तो उस समय अर्जुन उनके साथ बातचीत करता हुआ उन को नहीं देख सकता था तो क्या उन की अनुपस्थिति में बिना ध्यान के उन्हें देखा जा सकता है? मतलब यह है कि साकार सद्गुरु के ध्यान की नितान्त आवश्यकता है। बिना इस के कुछ नहीं बनेगा। वही साकार मूर्ति ध्यान में विराट् स्वरूप बन जाएगी।

अर्थात् परमात्मा के भी दो स्वरूप हैं निराकार और साकार। निराकार की ज्योति का दर्शन करने के लिए साकार सद्गुरु का ध्यान करना ज़रूरी है क्योंकि जब तक किसी वस्तु का आकार रूप और रंग ही विदित नहीं तब तक हम उसे कैसे देख सकते हैं? जैसे मानव के स्थूल शरीर में सूक्ष्म आत्मा का निवास है परन्तु इन स्थूल आँखों से आत्मा के दर्शन नहीं कर सकते। फिर भी आत्म-दर्शन के लिये इन्हीं स्थूल आंखों से विवेक की सूक्ष्म आँख खोल सकते हैं। बाहरी जगत् का प्रतिबिम्ब अन्तर्मानस पर भी पड़ता है। परमात्मा निराकार अर्थात् सूक्ष्म सत्ता से साकार सद्गुरु के रूप में अर्थात् स्थूल देह को इसीलिए ही धारण करते हैं कि इस स्थूल रूप की ज्योति के ध्यान से सूक्ष्म ज्योति को भी देखा जा सके। जब

सद्‌गुरु के स्थूल रूप की पावन ज्योति हृदय में जग जाती है तो परमात्मा का नूर अथवा विराट् ज्योति के भी दर्शन हो जाते हैं। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी भी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पांव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव॥

अर्थात् यदि परमात्मा की ज्योति को देखने की अभिलाषा है तो सद्‌गुरु का ध्यान ही मूलमन्त्र है, उपासना के लिए सद्‌गुरु के चरणों की सेवा मूलमन्त्र है, नाम जपने के लिए सद्‌गुरु के श्री वचनों को अपना जीवन बनाना ही मूलमन्त्र जाप है और सच्चाई एवं विश्वास से सब काम करना ही परमात्मा को पाने का मूलमन्त्र है।

मनुष्य में यह विशेषता है कि जिस ओर भी वह अपना ध्यान केन्द्रित कर ले वही कुछ स्वप्नावस्था में अथवा जागृत अवस्था में आकार के रूप में आँखों के सम्मुख घूमते दिखाई देते हैं। जब सम्पूर्ण ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित कर दे तो वही आकार वास्तविक रूप में स्पष्ट दिखाई देने आरम्भ हो जाते हैं। यहाँ तक कि कई बार तो एकरूपता की स्थिति भी बन जाती है। अब विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि मनुष्य को अपना ध्यान किस ओर केन्द्रित करना चाहिए? मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य क्या है?

मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य तो मालिक की प्राप्ति करना है जिसका स्वयं यह अंश है। उसी अंश में एक रूप हो जाना ही इस की मंज़िल है। अभिप्राय यह हुआ कि अपनी मंज़िल पर पहुँचने के लिए अपने ध्यान को भी लक्ष्य पर केन्द्रित करना पड़ेगा। तभी लक्ष्य की प्राप्ति होगी। लक्ष्य कैसे मिलेगा? यह स्थूल चक्षु जब अपने ध्यान की समस्त धारा श्री सद्‌गुरुदेव जी के ध्यान में केन्द्रित कर देंगे तो यही स्थूल रूप में श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की श्री छवि सूक्ष्म रूप परमात्मा अथवा आत्म-ज्योति के दर्शन करा देगी। श्री गुरु नानक देव जी भी फ़रमाते हैं:—

गुर जेवडु गुर जेवडु दाता मै अवरु न कोई राम ॥
हरि दानो हरि दानु देवै हरि पुरखु निरंजनु सोई राम ॥

सद्गुरु से बढ़कर और कोई नहीं है। वही परमात्मा का मिलाप कराते हैं। वे स्वयं ही हरि हैं। वे अलख, अगम तथा अगोचर हैं।

अर्थात् सन्तों के वचनानुसार सद्गुरु का स्तर परमात्मा से भी उच्च है। यदि परमात्मा के मिलाप की अभिलाषा है तो सद्गुरु की शरण में जाकर, उन के श्री वचनानुसार जीवन बना कर, श्री छवि का ध्यान करते हुए ही उस दिव्य ज्योति निराकार स्वरूप के दर्शन होंगे। यही वास्तविक मंज़िल है, जिसे पाना मानव का ध्येय है।

प्रवचन २. जिस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षक की आवश्यकता है; इसी तरह आत्मिक पढ़ाई (रूहानी-ज्ञान) के लिए गुरु की नितान्त आवश्यकता होती है। रूहानी पढ़ाई के लिए दृढ़ निश्चय और तीव्र इच्छा होनी चाहिए, क्योंकि आन्तरिक ज्ञान प्राप्त करना कठिन है। इसमें जीव की अपनी बुद्धि का काम नहीं।

॥ दोहा ॥

वेद बुध तिन गुण विखे, तीन लोक की नीत।
चौथे पद के भेद कूँ, वे क्या जानैं मीत ॥

तीन लोकों की नीतियां तथा तीन गुणों युक्त ज्ञान तो पुस्तकों में से मिल सकता है परन्तु चौथे पद का गुप्त रहस्य वेदों ग्रन्थों को पढ़ लेने मात्र से प्राप्त नहीं होता। इस आध्यात्मिक विद्या के सम्मुख बुद्धि, बल, चतुराई सब तुच्छ हैं। यह एक परा विद्या का प्रशिक्षण है, जिस का ज्ञान समय के पूर्ण गुरु के बिना समझ सकना अत्यन्त कठिन है। जैसे केवल पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त करने के लिये शिक्षक की आवश्यकता है क्योंकि जो कुछ लिखा हुआ है उसे समझ सकना मुश्किल है। कई ऐसे गुप्त रहस्य होते हैं जिन का ज्ञान केवल शिक्षक को ही होता है। बस एक ही रहस्य के समझ जाने पर सम्पूर्ण प्रश्न का हल सुगम हो

जाता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान की कुँजी पूर्ण गुरु के पास है। गुरु का वचन मानने से ध्यान आयेगा। जब ध्यान आयेगा तो आन्तरिक विद्या की कुँजी हाथ आ जाएगी। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

चल सतगुरु की हाट, ज्ञान बुद्धि लाईये ।
कीजे साहिब से हेत, परम पद पाईये ॥
सतगुरु सब कुछ दीन्ह, देत कछु न रह्यो ।
हमहिं अभागिन नारि, सुख तजि दुःख लह्यो ॥

आध्यात्मिक ज्ञान सद्‌गुरु के द्वार से ही मिलेगा। गुरु से नेह लगा कर परम पद की प्राप्ति होती है। जब सद्‌गुरु के अर्पण तन-मन-धन कर दिया तो गुरु भी समस्त सम्पदाओं के मालिक बना देते हैं। अपने पास कुछ छिपा कर नहीं रखते। परन्तु हम ही ऐसे अभागी हैं जिन्होंने सुरति का सम्बन्ध सद्‌गुरु के ध्यान से नहीं जोड़ा और सुख प्राप्त करने के स्थान पर दुःख उठा रहे हैं।

सोचने का विषय है कि लौकिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। नित्य नियम से पाठशाला में जाना, अध्यापक के आदेश अनुसार जीवन बनाना, विद्या प्राप्ति की बलिवेदी पर आराम सुख को न्यौछावर करना पड़ता है। तब कहीं वह लौकिक शिक्षा को ग्रहण करने का अधिकारी बनता है। फिर आध्यात्मिक शिक्षा के लिए यदि किसी कठिनाई का सामना करना पड़े तो कौन सी बड़ी बात है।

इस विद्या को प्राप्त करने के लिए तीव्र अभिलाषा, दृढ़ संकल्प की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि रज-तम-सत्त्व गुणों से युक्त इस संसार में हर ओर माया का पसारा है। इस में विचरण करते हुए जीव की बुद्धि मलिन हो चुकी है। जब तक सद्‌गुरु की कृपा न होगी तब तक बुद्धि के मलिन आवरण नहीं उतर सकते। कितनी भी कुशाग्र बुद्धि क्यों न हो परन्तु परा विद्या को समझने में असमर्थ है। कितने ही साधन कर लो फिर भी सद्‌गुरु की शरण में जाए बिना इस विद्या को

प्राप्त करने में सफलता न मिलेगी। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग यज्ञ तप लाय ।
बिन सतगुरु पावै नहिं, कोटिन करै उपाय ॥

कितने भी वेद, शास्त्र पढ़ लो; योग, यज्ञ, जप, तप, संयम साधन कर लो परन्तु सद्गुरु के बिना इस रूहानी विद्या को समझना कठिन है । आत्मिक आनन्द, मानसिक शान्ति को पाने तथा आध्यात्मिक विद्या को ग्रहण करने वाले जिज्ञासु को श्रद्धा, विश्वास और प्रेम युक्त होकर सद्गुरु की शरण में जाना अत्यन्त आवश्यक है। सद्गुरु की कृपा ही सर्वोपरि है। सुन्दर दास जी भी लिखते हैं:—

॥ दोहा ॥

परमातम अरु आतमा, उपज्या यह अविवेक ।
सुन्दर भ्रम तें दोय थे, सतगुरु कीये एक ॥

मनुष्य की बुद्धि पर यह पर्दा आया हुआ है कि आत्मा और परमात्मा दोनों अलग अलग हैं। सुन्दर दास जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा ने इस भ्रम को दूर कर दिया और यह दर्शा दिया कि आत्मा और परमात्मा एक हैं। आत्मा परमात्मा की अंशज है। वेदों, ग्रन्थों में भी सद्गुरु की महिमा को नेति नेति उचारा गया है और आध्यात्मिक विद्या की खान कहा गया है। सद्गुरु पराविद्या के स्वामी हैं, यदि इस ज्ञान की ज़रूरत है तो आध्यात्मिक पाठशाला में आकर आन्तरिक कपाट खोलने का ढंग सीखो और आत्मिक आनन्द प्राप्त करो।

प्रवचन ३. यह मन काम-क्रोध आदि इन्द्रियों का सम्राट् है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, माया, तृष्णा, ईर्ष्या व पाँच ज्ञानेन्द्रियां तथा पांच कर्मेन्द्रियां—ये सब मन की सेना है। लेकिन इन सब में से आँख ज्ञानेन्द्रिय का मन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह मन का वज़ीर है। आँख प्रत्येक काम में मन की

सहायक है। इसी आँख से ही मन के अन्दर हर प्रकार के ख़्याल जमा होते हैं। आँख जिस वस्तु को देखती है व पसन्द करती है मन उसी वस्तु में लगता है। जिस वस्तु को आँख पसन्द नहीं करती मन का ध्यान उधर नहीं जाता। मन में जो चित्र या विषय वासनाओं के संस्कार भरे हुए हैं इन सब का अधिकांश कारण आँख ही है। इसीलिए मन की शक्ति को कम करने के लिये आँख को ही वश में करना चाहिए। जिस ने इस को वश में कर लिया तो बाद में मन की सब सेना सरलता से परास्त हो सकती है। जब सेना मन के साथ मिलकर काम नहीं करती तो मन को भी काबू में किया जा सकता है।

जैसे मन में बुरे विचार आँख के द्वारा प्रविष्ट हुए हैं वैसे ही अच्छे विचार भी आँख के मार्ग से प्रवेश करेंगे। अच्छे विचारों के मन में आ जाने पर गन्दे और मलिन विचार स्वयं कम हो जाएंगे। अच्छे ख़्याल हैं सद्गुरु का ध्यान। आँखों को सद्गुरु के ध्यान में लगाने से अन्दर की आँख जिसे शिव नेत्र (दिव्य दृष्टि) भी कहते हैं खुलती है। शिव नेत्र खुलने से मन जिसका स्वभाव कव्वे की भांति गन्दगी (विषय वासनाएं) खाने का है वह हंस की भांति मोती चुगने लगता है। भजन-अभ्यास रूपी मोती ग्रहण करता है। अतः मन का स्वभाव बदलने के लिए सद्गुरु के ध्यान तथा तसव्वर की अति आवश्यकता है। इस के अतिरिक्त मन का लगाव जिस वस्तु के साथ हो उस वस्तु को सद्गुरु के अर्पण कर देना चाहिये ताकि मन संसार की वस्तुओं से हट कर सद्गुरु के ध्यान में लग जाए। सद्गुरु का ध्यान आने से ही मन में से विषय वासनाओं के संस्कार दूर हो जाएंगे और सद्गुरु का ध्यान अंकित हो जाएगा।

सद्गुरु का ध्यान ही परमात्मा की वह दिव्य ज्योति है जिस के सम्मुख बाहरी जगत् की सब ज्योतियां तुच्छ हैं। इसी दिव्य ज्योति का दर्शन करने के लिए ही योगी योग साधन, तपीश्वर तप और ऋषि मुनि यज्ञ किया करते हैं। साधक आँखें मूँदकर प्रभु का ध्यान करते हैं और कितने कितने वर्षों तक समाधिस्थ रहते हैं। सद्गुरु इस युक्ति को सरल ढंग से बताते हैं कि संसार में रहते हुए इन्हीं स्थूल

आँखों के साथ ध्यान करने से सूक्ष्म स्वरूप तक पहुँचा देते हैं। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं—

॥ दोहा ॥

नैनों माहिं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिरमौर ॥

आँखों के बीच में रहता हुआ मन भी सम्पूर्ण सृष्टि में घूमने के लिए दौड़ लगाता है, परन्तु इसको वश करने के लिए सन्तों के सिरताज सद्गुरु ही इस अगम रहस्य को सुगम कर दिखाते हैं।

प्रवचन ४. जन्म-जन्मों के संचित कर्मों का नाम 'मन' है। जिस तरह से कर्म किए गए हैं उसी तरह मन की हालत बन गई है। यदि संचित कर्म बुरे हैं तो मन भी उसी के अनुसार मैला तथा गन्दगी से भरा हुआ है। यदि हम चाहें कि इस मलिन मन से रुहानियत के भेद को (जो गूढ़ से गूढ़ और गुप्त हैं) जान सकें तो यह बिल्कुल असम्भव है क्योंकि मन तो विषय-विकारों की गन्दगी से भरा हुआ है। मन रुहानियत के गुप्त भेदों को नहीं समझ सकता। इसीलिए यह ज़रूरी है कि मन को निर्मल करने का उपाय सोचा जाए। मन की मलिनता को दूर करने का तरीका यह है कि पूर्ण सत्पुरुषों की संगति प्राप्त की जाए। पूर्ण सन्त सद्गुरु की सेवा, उन के शब्द की कमाई से ही मन में भरे हुए विषय-वासनाओं के ख़्यालों को दूर किया जा सकता है। इसलिए इस मन को सद्गुरु की सेवा में लगाओ और शरीर से निष्काम कर्म करो।

जैसे लोहे को लोहा काटता है ऐसे ही मनुष्य जन्म में किये हुए निष्काम कर्म भी इस से पहले के किये हुए सकाम कर्मों को मूल सहित समाप्त कर देंगे तथा मनुष्य के अन्दर जो संचित कर्म भरे हुए हैं सब धीरे धीरे दग्ध हो जाएंगे। जब मन निर्मल और पवित्र हो जाएगा तब रूहानी भेद आसानी से समझ में आ सकते हैं। मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ा करता। इसलिए इसे धुलवाना ज़रूरी है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी फ़रमाया हैः—

॥ दोहा ॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार ।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥

सद्गुरु ही शिष्य के मैले मन को धो सकते हैं। सद्गुरु के बताए हुए भजनाभ्यास के साधन से ही मन पवित्र हो सकता है। किसी भी वस्तु को नये रूप रंग में बदलने के लिये उसी वस्तु के जानकर को ही वस्तु देने से वह नये रूप में बनती है। जैसे लकड़ी बढ़ई के पास तथा लोहा लोहार के पास जाये तो नए रूप में सुन्दर और बढ़िया रूप में बन कर सामने आता है। इसी प्रकार मैला मन भी सद्गुरु के पास जाकर ही मायावी विचार छोड़ कर भक्ति के पवित्र उज्ज्वल विचार ग्रहण कर शुद्ध मन बन जाता है क्योंकि सन्त सद्गुरु निष्काम कर्म कराते हैं जिस से संचित बुरे कर्म भी दग्ध हो जाते हैं और मन सत् असत् का विचार कर सकता है।

अतएव मन की परिशुद्धि के लिए सन्त सत्पुरुषों की संगति में जाना आवश्यक है, जिससे मन शुद्ध हो कर निष्काम कर्म करने में तत्पर हो जाये।

प्रवचन ५. साधारणतया मन की हालत तीन प्रकार की कही गई है। जैसे किसी बीमार की बीमारी का पता योग्य डॉक्टर ही लगा सकता है, इसी तरह मन की हालत का पता समय के सन्त-सद्गुरु ही लगा सकते हैं क्योंकि मन की अवस्था को समझना प्रत्येक का काम नहीं है। मन तीन प्रकार से इस तरह हैः—

१. मुर्दा मन २. ग़ाफ़िल मन और बीमार मन ३. स्वस्थ मन (तन्दुरुस्त मन)।

१. मुर्दा मन—मुर्दा मन उन लोगों का है जो दिन रात पेट के धन्धों में लगे हुये हैं और मालिक का भजन नहीं करते। जैसे मुर्दे से कोई काम नहीं हो सकता अपितु दुर्गन्ध ही फैलती है, इसी तरह से जो जीव मालिक का भजन नहीं करते उन के विचारों से विषय वासनाओं की दुर्गन्ध आती है। मालिक का भजन ही

जीवन है। मालिक का भजन ही मन को नई ज़िन्दगी व रोशनी प्रदान करता है। सृष्टि में जितने भी दर्शन, शास्त्र, पुराण आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने लिखे हैं, उन्होंने योगाभ्यास की कमाई की थी। मालिक के भजन से ही उन के विचारों में जागृति आई। वे ही सर्व साधारण संसारी जीवों को सन्मार्ग दिखा पाए हैं। इस मन की अवस्था को ठीक करने के लिये मन को जीवन देने के लिये भजनाभ्यास करना बहुत आवश्यक है, जिसका साधन सद्गुरु से ही जीव को मिल सकता है।

२. गाफ़िल या बीमार मन—गाफ़िल और बीमार मन उन जीवों का है जो जानते तो हैं कि भजनाभ्यास करना अच्छा है मगर आलस्य के कारण भजनाभ्यास नहीं करते। जैसे कोई बीमार मनुष्य डॉक्टर से दवाई तो ले आता है परन्तु डॉक्टर के आदेशानुसार दवाई प्रयोग में नहीं लाता और न ही परहेज़ करता है। कभी कभी अधिक अस्वस्थ होने पर दवाई खा ली और परहेज़ कर लिया। इसी तरह से वे लोग भी जब मन बहुत अशान्त हुआ या देखा देखी कभी भजनाभ्यास में लग गया; उन की हालत वैसे तो न करने वालों से बहुत अच्छी है परन्तु ऐसे लोगों को अधिक भजन करने की आवश्यकता है तभी मन के ताप आधि, व्याधि, उपाधि (तीन ताप) दूर होंगे। बिना भजन के और कितने ही उपाए यह जीव अपने ख़्यालों से करता रहे परन्तु मन के ताप दूर नहीं हो सकते। समय के सन्त सद्गुरु के बताए हुए तरीके से भजनाभ्यास व वैराग्य (विषय विकारों से मन को रोकना) से मन के रोग को दूर करे। भजन-अभ्यास मन की औषध है और वैराग्य मन का परहेज़ है। बीमारी दूर करने के लिये दवाई व परहेज़ दोनों की ज़रूरत है। सद्गुरु से ही जीव को भजनाभ्यास व वैराग्य के उपायों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

३. स्वस्थ मन (तन्दुरुस्त मन) स्वस्थ मन उनका है जो सदा सावधान रहते हैं। जिन के दिल में हर समय परमात्मा का भय है और हर समय अपने मन को भजनाभ्यास में लगाये रखते हैं और विषय विकारों की खटाई अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि से मन को सदा बचाये रखते हैं। जैसे स्वास्थ्य के लिये शुद्ध पवन, स्वच्छ जल, पवित्र भोजन व गहरी नींद ये चार चीज़ें आवश्यक

हैं । इसी तरह से मन को स्वस्थ रखने के लिये कर्म, उपासना, योग और ज्ञान ये चार चीज़ें ज़रूरी हैं । इन का पूरा भेद समय के सन्त सद्गुरु ही बता सकते हैं ।

प्रवचन ६. ब्रह्म ज्ञान या ब्रह्मविद्या का उपदेश पूर्ण सद्गुरु ही मनुष्य को दे सकते हैं । शेष बाहर की विद्या जिस किसी विद्वान् से मनुष्य सीखना चाहे सीख सकता है । लेकिन ब्रह्म ज्ञान या ब्रह्म विद्या का उपदेश ब्रह्मनिष्ठ और ब्रह्म-श्रोत्रिय सद्गुरु ही जीव को प्रदान कर सकते हैं । ब्रह्म-विद्या एक महान् यज्ञ है जो सिवाय सद्गुरु के और कोई नहीं रचा सकता । जिस मनुष्य को ब्रह्मविद्या का दान सद्गुरु से मिल जाता है उस मनुष्य का जीवन धन्य हो जाता है । ब्रह्मविद्या से ही मन की अविद्या और अज्ञान से छुटकारा मिल सकता है । जीव की सुरति जो मोह माया में उलझी हुई है इस ब्रह्म विद्या के ही उपदेश से साफ़ होकर शब्द में जा मिलती है । इसी का नाम ही सुरत-शब्द-योग है । इस ब्रह्म विद्या के उपदेश से ही वाल्मीकि डाकू ऋषि बन गया । इसीलिये वे जीव जिन को ब्रह्मज्ञान या ब्रह्म विद्या का उपदेश सद्गुरु से मिल जाता है, वे अपनी पूरी आयु भी सद्गुरु की सेवा करने में बिता दें तो भी वे उऋण नहीं हो सकते । जैसे कहा हैः—

॥ दोहा ॥

सत्तनाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं ।
क्या लै गुरु सन्तोषिये, हवस रही मन माहिं ॥

मनुष्य तन, मन, धन से सद्गुरु की सेवा करने पर भी सद्गुरु के उपकारों का बदला नहीं दे सकता ।

प्रवचन ७. प्रत्येक जिज्ञासु की यह इच्छा होती है कि मन पर विजय पा ली जाये परन्तु मन को वश करने के साधन जो यह जीव करता है, इससे मन वश में नहीं आ सकता बल्कि उसका सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है । जैसे कि किसी पशु को अत्यधिक खिलाते पिलाते रहो और उससे कोई काम न लो और फिर यह भी चाहो कि वह मोटा भी न हो ऐसा तो कभी हो नहीं सकता । वह तो खाने पीने में होशियार और कार्य करने में प्रमादी बन जायेगा ।

ऐसे ही मन बड़ा चञ्चल है और माया के मलिन संस्कारों में रह कर इसे मायावी कार्य में व्यस्त रहना ही प्रिय लगता है। मायावी सुखैश्वर्यों के प्रसाधनों को जुटा कर यह कहें कि मन इस ओर न जाय—ऐसा तो कभी हो नहीं सकता। भक्ति की ओर कभी ध्यान भी न दें और चाहें कि मन पर विजय पा ली जाय—यह व्यर्थ कल्पना है। सुख चैन की निद्रा में सो कर विपक्षी दल को परास्त नहीं किया जा सकता। जब तक यह विदित ही नहीं कि विपक्षी दल शत्रु भावना लिए हुए है तब तक उसे परास्त करने की भावना जाग्रत नहीं होगी फिर शत्रु को मित्र समझ कर सुख की निद्रा में सोएँ तो शत्रु ने तो आक्रमण करना ही है। इसी प्रकार मन माया से शक्तिशाली बनता जा रहा है। सन्त महापुरुष बतलाते हैं कि मन को मित्र न समझो, इस से शत्रुओं जैसा व्यवहार करो। मन को वश में करने के लिये मन से परामर्श मत करो अपितु जो मन का शत्रु है उस से परामर्श करो। मन के शत्रु समय के सन्त सद्गुरुदेव ही होते हैं। इसीलिए सद्गुरुदेव जी से ही मन को वश करने की सलाह करनी चाहिये। सद्गुरु ही मन को पकड़ने की युक्ति बता सकते हैं। सन्तों का कथन हैः—

मन लोचे बुरआइयां गुर शब्दी एह मन होड़िए॥

अर्थः—मन तो माया की ओर शीघ्रता से जाता है। सद्गुरु के शब्द से इस का रुख़ मोड़ना चाहिये। मित्र ही मित्रता का नाता पूर्ण रूप से निभा सकता है, शत्रु नहीं। जिसके मन में खोट हो वह ऊपर से तो मित्रता जतलाता है परन्तु समय पर धोखा दे जाता है। बिल्कुल ऐसे ही जैसे कि मन को अपने अनुरूप मायावी सुखैश्वर्य के साधन मिलते जाएं तो यह जीव को अपनी मित्रता जतलाता है परन्तु ज़रा इसका रुख़ मोड़ा जाए अर्थात् भक्ति की तरफ़ किया जाए तो मार्ग में विघ्न डाल कर खड़ा हो जाता है।

वास्तव में सन्त महापुरुष ही जीव के सच्चे साथी हैं। वे इस लोक में भी सत्य मार्ग दर्शाते हैं और परलोक में भी साथी बनते हैं। वे मन को वश करने का उपाय बतलाते हैं जैसे कि परमसन्त श्री कबीर साहिब जी ने लिखा हैः—

॥ दोहा ॥

मन मनसा को मारि ले, घट ही माहिं घेर ।
जब ही चालै पीठि दे, अंकुस दे दे फेर ॥

सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि मन को काबू करके इसे अन्तर्मुख करो। जब जब भी यह बाहर की ओर भागे नाम के अंकुश से पुनः अपने वास्तविक स्थान पर ले आओ। तभी यह वश में हो सकेगा अन्यथा नाम के विना इसे वश में करने का कोई साधन नहीं।

अतएव सन्त महापुरुषों को मित्र बना कर मन शत्रु को परास्त करने से ही विजय प्राप्त होगी। जब तक मन के विपक्षी और जीवात्मा के सबल सद्गुरु को अपना मित्र न बनाया तो मन एक प्रश्न बन कर रह जाएगा। दुश्मन को परास्त करना ही वीरता है। मन पर विजय पाना ही मनुष्य की मंज़िल है। मंज़िल पाना ही ध्येय है। सद्गुरु की कृपा से ही मन को जीता जा सकता है।

प्रवचन ८. चोर सदा अन्धकार ही चाहते हैं। अन्धेरी रात में चोर चोरी करते हैं। उन्हें अन्धेरा ही प्रिय है। जहां पर प्रकाश हो वहां पर चोर कभी नहीं जाते। इसी तरह से जिस हृदय में मोह व अज्ञानता का अन्धेरा है उसी स्थान पर ही काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि मानसिक चोर अपना काम सरलता से करते हैं और दिन रात जीव को लूटते रहते हैं। जिसने अपने हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य उदय कर लिया, जिसका हृदय ज्ञान के प्रकाश से जगमगा उठा उसे इन मानसिक चोरों का भय नहीं है। इसलिए अपने हृदय में ज्ञान की ज्योति पैदा करनी चाहिये ताकि आत्मिक धन को मानसिक चोर न चुरा सकें। ज्ञान के प्रकाश से ही अज्ञान का अन्धकार दूर होगा। ज्ञान के भण्डार सद्गुरुदेव जी से ही ज्ञान की प्राप्ति सुलभ है तभी पांच चोरों से बचा जा सकता है।

सांसारिक धन जिसे चोर चुरा कर ले जाएं वह तो पुनः भी एकत्र किया जा सकता है परन्तु आत्मिक धन को एकत्र करने का जो मानुष-जन्म का समय एक बार हाथ से निकल गया वह दुबारा नहीं मिलेगा। यदि मनुष्य मोह माया के

अन्धकार में भटकता हुआ सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर दे तो उसका परिणाम सिवाय चौरासी लाख योनियों के और क्या मिलेगा ? यह अज्ञान का अन्धकार क्या है ? इन्द्रियों के सभी रसोपभोगों में मग्न रहना ही अज्ञान है । इन्द्रिय रसोपभोगों की पूर्ति ही पांचों विकारों की उत्पादक है। जब तक ऐन्द्रियक सुख उपभोग से वृत्ति को हटाया नहीं जाएगा तब तक ज्ञान की एक किरण भी प्रदीप्त नहीं हो सकती। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने भक्त अर्जुन को यही उपदेश दिया था:––

शौक–ो–नफ़रत ख़ासा हैं तर्के–माहसूसात का ।
दोनों दिल के चोर हैं तू इन के काबू में न आ ॥

मख़ज़ने इसरार ३–३४

इन्द्रियों और इन्द्रियों के सभी भोगों में जो राग और द्वेष भरे हैं, तू उन दोषों के पंजे में न आ क्योंकि यह दोनों ही अर्थात् राग द्वेष कल्याण मार्ग में विघ्न डालने वाले बड़े प्रबल चोर और शत्रु हैं।

जहां पर एक चोर मकान में घुस जाए और मालिक को गहरी नींद में सोया हुआ पाए तो वह सारे घर का सफ़ाया किये बिना नहीं जाता। यहां तो अन्तर में कितने ही चोरों का निवास है। यदि जीव अज्ञानता की गहरी नींद में सोया रहे तो इस का क्या हाल होगा ? वे तो मिलकर जीव की आन्तरिक पूंजी पर अधिकार जमा ही लेंगे। इस अज्ञानता रूपी अन्धेरे को दूर करने के लिये सद्गुरु के ज्ञान की रोशनी ही सामर्थ्य रखती है। सद्गुरुदेव ही इन चोरों से छुटकारा पाने और जन्म मरण के चक्र से छुड़ाने का साधन बताते हैं। गुरुवाणी में लिखा है:––

गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु ।
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु ॥

सद्गुरु से ज्ञान का दीप मिल गया तो अज्ञानता का अंधेरा दूर हो जाएगा । अन्तर्मानस में प्रकाश छा गया तो सभी विकार रूपी चोर स्वयं ही साहस खो

देंगे। इस प्रकार ज्ञान के दीप की रोशनी में अपना मार्ग प्रशस्त करते हुए जीवन को वास्तव में जीवन प्रदान करना है यही जीव का असली कर्त्तव्य है।

प्रवचन ९. सन्त सहजो बाई जी का कथन है कि:—

॥ दोहा ॥

जब लग चावल धान में, तब लग उपजै आय ।
जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्ति रूप ह्वै जाय ॥

जब तक चावल के ऊपर छिलका होता है तब तक इसे धान कहते हैं। चावल की उपज धान के बोने से होती है। जब चावल को छिलके से अलग कर दिया जाये तब चावल बोने से नहीं उग सकता। संत महापुरुष फ़रमाते हैं कि यह चावल का छिलका ही बन्धन का कारण है। जब छिलका अलग कर दिया जाए तो चावल उगने के बन्धन से स्वतन्त्र हो जाता है। ठीक इसी तरह से जीव का बन्धन जगत् की विषय-वासना रूपी छिलका है। जब तक जीव पर विषयासक्ति का छिलका चढ़ा हुआ है तब तक मनुष्य भी जन्म मरण के चक्र से विमुक्त नहीं हो सकता। वासना का त्याग करने से ही यह जीव जन्म मरण के बन्धन (आवागवन) से स्वतन्त्र हो सकता है। जब वासना रूपी छिलका उतर गया तब इस जीव को मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इसलिए ऐ जीव ! भजनाभ्यास व गुरुभक्ति के ऊखल से मन के ऊपर चढ़े हुए वासना के छिलके को कूट ताकि मन से वासना रूपी छिलका अलग हो जाए। सिवाय इस के जन्म मरण से विमुक्त होने का और कोई साधन नहीं। इसी साधन से ही बुद्धि पर चढ़े हुए मलिन विकारों के अज्ञान का 'अ' दूर हट जाएगा और 'ज्ञान' शेष रह जायेगा। जब ज्ञान की रोशनी मिल गई अथवा अज्ञान से 'अ' का वर्ण हट गया भक्ति रूपी प्रकाश मिल गया तो आवागमन का चक्र समाप्त हो जाएगा।

प्रवचन १०. मालिक का निवास अन्दर है। इसीलिए मालिक की अपने अन्दर खोज करो। जो वस्तु जहां पड़ी हो उस की खोज वहीं से करने पर ही वह सुगमता से मिल सकती है। वस्तु पड़ी हो अन्दर और उसे बाहर गलियों में

ढूँढता फिरे तो वह कैसे मिलेगी ? जैसे कि हरिण की नाभि में कस्तूरी होती है, वह उस सुगन्धि को झाड़ियों में ढूँढता फिरता है । परिणाम यह होता है कि सुगन्धि के स्थान का ज्ञान न होने से झाड़ियों में ही उलझता फिरता है और काँटों से छलनी हो जाता है । इसी प्रकार ही मालिक का निवास मनुष्य के अन्दर हृदय-स्थल है । इसीलिए दिल को दुनिया के मलिन ख़्यालों से रहित करो । मालिक का दर्शन दिल की सफ़ाई व अन्दर की खोज से होगा ।

कितनी भूल है कि अपने ही शरीर में मालिक का निवास होते हुए भी मनुष्य दुःखी बना रहे, सुख शान्ति की खोज मायावी पदार्थों में करता रहे तो वह मिलेगी कहाँ से ? जब तक मालिक के दर्शन घट में न होंगे तब तक पता कैसे चल सकता है कि वास्तव में ही परमात्मा का नूर अपने अन्दर है । मालिक के दर्शन करने से ही पूर्ण शान्ति और सच्चे आनन्द की प्राप्ति होगी । ग़रीब दास जी लिखते हैं कि:—

॥ दोहा ॥

स्वर्ग सात असमान पर, भटकत है मन मूढ़ ।
ख़ालिक तो खोया नहीं, इसी महल में ढूँढ ॥

अर्थात् यह मन स्वर्गों के सुखों में तथा सर्व सांसारिक ऐश्वर्यों में परमात्मा को ढूँढता है । इसीलिए यह अत्यन्त मूर्ख है । अपने आप को मिटा कर अर्थात् बाहरी पदार्थों से चित्तवृत्तियों को हटा कर अपने शरीर रूपी महल में ढूँढ । यहीं पर मालिक विराजमान हैं ।

मालिक का दर्शन करने के लिये मलिन वासनाओं का त्याग करना पड़ेगा क्योंकि परमात्मा को मलिनता प्रिय नहीं । यह मलिनता है विषय वासनाओं की । इन की मलिनता का आवरण हृदय पर छा जाने से दिव्य ज्योति के दर्शन नहीं होते । यह मनुष्य चूंकि परमात्मा का अंश है । परमात्मा सुखस्वरूप आनन्दमय है, अतः मनुष्य के अन्तरात्मा में भी उसी दिव्य आनन्द की लगन कभी न कभी इसे विह्वल बना देती है परन्तु उस आनन्द का स्थान विदित न होने के कारण

बाहर के मायावी पदार्थों में ही खोज करता है। वह दिव्य आनन्द एवं सुख तो घट में ही खोजने से मिलेगा। सुन्दर दास जी फ़रमाते हैंः——

॥ दोहा ॥

सुन्दर अन्दर पैसि करि, दिल में ग़ोता मार ।
तौ दिल ही में पाइये, साईं सिरजनहार ॥

सुन्दर दास जी फ़रमाते हैं कि अपने अन्दर—घट में मालिक को ढूँढो क्योंकि परमात्मा का अपना घर हृदय ही है। जैसे बाहरी रूप में पूजा के लिये धूप, दीप, नैवेद्य की ज़रूरत है वैसे ही आन्तरिक पूजा के लिये दृढ़ विश्वास और अटूट श्रद्धा की ज़रूरत है। घट में विराजमान प्रभु की आरति उतारने के लिये ये दीप, धूप, नैवेद्य हैं। श्रद्धा भावना का दीप जलाने से अथवा श्रद्धा के दीप की रोशनी से हृदय से अन्धेरा दूर हो जाएगा। विश्वास का नैवेद्य जलाने से विषयों की दुर्गन्धि दूर होगी। फिर रोशनी और सुगन्धि में मन स्वयं ही उत्सुकता से हृदय मन्दिर के द्वार पर पहुँचेगा और मालिक का द्वार खटखटा कर किवाड़ खुलवा लेगा। आवश्यकता है नित्य प्रति श्रद्धा और विश्वास के दीप जलाकर पूजा करने की। ग़फ़लत की निद्रा में सोने से, विषय-विकारों की मलिनता में, अज्ञानता के अन्धकार में खोज करने पर कुछ भी प्राप्त न होगा। पुनः सुन्दर दास जी फ़रमाते हैंः—

॥ दोहा ॥

जो जागै तौ पिय लहै, सोय लहिये नाहिं ।
सुन्दर करिये बन्दग़ी, तौ जाग्या दिल माहिं ॥

बन्दग़ी करने के लिये नित्यप्रति नियमानुसार घट मन्दिर की पूजा के लिए सद्गुरु के प्रेम के दीप जलाए व नित्य प्रति अपने मन पर ध्यान रखे तब प्रभु का दीदार सम्भव हो जायेगा।

प्रवचन ११. कई लोग ऐसा पूछते हैं कि पशु योनियां ईश्वर ने दी हैं या स्वयं जीव ने मांगी हैं। इस का उत्तर यह है कि प्रकृति के नियम तथा कर्मानुसार

जीवों को ये योनियां मिली हैं। जैसे मनुष्य के कर्म होते हैं उसी के अनुसार उन को ये योनियां मिली हैं। ईश्वर किसी के साथ पक्षपात नहीं करता और न ही ईश्वर ने किसी को अपनी इच्छा से ये योनियां दी हैं। सन्त महापुरुषों ने अपनी वाणियों में निर्णय दिया हैः—

॥ दोहा ॥

राजा झरोखे बैठि कै, सब का मुजरा लेय ।
जैसा जा की चाकरी, तैसो ही फल देय ॥

जीवों ने जैसे कर्म किए होते हैं ईश्वर ने वैसा ही कर्मों का फल उन्हें दिया है। यदि कर्म नीच हैं तो दण्ड के रूप में पशु योनियाँ भोगनी पड़ेंगी। जैसे कोई मनुष्य अपने अपराधों के लिए अपनी सज़ा को सहर्ष स्वीकार कर लेता है और उस दण्ड के लिए कोई आपत्ति नहीं करता। इसी तरह हरेक जीव अपनी योनि में प्रसन्न है। यदि पशु योनि ईश्वर ने अपनी इच्छा से दी होती तो अपनी योनि में पशु पक्षी इतने प्रसन्न दिखाई न देते। प्रत्येक जीव विषयासक्ति के कारण अपनी योनि में खुश है और प्रत्येक को अपना शरीर प्यारा है। यदि मालिक किसी को ज़बरदस्ती कुत्ता, बिल्ली बना देता तो वे अपने जीवन से तंग आ जाते। ज्ञान न होने के कारण ही पशु योनियों में भी प्रत्येक जीव प्रसन्न हैं, परन्तु यह सब मनुष्य जन्म में अपने किए गए कर्मों की सज़ा है।

ज़रा सोचो मनुष्य जन्म को पाकर अन्तिम समय सुरति का लगाव धन, पुत्र अथवा मकान में अटका रह गया तो क्या उसे सर्प, सुअर अथवा प्रेतादि की योनि न मिलेगी? यदि उसके इस संस्कार (कर्म) से यह योनियां मिलीं तो यह उसका अपना किया हुआ कर्म है अथवा परमात्मा की दी हुई सज़ा। श्री रामायण में लिखा हैः—

॥ चौपाई ॥

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥

श्री लक्ष्मण जी गुह को उपदेश करते हैं कि हे भाई ! कोई भी किसी को सुख दुःख नहीं देता। यह सब अपने किए हुए कर्मों का ही फल है। यह मिथ्या भ्रम है कि किसी के द्वारा दुःख मिला अथवा सुख। मनुष्य जन्म में भी जो सुख अथवा दुःख मिलते हैं अथवा इस शरीर को त्यागने के बाद जो योनियां प्राप्त होती हैं, यह सब मनुष्य के अपने किये कर्मों का फल है। सन्त सहजो बाई जी ने लिखा है कि:—

॥ दोहा ॥

पसु पंछी नर सुर असुर, जलचर कीट पतंग।
सब ही उत्पत्ति कर्म की, सहजो नाना अंग॥

सभी सन्त महापुरुषों का यही उपदेश है। वेद अथवा शास्त्रों का न्याय भी यही है कि पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता, राक्षस, जल में रहने वाले जीव, कीड़े पतंगे--ये सब भिन्न भिन्न प्रकार की योनियां अपने कर्मों से ही पैदा की गई हैं। जैसे किसान खेत में जिस वस्तु का बीज डालता है वैसा ही पौधा फल फूल देता है। ऐसे ही मनुष्य भी जो कर्म करता है, वही फल अन्यान्य योनियों के रूप में भोगना पड़ता है।

इसीलिए सन्तों ने एक ही सुगम साधन बताया है कि सद्गुरु के उपदेशानुसार निष्काम कर्मों द्वारा जीवन को आचरणमय बनाओ। इसी साधन से सभी दुःखों से छुटकारा मिलेगा, आवागमन का चक्र समाप्त हो जाएगा और निज पद को प्राप्त करेगा।

प्रवचन १२. पांडवों से भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने यज्ञ करवाया था जो कि ऋषि श्वपच के भोजन कराने पर आकाश में घण्टा बजा था। यह भी अन्दर का इशारा है यानि योग यज्ञ है। योग यज्ञ के पूर्ण होने पर दसवें द्वार में घंटा बजेगा। भला यह बाहर के घण्टे क्या अपने आप बजते हैं। यह अनाहत का इशारा है।

अर्थात् जो कुछ बाहर की रचना है वही मस्तक से ऊपर अन्दर की रचना है। महापुरुष इस अन्दर की रचना को देखने पर ज़ोर देते हैं। प्रायः यह दृष्टांत

सब ने सुना ही हुआ है कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने पांडवों से यज्ञ करवाया था। उस में श्वपच ऋषि जी सम्मिलित न हुए। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर घंटा न बजा। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने फ़रमाया था कि अमुक स्थान पर श्वपच मुनि जी बैठे हैं उनके आने पर यज्ञ सम्पूर्ण होगा। जब श्वपच मुनि आए तो उन्होंने छत्तीस व्यंजनों को मिला कर भोजन किया। तब आकाश में घंटा बजा। छत्तीस प्रकार के व्यंजनों को मिला कर भोजन करने का अर्थ है सम्पूर्ण वृत्तियों को एकाग्र करना। ऐसे सन्त महापुरुषों द्वारा बताए गये साधनों में से अनाहत शब्द भी एक उत्तम साधन है। जिस के द्वारा अन्दर से भेरी, मृदंग, घड़ियाल आदि के शब्द सुने जा सकते हैं। सन्त महापुरुष इसे योग-यज्ञ कहते हैं। जब तक सम्पूर्ण वृत्तियाँ एकाग्र होकर शब्द को सुनने में लीन न हो जाएँ तब तक इन घण्टों की आवाज़ सुनाई नहीं देती। जब यह सुरति सर्व रसों को त्याग कर एक रस में लीन हो जाती है तो दसवें द्वार से घण्टा बजता है। यह अन्दर के योग यज्ञ के पूर्ण होने का चिन्ह है।

प्रवचन १३. जो मनुष्य किसी से ईर्ष्या या विरोध नहीं रखता और सब से एक चित्त, एक भाव और नम्रता से व्यवहार करता है और किसी भी जड़ या चेतन वस्तु में उसका मन नहीं अटकता—मन का अहंकार और मान जिसने छोड़ दिया है या छोड़ने की कोशिश कर रहा है—लोभ-मोह का भी उसके दिल पर असर नहीं है–आराम और परिश्रम जिसके लिए बराबर हैं–क्षमा और धैर्य्य (सहनशीलता) मालिक की रज़ा में राज़ी रहना जिसका स्वभाव बन गया है और मालिक को मिलने की जिसके दिल में अभिलाषा रहती है, विषय-वासनाओं को जिसने समाप्त कर दिया है और मन को काबू कर लिया है या वश में करने का प्रयत्न कर रहा है—सच्चे मालिक के चरणों में जिसकी प्रीति अचल है, अपने विचारों को जिसने भक्ति के रंग में रंग दिया है—मन और बुद्धि दोनों को मालिक के चरणों में न्यौछावर कर दिया है, भजनाभ्यास में जो अपने चित्त को लगाये रखता है—अपनी निन्दा से दिल में बुराई नहीं आती व मान-बड़ाई सुनकर हर्षित नहीं होता—सन्त सत्पुरुषों के वचन सुनकर आचरण करने का प्रयत्न

करता है—वह संसार में श्रेष्ठ पुरुष है। ऐसा सेवक व ऐसा साधक मालिक को प्यारा होता है।

प्रवचन १४. दुनिया के सामान खाने पीने व बर्तने के जितने भी देखने में आते हैं कुदरत ने मनुष्य के लिए पैदा किये हैं। मनुष्य को खाने पीने और सेवन करने के लिए मनाही नहीं है। मनुष्य खाए पीए और आराम से जीवन व्यतीत करे परन्तु इस बात का ख़्याल रखना ज़रूरी है कि जिस ज़रूरत के लिए पदार्थ बनाए गए हैं उन से उतनी ज़रूरत पूरी करे। किसी भी पदार्थ को सेवन करने या पाने से कोई नहीं रोक सकता, परन्तु उन को इकट्ठा करना, उन में सुरति को लगाना, उनको दिल में स्थान देना यह उचित नहीं है और फिर जिस प्रयोजन के लिए मनुष्य को पैदा किया गया है उस प्रयोजन को पूरा करना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है। जब मनुष्य के लिए खाने पीने के सामान बनाए गए हैं तो प्रश्न यह है कि मनुष्य को उत्पन्न किसलिए किया गया है? इस का उत्तर यह है कि यह भी किसी विशेष कार्य के लिए भेजा गया है—वह कार्य है—मालिक का भजन करने के लिए, परमात्मा की भक्ति करने के लिए तथा उसकी बन्दग़ी करने के लिए मनुष्य को संसार में भेजा गया है। यदि मनुष्य का ध्यान भक्ति व भजन की तरफ लगा हुआ है तब तो उसका खाना पीना पहनना सब सफल है। यदि मनुष्य मालिक की भक्ति नहीं करता और अपने वास्तविक उद्देश्य को भूल गया है तो सन्तों महापुरुषों की दृष्टि में मनुष्य का जन्म लेना ही निरर्थक है क्योंकि मनुष्य संसार में मालिक की बन्दग़ी के लिए ही भेजा गया है। फ़क़ीरों का कौल है:—

॥ शेयर ॥

ख़ुरदन बराय ज़ीस्तन व ज़िकर करदन अस्त।
तू मोतकिद कि ज़ीस्तन अज़बारे ख़ुरदन अस्त॥

मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिये कि मैं खाने-पीने के लिए संसार में आया हूँ। यदि मनुष्य ने ऐसा समझ लिया है तो यह मनुष्य की बड़ी भारी

भूल है। मालिक का भजन करके मनुष्य को अपना जन्म सफल करना चाहिये।

प्रवचन १५. जैसे पीतल को यदि प्रतिदिन गंगा जल से धोया जाए या रेशम में लपेट कर रख दिया जाए अथवा जवाहरात की सन्दूकची में रखा जाए तो परीक्षक की दृष्टि में वह हीरा नहीं बन जाता अपितु उसकी कीमत वही दो पैसे की है। ऐसे ही यदि शरीर को सुन्दर वस्त्रों या आभूषणों से सुसज्जित कर दिया जाय तथा मन सुखैश्वर्यों के भोगों में लिप्त कर दिया जाय, वह जीव दुनियादारी में कितना ही कुशल क्यों न हो, सन्त महापुरुषों की दृष्टि में वह कंगाल है। इस की अपेक्षा सन्त महापुरुषों की दृष्टि में एक कंगाल व्यक्ति जो मालिक के भजन-सुमिरण में चित्त एकाग्र करता है, चाहे वह कितना भी करूप हो वह धनवान् से धनवान् है। इस शरीर का मूल्य तो पीतल की भांति बहुत कम है। सत्पुरुषों का नाता रूहानी होता है। अतः वे रूहानी धन को प्रदान करते हैं। भक्तिमान् जीव ही उन्हें प्रिय हैं।

केवल शरीर तथा शारीरिक भोगों में आसक्त जीव को सत्पुरुषों ने पीतल के समान कहा है। यह शरीर क्षणभंगुर है। इस शरीर की सुन्दरता जो चांद को भी मात करने वाली हो, एक दिन मिट्टी में मिल जायेगी। चाहे इसे कितना संवारो, आभूषणों से सुसज्जित करो परन्तु यह शरीर अन्त में राख की मुट्ठी के सिवाय कुछ नहीं। इसका ज्ञान केवल सन्त महापुरुषों को ही है। साधारण जीव इस स्तर की बुद्धि नहीं रखते।

प्रायः देखा जाता है कि संसार में प्रत्येक प्राणी शारीरिक सुखैश्वर्यों के साधन जुटाने में ही लगा हुआ है। आत्मिक-आनन्द (जो कि उसके लिए आवश्यक है) की ओर तो किसी का ध्यान ही नहीं जाता। इस शरीर के लिए उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थ, वसन तथा निवास के लिए हर समय सामान एकत्र करने की धुन सवार है। इसे यह विदित ही नहीं कि जिस शरीर के लिए इतनी दौड़ धूप हो रही है, उस ने एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। शेष रूहानी धन (भजनाभ्यास की कमाई) ही अपनी निजी पूँजी है। कुम्हार कितनी ही सुन्दर चित्रकारी से बर्तन

क्यों न सजाए, है तो अन्त में मिट्टी ही। ज़रा सी ठोकर लगी कि मिट्टी में मिट्टी मिल गई। जगजीवन साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

मृत मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
ग़ाफ़िल ह्वै फंदा परयौ, जहँ तहँ गयो बिलाय॥

इस मृत्यु लोक में किसी ने भी स्थिर नहीं रहना। जो आया है उस ने जाना है। जीव ग़फ़लत के अन्धकार में पड़ा हुआ है, इसलिए इसे विवेक नहीं।

सन्त महापुरुष ही इस पीतल रूपी शरीर में छिपे हुए आत्मा रूपी हीरे की परख कराते हैं नाम सुमिरण की कसौटी से। आत्मा चाहे कितने मलिन आवरणों में ढकी हुई हो फिर भी वास्तविक आनन्द और आन्तरिक ख़ुशी तो अत्म-ज्योति का दीदार कर लेने में है। आत्मा हीरा है, उस का मूल्याँकन नहीं किया जा सकता।

अतएव इस हीरे की परख नाम की कमाई से करनी है, अविवेक में समय न बिताते हुए, सत्पुरुषों की पावन संगति से इस अनुपम हीरे की संभाल करना ही मानव का असली कर्त्तव्य है।

प्रवचन १६. अनामी स्थान (परमसन्तों का निजी स्थान) गुरु के वचन के अधीन है। वचन मानने वाला मनुष्य अनामी स्थान का अधिकारी है। अर्थात् जो शिष्य अपने गुरु के प्रत्येक वचन को शिरोधार्य कर उसी अनुरूप अपना जीवन बनाता है, मन वचन कर्म से सद्गुरु की आज्ञा का पालन करता है तथा अपने ख़्यालों को सद्गुरु की मौज में लीन कर देता है वही सेवक ही इस परम तत्त्व स्थान पर पहुँचने का अधिकारी बनता है। सन्त सहजो बाई जी का वचन है:—

॥ दोहा ॥

गुरु अज्ञा दृढ़ करि गहै, गुरु मत सहजो चाल।
रोम रोम गुरु को रटै, सो सिष होय निहाल॥

जो सेवक सद्गुरु की आज्ञा में दृढ़ रहता है और गुरु की मति में अपनी समस्त बुद्धि चतुराई विलीन कर देता है, वही निहाल हो जाता है अर्थात् वास्तविक मंज़िल पर पहुंच जाता है। यथाः—

॥ चौपाई ॥

गुन सब गुरु के बचनै माहिं। सहजो सिष जो बिसरै नाहिं ॥

जब शिष्य समस्त आपाभाव सद्गुरु की आज्ञा में खो देता है तो सद्गुरु भी सेवक पर प्रसन्न होकर उसे निज देश, अनामी लोक का अधिकारी समझते हैं, परन्तु वचन मानना और समझना अपने अपने दर्जे और भावना के अनुसार है। जितनी अधिक गुरु के वचनों पर श्रद्धा होगी, उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करेगा। जैसे कि समुद्र में तो जल अथाह है परन्तु जो व्यक्ति जितना बर्तन लेकर वहाँ जाएगा, उतना ही भर कर लौटेगा, समुद्र में कोई कमी नहीं। इसी प्रकार जो शिष्य जितना अधिक सद्गुरु के वचनों पर विश्वास रखेगा और जैसी श्री आज्ञा हो, प्रत्येक श्री आज्ञा को बिना कुछ हानि लाभ सोचने के वैसे ही करता जाएगा वही इस ऊँचे पद पर पहुँचने का अधिकारी बन सकेगा।

प्रवचन १७. हंस मोती चुगते हैं और कव्वे माँस भक्षण करते हैं। अर्थात् वे जीव जिन को सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, वे हंस के समान हैं क्योंकि वे सत्पुरुषों के बताए गए शब्द की कमाई करते हैं अर्थात् श्वासों द्वारा मोती चुगते हैं। मन को वासनाओं से विमुक्त कर के भजनाभ्यास में लगाते हैं, उन को महापुरुषों ने हंस का दर्जा दिया है। इस के विपरीत जिन्होंने सत्पुरुषों की संगति प्राप्त नहीं की तथा मनुष्य जन्म को पा कर विषय वासनाओं में श्वास व्यर्थ गंवा दिये वे मनुष्य जन्म को पाकर भी कव्वे के समान हैं तथा उनको सन्तों ने कव्वे का दर्जा दिया है।

जैसे कि संसार में प्रत्येक जीव एक जैसा आहार नहीं करते--अनेक जीव माँसाहारी हैं और कितने ही जीव शाकाहारी हैं। वास्तव में जीवात्मा का भोजन

धर्म में दृढ़ होना है। ऐसे मनुष्य जिन्हें सत्पुरुषों की संगति प्राप्त कर श्वास रूपी मोती चुगने का रस आता है वे विरले ही होते हैं। साधारणतया मनुष्य एक समान ही शरीर धारण करते हैं परन्तु उनका आहार और व्यवहार अलग अलग है।

सन्त सत्पुरुष काग वृत्ति से हंस वृत्ति बनाने के लिए उपदेश देते हैं। जैसे गुरुवाणी में लिखा है:—

मनमुख नाम विहूणिआ रंगु कसुंभा देखि न भुलु ॥
इसका रंगु दिन थोड़िआ छोछा इस दा मुलु ॥
दूजै लगे पचि मुए मूरख अंध गवार ॥
विसटा अंदरि कीट से पइ पचहि वारो वार ॥
नानक नाम रते से रंगुले गुर कै सहजि सुभाइ ॥
भगती रंगु न उतरै सहजे रहै समाइ ॥

यही भक्ति का रंग चढ़ाना ही मनुष्य का ध्येय है जो सत्पुरुषों की संगति से प्राप्त होता है। इसे प्राप्त कर मनुष्य जन्म के ध्येय को पाना है।

प्रवचन १८. सत्पुरुषों ने संसार को दुःख-रूप कहा है। यह दुनिया दुःखों का घर है। उन्होंने कई प्रकार से दुनिया के दुःखों का वर्णन किया है। अब प्रश्न होता है कि इस दुःख देने वाली दुनिया को ईश्वर ने पैदा ही क्यों किया ? इस का उत्तर यह है कि दुनिया उस को दुःख रूप भासती है जिस के दिल में विचारों की कमी है। विवेक तथा विचारहीन पुरुष ही संसार में दुःखी रहते हैं परन्तु यह दुनिया सत्पुरुषों के लिए (जिन के विचार उत्तम हैं) पानी का बुलबुला—स्वप्न के समान अथवा मदारी का खेल है। वे दिल से दुनिया को असत् मानते हैं। वे संसार में कमल के फूल की तरह पानी से न्यारा रहने का प्रत्यक्ष प्रमाण होते हैं। साधारणतः देखा जाता है कि आग के बिना किसी का काम नहीं चल सकता, परन्तु आग से काम लेते हुए कितनी सावधानी से इसे प्रयोग में लाना पड़ता है। यदि थोड़ी सी ग़फ़लत हो जाए तो अग्नि घर के सभी सामान को जला सकती

है। आग का काम जलाने का है। ज़रूरत इस बात की है कि आग को युक्ति से प्रयोग में लाया जाए। छत्तीसों व्यंजन पकाने के सब काम आग पर ही किए जाते हैं परन्तु युक्ति पूर्वक। आग से अपने आप को भी बचाते हैं और इससे काम भी लेते हैं। इसी तरह से संसार में रह कर माया के साथ युक्ति से व्यवहार रखो। बिना युक्ति के वही माया तुम्हें हानि पहुँचाएगी।

अर्थात् यह दुनिया एक सराय है। सराय में यात्री एक दो दिन ठहरने के लिए आता है। यहाँ उसका यथोचित साधनों से प्रबन्ध किया जाता है। यदि वह यात्री सराय को ही घर मान बैठे, वहाँ से जाने का नाम ही न ले तो भी सराय छोड़कर उसे वहां से जाना ही पड़ेगा—परिणाम यह होगा कि उसका मन उसे दुःखी करेगा। अब वही सराय जिससे उसका हृदय से लगाव हो गया था, तथा सुख रूप प्रतीत होती थी वही दुःख रूप बन गई। यही अविवेक है और इसी का नाम ही अज्ञानता व भ्रम है। इसी से ही मन सुखी दुःखी होता है तथा संसार दुःख रूप दिखाई देता है। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

यह दुनिया दोइ रोज़ की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत॥

यह संसार दो दिन की ज़िन्दगी बिताने के लिए मिला है। इस से प्यार करना अपने आप को दुःख रूप बनाना है। यदि सुख पाने की इच्छा है तो सद्गुरु की पावन संगति ग्रहण करो क्योंकि सत्पुरुष ही संसार में रह कर संसार से अलग रहने का मार्ग बताते हैं। वे स्वयं संसार में रहते हुए भी संसार से न्यारे होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जीव को संसार से न्यारे तथा सुखी रहने की युक्ति बताते हैं।

अभिप्राय यह कि दुनिया दुःख रूप नहीं है। न ही परमात्मा ने इसे दुःख रूप बनाया है परन्तु हमारा मन ही सुख-दुःख का कारण बनता है। परमात्मा ने मन बहलाने के लिये सम्बन्धो दिए, शारीरिक सुखैश्वर्य के लिए रसोपभोग बनाए तथा भिन्न भिन्न प्रकार की सृष्टि को रच कर मनुष्य के लिए शारीरिक आवश्यकताओं

की पूर्ति तथा प्रमोद का साधन बनाया। परन्तु मनुष्य ने इन सब को अपना समझ लिया। इस अपनत्व ने उसे दुःखी कर दिया। जैसे कि गलियों में पड़ी हुई मिट्टी पर गाड़ी चलाओ अथवा पाँव के नीचे रौंद दो, इस से किसी को कोई सरोकार नहीं, किसी के दिल में दुःख का आभास न होगा। उसी मिट्टी से कुम्हार ने बर्तन बनाए। उस कुम्हार के घर के चाहे सारे बर्तन टूट जाएं परन्तु किसी के मन में दुःख का तनिक भी आभास न होगा, केवल कुम्हार ही दुःख अनुभव करेगा। उन्हीं बर्तनों में से एक बर्तन कोई व्यक्ति अपने घर ले आए और उस के हाथ से गिर कर वह बर्तन टूट जाये तो वह व्यक्ति भी दुःख अनुभव करेगा।

बस वास्तविक रहस्य यही है—दुःख का। जब तक अपनत्व की भावना नहीं आई तब तक सुखी है। अपनत्व की भावना आते ही सुख दुःख के रूप में बदल गया। ऐसे ही संसार के सभी पदार्थ मनुष्य के अपने नहीं हैं परन्तु मनुष्य ने इसे अपना मान लिया है तभी दुःख पाता है।

सन्त महापुरुष यही उपदेश करते हैं कि संसार में युक्ति से रहो। किसी भी वस्तु या सम्बन्धी में अपना दिल न अटकाओ, न ही मालिक ने सृष्टि दिल लगाने के लिये पैदा की है। युक्ति से मुक्ति होती है। युक्ति से यह दुनिया सुख रूप हो सकती है।

प्रवचन १६. मनमुख ने अपने मन को गुरु माना हुआ होता है और दिन-रात मन की आज्ञा का पालन करता है। माया में लिप्त जीवों का मन ही गुरु है। जो मन का कहना मानते हैं वे मनमुख हैं। चौरासी लाख योनियां भी मन का कहना मानने पर मिलती हैं। वे लोग मन का कहना मान कर नरकों का सामान एकत्र कर रहे हैं। परन्तु जो गुरुमुख होते हैं वे सद्गुरु की आज्ञा व श्री मौज अनुसार सब काम करते हैं। गुरुमुख पुरुष मन की बिल्कुल भी परवाह नहीं करते क्योंकि मन का कहना मानने से हानि ही हानि है और यह हानि साधारण नहीं। मनुष्य से सांप, गधा, घोड़ा बन जाना कितना बड़ा नुकसान है। इसे प्रत्येक जीव नहीं समझ सकता। सन्त महापुरुषों की दृष्टि में इस के बराबर अन्य कोई नुकसान

नहीं। सर्वसाधारण जीव मन की गुलामी से नहीं निकल सकते। लेकिन गुरुमुखों को इस बात की समझ आ गई है वे स्वयं को मन एवं काम, क्रोध, मोह, लोभ तथा अहंकार आदि की गुलामी से बचा लेते हैं। वे सद्गुरु की सेवा व आज्ञा-पालन करके नीच योनियों में भटकने से बच जाते हैं। गुरुमुख सद्गुरु को ही सब कुछ समझता है। वह अपने तन, मन व धन को सद्गुरु के अर्पण करके अपने जीवन को धन्य बना देता है। इस प्रकार से गुरुमुखों के अनेकों प्रमाण इतिहास में मिलते हैं, जिन्होंने मनमति को त्याग कर सद्गुरु की आज्ञा का पालन किया और पूरा जीवन सद्गुरु की सेवा में व्यतीत किया। यह ठीक है कि इस में कुछ शारीरिक सुखों व मन की मति का बलिदान करना पड़ता है लेकिन परिणाम इसका बहुत अच्छा होता है। मृत्यु के पश्चात् रूह को चौरासी लाख योनियों में नहीं भटकना पड़ता और न ही बाद में पश्चात्ताप ही करना पड़ता है। इसलिए महापुरुषों का उपदेश है कि गुरुमुखों की तरह ज़िन्दगी गुज़ारने में लाभ ही लाभ है। मनमति को त्याग कर सद्गुरु की आज्ञा मान कर अपने जीवन को धन्य बनाना चाहिये।

प्रवचन २०. एकान्त रहने में बहुत लाभ है परन्तु एकान्त सिवाय मालिक के भजन के और कोई ख़्याल दिल में नहीं आना चाहिए। यदि कोई मनुष्य केवल शारीरिक रूप में स्वयं को एकान्त कर लेवे और मन में दुनिया भर के ख़्याल भरे हुए हों, कल्पना-क्लेश से मन अशान्त हो, उसको एकान्त-सेवन का कोई लाभ नहीं है। एकान्त उस समय तक लाभदायक है जब मन को संसारी ख़्यालों से खाली करके उन्हीं ख़्यालों को ईश्वर के भजन-ध्यान में लगाया जावे। मन को सांसारिक वासनाओं से दूर करना आसान नहीं है, जब तक समय के सन्त सद्गुरु की चरण-शरण प्राप्त न कर ली जावे। जब तक सन्त सद्गुरु जीव को सांसारिक इच्छाओं को दूर करने की युक्ति नहीं बताते तब तक यह मनुष्य अपने मन को सांसारिक ख़्यालों से अलग नहीं कर सकता। यदि शरीर को दुनिया के धन्धों से अलग कर भी लिया जाए और मन दुनिया की वासनाओं में उलझा रहे, इस तरह यदि कई वर्ष भी गुज़र जावें तो सन्त सत्पुरुषों की दृष्टि में कोई भी लाभ नहीं है।

क्योंकि भजनाभ्यास में सफलता जो मन के लगने से होनी थी वह प्राप्त न हो सकी। शरीर को एकान्त में रखने पर भी मन कोरे का कोरा रहा। उस मनुष्य का प्रभाव तेली के बैल की तरह है, जिस की आँखें बँधी हैं और जो सुबह से शाम तक चलता रहता है और अपने मन में यह सोचता है कि मैंने काफ़ी सफ़र तय कर लिया है मगर आँख खुलने पर वह वहीं का वहीं होता है। इसी तरह से शरीर को अलग रखने का हाल है। मन के अन्दर संसारी ख़्याल भरे हुये होने पर कभी भी शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। शरीर को एकान्त रखने का मतलब यही होता है कि शान्ति की प्राप्ति हो। दुनिया के सुखों को देखकर प्रसन्न होना व दुःखों को देख कर दुःखी होना यह मन का स्वभाव है। शरीर का इन दुःख-सुख से कोई मतलब नहीं—यह मेरा है, यह तेरा है, यह सब मन की मनौत है।

इसलिये जब तक मन को हर्ष-शोक से, मेरे-तेरे से दूर न कर लिया जावेगा तब तक शरीर को एकान्त वास करने पर भी शान्ति व आनन्द का मिलना कठिन है। इसलिये सन्त महापुरुषों की चरण-शरण में जाकर मन को सांसारिक विषय-वासनाओं से अलग करने का तरीका सीखना चाहिए। तब शरीर के एकान्त में रहने पर मन भी एकान्त पसन्द करेगा। यदि शरीर से संसार का कोई काम कर भी लिया जावे तो भी मन कमल के फूल की तरह संसार की इच्छाओं से अलग रह सकता है और वास्तव में एकान्त का यही मतलब है।

प्रवचन २१. ख़्यालों में 'मेरा मेरा' और 'तेरा तेरा' का होना यह सब माया है। अन्तर केवल इतना है कि 'मेरा मेरा' मलिन माया है और 'तेरा तेरा' शुद्ध माया है। एक लोहे की बेड़ी है तो दूसरी सोने की बेड़ी, परन्तु हैं दोनों बन्धन का कारण। चाहे मनुष्य कितनी ही विद्या क्यों न पढ़ ले, कितना ही चतुर क्यों न हो और अपने को बहुत बुद्धिमान् समझता हो, संसार के काम करने में कितना ही निपुण क्यों न हो, यदि अपने दिल से 'मेरे तेरे' के ख़्यालों को दूर न कर सका, 'मेरी तेरी' की अज्ञानता के चक्र से स्वयं को नहीं बचा सका तो उसकी समझ केवल शरीर तक ही है। जिज्ञासु को इन दोनों से ऊपर उठना है। मैं और तू को

त्यागना ही उत्तम भक्ति है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है:—

॥ दोहा ॥

मोर तोर की जेवरी, बटि बाँधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बंधै, जाके नाम अधार ॥

परन्तु 'मेरे तेरे' को दूसरे शब्दों में 'आपाभाव' भी कहते हैं। मन का आपाभाव बिना सद्गुरु के उपदेश के जीव स्वयं दूर नहीं कर सकता। जिस तरह गन्दी नाली का पानी गंगा जी में मिलकर गंगा रूप हो जाता है इसी तरह से जीव भी जब तक सद्गुरु की आज्ञा व मौज में अपने आपाभाव को समर्पित नहीं कर देता तब तक इस का निस्तार नहीं। सद्गुरु ही जीव के आपाभाव को दूर करके जीव को आनन्दमय तथा सुखरूप बना देते हैं जिस से 'मेरे तेरे' का झगड़ा सदा के लिए दूर हो जाता है।

प्रवचन २२. जो वस्तु जिस जगह रखने के योग्य होती है या जहाँ उसके रखने का स्थान नियत है वहाँ ही वह वस्तु शोभा देती है। उदाहरणतः कपड़े अलमारियों में, आभूषण डिब्बों में बन्द करके तालों में तथा रुपये तिजोरियों में रखने से शोभा देते हैं। पानी अपनी जगह, आग अपनी जगह तथा खाने-पीने की वस्तुएँ अपनी जगह पर सुहाती हैं। मतलब यह कि घर में जो भी सामान होता है सब को उचित स्थान पर रखने में ही घर की सुन्दरता होती है और सब को आराम मिलता है। विपरीत इसके यदि खाने-पीने की वस्तुओं को गन्दी जगह पर, पानी को सन्दूकों में और आग को कपड़ों की अलमारी में तथा आभूषणों को बाहर रख दिया जाए तो सारे घर के लिए मुसीबत पैदा हो जाएगी। अर्थात् जितनी कीमती वस्तु हो वह अन्दर रखी जाती है, उन के लिए विशेष जगह होती है। आभूषण सदा सन्दूकों में, कपड़े अलमारी में तथा अन्य प्रयोग में लाने वाली वस्तुएँ बाहर रखी जाती हैं। इसी प्रकार मालिक का सिंहासन अन्दर (दिल) है और शारीरिक भोगैश्वर्यों का सामान बाहर मौजूद है। सम्बन्धी, धन तथा मकान

आदि से मनुष्य का सम्बन्ध शारीरिक है। इन वस्तुओं को दिल में जगह नहीं देनी। दिल को सत्पुरुषों ने मालिक का सिंहासन कहा है। ईश्वर के सिंहासन पर संसार की असत् वस्तुओं को जगह नहीं देनी। सन्त सत्पुरुष किसी भी वस्तु का प्रयोग करने से मना नहीं करते। शरीर के निर्वाह के लिये सांसारिक वस्तुओं से सम्बन्ध रखो, परन्तु इन सांसारिक वस्तुओं को दिल में स्थान नहीं देना। दिल को मालिक के लिए रखना है।

॥ शेयर ॥

दिल का हुजरा साफ़ कर जानां के आने के लिये।
ख़्याल गैरों का हटा उस के बिठाने के लिये॥

जैसे नाव तो पानी में तैरती है मगर नाव के अन्दर पानी भरने से नाव एक दम डूब जाती है। नाव की तरह संसार में रहना है। यदि दिल में सांसारिक वस्तुओं का लगाव बढ़ गया तो नाव की तरह भवसागर में डूबना पड़ेगा। इन मायावी पदार्थों से लगाव दुःखदायी है। इसलिये मनुष्य तब सुख रूप बन सकता है जब इन मायावी पदार्थों से लगाव न रखे। शरीर का सम्बन्ध संसार से हो और दिल का सम्बन्ध मालिक से हो तभी संसार रूपी पानी के ऊपर रह सकता है।

प्रवचन २३. पूँजी या सम्पत्ति दो तरह की मानी गई है—एक नकद एवं आभूषण दूसरा ज़मीन व मकान अर्थात् चल-अचल सम्पत्ति। यदि कभी एक शहर से दूसरे शहर जाना हो तब रुपया तथा आभूषण एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से ले जाए जा सकते हैं, इसे चल सम्पत्ति कहते हैं। मगर ज़मीन व मकान अचल सम्पत्ति हैं जो साथ नहीं जा सकते। उस दशा में मकान या ज़मीन साथ ले जा सकते हैं कि ज़मीन व मकान को बेचकर उन की रकम (धन-राशि) साथ ले ली जाए।

इसी प्रकार इस मनुष्य का शरीर भी ज़मीन व मकान की तरह अचल

सम्पत्ति है। इस लोक में इस मनुष्य शरीर से कितना ही काम ले लिया जाए मगर अन्त को इस ने साथ नहीं जाना। यह यहाँ रह जाने वाली चीज़ है तथा नाम की कमाई चल सम्पत्ति है जो परलोक में भी साथ देती है। इसलिये सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि बुद्धिमान वह है जिस ने मनुष्य शरीर से साथ ले जाने वाली वस्तु को प्राप्त कर लिया है। साथ ले जाने वाली वस्तु आत्मिक धन है। जिसने मनुष्य शरीर में इस रूहानी धन को प्राप्त कर लिया वह लाभ में रहा क्योंकि मनुष्य शरीर तो इस जीव के साथ कुछ समय तक है। अन्त में इसने अलग हो जाना है फिर क्यों न इससे वह धन कमाया जाए जो मरने के बाद भी काम आवे। अपने मन और शरीर को सद्गुरु के चरणों में सौंप कर भक्ति का धन प्राप्त करना ही बुद्धिमानी है।

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥ तिसु सेवक के कारज रासि ॥

शास्त्र भी मन को सद्गुरु के पास सौंपने का उपदेश देते हैं परन्तु मन तो कोई ऐसी चीज़ नहीं कि उसे अलग से दे दिया जाए। जब शरीर को सद्गुरु की सेवा, भजन अभ्यास व सत्संग में लगाया जावेगा तो निश्चय ही मन भी उधर लगेगा क्योंकि मन तो शरीर के पीछे है। इसलिये शरीर को सद्गुरु-उपदेश की कमाई में लगाकर भक्ति के धन को इकट्ठा करना चाहिये। यह आत्मिक धन ही मनुष्य मृत्यु के पश्चात् साथ ले जा सकता है। इस शरीर से जितनी भी सद्गुरु की सेवा, श्रद्धा व भावना से की जावेगी उतना ही जीव को लाभ पहुँचेगा परन्तु एक बात का ख़्याल रखना ज़रूरी है कि जैसे कई मनुष्य इस भूल में रहते हैं कि अभी तो बहुत समय पड़ा है देखा जायेगा। बाल्यावस्था खेलने में, युवावस्था को संसार की विषय-वासनाओं में व्यर्थ गँवा देते हैं। यदि बुढ़ापे से पहले शरीर नष्ट हो गया या बुढ़ापे में शरीर को किसी रोग ने आ घेरा तो मरने के बाद मनुष्य को खाली हाथ जाना पड़ेगा। यह कितने दुःख की बात है कि एक काम जो मनुष्य अपने जीवन काल में कर सकता था वह उसने न किया। इसलिये प्रत्येक जीव को चाहिये कि बाल्यावस्था से ही आत्मिक धन को संचित करने के लिये अपने शरीर

को, अपने मन को सद्गुरु की सेवा व भजनाभ्यास में लगा दे ताकि यह शरीर जिसने अन्त में यहाँ रह जाना है उससे आगे काम आने वाली सम्पत्ति को अधिक से अधिक इकट्ठा कर लिया जावे; जिस से मृत्यु के पश्चात् इस जीव की चल वस्तु तो साथ जाएगी, जिससे आत्मा को कोई भी कष्ट न उठाना पड़े।

प्रवचन २४. कई लोग हरिद्वार, प्रयागराज तीर्थों आदि पर जाकर कोई खाने की वस्तु छोड़ आते हैं। वास्तव में बात ऐसे है कि प्राचीन ऋषि-मुनियों ने सर्वसाधारण मनुष्यों के लिये किसी तीर्थ या सद्गुरु के चरणों में उपस्थित होते समय किसी एक वस्तु को छोड़ने की रीति को प्रचलित किया था और छोड़ने या त्यागने की वस्तुएँ यह थीं—जैसे काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, निन्दा, ईर्ष्या, तृष्णा, राग, द्वेष, विषय-विकार आदि। अर्थात् तीर्थों पर जाकर अपने मन में यह दृढ़ संकल्प किया जाता था कि आज के बाद मैं क्रोध नहीं करूंगा। इस प्रण के लिए उन्हें चाहे कितना ही नुकसान पहुंचता वह क्रोध नहीं करते थे। इसी तरह से जो भी विकार तीर्थों पर छोड़ा जाता उस से उन की आत्मा में निर्मलता तथा पवित्रता आती और जीवन भर उस प्रण को निभाते। यदि कोई भूल से छोड़ी हुई वस्तु को ग्रहण करता तो सम्बन्धी उसे याद करवाते कि यह चीज़ तुम तीर्थों पर छोड़ आए हो। कहीं कहीं पर लोग ऐसा भी करते थे कि जिस विकार से मनुष्य अधिक दुःखी होता, जिसके कारण मन में सदा अशान्ति रहती वही विकार ही तीर्थों पर छोड़ आता था। परन्तु आजकल देखा जाता है कि यदि कोई वस्तु शरीर के अनुकूल नहीं होती, जिस के खाने से शारीरिक कष्ट होता हो, लोग उस वस्तु का तीर्थों पर जाकर त्याग कर देते हैं। इस तरह से मनुष्य का जीवन कदापि नहीं सुधर सकता। परन्तु अब लोगों ने इसके उलटे अर्थ निकाल लिए हैं। छोड़ना था विषय-विकारों को, मन की बुराइयों को ताकि मन में विषय-विकार कम हों। प्रायः नियम यह होता है कि यदि किसी एक विकार का हृदय से त्याग कर दिया जाये तो शेष विकारों का प्रभाव भी कम हो जाता है और मनुष्य के विचार भजनाभ्यास व सत्संग की ओर सरलता से लगते हैं। आजकल तो केवल प्रथा

मात्र ही रह गई है। सर्व साधारण को इस के वास्तविक अर्थ का पता ही नहीं कि तीर्थों पर क्या छोड़ना चाहिये। इसलिए सन्त महापुरुषों ने जो ऊपर त्यागने योग्य विषय-विकार वस्तुएं बतलाई हैं वे त्यागनी उचित हैं। वे क्या हैं? कि सुरति जो धन के लोभ में या परिवार के मोह में उलझी हुई है जिससे मरने के बाद नीच योनियों में भटकना पड़ता है, इन विचारों को त्यागते हुए मनुष्य भजन अभ्यास में उसे लगाकर अपने जीवन को सफल बना सकता है।

प्रवचन २५. मनुष्य को चौरासी लाख योनियों में श्रेष्ठ माना गया है क्यों कि यह भोक्ता भी है और कर्त्ता भी। मनुष्य जो भी कर्म करना चाहे कर सकता है परन्तु पशु-योनियां अपने किए कर्म को भोग रही हैं। वे केवल भोक्ता हैं। मनुष्य तथा पशु-पक्षियों में बड़ा अन्तर है। पशु योनियां खाने के विषय में भविष्य की चिन्ता नहीं करतीं कि हमने कल क्या खाना है? इन्हें केवल उसी समय का ख़्याल होता है। पशु या पक्षी अपने नियत आहार से भूख मिटाने के सिवाय और कुछ नहीं खाते परन्तु मनुष्य इतना श्रेष्ठ होने पर भी लोभ का शिकार बना हुआ है।

"सामान सौ बरस का, पल की खबर नहीं"

पहले तो इतना लालच कि सैंकड़ों वर्षों का सामान इकट्ठा करेगा। इस लालच ने मनुष्य के ज्ञान-चक्षु बन्द कर दिए हैं। क्या कभी किसी पशु-पक्षी ने भी आठ दिन के लिये भोजन इकट्ठा किया है? यदि वे संचित नहीं करते तो क्या वे भूखे रह जाते हैं परन्तु मनुष्य को सन्तोष नहीं है। मनुष्य लोभ में इतना घिरा हुआ है कि धन, सामान, मकान आदि के होने पर भी तृप्ति नहीं होती। कितने आश्चर्य की बात है कि पशु-पक्षी तो केवल एक समय के खाने के सिवाय दूसरे समय को चिन्ता ही नहीं करते परन्तु मनुष्य अधिक से अधिक धन इकट्ठा करने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता। लोभ में फंसकर अपने वास्तविक उद्देश्य को भूल बैठा है। मनुष्य जन्म की विशेषता तो तब है जब मनुष्य भोग योनियों से श्रेष्ठतर कर्म करे क्योंकि मनुष्य जन्म श्रेष्ठ कर्म करने के लिए तो मिला है। इस

जन्म में श्रेष्ठ कर्म न किए तो फिर कब अवसर मिलेगा। मनुष्य श्रेष्ठ कर्म कर के ही मालिक से मिल सकता है और जन्म-मरण के चक्र से छूट सकता है। जब सत्पुरुषों की संगति से ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो लोभ व तृष्णा के विचारों से मनुष्य अपने को स्वतन्त्र कर सकता है। ज्ञान की प्राप्ति पर अज्ञानता के विचार अपने आप ही विदा हो जावेंगे।

प्रवचन २६. सद्गुरु अपने सेवकों को जो उपदेश देकर आचरण के लिए फ़रमाते हैं वह निश्चय उसके लिए लाभदायक होता है। यह ठीक है कि मन इन बातों को पसन्द नहीं करता। भजन-अभ्यास, सत्संग व सेवा यह मन के विरुद्ध कार्य हैं लेकिन सद्गुरु जीव के हित की सोचते हैं। जीव के दिल में जन्म-जन्मान्तरों से मलिन वासनाएँ भरी पड़ी हैं और जीव को इसका ज्ञान नहीं है। यही वासनाएं ही दुःख का कारण हैं। चौरासी लाख योनियों का बीज वासनाएं ही हैं। इन वासनाओं को तभी समाप्त किया जा सकता है जब क्रियमाण कर्म श्रेष्ठ किए जावें। सद्गुरु ही जीव से निष्काम कर्म करवा सकते हैं और वासनाओं के बीज को समाप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार कोई भी अनाज आग की भट्ठी में भून दिया जाए तब वह उग नहीं सकता, इसी तरह से भजनाभ्यास, सत्संग-सेवा व नम्रता से जीव के हृदय में जब सद्गुरु के प्रेम की अग्नि पैदा हो जाती है तब इस प्रेम की अग्नि से विषय वासनाओं का बीज जल जाता है। इसलिए सद्गुरु जीव को जितने भी उपाय बताते हैं सब का अर्थ यह होता है कि जीव के हृदय में प्रेम की जागृति हो। वैसे भी यह नियम होता है कि लोहे को लोहा काटता है। संसार के मोह को सद्गुरु के प्रेम से समाप्त किया जा सकता है।

॥ दोहा ॥

मन पंछी तब लग उड़े, विषय वासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लग आवै नाहिं॥

सद्गुरु का प्रेम दिल में आने से मन की शक्ति क्षीण पड़ जाती है। इसलिये

सद्गुरु के प्रेम को सब साधनों से उत्तम व श्रेष्ठतम माना गया है।

प्रवचन २७. सन्त सत्पुरुष वेदान्त को बुरा नहीं कहते और न ही वेदान्त के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं परन्तु वेदान्त की केवल चर्चा ही करते रहना और उसे अपने आचरण में न उतारना—यह हमें प्रिय नहीं है। हमारे मत में तो वेदान्त के अद्वैत भाव को अपने दैनिक नियमों में स्थान देना चाहिये। कथनी की सुन्दरता करनी में प्रकट हुआ करती है।

हर एक मनुष्य के मस्तिष्क में ईश्वरीय ज्ञान तो विद्यमान है किन्तु संसार की आसक्ति के कारण वह ऐसे आच्छादित हो गया है जैसे धुएं से आग। यदि वह ज्ञान ढका हुआ न होता तो वह हमारे कार्य व्यवहार में बड़ा सहायक होता। मनुष्य एक क्षण भी बिना कर्म किये रह नहीं सकता परन्तु कर्म श्रेष्ठ वह है जो ज्ञान पूर्वक किया जाये। कर्म और ज्ञान दोनों का नाश नहीं। इन दोनों का एक साथ रहना मानव को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है। केवल शुष्क ज्ञान की चर्चा करते रहना लाभदायक नहीं और ईश्वरीय ज्ञान को बिना प्राप्त किए जो कर्म किये जाते हैं वे बन्धन के कारण होंगे। सर्वश्रेष्ठ कर्म उसे ही कहा जाता है जिस के द्वारा निर्मल ज्ञान प्राप्त हो।

परमार्थ की सफलता केवल वाणी के द्वारा ज्ञान भरी बातों के कहने से नहीं मिला करती। ज्ञान के साथ यदि भक्ति की शक्ति कार्य नहीं कर रही तो मानो जीव एक ऐसी गाड़ी में बैठ कर जाना चाहता है जिस का एक ही पहिया है। भक्ति भावनाओं से ओत-प्रोत ज्ञान एक ऐसा हंस है जो दोनों पंखों को फड़फड़ाता हुआ आकाश मार्ग से सीधा निकल कर निज धाम में जा पहुँचता है। यही धाम ही परमहंस सन्त-सत्पुरुषों का निज स्थान होता है जहाँ से कभी भी लौटना नहीं होता।

इसीलिए गुरुमुख का यही कर्त्तव्य है कि जीवन को सत्पुरुषों के आदेशानुसार आचरणमय कर्त्तव्य-निष्ठ बनाए ताकि ध्येय को प्राप्त कर सके। इसी को आचरण-मय वेदान्त कहते हैं।

प्रवचन २८. जो मनुष्य गुरु की आज्ञा नहीं मानते और गुरु की सेवा नहीं करते, वे मन की आज्ञा से सारा जीवन अपने कुटुम्ब की सेवा तथा अपने शरीर के भरण-पोषण में लगे रहते हैं सेवक तो वे फिर भी कहलाते हैं परन्तु गुरु के सेवक नहीं, वे मन के सेवक हैं ।

यह समझ सत्पुरुषों की संगति से ही प्राप्त होती है । प्रायः देखा जाता है कि संसार में कुछ प्राणी ऐसे होते हैं; जो अपनी मनमति अनुसार धर्म-कर्म करते हैं और इसी साधन से मोक्ष की प्राप्ति करना चाहते हैं । इन धर्म कर्मों से जो कि मनमति द्वारा किए गए हों—इन से अहंकार उत्पन्न होता है जो जीव के किए दान, शुभ कर्मों के फल को साथ ही साथ नष्ट किये जाता है। अर्थात् जिन कर्मों से मोक्ष मिलना था उसके बदले में अहंकार बढ़ गया—तो फिर मोक्ष कैसा ?

इस जन्म में अथवा आज से करोड़ों जन्म पश्चात् जब तक यह जीव गुरुदेव की आज्ञानुसार जीवन कर्मण्य नहीं बनाएगा उसे मोक्ष नहीं मिल पाएगा । क्योंकि कोई शूरवीर ही इन बन्धनों को काट सकता है । जब तक जिज्ञासु के मन में संसार से प्रीति है तो वह अवश्य जन्म लेगा । परन्तु जब तक उसे मृत्यु लोक से निराश होकर संसार से वैराग्य नहीं होगा, उसे शान्ति कदापि नहीं मिलेगी ।

सद्गुरु ही इन रहस्यों को जानते हैं तथा शिष्यों को इस अहंकार रूपी पिशाच से बचने का उपाय बता कर मोक्ष का साधन बताते हैं तथा मंज़िल तक पहुँचाते हैं ।

प्रवचन २६. सत् वस्तु भीतर है उस का संग करना ही मानव जन्म का परम ध्येय है । बाहर के सत्संग उसी दिशा की ओर हमें ले जाने में सहायता देते हैं । सत् वस्तु क्या है ? आत्मा-सद्गुरु उनके साथ जो साधन एकाकार करावे, उन से मिलावे वह वस्तुतः सत्संग है ।

यह सत् वस्तु मनुष्य के अपने अन्दर है । क्योंकि मनुष्य स्वयं सत् चेतन है, उस सच्चिदानन्द घन की अंश है । सत्-चित्-आनन्द से बिछुड़ कर सत्-चित

बना परन्तु सत् का ज्ञान न होने से केवल चित् (चेतन) ही अपने आप को समझ बैठा । यह चेतनता केवल मानव जन्म को पा लेने से नहीं–कि विवेक और बुद्धि मिल गई तो चेतन बन गया । चेतन का वास्तविक अर्थ वह चैतन्यता है कि अपने आप को जाने कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मेरा असली उद्देश्य क्या है ?

यह प्रथम शब्द सत् तथा अन्तिम शब्द आनन्द को भूल कर केवल मध्य के शब्द चित् को अपना स्वरूप समझता है। केवल बुद्धि विवेक से कार्य लेना ही चेतनता नहीं। बुद्धि तो असत्यता के विषय में भी सोच सकती है। मध्य के शब्द चित् को अपना रूप समझते हुये जीव मझधार में फँस गया है। अब हुआ क्या–जीव परमात्मा से बिछुड़ कर जीवात्मा बना–आत्मा को भुलाकर केवल जीव बन गया। कितनी बड़ी भूल है कि अन्य पशु योनियाँ भी जीव कहलाती हैं और मनुष्य भी स्वयं को जीव समझ बैठा है ।

अपने स्वरूप की पहचान करवाने के लिये ही सत्पुरुषों की संगति की आवश्यकता है। सत्संग अर्थात् सन्तों का संग। सत्पुरुषों का संग करने से ही अनुभव होता है कि बाहरी दुनिया क्या है और आन्तरिक जगत् क्या है ? जो दिव्य ज्योतियां मनुष्य के अन्दर विद्यमान् हैं उन्हें सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि रूपों में बाहर प्रकट किया। जीव बनने के कारण इसे अपनी शक्ति भूल चुकी है तथा वह सांसारिक विमोहक दृश्यों को ही अपना समझ बैठा है। सत्पुरुष यह ज्ञान देते हैं कि जो कुछ बाहर की रचना है इस से भी असंख्य गुणा अधिक दृश्य अन्दर विद्यमान् हैं। अन्दर की रचना की एक किरण के बराबर यह दुनिया की झिलमिलाती माया के सभी दृश्य हैं। यह बाहरी दृश्य अन्दर के दृश्यों की परछाई मात्र हैं ।

सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि जो ग्रहण करने योग्य वस्तु है उसे प्राप्त करना है। परछाई को कौन पकड़ सकता है। इसे पकड़ना एक असम्भव काम है। परछाई से किसी के रूप की पहचान कैसे हो सकती है ? जब किसी बल्ब अथवा लैम्प की ओर मुँह होगा, परछाई का आकार छोटा बनेगा, जब उनकी ओर से मुंह

मोड़कर चल पड़े तो परछाई की लम्बाई अधिकाधिक होती जाएगी। ऐसे ही इस संसार के दृश्यों की रचना है कि जब तक आन्तरिक ज्योति को देखने की ओर ध्यान नहीं जाता तब तक दुनिया के दृश्य अत्यन्त लुभावने और आकर्षक लगते हैं। जब आत्मज्योति की ओर ध्यान गया तो बाहरी दुनिया के आकर्षक दृश्यों का रंग फीका तथा तुच्छ नज़र आने लगा। यही है सत्-असत् का विचार, जो सत्पुरुषों की संगति से ही ज्ञात होता है। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज परम सखा अर्जुन को फ़रमाते हैं:—

॥ शेयर ॥

हक फ़ना से पाक है बातिल नहीं रखता वजूद ।
आरिफ़ों ने खूब खोला उकदा–ए–बूद–ो–नबूद ॥

मख़ज़ने–इसरार २–१६

अर्थः—जो सत् है, उस का कभी नाश नहीं होता और जो असत् है उसका कोई अस्तित्व नहीं। इन दोनों अर्थात् सत्-असत् का भेद ज्ञानी पुरुषों ने खूब देखा और विचारा है।

सत् वस्तु आत्मा है क्योंकि इसी के आधार पर शारीरिक रचना हुई है और असत्–शरीर है। इसी का नाम सत् असत् का ज्ञान है और यही गुप्त रहस्य सत्पुरुषों के संग 'सत्संग' और बतलाए हुए मार्ग से प्राप्त होता है।

प्रवचन ३०. पारस का सहज स्वभाव ही लोहे को सोना बनाना है। जब भी लोहा पारस से स्पर्श करेगा, सोना बन जाएगा। ठीक इसी प्रकार महापुरुषों की अवस्था होती है। महापुरुष तो पारसमणि के समान होते हैं जो व्यवहारिक काम करते हुए भी जिज्ञासुओं को सहज-स्वभाव से पार उतार देते हैं। यह उनकी असीम कृपा है कि वह देश-देशान्तरों में जाकर अपनी दया व मेहर से सेवक का बेड़ा पार कर देते हैं। शिष्य का भी कर्त्तव्य है कि वह गुरु-चरणों में पहुँच कर लाभ उठावे। वे लोग भाग्यशाली होते हैं जो गुरु-चरणों में पहुँच कर लाभ उठाते हैं।

प्रवचन ३१. कुछ लोगों का ऐसा मत है कि मुक्ति अस्थायी है क्योंकि इस संसार में जितनी आत्माएँ आई हुई हैं वे गिनी हुई हैं। एक एक आत्मा के मुक्त हो जाने से एक दिन ऐसा आएगा कि कोई भी जीवात्मा भव बन्धन में न रह जाएगी। वास्तविक रहस्य यह है—कि गिनती क्या आत्माओं की होगी; विचारों की नहीं ? वास्तव में जितने भी जीव हैं उनके उतने ही विचार हैं। सच्ची बात तो यह है कि एक एक जीव के अनेक अनेक विचार हैं। मोक्ष तो तब मिलेगा जब सब विचार समाप्त हो जाएँगे। इसीलिए सद्ग्रन्थ कहते हैं कि संचित विचार ही जन्म और मृत्यु का बार बार कारण बनते हैं।

विचार भी अनेक प्रकार के होते हैं परन्तु इन विचारों में भी गुप्त रहस्य है। जो विचार मोह माया से युक्त होते हैं, वही विचार आवागमन के हेतु होते हैं परन्तु जो विचार निष्काम कर्म में लगे हुए हों वह मुक्ति का कारण बनते हैं। विचार तो हर समय हर घड़ी कोई न कोई तो आते ही रहते हैं; यहाँ तक कि सोये हुए भी विचारों के स्वप्न बनते हैं। यह विचार क्या हैं ? किसी वस्तु की इच्छा करना ही विचारों का स्वरूप है। जब किसी को पाने की चाह मन में उत्पन्न हुई तो मनुष्य उन्हीं विचारों में लीन हो गया। यही विचार ही संकल्पों-विकल्पों का रूप बन गए और यही संकल्प विकल्प ही अन्त समय अन्यान्य योनियों का कारण बन जाते हैं। मृत्यु समय जैसा ख़्याल दिल में आया वही योनि उसे प्राप्त करनी पड़ी। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास॥

अर्थात् जितना भी कुटुम्ब तथा शारीरिक सम्बन्धी वस्तुओं से नेह बढ़ाते जाओ उतनी ही आशा बढ़ती जाती है। इसीलिए इस पसारे को न बढ़ाते हुए कम करना चाहिए। जिन्होंने भी इस दुनियावी वस्तुओं से लगाव बढ़ाया उन्हें अन्त समय यहाँ से निराश होकर पश्चात्ताप करते हुए जाना पड़ा।

प्राचीन काल में सती प्रथा प्रचलित थी। एक सती नारी पति की मृत्यु पर उसकी चिता में ही जल कर भस्म हो जाती थी। इस प्रथा को अध्यात्म-पक्ष से लिया जाए तो इस का तात्पर्य यह था कि सुरति और शब्द का पत्नि तथा पति का नाता है। सुरति रूपी सती अपने शब्द रूपी पति में एकाकार हो जाने के लिये अपने को तृष्णा, वासना, काम, क्रोधादि के संकल्प-विकल्पों की चिता बना कर उस में बैठ जाए। अपने को योगाग्नि में दग्ध कर के शब्द रूपी पति से जा मिले। वास्तव में यही सती प्रथा का भाव था कि अन्तिम मोक्ष की प्राप्ति हो जाए। सभी संकल्प विकल्प शब्द में समा कर एक रूप बन जाएं जिस से आवागमन के दुःखों से छुटकारा मिले। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपड़ की सार ॥

केवल नाम को जपने की आशा दिल में रख कर दूसरी आशाओं का अन्त करना है। यदि अन्य आशाएं दिल में घर कर गईं तो चौपड़ की खेल के भांति कभी न समाप्त होने वाला चक्र आरम्भ हो जाएगा। इस चक्र से निकलना एक असाध्य प्रश्न बन जाएगा।

प्रभु का नाम सुमिरण करने से प्रभु की प्राप्ति होती है। जब मालिक की प्राप्ति हो गई तो मुक्ति स्वयमेव हो गई तो फिर मोक्ष की प्राप्ति में साधन शेष न रहा।

प्रवचन ३२. यदि कोई सेवक अपना तन-मन-धन अपने सद्गुरुदेव जी को अर्पित कर चुका है फिर भी यदि वह यह आशा मन में रखे कि अमुक कार्य तो भगवान् मेरा पूरा कर दें या ऐसी कृपा करें जिस से मेरा भला हो जाए इसका भाव यह हुआ कि सेवक को अपने मालिक पर अनन्य विश्वास नहीं। उसने मन में अपना कोई अन्य आधार भी बना रखा है जिसके सुधार के लिए वह प्रयत्नशील

रहता है। यह नितान्त भूल है क्योंकि जब शिष्य ने तन-मन और धन समर्पित कर दिये हैं फिर उस के पास शेष बचा ही क्या जिसका वह सुधार चाहता है ? यह सब मन-माया की चाल होती है जो जीव को भक्ति मार्ग से भटकाती है।

प्रवचन ३३. सगुण धरती और निर्गुण पानी है। पानी धरती के बिना नहीं रह सकता और न ही वह मिल सकता है। इस प्रकार सगुण का ध्यान करना मानो कुआँ खोद कर पानी प्राप्त करना है। सगुण पूजा से ही सब कुछ प्राप्त होगा। यदि साधक निर्गुण उपासना करे और सगुण भक्ति को न अपनाए तो उसे न तो सगुण साकार ईश्वर के दर्शन होंगे और न ही वह निर्गुण तत्त्व को प्राप्त कर सकेगा। श्री रामचरितमानस में लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भांति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छ सुख सुन खगराई। रहि न सकै हरि भक्ति बिराई॥

सगुण पूजा ही मालिक की प्राप्ति का सरल साधन है। ऐसे समझो धरती सगुण है जिसका रंग रूप ठोस पदार्थ के रूप में देख सकते हैं तथा आकाश निर्गुण–निराकार तत्त्व है जिसका कोई रंग रूप दिखाई नहीं देता। अब यदि आकाश को कोई अपनाए अथवा उस पर मकान अथवा स्थान बनाना चाहे तो क्या बना सकेगा ? कदापि नहीं। बिना पृथ्वी के आकाश में कुछ भी नहीं बन सकता। इसके साथ ही यदि हम धरती के कुछ टुकड़े को खरीद कर उस पर भवन निर्माण करते जाएँ वह भवन चाहे दस मंज़िल का बनाएँ अथवा पचास का– अब तो धरती के साथ आकाश भी अपना बन गया। इसी प्रकार ही सगुण की पूजा से निर्गुण तत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है। बिना सगुण पूजा के आत्म दर्शन नहीं हो पाएंगे। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

घट घट मेरा साईंयां, सूना घट नहिं कोय।
बलिहारी वा घट के, जा घट परगट होय॥

अर्थः—प्रभु तो हर एक प्राणी के हृदय में विराजमान हैं। कोई भी हृदय ऐसा नहीं जहाँ पर प्रभु विराजमान न हों परन्तु वही हृदय धन्य है जहाँ पर प्रभु प्रकट हुए हैं अर्थात् जिस ने मालिक का दीदार घट में कर लिया है। जैसे पानी तो पृथ्वी के नीचे हर जगह मौजूद है परन्तु प्यास तो कुएँ अथवा बावली के स्थान से ही मिट सकती है जहां पर पानी प्रकट हो चुका है। इसी प्रकार ही सन्त सत्पुरुषों ने तो आत्म-साक्षात्कार कर लिया होता है, उन्हीं की शरण में जाने से अथवा उनकी उपासना से ही निराकार स्वरूप के दर्शन हो सकते हैं।

प्रवचन ३४. दिल सागर के समान है। इस में बुलबुले जीव के संकल्प-विकल्प और विचार हैं। ये विचार ही अन्त समय यमदूत बन जाते हैं। जिस मनुष्य ने संकल्प-विकल्प समेट लिये—मानो उसको मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इन विचारों को अपने जीवन काल में ही समेटना है। यदि विचार साथ चले गये तो वे वासना का तूफ़ान खड़ा कर देते हैं। मृत्यु के पश्चात् यह और भी बढ़ जाते हैं। वासना अनुसार ही दूसरा जन्म मिलता है। इसीलिए इस जन्म में ही वासनाओं का अन्त करना चाहिए।

प्रवचन ३५. श्री रामचरितमानस के लंका काण्ड में श्री रामचन्द्र जी रामेश्वर में शिवलिंग स्थापन करते समय उपदेश देते हैं:—

॥ चौपाई ॥

शिव द्रोही मम दास कहावै। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावै॥

शिव द्रोही अर्थात् शिव जी में श्रद्धा न रखने वाला वही है जिसका शिव नेत्र न खुला हो। जिस का तीसरा नेत्र बन्द है वह कदापि अपने इष्टदेव आत्मदेव को नहीं मिल सकता अर्थात् उनका दास नहीं कहला सकता। गोस्वामी तुलसी दास जी ने गुरु-सेवा कर के उन से शिव नेत्र खोलने अर्थात् सहज समाधि सीखी। तब उन्होंने अपने अन्दर सर्वव्यापी प्रभु राम को पाया। बिना सहज समाधि के जीव आत्मदर्शन नहीं कर सकता। इस युक्ति का ज्ञान साधक को पूर्ण सद्गुरु द्वारा

ही प्राप्त हो सकता है।

प्रवचन ३६. पिण्ड देश और ब्रह्माण्ड देश क्या है, मानो कुरुक्षेत्र की रण भूमि है जहाँ एक ओर पिण्ड देश में दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन—यह ग्यारह अक्षौहिणी सेना दुर्योधन की स्थित है। ऊपर ब्रह्माण्ड देश में आँखों के मध्य देश से आरम्भ होकर सत्य लोक तक सात स्थान हैं। यही पांडवों की सात अक्षौहिणी सेना है। अब जीव का धर्म है कि वह अपने को धनुर्धारी पांडव-पुत्र अर्जुन बना ले और भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज को सारथी कर ले। अपनी सुरति रूपी रथ को दोनों सेनाओं के मध्य में ठहरा कर त्रिकुटी में सद्गुरुदेव जी महाराज का ध्यान जमावे तभी कौरव दल रूपी अनन्त विषय वासनाओं का अन्त हो जायेगा। उनकी कृपा-दृष्टि और आशीर्वाद के बिना युद्ध में विजय प्राप्त न होगी। इस का पूर्ण रहस्य सन्त सत्पुरुष ही बता सकते हैं।

प्रवचन ३७. जिस प्रकार प्रकृति सब किसी को सूर्य, वायु, चन्द्रमा की रोशनी और शीतलता, आकाश, जल, अग्नि आदि पदार्थ समान भाव से देती है। उनके लिए ऊँच-नीच, अमीर और ग़रीब किसी के लिये कोई पक्षपात नहीं है। वे सब के लिए समान रूप से अपना कार्य कर रहे हैं चाहे कोई उनसे अधिक लाभ ले अथवा कम। यह सब मनुष्य की अपनी प्रवृत्ति पर निर्भर है। इसी प्रकार सत्यनाम भी इन प्राकृतिक तत्त्वों की भांति स्वाभाविक है। पूर्ण सद्गुरु इस सत्यनाम के दाता हैं। उन्हीं से ही इसे प्राप्त किया जाता है। यह सत्यनाम सब के लिये सम है, सब को समान प्रकाश देने वाला है। गुरुवाणी में आया है कि:—

बीज मंत्रु सरब को गिआनु ॥ चहु वरना महि जपै कोउ नामु ॥
जो जो जपै तिस की गति होइ ॥ साध संगि पावै जनु कोइ ॥

सत्पुरुषों के बताये हुए सत्यनाम को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों में से जो प्राणी भी श्रद्धा विश्वास से जपता है वही आवागमन के चक्र से विमुक्त हो जाता है। यहाँ ऊँच-नीच, अमीर-ग़रीब का कोई भेद भाव नहीं। यह

तो अपनी अपनी कमाई पर निर्भर है जो जितनी अधिक कमाई करेगा उतना ही अधिक आत्मिक उन्नति की ओर बढ़ता जाएगा। अतएव इस सत्यनाम को सत्पुरुषों से प्राप्त कर इस की कमाई करना ही मानव जीवन का ध्येय है।

प्रवचन ३८. दोनों भौहों के ऊपर मस्तक में त्रिकुटी का स्थान है। यह त्रिकुटी आकृति में लंका के तुल्य त्रिकोण सी बनी हुई है। लंका में पहुँचने वाले अकेले पवन-पुत्र श्री हनुमान जी थे। पवन शब्द 'अजपा जाप' की ओर संकेत करता है। हनुमान का अर्थ है मान का हनन करना अर्थात् मान का हनन करके अजपा जाप का साधक ही अपने इष्टदेव भगवान के ध्यान में अपने आप को संकल्प विकल्पों से शून्य कर के त्रिकुटी देश में पहुँचा सकता है। वहाँ पर ही सुरति रूपी सीता को भगवान राम का सन्देश देगा और फिर अहंकार रूपी रावण के हाथों में जकड़ी हुई सीता को उस के पंजे से मुक्त करा कर राम से मिला सकता है। इस रहस्य का विस्तार सन्त सद्गुरुदेव जी ही समझा सकते हैं।

प्रवचन ३९. साधारणतः देखा जाता है कि दुनिया के कामों में सब अपने अपने काम की समझ रखते हैं। जैसे एक दुकानदार अपने सामान को ख़रीदने व बेचने की समझ रखता है परन्तु वही दुकानदार न्यायालय के नियमों को नहीं जान सकता। इसी तरह एक मजिस्ट्रेट या वकील जो न्यायालय के कामों में बहुत निपुण है वह दुकानदारी के काम को नहीं जान सकता। इसी प्रकार से सब अपने अपने कामों में निपुण होते हैं। ऐसे ही दुनियादार या संसारी लोग दुनिया के कामों में भले ही निपुण हों अथवा समझदार हों परन्तु परमार्थ के कामों में उन की समझ काम नहीं करती। परमार्थ के कार्यों से सन्त महात्मा ही अच्छी तरह परिचित होते हैं। कोई भी मनुष्य मन व काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकारादि से स्वयं नहीं छूट सकता। धन एकत्र करना, विद्या पढ़ना या किसी प्रकार का गुण ग्रहण करना—ये सब बुद्धि की सीमा में सीमित हैं। बुद्धि से संसार के सब काम किये जा सकते हैं परन्तु काम, क्रोध, लोभादि व मन या मन के विकारों को समझना बुद्धि का काम नहीं।

आध्यात्मिक विद्या बुद्धि से परे की विद्या है और बुद्धि जो मन व इन्द्रियों के अधीन हो चुकी है तथा इन्द्रियों व मन ने इस को क्षणभंगुर सुखों में उलझा रखा है, वह आत्मिक विद्या को कैसे समझ सकती है। बुद्धि से धन तो बढ़ाया जा सकता है, परिवार के मोह में फंसाया जा सकता है लेकिन इनसे दूर नहीं किया जा सकता। इस बात को समझना साधारण जीवों की बुद्धि से परे है। विषयासक्त बुद्धि इस अध्यात्म-विद्या को कैसे समझ सकती है। अध्यात्म-विद्या का बोध सद्गुरु से ही जीव को मिलता है। बिना सद्गुरु के जीव ब्रह्मविद्या को नहीं जान सकता। ब्रह्मविद्या या अध्यात्म-विद्या के समझने से ही जीव आत्मा के देश में पहुँच सकता है। यह काम जब भी होगा, सद्गुरु की कृपा से ही होगा। परमार्थ दृष्टि रखनेवाले सद्गुरु ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, मन और विषय विकारों से छूटने का उपाय बता कर परमार्थ पथ पर चलने का इस जीव को आदेश देते हैं। जो जीव सद्गुरु के बताए हुए नाम-उपदेश की कमाई करते हैं वे सरलता से इन मानसिक विकारों से छूट कर आत्मा के देश में पहुँच जाते हैं।

प्रवचन ४०. इस जीव को यह पता नहीं कि मैं कौन हूँ, संसार में किसलिए आया हूँ और मैंने कहाँ जाना है। यदि कोई मनुष्य यात्रा समय अपने निवास स्थान से दूर यह नहीं बता सकता कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ और मैंने कहाँ जाना है तो उसे सब बुद्धिहीन ही समझेंगे। इसी तरह इस जीव को भी स्वयं का कुछ पता नहीं कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, किस उद्देश्य से आया हूँ और मैंने अन्त में कहाँ जाना है? सन्त महापुरुषों की दृष्टि में यह जीव की अज्ञानता है। शास्त्रों में इस जीव को ईश्वर का अंश कहा गया है। वह ईश्वर सब में व्यापक है। श्री रामायण में भी लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी। सत चेतन घन आनँदराशि ॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

गोसाईं तुलसीदास जी कहते हैं कि पारब्रह्म परमेश्वर नाशरहित (अविनाशी)

सदा सत् और चेतन है तथा वह आनन्द का भण्डार, सब जगह व्यापक, कण कण में समाया हुआ सब के हृदय में विराजमान होते हुए भी संसार के सभी जीव दुःखी दिखाई देते हैं। इस का कारण ही यही है कि जीव को स्वयं का कुछ भी ज्ञान नहीं कि मैं ईश्वर का अंश हूँ। अपनी वास्तविकता से शून्य रह कर जीव दुःखी व अशान्त रहने लगा है। जीव ने स्वयं को माया रूप मान लिया है और अपने आप को माया से नहीं छुड़वा सकता। इसीलिए दिन रात दुःखी है। जीव माया से उस समय छूट सकता है जब सद्गुरु से ज्ञान की प्राप्ति होगी। सद्गुरु ही जीव को माया के बन्धन से छुड़वाते हैं।

॥ दोहा ॥

सतगुरु पावै भेद बतावै, ज्ञान करैं उपदेस ।
तब कोयला की मैला छूटै, आगि करै प्रवेस ॥

जैसे आग का अंगारा अग्नि से दूर करने पर कोयला बन जाता है, यदि उसी कोयले को आग के बीच रख दिया जाए तो वही कोयला अंगारा रूप बन जाएगा। इसी तरह से यह जीव भी मालिक से अलग होकर माया में उलझ कर कोयला रूप बन गया है। सद्गुरु के उपदेश से, ज्ञान की अग्नि से यह जीव प्रकाश रूप बन कर मालिक के साथ मिल सकता है, जहाँ से यह अलग हुआ है परन्तु जीव इस काम को स्वयं नहीं कर सकता। सद्गुरु ही जीव को निज स्वरूप का ज्ञान कराते हैं तब इस जीव को वास्तविकता का पता लगता है कि मैं ईश्वर का अंश हूँ, मुझे ईश्वर के साथ मिलना है। ईश्वर के साथ मिलने पर ही जीव सुख व आनन्द का अनुभव करता है। इसलिए सद्गुरु से ज्ञान उपदेश की प्राप्ति कर के जीव को मालिक के साथ मिलने का प्रयत्न करना चाहिए। जीव को सद्गुरु द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलने की अत्यन्त आवश्यकता है।

प्रवचन ४१. कई लोग इस प्रकार के होते हैं जैसे लाख। लाख को जब आग के समीप किया जाए तो एक दम पिघल जाती है और जब आग से दूर

किया जाए तो वैसी की वैसी सख़्त। इसी तरह से वे मनुष्य भी जब सत्संग में आते हैं तो उन पर सत्संग का इतना प्रभाव पड़ता है कि उनका हृदय लाख की तरह मुलायम हो जाता है परन्तु सत्संग सुनकर बाहर जाने के बाद फिर वैसे के वैसे बन जाते हैं। ऐसे मनुष्य कई साल निरन्तर सत्संग में जाते रहें तो भी लाभ प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वे सत्संग में जाकर भी कभी सत्संग पर मनन करने की चेष्टा नहीं करते। अपना ध्यान इधर उधर के संकल्प-विकल्पों में उलझाये रखते हैं। ऐसे जीवों के लिए सत्पुरुषों ने कहा है:—

॥ दोहा ॥

काल का जीव कबहुं न मानै, कोटिक सुनै ज्ञाना।
जैसे लाख आग ढिग पिघलै, पाछे काष्ठ समाना॥

वे जिज्ञासु सत्संग तो सुनते हैं परन्तु उस पर आचरण नहीं करते। इसीलिये उनके मन की अवस्था नहीं बदलती। मन की अवस्था तब बदलती है जब सत्संग को सुने, हृदय में धारण करे और फिर उस पर आचरण करे। अर्थात् श्रवण, मनन, निद्धियासन—इन तीन प्रकार के नियमों का पालन करने से ही मन की दशा बदल सकती है।

प्रवचन ४२ सत्संग की महिमा वेदों तथा शास्त्रों ने अत्यधिक बताई है क्योंकि सत्संग से ही मनुष्य के विचारों में परिवर्त्तन होता है। इस मनुष्य को जो आधि, व्याधि, उपाधि—तीन प्रकार के रोग लगे हुए हैं जिस से जीव कई जन्मों से दुःखी है। सत्संग के श्रवण, मनन, निद्धियासन से ही इसके मानसिक रोग दूर हो सकते हैं। वैसे श्रवण कोई बुरा नहीं परन्तु हृदय में धारण करना (मनन) उत्तम अवस्था है। यदि थोड़ा थोड़ा भी मन पर प्रभाव पड़ता रहे तो काफ़ी लाभ प्राप्त हो सकता है। यदि मन पर बिल्कुल भी प्रभाव न पड़े तो कोई लाभ नहीं है। सत्संग को सत्पुरुषों ने इसीलिये ही अधिक महत्त्व दिया है कि इसके प्रभाव से वाल्मीकि जैसे भूले भटके मनुष्य ने भी ऋषि पद को प्राप्त किया। सब शास्त्रों में सत्संग

को उत्तम व श्रेष्ठ कहा गया है परन्तु आवश्यकता मनन करने की है। केवल सुन कर छोड़ देने से मन की चित्तवृत्तियां नहीं बदल सकतीं। सत्संग सुनने व अमल करने से ही जीव के संस्कार बनते हैं—वे संस्कार कभी व्यर्थ नहीं जाते। एक जन्म में सञ्चित किए हुए संस्कार ही दूसरे जन्म में उच्च आदर्श तक पहुँचने में सहायता देते हैं। इस विषय में ध्रुव, प्रह्लाद के प्रमाण साक्षी हैं। बाल्यावस्था में ही उनकी रुचि ईश्वर की ओर थी। ये संस्कार पूर्व जन्म में सत्संग सुनने व उनका मनन करने पर निर्भर हैं।

शुभ संस्कारों के एकत्र करने का नाम ही क्रियमाण कर्म हैं। सन्त महापुरुषों ने प्रारब्ध व संचित कर्मों की अपेक्षा क्रियमाण कर्मों को श्रेष्ठ माना है। इन क्रियमाण कर्मों से मनुष्य अपनी जीवनधारा बदल सकता है। सत्संग का मनन करने से क्रियमाण कर्म एकत्रित होते हैं। जितनी सत्संग में अधिक रुचि होगी उतनी ही मन की वृत्तियां बदलती जाएंगी। सत्संग को महापुरुषों ने मन का दर्पण कहा है। मन में कौन से विचार भरे हुए हैं, मन की रुचि कौन से रस भोगों में है—ये सब कुछ सत्संग से ही जाना जा सकता है। मन की अवस्था का ज्ञान होने पर ही सब साधन किए जा सकते हैं। भजनाभ्यास, वैराग्य, प्रेम, सद्गुरु की सेवा, कर्म-उपासना आदि—ये सब मन की मलिनताओं को दूर करने के साधन हैं—जो सद्गुरु की संगति से ही प्राप्त हो सकते हैं। जब सत्संग से मन की अवस्था का बोध हो जाता है तब हर प्रकार के साधनों को मन व शरीर के द्वारा किया जा सकता है। इसलिए सत्संग सुनना व मनन करना अत्यावश्यक है।

प्रवचन ४३. श्री रामायण में लिखा है किः—

॥ चौपाई ॥

धर्म ते वृत्ति योग ते ज्ञाना। ज्ञान मोक्षप्रद वेद बखाना ॥
जाते वेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भक्ति भक्त सुखदाई ॥

अर्थात् श्री रामायण के कथनानुसार वास्तविक धर्म वही है, जिस धर्म से

वैराग्य उत्पन्न हो। जिन धर्म कर्मों के करने पर अहंता उत्पन्न हो उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। वैराग्य से योग तथा योग से ज्ञान की प्राप्ति होती है। यही वेदों तथा ग्रन्थों ने भी बतलाया है कि ज्ञान मोक्ष को देने वाला है परन्तु ज्ञान मार्ग से मोक्ष की प्राप्ति सरल साधन नहीं। इस से सरल साधन है भक्ति। जिस से मालिक शीघ्र प्रसन्न होते हैं। श्री रामचन्द्र जी स्वयं निज मुख से फ़रमाते हैं कि मुझे भक्ति प्रिय है और वही भक्तों को सुख देने वाली है।

अब सोचना यह है कि भक्ति कैसे प्राप्त होती है? भक्ति सद्गुरु की सेवा, सद्गुरु के चरणों में दृढ़ विश्वास तथा सत्पुरुषों की पावन संगति से प्राप्त होती है। जब तक पूर्ण सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त न हो तब तक इन सब गुणों अर्थात् सेवा, त्याग, वैराग्य एवं भक्ति को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भक्ति का दूसरा नाम धर्म ही है। अतः इन सब गुणों को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु की शरण लेना तथा श्रद्धा प्रेम विभोर होकर उनकी सेवा करना अत्यावश्यक है।

प्रवचन ४४. आत्मा खांड है और शारीरिक भोगैश्वर्य रेत। यह दोनों आपस में मिल गए हैं अर्थात् पिण्ड देश के रसों में मनुष्य की सुरति फँस कर ब्रह्मांड देश के अमर सुखों को भुला चुकी है। अब इन दोनों को अलग अलग करना है। सुरति को नम्रता रूपी चिउँटी बनाकर ब्रह्मांड (आत्मा) देश में पहुंचाना है। सुरति को पिण्ड देश अर्थात् शारीरिक सुखैश्वर्यों से मुक्त करा कर ब्रह्मांड में पहुँचाना ही आत्मा का परमात्मा से मिलाप है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

शक्कर फैली रेत में, गज मुख चुनि न जाय।
चिउँटी बन कर बीन ले, मज़े मज़े से खाय॥

जैसे चिउँटी ही चीनी और रेत को अलग कर सकती है हाथी नहीं, ऐसे ही जब तक सुरति स्थूल बन कर शारीरिक सुखैश्वर्यों में फँसी रहेगी तब तक

आवागमन से त्राण नहीं मिल सकता। आत्मा सूक्ष्म सत्ता है इसीलिये सुरति को सूक्ष्म (चिउँटी) बनाने से ही ब्रह्मांड का मार्ग ज्ञात होगा। ब्रह्मांड में पहुँच कर ही आत्मा का बोध हो सकेगा। सुरति को सूक्ष्म बनाने का साधन पूर्ण सद्गुरु से ही मिल सकता है। वे ही सुरत-शब्द-योग का साधन बताते हैं। आत्मा तथा शरीर का अलग अलग रहस्य इसी साधन से ही ज्ञात होता है जिस से जीव जन्म-जन्मान्तरों तक चौरासी लाख योनियों से छुटकारा पा सकेगा।

अतः यह आवश्यक है कि मानव जन्म को पाकर सन्त महापुरुषों की संगति से उनकी चरण शरण ग्रहण कर आवागमन से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे तथा जीव सुरति को आत्मा से मिलाए।

सन्त महापुरुषों के आचरणमय जीवन के प्रभाव से उन के मुख से फ़रमाए गए श्री प्रवचनों पर मनन करने से हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है। मन की समस्त मलिन प्रवृत्तियां शुद्ध हो जाती हैं तथा मन प्रभु भक्ति के आनन्दमय स्रोत से भक्ति रूपी अमृत पान करने लगता है। अतः सब प्रेमिजन भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के इन पावन सद्वचनों के अमृत का पान कर कृतार्थ हों।



श्री श्री १०८ श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज

॥ दोहा ॥

कोटिन कोटि वन्दना, दण्डवत् बारम्बार ।
डूबत नैय्या भव में, बने हो कर्णाधार ॥
चरण-कमल में वन्दना, ऐ देवों के देव ।
कहा स्तुति कर सकूँ, वेद न पावैं भेव ॥
श्री परमहंस अवतार जी, तृतीय रूप सुहाय ।
धन्य हुआ कलिकाल भी, प्रेम सरूप को पाय ॥
सतगुरु तव प्रताप से, काल जाल डरपाहिं ।
द्वापर त्रेता सत्ययुग, कलियुग में दर्शाहिं ॥

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के निज-स्वरूप में लीन होने के पश्चात् प्रातः स्मरणीय, वन्दनीय, ब्रह्मनिष्ठ, प्रेम के जाज्वल्यमान भास्कर, हृदय-सम्राट्, महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज इस अद्वैत-मत सम्प्रदाय के तृतीय उत्तराधिकारी परमार्थ-पथ के सम्राट्, जन कल्याण हेतु रूहानी सिंहासन पर विराजमान हुए। आप ने आर्त्त, विकल, दुःखी जीवों पर ऐसी प्रेम-वृष्टि की जिस से सर्वसाधारण जन भी कृतार्थ हो गए। आप की प्रेम-भक्ति एक अनूठे रूप से सब के सम्मुख आई। जिसने भी इस प्रेम-सर में डुबकी लगाई, वह कृतकृत्य हो गया। आपकी सुमञ्जुल, सरस, मनोहारी, पावन लीलाओं का गुणानुवाद करने में लेखनी असमर्थ है, जिह्वा अशक्त है, शेष, शारदा, ग्रन्थ, श्रुतियां भी 'नेति-नेति' शब्द उच्चारण कर मौन हो

जाती हैं। श्री परमहंस अवतार जी की उन्हीं पावन दिव्यतम जीवन की लीलाओं को सूर्य की एक किरण, आशा की एक तरंग, सुरभित उद्यान की एक पुष्प-मंजरी के रूप में यहां प्रस्तुत किया गया है। जिस का रसपान कर सब प्रेमिजन आनन्द-विभोर होकर जीवन सफल बनावें।

जब जब भी विलक्षण विभूतियों का प्रादुर्भाव हुआ, तब ही भस्म में छिपी हुई अग्नि के समान संसार में साधारण वेष में विचरण कर देश काल परिस्थिति के अनुसार समय पर उन्होंने अपना रूप प्रकट किया तथा अद्भुत कार्य कर दिखाये। मेघ के समान परोपकार कर जन-जन को मुदित किया। श्री श्री १०८ श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी भी उन्हीं विभूतियों में से एक थे।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' (अन्धकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो) भारत के इस पावन उच्च सिद्धान्तानुसार प्रकृति ने सुव्यवस्था की। 'श्री परमहंस अद्वैत मत' के सम्प्रदाय को सजीव रखने तथा आध्यात्मिक अमर ज्योति को युग–युगान्तरों तक स्थिर रखने के लिए समय ने करुण पुकार की तथा प्रकृति इस पुकार की प्रबन्धक बनी। युग, देश, काल व परिस्थति के अनुसार सर्वगुण सम्पन्न, निष्काम कर्मवीर योगी, प्रेम के आगार, सन्त-स्वरूप में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के दिव्य स्वरूप में अवतरित होने का सन्देश प्रकृति इस वसुधा पर देने लगी।

अवतरण

प्रकृति ने प्रत्येक दिशा में रंग छिटकाया। लहलहाते खेतों ने पक्की फसलों के रूप में समस्त वसुन्धरा को स्वर्णिम ही स्वर्णिम कर दिया। अमराइयों पर कोकिला ने मीठे स्वर से राग अलापे। आज सूर्यदेव भी पूर्व दिशा के रथ पर छुप छुप कर अपनी अरुणिम आभा निरखा रहा है; क्योंकि वह किसी अज्ञात देश से प्रकट होने वाले देदीप्यमान भास्कर के सम्मुख अपनी रश्मियों को क्षीण पाकर लजा रहा है।

ऊषा वेला ने मुक्ताकण हरी हरी घास पर बिखेर कर मखमली गलीचे से उद्यानों को ढक दिया। सब ओर हर्ष ही हर्ष, उल्लास ही उल्लास, एक सुगन्धियुक्त समीर, समझ में नहीं आता ऐसा क्यों हो रहा है? दसों दिशाओं में समीर सौरभ बरसा रहा है। इन्द्रदेव अपनी छटा दिखाने के लिये प्रसन्नता में झूम उठा। स्वर्ग के देवता भी इस पृथ्वी पर अवतरित होने वाली विभूति को निरखने के लिये लालायित होने लगे। दसों दिशाएँ आलोक से आलोकित हो गईं। क्या कोई युग पलटेगा? क्या प्रेमियों की बहारें हैं? क्या भक्तों एवं मालिक के प्यारों के हृदय की आर्त्त पुकारों की सुनाई होने वाली है? यह कैसा अनूठा रंग, कैसी मचलती तरंगें, कैसा हृदय में उल्लास का सागर छलक रहा है। आज चहुँ दिशि कैसा नज़ारा है:—

अमिय बरस रहा है, वसुधा पे फुहारों में।
भरा उल्लास कैसा है, झूमती बहारों में॥
छिटका अजब रंग है, कुदरत के नज़ारों में।
उछलता प्यार का सागर, भक्तों और प्यारों में॥

अजी इस कोकिला ने क्या, निराली तान छेड़ी है।
कहीं कलियाँ उठा घूँघट, चमन में नज़रें हेरी हैं॥
सृष्टि क्या पलट पाए, जो रजो–तम ने घेरी है।
प्रकटे प्रेम के यह देव, होनी अब क्या देरी है॥

असम, रेतीली टीलों युक्त, उर्वरा स्थान को निज बाल सुलभ क्रीड़ाओं से सरसाने तथा भूमि को भाग्यशालिनी, विशेष महत्त्वदायिनी बनाने के लिए प्रेम के भण्डार, भक्ति-परमार्थ के सूर्य, मानव जगत् के भाग्य निर्माता, जन समाज को सरस तथा प्रफुल्लित बनाने के लिए सन्त स्वरूप में प्रकट हुये श्री श्री १०८ श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज। आप उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त के लक्की मरवत् ज़िला बन्नू के एक उच्च, विख्यात कथूरिया कुल में १३ अप्रैल १८६८ सन् ईस्वी तदनुसार संक्रान्ति वैशाख-संवत् १९५५ विक्रमी बुधवार के शुभ दिन

व शुभ मुहूर्त्त में अवतरित हुए। पूज्य श्री बेला राम जी को आप के पिता जी कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। माता जी ने आपको प्राप्त कर एक अलौकिक आनन्द का अनुभव किया। यह अलौकिक ज्योति सारे विश्व में दिव्य आलोक भरने आई थी न कि केवल किसी एक विशेष के लिए यह ज्योति प्रकट हुई।

जन्म के समय ही अधरों पर पुष्पों सी मुस्कान, रक्तिम कपोल तथा मस्तक पर एक दिव्य ज्योति की रेखा शोभायमान थी। चरण-कमलों पर अवतारी महापुरुषों जैसे चक्र-चिन्ह थे। जन्म के समय जो अन्य आत्मीय स्त्रियां पास में खड़ी थीं, उन्होंने देखा कि आप के मस्तक के ऊपर की ओर एक कान से दूसरे कान तक गोलाकार प्रकाश की रेखा है। पुनः उस कमरे में से आती हुई इत्र, फुलेलादि की अलौकिक सुगन्धि प्रतीत हुई। वे एक दूसरी से धीरे-धीरे कहने लगीं– "बालक तो कोई चमत्कारी महापुरुषों के लक्षणों से युक्त लगता है, परन्तु इस समय इत्र फुलेलादि का समीप होना अच्छा नहीं। भूत प्रेत के आने का भय है।" इतना कह कर वे सारे कमरे में से सुगन्धित वस्तुओं को ढूँढने लगीं, ताकि उन्हें वहां से बाहर रख दिया जाए परन्तु वे कहीं से भी प्राप्त न हो पाईं। इसी समय में माता जी ने तनिक अपना सिर उठाकर देखा तो उसे शिशु के मस्तक पर एक मणि जैसा प्रकाश दिखाई दिया। उसने शिशु को वस्त्र से ढाँप दिया। कुछ ही क्षणों में वह प्रकाश तथा सुगन्धि अगोचर हो गई।

अब पूज्य माता जी मन में विचारने लगीं कि बड़े बूढ़ों से प्रायः यह सुना जाता है कि या मणियुक्त शिशु की आयु बहुत कम होती है या उसकी माता की। वह दिल ही दिल में आप की दीर्घ आयु के लिए बलैयाँ लेने लगीं। आप जी की पूज्य मातु श्री सत्त्वगुण प्रधान साधु प्रकृति की थीं। काश! कि पूज्य माता जी को आप की पावन अद्भुत लीलाओं को निरखने का समय मिलता परन्तु ऐसा न हुआ। वह इस विलक्षण गुणों से युक्त विभूति को जन्म देकर कुछ समय बाद इस संसार से चल बसीं। नामकरण के दिन आपका शुभ नाम श्री द्वारा राम जी रखा गया। पण्डित जी ने उस दिन आप के मस्तक पर एक अति दिव्य ज्योति

देखी। पुनः उन्होंने जब श्री चरण-कमलों तथा कर-कमलों को निहारा तो एक अलौकिक महापुरुष के चिन्हों व चक्रों से युक्त पाया। उन्होंने मन ही मन प्रसन्न होकर वन्दना की। केवल इतने ही शब्द मुख से उच्चरित कर मौन हो गये कि यह तो कोई विलक्षण बालक ही दिखाई देता है। मुखमण्डल निहार निहार कर अपने को कृतार्थ करने लगे। बस मन में एक वेदना भरी हूक उठी जिसे ओठों के बीच ही गुनगुना कर रह गये—वे पण्डित जी। वह हूक थी—"काश! मैं भी इतने समय तक जीवित रह सकूँ जिस से इस शिशु के बढ़ते हुए यश व पावन लीलाओं को निरख सकूं।"

आप की अवस्था अभी बालपन तक भी न पहुँची थी कि आप मातृ-सुलभ स्नेह से वंचित हो गए। आप के पालन-पोषण का सौभाग्य आप की फूफी जी को मिला। वह बड़े लाड़-प्यार से आप को पुचकारतीं तथा मातृ-वात्सल्य एवं प्यार से परिपूर्ण करने का प्रयत्न करतीं परन्तु जिसमें अपने आप में ही एक दिव्य आनन्द व त्रिलोकी को प्रेम प्रदान करने की शक्ति निहित थी, वे इस स्वयं निर्मित प्यार को क्या जाने। आप की आयु लगभग चार पांच वर्ष की हुई। आप ने लक्की (भाग्यशालिनी नगरी) के भाग्य जगाने के लिये बाल सुलभ क्रीड़ाएँ आरम्भ कीं। जान-बूझ कर रूठ जाना—किसी टीले के समीप बैठकर निज आत्म-स्वरूप का आनन्द लेना—आँख मिचौनी के दृश्य व मधुर भाषा में फूफी जी के दिल को बहलाना—कभी तन पर धूली रमा कर मुस्कराना आप की प्रिय क्रीड़ाएं थीं। फूफी जी आप को कहतीं—"बेटा! इतने उच्च तथा धन-धान्य सम्पन्न कुल में जन्म लेकर धूलि में लोटना अच्छा नहीं।" आप बड़े गर्व से उत्तर देते कि "फ़कीरी में तो जीवन का रस भरा हुआ है।" आप के इन वचनों को सुन कर फूफी जी बहुत उदास होतीं और सोचने लगतीं कि क्या इस बच्चे का भविष्य ऐसा ही होगा, पण्डित जी ने तो अनुपम गुणसम्पन्न कहा था। यह तो फ़कीर बनना चाहता है।

एक दिन आप रेतीले टीलों के समीप खेल रहे थे। फूफी जी आप को ढूँढते हुये वहाँ पर जा पहुँची। क्या देखती हैं कि आप एक ऊँचे टीले पर चढ़ कर सब

बच्चों को एकत्रित कर स्वयं सम्राट् बन कर मंत्री, उपमंत्री तथा अन्य पदों पर बच्चों को नियुक्त कर हर एक को अपना अपना कार्य करने की आज्ञा प्रदान कर रहे हैं। चुपके से पहले तो सब क्रीड़ा फूफी जी छुप कर देखती रहीं पुनः सामने आकर कहने लगीं—चलो घर—इधर सब बच्चों को क्यों ले आए—कभी फ़क़ीरी का आनन्द तो कभी सम्राट् बन बैठते हो—हां यही सम्राट् बनना ही आप के साथ शोभा देता है। मानो सहजभाव से आपने भविष्यवाणी कर दी कि न केवल सम्राट् बनना ही अच्छा है न बिल्कुल फ़क़ीर, हमें तो 'शाहनशाही फ़क़ीरी' से काम है। कितने रहस्य भरे मधुर वचन थे ये। 'शाहनशाही फ़क़ीरी' जिसे भविष्य में केवल कथन मात्र ही न रख कर कार्य रूप में परिणित किया और साथ में ही श्रीमद्भगवद् गीता में श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज के उपदेशानुसार राजयोग का उद्घाटन कर दिया। नन्हीं कोंपलों से जो रस फूटता है वही फूलों और फलों में अमृत का काम करता है। बाल्यकाल की झांकियां ही किसी असाधारण भविष्य की ओर संकेत किया करती हैं।

कभी कभी आप रात्रि के समय घर से भाग कर टीलों की ओर जाने का प्रयत्न करते। फूफी जी व पिता जी आप को बलपूर्वक पकड़ कर कहते कि इस समय कौन सी खेल शेष बची है जो पूरी नहीं हुई। आप कुछ समय (क्षण) तक मौन रहते फिर उत्तर देते कि अमुक टीले के समीप मैं सुबह कुछ भूल आया हूँ, उसे लेने के लिये जाना है। इस प्रकार कई बार आप को रात्रि के समय बाहर जाने से रोक लिया गया।

आप की आयु लगभग छः सात वर्ष की हुई होगी आप बार बार घर से भागने का प्रयत्न करते और आप को हर बार रोका जाता। एक दिन पिता जी के दिल में ख़्याल आया कि कौन सी ऐसी वस्तु है जिस के पीछे यह बालक इतना दीवाना बना रहता है। अब जब भी रात्रि में घर से भागे तो इसे रोकना उचित नहीं। पीछे जा कर देख लेंगे कि किस वस्तु को ढूँढने जाता है। आप ने फूफी जी को भी समझा दिया कि अब जब भी यह रात में बाहर जाने लगे तो उसे मत रोकना।

एक दिन मेघाच्छन्न अमावस्या की अन्धकारमयी रात्रि में जब आसमान पर सितारों का नामोनिशां भी न था, हाथ को हाथ भी दिखाई न देता था—नभ-मण्डल पर इन्द्रदेव अपने दल बल सहित अपना पराक्रम दिखा रहे थे—ऐसी भयावनी रात्रि में जब कोई घर की छत पर भी चढ़ने से भय खाता है तब आप सब को सोया हुआ जानकर घर से निकल पड़े। आप के पिता जी भी चुपके से आपके पीछे हो लिये। मार्ग में उन्होंने क्या देखा कि ऐसे घने अन्धकार में एक प्रकाश की रेखा आप के आगे आगे चल रही है व आप उस प्रकाश की रेखा की पगडंडी पर तेज़ी से कदम बढ़ाते हुए भागे जा रहे हैं। इतने में कुछ दूरी से लुटेरे पठानों की आहट सुनाई दी। आप के पिता जी भय से चिल्लाए। आप उस चीख को अनसुना करके आगे की ओर बढ़ते जा रहे थे। इतने में वह प्रकाश की रेखा आपके चारों ओर किरणें फैलाने लगी। आप के पिता जी आप को पकड़ने की चेष्टा करते परन्तु प्रकाश में चलते हुए आप उन के हाथ न आते।

इसी समय में वे पठान भी निकट आ पहुँचे। अब तो पिता जी की व्याकुलता का ठिकाना न रहा। इधर प्रकाश की किरणों का विस्तार आरम्भ हो गया। आपके चारों ओर पांचफुट की दूरी तक किरणों ने घेरा डाल लिया। लुटेरे पठान आपके समीप पहुँचने का प्रयत्न करते परन्तु उस घेरे के अन्दर न आ पाते। उन्होंने दूर से इस रोशनी को देख कर यह समझा था कि यहाँ कोई मणि चमक रही है। समीप आकर कुछ और ही कौतुक देखा। उन के कदम लड़खड़ा गए और वे घने अन्धकार में कहीं पीछे ही रह गये।

आपके पिता जी उसी दिव्य ज्योति के प्रकाश में खिंचे खिंचे एक रेतीले टिब्बे के समीप जा पहुँचे। आप वहां जाकर नयन मूँद कर बैठ गये। आपके मस्तक पर वह दिव्य ज्योति की आभा जगमगा रही थी। आपके पिता जी का हृदय भय से घबरा रहा था। उन्होंने विवशता पूर्वक आप को उठाया और कहा—"बेटा! जब चांद निकले तो चांदनी रात में अपनी वस्तु ढूँढने आया करो। अन्धकार में किसी वस्तु का ढूंढना कठिन हो जाता है।" आपने मुस्करा कर उत्तर दिया कि चांद तो निकला हुआ है, क्या आप अंधकार में यहाँ तक पहुंचे हैं?

देखो ! चांदनी है या नहीं ? स्वयं पिता जी का हाथ पकड़ कर उसी प्रकाश को साथ लिये पुनः घर लौट आये। पिता जी ने तो समझा कि अब पूर्ण रात्रि व्यतीत हो चुकी है। उनके मन में कुछ उल्लास, कुछ घबराहट, कुछ उत्तेजना थी जिससे उनके दिल की धड़कन तेज़ हो रही थी। ज्योंही घर पहुँचे शीघ्रता से आपको गोद में उठाकर किवाड़ बन्द कर दिया। ओह ! कैसी अद्भुत लीला है कि अभी रात्रि का एक घण्टा व्यतीत हुआ था। घर में सभी अन्य प्राणी सुख से गहरी निद्रा में सो रहे थे। पिता जी ने मन ही मन सोचा कि अब मैं इसे कुछ भी न कहूँगा। दिव्य आत्माएँ तो दिव्य कार्य करने के लिये संसार में आती हैं, यह भी कोई दिव्य विभूति ही है—ऐसा कह कर सो गये। प्रातः होते ही आप की माया ने उनके हृदय पर ऐसा पर्दा डाला कि वे रात्रि की सब घटना भूल गए और पितृ-सुलभ स्नेह आप पर बरसाने लगे।

आप कभी कभी रात्रि काल में पड़ोसियों के बच्चों को भी खेल के बहाने घर से भागने के लिए उत्साहित करते। जब पड़ौसी स्त्रियां अत्यधिक तंग आतीं तो वे उलाहना देने आप के घर आ पहुँचतीं। आप की फूफी जी आप से कुछ कहना ही चाहती कि आप तनिक मुस्करा देते। न जाने फूफी जी पर कैसा जादू का सा प्रभाव हो जाता कि वह चुपके से सब उलाहनों का उत्तर मुस्कराहट में ही दे देतीं। कभी अत्यधिक उलाहने मिलने पर जब वह अन्य पड़ौसिन स्त्रियों के सामने आपको डाँटती तो आप सरल स्वभाव से उत्तर देते कि "मैं कब किसी को कहता हूँ कि मेरे साथ चलो। मैं अपनी प्रिय वस्तु (निजी-वस्तु) की खोज में जाता हूँ, उलटा वे ही मेरी इस वस्तु की टोह लेने लगते हैं कि मैं क्या ढूँढने जाता हूँ।" इस गम्भीर रहस्य का अर्थ न समझ कर सभी स्त्रियां मौन हो जातीं। 'निजी वस्तु का ढूंढना' अर्थात् आत्मा का परमात्मा से मिलाप। जनसाधारण जिस बाल्यकाल को क्रीड़ा में, यौवन को विषयों में तथा बुढ़ापे को इच्छाओं की तरंगों में खो देते हैं, यह दिव्य विभूति बाल्यकाल में ही निजी वस्तु की खोज में संलग्न है।

आज प्रेम लीलाओं से उल्लसित द्वापर युग ने मानो फिर से पदार्पण किया

था। आप की मनोहारी आकर्षण शक्ति से सभी बालक स्वयं ही खिंचे चले आते। गली मुहल्ले में भी सब को प्यारे लगते। आप उन सब बच्चों में एक अनूठी आभा लिए हुए दिखाई देते थे। आपने उस द्वापर युग की लीला को नया रंग देकर कलियुग को कृतार्थ किया। क्या यह बाल्यकाल की लीलाएँ मधुमय भविष्य की सूचना नहीं दे रही थीं? जीवन के सम्पूर्ण रहस्यों का आभास बाल्यकाल की झलकियों में ही दिखाई देता है।

आप के पिता जी धार्मिक-वृत्ति के सरल स्वभाव के भद्र पुरुष थे। ये आरम्भ से ही श्री कृष्णजी के उपासक थे। साथ साथ गुरुवाणी के पाठ में भी उनकी अपार श्रद्धा थी। 'आसा दी वार' की एक पोथी वे सदा अपने पास रखते थे, जहां कहीं भी जाते, यह पोथी उन की जेब में रखी रहती थी, जिसका वे नियमपूर्वक नित्य-प्रति पाठ करते थे। वे सदा आप को रात्रि के समय धार्मिक कथाएँ ही सुनाया करते थे। उन के इस सरल जीवन का प्रभाव भी आप पर पड़ा। आप भी धार्मिक पुस्तकों के धार्मिक विचारों को ध्यान पूर्वक सुना करते।

आप के पिताजी ने आप को लगभग ५-६ वर्ष की आयु में लक्की मरवत् की माध्यमिक पाठशाला में शिक्षा के लिये भेजा। आप की प्रकृति अल्पायु से ही संसार एवं सांसारिक जञ्जाल से तटस्थ (किनारा करना) रहने की थी, फिर भी आत्मिक उन्नति के साथ साथ शारीरिक एवं लौकिक उन्नति को आप महत्त्व प्रदान करते थे। इसलिए आप ने अधिक आनाकानी न करते हुए इस शिक्षा को सन् १९११ ई० तक उर्दू तथा फ़ारसी भाषा में ग्रहण किया। इसके साथ हिन्दी व पंजाबी की भाषा का पंडित धनीराम जी से ज्ञान प्राप्त किया। आप की अत्यधिक रुचि सन्त-महापुरुषों के सत्संग तथा सेवा की ओर थी। यह सत्त्वगुण प्रधान स्वभाव तथा ऐसी धार्मिक प्रवृत्तियां बचपन से ही आप के अवतारी महापुरुष होने की प्रमाण थीं। इतनी छोटी आयु में श्रद्धा तथा भक्ति की भावनाओं को देखकर आप के पड़ौस में रहने वाले एक विद्वान् पण्डित धनीराम जी ने आप को सनातन ग्रन्थों का स्वाध्याय करने, नित्यकर्म पाठ और गायत्री सुमिरण की

ओर प्रेरित किया। आप उनकी बात मान कर पहले से भी अधिक श्रद्धा से ये सब करने लगे। आप की इस नित्यकर्म और पाठादि से मानसिक सन्तुष्टि न होती थी। आप प्रायः सोचा करते थे कि सच्चा उपदेश तथा भजन तो कुछ और ही है, जिस से मन को शान्ति तथा आत्मिक सुख प्राप्त होता है। फिर भी आप को तुलसीकृत रामायण पढ़ने में अत्यधिक रुचि थी। जहां भी श्री रामायण के पाठ के विषय में सुनते; नींद, आराम, भोजन की सुधि भुला कर वहाँ पहुँच जाते। वहाँ पहुँच कर बड़े ध्यान से श्रद्धा पूर्वक प्रेम सहित श्री रामायण के पाठ का रसपान करते तथा आनन्द मग्न हो जाते। आपकी ऐसी उच्च भावनाओं को देख कर विद्वान् पंडित जी के हृदय में आपके लिये असीम आदर का भाव जग गया था और पण्डित जी को बहुधा यह कहते हुए सुना गया कि "आप किसी उद्देश्य को लेकर प्रकट हुए हैं। आप कोई साधारण व्यक्ति नहीं, अपितु कोई चमत्कारी विभूति हैं।" आपने उन आदर्शों को स्थापित किया जिन पर चल कर सर्वसाधारण भी अपना कल्याण कर सकें। एक अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते हुए भी आप ने उन आदर्शों को अपनाया जो जनसाधारण के लिये मार्ग बन सकें।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी
श्री दूसरी पादशाही जी से भेंट

बने जब जब भ्रम अज्ञान, मोह लोभ की कारा।
बन्धन मुक्त कराने को, प्रकटैं सर्गुण अवतारा॥
लुप्त हो जाए कहीं न, भक्ति भानु का उजियारा।
युग युगों तक बहे धरा पर, अमर सत्य की धारा॥

इसीलिये प्रकृति के अटल सिद्धान्तानुसार:—

युग युगों से चलता आता, गुरु शिष्य का नाता।
कभी शिष्य ढूंढे सतगुरु को, कभी सतगुरु शिष्य पछाता॥

सतगुरु स्वयं आत्म-प्रकाशी, पूर्ण तत्त्व ज्ञाता ।
पूर्ण शिष्य निज रूप बनावें, गुण सम्पन्न सुजाता ॥

ये वही दिन थे जब कि श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी की आज्ञानुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी (साधु वेष में) लक्की मरवत् में सत्संग प्रचार के लिए पधारे। भक्त साहिबराम जी ने आप (श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी) को कहा कि आज रात को हमारे घर सत्संग होगा। आप भी प्रसन्नता पूर्वक रात्रि समय भक्त जी के घर पहुँचे।

महान आत्माओं का परस्पर पुराना सम्बन्ध हुआ करता है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी उस समय सत्संग कर रहे थे जब कि आप भक्त साहिबराम जी के घर गए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पारखू दृष्टि से पारमार्थिक कार्य करने वाले शिष्य को पहचान लिया। आप ने भी आन्तरिक आनन्द के दाता पूर्ण सद्गुरु को प्राप्त कर लिया। यही वांछित संयोग नियति ने बना दिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पारमार्थिक कार्य करने वाले बहुमूल्य रत्न को पाकर हार्दिक स्नेह प्रदर्शित किया। इधर आपने भी अपने सच्चे सद्गुरु से मिल कर उन के श्री चरणों में अगाध प्रेम का सम्बन्ध जोड़ कर अपनी चिरकाल की प्यासी आत्मा को तृप्त किया। पुरातन रीति के अनुसार आपने अनन्य शिष्य बन कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से रूहानी धन (नाम-उपदेश) प्राप्त किया। जैसा कि श्री अनाथदास जी ने भी गुरु शिष्य के सम्बन्ध में लिखा है:—

॥ दोहा ॥

सूर दर्श आदर्श ज्यों, होत अग्न अद्योत ।
तैसे गुरु प्रसाद से, अनुभव निर्मल होत ॥

अर्थात् सूर्य का प्रकाश कभी नर्म से नर्म वस्तु को भी नहीं जला सकता

परन्तु जब वह आतशी शीशे से मिलता है तो उस में अग्नि उत्पन्न हो जाती है। अर्थात् आतशी शीशे द्वारा सूर्य की किरणों में जलाने की शक्ति आ जाती है। इसी प्रकार ही गुरु की कृपा से शिष्य का अनुभव निर्मल हो जाता है। अर्थात् गुरुदेव सूर्य हैं तो शिष्य आतशी शीशा बन कर गुरुदेव से आत्मिक शक्ति रूपी धन खींचकर शक्तिशाली बन जाता है। ऐसा केवल पूर्ण शिष्य अर्थात् गुरुदेव जी की प्रसन्नता प्राप्त करने वाला शिष्य ही कर सकता है। इसी प्रकार आप ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा में सर्वस्व समर्पण कर आत्मिक धन प्राप्त किया।

अब आप अधिकतर समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा-संगति में व्यतीत करने लगे। सन् १९१६ में आप ने गुरु-दीक्षा की परम्परा को पूरा किया। आप ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से सुरत-शब्द-योग का उपदेश लिया तो आप के मन में एक नये प्रकार की शान्ति तथा आनन्द अनुभव हुआ, जिस सच्चे आनन्द की प्राप्ति की खोज में आप थे। आप गुरु-दीक्षा से पहले कई बार फ़रमाया करते थे कि 'सच्चा आनन्द, सच्ची खुशी' कुछ और है। जैसे मकरन्द का लोभी भ्रमर पुष्पों का रस पीते हुए तृप्त नहीं होता, इसी प्रकार आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की पावन संगति तथा भजनाभ्यास के अमृत-स्रोत से अमृत पीते हुए तृप्त न होते। हर समय एक निराली मस्ती में खोये हुए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शनों के इच्छुक रहते थे।

इस समय आप युवावस्था में पदार्पण कर चुके थे। शरीर पर यौवन था परन्तु मन में वासनाएं नहीं थीं। शरीर सुन्दर, सुडौल, कान्तिमय था किन्तु संसार के सुख-ऐश्वर्यों की ओर से मन उपराम था। सांसारिक गृहस्थ का विचार आप को आकर्षित न कर पाया। उभरते यौवन काल में जब कि जनसाधारण जगत् के भोगैश्वर्य के मतवाले होते हैं, आप को उस जगत् से कोई सरोकार न था। हालांकि घर धन-धान्य सम्पन्न था, सब सुख ऐश्वर्य आप के पीछे पीछे फिरते थे। पूर्ण सन्त-महापुरुष श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के मिलन तथा शुभ संगति ने सोने पर सुहागे का काम किया। फलस्वरूप आप के चित्त में प्रेम-भक्ति-परमार्थ की

भावनाएँ उमड़ पड़ीं । जैसे चकमक को रगड़ने पर, पारस को लोहे से छूने पर जो दशा होती है वही दशा आप की हो गई। जिस महान् एवं उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति के लिए आप जगत् में अवतरित हुये थे, उसी की सत्प्रेरणा आप के हृदय में होने लगी।

कुछ समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की मरवत् में अपने पवित्र सत्संग उपदेश-अमृत की धारा प्रवाहित करते रहे तथा इस समय में आप ने श्री चरणों में बैठ कर कर्म-भक्ति और ज्ञान की त्रिवेणी में मज्जन कर मन को शान्त करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया। इसके पश्चात् जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी टेरी लौटने लगे तो आप तथा महात्मा योगात्मानन्द जी एवं भक्त साहिबराम जी भी उन के साथ श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी के श्री दर्शन के लिए मार्च सन् १६१८ में टेरी गए। जब आपने श्री हुज़ूरी में उपस्थित होकर श्री चरणों में मस्तक झुकाया तो उन्होंने अपनी तत्त्वदृष्टि से आप की उत्तम भक्ति को परखते हुये फ़रमाया—"आप (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी) को परमार्थ का बहुत बड़ा कार्य करना है। साथ में यह भी फ़रमाया कि जब परमार्थ की ओर प्रवृत्त हुए तो संसार की ओर कतई भी ध्यान नहीं देना। यह बात गांठ बांध लो।" तत्पश्चात् आप का हाथ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के हाथों में स्वयं कर-कमलों से देकर फ़रमाया—"आप को परमार्थ लाभ इन से ही प्राप्त होगा।" पुनः फ़रमाया यह शेयर पढ़ो किः—

॥ शेयर ॥

चूँके करदी ज़ाते—मुरशिद रा कबूल ।
हम ख़ुदा दर ज़ातिश—आमद हम रसूल ॥

अर्थात् जब पूर्ण सन्त सद्गुरु की शरण विशुद्ध मन से ग्रहण कर ली तो सद्गुरु के पावन स्वरूप में ही मानो परमात्मा एवं समस्त महापुरुषों की प्राप्ति हो गई। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी यही विचार अन्य रूप में प्रस्तुत

किए हैं:—

॥ दोहा ॥

एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरण समाय ॥
सब आए उस एक में, डाल पात फल फूल ।
अब पाछे कछु क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥

अर्थात् सद्गुरु का नाम वृक्ष की जड़ की न्याईं है। जब हृदय में नाम का प्रकाश हो जाए व सद्गुरु की शरण मिल जाए तो जप-तप-व्रत तीर्थ सभी उन में समाए होने के कारण किसी भी अन्य कर्म करने की आवश्यकता शेष नहीं रह जाती।

आप ने अपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के अनुपम उपदेश को अति श्रद्धा से हृदय में धारण कर लिया था। बाल्यकाल से आप का दिल संसार के भोगों से मुक्त था, अब इस भावना को और नवसाहस मिल गया। आप अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए तन-प्राण से जुट गये। आप टेरी से लौटे तो आप के हृदय में गुरु-भक्ति एवं प्रेम की लहरें तरंगित हो उठीं। आप उन लहरों में खो गए।

उस समय आप की आयु लगभग बीस-इक्कीस वर्ष की होगी जब आप इन्द्रियों पर संयम कर मन को परास्त करने के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञा व मौज में सर्वस्व ध्यान जोड़ कर श्री प्रसन्नता को प्राप्त करने लगे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) उस समय टांक, कुलाची, डेराइस्माइलखां आदि नगरों को सत्संग से कृतार्थ कर रहे थे, इधर आप भजनाभ्यास द्वारा आन्तरिक मंज़िलों को पार करने में लगे हुए थे। सन्त महापुरुष तो स्वयं आत्म प्रकाशक होते हैं, केवल जनसाधारण के लिए उन नियमों को स्वयं अपनाते हैं, जो कार्य अन्य लोगों से करवाने हों। सन्त महापुरुषों के सिद्धांत सर्व साधारण के लिए पगडंडी बनते हैं। आप कई कई घण्टे तक योगाभ्यास में मग्न रहते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मिलन की लगन तो हर समय आप को

दीवाना बनाए रखती। जब भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की मरवत् अथवा अन्य निकटवर्ती स्थानों पर कृपा करते तो आप कई कई दिन तक श्री चरणों में सेवा के लिये उपस्थित रहते और श्री दर्शन के मधुर मधुर अमृत का अनुपान करते।

आप के पूज्य पिता जी भक्ति भाव तथा कर्म धर्म के विचारों को तो पहले से ही रखते थे, अब आप उन को बहुधा गुरु-भक्ति के विषय में उपदेश करते। आप की सत्प्रेरणा का प्रभाव शीघ्र पूज्य पिता जी पर पड़ा। आप ने अपने पिता जी को भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन कराये और उन्हें भी सद्गुरु-उपदेश से दीक्षित कराया।

आपका अपना विचार यह था कि पिता जी शीघ्र ही श्री चरणों में सर्वस्व समर्पण कर शरणागत हो जाएँ। जिस दिन आपने गुरु-दीक्षा ली मन से तो उसी दिन ही सब कुछ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को सौंप दिया परन्तु बाहरी रूप से अभी शरण प्राप्त नहीं की थी। आप के हृदय की यह प्रबल अभिलाषा थी कि यदि पिता जी भी श्री दरबार में शरणागत हो जाएँ तो घर की सारी सम्पत्ति भी परमार्थ (श्री दरबार) में लगा दी जाये। अतः आप अपने पिता जी से बहुधा कहा करते—"पिता जी! आप वृद्धावस्था में पदार्पण कर चुके हैं। अतएव अच्छा हो यदि आप सांसारिक जंजाल को त्याग कर जीवन के अन्तिम दिनों में संन्यास धारण कर लें तथा भजन भक्ति में मन लगावें।" इस प्रकार की शुभ प्रेरणा आप बार बार पिता जी को दिया करते। इस से सिद्ध होता है कि आप स्वभावतः संसारी बन्धनों से मुक्त रहना चाहते थे। आपकी शुभ प्रेरणा का प्रभाव आप के पूज्य पिता जी के मन पर पूर्ण रूप से पड़ा। उन्होंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के रूहानी जानशीनी होने के चार पांच मास पश्चात् ही श्री चरणों में शरणागति प्राप्त कर ली। इसके पश्चात् शीघ्र ही विनय कर साधु वेष भी ग्रहण कर लिया। पुनः साधु वेष में महात्मा पुरुषोत्तमानन्द जी के रूप में उन्होंने दरबार की हित चित्त से सेवा की।

आप के मन की साध पूरी हुई। पिता जी के शरणागत होने पर मार्ग की बाधाओं से स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई। यदि विघ्न-बाधाएँ आतीं भी तो आप उनसे कहाँ डरने वाले थे। आप नाम रूपी अमृत के आनन्द में हमेशा लीन रहते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में आप का प्रेम दिन प्रतिदिन अधिकाधिक बढ़ता गया।

एक बार इन्हीं दिनों में जब आप निकटवर्ती स्थान पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन के लिए गये, श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वाभाविक ही सत्संग में यह प्रवचन कियेः—

॥ दोहा ॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय ।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय ॥

अर्थात् संसार के मैदान में ईश्वर ने भक्ति की गेंद उछाल दी है। जैसे खिलाड़ी गेंद के साथ खेलते हैं, उन में निपुण खिलाड़ी ही चौगान की गेंद को पकड़ सकता है साधारण नहीं। ऐसे ही भक्ति की गेंद भी चतुर गुरुमुख ही ले सकता है। इस के लिए ग़रीब अमीर का कोई प्रश्न नहीं। जो भी चाहे इसे प्राप्त कर सकता है। इस भक्ति रूपी गेंद से खेलने के लिए सिर-धड़ की बाज़ी लगानी पड़ती है। अपनी मनमति का त्याग कर गुरु के बताए हुए उपदेशों पर चलना ज़रूरी हो जाता है। इस भक्ति को पाने के लिए त्याग, सेवा एवं अनन्य प्रेम की ज़रूरत है।

आप के हृदय में इन प्रवचनों को सुन कर एक तूफ़ान उमड़ा कि अब तो जिस तरह से हो सके इस भक्ति रूपी गेंद को प्राप्त करना ही है। आप ने शीघ्र ही स्वयं भी शरणागत होने के लिए विनय की। पिता जी को पहले ही आपने शुभ प्रेरणा दे कर साधु बना दिया था। घर की सम्पत्ति-जायदाद-सुखैश्वर्य के सभी सामान आप के पिता जी आप को सौंप कर निश्चिन्त होकर भक्ति के मधुर अमृत का पान करने लगे। आप के हृदय में भी इस सारी सम्पत्ति को श्री दरबार की सेवा में लगाने की भारी उमंग थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री

दूसरी पादशाही जी निज मुख से कई बार यह वचन फ़रमाते थे कि आपने अपने पिता जी को साधु बनने के लिये इसी कारण ही ज़ोर दिया कि घर की सारी सम्पत्ति श्री गुरु-सेवा में ही सफल हो । आपने अपनी दिल की भावना को पूरा किया तथा सम्पत्ति, धन-धान्य सहित स्वयं को श्री चरणों में भेंट कर शरणागति के पथ को दृढ़ किया । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भी अनन्य शिष्य की प्राप्ति पर दिल में प्रसन्नता अनुभव की ।

कुछ समय तक आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ रहे । जहाँ भी वे जाते आप को निजी श्री सेवा का सुअवसर प्रदान करते । आप भी उनके श्री दर्शन करते हुए श्री आज्ञा में सदा तत्पर रहते । आपने सेवा का वह अद्भुत चमत्कार दिखाया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को प्रसन्नता एवं कृपा के पात्र बन गए । वे मन ही मन आपके त्याग और प्रेम को देखकर अत्यन्त पुलकित हो उठते थे । आप को उस समय न दिन में विश्राम की चिन्ता रही न रात्रि को नींद के लिए ही विचार उत्पन्न हुआ । कठोपनिषद् का कथन है कि:—

॥ श्लोक ॥

नायात्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष, आत्मा वृणुते तनूस्वाम् ॥
(अ० १ वल्ली २–मंत्र २३)

अर्थः—इस आत्मा का दर्शन व्याख्यान देने, बुद्धि के द्वारा अथवा बहुत शास्त्र-ज्ञान से नहीं हो सकता । इस आत्मा (गुरु) की जिस पर कृपा हो जाए वही इस को प्राप्त कर सकता है । उस पर ही यह अपना निज रूप प्रकट कर देता है ।

अर्थात् सद्गुरु जिस पर कृपा कर दें उसी को ही आत्म साक्षात्कार हो जाता है । सद्गुरु की कृपा का पात्र बनने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि जीव सद्गुरु की आज्ञा व मौज एवं भक्ति के प्रत्येक नियम पर आचरण करने के लिए

तत्पर रहे। उपनिषद्कार का कथन है कि परमात्म तत्त्व को वही जानने वाला है अर्थात् आत्म साक्षात्कार वही कर सकता है जिस के अन्दर प्रभु मिलन की तड़प है जो प्रभु के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं रखता। अपने विचारों को अथवा अपने मस्तिष्क को अन्य झंझटों में नहीं डालता अर्थात् श्री गुरुदेव की मौज में राज़ी रहता है। उनकी आज्ञानुसार सेवा में निरत रह कर श्री प्रसन्नता को प्राप्त करता है। गुरु-आज्ञा मानना ही गुरु-भक्ति का मुख्य नियम है। ऐसा ही आप ने किया तथा इस सिद्धान्त पर चल कर गुरु-भक्ति के लिए यह सिद्धान्त आवश्यक बताया कि 'मनमति का त्याग कर गुरुमति को ग्रहण करना।' बस यही नियम ही गुरु-भक्ति की मंज़िल को प्राप्त करने का एकमात्र सरल तथा अत्युत्तम साधन है।

साधु वेष

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के हृदय में इस नाम उपदेश की अमर ज्योति का प्रकाश स्थान स्थान पर फैलाने की एक तरंग उठी। इस लहर ने १९२० सन् में लक्की मरवत् में साकार रूप धारण किया। श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने कुछ अधिकारी गुरुमुखों को साधु वेष देकर लक्की मरवत् में एक साधु मण्डली तैयार की। उन में से कुछ महात्मा जनों को सत्संग उपदेश कार्य के लिये विभिन्न स्थानों पर भेजा। साथ में यह आज्ञा भी दी कि सद्गुरु के नाम पर सत्संग उपदेश देकर अधिकारी आत्माओं को परमार्थ लाभ कराओ।

उन्हीं दिनों में स्थान लक्की मरवत् में ही सन् १९२० तदनुसार विक्रमी सम्वत् १९७७ में आप को साधु वेष प्रदान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आप का शुभ नाम श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी रखा। आप के हृदय में प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आप को भी सत्संग उपदेश की सेवा फ़रमाई। साथ में ये प्रवचन फ़रमाए— "आप फोर्टसन्डेमन, बलोचिस्तान तथा सिन्ध को चिताने के लिये जाओ। वहाँ

पर अपने ही नाम पर सत्संग उपदेश दो, कुछ लोग इस विषय पर आपत्ति करेंगे लेकिन आप उन की ओर तनिक भी ध्यान न देना ।" आप को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का वियोग असह्य था । श्री प्रसन्नता तथा श्री मौज को प्राप्त करने के लिये आपने श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर वैसा ही किया । श्री आज्ञा थी कि अपने नाम पर परमार्थ लाभ कराओ । इतनी शीघ्र इतना ऊँचा पद मिल जाने पर भी आप के हृदय में अपने पद का ख्याल उत्पन्न न हुआ ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आपको सिन्ध भेजते समय फ़रमाया कि कलियुग के जीव निर्बल हैं । वे अपने कर्मों से नहीं अपितु सद्गुरु की कृपा से पार हो सकते हैं । इसलिए जो भी आप से नाम की भिक्षा मांगे उसे उदारता के साथ नाम दान की भिक्षा देनी है । यह जो सत्य नाम है कभी निष्फल नहीं जाता । चाहे एक दिन में, चाहे एक वर्ष में, चाहे इस से भी अधिक समय में अपना फल ज़रूर देता है । नाम रूपी बीज जीव के हृदय में अवश्य ही अकुँरित होता है और अवश्य ही होगा । आप इस नाम के अमृत को जन जन तक पहुँचाएँ । हमारा आशीर्वाद आप के साथ है ।

आप नम्रता से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञानुसार परमार्थ की अनन्त यात्रा पर निकल पड़े । इसके आन्तरिक रहस्य को तो केवल श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ही जानते थे । अतः उन्होंने आरम्भ से ही आप को ऐसी श्री आज्ञा प्रदान की ।

बढ़ गये गुरु भक्ति पथ पे, परमार्थ पथ के राही ।
श्री आज्ञा व श्री सेवा में, गुरु की प्रसन्नता पाई ॥
सब जंजाल झटक कर अपना, औरों को दीन्हीं रिहाई ।
एक नई दुनिया को बसाने, प्रगटी जोत इलाही ॥

विलक्षणता आप का प्रथम गुण था । बाल्यकाल से आकर्षण शक्ति का भी गुण विद्यमान था । इस के साथ साथ सुन्दर स्वरूप, सुडौल शरीर, चेहरे पर एक अनोखे ढंग की दीप्ति, ओठों पे मधुर मुस्कान, बाँकी चितवन और मधुर वाणी–

भला ऐसा कौन होगा जो इस दिव्य स्वरूप और तेजोमय मूर्ति को देखकर आकर्षित न होगा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने जैसे स्वयं ही अपने स्वरूप जैसा इस दिव्य रूप को बनाया हो। विधाता तो इस दिव्य स्वरूप का दर्शन कर आश्चर्य में पड़ गया, साथ में साधु वेष। इस वेष ने जैसे आप की मनोहारी झाँकी की शोभा को और भी निखार दिया। भगवे वेष के साथ उसी रूप की आभा मुख-मण्डल पर इठलाती थी। मस्तक पर एक नूरानी तेज झलकता था। प्रकृति ने क्या गज़ब किया है, उद्यान में अनेक रंगों के पुष्प खिलाए परन्तु पुष्पराज गुलाब तो अपनी दिव्य छटा से मन मुग्ध करने के लिये अनोखे ढंग से उद्यान में शासन करता है। ऐसे ही हृदय रूपी उद्यान पर आप ने अनोखे ढंग से शासन किया।

आप श्री आज्ञानुसार फोर्टसन्डेमन बिलोचिस्तान से होते हुए रुक (Ruk) स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ आप को भक्त सेठ बन्नामल जी मिले। वे आपको अपने साथ लक्खी ले गये। यहां पर आप भक्त जी के साथ एक धर्मशाला में ठहरे। जब धर्मशाला में गये तो उसके निवासी पण्डित जी ने स्थान देना अस्वीकार कर दिया। आपने भक्त जी को फ़रमाया कि उस से एक रात्रि यहां ठहरने के लिए स्थान मांगें। भक्त जी ने श्री वचनानुसार समझा बुझा कर एक रात्रि के लिए स्थान लिया। आपने परमार्थ कार्य आरम्भ किया। श्री पावन मृदुल वचनों से सर्वप्रथम पण्डित जी को उपदेश दिया। रात्रि के होने तक ही संस्कारी उच्च आत्माएँ बरबस आप की ओर खिंचती चली आईं। यह दिव्य गुणसम्पन्न विभूति जब जिस ओर भी पग बढ़ाती, मुस्काते वदन से चित्ताकर्षक किरण फूटती जो बरबस दिलों को खींचने लगती। बस फिर क्या था? प्रेमिजन भ्रमरों की न्याईं उस सरस ज्ञान-कमल पर लगे मंडराने। आप भी श्री वचनों से सब को कृतार्थ करने लगे।

दूसरे दिन प्रातः होते ही पण्डित जी का हृदय प्रेम में झूमने लगा। उस ने अनुभव किया कि उसने जैसे किसी खोई हुई वस्तु को प्राप्त किया हो। उस ने विनय की—"प्रभो! आप का यह अपना स्थान है यहीं पर ही कृपा फ़रमाइए।" उस

की विनय तथा प्रेमी संस्कारी आत्माओं की प्यास बुझाने के लिये दिन रात वहीं सत्संग प्रवाह चलने लगा। प्रेमिजन विभिन्न प्रकार की भोजन सामग्री तथा श्रद्धा युक्त अन्य भेंट श्री चरणों में लाने लगे। यह देख कर पण्डित जी बहुत हैरान थे कि ऐसा दिव्य स्वरूप, मनोहारी 'साधु-महात्मा' आज तक तो देखने में नहीं आया जो इतनी जल्दी प्रभाव डाल सके। कोई भी प्रेमी जैसी भी भेंट अर्थात् यदि कोई मक्की, जौ की रोटी अथवा कोई पकवान आदि लाता तो आप सब कुछ सहर्ष स्वीकार करते। बड़े प्रेम से सब में बाँटते और प्रसन्न होते। इससे उन प्रेमियों की श्रद्धा, प्रेम और विश्वास अधिक बढ़ जाता। आप एक ही नज़र से प्रेमियों के हृदय पटल पर अधिकार कर लेते। जो भी जिज्ञासु शरण में आया अथवा आप की पावन संगति जिसे भी मिली वह सारी सुधि भूल जाता। पण्डित जी का अपना दिल भी अब आनन्द की लहरों में झूम रहा था, वे दूसरों के विषय में क्या सोचते? आठ दिन पश्चात् जब आप वहाँ से किसी अन्य स्थान की ओर जाने लगे तो पण्डित जी ने आग्रहपूर्वक कहा कि दीनदयाल जी! इस स्थान को अपना समझ कर कृतार्थ करते रहें। कितना प्रताप था श्री दर्शन का। कहां तो रात्रि भर स्थान देने को तैयार नहीं था और अब वह विलग होना नहीं चाहता।

अभी तो आपने सिन्ध में लक्खी स्थान में ही पदार्पण किया था और सम्पूर्ण सिन्ध में परमार्थ की ज्योति का प्रकाश फैलाना था। सिन्धी लोगों की साधु-महात्माओं में सहज श्रद्धा थी। अतः उन्होंने सहर्ष इस पथ को स्वीकार किया। अज्ञान के अन्धकार में भटकते हुए सिन्धी, प्रेम के देव को पाकर प्रेम विभोर हो गए। उनकी जन्म-जन्मान्तरों की तृषा ने ऐसा संयोग बनाया। थोड़े समय में ही आपने सिन्ध में सत्संग आश्रम स्थापित कर सिन्धी भाषा भी सीख ली। आपने गुरु-भक्ति का जो बीज सिन्ध में बोया वह दिन प्रतिदिन फलने फूलने लगा। सैंकड़ों प्रेमी व जिज्ञासु इस पावन नामोपदेश के तीर्थ में मज्जन करने लगे। परिणामस्वरूप आप की महिमा सम्पूर्ण सिन्ध के आसपास के क्षेत्रों में फैल गई। दूर व समीप से संगतें श्री दर्शन व सत्संग-उपदेश श्रवण करने के लिए आने लगीं। आप प्रायः यह श्री प्रवचन फ़रमाते थेः—

"मानव मानव अन्तरा, कोई हीरा ते कोई कंकरा ।"

संसार में अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के परिणाम स्वरूप मानव जन्म तो मिल गया परन्तु इन मनुष्य-मनुष्य में भी अन्तर होता है। इन में से कुछ हीरे के समान हैं शेष कंकरों के समान। अर्थात् जिसने मानव जन्म पाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं किया, प्रभु मिलन की जिस ने दिल में तड़प ही पैदा नहीं की, वह मनुष्य मानव जन्म पाकर भी चौरासी लाख योनियों में रहने की तैयारी कर रहा है। ऐसे जीवों को सन्त महापुरुषों ने कंकरों का दर्जा दिया है। जिन्होंने मानव जन्म को पाकर पूर्ण पुरुषों की संगति से उनसे अनमोल नाम रूपी हीरे को प्राप्त किया तथा उस शब्द की कमाई की उन का जीवन हीरे के समान है। जैसे हीरे की कीमत केवल जौहरी ही जानता है तथा हीरा अत्यन्त मूल्यवान् वस्तु है परन्तु इस की अपेक्षा कंकरों का क्या मूल्य है? कंकरों को सब पाँव के नीचे ही रौंदते हैं। इसी प्रकार ही मानव जीवन की कीमत केवल सन्त-महापुरुष ही जानते हैं, वही इस हीरे की परख कराते हैं। जीव तो माया के विषय-विकारों में इसे कंकरों के समान पटक देता है। सन्त महापुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

सुन्दर मानुष देह यह, ता में दोइ प्रकार ।
या तें बूड़ै जगत महँ, या तें उतरै पार ॥

इस मानुष देह को पाकर दो ही रास्ते हैं या तो भवसागर (संसार) में डूब जाना या इससे पार उतरना। इस संसार सागर से पार उतरने का ढंग सन्त महापुरुष समय के सन्त सद्गुरु ही बताते हैं। जिस मनुष्य ने सन्त महापुरुषों की सुसंगति ग्रहण कर ली वह उच्च संस्कारी आत्मा है। यह उच्च संस्कारी आत्मा ही मानव जन्म रूपी हीरे का मूल्य पहचान सकती है। अतः महापुरुष भी यही उपदेश देते हैं कि "ऐ जीव! अपने मानव जीवन के ध्येय को प्राप्त कर इस संसार सागर से पार हो जा। मानव जीवन को प्राप्त करने का यही परम लक्ष्य

है। अपने लक्ष्य की पहचान कर।"

इस प्रकार आप सत्संग उपदेश की पावन गंगा निरन्तर बहा रहे थे और प्रेमिजन संस्कारी आत्माएं उस में मज्जन कर कृतार्थ हो रहीं थी। आप सिन्ध प्रान्त के प्रत्येक गांव में तथा उस पूर्ण क्षेत्र में नाम की ज्योति का प्रकाश फैलाने में संलग्न थे।

आप लक्खी से एक बार भैन गांव में गये। वहाँ पर भक्त ककूमल जी तथा भक्त फिरन्दमल जी के घर ठहरे। कुछ समय पश्चात् वहां आश्रम भी बनवाया। वहां पर आप नित्यप्रति नदी के किनारे सुहावने वातावरण में एकान्त शान्त स्थान पर रात्रि समय भजनाभ्यास के लिए जाते तथा दिन के समय सत्संग कार्य करते। आप परब्रह्म होते हुए भी नर-लीला के रूप में सर्व कार्य जन कल्याण (लोक संग्रह) के लिए करते जिसे जीव की बुद्धि समझ ही नहीं सकती। किसी भक्त के मन में यह ख़्याल आया (जो श्री चरणों की सेवा में रहता था) कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी हमारी ही तरह रात्रि को विश्राम करते हैं। प्रातः उठते हैं और दिन के समय सत्संग कार्य करते हैं। हमें तो हर समय भजनाभ्यास नियमपूर्वक करने के लिये उपदेश देते हैं। न जाने स्वयं कब भजनाभ्यास करते हैं? प्रभाव भी इनका इतना है कि हृदय में किसी और के लिए स्थान ही नहीं रहा। ऐसा तेजोमय सुन्दर स्वरूप है जिस से आप से आप लोग इधर खिंचे चले आते हैं। मैं स्वयं भी तो दीवाना बना रहता हूँ। समझ में कुछ नहीं आता यह कैसी लीला है। कई बार श्री चरणों में कुछ पूछने के लिये जाता हूँ परन्तु सम्मुख जाते ही सब कुछ भूल जाता हूँ।

इधर आप दिन के समय सत्संग का कार्य करते और रात्रि समय जब समस्त संसार निद्रा में सोया हुआ होता तथा आपके सेवक भी गहरी निद्रा में सो जाते तो आप उठ कर योगाभ्यास के लिये दूर चले जाया करते थे। आश्रम से दूर बाँध के समीप आप ने एक आसन बनाया था, वहाँ पर जाकर विराजमान हो जाते। प्रातः लोगों के उठने से पहले ही लौट आते ताकि किसी को भी पता न चले।

सन्त महापुरुषों का यह आदिकाल का नियम है किः—

॥ श्लोक ॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जाग्रति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

(गीता श्लोक ६९ अ० २)

सम्पूर्ण भूत प्राणियों के लिये जो रात्रि है उस नित्य शुद्ध बोध स्वरूप परम आनन्द में ब्रह्मनिष्ठ योगी पुरुष जागता है और जिस नाशवान् क्षणभंगुर सांसारिक सुखों की आशाओं में सब भूत प्राणी जागते हैं, तत्त्व को जानने वाले मनीषियों के लिए वह रात्रि होती है अर्थात् जब संसार के लिए रात्रि होती है योगी व परमात्मा के मिलने वाले अभिलाषियों का वही दिन होता है । वे इस शान्त एकान्त वातावरण में भजनाभ्यास में लीन हो जाते हैं । जब संसारी लोगों का दिन होता हैं तो सन्त महापुरुषों की रात्रि होती है । क्योंकि इस दिन के समय सन्त महापुरुष परमार्थ का कार्य करते हुए थोड़ सा विश्राम कर लेते हैं । श्री रामायण के अयोध्या-काण्ड में लक्ष्मण जी गुह को उपदेश देते हुए फ़रमाते हैंः—

॥ चौपाई ॥

यहि जग यामिनि जागहिं योगी । परमार्थी प्रपंच वियोगी ॥

कि इस संसार रूपी रात्रि में वे योगी जन जागते हैं जो माया से विरक्त तथा परमार्थी होते हैं और वे ही रात्रि के समय योगाभ्यास किया करते हैं ।

एक दिन क्या हुआ कि रात्रि के समय वही भक्त नींद से उठा और आप को पलंग पर विश्राम न करते हुए देख कर चकित हो गया । इधर उधर देख कर वह सोचने लगा कि महापुरुषों की लीला अपार होती है, गये होंगे किसी प्रेमी का गृह कृतार्थ करने । आप के आने की राह देखते देखते उसे नींद आ गई । इस प्रकार तीन चार दिन रात्रि समय उसको नींद खुल जाती और वह उठ कर देखता तो आप पलंग पर विश्राम करते हुए दिखाई न देते । प्रातः उठने पर आप को पलंग

पर विराजमान पाता। उसके मन में उत्कण्ठा उत्पन्न हुई कि रात्रि समय आप कहां जाते हैं ?

इस के दूसरे दिन वह रात्रि काल में जागता रहा। जब आप रात को उठ कर जाने लगे तो वह भी चुपके से आप के पीछे हो लिया। जब आप अपने नियत स्थान पर पहुँचे तो उसने देखा कि एक आधारी (लकड़ी की बनी हुई वैरागन) आप के आसन पर सीधी खड़ी है। आप वहाँ जाकर अपने आसन पर विराजमान हो गए। नयन मूंद कर अपने आनन्द में लीन हो गए। वह भक्त भी थोड़ी दूरी पर दुबक कर बैठ गया और श्री छवि को निहारता रहा। जब आप पुनः लौटे तो उसने आधारी को वैसे का वैसा खड़े हुए पाया। उसके दिल में इस आधारी (वैरागन) के समीप जाकर उसके परीक्षण का विचार उठा। वह छुप कर एक ओर हो गया। जब आप उसे बिना देखे लौट आए तो वह वहां गया, जहां आपका आसन बना हुआ था। आसन कुशों का था, ऊपर सफ़ेद चादर बिछी हुई थी। इसके ऊपर आधारी बिल्कुल सीधी खड़ी हुई थी। उसने आश्चर्य से उसे हिलाया परन्तु वह आधारी तो सुमेरु पर्वत की तरह अडिग तथा अचल थी। उसने नीचे ऊपर सब ओर देखा कि कहीं कोई कील तो नहीं लगाई गई परन्तु कहीं भी कुछ दिखाई न दिया। उसने उसे खूब ज़ोर से हिलाया, लेकिन हिलाने में असफलता प्राप्त हुई। यहाँ तक कि कुशा के आसन को भी धरती से एक इंच ऊपर न उठा सका। उसने आसन के आगे वन्दना की और लौट आया। मार्ग में बार बार पीछे की ओर देखता कि कहीं अभी वह आधारी गिरी तो नहीं। वह तो अपने प्रभु की आज्ञानुसार साधना में लीन थी कि कब रात्रि हो और उसके मालिक उसे कृतार्थ करें। वह भक्त पुनः लौट गया और श्रद्धा तथा प्रेम से उस आसन के सामने बार बार वन्दना कर आधारी की स्तुति अपने उद्गारों में इस प्रकार की:—

ऐ आधारी! योगिन बन, तू प्रभु के ध्यान में लीन रहे।
अडिग हिमालय की भाँति, तू एक जगह आसीन रहे॥

जड़ होकर भी प्रेम का अद्भुत, सब को पाठ पढ़ाती है ।
प्रीति निभाने की रीति का, ढंग विचित्र बताती है ॥

अब वह मन ही मन लजाता हुआ आश्रम में आ गया । आते ही आप जी के श्री चरणों में दण्डवत् की । आपने मुस्कराते हुए पूछा—कि प्रेमी कहाँ गया था ? उसने पुनः पुनः वन्दना कर क्षमा मांगी और विनय की कि प्रभो ! मेरे मन ने मुझे धोखा दिया था, आपने कृपा की है इसीलिये क्षमा मांगता हूँ। आपने वचन फ़रमाये—"सन्त महापुरुषों की परीक्षा लेना उचित नहीं । यह मन तो जन्म-जन्मों से जीव का शत्रु है । पग पग पर जीव को धोखे में डाल कर इसे गिरावट की ओर ले जाता है । मन ही तो जीव को भक्ति मार्ग पर चलने नहीं देता । गुरुमुख को इसके धोखे में नहीं आना चाहिए । सन्त महापुरुषों की परीक्षा करना स्वयं को धोखे में डालना है ।" उस प्रेमी ने पुनः क्षमा मांगी ।

आपने परमार्थ पथ पर आरूढ़ होकर साधु-वेष में पूरे सिन्ध प्रान्त, बलोचिस्तान को अपने अमृत प्रवचनों से अनुगृहीत किया । इस के अतिरिक्त ज़िला डेरागाज़ीखां में हज़ारों जीवों को भक्ति पथ पर लगाया । हज़ारों प्रेमी जिज्ञासु आप के शिष्य बने । आप ने सिन्ध प्रदेश में सत्संग के लिए निम्नलिखित आश्रम बनवायेः—

१. लक्खी ज़िला सक्खर २. भैन गांव ज़िला सक्खर ३. सक्खर शहर ४. गरेला ज़िला लाड़काना ५. गोधारा ज़िला लाड़काना ६. नसीराबाद ज़िला लाड़काना ७. वहोआ ज़िला डेरागाज़ीखां ८. माड़ी ज़िला सक्खर ।

इन स्थानों पर प्रतिदिन प्रातः सायं भक्त लोग सत्संग के लिये आते और दोनों समय भजनाभ्यास भी होता । कुछ नियत किये हुए प्रेमी-गुरुमुख इन आश्रमों का प्रबन्ध तथा सेवा जी जान से करते । समय समय पर संगतें आपके श्री चरणों में श्री दर्शन देने के लिए विनय करतीं । आप उस विनय को स्वीकार कर कई कई दिन तक एक स्थान पर ठहरते और सत्संग प्रवाह चलता रहता । आप जिस जिस स्थान पर जाते प्रेमियों की संख्या अधिक से अधिक तक हो जाती थी । आप सत्संग का ऐसा अमृतमय प्रवाह बहाते कि जिज्ञासुओं को खाना

पीना भी भूल जाता था। दूर दूर से आए हुए प्रेमी कई कई दिन उन स्थानों पर ठहरे रहते। इन स्थानों पर लंगर व ठहरने का प्रबन्ध मुख्य मुख्य भक्तों की ओर से होता था। जिज्ञासु, श्रद्धालु व प्रेमी जन जो सेवा, सामान एवं नकद रुपया (धन राशि) भेंट करते, आप सब सेवा स्थान चकौड़ी सन्त आश्रम में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञानुसार लंगर में लगा देते। आप ने गुरुभक्ति पथ को दृढ़ करने के लिये इस प्रकार का आदर्श स्थापित किया, जैसे श्रीमद्भगवद् गीता के तीसरे अध्याय में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने अर्जुन को उपदेश दिया है किः—

॥ श्लोक ॥

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
(३ अ० श्लोक २१)

हे अर्जुन ! श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार ही चलते हैं। वे श्रेष्ठ पुरुष जो कुछ प्रमाणिक कर देते हैं, लोग भी उसके अनुसार ही बर्तते हैं। अर्थात् आपने वही नियम अपनाये जो गुरु-भक्ति मार्ग में अनिवार्य हों। जब गुरु-दीक्षा लेकर आपने तन-मन-धन एवं सर्वस्व समर्पित कर दिया, तो सब कुछ सद्गुरु का बन गया। उनकी श्री आज्ञा तथा श्री प्रसन्नता ही शिष्य का धर्म बन गया। आप भक्तों, जिज्ञासुओं एवं प्रेमियों द्वारा लाई हुई वस्तुओं तथा श्रद्धायुक्त भेंट को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के श्री चरणों में भेंट कर देते। आप फ़रमाते थे कि संसार की प्रत्येक वस्तु अपने इष्टदेव जी के श्री चरणों में समर्पित करके भक्ति में दिल लगाना चाहिये। धनी धर्मदास जी ने भी 'गुरु महिमा' में कहा है किः—

असन वसन वाहन अरु भूषण ।
सुत दारा निज परिचारक गण ॥
कर सब भेंट गुरु के आगे ।
भक्ति भाव उर में अनुरागे ॥

अर्थात् श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में श्रद्धा-प्रेम से परिपूर्ण होकर जाना चाहिये । जो कुछ वह दें उसी में संतुष्ट रहना चाहिये । कई बार भक्त लोग अच्छे वस्त्र व कई प्रकार की वस्तुएँ आप को भेंट कर सेवन के लिये विवश करते; लेकिन आप फ़रमाते—"जो कोई श्रेष्ठ पदार्थ पाऊं, सो गुरु चरणन आन चढ़ाऊँ" आप हमें भेंट करते हो तो हम अपने इष्टदेव श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के चरणों में भेंट करेंगे ।

आप की सेवा, भावना और श्रद्धा को देख कर सत्संगी लोग अधिक प्रभावित होते थे । जब आप सिन्ध से श्री दर्शन के लिये जाते तो बहुत सी संगत आप के साथ जाती थी । इन लोगों की श्रद्धा एवं प्रेम को देखकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) बहुत प्रसन्न होते । आप ने अपने प्रेमियों को भी त्याग का मार्ग दिखाया और सब में त्याग एवं वैराग्य की भावना कूट कूट कर भर दी ।

आप समय समय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री दर्शन के लिए जाते । एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी चकबंदी व भखड़ेवाली में विराजमान थे । आप श्री दर्शन के लिये श्री चरणों में पहुँचे और सिन्ध में कृपा करने लिए श्री चरणों में विनय की । आप की विनय स्वीकार कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सिन्ध को कृतार्थ किया । आप ने सिन्ध प्रदेश व वहोआ के कुछ एक श्रद्धालुओं को संन्यास भेष भी दिलवाया । आप के श्रद्धालु व प्रेमी एक से एक बढ़कर धनी थे फिर भी आप उन्हें सादगी, फ़क़ीरी का पथ दिखलाते थे । प्रेमी बढ़िया से बढ़िया भोग प्रसाद भेंट करते परन्तु आप मक्की का फुलका तथा साग (पालक, सरसों आदि) ही पसन्द करते और उसी का ही श्री भोग लगाते । उस समय जिन प्रेमियों ने आपकी पावन लीला को निहारा वे आज भी अपने मुँह से यही कहते हैं कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) मक्की का फुलका और साग का भोग लगाते तथा साथ ही फ़रमाते थे—"खा के देखो, कितना स्वाद है इसमें । ऐसा स्वाद तो पकवान और अन्य पदार्थों में भी नहीं मिलता । साधारण भोजन से मन भी शुद्ध होता है ।"

इसलिये प्रेमिजन सात्त्विक भोजन ही श्री भोग के लिये लाया करते थे।

आप की श्रद्धा व भावना श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के प्रति उच्च स्तर की थी। एक बार आप स्थान गरेला ज़िला लाड़काना (सिन्ध) में विराजमान थे। गरेले में आप के कई भक्त श्रद्धालु होने के साथ साथ धनी भी थे। उनमें से भक्त जमीयतराय ने अपने भ्रमण के लिये एक कार खरीदी थी। सायं समय जब वह सैर के लिए जाता तो आप को भी सैर के लिए कार पर ले जाता। आप तीन चार बार तो उसके साथ कार पर जाते रहे, पुनः कुछ सोच कर कार पर जाना छोड़ दिया। भक्त जमीयतराय ने जो आप का अनन्य श्रद्धालु था, आप से कार पर न जाने का कारण पूछा। पहले तो आप ने कोई कारण न बताया परन्तु उस के अगाध प्रेम को देख कर आप ने बताया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) तो सैर व यात्रा पैदल चल कर या घोड़े पर चढ़ कर करते हैं और हम यहां कार में बैठ कर सैर करें, यह बात हमें शोभा नहीं देती। आपकी श्रद्धा व सच्चाई का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा कि उसने विनय की—"यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी यह कार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के श्री चरणों में समर्पित कर दूँ। क्योंकि इस कार को खरीद किये हुये अभी थोड़ा सा समय ही हुआ है। यदि आप की मौज हो तो नई कार भी ली जा सकती है।"

आप (श्री तीसरी पादशाही जी) ने फ़रमाया कि भेंट करनी है तो नई वस्तु भेंट की जाए जो एक बार भी अपने प्रयोग में न लाई गई हो, उस को श्री चरणों में भेंट करना अधिक अच्छा होता है। अन्त में आप भक्त जी को उचित सलाह देकर उसको साथ लेकर लाड़काना (सिन्ध) से लाहौर (पंजाब) आए तो वहाँ से डाज (Dodge) कम्पनी की नई कार ख़रीदी तथा इसे लाहौर से आश्रम पगाला ज़िला गुजरांवाला में पहुँचा दिया।

यह प्रसंग मार्च १९३३ का है। उस समय श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री दूसरी पादशाही जी सन्त आश्रम पगाला ज़िला गुजरांवाला में संगतों

को श्री दर्शन व अमृत वचनों से निहाल करने के लिये यहाँ पधारे थे। जब आप व भक्त जी कार लेकर पहुँचे तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि हमें कार की ज़रूरत नहीं है। हमें तो पैदल यात्रा करने में बड़ा आनन्द आता है लेकिन आप की व भक्त जी की अत्यधिक श्रद्धा व प्रेम को देख कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को कार स्वीकार करनी पड़ी। भक्त हरनाम सिंह जी (महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी) कार चलाना जानते थे। अतः वे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को सैर पर ले जाते रहे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को कार पर विराजमान हुए देख सारी संगत तथा आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) अत्यन्त हर्षित हुये।

इस के बाद आप ने परमार्थ के लिये श्री आज्ञानुसार सिन्ध जाना था। आप लौटने को तैयार हुए। भक्त जी भी आप के साथ पुनः स्थान गरेला (सिन्ध) आ गये। आप अपने परमार्थ-पथ पर चलते हुए दिन रात सत्संग की धारा प्रवाहित करने लगे। सन्त रज्जबदास जी कहते हैं:—

॥ दोहा ॥

सन्त नदी जल मेघला, चलैं विहंगम चाल।
रज्जब जहँ जहँ पग धरैं, तहँ तहँ करैं निहाल॥

सन्त महापुरुष, नदी व बादल पक्षी की चाल चला करते हैं। ये तीनों जहाँ जहाँ पर कदम रखते हैं सब को शीतल बना देते हैं। आप के प्रेमी आप में अनन्य अनुराग और अचल निष्ठा रखते थे। अब आप ने अपनी उच्च संस्कारी आत्माओं को जो संसार के माया जाल में फँसी हुई थीं परन्तु परमार्थ पथ के लिये भी जिज्ञासु थे उन्हें इस पथ पर लाने के लिए स्वयं उन के पास गये। उन में से एक भक्त हज़ारीमल जी (महात्मा परम विवेकानन्द जी) भी थे।

आप सिन्ध में बीचांजी स्थान में सत्संग अमृत धारा प्रवाहित किया करते थे। आप के निवास स्थान से लगभग पाँच-छः मील की दूरी पर एक गांव भिरकण था जहाँ लोग पैदल आया जाया करते थे। उन दिनों यातायात (आने जाने के रास्ते) के साधन सुगम न थे। सवारी इत्यादि का कोई प्रबन्ध न था। वहाँ एक भक्त

किसी कार्य के लिये नित्यप्रति पैदल जाया करता था। एक दिन आप की मौज उठी कि हम भी उस गांव में जाएँ। आप ने उस भक्त को कहा कि हम ने भी उस गांव में जाना है। उसने विनय की प्रभो! गर्मियों का मौसम है। नीचे पृथ्वी बहुत तपती है जिस पर पैदल चलने से आप को बहुत कष्ट होगा। यही अच्छा होगा यदि आप अब न जाकर फिर कभी जाएँ। आप ने फ़रमाया कि हमारी जो मौज उठी है वहाँ अवश्य ही कोई ज़रूरी काम है। इसलिये हमें वहाँ अवश्य ही पहुंचना है। वह भक्त महापुरुषों के गुप्त रहस्यों को न समझता हुआ चुप हो गया और आप भी उसके साथ गांव भिरकण जा पहुँचे।

भिरकण में पहुँच कर आप सीधे एक स्कूल में गये जहाँ लड़के पढ़ते थे। सारे स्कूल में सब लड़कों को देखा परन्तु भक्त हज़ारीमल को जो सातवीं कक्षा में पढ़ता था, देखकर फ़रमाया–"यही लड़का उत्तम संस्कारी मालूम होता है। यही हमारे काम का है।" भक्त हज़ारीमल को समीप बुलाया। उस से कुछ वार्त्तालाप किया। सभी पाठशाला के लड़के देखकर दंग रह गये कि हज़ारीमल को क्या हो गया है! उसकी आँखों में आप के मिलने से एक अनूठी मस्ती छा गई। वह उसी समय ही पद-पंकज का भँवरा बन गया। आप ने उसे नाम-उपदेश दिया और आश्रम का पता बता कर लौट आए। वहाँ से लौट कर उस सेवक (जो साथ गया था) ने आप के श्री चरणों में प्रार्थना की कि महाराज! यदि आप यहाँ होते तो आप के सत्संग में हज़ारों लोग आते और उन का कल्याण होता और आप का दिन सफल हो जाता। भिरकण जाकर आपका दिन निष्फल हो गया। आपने फ़रमाया–"भक्त जी! आप तो एक दिन की बात कर रहे हो परन्तु हमारा तो सिन्ध में आना ही आज सफल हो गया है। आगे चल कर जब वह लड़का परमार्थ के काम पर लगेगा तो कितने ही जीवों का भला करेगा। वह भक्त यह उत्तर सुन कर श्री चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा–आप त्रिकालदर्शी हो। आने वाले समय में क्या होना है, यह आप ही जानते हो। हमारी भूल क्षमा करें।

बाद में जब भक्त हज़ारीमल जी की लगन व रुचि अधिक बढ़ती गई तो वहाँ पर एक बाबा जी रहते थे, जो उस गांव में पूजनीय थे। भक्त हज़ारीमल जी ने इस

सच्चे उपदेश की चर्चा उन से भी की। बाबा जी ने पूछा—"क्या तुमने उन्हीं से गुरु-दीक्षा ली है जो घोड़े पर चढ़ने की देरी में ही ज्ञान देते हैं।" उस ने तो कटाक्ष किया किन्तु कैसी विचित्र बात है कि वे इतनी शीघ्रता से माया के बन्धन से मुक्त करा कर ज्ञान का प्रकाश देते हैं कि ऐसा अन्यत्र उदाहरण मिल सकना बड़ा कठिन है।

भक्त हज़ारीमल जी एक बार श्री दर्शन के लिये लक्खी गये और बाबा जी वाली बात श्री चरणों में निवेदित की। आपने मुस्कराते हुए फ़रमाया—"हमने धुर दरगाही हुक्म को देखना है न कि बाबा जी को। उन्होंने अपना काम करना है, हमने अपना काम करना है।" महापुरुष तो त्रिकालदर्शी होते हैं। जो उन की अपनी रूहें अर्थात् परमार्थ तथा गुरु भक्ति पर चलने वाली होती हैं वे उन को स्वयं ढूँढ कर उन से परमार्थ का कार्य करवाते हैं।

कितनी अपरम्पार लीला है। जिस मालिक को मिलने में योगी, ऋषि, मुनि तपस्या करते हैं, हज़ारों वर्षों की तपस्या करने पर भी उन्हें मालिक की प्राप्ति सुलभ नहीं होती, वही इष्टदेव मालिक सन्त महापुरुषों के रूप में शिष्यों की खोज करते हैं।

भक्त हज़ारीमल जी का कहना है कि जनवरी सन् १९३६ में मुझे टी० बी० की बीमारी हो गई थी। मैं टी० बी० हस्पताल में दाख़िल हुआ। सात मास वहाँ रहा परन्तु चिकित्सा (इलाज) करने पर भी ठीक न हुआ।

"मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की"

डॉक्टरों ने मुझे कहा कि तुम्हारा रोग तीसरे दर्जे पर पहुँच चुका है। यह क्षय रोग (टी० बी०) किसी दशा में भी ठीक नहीं हो सकता। अब भक्त हज़ारीमल जी ने मन में सोचा कि अब बचने की कोई आशा नहीं है इसलिये क्यों न मैं अपने जीवन के कुछ दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा में ही व्यतीत कर लूँ। यह सक्खर शहर के सैनिटोरियम अस्पताल से सीधा लक्खी के आश्रम पर पहुँच कर सेवा करने लगा। एक दिन उसने अपने मन में सोचा कि मरने से पहले

एक बार मुझे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री पवित्र दर्शन हो जाते तो अच्छा होता। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी नसीराबाद में विराजमान थे और सत्संग का कार्य पहले से अधिक बढ़ चुका था। परन्तु जिस समय उसका विनय पत्र श्री चरणों में पहुँचा तो आप ने महात्मा अनमोल धर्मानन्द जी को लक्खी स्थान पर भेजा कि भक्त हज़ारीमल जी को अपने साथ नसीराबाद ले आओ।

जब महात्मा अनमोल धर्मानन्द जी लक्खी पहुँचे तो क्या देखते हैं कि भक्त जी को १०३° (डिग्री) का बुखार है और स्टेशन पर पहुँचने के लिए कोई सवारी भी नहीं है। जब महात्मा जी ने भक्त जी को श्री दर्शनों के लिए चलने का सन्देश दिया तो उसकी खुशी की सीमा न रही। उसे बुखार भूल गया और साथ चलने को तैयार हो गया। रेलवे स्टेशन रुक (Ruk) वहां से पांच मील की दूरी पर था। गाड़ी का समय भी हो चुका था। उन्होंने पांच मील का रास्ता भागते भागते स्टेशन पर गाड़ी को पकड़ा। लक्खी स्थान के लोगों ने भक्त जी को इस हालत में जाने से मना किया था कि ऐसा न हो रास्ते में तुम्हारी हालत अधिक बिगड़ जाए परन्तु भक्त जी ने किसी की एक न मानी। जब वे स्टेशन पर पहुँचे तो बुखार स्वयं उतर गया और सब लोग हैरान हो गए। जो बुखार डॉक्टरों के इतना इलाज करने पर भी न उतरा, वह उसी दिन बिल्कुल ही उतर गया और कुछ समय पश्चात् क्षयरोग भी समाप्त हो गया और वह भक्त जी नीरोग हो गये। डॉक्टर बोधराज जी ने इन का इलाज किया था। वे अब भी कभी कभी इनसे मिलते हैं और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की महिमा करते हुए कहते हैं कि जहाँ डॉक्टरों के दिमाग़ ने काम नहीं किया वहां श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा काम कर गई। निस्सन्देह धन्य हैं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी।

अब यह भक्त हज़ारीमल जी श्री दरबार में शरणागत होकर हित चित्त से सेवा करने लगे तथा कुछ समय पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने इन्हें साधु वेष देकर इनका नाम महात्मा परम विवेकानन्द जी रखा और अब भी यह श्री दरबार की सेवा में आठों पहर संलग्न हैं।

इस प्रकार से सम्पूर्ण सिन्ध में आप (श्री तीसरी पादशाही जी) ने नाम की अमर ज्योति का प्रकाश कोने कोने में भर दिया। पहले से ही आप श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की श्री आज्ञानुसार अपने ही नाम पर नाम की दीक्षा दे रहे थे तथा सम्पूर्ण सिन्ध के भक्तों के घर में आपकी ही श्री मूर्ति विराजमान थी। अन्य प्रचारक महात्मा जन जिन को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अन्य स्थानों पर सत्संग उपदेश के लिए भेजा था वे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के नाम पर सत्संग कर रहे थे। उन में से कुछ महात्माजनों ने आते जाते हुए सिन्ध में एक अनोखी रचना देखी कि आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) अपने नाम पर नाम-उपदेश व गुरु-दीक्षा देते हैं तथा अपनी ही पूजा करवाते हैं। उनके दिल में कुछ शंका उत्पन्न हो गई।

एक बार महात्मा धर्मात्मानन्द जी से रहा न गया। उन्होंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में जाकर सिन्ध का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"वे हमारी ही आज्ञा से सब कुछ कर रहे हैं। इसमें किसी को संशय करने की आवश्यकता नहीं। बिना आज्ञा के ऐसा करने की किस में शक्ति है?" उन महात्मा जी ने क्षमा मांगी। जब उन्होंने भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) के बढ़ते हुए तेज को देखा तो श्रद्धा व प्रेम से आपकी सेवा करने लगे और अन्तिम श्वास तक श्री दरबार की सेवा करते रहे।

आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) की विनय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी सिन्ध में पधारे। उस समय सिन्ध के भक्तों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में विनय की कि अपनी ही श्री मूर्ति पूजा के लिए देवें। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) उस समय साधु वेष में थे तथा महात्मा रोशनानन्द जी उनकी सेवा में हुआ करते थे। भक्तों के विनय करने पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) की ओर

संकेत करते हुए फ़रमाया—"आप लोगों के पास जो पहले श्री मूर्ति है वही ठीक है।" अर्थात् आपने पहले ही दर्शा दिया कि ये (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) परिपूर्ण हैं। हमारे और इनमें कोई भेद नहीं।

आप ने साधु वेष में ही अपनी विलक्षणता प्रकट की। जो लोग भी आप की पावन संगति को प्राप्त करते, वे सुध बुध भूल जाते। उस समय कोई यह न समझ सकता था कि आप अभी विधि के अनुसार रूहानी जानशीन हुए हैं या नहीं। आप जन्म से ही परमहंस के रूप को लेकर प्रकट हुए थे। कितनी विचित्र लीला है कि आप तो अपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन के लिए लालायित रहते और सिन्ध में प्रेमीजन, जिज्ञासु आप के श्री दर्शनों की चाह में तड़पते। आपने प्रेम भक्ति का ऐसा नशा पिलाया जिस को पीकर सभी प्रेमी आन्तरिक आनन्द में झूमने लगे। कई बार तो बड़े बड़े लोगों को आप के पीछे फिरते हुए देखा गया। आप के श्री दर्शन की लालसा के लिए दीवाने बने हुए उन्हें देख कर अन्य लोग (जो पथ पर न आए थे) हैरान हो जाते कि इन सत्पुरुषों में कौन सी ऐसी शक्ति है जिस से दिल स्वयं ही मतवाला हो जाता है। उस समय अपनी स्थिति का भी किसी को ख़्याल न रहता। लोक मर्यादानुसार मान अपमान की चिन्ता भी न रहती। लोग आप को प्रेमवश 'जादूगर' भी कहते। आप भी तो प्रेम भक्ति का ऐसा जादू चलाते कि उस अनूठी अनुपम मस्ती में खो कर प्रेमी सदा के लिए उस में खोये ही रहना चाहते। जिस दिव्य आनन्द की खोज साधक, सिद्ध, योगी, तपस्वी जीवन पर्यन्त कठिन तपस्या की साधना में खोजते हैं परन्तु फिर भी उन्हें सुलभ नहीं होता। यह शाश्वत आनन्द आपके श्री दर्शन मात्र से ही प्रेमिजनों को प्राप्त हो जाता। यह गुण तो आपका अन्तिम समय तक अपनी विलक्षणता दिखा गया। जिस ने एक बार आप की श्री सुषमा को निहारा, जिस के साथ एक दो वचन भी हुए, वह तो अपना अस्तित्व ही खो बैठा। वह प्रेम भक्ति के रंग में रंगा गया।

आप की कीर्ति सिन्ध के आसपास के क्षेत्रों में अधिक फैल चुकी थी क्योंकि आपने सिन्ध के गाँव-गाँव व शहर-शहर में पहुँच कर भक्ति का सन्देश दिया।

आप की कीर्ति सुन कर शिकारपुर (सिन्ध प्रान्त) निवासी सेठ ताराचन्द जी आप के दर्शन के लिए आए। यह आप के अति विश्वासी और श्रद्धालु भक्त बन गये। इन का व्यापार काफ़ी बढ़ा हुआ था। इनका व्यापार शिकारपुर के अतिरिक्त कोयटा (बलोचिस्तान) में भी चलता था तथा वहाँ पर ठहरने के लिए कोठियां भी बनी हुई थीं। सेठ ताराचन्द जी व्यापार के काम के लिए जब भी कोयटा जाते तो आप जी के श्री चरणों में प्रार्थना करते कि कोयटा चल कर अपने पावन सत्संग रूपी अमृत से जीवों की प्यास बुझावें। आप उसकी प्रार्थना स्वीकार कर कई बार कोयटा पधारे। यहाँ पर आपने अनेकों जीवों को सत्संग-उपदेश से परितृप्त किया। काफ़ी संख्या में लोग आप के श्रद्धालु बन गए।

उन श्रद्धालुओं में से एक ख़ान साहिब कैकाबाद जी (पारसी) और उनकी सुपुत्री प्रवीण आपके अति श्रद्धालु थे। ख़ान साहिब जी उस समय की ब्रिटिश गवर्नमैन्ट की ओर से अति उच्च पद पोलीटिकल एजेण्ट की पदवी पर नियुक्त थे। आप जब भी कोयटा में पधारते तो ख़ान साहिब अपनी सुपुत्री सहित कोयटा रेलवे स्टेशन पर आकर आपको निवास स्थान पर ले जाते और जब तक आप कोयटा में निवास करते, वह प्रतिदिन सायं समय आपको अपनी मोटर-कार में बैठा कर बाहर सैर के लिए ले जाते तथा श्री दर्शन का लाभ उठाते। जब आप कोयटा से प्रस्थान करते तो ख़ान साहिब रेलवे स्टेशन पर पहुंचाने तक आप की सेवा में उपस्थित रहते।

एक बार आप के कोयटा से अन्य स्थान पर पधारने के दिन ख़ान साहिब जी एक आवश्यक सरकारी काम में उलझे हुए थे। वह समय पर स्टेशन पर न पहुँच सके, परन्तु उन के मन में अत्यधिक व्याकुलता थी। अतः वे कार्य को बीच में ही छोड़ कर रेलवे स्टेशन पर पहुँचे। ख़ान साहिब जी ने रेलवे प्लेटफार्म पर पांव रखा ही था कि गाड़ी ने चलने की सीटी दी। जिससे कि ख़ान साहिब जी उन्मत्त होकर उस डिब्बे की ओर भागे, जिस में आप विराजमान थे। ख़ान साहिब जी जैसे भागते हुए दिखाई दिए तो गार्ड ने उन्हें देखते ही गाड़ी रोक दी और वे आप के पास पहुँच ही गए और उन्होंने श्री चरणों को स्पर्श कर अपने

आप को कृतार्थ किया। ख़ान साहिब जी को प्लेटफार्म पर भागते हुए देख कर उस समय वहां जितने लोग उपस्थित थे सभी ने दांतों तले अंगुली दबा ली और चकित हो गये कि इतने ऊँचे पद के अधिकारी साधारण मनुष्यों की भाँति कहां भागे जा रहे हैं। उस समय ख़ान साहिब जी को किसी की भी चिन्ता न थी। जो मनुष्य अपने रूहानी राहनुमा जिन से कि उसको आत्मिक शान्ति प्राप्त हुई हो और फिर वह अपने मालिक से बिछुड़ रहा हो, भला ऐसे मालिक के श्री दर्शन और चरण-स्पर्श को जाते समय किसी अन्य ओर ध्यान कैसे जा सकता है !

सत्य तो है कि सच्चे प्रेमी को अपने प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वह उनके प्रेम में इतना आनन्द विभोर हो जाता है कि उसे उस आन्तरिक आनन्द तथा वास्तविक प्रेम में दुनियावी मान-अपमान, हानि-लाभ सब मिथ्या दिखाई देते हैं। ख़ान साहिब जी भी इसी सच्चे प्रेम के रंग में रंगे हुए थे। जिसका स्पष्ट रूप लोगों के सामने स्वयं प्रकट हो गया। गाड़ी में आप ने अपने प्रेमी की आतुरता को मिटाने के लिए दो तीन श्री अमृत वचन भी फ़रमाए। प्रेमी ने चरण स्पर्श भी किया और एक क्षण श्री दर्शन तथा श्री अमृत प्रवचनों का पान भी कर लिया। पुनः गाड़ी चल पड़ी और ख़ान साहिब जी बिना किसी और ध्यान दिए अपने काम पर लौट आए।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी सिन्ध लौट आए। यहां पर गाँव गाँव में आप आत्म-ज्योति को दर्शाने हेतु अनवरत परमार्थ पथ पर आरूढ़ रहे। आपने श्री चकौड़ी सन्त आश्रम में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के श्री चरणों में सिंध में कृपा करने के लिए विनय की। आप की विनय स्वीकार कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी सन् १९३४ में अन्तिम बार लक्खी (सिंध) पधारे। वे आप को प्रथम दृष्टि में ही पहचान चुके थे कि आप का अवतार भी परमार्थ के कार्य को चलाने के लिए हुआ है, इसीलिए तो उन्होंने आप को साधु वेष प्रदान करते ही आपके अपने नाम पर ही उपदेश देने की आज्ञा दी थी। अब इस रहस्य को सबके सामने सांकेतिक भाषा में प्रकट करने लगे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) लक्खी (सिन्ध) में शहर के स्थान के चौबारे पर

विराजमान थे और सप्ताह में एक बार संगत को नीचे आकर श्री दर्शन देने की कृपा करते थे। थोड़ी सी देर संगत को श्री दर्शन देकर फिर बाहर घूमने के लिये चल देते थे। दूर दूर से संगत श्री दर्शन के लिए आई हुई थी। एक दिन सारी संगत ने मिलकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में विनय की कि आज वे अपने मुखारविन्द से प्रवचनामृत की वृष्टि करें। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मुस्करा कर फ़रमाया—"संसार में जिसका बेटा समझदार और काम करने के योग्य हो जाता है, वह सारा कार्य अपने सुपुत्र को सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है। स्वयं आराम करता है। अब हमारा यह प्रिय शिष्य (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी की ओर संकेत करते हुए कहा) कबीर (बड़ा) हो चुका है। अब तुम्हें ये सत्संग सुनाएँगे और हम विश्राम करेंगे। जो इन के श्री वचनों पर चलेगा तथा उन पर आचरण करेगा वह हमारी आशीर्वाद का पात्र होगा।"

महापुरुषों के रहस्य को कौन समझ सकता है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कौन से आराम फ़रमाने के सम्बन्ध में वचन फ़रमा रहे थे। जब १९३६ सन् में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी निज स्वरूप में लीन हो गए, तब उन का यह रहस्य सब पर प्रकट हुआ। यहाँ सिन्ध में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने १९३४ सन् का दीपावली पर्व मनाया। इस के पश्चात् वे अन्य स्थानों में सत्संग उपदेश करते हुए चकौड़ी सत्संग आश्रम में विराजमान हुए। १९३४ की दीपावली के पश्चात् सब महात्मा जनों को चकौड़ी सन्त आश्रम में बुलवा कर रूहानी उत्तराधिकारी के विषय में रहस्य प्रकट किया। जिस में आपको (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) रूहानी उत्तराधिकारी बनने के विषय में सब के सम्मुख प्रवचन किये। पुनीत निर्देश श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी महाराज के जीवन चरित्र में आ चुके हैं।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी जनवरी १९३६ सन् में देहली में विराजमान थे। श्री परम पवित्र मौज के अनुसार आप

(श्री तीसरी पादशाही जी) को सिन्ध से बुलवाया। आप के आने पर एक दो दिन लगातार एकान्त स्थान में प्रवचन होते रहे। दो दिन पश्चात् महात्मा सत् विचारानन्द जी को (जो वहीं पर थे) फ़रमाया—"हमारे रूहानी जानशीन (श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी की ओर संकेत कर) ये होंगे। यह गुप्त भेद समय पर इन के परामर्श से दरबार के सब महात्मा, बाइयां, भक्त, भक्तानियां एवं सम्पूर्ण गुरुमुख संगत पर प्रकट कर देना। हर तरह से इनकी आज्ञा मानना। वैसे तो हमने चकौड़ी सन्त आश्रम पर सब महात्माओं की मण्डली में इन के सम्बन्ध में काफ़ी कुछ कह दिया है परन्तु प्रकट रूप में आप ने सब पर प्रकट करना है। हमारी ओर से सब को दुआ-आशीर्वाद।"

महात्मा सत्विचारानन्द जी ने साष्टांग दण्डवत् वन्दना की और क्षमा मांगी कि स्वामिन्! हम नादान जीवों के अपराधों को क्षमा कर दो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने क्षमा करते हुए फ़रमाया—"हम आप की सच्चाई से बहुत प्रसन्न हैं। हित चित्त से गुरु-दरबार की सेवा करते हो और करना।"

रूहानी जानशीनी

अपने परम प्रिय शिष्य को सर्व प्रकार से परिपूर्ण, गुणसम्पन्न, तत्त्वनिष्ठ जान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने सम्पूर्ण रूहानी ताकत अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति उन्हें समर्पित कर दी और स्वयं निश्चिन्त हो गए। इसके पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ९ अप्रैल १९३६ सन् ईस्वी तदनुसार २८ चैत्र संवत् १९९३ विक्रमी वीरवार को नंगली साहिब में निज स्वरूप में लीन हुए।

अतएव २ मास २४ दिन के बाद चकौड़ी सन्त आश्रम में प्रथम महात्मा सत् विचारानन्द जी ने अर्शाद नामा (श्री आज्ञा) सर्व संगत को सुनाया। अतएव पुरातन मर्यादा अनुसार श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज को

विराजमान थे और सप्ताह में एक बार संगत को नीचे आकर श्री दर्शन देने की कृपा करते थे। थोड़ी सी देर संगत को श्री दर्शन देकर फिर बाहर घूमने के लिये चल देते थे। दूर दूर से संगत श्री दर्शन के लिए आई हुई थी। एक दिन सारी संगत ने मिलकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में विनय की कि आज वे अपने मुखारविन्द से प्रवचनामृत की वृष्टि करें। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मुस्करा कर फ़रमाया—"संसार में जिसका बेटा समझदार और काम करने के योग्य हो जाता है, वह सारा कार्य अपने सुपुत्र को सौंप कर निश्चिन्त हो जाता है। स्वयं आराम करता है। अब हमारा यह प्रिय शिष्य (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी की ओर संकेत करते हुए कहा) कबीर (बड़ा) हो चुका है। अब तुम्हें ये सत्संग सुनाएँगे और हम विश्राम करेंगे। जो इन के श्री वचनों पर चलेगा तथा उन पर आचरण करेगा वह हमारी आशीर्वाद का पात्र होगा।"

महापुरुषों के रहस्य को कौन समझ सकता है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कौन से आराम फ़रमाने के सम्बन्ध में वचन फ़रमा रहे थे। जब १६३६ सन् में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी निज स्वरूप में लीन हो गए, तब उन का यह रहस्य सब पर प्रकट हुआ। यहाँ सिन्ध में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने १६३४ सन् का दीपावली पर्व मनाया। इस के पश्चात् वे अन्य स्थानों में सत्संग उपदेश करते हुए चकोड़ी सत्संग आश्रम में विराजमान हुए। १६३४ की दीपावली के पश्चात् सब महात्मा जनों को चकौड़ी सन्त आश्रम में बुलवा कर रूहानी उत्तराधिकारी के विषय में रहस्य प्रकट किया। जिस में आपको (श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) रूहानी उत्तराधिकारी बनने के विषय में सब के सम्मुख प्रवचन किये। पुनीत निर्देश श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी महाराज के जीवन चरित्र में आ चुके हैं।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी जनवरी १६३६ सन् में देहली में विराजमान थे। श्री परम पवित्र मौज के अनुसार आप

(श्री तीसरी पादशाही जी) को सिन्ध से बुलवाया। आप के आने पर एक दो दिन लगातार एकान्त स्थान में प्रवचन होते रहे। दो दिन पश्चात् महात्मा सत् विचारानन्द जी को (जो वहीं पर थे) फ़रमाया—"हमारे रूहानी जानशीन (श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी की ओर संकेत कर) ये होंगे। यह गुप्त भेद समय पर इन के परामर्श से दरबार के सब महात्मा, बाइयां, भक्त, भक्तानियां एवं सम्पूर्ण गुरुमुख संगत पर प्रकट कर देना। हर तरह से इनकी आज्ञा मानना। वैसे तो हमने चकौड़ी सन्त आश्रम पर सब महात्माओं की मण्डली में इन के सम्बन्ध में काफ़ी कुछ कह दिया है परन्तु प्रकट रूप में आप ने सब पर प्रकट करना है। हमारी ओर से सब को दुआ-आशीर्वाद।"

महात्मा सत्विचारानन्द जी ने साष्टांग दण्डवत् वन्दना की और क्षमा मांगी कि स्वामिन्! हम नादान जीवों के अपराधों को क्षमा कर दो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने क्षमा करते हुए फ़रमाया—"हम आप की सच्चाई से बहुत प्रसन्न हैं। हित चित्त से गुरु-दरबार की सेवा करते हो और करना।"

रूहानी जानशीनी

अपने परम प्रिय शिष्य को सर्व प्रकार से परिपूर्ण, गुणसम्पन्न, तत्त्वनिष्ठ जान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने सम्पूर्ण रूहानी ताकत अर्थात् आध्यात्मिक शक्ति उन्हें समर्पित कर दी और स्वयं निश्चिन्त हो गए। इसके पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ९ अप्रैल १९३६ सन् ईस्वी तदनुसार २८ चैत्र संवत् १९९३ विक्रमी वीरवार को नंगली साहिब में निज स्वरूप में लीन हुए।

अतएव २ मास २४ दिन के बाद चकौड़ी सन्त आश्रम में प्रथम महात्मा सत् विचारानन्द जी ने अर्शाद नामा (श्री आज्ञा) सर्व संगत को सुनाया। अतएव पुरातन मर्यादा अनुसार श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज को

३ जुलाई सन् १६३६ ई० तदनुसार २० आषाढ़ १६६३ वि० आषाढ़ सुदी चौदस शुक्रवार के शुभ दिन इस सम्प्रदाय के तृतीय महाराजाधिराज के रूप में उत्तराधिकारी (जानशीनी) के लिए विधिवत् केसर का तिलक लगाया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तृतीय स्वरूप में पारमार्थिक राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। तदुपरान्त श्री आरति उतारी गई। इसी दिन ही श्री दूसरी पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा किया गया तथा अगले दिन २१ आषाढ़ १६६३ संवत् ४ जुलाई शनिवार १६३६ सन् आषाढ़ सुदी पूर्णमासी को व्यासपूजा का शुभ पर्व मनाया गया।

आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) के परमार्थ पथ पर सिंहासनारूढ़ होते ही आकुल हृदयों ने शान्ति की सांस ली। दो महीने चौबीस दिन प्रेमी गुरुमुख शोक सागर में डूबे रहे। प्रेमियों के हृदय एक तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की याद में रो रहे थे दूसरा उन्हें कोई आगे आश्रय न दिखाई देने से वे मझधार में हिचकोले खा रहे थे। अब आश्रय पाकर उनके हृदय में आशा की एक नई किरण ने धैर्य भर दिया। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी ने भी यह अवधि श्री नंगली साहिब में ही बिताई। आप स्वयं श्री सद्गुरु-प्रेम में सदा आकुल रहते जिस से कोई भी इस रहस्य को न समझ सका।

१६३६ सन् में परमार्थ के सिंहासन पर विराजमान होकर आप ने सत्संग उपदेश को विशाल रूप दिया। आप प्रथम दो वर्ष पंजाब तथा सिन्ध को कृतार्थ करते रहे। श्री चकौड़ी सन्त आश्रम में श्री व्यास पूजा का पर्व मनाया जाता पुनः सिन्ध तथा पंजाब को कृतार्थ करते। इसी बीच श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने पंजाब के प्रत्येक आश्रम को पावन चरणारविन्दों से अनुगृहीत किया। कितना सौभाग्य है इन स्थानों का जहां पर स्वयं कुल मालिक सन्त स्वरूप में अनामी लोक से चल कर इन्हें पवित्र करने आए। कितना विचित्र ढंग अपनाया इन विभूतियों ने कि श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी ने बिहार की पुण्य भूमि पर अवतार लेकर सीमाप्रान्त में स्थित टेरी स्थान को

अपने अमृत-प्रवचनों का एवं सत्संग उपदेश का उचित क्षेत्र बनाया। यही टेरी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी का जन्म स्थान बना। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने टेरी में अवतार लेकर सत्संग-उपदेश का प्रमुख केन्द्र लक्की मरवत् को बनाया। इसी लक्की मरवत् में इस सम्प्रदाय की दो महान् विभूतियां श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज व श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज अवतरित हुईं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने पंजाब को सत्संग उपदेश का केन्द्र बनाया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी कुछ समय यहां विराजमान रहे तो इसी पंजाब की पुण्य भूमि में इस सम्प्रदाय के पंचम महाराजाधिराज श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रकट हुए।

आप (श्री तीसरी पादशाही जी) ने दिन रात एक कर के श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री वचनों को साकार रूप दिया। १६३६ से लेकर १६३६ तक आपने पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, उत्तर प्रदेश के प्रान्तों में जहां कहीं अपने सत्संग आश्रम थे, सत्संगी महात्माओं व भक्तों की विनती करने पर सब स्थानों को अपनी पवित्र चरण रज से पुनीत किया। टेरी, डेराइस्माइलखां (सीमाप्रान्त) लक्खी, गरेला, गोधारा, नसीराबाद (सिन्ध) चकोड़ी सन्त आश्रम, भावड़ा, पिपलभुट्टा, पगाला, भूरेकी, गन्धोवाल, डेला-चट्ठा, हरनौली, मुलतान, वहोआ, कोटली मुहम्मदसदीक, गौंदल आदि (पश्चिमी पंजाब) इन स्थानों पर अपना अमूल्य समय देकर सब की भावनाओं को पूरा किया। अब ये स्थान पश्चिमी पाकिस्तान में आ गए हैं।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी नसीराबाद में विराजमान थे। कुछ दिन पश्चात् आप ने महात्मा परम विवेकानन्द जी को श्री आज्ञा दी कि तुम झंपीयर ज़िला कराची सिन्ध में जा कर रहो। श्री आज्ञा पाकर जब वे झंपीयर गये तो कुछ समय के बाद आप कराची से आ रहे थे। महात्मा परमविवेकानन्द जी की विनय करने पर दो दिन के लिए आप ने झंपीयर भी कृपा की। वहाँ रात को सत्संग हुआ। काफ़ी संगत आई हुई थी। वहाँ की संगत को

३ जुलाई सन् १६३६ ई० तदनुसार २० आषाढ़ १६६३ वि० आषाढ़ सुदी चौदस शुक्रवार के शुभ दिन इस सम्प्रदाय के तृतीय महाराजाधिराज के रूप में उत्तराधिकारी (जानशीनी) के लिए विधिवत् केसर का तिलक लगाया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तृतीय स्वरूप में पारमार्थिक राज्यसिंहासन पर विराजमान हुए। तदुपरान्त श्री आरति उतारी गई। इसी दिन ही श्री दूसरी पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा किया गया तथा अगले दिन २१ आषाढ़ १६६३ संवत् ४ जुलाई शनिवार १६३६ सन् आषाढ़ सुदी पूर्णमासी को व्यासपूजा का शुभ पर्व मनाया गया।

आप (श्री तीसरी पादशाही जी महाराज) के परमार्थ पथ पर सिंहासनारूढ़ होते ही आकुल हृदयों ने शान्ति की सांस ली। दो महीने चौबीस दिन प्रेमी गुरुमुख शोक सागर में डूबे रहे। प्रेमियों के हृदय एक तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की याद में रो रहे थे दूसरा उन्हें कोई आगे आश्रय न दिखाई देने से वे मझधार में हिचकोले खा रहे थे। अब आश्रय पाकर उनके हृदय में आशा की एक नई किरण ने धैर्य भर दिया। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी ने भी यह अवधि श्री नंगली साहिब में ही बिताई। आप स्वयं श्री सद्गुरु-प्रेम में सदा आकुल रहते जिस से कोई भी इस रहस्य को न समझ सका।

१६३६ सन् में परमार्थ के सिंहासन पर विराजमान होकर आप ने सत्संग उपदेश को विशाल रूप दिया। आप प्रथम दो वर्ष पंजाब तथा सिन्ध को कृतार्थ करते रहे। श्री चकौड़ी सन्त आश्रम में श्री व्यास पूजा का पर्व मनाया जाता पुनः सिन्ध तथा पंजाब को कृतार्थ करते। इसी बीच श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने पंजाब के प्रत्येक आश्रम को पावन चरणारविन्दों से अनुगृहीत किया। कितना सौभाग्य है इन स्थानों का जहां पर स्वयं कुल मालिक सन्त स्वरूप में अनामी लोक से चल कर इन्हें पवित्र करने आए। कितना विचित्र ढंग अपनाया इन विभूतियों ने कि श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी ने बिहार की पुण्य भूमि पर अवतार लेकर सीमाप्रान्त में स्थित टेरी स्थान को

अपने अमृत-प्रवचनों का एवं सत्संग उपदेश का उचित क्षेत्र बनाया। यही टेरी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी का जन्म स्थान बना। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने टेरी में अवतार लेकर सत्संग-उपदेश का प्रमुख केन्द्र लक्की मरवत् को बनाया। इसी लक्की मरवत् में इस सम्प्रदाय की दो महान् विभूतियां श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज व श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज अवतरित हुईं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने पंजाब को सत्संग उपदेश का केन्द्र बनाया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी कुछ समय यहां विराजमान रहे तो इसी पंजाब की पुण्य भूमि में इस सम्प्रदाय के पंचम महाराजाधिराज श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रकट हुए।

आप (श्री तीसरी पादशाही जी) ने दिन रात एक कर के श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री वचनों को साकार रूप दिया। १६३६ से लेकर १६३६ तक आपने पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, उत्तर प्रदेश के प्रान्तों में जहां कहीं अपने सत्संग आश्रम थे, सत्संगी महात्माओं व भक्तों की विनती करने पर सब स्थानों को अपनी पवित्र चरण रज से पुनीत किया। टेरी, डेराइस्माइलखां (सीमाप्रान्त) लक्खी, गरेला, गोधारा, नसीराबाद (सिन्ध) चकौड़ी सन्त आश्रम, भाबड़ा, पिपलभुट्टा, पगाला, भूरेकी, गन्धोवाल, डेला-चट्ठा, हरनौली, मुलतान, वहोआ, कोटली मुहम्मदसदीक, गौंदल आदि (पश्चिमी पंजाब) इन स्थानों पर अपना अमूल्य समय देकर सब की भावनाओं को पूरा किया। अब ये स्थान पश्चिमी पाकिस्तान में आ गए हैं।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी नसीराबाद में विराजमान थे। कुछ दिन पश्चात् आप ने महात्मा परम विवेकानन्द जी को श्री आज्ञा दी कि तुम झंपीयर ज़िला कराची सिन्ध में जा कर रहो। श्री आज्ञा पाकर जब वे झंपीयर गये तो कुछ समय के बाद आप कराची से आ रहे थे। महात्मा परमविवेकानन्द जी की विनय करने पर दो दिन के लिए आप ने झंपीयर भी कृपा की। वहाँ रात को सत्संग हुआ। काफ़ी संगत आई हुई थी। वहाँ की संगत को

सम्बोधित करते हुए आप ने फ़रमाया—

गुरुमुखो ! जैसे पानी का अपना कोई रंग-रूप नहीं होता। जैसा रंग उस में डालो, वैसा ही उसका रंग हो जाता है। उदाहरणतया उस में पीला रंग डालने से पानी का रंग भी पीला हो जावेगा और लाल रंग डालने से पानी भी लाल हो जाता है। वैसे ही मन का भी कोई रंग रूप नहीं होता। उस को भी जैसा संग मिले वैसा ही रंग उस पर चढ़ जाता है। कुसंग से मन मैला हो जाता है और सत्संग से मन निर्मल बन जाता है। निर्मल मन में ही ईश्वर का प्रेम निवास करता है। ईश्वर का प्रेम मन में होने से लोक-परलोक के कार्य सहज में ही सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य सब कार्यों की सिद्धि चाहता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को सत्संग में जा कर अपने मन को शुद्ध करने का यत्न करना चाहिये। मन ईश्वर के नाम से शुद्ध होता है और ईश्वर का नाम सत्संग में ही प्राप्त होता है। सत्संग में नाम की महिमा गुरुवाणी में इस प्रकार की गई है:—

सतसंगति कैसी जाणिऐ ॥ जिथै एको नामु वखाणिऐ ॥
एको नामु हुकमु है नानक सतिगुरि दीआ बुझाइ जीउ ॥

सत्संग सुनकर मनुष्य के मन में नाम की प्राप्ति की लगन बढ़ जाती है। जब लगन बढ़ती है तो प्रकृति भी सहायता करती है और उसका मिलाप सन्त-सद्गुरु से हो जाता है। भाग्यशाली जीव सन्त-सद्गुरु से नाम की प्राप्ति कर उसका अभ्यास करके जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा पाकर सच्चा सुख प्राप्त कर लेता है। यही मनुष्य-जन्म का वास्तविक लाभ है।"

जब संगत चली गई तो महात्मा परम विवेकानन्द जी (भक्त वेष में) से आपने पूछा—क्या यहाँ सत्संग सदा होता है ? महात्मा जी ने विनय की—प्रभो ! यहाँ कोई सत्संग नहीं होता। आप ने फ़रमाया—"वह भी कोई शहर है जहाँ सत्संग नहीं होता। तुम यहाँ सत्संग करना आरम्भ कर दो।" महात्मा जी का कहना है कि सत्संग करना तो मैं जानता नहीं था परन्तु यह विश्वास था कि जिन्होंने श्री आज्ञा प्रदान की है वह कार्य करने की शक्ति भी

स्वयं प्रदान करेंगे ।

महात्मा जी ने शहर के कुछ व्यक्तियों से सत्संग आरम्भ करने की बात कही। उन्होंने कहा कि यहाँ पहले बड़े बड़े महात्मा सत्संग करने का प्रयत्न कर चुके हैं उन्हें सफलता नहीं मिली । यहां की धरती भी पथरीली है और मनुष्यों के दिल भी पत्थर जैसे हैं । महात्मा जी ने यह सब वृत्तान्त श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में सुनाया । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"अमूल्य हीरे-लाल भी पत्थरों में दबे हुए होते हैं । हीरे लालों की उत्पत्ति भी पत्थरों में से होती है । वे परिश्रम करने से ही निकलते हैं ।" श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पुनः कहीं अन्यत्र कृपा की ।

उनके पधारने के बाद महात्मा जी ने सत्संग का कार्य श्री प्रवचनानुसार आरम्भ किया । धीरे धीरे संस्कारी रूहें श्री दरबार की महिमा सुन कर मोह-माया रूपी पत्थरों को हटाकर बाहर निकलती आईं । भाव यह कि जिज्ञासु सत्संग में आने लगे । परिणाम यह हुआ कि वहाँ कुछ दिनों में भक्तों की संख्या बढ़ गई और सत्संग का कार्य अच्छा चलने लगा । संगत के लिए एक आश्रम बनवाया गया जहाँ सैंकड़ों भक्त लोग सत्संग से लाभ उठाने लगे । झंपीयर शहर के लोग कहने लगे कि जो काम पहले किसी से न हो सका वह कार्य श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के संकेतमात्र से हो गया। निस्सन्देह श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कोई अद्वितीय शक्ति हैं । झंपीयर शहर और उसके आस-पास के क्षेत्र से कितने ही व्यक्ति शरण में आए और श्री दरबार की सेवा करते करते बाद में साधु बन गए । उन में से महात्मा अमर सत्यानन्द जी व महात्मा अमर सुखानन्द जी मुख्य थे । उन्होंने श्री गुरुदरबार की सेवा के साथ अनेक जीवों को परमार्थ-पथ दर्शाया ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी त्रिकालदर्शी थे जिन्होंने आरम्भ में ही यह फ़रमा दिया कि परिश्रम करने से पहाड़ों में से अनमोल रत्न भी निकल आते हैं । अपनी संस्कारी रूहों को स्वयं जानते थे इसलिये अपने साथ उन्हें मिलाने का कोई न कोई कारण बन ही गया । झंपीयर में सत्संग का कार्य आरम्भ कराने का यही

उन का तात्पर्य था। महापुरुषों की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता।

इसके पश्चात् १४ मई सन् १९३९ को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने हकल ज़िला जम्मू में कृपा की। वहाँ पर कुछ दिन अमृत-प्रवचनों से संस्कारी आत्माओं को लाभान्वित कर आप ने श्री नगर की ओर प्रस्थान किया। उस समय एक बस महात्मा जनों की साथ थी तथा आप कार में विराजमान होकर यात्रा कर रहे थे। जम्मू से लगभग १५-२० मील की दूरी पर जाकर अचानक ही कार का अक्ष (Axle) टूट गया। आप कार से उतर कर बस में विराजमान हो गये तथा कटड़ा तक बस में ही गये। कार ठीक होने के लिए जम्मू भेज दी गई। कार का अक्ष ठीक करवाने में दो तीन दिन लग गये। आप दो तीन दिन तक कटड़ा में विराजमान रहे। वहाँ सत्संग उपदेश से सब को कृतार्थ करते रहे। कटड़ा वह स्थान है जहां से लोग वैष्णोदेवी की यात्रा को जाते हैं। उस समय यात्री पर्याप्त संख्या में वहाँ आए हुए थे। यहां पर आपके पावन वचनामृत का पान कर के तथा देदीप्यमान छवि को निहार कर वे सब मंत्र मुग्ध से हो गए। सत्संग श्रवण कर वे अपने भाग्यों की सराहना करने लगे और कहने लगे कि सन्त महापुरुष वास्तव में ही जीवों को सन्मार्ग पर लगाने के लिए इस धराधाम पर अवतरित होते हैं। कई यात्रियों ने आप से नाम की दीक्षा भी ली।

तीन दिन पश्चात् जम्मू से कार ठीक हो कर आ गई और कार पर विराजमान हो कर आप ने वहाँ से प्रस्थान किया। कटड़ा से चल कर बटोत और कुद में एक एक रात ठहर कर वैरीनाग सरोवर पहुँचे। इस झील से जेहलम दरिया निकलता है। इस स्थान के रमणीक दृश्य सब महात्मा जनों को दिखलाते हुए आप अनन्त नाग पहुँचे। काश्मीर भाषा में 'नाग' चश्मे को कहा जाता है। इसलिए यहां पर कई शहरों के नाम के साथ 'नाग' शब्द आता है। अनन्त नाग में दो-तीन दिन सत्संग प्रवाह चलता रहा। इसी मध्य एक बार दिन के समय पहलगाम में भी कृपा की। पुनः रात्रि समय अनन्त नाग लौट आए। अनन्त नाग में कुछ एक सज्जन भक्त बन गए तथा आप को वहीं कुछ दिन ठहरने के लिये विनय करने लगे। आप भी उनकी विनय स्वीकार कर एक दो दिन वहाँ ठहरे और पुनः आपने श्री नगर में

कृपा की ।

श्री नगर में काश्मीर के महाराजा हरिसिंह की बादामी बाग़ में कोठियाँ व बंगले बने हुये थे । महात्मा सत् विचारानन्द जी तथा महात्मा योग प्रकाशानन्द जी महाराजा के महल में गए परन्तु वे कहीं अन्यत्र गए हुये थे । वहाँ महात्मा जनों की भेंट उन के सचिव महोदय से हुई । वे अत्यन्त श्रद्धालु और साधु-सेवी थे । अतः वे महात्माजनों के साथ श्री दर्शन के लिए आये और श्री दर्शन कर कृतकृत्य हो गये । सचिव महोदय ने एक बंगला आवास के लिये दे दिया जिसमें उसने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के लिए ऊपरी भाग (चौबारा) तथा नीचे के भाग में महात्माजनों के निवास के लिए व्यवस्था कर दी । इस के साथ ही काश्मीर राज्य की ओर से भोजनादि का सारा प्रबन्ध करवा कर तीन-चार ब्राह्मण भी भोजन बनाने की सेवा में नियुक्त कर दिये ।

रात्रि समय नित्यप्रति सत्संगादि का कार्यक्रम होता । सैक्रेटरी साहिब अपने साथ बड़े बड़े उच्च पदाधिकारियों को साथ लाते, सभी श्री दर्शन तथा सत्संग का लाभ प्राप्त करते और श्री दर्शन कर कृतकृत्य हो जाते तथा मुक्त कंठ से आप के गुणानुवादों को गाते । उन में से कइयों ने नामोपदेश भी लिया । वहाँ पर कई ब्राह्मण आप को अपना गृह पवित्र करने के लिये विनय करते परन्तु आप उन्हें फ़रमाते कि वे यहां ही आकर अपनी श्रद्धा भावना पूर्ण कर लिया करें ।

एक बार कुछ ब्राह्मणों ने मिलकर आप को अपने गृह पवित्र कराने के लिए अत्यधिक आग्रह किया । आप उनकी प्रबल श्रद्धा एवं अनुरोध से उन के घर पधारे । उन्होंने मीठे तेल से स्वादिष्ट भोजन बनाया । जब उन्होंने भोजन करवाया तो वे (पंडित) प्रेम में इतने दीवाने हो गए कि तेल को गर्म करके सब्ज़ियों के ऊपर डालने लगे । सब ने इस भोजन को बड़े आनन्द से खाया । आप वहाँ पर दो-तीन घण्टे ठहर कर पुनः बंगले पर लौट आये ।

रात्रि समय जब वे पंडित सत्संग तथा श्री दर्शन के लिए आए तो अकस्मात्

किसी भक्त ने उन से पूछा कि यहां पर घी किस भाव मिलता है। आपने तो आज सब सब्ज़ियों को खूब तर कर दिया। उन्होंने उत्तर दिया कि हमारे यहां तेल से सब वस्तुएँ बनाने की प्रथा है। अतः हमने तेल से ही सब व्यजंन बनाए थे तथा ऊपर से भी तेल ही डाला था। यह सुन कर भक्त जन चकित हुए कि किसी को भी तेल व घी का अन्तर भी विदित न हुआ। उन भक्तजनों ने इस विषय में आपके श्री चरणों में भी विनय की। आप ने फ़रमाया कि उत्कट प्रेम और श्रद्धा की विशेषता ही यही है। आज यदि तेल के स्थान पर पानी भी डाला जाता तो भी विदित न होता। केवल हार्दिक श्रद्धा भावना ही सत्पुरुषों को प्रिय है। इस प्रकार से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उनके प्रेम की सराहना निज मुख से करने लगे।

इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी २०–२५ दिन श्री नगर में विराजमान रहे। सैक्रेटरी साहिब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को भ्रमण के लिये महात्माजनों सहित प्रसिद्ध स्थानों अर्थात् चश्मा शाही, निशात बाग़, शालीमार गार्डन, हार्वन लेक, डल झील आदि स्थानों पर ले गये तथा प्राकृतिक सुषमा में श्री वचनामृत तथा श्री दर्शनों का भी लाभ प्राप्त करते रहे।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पीर पंचाल पर्वत पर भ्रमण करने के लिये गए। गर्मी की ऋतु थी, फिर भी कई पहाड़ बर्फ़ से ढके हुए थे जिनसे पानी पिघल पिघल कर पहाड़ों से नीचे छोटी छोटी धाराओं में बह कर तलहटी की ओर जा रहा था। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पीर पंचाल पहाड़ के समीप विराजमान होकर भक्तों एवं महात्मा जनों को प्रवचन फ़रमाए–"देखो! पहाड़ों पर पानी का क्या रूप है? नदियों में कैसा होगा? और यह पानी कहां से आता है पुनः कहां जाता है? यह पानी का रूप ही बर्फ़ है। जब यह बर्फ़ पिघलकर छोटी छोटी धाराओं में बहती है यहाँ इनका पानी कितना स्वच्छ है। फिर ये छोटी धाराएँ ही पर्वत से नीचे उतरते समय इकट्ठी होकर नदी का रूप धारण करती हैं, जब यह मैदानी भागों में जाती है तो इसमें मिट्टी आदि मिलकर पानी को गँदला

कर देते हैं। इस प्रकार नदी सैंकड़ों मील चट्टानों, पत्थरों, टीलों को पार करती हुई समुद्र में जा मिलती है। अथाह समुद्र के जल में मिलकर ही जल विश्राम पाता है और फिर वही स्वच्छ रूप में दिखाई देता है परन्तु जिस नदी का रुख़ सीधा समुद्र की ओर नहीं होता उसे रास्ते में किसी बांध द्वारा रोक कर नालों तथा नहरों में विभक्त किया जाता है, कहीं तालाब बना कर पानी रोक दिया जाता है, तो वह पानी समुद्र में नहीं मिल सकता। इसी प्रकार जीवात्मा भी उस परमात्मा का अंश है परन्तु जब यह आत्मा किसी (मानव) रूप को धारण कर जन्म लेती है तो इस पर माया अपने आवरण डालती है। जो मनुष्य तो सद्‌गुरु की पावन संगति प्राप्त कर सीधा परमात्मा से मिलने की अभिलाषा से इस मार्ग में आने वाली मायावी कठिनाइयों को पार कर लेता है वह उस परमात्मा से मिलकर शान्ति प्राप्त कर लेता है परन्तु जिस मनुष्य का रुझान माया की ओर होता है वह जन्म-जन्मान्तरों तक दुःखी तथा अशान्त रहता है। इसीलिए प्रत्येक गुरुमुख का कर्त्तव्य है कि अपना रुख़, अपने विचारों का झुकाव सद्‌गुरु की आज्ञानुसार अपने लक्ष्य पर रखता हुआ अपनी मंज़िल पर पहुँचने का प्रयत्न करे।" इस प्रकार श्री प्रवचन फ़रमा कर कुछ देर उस क्षेत्र में घूम कर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी वहाँ से लौट आए।

साथ में आए हुए सेवादार एक दो बार पहाड़ों पर घूमने गए और उन्होंने इन मनोरम दृश्यों को देखा। दो चार महात्मा जनों को वहां अधिक सर्दी लग गई जिस के कारण उन का कुछ स्वास्थ्य बिगड़ गया। दो तीन महात्मा तो शीघ्र ही स्वस्थ हो गए परन्तु महात्मा सन्तोषानन्द जी अत्यधिक अस्वस्थ हो गए। अतः श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने १५ जून १६३६ को श्री नगर से चकौड़ी सन्त आश्रम के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में गुलमर्ग, खिलमर्ग होते हुए रात्रि समय बारामूला ठहरे। ३ दिन यहां कृपा की पुनः बारामूला से दुमेल होते हुए १६ जून को कोहमरी पहुँचे। यहां पर महात्मा धर्मात्मानन्द जी सत्संग करते थे। इन्हें दो दिन पहले ही श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के शुभ आगमन के विषय में विदित हुआ। ये रावलपिण्डी की काफ़ी संगत को साथ लिए मार्ग में सड़क पर खड़े थे।

यहां पर भक्तों ने विश्राम भोजनादि की पूर्ण व्यवस्था कर दी थी । रावलपिण्डी के भक्तों ने अत्यधिक आग्रह किया परन्तु व्यास पूजा में थोड़े दिन होने के कारण आप ने फ़रमाया कि फिर कभी यहां कृपा करेंगे, अब सभी प्रेमिजन हमारे साथ ही चकौड़ी सन्त आश्रम चलें । कुछ भक्तजन जैसे वहां खड़े थे वैसे ही आप के साथ में आई हुई महात्मा तथा भक्तजनों की बस में आ गए । इस प्रकार मार्ग में सब प्रेमियों को कृतार्थ करते हुये २४ जून १६३६ को एक मास के पश्चात् चकौड़ी सन्त आश्रम में लौट आए ।

यहां व्यास पूजा का पर्व मनाना था। महात्मा सन्तोषानन्द जी की दशा अति शोचनीय थी । व्यास पूजा से एक दो दिन पहले जबकि महात्मा संतोषानन्द जी के बचने की कोई आशा न रही तो रात्रि समय महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में श्री दर्शन देने के लिये विनय की। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी चकौड़ी आश्रम में चौबारे पर विराजमान थे। वहां से नीचे आए । महात्मा जी को श्री दर्शन दिए । महात्मा जी ने काँपते हुए केवल इतने ही शब्द कहे कि "अभी तो मेरी सेवा करने की इच्छा थी।" श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वाभाविक ही फ़रमाया कि तुम तो ठीक हो रहे हो । स्वस्थ हो कर सेवा ही तो करनी है । सब देख कर हैरान हो रहे थे कि इस समय तो उनका बचना भी मुश्किल है, सेवा कैसे करेंगे ? श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तो श्री दर्शन देकर ऊपर चले गए। इधर महात्मा जी रात्रि भर तो शोचनीय अवस्था में पड़े रहे । प्रातः होने तक उन्होंने अपने आपको कुछ स्वस्थ पाया और धीरे धीरे वे स्वस्थ हो गए । आज भी श्री दरबार की हित चित्त से सेवा कर रहे हैं ।

चकौड़ी सन्त आश्रम में व्यास पूजा का पर्व मनाने के पश्चात् आप स्थान गरेला (सिन्ध) पधारे । यहां दीपावली का शुभ पर्व मनाया तथा इसके पश्चात् अक्टूबर १६३६ के अन्तिम सप्ताह में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्थान डेलाचट्ठा जिला गुजरांवाला में विराजमान थे । पंजाब की काफ़ी संगत वहां श्री दर्शन के लिये आई । यहां पर आपने प्रेमियों को फ़रमाया कि पंजाब छोड़ने की कोशिश

करो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने यहां कुछ दिन विराजमान होने पर श्री आनन्दपुर की ओर प्रस्थान किया। संगतों के लिए लंगर का सामान बर्तन, तम्बू (Tent) और कुछ बिस्तर आदि सन्त आश्रम चकौड़ी से मंगवाये थे। यह सब सामान स्थान चकौड़ी वापिस भेजने की अपेक्षा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर साथ ले जाने की मौज प्रकट की। महात्मा अखण्ड प्रकाशानन्द जी ने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो ! इस सामान की श्री आनन्दपुर साथ ले जाने की क्या ज़रूरत है? ले जाने और फिर वापिस लाने की मेहनत ही है। वहां की ज़रूरत उधर से सामान मंगवा कर पूरी कर ली जावेगी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि यहां किसने लौटना है। यह सब सामान साथ ले चलो। इसके अतिरिक्त और भी कोई सामान जो उन के पास पड़ा हो श्री आनन्दपुर भेज दो।

श्री आज्ञानुसार सब सामान साथ रख लिया गया। श्री आनन्दपुर आते समय रास्ते में ग्वालियर के पार्क होटल में महात्मा रोशनानन्द जी को सायं समय एकान्त में फ़रमाया कि इस समय देश व दुनिया की परिस्थितियां कुछ अच्छी नहीं हैं। इसलिए हम पुनः पंजाब नहीं जाएंगे और तुम्हें भी श्री आनन्दपुर में रखना चाहते हैं। अब तुम सत्संग का कार्य न करो। महात्मा जी ने विनय की कि प्रभो ! जैसी श्री मौज हो, वही सेवा की जाएगी।

श्री आनन्दपुर पहुँचने पर सब सामान काम में लाया गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपनी मौज सब पर प्रकट की कि यहाँ (श्री आनन्दपुर) बहुत सा काम करवाना है। इसलिए जब तक यहाँ स्थायी रूप से निवास न होगा सब काम पूरा न हो सकेगा। परन्तु देश-विभाजन के विषय में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने जानते हुए भी किसी पर यह रहस्य प्रकट न किया। सन् १९४७ में देश विभाजन होने पर यह रहस्य सब पर प्रकट हो गया कि किसलिये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सारा सामान लाने के लिए कहा था। प्रकृति के रहस्य तो केवल प्रकृति के नायक पूर्ण सद्गुरु ही जान सकते हैं।

श्री आनन्दपुर में

श्री आनन्दपुर की भूमि ने आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) के आगमन के लिये करुण पुकार की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उस करुण पुकार को सुन कर इस भूमि को कृपा-वृष्टि से सिंचित करने के लिए आये। श्री चकौड़ी सन्त आश्रम में रूहानी अभिषेक के लगभग दो तीन वर्ष पश्चात् एकाएक आप की मौज श्री आनन्दपुर में स्थायी निवास करने की उठी। इधर श्री आनन्दपुर प्रेम की प्यास को आकुलता से व्यक्त कर रहा था उधर सिन्ध अपने प्रेम-पाश में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को जकड़े हुए था। सन् १६३६ में आपने दीपावली का पर्व सिन्ध में मनाया। यह सिन्ध की अन्तिम दीपावली थी। इधर श्री आनन्दपुर में कृपा-पत्र भेजा कि हम दीपावली के पश्चात् श्री आनन्दपुर आएंगे। श्री आनन्दपुर निवासी व श्री आनन्दपुर का कण-कण प्रसन्नता में झूम उठा। जब और जिस समय सन्त महापुरुष जहाँ भी चरण रखें वही समय पर्व से भी बढ़ कर होता है क्योंकिः—

॥ दोहा ॥

सन्त दीवाली नित करें, सत्य लोक के माहिं।
और मते हैं काल के, ऐवें धूल उड़ाहिं॥

इसी श्री आनन्दपुर में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के सुनहरे प्रवचन संजोए हुए थे। उन वचनों को साकार रूप देने के लिये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी प्रेम-त्याग-सेवा का पाठ पढ़ाने के लिए नवम्बर १६३६ में श्री आनन्दपुर पधारे। आप के आगमन से प्रेमियों के हृदय प्रफुल्लित हो उठे। वृक्षों, पत्तों व चट्टानों ने भी अभिनन्दन के गीत गाए। युगों से सुनसान, घने जंगल में प्रेम-प्यासी धरती की सोई हुई किस्मत जाग उठी।

सन् १६४० में श्री गुरु-पूजा का प्रथम पर्व यहाँ मनाया गया। सीमाप्रान्त,

पंजाब, सिन्ध, उत्तरप्रदेश आदि स्थानों से संगतें आईं। आप ने त्योहार के शुभ दिन ये अमृत वचन फ़रमाए:—

बहुत जन्म बिछुड़े थे माधो, एह जन्म तुम्हारे लेखे।

तुम्हारे अनेकों जन्म संसार में काल माया की भेंट हुए हैं। जहाँ इतने जन्म व्यर्थ गंवा दिये वहाँ यह एक जन्म ही सन्त महापुरुषों की सेवा व संगति में लगा कर देखो तो सही।

॥ दोहा ॥

एह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

यदि माया में शान्ति होती तो सन्त महापुरुष आप को कुछ न कहते। यदि थोड़ा बहुत नुकसान होता तो भी न कहते। लेकिन यह जन्म-जन्मान्तरों का धोखा है। करोड़ों जन्मों के पुण्यों से इस मनुष्य जन्म का संयोग मिला है। धनी धर्मदास जी भी कहते हैं:—

॥ दोहा ॥

भक्ति प्रभाव मिटी सकल, धर्मदास की पीर।
कोटि जन्म के पुण्य से, सतगुरु मिले कबीर॥

हम आप को धन-माया, माल-परिवार से अलग नहीं करते किन्तु इन के मोह से छुड़ाते हैं क्योंकि यह सब सम्बन्ध दुःखदायी हैं और भक्ति शान्ति व आनन्द के भंडार इस के बदले में आपको देना चाहते हैं। जिन्होंने माया का सब भार सद्गुरु के अर्पित किया है सद्गुरु उनके ज़िम्मेवार बनते हैं। किसी भी प्राणी से जिस के पास माया अधिक हो पूछ लीजिए क्या वह सुखी है? माया से न किसी को सुख मिला है न मिलेगा। अब आप लोग माया चाहते हैं या भक्ति? सब ने भक्ति की मांग प्रकट की। आपने फ़रमाया कि जो भक्ति चाहता है उसे आज्ञा में रहना होगा। यदि सभी भक्ति के ग्राहक हैं तो हमारी मेहनत सफल हुई।

गुरुमुखों को मन-माया के धोखे में नहीं आना चाहिये। मोह-माया, कुटुम्ब-परिवार की संगति में वही मिलेगा जो उनके पास होगा। उनके पास सिवाय दुःख व अशान्ति के और कुछ भी नहीं मिलेगा। सन्त महापुरुषों का काम तो आपको माया से छुड़ाना और भक्ति देना है। यह कोई छुपी हुई बात नहीं कि सद्गुरु माया के बन्धनों से छुड़वा कर भक्ति देते हैं। यह मैदानी खुली बात है। महापुरुष तो बार बार यही कहेंगे कि जो तुम को मन-माया की तरफ़ ख़्याल दिलवाये उसके समीप मत जाओ। सत्पुरुष तो यही कहते हैं कि माया के मोह को छोड़ो, भक्ति के प्यार को ग्रहण करो।

सन्त महापुरुषों के वचनों पर चलो। सन्त महापुरुष कहते हैं कि तुम माया के मुकाबले में डटे रहो, मुकाबले पर डटने वाला सूरमा कहलाता है। तुम सूरमा हो, कायर मत बनो। संकल्प भी माया के न उठाओ। माया के संकल्प में अशान्ति है। यदि सन्त महापुरुषों के वचनों को भूल गये तो हानि होगी, माया के गुलाम बन जाओगे। सन्त महापुरुष कहते हैं कि माया के गुलाम न बन कर माया के पति बनो। दुनिया तो माया की गुलामी में खुश होती है। गुलाम और मालिक में कितना अन्तर है। सन्त महापुरुष आपको मालिक बनाते हैं। आप सब गुरुमुख हैं। आप को माया के धोखे में नहीं पड़ना चाहिये। आप भक्ति करो। कायर न बनो, सूरमा बनो।

सन्त महापुरुषों की आज्ञा मानो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की प्रसन्नता प्राप्त कर उन्हीं का रूप बन जाओ। यही भक्ति का परिणाम है। यही जीव की अपनी पूँजी है।

इस प्रकार जब अमृत वचन हुए तो सब के हृदय शीतल हो गये। सब गुरुमुखों में एक नया उत्साह भर गया भक्ति के लिए। सब गुरुमुखों ने इस अमृत को जी भर कर पिया और अन्त में जयकारों की ध्वनि से आकाश को गुंजा दिया।

आपने सेवा का भण्डार खोल दिया। जो शरणागत प्रेमी तथा दर्शनार्थ संगतें आई थीं उन को सेवा का शुभ अवसर प्रदान किया। जहां सेवा का कार्य आरम्भ होता वहाँ पर आप किसी पलंग अथवा आसन पर विराजमान हो जाते।

सेवकों में नया साहस आ जाता और सभी सेवा में मन-चित्त लगा कर जुट जाते।

सीमाप्रान्त, पंजाब, सिंध से आई हुई संगतों ने श्री चरणों में अपने अपने प्रान्तों में पुनः चरण-स्पर्श करने के लिए विनय की। आप ने फ़रमाया—"अब समय बदलने वाला है। तुम्हें भी अपना उद्योग-धन्धा (कारोबार) मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश में करने में लाभ है। हम ने अब श्री आनन्दपुर में बहुत सा काम करना है। इसलिए हमारा उधर जाने का विचार नहीं।" आई हुई संगतों में से कुछ लोग तो निराश होकर लौट गये। कुछ एक आज्ञा अनुसार मौज देखकर मध्य प्रदेश में ही रोज़गार करने लगे। चार-पाँच वर्ष बीतने पर जब देश में कोई परिवर्तन न हुआ तो लोग वापिस पंजाब सीमाप्रान्त की ओर जाने को तैयार हो गये। शारीरिक सुख जितना उनको पंजाब व सीमाप्रान्त में मिलता था इस प्रान्त (मध्य प्रदेश) में न मिल सका। उद्योग-धन्धों में भी उन्नति न हुई। कुछ लोगों को मध्य प्रदेश का जलवायु अनुकूल न आया। इसलिये कुछ थोड़े से परिवारों के सिवाय सब के सब परिवार वापिस जाने लगे। इन में भक्त मोहनलाल मखीजा मुलतान निवासी भी थे। भक्त मोहन लाल मखीजा पहले तो मध्य प्रदेश में रहे पुनः १६४५ में लौट गये।

एक प्रसिद्ध ज्योतिषी जो भक्त मोहन लाल मखीजा का हार्दिक मित्र था उस ने भक्त जी को कहा कि तुम इस तरफ़ क्यों लौट आये ? तुम्हारा मध्य प्रदेश जाने का समय तो अब ही था। फिर उसने खुले शब्दों में कहा—"तुम्हें अपने इष्टदेव के वचनों पर विश्वास रख कर अब वापिस नहीं आना चाहिये था।" वह इस रहस्य को फिर भी न समझ सका और न ही किसी अन्य ने उस समय श्री वचनों के रहस्य को समझा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने देश-विभाजन के विषय में जो प्रवचन किये थे वे विभाजन होने पर ही सब को पुनः स्मरण हो आये।

उस के बाद १६४७ में जो घटना हुई वह सब के सामने प्रत्यक्ष है। जिन जिन कठिनाइयों व आपत्तियों का सामना उधर के लोगों को करना पड़ा वह किसी से छुपा हुआ नहीं।

वे लोग सब सम्पत्ति, मकान, जयदाद आदि लुटवाकर ख़ाली हाथ जान बचा

कर भारत लौट आए। जब वही लोग १६४७ के बाद श्री दर्शन के लिए श्री आनन्दपुर आये तो श्री चरणों में गिर कर क्षमा माँगी और विनय की—प्रभो! हमने आप के वचनों पर विश्वास न किया जिस के कारण हमें अपने किये हुए कर्मों की सज़ा मिल चुकी है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया:—

॥ दोहा ॥

जा के मन बिस्वास है, सदा गुरु हैं संग ।
कोटि काल झक झोलहि, तऊ न ह्वै चित भंग ॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

सद्गुरु के वचनों पर विश्वास करना ही गुरुमुख की पूँजी है। हमने तो आपके लाभ के लिये कहा था। जिन्होंने वचनों पर विश्वास किया उन्होंने लाभ उठा लिया। यह भी ईश्वर का धन्यवाद करो कि तुम्हारी जान बच गई।

सन्त महापुरुषों की श्री मौज को समझना जीव बुद्धि से परे है जब तक कि वह स्वयं किसी भी रहस्य को जीव पर प्रकट न करें, जीव अपनी विचार शक्ति से उसे नहीं समझ सकता। उन की प्रत्येक मौज में कोई न कोई गुप्त भेद छुपा हुआ होता है। इसी तरह से देश विभाजन के सम्बन्ध में तीन चार ऐसे रहस्य भरे इशारे (संकेत) श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने किए थे, परन्तु उन को कोई भी समझ नहीं सका।

आप ने स्थान लक्खी ज़िला सक्खर (सिन्ध) में एक स्थान बहुत पहले बनवाया था। उस के साथ ही कुछ भाग १६३७ में बढ़ाया गया। जब आपने नवम्बर १६३६ में श्री आनन्दपुर में कृपा की तो उस समय आपकी श्री मौज यह हुई कि लक्खी में जो आश्रम का भाग अभी अभी बनवाया है उस का सब सामान दरवाज़े, खिड़कियां, गार्डर इत्यादि श्री आनन्दपुर लाया जावे। सन् १६४० में महात्मा योग रोशनानन्द जी को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी किसी काम से सिन्ध भेज रहे थे। आपने महात्मा जी को फ़रमाया कि नये मकान का सब सामान यहां (श्री आनन्दपुर) लाना है।

महात्मा योग रोशनानन्द जी लक्खी जाकर महात्मा भक्ति ध्यानानन्द जी को यह श्री आज्ञा सुना कर श्री आनन्दपुर लौट आए। जब महात्मा भक्ति ध्यानानन्द जी, महात्मा अमर प्रेमानन्द जी व लक्खी निवासी भक्तों ने यह बात सुनी तो बहुत हैरान हुए कि अभी तो इस मकान को बने तीन साल भी नहीं हुए, इस मकान को गिराने की क्यों श्री मौज हुई परन्तु श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर उस मकान को गिरा कर सब लोहे व लकड़ी का सामान रेलगाड़ी द्वारा श्री आनन्दपुर भेज दिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इस गुप्त भेद को जानते थे कि कौन सा कार्य किस समय से सम्बन्ध रखता है। एक दो सेवकों ने इस मकान के विषय में श्री चरणों में विनय करके पूछा परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कोई भी उत्तर न दिया। यह रहस्य देश विभाजन के बाद सब को पता लगा कि इस सामान के यहाँ मंगवाने की क्यों श्री मौज हुई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का यह अभिप्राय था कि जो कुछ भी परमार्थ हेतु लग जाए वही अच्छा है। परन्तु उस समय सन् १६४० में सब हैरान थे। सत्य है कि जीव अपनी बुद्धि से उन के किसी रहस्य को भी नहीं समझ सकता।

१६३० से १६३६ तक श्री आनन्दपुर में शरणागत परिवारों ने निवास के लिए केवल थोड़ा सा टुकड़ा साफ़ कर झोंपड़ियाँ बनाई थीं। स्थान स्थान पर आक, तेन्दू, ढाक, पलास, कीकर आदि के घने वन थे व साथ में पथरीली धरती तथा ऊँचे ऊँचे ढोंगे। आपने सर्वप्रथम सन् १६३६ में यहाँ विराजमान होकर निवासस्थान का क्षेत्र बढ़ाने के लिए कँटीली झाड़ियों और आक तेंदू आदि वृक्षों-पौधों को कटवाना प्रारम्भ किया। सभी लोग यह देख कर हैरान थे कि इस जंगल को कैसे आबाद किया जायेगा। धीरे धीरे सब की रुचि बढ़ती गई और सबने इस सेवा में भाग लिया। शरणागत परिवार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को पाकर अत्यन्त प्रसन्न थे। वे इस घने जंगल में श्री आज्ञानुसार रह कर सोचा करते थे कि क्या कभी यहाँ भी लोग आते जाते दिखाई देंगे या केवल हम ही अकेले यहाँ रहेंगे।

सन् १६३६ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने श्री

आनन्दपुर में निवास करने वाली बाइयों (स्त्रियां साधु वेष में) को चकौड़ी सन्त आश्रम में बुलाकर विभिन्न स्थानों पर सत्संग प्रचार के लिए भेज दिया था। अब सन् १६४० में जबकि आप श्री आनन्दपुर में विराजमान थे तो एक प्रेमी ने आपके श्री चरणों में विनय की–"प्रभो! क्या इस देश में हम फिर साधु मण्डली को इन आँखों से देख पाएँगे?" आप ने फ़रमाया–"ऐसी क्या बात है। यहाँ तो एक समय ऐसा आएगा, सब के नाम अर्थात् जड़ तथा चेतन के नाम के अन्त में 'आनन्द' होगा अर्थात् चेतन (मनुष्य रूप में) सभी साधु होंगे तथा यहां की प्रत्येक जड़ वस्तु अर्थात् पाठशाला, प्रेस आदि सब के साथ आनन्द होगा। लाहौर की तरह यहाँ रौनक होगी।" वह प्रेमी यह सब सुनकर हैरान हो गया कि कौन संसार की झिलमिल को छोड़ कर इस सूनेपन को स्वीकार करेगा। उसे क्या मालूम कि मायापति जिधर भी संकेत करें माया की रचना सब पीछे पीछे चली आती है। यह तो उनके लिये साधारण सा काम है।

सचमुच आज सब कुछ ये हमारे सामने प्रकट रूप में है। जिस किसी प्रेमी गुरुमुख को श्री सद्गुरुदेव जी साधु वेष प्रदान करते हैं, उनके नाम के अन्त में 'आनन्द' अवश्य होता है। श्री आनन्दपुर में अन्य नाम जैसे आनन्द माध्यमिक विद्यालय, आनन्द धाम, श्री आनन्दसर, आनन्द प्रिंटिंग प्रेसादि सब वस्तुओं के नाम भी 'आनन्द' पर रखे जाते हैं। ठीक ही तो है जहाँ हर समय आनन्द बरस रहा हो वहां आनन्द के अतिरिक्त और नाम आएगा भी कहाँ से?

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) ने शरणागति का मार्ग खोल दिया। आपने जन-जन में इन अमृत वचनों का प्रभाव भर दिया तथा श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज व श्री रामचन्द्र जी के सिद्धान्त व नियमों को पुनः दोहराया। महर्षि पतञ्जलि ने भी मन को विषयों से रोक कर अभ्यास तथा वैराग्य को शरणागति का रूप दिया है। आप स्वयं निज मुख से फ़रमाया करते थे–"जो जीव एक बार पूर्ण गुरु की शरण में आ जाता है उसे काल व माया धोखे में नहीं डाल सकते। उसे धर्मराज व यमदूत का भय नहीं अपितु धर्मराज भी स्वयं उस से डरता है।"

श्री रामचन्द्र महाराज जी ने भी फ़रमाया है:—

॥ श्लोक ॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥
(वा० रा० ६—१८—३३)

मेरी शरण में आने के लिए जो एक बार दिल से यह कह देता है कि हे नाथ ! मैं आप का हूँ तो मैं उसे सर्व भूतों से निर्भय कर देता हूँ ।

श्री कृष्णचन्द्र महाराज जी ने परम सखा अर्जुन को भी यही उपदेश दिया है:—

॥ शेयर ॥

दिल से तू मेरे हवाले कर तमाम अफ़आल को ।
बे-ख़तर और बे-तमन्ना जंग में मशग़ूल हो ॥
मेरी इस तलकीन के जो बे-तअस्सुब आदमी ।
दिल से पैरो हैं उन्हें हासिल है दायम मुख़लिसी ॥
(३—३१)

हे अर्जुन ! तू अपने सभी कर्मों को मेरे हवाले कर के निर्भय और कामना रहित होकर संग्राम में भाग ले । क्योंकि जो पक्षपात रहित होकर मेरे इन वचनों को दिल से मान कर उस पर अमल करता है वह सदा काल-चक्र से मुक्त रहता है ।

यहां श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने माया तथा भक्ति के संघर्ष से जूझने के लिए यही उपदेश दिया कि यदि सब इच्छाओं का त्याग कर शुद्ध मन से शरण ग्रहण करो तो सद्गुरु तुम्हें समस्त चिन्ताओं से विमुक्त कर देंगे । दूसरे शब्दों में— "मन की साधना और वैराग्य दोनों शरणागति के अभिन्न अंग हैं ।" मन को साधने के लिए आपने गुरु-आज्ञा और गुरु-सेवा को आवश्यक बताया जिस का नाम गुरु-भक्ति है और आत्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए आन्तरिक शब्द की कमाई अर्थात् भजन-अभ्यास दोनों पर बल दिया है । क्योंकि कहा भी है:—

॥ दोहा ॥

मोटे बन्धन जगत के, गुरु भक्ति से काट ।
भीने बन्धन चित्त के, कटैं नाम परताप ॥

इस प्रकार कई प्रेमी जो इस भक्ति के इच्छुक थे श्री अमृत प्रवचनों को श्रवण करते ही तथा श्री दर्शन की मनोहारी छटा को निहारते ही प्रेमी बन गये। वे श्री चरणों में सर्वस्व समर्पित करने के लिए विनय करने लगे। आप ने उन की विनय स्वीकार कर श्री चरणों में स्थान दिया। इस प्रकार से कुछ परिवारों ने आपके श्री चरणों में सर्वस्व समर्पण कर शरणागति प्राप्त की तथा श्री दरबार में रह कर हित चित्त से सेवा करने लगे।

आपने श्री आनन्दपुर की रूप रेखा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के वचनानुसार बनाई कि सारे बन को काट कर फलदार वृक्ष, लहलहाते खेत, पुष्प सुरभित उद्यान एवं भव्य भवन होने चाहिएँ। गुरुमुख प्रेमी व नये शरणागत भक्ति व आज्ञा की सीढ़ी पर कदम रख चुके थे। वे श्री आज्ञा के लिए सदा तत्पर रहते। आपने भी सम्पूर्ण ध्यान श्री आनन्दपुर निर्माण में केन्द्रित कर लिया। अब झोंपड़ियों के स्थान पर पत्थरों के मकानों की रचना आरम्भ हो गई। साथ ही साथ भूमि साफ़ कर शरणागतों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अन्न बोया जाने लगा। प्रथम खेती बैलों द्वारा हल चला कर की जाने लगी। धीरे धीरे सब साधनों में विकास होता गया। सब सुख के साधन यहाँ सुलभ हो गये।

सर्वप्रथम यहाँ पानी की कमी का अनुभव हुआ। यहां एक सरकारी कुआं था जो गर्मियों में सूख जाता था। इस कमी को पूरा करने के लिए पानी सवा मील पर स्थित कुलवार चक तथा शान्तपुर चक से टंकियों द्वारा लाया जाता था। बाल्टियों व मटकों से पौधों को पानी दिया जाता। इस विचित्र लीला को देख कर प्रेमी दंग थे कि कैसे यहां जीवन के साधन सुगम हो सकते हैं। उस समय शारीरिक भरण-पोषण की आवश्यक सामग्री यहाँ से तीन मील की दूरी पर ईसागढ़

से लाई जाती थी। अब अपने यहाँ (श्री आनन्दपुर में) ही उपज आरम्भ कर दी गई। कभी कभी सेवक यदि बंजर और पथरीली भूमि को खोदने से घबरा जाते तो आप उन को उपदेश देते कि:----

॥ दोहा ॥

अटल राज महाराज का, जा में अटक बहाय।
जाके मन में अटक है, वो ही अटक रह जाय॥

इस प्रकार से सेवक प्रेमी गुरुमुख व शरणागत सेवा में जुट जाते। इस का परिणाम यह हुआ कि कुछ ही वर्षों में निवास स्थान, उपज व उद्यानों के लिये भूमि साफ़ हो गई। चारों ओर पक्की चारदीवारी (कोट) बन गई। अब झोंपड़ियों के स्थान पर चिनखारी व ईंटों के मकान दिखाई देने लगे। कुछ कुछ हरियाली के चिन्ह झलकने लगे। उस समय शरणागतों की संख्या भी गिनी चुनी ही थी। मध्य प्रदेश में आना सिन्ध व पंजाब के लोगों को ऐसे मालूम होता था जैसे विदेश। फिर भी श्री दर्शन के लिए अत्यधिक श्रद्धालु तथा प्रेमिजन आते ही थे। यहाँ आरम्भ में केवल श्री व्यासपूजा का एक ही पर्व मनाया जाता था। यहाँ के शरणागतों का जीवन देखने में चाहे साधारण व कठिन था लेकिन ऐसा जीवन तो किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त होता है। कितना आनन्दमय जीवन था उन का, कितने भाग्य थे उन जीवों के जो उस समय शरण में आए। त्रिलोकीनाथ, हृदय सम्राट् श्री सद्गुरुदेव जी सन्त रूप में साथ रहते। अनुपम लीलाएँ करते। निज कर कमलों से भोग-प्रसाद हर समय खिलाते। समीप बैठा कर मनोरंजन करते व श्री दर्शन तो हर समय खुले ही रहते। जहाँ जहाँ प्रेमी सेवा करते वहीं स्वयं चल कर जाते। जिन योग योगीश्वर को योगी-तपस्वी, जंगल में, पानी में खड़े हो कर; उलटे लटक कर प्राप्त करना चाहते हैं वे कृपा-सागर प्रभु प्रेमियों के पाश में बँधे हुए यहाँ विराजते थे।

एक भक्त था। उसने एक बार श्री मुख से ये प्रवचन सुने कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया है जो कोई गुरु को प्रसन्न करना चाहता है वह दिल जान

से सेवा करे। ऋद्धियां सिद्धियां उसके चरणों में स्वयं भागती हुई आती हैं। शारीरिक भरण-पोषण की उसे चिन्ता ही क्या? उनका भार तो गुरु-दरबार ने आरम्भ से ही अपने पर ले लिया है। बस फिर क्या था वह सेवा में ऐसा जुटा कि उसे यदि कोई बुलाता तो वह उत्तर देता मेरे पास समय नहीं है। यदि उसे कोई आराम करने के लिये कहता तो यही उत्तर मिलता कि मेरे पास समय नहीं है। एक दिन अचानक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कार लेकर दोपहर के समय वहां गये। सभी प्रेमी भोजन कर के तनिक विश्राम के लिए छुट्टी किए बैठे थे। उस ने भी भोजन खाया और पुनः सेवा में जुट गया।

आप ने वहां पहुँच कर सब को भोग प्रसाद दिया। तब भक्त जी को भी आवाज़ लगाई। उसे सेवा में यह पता ही न चला कि कौन आवाज़ लगा रहा है। उसने वही उत्तर दिया—"मेरे पास समय नहीं है।" आप सेवा में उस की ऐसी तल्लीनता को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और स्वयं वहां उसके पास प्रसाद भेज दिया। उस की इस श्रद्धा, निष्ठा तथा सेवा को देख कर आप ने फ़रमाया—"जो व्यक्ति हित चित्त से, श्रद्धा से गुरु-दरबार की सेवा करता है वह अपनी मंज़िल को शीघ्र ही प्राप्त कर सकता है।" पुनः उसे समीप बुलाकर खूब प्रसाद दिया और फ़रमाया—ठीक है। मानव जन्म के इस सुदुर्लभ अवसर से पूर्ण लाभ ले लेना चाहिए। सेवक के लिए गुरु सेवा ही अपनी निजी पूँजी है जितनी चाहे एकत्र कर ले। एक मिनट भी व्यर्थ नहीं गँवाना। हर समय अपनी सुरति को गुरु-शब्द में तथा शरीर को गुरु-सेवा में लगाये रहने से ही चित्तवृत्तियां एकाग्र होकर ध्येय को प्राप्त करती हैं। यही गुरुमुख का अपना काम है। वह भक्त प्रसाद लेकर व श्री वचन श्रवण कर नत-मस्तक हो पुनः अपनी सेवा पर लौट गया।

अब जो परिवार १९३६ के पश्चात् श्री चरणों में शरणागत हुए उन में से भक्त लोगों ने श्री चरणों में साधुवेष के लिए विनय की। आपने अधिकारी गुरुमुखों को साधु वेष दिया। जिस दिन भी जिस गुरुमुख को साधु वेष दिया जाता उनके समस्त परिवार की खुशी की सीमा न होती। आप स्वयं भी अत्यधिक प्रसन्न होते क्योंकि वे अपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी)

की मौज को साकार रूप में देख कर प्रसन्न होते। कुछ प्रेमियों ने श्री चरणों में विनय कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा से साधु-वेष ग्रहण किया। कुछ समय तो नए शरणागतों को इकट्ठा एक स्थान पर रख कर उन को सहयोग, सुमति, निष्काम सेवा तथा भक्ति का पाठ पढ़ाया। पुनः जब उन्हें इन सब गुणों पर आचरण करते हुए देखा तो प्रत्येक चक पर दो तीन महात्मा भेज कर प्रत्येक स्थान की सुव्यवस्था आरम्भ करवाई।

कुछ सेवक तो आपका आश्रय लेकर अपने अपने चकों पर श्री आज्ञानुसार चल दिए। कुछ एक ने विनय की कि प्रभो! इतने घने वन में हिंस्त्र पशुओं से हमें भय लगता है। कभी कभी जब उन पशुओं के दहाड़ने की आवाज़ आती है तो मन दहल उठता है। भय-भंजन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"जिस के पास सद्गुरु का शब्द है उसे किसी प्रकार का भय नहीं है। जब भी जहां भय होने लगे श्री सद्गुरुदेव जी का ध्यान करो। वे आप के सदा अंग संग हैं। श्री परमहंस दयाल जी की शक्ति आप के साथ है, घबराने की कोई ज़रूरत नहीं। निर्भय होकर कार्य करो। सद्गुरु सदा अंग संग हैं।" श्री आज्ञा पाकर सभी सेवक अपनी अपनी सेवा में जुट गये।

एक बार तासबावली पर महात्मा गोपाल श्रद्धानन्द जी, महात्मा ज्ञान अमरानन्द जी तथा कुछ अन्य एक दो सेवक श्री आज्ञानुसार सेवा कर रहे थे। वे दिन के समय तो वहाँ सेवा करते और रात्रि समय शान्तपुर लौट आते। कुछ दिन तो उन्होंने ऐसे ही किया। सात आठ दिनों के पश्चात् वे परस्पर परामर्श कर वहीं रहने लगे। रात्रि के समय चारों ओर टाँचियों का गोल घेरा बना कर बीच में आग सुलगा कर उस के किनारे सो जाते। एक दिन रात को जब सब को नींद आ गई तो आग भी सुलगते सुलगते बुझ गई। एक सिंह उस घेरे में घुस आया जिस के आने की किसी को भी आहट न हुई। वह सिंह एक दम महात्मा ज्ञान अमरानन्द जी के वक्षःस्थल (छाती) पर खड़ा हो गया। अचानक उसकी चीख़ निकली। चीख़ को सुनकर महात्मा गोपाल श्रद्धानन्द जी (जो पास ही सोए हुए थे) उठे और सिंह को एक मुक्का दे मारा। भय के मारे वह सिंह भाग खड़ा हुआ।

कोई जन-हानि तो न हुई परन्तु पंजे का निशान उन के वक्षःस्थल पर छप गया।

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा की ओर ध्यान दिया जाए तो क्या उनसे कोई उऋण हो सकता है ? सोचने की बात है कि क्या सिंह भी एक मुक्के से डरा ? यह तो उस प्रभु की असीम कृपा थी। वे पूर्ण सद्गुरु के सेवक थे। आज्ञा-पालन करने में जो सुख है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकता। क्योंकि परमसन्त श्री कबीर साहिब जी भी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं ।
कहैं कबीर तेहि दास को, तीन लोक डर नाहिं ॥

जब वे श्री आनन्दपुर में आये तो श्री चरणों में विनय की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"जीव ने जो पिछले जन्म में कर्म किए हैं उनका फल तो भुगतना ही है। अन्तर केवल यही है कि सन्त-महापुरुषों की चरण-शरण लेने से वे कर्म सूली का कांटा बन जाते हैं व सन्त महापुरुषों की संगति से निष्काम कर्म किए जाते हैं ताकि अगले जन्म में पुनः इन कष्टों को सहन न करना पड़े।"

श्री आनन्दपुर में महात्मा ज्ञान अमरानन्द जी की मरहम पट्टी की गई। कुछ लोगों ने उन्हें पुनः तासबावली जाने के लिए मना किया। महात्मा जी का दिल दुविधा में पड़ गया कि क्या किया जाय। वे इसी सोच में थे कि उसी दिन रात्रि के समय निज मौज के अनुसार आपने प्रवचन फ़रमाये:—

"प्रत्येक काम नेकनीयत-सच्चाई और खैरख़्वाही के साथ किया जाय। सेवक सेवा करता जाए और परिणाम को न देखे। कोई कष्ट दुःख अथवा हानि हो तो घबराए नहीं। सुख और दुःख दोनों हालतों में समान रहे। यानि इन्सान को दुःख और सुख दोनों का मुकाबला करना पड़ता है। सुख के समय उस में फँसने की अपेक्षा आगे बढ़ता जाए और दुःख में घबराहट से दूर रहे।

पूर्ण विश्वास से सेवा करता चले। दुःख और सुख दोनों परीक्षाएँ हैं। जितने दर्जे की भक्ति होगी उतनी सख़्त परीक्षा होगी यानि उतना अधिक कष्टों का सामना

करना पड़ेगा। अर्थात् सेवक को हर्ष-शोक, निन्दा-स्तुति, दुःख-सुख सब में बराबर रहना चाहिये ।

पुनः फ़रमाया कि सद्गुरु तो सब को दात बख़्शते हैं, आगे अपने पात्र पर निर्भर है। जितना जिसका पात्र होगा उतना वह प्राप्त करेगा। जैसे तेल की एक बूंद जल में डालने से वह फैल कर कई प्रकार के रंग पैदा करती है। इसी प्रकार ऐसा पात्र यानि बुद्धि जितनी भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के वचनों पर आचरण (अमल) कर वचनों को ग्रहण करेगी उतना अधिक लाभ प्राप्त कर सकने में समर्थ होगी। इसलिये नेकनीयत-सच्चाई के साथ कर्म करो। दुःख-सुख, निन्दा-स्तुति में सम रहना सेवक का धर्म है।"

आपने यह प्रवचन अपनी मौज में फ़रमाए। प्रेमियों गुरुमुखों के हृदय इन वचनों को श्रवण कर शीतल शान्त हो गए। महात्मा ज्ञान अमरानन्द जी श्री चरणों में वन्दना कर तासबावली की सेवा के लिये आज्ञानुसार चल दिये। नए उत्साह से सेवा में जुट गए।

इसका यह अर्थ नहीं कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने केवल श्री आनन्दपुर की बंजर भूमि को आबाद करना, घने वनों को साफ़ कर उद्यान बनाना, भव्य भवनों का निर्माण करना ही गुरु-भक्ति का लक्ष्य बताया अपितु उन्होंने एक अनोखे ढंग की गुरु-भक्ति की धारा प्रवाहित की। उन्होंने तो निष्काम-कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। जैसे प्यासे को पानी, अत्यन्त भूखे को भोजन, अत्यन्त थके हुए शरीर को पत्थरों पर निद्रा करने का आनन्द आता है उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों से माया के पंजे में आए हुए मन को गुरु सेवा से शुद्ध कर 'शब्द' रूपी आनन्द प्रदान किया। सेवा से मन शुद्ध होकर जब उसे भजन पर बिठाया तो मन अपने आप ही उस आनन्द में डूब गया, जिस का अनुभव केवल वही प्रेमिजन ही कर सकते हैं जिन्होंने इस मार्ग को अपनाया।

जिस प्रकार ऊँची नीची घाटियों, कंटीली झाड़ियों से युक्त असम भूमि पर

चल कर मंज़िल को पाना समतल भूमि पर चलकर प्राप्त करने की अपेक्षा कठिन है इसी प्रकार गुरु-सेवा बिना मन को शुद्ध करना कठिन है। गुरु-सेवा एक समतल पगडंडी है जिस पर चल कर जीव अपने लक्ष्य को सरलता से प्राप्त कर सकता है। इस सेवा के साथ साथ दोनों समय प्रातः व सायं 'नाम' का अभ्यास करवाना आप का नियम था। कितनी करुणा होती है सन्त-महापुरुषों के दिल में हम जीवों के प्रति। परोपकारिता के स्वरूप होते हैं महापुरुष। इसका अनुमान लगाना जीव की बुद्धि से परे की बात है। नाम है गुरु-सेवा कल्याण है हमारा। श्री आनन्दपुर की रचना क्या केवल उन्होंने अपने लिये की? नहीं, इस आलीशान उच्च दरबार की रचना उन्होंने हम पापी, अधम जीवों को सन्मार्ग पर लगाने के लिए की ताकि युग युगों तक माया में भटके प्राणी यहाँ से रोशनी प्राप्त कर अपने ध्येय को प्राप्त कर सकें। उन्होंने अनेकों कष्ट सहे तो केवल इसीलिये कि प्राणिमात्र का कल्याण हो सके। अनामी लोक को छोड़ कर आए तो केवल इसीलिये कि वे अपनी रूहों को कुपथ पर जाते हुए नहीं देख सकते थे। उन्होंने जीवों की करुण और आतुर पुकारों को सुनने के लिए यह रचना रचाई। देखो! कैसी धरती के भाग्य जगाए जहाँ पानी भी सुलभ नहीं था। यदि वर्षा होती तो झोंपड़ों को बहा कर ले जाती। यदि गर्मी की ऋतु आई तो पीने के लिये पानी मिलना भी दूभर हो गया।

मई सन् १६४१ में एक बार महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा योग आत्मानन्द जी, महात्मा अखण्ड प्रकाशानन्द जी, महात्मा योग प्रकाशानन्द जी, महात्मा रोशनानन्द जी व कुछ भक्त जन कुएँ पर स्नान के लिए गए। कुएँ से पानी निकालने लगे तो कुएँ को बिल्कुल सूखा हुआ पाया। कन्धे पर कपड़े रख कर घर की राह ली। पीछे से आप (श्री सद्गुरु दीन दयाल जी) की कार आ गई। आपने कार रुकवा कर पूछा—क्यों किधर से आ रहे हो? महात्माओं ने विनय की—करुणेश! स्नान के लिए गए थे, पानी न होने से लौट आए हैं। श्री प्रवचन हुए—"घबराने की ज़रूरत नहीं, यहाँ तो एक दिन ऐसा आएगा जब घर घर में नल व टोंटियां होंगी। सरकारी नल तो समयानुसार पानी देते हैं, यहाँ चौबीस घण्टे पानी नलों में आएगा। यहाँ पानी इतना होगा कि गर्मी की ऋतु में

भी कुएँ और तालाब भरे हुए दिखाई देंगे।" यह सब कुछ उस समय स्वप्न की तरह लगता था। इन मनोहर प्रवचनों में खोए खोए प्रेमी उस समय की बाट जोहते कि कब ये श्री प्रवचन अपना रंग लाएँगे। आज वे वचन साकार रूप में सब के सम्मुख प्रकट हैं। यह सब कुछ हम जीवों के कल्याण के लिए नहीं हुआ तो और किसलिए किया गया?

आप ने श्री आनन्दपुर के शरणागतों के हृदय में निष्काम-कर्म की भावना कूट कूट कर भर दी। कई जिज्ञासु श्री दर्शन के लिए आते तो यहाँ के शरणागतों के कर्मण्य जीवन को देख कर दंग रह जाते। सभी प्रेमी शरणागत श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञानुसार उन की प्रसन्नता का पात्र बनने के निमित्त निष्काम भाव से सेवा करते। ऐसा ही चकित कर देने वाला कार्य राजस्व मन्त्री ने भी देखा जिस का वृत्तान्त यों है:—

१९४१ में ग्वालियर राज्य की ओर से एक राजस्व मन्त्री (Revenue Minister) चक श्री आनन्दपुर, चक शान्तपुर, चक दयालपुर के निरीक्षण के लिये आया। श्री सद्गुरुदेव जी ने जहाँ तक रास्ता साफ़ था कार पर जाने का प्रबन्ध कराया। जहां रास्ता ऊबड़-खाबड़ था वहां पर बैलगाड़ी द्वारा जाने का प्रबन्ध किया। जब राजस्व-मन्त्री आए तो महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी कार में मन्त्री महोदय को बैठा कर वहां तक ले गए जहां तक कार जा सकती थी। खराब रास्ते तक पहुँच कर कार को रोक दिया गया। वहाँ बैलगाड़ी खड़ी थी। मन्त्री महोदय कार से उतर कर बैलगाड़ी में बैठ गए। महात्मा पूर्ण श्रद्धानन्द जी बैलगाड़ी को चलाने लगे। जब मन्त्री महोदय ने देखा कि वही कार चालक (Driver) बैलगाड़ी चलाने लग गया है तो उन के आश्चर्य की कोई सीमा न रही। वह चुपचाप चकों का निरीक्षण करते रहे।

चकों का निरीक्षण करने के बाद मन्त्री महोदय ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन की इच्छा प्रकट की। सेवकों ने आप के श्री चरणों में विनय की, विनय स्वीकार हुई। मन्त्री महोदय जब हुज़ूरी में उपस्थित हुये तो उन्होंने

अपनी हैरानी को प्रकट किया कि आज मुझे एक ऐसी नई बात देखने में आई है जो मैंने अपने जीवन में नहीं देखी। हम प्रायः यह देखते हैं कि अफ़सरों के जो कार के ड्राइवर होते हैं वे कार चलाने के अतिरिक्त कार की सफ़ाई तक हाथ से नहीं करते। कार को झाड़ने पोंछने के लिए उन्हें अलग एक नौकर देना पड़ता है और आप का ड्राइवर पहले कार चला रहा था और फिर वही आदमी बैलगाड़ी चलाने लगा। इतनी ऊँची शिक्षा विश्व भर में कहीं देखने या सुनने में नहीं आई है। कार का चालक हो और उसके दिल में तनिक भी अभिमान न हो मेरे लिये बहुत हैरानी की बात है।

श्री आनन्दपुर से विदा होने के बाद जब वही मन्त्री साहिब ग्वालियर राज्य में पहुँचे तो ग्वालियर राज्य के सब मन्त्रियों की मीटिंग में उन्होंने यह बात सब को बताई कि श्री आनन्दपुर वालों के दिल में सब प्रकार के कार्यों के लिये समभाव है। यही निष्काम भावना हमारे देश के सब लोगों में आ जाये तो देश की काया ही पलट जाये। हमारे नौकर तो बिना कहने के किसी काम को करते ही नहीं, फिर कार का ड्राइवर दूसरे काम को कब करने लगा है। कार की सफ़ाई करना भी अपना अपमान समझते हैं और श्री आनन्दपुर में कार के ड्राइवर को कार चलाना और बैलगाड़ी चलाना उस के लिए एक बराबर है। इस बात की ग्वालियर राज्य में काफ़ी दिनों तक चर्चा होती रही।

राजस्व मन्त्री के प्रस्थान करने के बाद श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सब सेवकों को इस विषय में श्री प्रवचन फ़रमाये—"गुरु-दरबार में सेवक को समभाव से सेवा करनी चाहिये। ऊँचे पद का कोई काम हो, चाहे बर्तन साफ़ करने या झाड़ू लगाने की सेवा हो, मन में किसी प्रकार का ख़्याल नहीं आना चाहिये। तब सेवा करने का लाभ है। अपने मन पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है और दूसरे पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है। राजस्व मन्त्री का प्रमाण देते हुए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि मन्त्री साहिब कितने अच्छे ख़्याल यहां से ले कर गये हैं। सब को ऐसे ही बनना चाहिये। सेवक की सब कामों में समानता होनी चाहिये। इस

से किसी प्रकार की भी सेवा करने से मन को अहंकार नहीं आता। गुरु दरबार में सब सेवा बराबर हुआ करती है। किसी सेवा को अच्छा समझना, किसी सेवा को छोटा समझना यह सब मन का धोखा है। इस मन के धोखे से ही तुमने बचना है। इसमें तुम्हारा भी लाभ है और देखने सुनने वालों का भी। जिस सेवा को करने के लिये श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा हो, उसे करने के लिए सहर्ष और निःसंकोच तत्पर रहना चाहिये।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को श्री आनन्दपुर में आये हुए दो साल बीत गये। पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त की संगतों ने श्री चरणों में वहां पर कृपा करने के लिये बेनती की परन्तु उनकी विनय को अस्वीकार किया गया। १६४२ की श्री व्यासपूजा पर उधर की काफ़ी संगत श्री दर्शन के लिये श्री आनन्दपुर आई। श्री दर्शनों पर आई हुई संगत ने श्री चरणों में विनय की—"भगवन्! वहां की शेष संगत जो किसी कारणवश यहां नहीं आ सकती—जैसे पानी के बिना खेती सूख जाती है। ऐसे ही वहां की संगत आप के श्री दर्शन व श्री अमृत वचनों के बिना सूखती व कुम्हलाती जा रही है।" इस पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मुस्कराते हुए फ़रमाया कि जो संगत यहां आई है वह यहां से हरी-भरी (प्रसन्न) होकर जा रही है। जो संगतें यहां नहीं आ सकतीं, उनकी सुरति हमारी ओर लगी हुई है और अपनी रूहानी ख़ुराक यहां से ले रही हैं। वे रूहें कुम्हलाती नहीं हैं अपितु हरी-भरी हो रही हैं अर्थात् उन्हें अधिक लाभ पहुँच रहा है क्योंकि उनका ध्यान हमारी ओर लगा हुआ है।

जिस की सुरति का लगाव जिस ओर अधिक हो उसे वह वस्तु अवश्य ही प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार वे अपनी सुरति की तार को सद्गुरु के श्री ध्यान में विलीन कर ख़ुराक प्राप्त करते हैं। इस प्रकार दोनों को रूहानी भोजन मिल रहा है। अर्थात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी गुप्त रहस्य से दर्शा रहे थे कि सद्गुरु के भी दो रूप होते हैं। एक स्थूल दूसरा सूक्ष्म। स्थूल रूप तो नर—देह को धारण कर वे हमारे सम्मुख प्रकट होते हैं और सूक्ष्म रूप से जहां भी उन्हें स्मरण किया जाये वे सदा साथ रहते हैं, अंग-संग हैं। एक क्षण भी विलग नहीं हो सकते।

इस प्रकार से वे अपने प्रेमियों की प्यास गुप्त तथा प्रकट दोनों रूपों से बुझाते हैं। वह संगत प्रवचन श्रवण कर कृतकृत्य हो गई। इस पर्व के कुछ दिन पश्चात् समस्त संगत श्री आज्ञानुसार अपने अपने स्थानों पर लौट गई।

एक बार १६४४ में कुछ संगत श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन के लिये आई। उनमें एक भक्त जो ऑफ़िसर था श्री दर्शन के लिये पंजाब से आया। उस भक्त ने महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी (जो श्री आनन्दपुर के प्रबन्धक थे) को कहा कि मैं अपने साथ नौकर नहीं ला सका। एक नौकर का प्रबन्ध मुझे कर देवें। महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी ने कहा कि नौकरों का तो यहां कोई प्रबन्ध नहीं है। हम अपने शरणागतों में से एक लड़का आपकी सेवा में लगा देते हैं जो आपकी हर प्रकार की सेवा करेगा। आप को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। यह बात होने पर महात्मा जी ने एक लड़का (प्रेम) उस ऑफ़िसर की सेवा में लगा दिया। वह भक्त आठ दिन श्री आनन्दपुर में रहा और प्रेम लड़का उस भक्त का सब काम करता रहा।

जब वह भक्त जाने लगा तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के चरणों में उपस्थित होकर काफ़ी लोगों के सामने उस ने विनय की कि भगवन्! हम घर में नौकरों से काम लेते हैं परन्तु जितनी हमें उन से सिरदर्दी करनी पड़ती है उतना नौकर काम नहीं करते। वे वेतन भी लेते हैं फिर भी सिरदर्दी बहुत करनी पड़ती है तब कहीं उन से काम कराते हैं। मगर यहाँ जिस लड़के ने आठ दिन मेरे पास काम किया है केवल पहले दिन मैंने उसे समझा दिया कि मेरा यह काम इस समय करना है। उसके बाद प्रत्येक वस्तु मुझे तैयार मिलती रही। कमरा साफ़ करना, चाय-पानी पिलाना, बर्तन साफ़ करना, लंगर से भोजन लाना और जो काम था किसी काम के लिए मुझे दोबारा नहीं कहना पड़ा और विशेष बात यह है कि इन बच्चों के हृदय में किसी प्रकार का लोभ नहीं है। बिना स्वार्थ के काम करना ऐसा नज़ारा अपने जीवन में मुझे पहली बार देखने में मिला है। चाहे मैं ऑफ़िसर हूँ, मुझे घर में व दफ़्तर में भी नौकरों से काम करवाना पड़ता है परन्तु पूरा वेतन लेते हुए भी वे ठीक काम नहीं करते और यहाँ जब एक बच्चे के अन्दर

ऐसा काम करने की उमंग है तो बड़ों के विचार कितने उच्च होंगे। गीता में मैंने कई बार पढ़ा है कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने अर्जुन को निष्काम कर्म करने का उपदेश दिया है—मैं दिल में सोचता था कि इस उपदेश पर आचरण कैसे होता होगा। अब प्रत्यक्ष मैंने अपनी आँखों से देखा कि निष्काम कर्म करने का साक्षात् प्रमाण यहां श्री आनन्दपुर दरबार में मिलता है। यहां सब आदमी बिना किसी सकामता के अपनी ज़िम्मेवारी को निभा रहे हैं। ऐसी ऊँची शिक्षा जो आपने यहां के निवासियों को दी है उससे सब के जीवन धन्य हो गये हैं और भी मैंने इन आठ दिनों में जो बातें देखी हैं सब प्रशंसनीय हैं। सब लोग अपने कर्त्तव्य का पालन बहुत ही अच्छी तरह से करते हैं। एक विशेष बात यह है कि बच्चे से बूढ़े तक कोई भी निष्क्रिय (निकम्मा) नहीं रहता। किसी के कहे बिना सब अपने अपने काम पर पहुँच जाते हैं। व्यवहार का काम करते हुये भी सब के मन में शान्ति है।

इस प्रकार श्री आनन्दपुर में १६३६ से १६४६ सन् तक आप ने प्रेमी, गुरुमुखों व शरणागतों में नया साहस भर कर कंटीली झाड़ियों से युक्त श्री आनन्द पुर के कुछ भाग साफ़ करवाए, निवास के लिये सुरक्षित स्थान तैयार करवाये तथा कुछ उपज भी अधिक आरम्भ हो गई। पानी की असुविधा बावलियों से कुछ सीमा तक कम हो गई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रेम-सेवा तथा श्री दर्शन की मस्ती में ऐसे प्रेमियों को रंग दिया कि वे अब एक क्षण भी प्राणेश प्रभु से अलग नहीं होना चाहते थे। उनका जीवन, उनके प्राण, उनके सर्वस्व, हृदय सम्राट् तो आप ही बन चुके थे। आपने तो सर्व सृष्टि में परमार्थ-भक्ति का सन्देश देना था। इसीलिए आपने प्रेमियों को फ़रमाया कि हम ने कुछ दिन के लिये किसी स्थान की खोज में जाना है, हम शीघ्र ही लौट आएँगे। शरणागत प्रेमी इस आज्ञा को सुनकर कुछ उदास से हो गये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सब को धैर्य दिया और परमार्थ एवं भक्ति के निमित्त सर्वसाधारण के कल्याण के लिये उस भूमि की खोज के लिये प्रस्थान किया जो उन्हें आतुर स्वर से पुकार रही थी।

श्री सन्त नगर

उठी जब मौज परमार्थ की, नई दुनिया बसाने को।
जन्मों से भटकी रूहों को, भक्ति मग दर्शाने को॥
अमर ज्योति की किरणें दिव्य, घट घट में जगाने को।
चले सम्राट् आनन्दपुर के, स्वयं बिगड़ी बनाने को॥

बन–बन खोजते फिरते, कि धरती कौन आकुल है?
किस की विह्वल पुकार आकर, बनाती हम को व्याकुल है?
अहो! यह प्रान्त कितना शान्त, कुदरत ने बनाया है।
करुणा कर प्रभु यहाँ पर, श्री सन्त नगर बसाया है॥

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सन् १९४९ में महात्मा सत् विचारानन्द जी को अपनी मौज बताकर सब जगह पर इस अमर ज्योति का प्रकाश फैलाने के लिए उन के साथ राजस्थान में पदार्पण किया। यहाँ पर सब स्थानों अर्थात् जिला धौलपुर से आगे सब ज़मीन कार पर घूम कर देखी लेकिन सन्त महापुरुष तो सचखंड से उतरे हुए नक्शे को ही ढूँढते हैं। अतः घूमते घूमते तहसील बाड़ी के समीप ही उन्होंने सलीमाबाद स्थान को संसार की झिलमिल से दूर शान्त एकान्त वातावरण को अपने परमार्थ का उचित स्थान समझा। तब जन कल्याण हेतु इसे खरीदने के लिए सेवकों को आज्ञा प्रदान की। श्री आज्ञानुसार सेवकों ने ३ अगस्त १९४९ को इसे ख़रीद लिया। यहां पर दो चार मकान केवल आरम्भिक निवास के लिए बनवाए और यहाँ आश्रम की स्थापना कर इस का शुभ नाम श्री सन्त नगर रखा। इससे राजस्थान, यू० पी०, देहली, पंजाब के समीप रहने वाले जिज्ञासुओं व प्रेमियों को श्री दर्शन रूपी अमृत का पान करने में सुविधा हो गई। श्री आनन्दपुर निवासी इसे 'नई दुनिया' के नाम से पुकारते थे कि अब श्री सद्गुरुदेव जी महाराज 'नई दुनिया' बसाने के लिये अपनी बिछुड़ी रूहों को मिलाने के लिए गए हुए हैं।

यहाँ पर आप समय समय पर पधार कर श्री पावन वचनामृत से सर्वसाधारण को कृतार्थ करते । इसी प्रकार सत्संग उपदेश के साथ साथ आप ने इस आश्रम में संगतों के निवास के लिए उचित स्थान (कमरे) भोजन-शाला (लंगर) सत्संग हाल का निर्माण करवाया जिससे दर्शनार्थी यात्रियों को असुविधा न हो । कितनी कृपालुता है सन्त महापुरुषों की कि घर बैठे ही नाम की संजीवनी तथा श्री दर्शन का अमृत जाम पिलाते हैं हम कलियुगी जीवों को । जिस मालिक की प्राप्ति के लिए सत्ययुग, त्रेता, द्वापर में लोग हज़ारों वर्ष तपस्या करते परन्तु दीदार नहीं कर पाते थे वही मालिक सन्त स्वरूप में इस कलि के जीवों का उद्धार करने हेतु स्थान-स्थान पर ही दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं । सन्त महापुरुषों के परोपकारों का किस प्रकार से वर्णन किया जाए—सत्पुरुषों की महानता का वर्णन महाराज भर्तृहरि जी ने इस श्लोक में इस प्रकार किया हैः—

॥ श्लोक ॥

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति,
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति,
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः ॥
(नीतिशतक ७४)

पद्यानुवाद—

सन्तन का स्वभाव यह, परोपकार पथ अपनाए ।
जैसे सूरज हर जगह पे, रोशनी फैलाए ॥
कमल कुमुदिनी का नेह, गगन में सूरज व चन्दा ।
पाकर निज निज इष्ट, होत हिय अति आनन्दा ॥
अपने ही स्वभाव से, बादल मेंह बरसावे ।
पाकर स्वाँति बूँद, पपीहा प्यास बुझावे ॥

ऐसे सन्त जन जगत की, करें सदा भलाई ।
ज्योति अनामी लोक की, अर्शों से उतर कर आई ॥

अर्थः—सत्पुरुषों का यह सहज में ही स्वभाव है कि वे परोपकार के लिए ही प्रकट होते हैं । वे समान भाव से सब की भलाई करते हैं । जिस प्रकार सूर्य अपनी रोशनी हर घर, हर स्थान पर फैलाता है तो चन्द्रमा शीतलता प्रदान करता है । दोनों का अपने समय पर उदय होने से सारे संसार में प्रकाश फैल जाता है । सूर्य के उदय होने से कमल-पुष्प खिल उठता है, चन्द्रमा की शीतलता से कुमुदिनी खिल उठती है । सूर्य और चन्द्रमा से रोशनी माँगने की ज़रूरत नहीं पड़ती । और न ही उन से यह कहा जाता है कि अपनी किरणें इस भूमि पर फैंको, शीतलता प्रदान करो, अपितु वे स्वयं ही यह सब कुछ करते हैं । चातक मेघों से बरसने के लिये याचना करे या न करे, मेघ अपने उदार स्वभाव से जल बरसाता है । इस से चाहे कोई प्यास बुझाए, खेती करे अथवा अन्य किसी उपयोग में लगाये यह सब की अपनी इच्छा पर निर्भर है । इसी प्रकार ही सन्त महापुरुष भी सहज स्वभाव से ही परोपकार करते हैं । उन्हें इस पथ पर चलते हुए अपने पर आने वाले कष्टों की चिंता नहीं होती । वे अनवरत (लगातार) परिश्रम से जन जन तक दिव्य ज्योति को फैलाने का भरसक प्रयत्न करते हैं । इसी पथ को स्वीकार किया हुआ था श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने । उस अमर ज्योति का प्रकाश घट घट में जगाने के लिए उन्होंने स्थान स्थान पर आश्रम तैयार करवाए तथा उपदेशक महात्मा भी भेजे । स्वयं भी आश्रमों का निर्माण करवा कर इस ज्योति का प्रकाश सर्वत्र फैलाया ।

आपने मुख्य केन्द्र श्री आनन्दपुर को बनाया जो युग-युगान्तरों तक सर्व प्रेमियों का मुख्य केन्द्र बना रहेगा । स्वयं भी जहाँ कहीं स्थान, आश्रम की स्थापना करते अथवा परमार्थ के लिये जाते पुनः श्री आनन्दपुर में ही लौट आते । इस प्रकार समय समय पर यहाँ (श्री सन्त नगर) पधार कर आपने इसका निर्माण भी किया । यहाँ पर सन् १९६२ में श्री मौज अनुसार रेतीले प्रदेश में अंगूरों की

वेलें लगवाईं तथा सन्तरे, पपीते आदि के बग़ीचे भी लगवाये। अब भी श्री सन्त नगर में यह चिन्ह मिलते हैं कि जहां तहाँ लम्पे (काँटे) हैं। आप ने उन काँटों को साफ़ करवा कर निवास के लिये स्थान बढ़ाया और अंगूरों का पार्क भी बना दिया। परन्तु यहाँ पर आपने परमार्थ लाभ अर्थात् श्री प्रवचन--अमृत उपदेश की धारा तथा श्री दर्शन के सुलभ अवसर प्रेमियों को अधिक प्रदान किये। यह स्थान अभी भी निर्माणाधीन है। जिसे अब वर्तमान युग सम्राट् महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी समय समय पर जा कर उस कार्य की पूर्ति कर रहे हैं।

जिस स्थान पर सन्त महापुरुष चरण-स्पर्श करते हैं वहां की रज भी पूजनीय बन जाती है। जहाँ स्वयं मालिक अपनी मौज के अनुसार पावन लीलाएँ करते हैं वे स्थान स्मारक (यादगार) के रूप में सदा उन की याद बनाए रखने के लिए प्रतीक (चिन्ह) होते हैं। यहाँ पर श्री दर्शन खुलने वाले कमरे के पीछे की ओर दो तीन टाहलियाँ (शीशम के वृक्ष) थीं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) कई बार श्री मुख से फ़रमाते थे कि जिन का सम्पर्क जिस रूप में है, सब का सद्गुरु से नाता जन्म-जन्मों से चला आता है। हम सब को पहचानते हैं परन्तु हमें कोई नहीं पहचान सकता। इस प्रकार इन दो तीन टाहली वृक्षों में से एक टाहली वृक्ष के नीचे सायं समय जाप करवाते तथा दोपहर समय श्री दर्शन का सौभाग्य देकर व अनुपम लीलाएँ कर दिलों को बरबस खींचते थे। प्रेमी, गुरुमुखों को श्री दर्शन करके जन्म-जन्मान्तरों के मलिन मन को धोने का सुअवसर मिल जाता और आप सेवा में होनेवाली शारीरिक थकावट को अपनी अनुपम लीला दिखा कर दूर कर देते। इस प्रकार सन् १९४६ से १९६३ तक आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) समय समय पर श्री सन्तनगर में कृपा करते रहे तथा इस टाहली के नीचे अनेकों बार श्री मुख से प्रवचन फ़रमाए जिन में से केवल दो तीन सत्संग उपदेश ही यहां दिए जा रहे हैं।

एक बार जब कि श्री सन्तनगर ख़रीदा ही था उसके कुछ समय उपरान्त यहाँ पर संगतें श्री दर्शन के लिए आईं। आपने प्रथम बार टाहली के नीचे

विराजमान हो कर श्री वचन फ़रमाए:—

"भक्ति और परमार्थ एक ऐसी वस्तु है जिसको सर्वसाधारण लोग नहीं समझ सकते। भक्ति और परमार्थ सार वस्तु है। इस सार वस्तु की परख बहुत कम मनुष्यों को है। संसार में सब लोग माया के पदार्थों, इच्छाओं, इन्द्रियों के सुखों में फँसे हुए हैं। इसलिए सुरति पर माया के पर्दे चढ़े हुए हैं और यह जीव बिल्कुल माया का रूप बन गया है। स्त्री से सम्बन्ध, बच्चों का मोह, धन एकत्र करने का विचार इस तरफ़ तो सब ख़ुशी व रुचि से काम करते हैं और वे यह समझते हैं कि हम ठीक मार्ग पर चल रहे हैं परन्तु वे परमार्थ की दृष्टि से वास्तविकता से दूर पड़े होते हैं। क्या परिवार के साथ सम्बन्ध व धन एकत्र करने का नाम परमार्थ है? परमार्थ की समझ व परख अथवा सार वस्तु की प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य को नहीं होती और न ही प्रत्येक मनुष्य भक्ति और परमार्थ के वास्तविक रहस्य को समझ सकता है। एक मनुष्य संसार में बहुत बुद्धिमान् है यदि उस की सुरति धन, स्त्री-पुत्र व मान बड़ाई की तरफ़ लगी हुई है तो वह परमार्थ के अभिप्राय को समझने से बिल्कुल कोरा है। मृत्यु के पश्चात् ऐसे बुद्धिमान् द्वारा एकत्र की हुई क्या ये वस्तुएँ उस की सहायता कर सकती हैं या आज तक इन चीज़ों ने किसी की सहायता की है? यदि नहीं तो इन पर किसी प्रकार की आशा रखना भारी भूल है।

आम लोग इस लाभ-हानि को नहीं समझ सकते। इसको समझने वाले बहुत कम लोग होते हैं। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि परमार्थ और भक्ति को समझने वाले होते तो बहुत कम हैं परन्तु उनकी कद्र व कीमत सांसारिक लोगों की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। जैसे लोहे की अपेक्षा सोना कम मिलता है परन्तु कीमत सोने की अधिक है। जिन मनुष्यों के शुभ संस्कार व क्रियमाण कर्म प्रबल होते हैं उनका नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाता है। वे अपना भी सुधार कर लेते हैं और दूसरे भी उनके जीवन से लाभ उठाते हैं, जिन में श्री पलटूदास जी, श्री चरनदास जी, श्री दादू दयाल जी, श्री रज्जब साहिब जी व सन्त सहजोबाई जी आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इसी श्रेणी के और भी कई महात्मा और भक्त हुए

हैं। इन लोगों ने भक्ति व परमार्थ के गूढ़ रहस्य को समझ कर स्वयं को उस पथ पर दृढ़ किया। अब उनके इतिहास से अनेकों जीव लाभ उठा रहे हैं। यह ठीक है कि इन की संख्या (गिनती) कम है परन्तु इन की क़दर व कीमत बहुत अधिक होती है। उनके नाम व काम की सब सराहना करते हैं क्योंकि इन लोगों ने भक्ति व परमार्थ के गूढ़ तत्त्व को समझा और उस पर आचरण किया।

समय के पूर्ण सन्त सद्गुरु ही जीव को भक्ति व परमार्थ के सार तत्त्व को समझाते हैं और उस पर अमल करने का आदेश देते हैं। गुरुमुख पुरुष ही भक्ति के गूढ़ ज्ञान को समझते हैं और उस पर अमल करते हुए अपने मनुष्य-जन्म को सफल बनाते हैं। जिस को ऐसा स्वर्ण अवसर मिल जाए वे भाग्यशाली हैं। इस मार्ग पर चलते समय माया व मन से ज़बरदस्त सामना करना पड़ता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि भी मन के साथी हैं। ये जीव को अपनी तरफ़ खींचते हैं। माया भी जीव को अपने झिलमिल रूप में फंसाती है परन्तु गुरुमुख पुरुष माया के धोखे में नहीं आते।

॥ दोहा ॥

तीर तुपक से जो लड़े, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ति करै, सूर कहावै सोय॥

उन मनुष्यों का जीवन धन्य है जिन्होंने मन-माया को जीत कर परमार्थ और भक्ति के मार्ग पर दृढ़ता से आगे की ओर कदम बढ़ाया है। यही मनुष्य जन्म का लाभ है जिसे गुरुमुख ही प्राप्त कर सकते हैं। समय के पूर्ण सन्त सद्गुरु का संसार में अवतार धारण करने का अभिप्राय भी यही होता है कि यह जीव जो काम-क्रोध-मोह-लोभ-अहंकार, मन व माया की गुलामी में जकड़ा हुआ है इन से छुटकारा प्राप्त करे। इस का नाम ही वास्तव में मुक्ति है। इस का दूसरा नाम गुरुमुखता है और इसी का नाम ही परमार्थ व भक्ति है। अपनी सुरति को विषय-विकारों से स्वतंत्र कराना ही सब से बड़ा परमार्थ है। इसलिए सन्त-महापुरुष फ़रमाते हैं कि ऐ जीव! पहले अपना परमार्थ सिद्ध करो। स्वयं को काम-क्रोध-

लोभ-मोह-अहंकार के बन्धन से स्वतंत्र कराओ। अपनी सुरति को विषय-विकारों से छुड़ाओ। तृष्णा, ईर्ष्या ने जो तुम्हें घेर रखा है इनसे अपना पीछा छुड़ाओ। यही सबसे बड़ा परमार्थ है। परमार्थ और भक्ति पथ पर चलने वाले जिज्ञासु को मन और माया की उलझनों से बचने के लिए सन्त सद्गुरु की सहायता की बहुत आवश्यकता है। सन्त सहजोबाई जी ने गुरु की आवश्यकता के विषय में कथन किया है:—

॥ दोहा ॥

बार बार नाते मिलैं, लख चौरासी माहिं।
सहजो सतगुरु न मिलैं, पकड़ निकासैं बाहिं॥
सहजो कारज जगत के, गुरु बिन पूरे नाहिं।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिलैं, समझ देख मन माहिं॥

सांसारिक सम्बन्ध तो पशु योनियों में भी मिल सकते हैं किन्तु सद्गुरु की प्राप्ति मनुष्य-जन्म में ही हो सकती है, जो इस जीव को मोह-माया के बन्धन से स्वतंत्र करा कर जीव की आत्मा को परमात्मा से मिलने का मार्ग बताते हैं। इसी का नाम ही भक्ति है और इसे ही परमार्थ कहते हैं।"

इस प्रकार आपने श्री अमृत प्रवचनों द्वारा जन जन को लाभान्वित किया। आई हुई संगतें श्री अमृत प्रवचन सुनने के लिए सदा उत्सुक रहती थीं। आप भी उनकी आत्मिक प्यास बुझाने के लिए समयानुसार श्री अमृत प्रवचन फ़रमाते ही रहते थे। एक बार पुनः आपने यहां कृपा की और पर्व के दिन यह प्रवचन फ़रमाये:—

"प्रत्येक मनुष्य में कोई न कोई लगन रहती है। प्रत्येक प्राणी की यह इच्छा होती है कि मैं सब से बड़ा बनूँ। मुझे सब से बड़ा दर्जा मिले। मेरी सबसे अधिक इज़्ज़त हो और मैं सुखी रहूँ। लगभग इस किस्म की इच्छाएँ हर मनुष्य में हुआ करती हैं।

अब सोचना यह है कि सबसे ऊँचा व बड़ा पद कौन सा है। सब से उत्तम

व श्रेष्ठ वस्तु कौन सी है जिसके मिलने से यह जीव सुख का अनुभव कर सकता है क्योंकि प्रत्येक जीव अपने इस निशाने को ध्यान में रखता है और दृढ़-संकल्प से उस चीज़ को प्राप्त भी कर लेता है। यदि मनुष्य की इच्छा हो कि मैं धनवान् बनूं, विद्या ग्रहण करूँ, डॉक्टर बनूं या कोई और गुण ग्रहण करूँ, परन्तु यदि इच्छा के साथ दृढ़-संकल्प नहीं है तो सफलता प्राप्त नहीं हो सकती अर्थात् विचारों में दृढ़ता होने से ही सफलता प्राप्त हो सकती है।

सिकन्दर बादशाह का संकल्प समस्त विश्व को विजय करने का था। अब विचार किया जाए कि सिकन्दर में और आम मनुष्यों के शरीर में देखने में कोई अन्तर नहीं था। अन्तर था तो केवल विचारों का, दृढ़-संकल्प का। अपने विचारों की प्रबलता से और दृढ़-संकल्प से ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सका था।

अब प्रश्न यह है कि कौन से काम की सफलता में सुख है और कौन से काम की सफलता में दुःख, चिन्ता और कल्पना है ? कौन से काम मनुष्य को शान्ति पहुँचा सकते हैं और कौन से काम जीव को दुःखदायी बना सकते हैं ? कौन से काम के लिये दृढ़ संकल्प करके मनुष्य को उसे प्राप्त करना चाहिये ? यदि एक चोर चोरी करता है तो दृढ़ संकल्प से ही अपने काम में सफलता प्राप्त करता है। यदि दूसरे आदमी ने ईश्वर प्राप्ति की कोशिश की तो वह अपने दृढ़ संकल्प से अपने मनोरथ में सफल हो गया। अब सोचना इस बात को है कि अपने दृढ़ संकल्प से, अपनी विचार शक्ति से किस काम को किया जाए जिससे मनुष्य को सुख का अनुभव हो। क्योंकि मालिक की प्राप्ति और चोरी दोनों कामों में सफलता तो दृढ़ संकल्प से मिल गई परन्तु परिणाम दोनों का भिन्न भिन्न है। भक्त और चोर में कितना अन्तर है। भक्त का नाम तो सब पसन्द करते हैं परन्तु कोई भी अपने को चोर कहलवाना पसन्द नहीं करेगा। अर्जुन तो सब बनना चाहते हैं मगर दुर्योधन के नाम को कोई भी पसन्द नहीं करता और न ही कोई दुर्योधन कहलवाना पसन्द करता है। जितना अन्तर अर्जुन व दुर्योधन में है उतना ही मालिक की प्राप्ति और सांसारिक वस्तुओं में है। मालिक की प्राप्ति से मनुष्य जन्म-मरण से छुटकारा पा सकता है और माया के पदार्थों, सांसारिक इच्छाओं

से दुःख, कल्पना और अशान्ति ख़रीद सकता है। परिणाम दोनों का अलग अलग है। यह तो कोई नहीं चाहता कि मैं दुःखी रहूँ। सब कोई सुखी होना चाहता है और सुख है मालिक के नाम में, मालिक की भक्ति में। इस सुख के लिए ही दृढ़-संकल्प होना चाहिए।

॥ दोहा ॥

धनवन्ते सब ही दुःखी, निर्धन हैं दुःख रूप ।
साध सुखी सहजो कहै, पायो भेद अनूप ॥

महाभारत के युद्ध से पहले भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी से अर्जुन ने भगवान् को मांगा और दुर्योधन ने भगवान् से युद्ध का सामान मांगा परन्तु महाभारत के युद्ध में विजय अर्जुन की हुई। माँगने को अर्जुन भी युद्ध का सामान माँग सकता था परन्तु जिस को भगवान् की प्राप्ति हो जाये उसे किस बात की कमी रहेगी। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी ने युद्ध में समय समय पर अर्जुन की रक्षा की। इसी प्रकार से मनुष्य को भी चाहिये कि वह अपने दृढ़ संकल्प को ईश्वर प्राप्ति में लगाए तभी वह सुख रूप बन सकता है। इसलिए अपने दृढ़-संकल्प को मालिक के भजन-ध्यान की ओर लगा कर मनुष्य जन्म के ध्येय को प्राप्त करे।

१९६२ में जब यहाँ (सन्त नगर में) भी अँगूर लगाने की मौज उठी तो इस मौज ने १९६३ सन् में साकार रूप धारण किया। सेवकजन दिन रात एक करके इस मौज को पूरा करने में संलग्न थे। अँगूरों के लिए गड्ढे खोदे जा रहे थे। एक दिन मौजवश श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सेवकों को प्रवचन फ़रमाये— "सेवक का दर्जा सर्वोत्तम है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के दर्शन करने, सत्संग व आज्ञा अनुसार सेवा करने में बहुत लाभ है परन्तु शर्त यह है कि जीव को कुसंग व माया धोखा न देवें। सेवक के दर्जे को प्राप्त करने के लिये, सच्चे सेवक के पद के लिये सब तरसते हैं अर्थात् चाह करते हैं। यदि सैंकड़ों वर्ष भी तप किया जावे तो भी सेवक का दर्जा मिलना कठिन है। परमार्थ व गुरु दरबार की सेवा का बहुत महत्त्व है। सेवक श्रद्धा के साथ सेवा करे, आज्ञानुसार चले और अपनी

सुरति की धारा इष्टदेव के चरणों में लगाए रखे यही सेवक का कर्त्तव्य है।"

इस प्रकार १९४६ से १९६३ तक आपने कितनी बार ही यहाँ पर इस टाहली के समीप प्रवचन फ़रमाए, कितना यहाँ पर प्रेम लुटाया, इसका अनुमान लगाना कठिन है। जड़-चेतन सभी को आपने ऐसा प्रेम प्रदान किया कि एक बार जिसने भी आप के श्री दर्शन किये, पुनः दर्शन पाने के लिये सदा व्याकुल बना रहा। आप में यही विलक्षणता थी कि जो भी एक बार आपकी संगति में आया वह प्रेम में मस्त हो सुध—बुध भूल गया। आप के श्री दर्शन में क्या जादू था कि:—

प्रेम मंत्र जड़ चेतन सब में, करुणामय ने भर डाला।
जो हुआ आपकी शरणागत, उसे मालामाल था कर डाला॥
जिस ओर निहारा एक नज़र, वहाँ प्रेम-पयोधि छलकत है।
क्या प्रेम की अतुल बड़ाई है, दीदार में तेरे झलकत है॥

१९६३ तक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी श्री सन्त नगर में समय समय पर कृपा कर इस दुर्लभ प्रेमामृत की वृष्टि करते रहे। अन्तिम बार जुलाई में आप ने श्री सन्त नगर के भाग्य जगाए। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी को श्री सन्त नगर जाने का अवसर ही न मिला, क्योंकि महापुरुष जिस धुर दरगाही मौज को साथ लाते हैं, उसी के अनुसार कार्य करते हैं। इस लम्बी अवधि में श्री सन्त नगर की यह पावन धरती बाट जोहते-जोहते थक गई और विरह व्याकुलता में पुकार कर रही थी।

सन् १९७० में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी परमार्थ के सिंहासन पर रूहानी-जानशीन हुए और श्री सन्त नगर को कृतार्थ करने की मौज प्रकट की, उधर श्री सन्त नगर में प्रेमी भक्त श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री पंचम पादशाही जी) के शुभ आगमन का सन्देश पाकर हर्ष में झूम उठे। सब स्थानों पर सफ़ाई की जाने लगी। श्री सन्त नगर के कण-कण में बहार ने डेरे लगाए। उस टाहली का वृत्तान्त जिसका ऊपर वर्णन हो चुका है, विरह व्याकुलता की लम्बी अवधि में सूख कर गिर गई थी, उसने भी सरसता धारण की। उसकी

एक शाखा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के शुभ आगमन का सुनते ही हरी हो गई। उस गिरे हुये ठूँठ में से किसी को ऐसी आशा न थी। दिसम्बर सन् १९७० में प्रथम बार आपने यहां कृपा की और इस टाहली के समीप पलंग पर विराजमान होकर यहां अमृत प्रवचनों से प्रेमियों (संगतों) को कृतार्थ किया तथा इस टाहली ने भी नवजीवन प्राप्त किया।

पहले भी वर्णन हो चुका है कि जिस धरती अथवा स्थान पर सन्त सत्पुरुषों का चरण-स्पर्श हो जाता है वह स्थान पूजनीय बन जाता है तथा समयानुसार महापुरुष अपनी श्री मौज अनुसार परिवर्तन भी करते हैं। अतः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इसी टाहली के स्थान पर 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' का निर्माण करवाने की श्री मौज प्रकट की। यह पूजनीय स्थल अत्यन्त पूजनीय बनने के लिए आतुर हो उठा। अतः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री पंचम पादशाही जी) ने १६ मार्च सन् १९७२ तदनुसार नव सम्वत् वि० २०२९ बृहस्पतिवार को निज कर कमलों से 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' की नींव का उद्घाटन किया तथा सन् १९७४ में इसका निर्माण पूर्ण हुआ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने १४ मार्च १९७४ तदनुसार शुभ चैत्र संक्रान्ति सम्वत् २०३० बृहस्पतिवार को निज कर कमलों से श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में श्री परमहंस महान् विभूतियों की प्रतिमाएँ विराजमान कीं तथा इसके पश्चात् विधिपूर्वक श्री आरति-पूजन किया गया। यही नियम सर्वदा के लिए प्रातः सायं चलता रहेगा जो आज तक चल रहा है।

इस प्रकार श्री सन्त नगर भी परमार्थ का केन्द्र बन गया। इस से हज़ारों प्रेमियों को ज्ञान-अमृत पीने में सुविधा हो गई जो आज भी जन जन को लाभ प्रदान कर रहा है।

श्री सन्त नगर १९४६ में ख़रीदा गया था। इधर १९४७ में स्वतन्त्रता संग्राम के कारण देश विभाजन हुआ। आप ने तो इसके विषय में १९४० में ही कई बार श्री प्रवचन फ़रमाए थे। उन में से एक दो विशेष प्रवचनों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इन प्रवचनों से वे सांकेतिक रूप में प्रेमियों को

पहले चेतावनी दे चुके थे। सन् १९४७ में जब देश-विभाजन हुआ, उस समय कई लोग बे-घर हो गए। अशान्त वातावरण के उत्पन्न होने के कारण सब के हृदय करुण क्रन्दन कर उठे। ऐसे समय में उनके अशान्त त्रस्त हृदयों को किसी शान्तिदायक आश्रय की आवश्यकता थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पहले से ही इस आनन्दमयी, सुखदायक श्री आनन्दपुर की नगरी को, आकुल-व्याकुल हृदयों को शान्ति, सुख, आनन्द प्रदान करने के लिये रचा था। इसीलिये प्रेमी गुरुमुखों ने तो श्री सद्गुरुदेव जी का नाम स्मरण कर वहां से जान बचाई तथा इधर भारत में आते ही श्री चरणों में पहुँच कर शान्ति तथा आनन्द प्राप्त किया।

आपने इस श्री आनन्दपुर की रचना के साथ साथ यहां से २० मील की दूरी पर अशोक नगर में यात्रियों के आने जाने की सुविधा के लिए थोड़ी सी ज़मीन खरीद कर वहां आश्रम स्थापित करवाया, जिस का प्रबन्ध श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (श्री चौथी पादशाही जी) के हाथ सौंप दिया था। प्रचारक महात्माओं के सत्संग से हज़ारों की संख्या में अन्य जिज्ञासुओं ने भी इस भक्ति मार्ग को सहर्ष स्वीकार किया और अपनी वेदना, व्यथा व अशान्ति युक्त हृदयों को नामोपदेश से सिंचित कर सुख की सांस ली।

इस घनघोर दुःखद समय में आपने अशोकनगर तथा श्री आनन्दपुर में आश्रय देकर उनका दुःख निवारण किया। अब क्योंकि जिज्ञासुओं व प्रेमियों की संख्या बढ़ गई इसके लिये आप ने अपने श्री आनन्दपुर की रचना को भी विशाल रूप दिया। १९४७ तक झोंपड़ों (टप्परों) तथा बावलियों से ज़रूरत की पूर्ति होती रही। अब आवश्यकताएं बढ़ गईं और उनकी पूर्ति के लिए यथासम्भव साधन किए जाने लगे। सेवा को विशाल रूप दिया गया।

यहां पर झोंपड़ों (टप्परों) के स्थान पर ईंटों के मकान बन गए। जहाँ तहाँ खेतों में पड़े हुए पत्थरों को एकत्र करवाना आरम्भ कर दिया। स्थान स्थान पर उद्यानों के लिए स्थान साफ़ करवाने आरम्भ करवा दिए। इस प्रकार गुरुमुखों को सेवा का स्वर्णावसर (Golden Chance) मिला। आपने अमूल्य सेवा रूपी निधि गुरुमुखों

को प्रदान की। अब इस उपकार पर यदि गहराई से दृष्टि डालें तो क्या हम उस स्तर तक बुद्धि को पहुँचा सकते हैं कि कितना कितना परोपकार किया श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने हम पर। इधर हमारी दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपना अमूल्य समय देते हैं उधर हमारी रूहानी प्यास को बुझाने के लिए तत्पर रहते हैं। क्या ऐसा कार्य किसी युग में हुआ कि स्वयं इष्टदेव कुल मालिक हमारे भोजन, निवास आदि विषयों पर स्वयं साकार रूप में ध्यान दें और साथ ही परलोक सुधारने का दायित्व भी अपने पर लें। ऐसा अन्यत्र उदाहरण मिलना कठिन है।

गुरुमुख प्रेमिजन सेवा करते। आप सेवा के स्थान पर जाकर उन को श्री दर्शन से कृतार्थ करते। आप श्री मुख से फ़रमाते थे कि "प्रत्येक गुरुमुख को इन चार नियमों को प्रतिदिन पूरा कर लेना चाहिये–१. श्री दर्शन २. सत्संग ३. भजन ४. सेवा। आपने इन नियमों का परिपक्वता से पालन करवाया। सेवा में गुरुमुख प्रातः से संध्या तक जुटे रहते। श्री दर्शन तो करुणाकर आप ही उन्हें सारा दिन सेवा पर विराजमान होकर देते रहते। सत्संग का अर्थ ही यही है कि 'सन्तों का संग'। यहां तो सन्तों के सिरमौर श्री इष्टदेव कुल मालिक स्वयं विराजमान थे और उनकी पवित्र संगति का सौभाग्य तो गुरुमुखों को मिल ही रहा था, फिर भी समय समय पर श्री दर्शनों का विशेष लाभ मिल जाता। उसी समय पावन सत्संग भी होता तथा कभी कभी श्री मौज अनुसार स्वयं भी प्रवचन फ़रमाते थे। संध्या समय मूल मंत्र का जाप आप स्वयं करवाते थे। इन चार नियमों को बिना किसी कठिनाई के गुरुमुख पूरा कर लेते। शारीरिक निर्वाह की उन्हें चिन्ता ही क्या थी जब कि कुल मालिक स्वयं उन के प्राणधन थे। समय पर लंगर (भोजन) तैयार हो जाता। भोजन सेवा के स्थान पर भी पहुँचाने को सेवक तैयार होते परन्तु गुरुमुखों को उस आनन्दमय अमृत को पीकर भूख-प्यास की चिन्ता ही न रहती थी। स्वयं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी निज कर कमलों से श्री प्रसाद देते तो प्रेमिजन सेवा से थोड़ा अवकाश कर लेते।

कुछ जिज्ञासुओं ने श्री चरणों में सर्वस्व समर्पित कर शरणागत होने के लिए

विनय की। आप ने फ़रमाया—"यहां लंगर का दाल फुलका तथा साधारण पहरावा जिसे स्वीकार हो उस के लिए दरबार का दरवाज़ा खुला है जब भी चाहें आ सकते हैं। यहां आवश्यकता पूर्ति तो की जाती है परन्तु मन की इच्छाओं की पूर्ति नहीं की जाती।" जब उन प्रेमियों ने बार बार विनय की कि प्रभो! हमें आप की प्रसन्नता के अतिरिक्त किसी इच्छा पूर्ति की चाह नहीं है। यहां की दाल-रोटी बढ़िया पकवानों से कहीं उत्तम है, यहां दाल की तुलना में स्वर्ग के स्वादिष्ठ भोजन भी तुच्छ हैं।

भक्ति के अभिलाषी प्रेमियों को तो एक दिव्य आनंद की लहर में ग़ोते लगाने की धुन सवार थी। इतनी श्रद्धा और ऐसे अटल विश्वास को देखकर श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने शरणागति के लिए आज्ञा दी। १९४७ के पश्चात् जैसे जैसे दरबार की महिमा फैलती गई, जो भी प्रेमी गुरुमुख अत्यन्त श्रद्धा विश्वास सहित विनय करता उसे श्री आज्ञा अनुसार शरणागति मिल जाती। इस प्रकार से काफ़ी संख्या में गुरुमुख प्रेमियों ने शरणागति प्राप्त की तथा गुरुभक्ति के पथ पर चल कर मानव-जन्म को कृतार्थ करने लगे।

इस प्रकार सन् १९४७ के पश्चात् दिन प्रतिदिन शरणागतों की संख्या बढ़ती गई और आप सेवा का भंडार बढ़ाते गये। आए हुए शरणागतों को आप समय समय पर श्री पावन प्रवचनों से कृतार्थ करते थे। आपने एक बार श्री वचन फ़रमाये:—

"मनुष्य को संसार में बड़े विचार से रह कर अपने कर्त्तव्य को हर तरह से ख़्याल में रखते हुए अपने जीवन का सफ़र तय करना है। समय अपना काम करता है, वह किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। अब इसी समय के अन्दर जिस ने कुछ कर लिया वह उतना ही लाभ प्राप्त करेगा। जिसने इस लक्ष्य को समझ कर कुछ काम संवार लिया तो अच्छा है नहीं तो ग़फ़लत और मन के धोखे में रहकर अपने लक्ष्य को न जाना तो वह हानि उठाएगा। वास्तव में तो लाभ प्राप्त करना था, परन्तु मन व माया के धोखे में आकर लाभ की अपेक्षा हानि प्राप्त की—मन व माया की लपेट में आकर चौरासी लाख योनियों के चक्र में पड़ गया। जैसे

रोशनी व अन्धेरा दो पहलू हैं इसी तरह कुदरत की रचना में प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। दिन-रात, सत्य-असत्य, बुरा-भला, आत्मा-शरीर, माया व भक्ति सब दो दो पहलू हैं।

गुरुमुख पुरुष माया में बर्तते हुये भी भक्ति को ग्रहण करते हैं। जैसे व्यवहार में माया की प्राप्ति करने के लिए बहुत से कष्ट, बाधाएँ और परीक्षाएँ सामने आती हैं। इसी तरह परमार्थ व भक्ति के रास्ते में माया के रूपों के साथ सामना करना पड़ता है। गुरुमुख इसी राह पर चलते हुए अपने आप को मन व माया के चक्र से बचाकर भक्ति में सफलता प्राप्त करता है। जब माया के पंजे में जीव फँस जाता है तो उसे आनन्द का धाम भूल जाता है। लेकिन गुरुमुख पुरुष अपने सद्गुरु की शरण लेकर स्वयं को माया की लपेट से मुक्त कर लेता है जब कि मायावी जीव इस (काम-क्रोधादि दुश्मनों) के पंजे में आकर दुःखी रहते हैं।

यदि ग़फ़लत में समय बीते और रूह को मुक्त न कर सका तो कितनी हानि है। केवल यह नहीं कि ज़िन्दगी के दिन पूरे करने हैं और खाना-पीना, पहनना और समय ग़फ़लत में गँवा देना है। जिसने मालिक की प्रसन्नता प्राप्त नहीं की उसने माया के चक्र में समय व्यर्थ गँवा दिया और कुछ लाभ प्राप्त न किया। कुदरत की तरफ़ से ऐसा अच्छा संयोग मिलने पर भी यदि ग़फ़लत के कारण माया का दबाव पड़ गया—माया ने ताकत पकड़ ली तो परिणाम खराब होगा। डालना तो माया पर दबाव है—यदि माया ने दबाव डाल दिया तो अत्यधिक हानि उठानी पड़ेगी।

हम यही ख़्याल करते हैं कि वह कौन सा सौभाग्यशाली समय होगा जब जीव इस माया के घेरे से आज़ाद होगा। इस हानि का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। आया तो था माया से स्वतन्त्र होने के लिए तथा मालिक की भक्ति के लिए परन्तु बन गया माया का ग़ुलाम। मालिक के दरबार में ऐसा नियम नहीं है कि किए हुए कर्मों का फल न मिले। कोई इन किये हुए कर्मों के फल से ग़ाफ़िल न रहे। वह तो कुदरत अवश्य देगी। इन सब पर नज़र रखते हुए सद्गुरु के

वचनों पर आचरण कर जीवन का कल्याण करना है। सन्त महापुरुष इसी बात पर ज़ोर देते हैं चाहे कोई माने या न माने। माया एक तिलकन बाज़ी है। एक बार पांव फिसला तो बहुत गहरे गड्ढे में जा गिरेगा जिससे निकलना बहुत कठिन है। इस रास्ते में माया से पीछा छुड़ाना है। माया को पीठ देकर भक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करना है।

उदाहरणतया एक यात्री जब जंगल में चोरों डाकुओं से घिर जाता है तो उस समय उसे परिवार, धन-दौलत कुछ भी याद नहीं आता। केवल वह अपनी जान बचाता है। इसी प्रकार सुरति मोह-लोभ-अहंकारादि शत्रुओं से घिरी हुई है। सद्‌गुरु के शब्द की कमाई के द्वारा इसे आज़ाद करना है। यह सुरति शरीर, मन, इन्द्रियों के बन्धन में करोड़ों गुना अधिक आई हुई है लेकिन जीव को पता नहीं चलता। सन्त महापुरुष जो कि त्रिकालदर्शी, परम चेतन शक्ति हैं वे ही सब कुछ जानते हैं। जीव इस जन्म में आज़ाद हो गया तो अच्छा, नहीं तो बहुत भारी बंधन में पड़ जाएगा जिस से निकलना मुश्किल होगा।

यह कोई रेलगाड़ी की यात्रा नहीं कि एक रेल के निकल जानेपर दूसरी गाड़ी पकड़ लेंगे और सफ़र तय हो जाएगा। रूहानी मार्ग में तो जन्म-जन्म का मामला पेश हो जाएगा। यह एक ऐसा नाज़ुक रास्ता है जिसे केवल सन्त महापुरुष ही जानते हैं कि जीव काल व माया के चक्र से कैसे छुटकारा पा सकता है।

यदि सद्‌गुरु की आज्ञा, मौज व वचनों पर विश्वास कर के अमल करोगे तो सब बन्धनों से आज़ाद हो जाओगे। सन्त महापुरुष जो कुछ भी करते हैं जीव की भलाई के लिए करते हैं। केवल जीवों के कल्याण की ख़ातिर ही ऐसी रचना रचा देते हैं ताकि प्रेमी गुरुमुख सेवा के भण्डार से, सद्‌गुरु-दरबार से आज्ञा, प्रसन्नता व श्री मौज एवं सेवा के लाल, हीरे-जवाहरात प्राप्त कर मालामाल हो सकें। गुरुमुखों का कर्त्तव्य है कि श्री वचनों पर आचरण करते हुए जीवन का कल्याण करें।"

इस प्रकार समय समय पर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री वचनों द्वारा गुरुमुखों को चेतावनी देते रहते थे ताकि गुरुमुखों के विचारों में दृढ़ता बढ़ती जाये। सब

गुरुमुखों प्रेमियों को अपनी अपनी सेवा (Duty) पर लगा कर आप स्वयं सब की देख-रेख करते और कुछ महात्मा जन भी इस के लिये नियुक्त किये जो कि समयानुसार सब सुव्यवस्था और आवश्यकताओं की पूर्ति करते ।

एक बार आप की मौज ऐसी उठी कि एक स्थान ऐसा भी होना चाहिये जहां पर कभी कभी जाकर विश्राम किया जाए। महापुरुषों के लिए आराम कहाँ— वे तो केवल धरती, मानव तथा प्रकृति की प्रत्येक रचना में बनी हुई वस्तुओं की करुण पुकार सुनते हैं। घने बन, कंटीली झाड़ियाँ तथा एकान्त प्रकृति की गोद में खेलते हुए भूमि खण्ड आप को श्री चरण-स्पर्श करने के लिये विवश करते थे। क्योंकि आप का कार्य कांटों में फूल खिलाना, प्रेम-अमृत से सिंचित कर भाग्य जगाना था। इसलिये आप ने समयानुसार अपने परमार्थ की पूर्ति के लिए हर स्थान को पवित्र किया और जीवन पर्यन्त इस को करते रहे ।

कुदरत के आँचल में, खड़ा हूँ मैं भी दामन पसारे ।
सुन लो पुकार ऐ माँझी ! वे सहारों के हो सहारे ॥
हम भी ठूँठ काँटों के, बने जन्मों से प्रभु प्यारे ।
करो कृपा की इक दृष्टि, लगा दो हम को भी किनारे ॥

आप अपनी मौज के अनुसार मार्च १९५० ई० में मुरादाबाद और काशीपुर के मध्य में स्थित रोशनपुर में पधारे । यहाँ पर महात्मा परमयोगानन्द जी, महात्मा सत् विचारानन्द जी तथा भक्त दरयाई लाल जी को बुलवाया। रोशनपुर स्टेशन से दो मील की दूरी पर ग्राम लालपुर बहिराई में आप सेवकों सहित पधारे। यहाँ एक घना वन था जहाँ हाथ को हाथ न सूझता था लेकिन महापुरुषों के भजनाभ्यास के लिये एकान्त, शान्त, सुन्दर वातावरण था । एक स्थान पर यहाँ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पलंग पर विराजमान हुए। उसी स्थान ने मानो श्री चरणों का स्पर्श पाकर श्री चरणों में स्वीकृत होने के लिए विनय की। दीनबन्धु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस विनय को स्वीकार किया। उस स्थान को अपनी श्री मौज अनुसार उचित जान कर उसे खरीदने के लिये भी आज्ञा फ़रमाई और

लौट आए ।

पुनः श्री व्यास पूजा के शुभ पर्व के पश्चात् अगस्त सन् १६५० में इस स्थान के भाग्य जगाने के लिए पधारे । श्री स्वामी जी श्री दर्शन पूर्ण आनन्द जी महाराज, महात्मा सत् विचारानन्द जी, महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा योग प्रकाशानन्द जी, महात्मा सन्तोषानन्द जी, महात्मा नित प्रेमानन्द जी, महात्मा दर्शन अलखानन्द जी, महात्मा भक्ति ध्यानानन्द जी, महात्मा अनमोल धर्मानन्द जी, महात्मा शब्द विवेकानन्द जी, भक्त पहलूमल जी (महात्मा परमात्मा नन्द जी), भक्त बलराम जी (महात्मा योग सत्यानन्द जी) व अन्य महात्मा व भक्त श्री आज्ञा अनुसार सेवा के लिए साथ गए । वहाँ पहुँच कर आप ने घने बन को साफ़ करवाना आरम्भ कर दिया । ये सब श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर सेवा में जुट गए । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्थान स्थान से कांटों की सफ़ाई करवा कर यह दर्शा रहे थे कि इसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी कांटे हैं । जो इन कांटों से नहीं डरता वही भक्ति रूपी पुष्प को प्राप्त कर लेता है । जैसे काँटों में उलझने पर पीड़ा अनुभव होती है, कभी रक्त भी बहने लगता है । इसी प्रकार भक्ति मार्ग में कष्टों से गुरुमुख को नहीं डरना चाहिए । इन कष्टों को सहन करके ही भक्ति की मंज़िल को प्राप्त किया जा सकता है । इस स्थान को साफ़ करने के लिए इन गुरुमुखों के साथ कुछ मज़दूर भी लगे हुए थे ।

एक दिन की बात है कि गर्मी तथा थकावट के कारण सब महात्मा व भक्त जन विश्राम के लिए बैठ गए । नौकर काम पर लगे हुये थे । एक घनी कंटीली झाड़ी को छोड़ कर वे आगे बढ़ गये । आप ने वहां कृपा की । सभी सेवक उठ खड़े हुये । आप ने जहां तहाँ निहारा कि कितना क्षेत्र साफ़ हो गया है । उस झाड़ी की ओर संकेत कर आप ने फ़रमाया—"यह झाड़ी क्यों छोड़ दी गई है ?" सेवकों ने विनय की—प्रभो ! नौकरों से यह उखाड़ी नहीं जा रही थी इसलिये उन्होंने छोड़ दी है । श्री प्रवचन हुये कि जब तक स्वयं कांटों में हाथ नहीं डालोगे तो औरों से क्या सेवा करवाओगे ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं सेवा के आदर्श थे । वे सेवकों को भी वही

आदर्श बनाना चाहते थे। श्री वचनों को सुनते ही सब के सब ऐसे सेवा में जुट गये कि किसी को भी न दोपहर की गर्मी, न दिन भर के विश्राम की सुधि रही। उन महात्मा जनों का कथन है कि हम ने उस दिन से कुर्ते (कमीज़) पहनने छोड़ दिये। बुनियान व धोती पहने सारा दिन श्री सेवा में संलग्न रहते। हमें जो अपूर्व आनन्द उस समय मिला शायद ही ज़िन्दग़ी में कभी मिला होगा।

श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने दर्शाया कि अपना आचरण ही उपदेशों से कहीं अधिक प्रभावशाली होता है। परिणामस्वरूप कुछ दिनों में यह वन साफ़ हो गया और यहाँ आश्रम की स्थापना की गई जहां पर समयानुसार आप एकान्तवास के लिये कृपा फ़रमाते। कभी कभी संगतों को भी श्री दर्शन का यहाँ सुअवसर दिया जाता। एक बार यहाँ कुछ प्रेमियों के सम्मुख आप ने श्री प्रवचन फ़रमाए:—

"भक्ति और योग में कितना अन्तर है? भक्ति के सम्मुख ज्ञान–योग–साधन कुछ नहीं क्योंकि इन सब की पहुँच केवल बुद्धि तक है। बुद्धि से आगे का मार्ग वास्तविक प्रेम का मार्ग है जो सब से ऊँचा है क्योंकि बुद्धि से परे का स्थान आत्मा है। वहाँ तक प्रेम की पहुँच है बुद्धि की नहीं। विज्ञान ने जितनी भी वस्तुएँ बनाई हैं सब बुद्धि की सहायता से बनाई हैं। परन्तु इससे आगे की मंज़िल तक विज्ञान द्वारा कोई नहीं पहुँच सका। गुरुमुख व प्रेमी की सब कार्रवाई दिमाग़ व बुद्धि से परे की होती है अर्थात् वास्तविक प्रेम के मार्ग पर आरूढ़ होती है। वे सदा अपने इष्ट के प्रेम में मग्न रहते हैं। प्रेम-भक्ति व सेवा के बराबर कोई साधन नहीं। जब प्रेमी का लगाव अपने इष्टदेव सद्‌गुरु के शब्द में जुड़ गया तो शेष योग और वैराग्य में कौन सी कमी रह गई। शब्द से सुरति जुड़ने का नाम ही योग है। संसार से उपरामता ही वैराग्य है। सच्चा प्रेमी बिना किसी अन्य साधन के प्रेम द्वारा ही मंज़िल तक पहुँच जाता है क्योंकि प्रेमी का ध्यान अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के अतिरिक्त कहीं भी नहीं जाता। बस श्री आज्ञा, प्रेम और सेवा ही गुरु भक्ति के सर्वोत्तम साधन हैं। यही सुगमता से मंज़िल तक पहुँचाते हैं। अतः प्रेमी गुरुमुख अपने लक्ष्य की ओर ध्यान रखते हुए उस मंज़िल को प्राप्त करने के प्रयत्न में लगे रहें इसी में ही जीव का लाभ निहित है।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी सर्वदा कुछ दिन बाहर लगा कर अपने मुख्य केन्द्र श्री आनन्दपुर में ही कृपा फ़रमाते थे। इधर श्री आनन्दपुर में भी सेवा का कार्य बड़े ज़ोर से चल रहा था। आप कुछ दिन बाहर लगाकर पुनः प्रेमियों को कृतार्थ करने के लिए यहां पधारे। अब यहां पक्के मकान तैयार हो रहे थे। भूमि उपजाऊ बनाई जा रही थी।

एक पटवारी ज़मीन का निरीक्षण करने आया। उसने सरकारी नियमानुसार यह लिखना था कि कितनी भूमि बंजर है और कितनी उपजाऊ है। उस समय जिस भूमि का कार्य आरम्भ था दो चार दिनों के पश्चात् उसने उपज के योग्य बन जाना था। उसके विषय में पटवारी ने बंजर भूमि के नाम लिख दी। सेवकों ने भी श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! पटवारी तो इसे बंजर के नाम लिख रहा है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि उसे कह दो कि उस ज़मीन को उपजाऊ लिखे। सेवकों ने पटवारी को बहुत समझाया कि दो चार दिनों में यह उपजाऊ बन जाएगी अतः यहाँ उपजाऊ शब्द लिखो। पटवारी ने उत्तर दिया—कि यह ज़मीन तो पांच वर्ष में भी उपजाऊ बननी कठिन है। दो चार दिन का झूठ लिख दिया जा सकता है न कि इतना बड़ा झूठ! उसे क्या मालूम था कि यहां तो प्रकृति के स्वामी एक संकेत से जो कुछ करवाना चाहें करवा सकते हैं। उनके सामने यह साधारण सी बात है।

पटवारी यहाँ से चल दिया। जब दफ़्तर में जा कर फाईलों में नोट करने लगा तो वही भूमि 'उपजाऊ' शब्द में लिखी गई। उसने फाईल बन्द की और घर की राह ली। पाँच दिन पश्चात् जब उसने फाईल खोली तो अपनी कलम से 'उपजाऊ' शब्द लिखा हुआ पाया। वह हैरान था कि कैसे यह लिखा गया। पुनः वह श्री आनन्दपुर में उसी दिन आ गया। उस ज़मीन में बीज बोया देख कर उस के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने मन में समझ लिया कि यह महापुरुष मानवी शक्ति से परे हैं। उसने सेवकों के सम्मुख श्री दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने विनय स्वीकार कर उसे श्री दर्शन से कृतार्थ किया।

उसने अपनी भूल पर श्री चरणों में क्षमा के लिए याचना की । आपने फ़रमाया कि यहां तो कुदरत की सभी शक्तियां स्वयं काम कर रही हैं । आप तो किसी न किसी साधन से पथ-भटकी रूहों को मार्ग पर लगाना चाहते थे । उस पटवारी को इस साधन से श्री दर्शन का अवसर मिला और उसने नाम-उपदेश लेकर अपने जीवन का रुख़ सत्य-पथ की ओर मोड़ा ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रत्येक दिन नए कार्यक्रम, नई रचना, नई उमंगों व प्रेमियों में नया साहस भर कर नई युक्ति से भक्ति का अमृत पिलाते । कभी प्रेमियों को सैर के लिये तासबावली ले जाते, वहाँ अनुपम लीलाएँ करते तथा साथ में सेवा कार्य भी करवाते तो कभी चक दयालपुर में ले जाते और कभी श्री सद्गुरु देव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री वचन तथा मौज के अनुसार श्री आनन्दपुर में नव निर्माण की रूप रेखाओं को साकार रूप देने के लिये सेवा की धुन लगाते । प्रेमी तो प्रेम की डोरी में खिंचे चले आते । उन के लिये तो आप की मौज तथा श्री आज्ञा पर चलकर प्रसन्नता प्राप्त करना ही जीवन था । आप की मौज श्री आनन्दपुर में जिज्ञासुओं तथा दर्शनार्थ संगतों के भ्रमण के लिए 'श्री आनन्द भवन शिमला' बनाने की हुई । इस के साथ साथ पानी की कमी को पूरा करने के लिये बोरिंग (Tube Well) तथा अन्य कार्यों को पूरा करने की योजना बनाई । इधर महाराष्ट्र की धरती आप के श्री मृदुल चरण-स्पर्श करा कर पुण्यवती बनने के लिये पुकार रही थी। जिस ओर से प्रेम की आतुर पुकार आप को बुलाती आप उधर ही प्रेम के आगार बन कर उस करुण गुहार को सुनते ।

नया गांव

आप को परमार्थ लाभ कराने हेतु मानव-हृदय आर्त्त स्वर से पुकार रहे थे । प्रेमियों की विह्वल पुकार ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को विवशतापूर्वक खींचा । आप जहाँ भी कृपा फ़रमाते वह धरती तथा मिट्टी पवित्र बन जाती। मानव, दानव-वृत्तियों को त्याग कर देव-वृत्तियों को धारण कर लेते । माया व मन अपना सा मुँह

ले कर रह जाते। उस धरती के कण कण में हर्ष समा जाता। आप को बम्बई, पूना, शोलापुर, कोल्हापुर, कल्याण, औरंगाबाद, (महाराष्ट्र) के प्रेमी विनय कर रहे थे। वे इतनी दूर श्री आनन्दपुर में सुगमता से श्री दर्शन न कर सकते थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज भी यही थी कि भारत के कोने कोने में इस नाम की ज्योति की किरणें पहुँचें। अतएव भक्तों के आग्रह करने पर आप की मौज यह हुई कि महाराष्ट्र में भी कोई आश्रम बनाना चाहिये जहाँ आकर संगतें श्री दर्शन व सत्संग का लाभ उठा सकें।

आपने अपनी हार्दिक उमंग तथा दिव्य-दृष्टि से ज़िला पूना को सत्संग के लिये उचित क्षेत्र चुना और श्री मौज उठी कि इसके आस-पास की भूमि ख़रीदी जाए। यहीं पर ही आश्रम बनाया जाए क्योंकि यहाँ का जलवायु स्वास्थ्यप्रद है। आप ने अपने सेवकों महात्मा दर्शन प्रेमानन्द जी व महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को आज्ञा दी कि शोलापुर रोड पर किसी अच्छे स्थान को ढूंढो। आपस में परामर्श करो फिर हम वहाँ जाएँगे। स्वयं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पूना शहर में किसी स्थान पर विराजमान थे। सेवक जन श्री आज्ञा मान कर शोलापुर रोड की तरफ़ गये। रास्ते में ज़मीनें देखने लगे क्योंकि बहुत दूर तो जाना नहीं था। इसीलिये पूना से १८ मील की दूरी पर उरुली कंचन बसा हुआ है—वहीं ज़मीन देखने लगे। वहां पर इन सेवकों को एक भक्त सख़ावतमल मिल गया जो उपदेशी भी था और वहां के लोगों से परिचित भी। सख़ावतमल की सहायता से उरुली शहर से एक मील की दूरी पर पूना की ओर सड़क के समीप इन्हें एक भूमि जँच गई, वहां चार-पाँच कमरे भी बने हुए थे। उस भूमि के मालिक से मिल कर ज़मीन के विषय में सब कार्रवाई कर श्री चरणों में पहुँच कर सब वृत्तान्त निवेदित किया।

इसके पश्चात् आप सब सेवकों को साथ लेकर उस स्थान का निरीक्षण करने आये। आप ने फ़रमाया—"अभी तो यह स्थान कुछ समय के लिए काम आयेगा लेकिन जो वास्तविक स्थान हमें ज़रूरत है उसको अभी खोजना है।" महापुरुषों से क्या बात छिपी होती है। वे त्रिकालदर्शी होते हैं। अपने सेवकों की सेवा बनाने के लिए वे रचना रचा देते हैं। वे सेवकों को सेवा का अवसर प्रदान कर लोक

उपकार का कार्य करते हैं। इस से सेवकों की गढ़न भी होती रहती है और साथ साथ उनके मन की अवस्थाओं की जाँच भी होती रहती है। इसे ख़रीदने की आज्ञा प्रदान की ताकि यहां परमार्थ-कार्य आरम्भ तो हो जाये।

५ सितम्बर १६५२ को उरुली कंचन (दयाल धाम) का यह स्थान ख़रीद लिया गया। यहां पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी समय समय पर पधार कर सत्संग-उपदेश की पावन धारा बहाने लगे तथा साथ ही श्री दर्शन से जन-जन को कृतार्थ करने लगे। इसके साथ साथ सेवा का कार्य भी आरम्भ करवा दिया। बड़े बड़े कमरे निवास के लिए—भोजनशाला, सत्संग-हॉल, बग़ीचा व चार दीवारी बनवाई। वहां पर जो बावली खुदवाई उसका पानी डॉक्टरों ने परीक्षण कर पूरे इलाके भर के पानी से प्रथम स्तर का बताया। आप ने जहां भी श्री मौज अनुसार पानी निकलवाया वहाँ ही स्वादिष्ठ, मधुर जल ही निकला। जहां भी श्री मौज के अनुसार आप ने कार्य करवाये वहां से यदि अमृत का स्रोत भी बह जाता तो असम्भव नहीं था। यहाँ पर बम्बई, पूना, कल्याण व हैदराबाद से संगतें आ कर श्री दर्शन, सेवा तथा उपदेश का लाभ उठाने लगीं।

इस के साथ साथ आपकी उस वास्तविक स्थान की खोज के लिए भी मौज बनी हुई थी। उस का कार्य भी सेवकों से आरम्भ करवाया। आप ने सेवकों को इस क्षेत्र के आस पास का स्थान ढूंढने की आज्ञा दी। उन्होंने उरुली से १० मील की दूरी पर 'येवत' नामक शहर में कुछ ज़मीन खरीद कर वहां मकान, बावली और चारदीवारी पत्थरों की बनवाई। इसके बाद इसी उरुली स्थान से एक मील दूर कच्ची सड़क पर कोरे गांव (पूर्ण धाम) की कुछ ज़मीन ख़रीदी गई। इतनी ज़मीन खरीद लेने पर भी आप की मौज जिस स्थान को पवित्र करने की थी वह पूरी न हुई। आप ने फ़रमाया—"वह स्थान और है जहाँ हमारा प्रयोजन सिद्ध होगा। हमने सत्संग का बड़ा आश्रम बनाना है।" फिर सेवकों को स्पष्ट रूप से फ़रमाया—"आप कोरा गांव (जो कि छोटा स्थान ख़रीदा है) से लगभग एक मील दूर, नदी से आध फ़र्लांग इस ओर ज़मीन देखो, वह उपयुक्त स्थान रहेगा।"

सेवकों ने श्री आज्ञा पाकर उस ओर क़दम बढ़ाया, उस भूमि पर पहुँच गये जहाँ श्री मौज थी। किन्तु वहाँ की ज़मीन इन्हें पसन्द न आई। क्योंकि वह तो पथरीली ज़मीन—जहाँ दृष्टि डालो पत्थर ही पत्थर दिखाई देते थे। हरियाली के लिए नाम मात्र को भी कोई पेड़ या पौधा नहीं था। उन्होंने थोड़ी सी ज़मीन खोद कर देखी तो नीचे सब पत्थर ही पत्थर थे। उन्होंने परस्पर परामर्श किया कि यह ज़मीन तो बहुत ही पथरीली तथा ऊबड़-खाबड़ पत्थरों से भरी हुई है शायद हम भूल से यहाँ आ पहुँचे हैं। उन्होंने इस से आगे क़दम बढ़ाए, नदी के समीप उस से थोड़ी अच्छी ज़मीन देख कर उसे ख़रीदने का विचार किया। श्री चरणों में लौट कर भूमि का सब ब्योरा कह सुनाया।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भविष्यद् द्रष्टा, घट घट के ज्ञाता ही यह जानते थे कि कहां क्या करना है। फ़रमाया कि चलो हम साथ चल कर देखते हैं। रास्ता बैल गाड़ियों के जाने के योग्य भी न था फिर भी कार में विराजमान हो कर अनेक जम्प व कष्टों को सहते हुए उस भूमि पर आ पहुंचे जिसे सेवकों ने बेकार और पथरीली समझ कर उपयोगी न समझा था। आपने कार रुकवा ली और फ़रमाया—"यही भूमि हमारे काम की है। यही सत्संग का वास्तविक स्थान है। इसी को हमने महाराष्ट्र का मुख्य केन्द्र बनाना है। इसके लिए ही तो हमने इतने स्थान ख़रीदे हैं। यही वास्तविक स्थान है।" सभी सेवक चकित थे कि इसी स्थान को तो हमने बहुत सख़्त व बिगड़ा हुआ जान कर छोड़ दिया था। इन बड़े बड़े पत्थरों पर मकान कैसे बनेंगे। वे इसी सोच में ही थे कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि "बिगड़े हुओं को सुधारना ही सन्त महापुरुषों का ध्येय है।" तुम सरकारी कानून अनुसार इस भूमि को ख़रीद लो। आपने इस पथरीली भूमि के भाग्य स्वयं आकर जगाये। इस धरती ने आप के इस अत्यन्त उपकार के लिये कोटि कोटि धन्यवाद दिया तथा अपने भाग्यों पर इठलाने लगी कि अब तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी मुझे कभी कभी अवश्य श्री चरण-स्पर्श प्रदान कर कृतार्थ करते रहेंगे। सेवकों ने आज्ञा प्राप्त कर २४ जून १९५७ को इस स्थान को ख़रीद लिया। जिसका शुभ नाम उस समय 'नया गांव' था जो वर्तमान समय

में श्री प्रयागधाम के नाम से विख्यात है। आप स्वयं उरुली कंचन लौट आए।

उरुली कंचन (दयालधाम) का स्थान संगतों के लिए छोटा था क्योंकि आपके आगमन का समाचार शीघ्रातिशीघ्र महाराष्ट्र तथा आन्ध्र-प्रदेश के सब श्रद्धालुओं तक फैल गया। प्रेमी जिज्ञासु अधिकाधिक संख्या में श्री दर्शनों के लिए आने लगे। आप की मौज इस स्थान (नया गांव में) पर जल्दी विराजमान होने की थी। अतएव आप श्री आनन्दपुर से काफ़ी संख्या में सेवक साथ ले आते और सेवा कराते। इस बार भी जब श्री आनन्दपुर से उरुली कंचन पधारे तो ५०–६० महात्मा व भक्त बस में साथ ले आए।

एक दिन आप ने सब भक्तों व महात्मा जनों को फ़रमाया—"चलो आज तुम्हें एक नई जगह पर ले चलें जहाँ किसी का आना जाना नहीं है, जो एक स्वतन्त्र जगह है। आप सब लोग अपने अपने सेवा के औज़ार लेकर हमारे साथ चलो। आज हम आप को उस स्थान पर ले चलेंगे जहाँ सत्संग का (महाराष्ट्र का) मुख्य केन्द्र बनाना है। वहां आज सेवा का प्रारम्भ कर आश्रम का उद्घाटन करना है।" सब सेवक बड़ी उमंग के साथ सेवा के लिए तत्पर होकर हर्ष से कार के साथ साथ चल दिए। मार्ग में गाँव वाले उचक उचक कर देखते कि इस निर्जन स्थान की ओर यह दल कहाँ से आ गया। जिन गांव वालों ने इस सड़क पर कभी साइकिल चलती न देखी वे देख रहे थे कि कार बड़ी मस्ती से पत्थरों व ऊबड़-खाबड़ रास्ते को पार करती हुई आगे बढ़ रही है। साथ में महात्मा व भक्त जन हैं।

कार के मार्ग में बड़े बड़े पत्थर बार बार मार्ग रोक लेते। महात्मा व भक्त जन मिलकर उन पत्थरों को उलट पलट कर एक ओर कर देते तथा कार को मार्ग मिल जाता। ऐसा लगता था मानो यह पत्थर भी गुरुमुखों की तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की बाट जोह रहे थे कि कब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी हमें दर्शन दें और गुरुमुखों के हाथों हमारा भी उद्धार हो। गाँव वाले यह देख कर चकित हो रहे थे कि कैसे भक्त जन पत्थरों को एक तरफ़ सरका कर मार्ग बनाते जा रहे हैं। इतने भारी पत्थर जिन्हें बिना किसी यन्त्र के हिलाना भी कठिन था, भक्त जन एक साथ

मिलकर उन्हें उलट पलट कर एक ओर करते हुए आगे बढ़ते जा रहे थे। इसी प्रकार सच्चे प्रेमी सेवक श्री इष्टदेव मालिक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ 'नया गाँव' में एक पथरीली धरती पर पहुँचे।

यहाँ पहुँच कर आप ने कार को रुकवा लिया। यह धरती काले काले पत्थरों से भरी हुई थी। आप कार से नीचे उतरे और एक कुर्सी पर विराजमान हो गए। आस पास सेवकों को बैठा कर श्री वचन फ़रमाये—"यह सामने एकत्रित पत्थरों के समूह के आकार की एक पहाड़ी है। इन पत्थरों को जो कि बीच में पड़े हुए हैं, पहाड़ी के मध्य में दीवार के आकार में जोड़ने हैं। ध्यान रहे कि कोई भी पत्थर नीचे न जाने पाए। नीचे किसी को नहीं गिराना। ऊपर चढ़ाने का प्रयत्न करना है।" पुनः सेवकों को दो भागों में बाँट कर प्रसाद दिया और सेवा करने का आदेश दिया।

जब आस पास के लोगों ने यह सुना व देखा कि इन महात्मा लोगों ने यह ज़मीन ख़रीदी है जो पथरीली है यानि बेकार है, जिस ज़मीन को हमारे दादा परदादा ने भी कभी आँख उठा कर न देखा था वही इन्होंने ली है। वे परस्पर कहने लगे कि महात्मा लोग इस ज़मीन को कैसे आबाद करेंगे। थोड़ा ज़ोर लगा लें आख़िर तो ये भी छोड़ ही जाएँगे। उन को यह विदित न था कि उस के निर्माता स्वयं यहाँ विराजमान हैं। उन का संकेत ही सब कुछ कर सकता है। सेवकों में जो शक्ति भरी है वह क्या क्या कर दिखाएगी। उन्हें क्या मालूम कि यह सन्त जंगल में मंगल कर देने वाले हैं। बस कुछ ही दिनों में वह पहाड़ी के आकार में पत्थरों से ढकी हुई धरती दीवार के रूप में समतल खड़ी हो गई। एक वर्ष में जब कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी केवल दो-तीन बार एक-एक मास के लिये यहां पधारते थे, यहां मकान बन गए, बावली खोदी गई, पत्थरों की चारदीवारी (सीमा) भी बन गई। अब वे गांव के लोग जान गये कि यदि एक वर्ष में इतना कुछ हो गया तो इस से आगे न जाने क्या क्या हो जाएगा।

यहां एक बार निज मौज में आप ने फ़रमाया—"यह एक छोटा श्री आनन्दपुर है। यह लगभग श्री आनन्दपुर की तरह ही बनेगा। उदाहरणतया श्री मन्दिर, तालाब,

पार्क, बाग़-बग़ीचे, सत्संग हाल, संगतों के निवास की जगह तथा स्नान के लिये टैंक व लंगर आदि यहां होंगे।" बिजली व मोटरें भी आपने लगवाईं जिससे कि बग़ीचे व खेतों की सिंचाई की जा सके। पुनः आपने उरुली कंचन के स्थान को छोड़कर 'नया गांव' को सत्संग का केन्द्र बनाया। यहाँ पर श्री दर्शन के लिये संगतें आने लगीं। जब प्रथम बार नया गाँव में संगतें आईं तो आप ने श्री प्रवचन फ़रमाये:—

"अनुकूल भोजन के सेवन करने से ही शरीर स्वस्थ रह सकता है। भोजन सेहत के लिये खाया जाता है। प्रतिकूल भोजन शरीर को हानि पहुँचाता है। कोई भी वस्तु जो शरीर के अनुकूल नहीं, केवल जिह्वा के स्वाद के लिए खा ली गई हो उस से हानि ही हानि है लाभ कुछ नहीं होता।

इसी तरह कर्म भी जो मनुष्य करता है मनुष्य को सोचना चाहिये कि अमुक कर्म जो मैं कर रहा हूँ मेरे अनुकूल है या प्रतिकूल। यदि कर्म अनुकूल नहीं हैं तो वे भी नुकसान पहुँचा सकते हैं। जैसे प्रतिकूल भोजन मनुष्य को हानि पहुँचा सकता है। इसी तरह से प्रतिकूल कर्म भी मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं। यही कारण है कि यह जीव हर समय दुःखी और अशान्त रहता है। बुरे कर्म करने से यह जीव चौरासी लाख योनियाँ ख़रीद बैठता है। चौरासी लाख योनियाँ अपने किये कर्मों का फल हैं। अतः मनुष्य को पहले से ही सोच समझ कर कर्म करने चाहियें। ऐसे कर्म नहीं करने चाहियें जिस का परिणाम दुःख, परेशानी, कल्पना और अशान्ति है। फ़क़ीरों का कौल है:—

॥ शेयर ॥

अज़ मुकाफ़ाते-अमल ग़ाफ़िल मशौ ।
ग़न्दुम अज़ ग़न्दुम बिरौयद जौ ज़ि जौ ॥

सन्तों का कथन है कि ऐ मनुष्य! कर्मों के परिणाम से ग़ाफ़िल न हो। क्योंकि जैसे गेहूँ बोने से गेहूँ की फसल मिलती है और जौ के बोने से जौ की फसल पैदा होती है। इस तरह से जिस प्रकार के कर्म भी किए जाएँगे उसी के

अनुसार ही प्रकृति की ओर से फल मिलेगा। अच्छे कर्मों का फल अच्छा और बुरे कर्मों का फल दुःखदायी होगा। इसलिए सन्त महापुरुष पहले से ही जीव को समझाते व चेतावनी देते हैं कि ऐ मनुष्य! अब भी समय है कि तू सोच समझ कर कर्म कर ताकि बाद में तुझे पश्चात्ताप न करना पड़े।

अब प्रश्न यह है कि कौन से कर्म अच्छे हैं जिनके करने से मन में शान्ति पैदा होती है और कौन से कर्म मनुष्य को दुःखदायी बनाते हैं जिनके करने से चौरासी लाख योनियां भोगनी पड़ती हैं। सन्त महापुरुषों ने मनमति के अनुसार मोह-माया, अहन्ता, ईर्ष्या, तृष्णा व वासनाओं के ख़्यालों के निमित्त किए गए कर्म बुरे कर्म कहे हैं। इन के करने से मनुष्य के मन में मानसिक रोग (आधि, व्याधि, उपाधि) बढ़ जाते हैं और मनुष्य के विचारों में अशान्ति व क्लेश पैदा करते हैं। कलह-कल्पना बढ़ जाती है। मनुष्य हर समय चिन्ता की अग्नि में जलता रहता है। इसलिए ऐसे कर्मों के न करने का सन्त महापुरुष उपदेश देते हैं।

सन्त सद्गुरु की सेवा, सद्गुरु के चरणों का प्रेम, सत्संग, सब के प्रति हित की भावना यह अच्छे कर्म हैं। इन कर्मों के करने से मन में शान्ति व आनन्द की प्राप्ति होती है। इसलिये ऐ जीव! तुम ऐसे कर्म करो जिस से तुम्हारा यह जीवन सुख से व्यतीत हो और मृत्यु के बाद भी तुम्हारी रूह को नरक योनियां न भोगनी पड़ें। परन्तु मनुष्य अपनी समझ से अच्छे कर्म करने का मार्ग ढूँढ नहीं सकता। इसलिये समय के सन्त-सद्गुरु की संगति में ही इस जीव को भक्ति व ज्ञान का मार्ग मिल सकता है जिस पर आचरण करने से ही मनुष्य सुख व शान्ति प्राप्त कर सकता है।"

इस प्रकार से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सन् १९५७ से १९६४ मार्च तक समय समय पर यहाँ पधार कर इस धरती के भाग्य जगाए। प्रत्येक दशहरा पर्व यहाँ मनाया जाता था। इतने समय में भूमि का जितना सुधार हो सकता था करवाया। अत्यधिक समय संगतों, प्रेमियों एवं जिज्ञासुओं को परमार्थ लाभ कराने में लगाया। यहाँ पधारने से सम्पूर्ण महाराष्ट्र, हैदराबाद, कल्याण, बम्बई, पूना

आदि के प्रेमियों को अत्यधिक लाभ हुआ । उन्होंने सरलता से भक्ति पथ को अपनाकर आप के आनन्दमय श्री अमृत प्रवचनों का रस पान कर मानव जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया ।

सन् १९६३ में यहाँ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मौज के अनुसार अंगूरों के लिए गड्ढे खुदवाए । वे गड्ढे इतने पथरीले थे कि जिससे यह आशा ही न की जा सकती थी कि पौधे यहाँ फल दे सकेंगे । बाहर खेतों से मिट्टी व खाद मंगवा कर इन गड्ढों में डलवाई गई । फिर अक्टूबर १९६३ में ही एक दो पौधे निज कर कमलों से लगा कर 'अंगूर उद्यान' का उद्घाटन किया । इस अंगूर आरोपण के समय आपने गुरु-सेवा की विशेषता दर्शायी । कुछ विद्यार्थी भी उस समय सन् १९६३ में श्री आनन्दपुर से 'नया गांव' में श्री दर्शन की इच्छा से गये हुये थे । वहाँ पर आप की मौज अंगूरों का कार्य करने की थी । वे विद्यार्थी सेवा की ओर कुछ कम ख़्याल देते थे । आप ने फ़रमाया कि "गुरु-सेवा जो कि अत्यन्त मौज में तरंगित हो, वे हीरे लाल व जवाहरात हैं, जिन्हें किसी भी मूल्य पर नहीं ख़रीदा जा सकता । हाथ में आया हुआ समय खो कर पछताना पड़ता है । सेवा करने के लिए आए हो, सेवा करो । यह विद्या पुनः वापिस जाकर पढ़ लेना । सन्त महापुरुषों की शरण में जाकर उस सच्ची विद्या को लगन से प्राप्त कर लेना ही उचित है । अतएव इस समय में सेवा रूपी हीरे जवाहर एकत्र कर लो ।" उस समय मिट्टी से ट्रक भरने की सेवा चल रही थी । बाकी सेवक २० ट्रक मिट्टी प्रतिदिन भरा करते थे । उस दिन चार विद्यार्थियों के मिलने पर श्री आज्ञा हुई कि तीस ट्रक मिट्टी भर कर छुट्टी करनी है ।

श्री आज्ञा पाते ही सभी सेवक प्राणपन से जुट गये । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी 'नया गाँव' टपरा (जिसे आजकल छतरी कहते हैं) में विराजमान थे । प्रेमी पूर्ण उत्साह से सेवा कर रहे थे । दोपहर को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रसाद देकर विश्राम गृह लौट गये । सेवक रात्रि के आठ बजे तक सेवा में जुटे रहे परन्तु ट्रक अभी २३ ही भर पाए थे । सेवकों के दिल में यह विचार था कि तीस ट्रक पूरे करने ही हैं । श्री दर्शन खुलने का समय हो गया । परन्तु कोई भी अपने

काम से तिल भर न हिला।

कुछ अन्य सेवा पर काम करने वाले सेवक अपनी सेवा समाप्त कर श्री दर्शन के लिए तैयार होकर घर में बैठे थे। महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी भी 'नया गांव' में मौजूद थे। उन्होंने पहले तो ट्रक भरने वाले प्रेमियों को कहा कि अब छुट्टी करो, श्री दर्शन का समय हो गया है। परन्तु सब ने यही उत्तर दिया कि रात का चाहे एक बज जाए हम तो श्री वचन पूरे करके ही छुट्टी करेंगे। महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी सब के कमरों में गए (जो प्रेमी श्री दर्शन के लिए तैयार बैठे थे उन के पास) और कहा कि देखो कैसो अमूल्य दात लुटाई जा रही है और आप आराम से घर में बैठे हो, चलो सेवा करो। सब अन्य प्रेमी भी वहाँ उपस्थित हो गए।

चाँदनी रात थी, चाँद भी इस सेवा में संलग्न हो गया कि कहीं अन्धकार हो जाने पर सेवा में बाधा न आए। एक ओर से ट्रक, दूसरी ओर से ट्राली, तीसरी ओर से डम्पर, इस प्रकार के हार्नों ने आकाश को एक नये जयघोषों से गुंजित कर दिया। ऐसा लगता था मानो गगनमण्डल में सितारे तथा देवतागण भी इस सेवा में उपस्थित होकर लाभ उठा रहे हैं। ऐसी भीड़ हो गई कि एक मिट्टी की डलिया को हाथ लगाने को भी विनय करनी पड़ी। कुछ समय में सात ट्रक भी भर गये और सब काम पूरा हो गया। सभी जयकारों से नभ को गुंजाते हुये श्री दर्शन के लिये चल दिये।

कितनी विचित्र लीला है कि जिस प्रभु की मिलन की लगन में हज़ारों वर्ष की तपस्या भी फलीभूत होनी कठिन होती है वही भक्त-वत्सल कुल मालिक प्रेमियों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब प्रेमी आएँ और श्री दर्शन खुलें। प्रेमी, गुरुमुख श्री दर्शन के लिये सीधा ही श्री दर्शन हॉल में पहुँचे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भोजन लंगर से मंगवा कर प्रतीक्षा कर रहे थे। पहुँचते ही पहले नर लीला के रूप में फ़रमाया कि इतनी देर क्यों लगा दी। फिर सब को अपने सम्मुख खाना खिलाया। इसके बाद श्री दर्शन, सत्संग, भजन आदि नित्य नियम अनुसार

हुए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"हिम्मते मर्दां, मददे खुदा। जब इन्सान हौंसला बाँध कर काम करता है तो कुदरत उसकी मदद करती है। फिर आप तो ठहरे गुरुमुख, आप यदि सेवा में पूर्ण रुचि से जुट जाओ तो दैवी शक्तियां स्वयं तुम्हारी मदद करने के लिये आएँगी।"

इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मिट्टी तथा खाद डलवाकर ज़मीन में अँगूर लगवाए। उन्होंने जो कुछ किया सब हम जीवों की ख़ातिर किया। आप उन विद्यार्थियों को फ़रमाया करते-(निज कर कमलों में नाशपातियों के गुच्छे बनाकर उन्हें दिखाते) "इस तरह अँगूरों के गुच्छे नीचे की ओर लटकेंगे। अब आप सेवा कर रहे हो फिर जब यहां आओगे तो तुम्हारी सेवा फल लाएगी। ये गुच्छे भी इसी तरह लटकेंगे। यहाँ इतने अँगूर होंगे कि सँभाले भी न जा सकेंगे। फिर तुम खूब अँगूर खाओगे।" अर्थात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी दर्शा रहे थे कि किए हुए कर्मों का फल मिलता है। यदि सेवा करोगे तो अच्छा फल मिलेगा। यदि कुछ बोया ही नहीं तो काटना ही क्या है। आज उन्हीं फलती फूलती हुई बेलों को हम अपनी आँखों के सम्मुख देख रहे हैं।

श्री आनन्दपुर का कार्य विस्तृत होने के कारण आप 'नया गाँव' को अधिक उन्नति न दे सके। इसीलिये आप द्वारा बनाई हुई रूपरेखा को श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी ने पूरा करने का प्रयत्न किया और आज भी महान् विभूति के रूप में श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी इस कार्य की पूर्ति कर रहे हैं।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि समय समय पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) श्री सन्त नगर, नया गाँव, रोशनपुर तथा अन्य स्थानों को कृतार्थ करते थे परन्तु मुख्य केन्द्र श्री आनन्दपुर ही था। जब प्रत्येक स्थान पर कुछ दिन के लिए सत्संग-नाम-उपदेश की पावन धारा बहाने जाते तो पुनः श्री आनन्दपुर ही लौट आते। श्री सन्तनगर अथवा नया गांव या अन्य किसी स्थान को पवित्र करने के लिये जाना होता तो विशेष पर्व श्री आनन्दपुर में ही मनाने के पश्चात् जाते। केवल दशहरा पर्व ही नया गांव में मनाया जाता। यहाँ

श्री सन्तनगर अथवा नया गाँव की लीला व श्री प्रवचनों को उस स्थान के आदि से अन्त तक एक ही बार दिया गया है क्योंकि प्रत्येक वर्ष में दो बार सन्त नगर और दो बार नया गाँव (उरुली कंचन) में विराजमान होते। बार बार लिखने के स्थान पर एक ही बार पूर्ण विवरण दिया गया है।

एक बार श्री प्रवचन हुए कि "आप सब गुरुमुखों का नाता जन्म-जन्मान्तरों से चला आता है। आप सभी गुरुमुख त्रेता में भी थे और द्वापर में भी। तभी तो उस पुरानी शक्ति को लेकर आप गुरु-सेवा के मग पर दृढ़ पग से चल रहे हो।" दो चार नये जिज्ञासु भी मध्य में बैठे थे। उन के दिल में विचार आया कि काम तो सेवक स्वयं करते हैं तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कैसे शक्ति प्रदान करते हैं। मन में विचार उठा ही था कि श्री अन्तर्यामी भगवान् ने सब सेवकों को (उन के सहित) जिस स्थान का पहले वर्णन हो चुका है कि उरुली कंचन जहाँ अपना आश्रम स्थापित किया था वहां से दस मील की दूरी पर 'येवत' नामक स्थान ख़रीदा था; यह स्थान एक पहाड़ी के आकार का था, अपनी मौज से इस पहाड़ी के पत्थर जहां तहां से उठा कर अपनी ज़मीन के चारों ओर चार दीवारी बनाने का आदेश दे कर भेज दिया। ये सब सेवक सुबह बस पर सवार होकर वहाँ जाते। दिन भर सेवा करते और रात्रि को बस पर पुनः उरुली कंचन आ जाते। यह उन का नित्य प्रति का नियम था।

इन सेवकों ने 'येवत' पहुँच कर जब सेवा का कार्य आरम्भ किया तो पूरे दिन में केवल दो तीन पत्थर दीवार तक लगा पाए। ये पत्थर इतने भारी, लम्बे चौड़े थे जो हिलने का नाम ही न लेते थे; परन्तु गुरुमुख हिम्मत न हारते हुए श्री आज्ञा का ध्यान रख सेवा में जुटे रहते। कुछ पहले ऐसा काम करने का अभ्यास भी न था। दूसरे दिन पूरे दिन में चार-पांच पत्थर जोड़े। इस प्रकार आठ-दस दिन के पश्चात् केवल दस पन्द्रह पत्थर दिन में दीवार तक जोड़े जा सके।

एक दिन सायंकाल के समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कार में विराजमान होकर येवत पधारे और एक पत्थर पर विराजमान हो गए। श्री प्रवचन किए कि

क्या बात है ? काम बहुत ढीला है। क्या कारण है कि अभी तक बस ज़रा सा काम हुआ है। सेवकों ने विनय की–प्रभो ! पत्थर बहुत भारी हैं। बड़ी कठिनता से दिन भर में ९–१० पत्थर जोड़े जाते हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया–"वाह ! ये पत्थर तो बेचारे कई जन्मों से आस लगाए प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब गुरुमुखों के हाथ लगें और हमारा कल्याण हो। ये तो आप ही आप जाते हैं। केवल संकेत करने की आवश्यकता है।" जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इतने वचन फ़रमाए तो पड़े हुए वज़नदार पत्थर गुरुमुखों के हाथ लगते ही तेज़ी से दीवार की ओर बढ़ने लगे। उन जिज्ञासुओं ने जब अपनी यह अद्भुत दशा देखी कि जिन पत्थरों को सभी प्रेमी मिल कर बड़ी कठिनाई से हिलाते थे, वही पत्थर दो चार प्रेमी मिलकर आसानी से ले जाने लगे। फलस्वरूप दो घण्टे में ७० पत्थर दीवार में जोड़ दिए गए, फिर भी थकावट का नाम न था। वे जिज्ञासु इस आलौकिक शक्ति को देख कर उस दिन से अधिक श्रद्धा व विश्वास से सेवा करने लगे। उन्होंने कुछ गुरुमुखों से भी अपने मन की शंका का वर्णन किया तथा बताया कि शायद श्री सद्गुरुदेव जी ने हमारे लिए ही यह लीला रची होगी। वास्तव में वे पत्थर ही यही बाट जोह रहे थे कि कब प्रभु आएं और उन्हें श्री दर्शन देकर हिलने की सामर्थ्य प्रदान करें।

यह था उनके वचनों और कृपा-दृष्टि का प्रताप। उन की अनुपम लीलाओं का कहाँ तक वर्णन किया जा सकता है। जितना करो उतना ही कम है।

सन् १९५३–१९५४–१९५५ के वर्ष तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौजों का तूफ़ान संग लाए। जैसे यह समय श्री आनन्दपुर को पावन तीर्थ धाम बनाने तथा श्री आनन्दपुर दरबार के प्रत्येक कण कण का साज सँवारने व जन जन तक इस पुष्प की सुगन्धि फैलाने की लहरें साथ लाया हो। श्री आनन्दपुर दरबार से प्रेम-भक्ति तथा आत्मज्ञान की जो किरणें फूटीं वे प्रेमियों गुरुमुखों के हृदय में जगमगा उठीं। इस दिव्य ज्योति का प्रकाश घट घट में पहुंचाने के लिये प्रेमियों, गुरुमुखों तथा सत्संगियों ने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो ! जो जो भी श्री सद्-प्रवचन आप जन कल्याण हेतु पर्व पर या समय समय पर श्री मुख से

फ़रमाते हैं वे अमर वचन ऐसी दिव्य ज्योति हैं जो दिल को छू कर मन के सभी शत्रुओं को दूर भगा कर हृदय को शुद्ध कर देते हैं। इस ज्योति को घट घट में जगाने के लिये ऐसा उपाय किया जाए जिससे कोई भी प्राणी इस अमृत रस के पीने से वंचित न रह जाए। प्रेमियों और जिज्ञासुओं की प्यास तो इस से कहीं अधिक बढ़ी हुई है। वे त्यौहार पर कई संसारी झंझटों से श्री दर्शन पर नहीं आ सकते तो श्री अमृत-प्रवचन सुनने के लिए लालायित रहते हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहाँ छः मास अथवा एक वर्ष से पहले सत्संग उपदेश के लिये किसी प्रचारक महात्मा का जाना नहीं हो सकता। ऐसा कोई साधन हो जिससे घर बैठे उन्हें श्री अमृत वचन तथा अन्य भक्ति के मुक्ताकण मिल सकें।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस बढ़ती हुई मांग को स्वीकार किया। प्रेम-भक्ति-ज्ञान-वैराग्य तथा त्याग के आचरण रूपी जीवन का निर्माण करने हेतु इन्हीं भावनाओं तथा विचारों से युक्त एक मासिक-पत्रिका का प्रबन्ध करवाया, जिसके पढ़ने तथा श्रवण करने से हृदय में ज्ञान का प्रकाश होने लगता है। यह प्रकाश या रोशनी श्री दर्शन करने व श्री अमृत तुल्य वचनों को सुनने के लिए उत्साह भर देती है। जब सन्त महापुरुषों की संगति मिल जाती है तो काम-क्रोध-अंहकार आदिक शत्रु इस रोशनी को पाकर स्वयं भाग जाते हैं।

इस मासिक-पत्रिका का शुभ नाम श्री मुख से 'आनन्द-सन्देश' फ़रमाया। १ फ़रवरी १९५३ को एक मासिक-पत्रिका निकालने की आज्ञा प्रदान की। १३ अप्रैल १९५३ वैशाखी के शुभ पर्व पर मासिक-पत्रिका 'आनन्द-सन्देश' प्रकाशित होने की खुश खबरी सर्व संगत को सुनाई गई। सब संगत ने इस हर्ष में जयकारों से हाल को गुँजा दिया। आनन्द-सन्देश को उर्दू, हिन्दी व सिन्धी तीन भाषाओं में छपवाने का प्रबन्ध किया गया। इसका प्रथम संस्करण मई १९५३ में छपकर तैयार हो गया और जन जन को आत्म-ज्ञान की गंगा में स्नान कराने के लिये वह घर घर पहुँच गया। नाम अनुरूप गुणों को लेकर वर्तमान समय तक यह उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होकर सर्व साधारण को कृतार्थ कर रहा है।

इस में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी, श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी एवं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी के समय समय पर होने वाले श्री अमृत प्रवचन तथा अन्य महात्माओं के भक्ति-ज्ञान-वैराग्य से युक्त विचारों को एकत्रित कर कथा, लेख, भजन, श्री अमर वाणी आदि विभिन्न रूपों में प्रकट किया जाता है, जिसे पढ़ कर प्रेमियों को असीम लाभ हुआ और हो रहा है। इसे ज्योति स्तम्भ (Light House) कहा जाए तो अनुपयुक्त न होगा। यह पूर्ण सन्त महापुरुषों के मिलाप का एक साधन है। साधक के लिए पथ-प्रदर्शक है। इसी से जीवन के आनन्द रूपी संदेश को प्राप्त कर सर्व साधारण भी लाभान्वित हो रहे हैं।

श्री आनन्दपुर दरबार की संगतें व अन्य जीवों को भारत में तथा विदेशों में जहां जहां भी भक्ति के जिज्ञासु थे और हैं, सब को यह आनन्दमय सन्देश पहुँचाता रहा और पहुँचा रहा है। इसने जीवन में नया रंग, नई उमंग, नया साहस, भक्ति की प्रतिभाशाली तरंग तरंगित करने का कार्य पूर्ण रूप से निभाया और निभा रहा है। इस मासिक पत्र के प्रकाशन के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने आनन्द सन्देश के लिये श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम में 'आनन्द प्रिंटिंग प्रेस' स्थापित करवा दिया। श्री आनन्द सन्देश के साथ साथ धार्मिक पुस्तकें भी अर्थात् भक्ति सागर, भक्ति दीपक, सार उपदेश, आनन्द रामायण आदि अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित की गईं। प्रेमियों की माँग को पूरा करने के लिए यथासम्भव नई धार्मिक पुस्तकों को वर्त्तमान समय तक पूरा किया जा रहा है। इसके पश्चात् मई सन् १९७३ में श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी ने विदेश में निवास करने वाले गुरुमुखों की माँग को पूर्ण करने के लिए (SPIRITUAL BLISS) अंग्रेज़ी भाषा में मासिक पत्रिका का प्रकाशन करवाया जिससे भारत तथा विदेश में रहने वाले गुरुमुखों को आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हो रहा है। इसके साथ साथ इंग्लिश पुस्तकों का प्रकाशन भी हुआ है। अब इस आनन्द प्रिंटिंग प्रेस में श्री आनन्दपुर दरबार की ओर से हिन्दी, सिन्धी, इंग्लिश तथा गुरुमुखी भाषा में धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन होता है; जिस को पढ़

कर जन साधारण भी लाभ उठा रहे हैं।

इसी प्रकार आप श्री आनन्दपुर के कार्य की देख रेख करते हुए अन्य स्थानों पर जन-कल्याण हेतु जाते थे। एक बार १९५३ में आप राजस्थान की ओर पधारे। स्थान छबड़ा गुगर, कोटा से होते हुए अजमेर पहुँचे। वहाँ जयपुर की संगत ने विनय की कि श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी जयपुर को भी पवित्र करने की कृपा करें। उन लोगों की नम्रता, श्रद्धा व प्रेम को देख कर कृपालु भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। आप ने दो दिन पश्चात् जयपुर पधारने का उन्हें वचन दिया।

अब जयपुर की संगत व महात्मा परम विवेकानन्द जो परस्पर सलाह करने लगे कि श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के ठहरने के लिए एक ऐसा विशाल भवन होना चाहिए जहाँ जयपुर की संगत आकर श्री दर्शन का लाभ उठा सके। उन्होंने अत्यधिक देखभाल की। ढूंढने पर पता चला कि एक सेठ ने एक नई कोठी बनवाई है परन्तु वह सेठ श्रद्धालु न था। जयपुर के एक भक्त सत्संगी की उससे जान पहचान थी। उसने सेठ जी के साथ चर्चा की कि हमारे श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी दो तीन दिन के लिए जयपुर पधार रहे हैं। अगर आप अपनी नई कोठी उनके ठहरने के लिये दे देवें तो बहुत अच्छा होगा। सेठ जी ने कहा कि अभी तो मैंने उसका उद्‌घाटन ही नहीं करवाया। भक्तों ने कहा कि तीन चार दिन बाद करवा लेना। उन के आग्रह पर सेठ जी ने कोठी भक्त जनों को सौंप दी।

उसी दिन सायं समय आपने जयपुर में कृपा की। महात्मा परम विवेकानन्द जी ने अभिवादन के रूप में काफ़ी तैयारियां की हुई थीं। सेठ जी से ली हुई कोठी में जाकर कृपा की। दिन रात सत्संग की पावन धारा बहाने लगे। उसी दिन रात्रि समय भक्त लोग उस सेठ को भी श्री दर्शन के लिये बुला कर ले आये। आप के सम्मुख आते ही उसने अपनी तन-वदन की सुधि ही खो दी। श्री दर्शन ने उसे ऐसा मतवाला बना दिया कि वह श्री छवि को देखते ही देखते समस्त वृत्तियों को खो बैठा। आप उस समय प्रवचन फ़रमा रहे थे—"इन्सान माया का परवाना बना हुआ है। यदि कभी इस माया को पीठ दे तो पता चले कि यह

छाया की भाँति उसके पीछे कैसे दौड़ती है। इन मायावी सामानों में जीव ने सुरति इस क़दर फँसा दी है कि इसे इसके परिणाम का पता ही नहीं कि क्या होगा ? धन में सुरति लगाने से अन्त में सर्प की योनि मिलती है। मकान में सुरति फँसाने से भूत-प्रेत की योनि प्राप्त होगी। यदि सुरति पुत्र में अटकी रह जायेगी तो सूअर का जन्म मिलेगा। इसी प्रकार अन्यान्य योनियों का जीव शिकार बन कर चौरासी का चक्र ख़रीद लेता है। यदि यही सुरति सन्त महापुरुषों से दिये हुए सच्चे नाम से जोड़ी जाये तो अन्तिम समय यह सुरति प्रभु के धाम में पहुँचा देगी जहां पुनः आवागवन के चक्र से छुटकारा मिल जाता है। परन्तु जीव के लिये स्वयं ऐसा काम करना कठिन है। सन्त महापुरुषों की संगति से ही जीव को ऐसा ज्ञान मिलता है। सन्त महापुरुष जीव को सदा सावधान करते हैं वचनामृत द्वारा।

वैसे तो जिस धरती पर सन्त महापुरुष स्वयं कृपा करते हैं उस धरती का वातावरण निर्मल बन जाता है। उनके पावन वचनामृत श्रवण करने से मन की चंचल वृत्तियां शिथिल हो जाती हैं। मन स्वयं भक्ति मार्ग को अपना लेता है। सन्त महापुरुषों की संगति ही जीव के विचारों में परिवर्तन ला सकती है। अतः सन्त महापुरुषों का समागम अत्यावश्यक है। मनुष्य सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त कर अपना कल्याण करे।"

यह वचन सेठ जी के मन पर बाण की तरह लगे। उस ने सोचा कि शायद यह महापुरुष मेरे लिये ही वचन फ़रमा रहे हैं। सन्त महापुरुष तो स्वाभाविक ही ऐसे वचन फ़रमाते हैं जो जीव के संकल्प-विकल्पों को मिटा दें। सत्संग समाप्त हुआ। सब संगत अपने अपने घर लौट गई किन्तु सेठ जी वहीं बैठे रहे। सेठ जी के जन्म-जन्मान्तरों के कलुष जैसे एक पल में ही धुल गये। उसे अपने दिल रूपी दर्पण में जैसे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी दिखाई देने लगे।

संगत के जाने के बाद उसने आप के सुकोमल चरणों में वन्दना कर अपने अपराधों की क्षमा मांगी तथा विनय की "मैंने यहां के भक्तों से कहा था कि अभी

मैंने अपनी कोठी का उद्घाटन नहीं करवाया। बिना उद्घाटन के कोठी तुम्हें कैसे दे दूँ। अब मैं अपना विचार प्रकट करता हूँ कि जिन महापुरुषों की वाणियों का पाठ करवा कर मैंने मुहूर्त्त करवाना था वे महापुरुष (आप) साक्षात् हमारे घर में पधारे हैं अथवा जिन देवताओं की मूर्तियाँ रख कर पूजन करना था उन देवताओं के देव ने नर-रूप धारण कर यहाँ कृपा फ़रमाई है। हम जैसा भाग्यशाली कौन होगा? क्यों कि जिन के श्री दर्शन के लिए हज़ारों मीलों से प्रेमी आते हैं उनको भी एकान्त में इतना समय आप के श्री दर्शन करने का शायद ही नसीब होता होगा। आपके श्री दर्शन तथा अमृत-वचनों ने मेरा कठोर हृदय मोम की तरह नर्म कर दिया है। मैं किस मुख से आपकी उपमा का वर्णन करूँ। आप साक्षात् भगवान् हैं। हम जैसे जीवों को आप दिव्य दृष्टि देकर सत् और असत् की परख कराने आए हैं। मैं अपने मन की अवस्था को बदला हुआ देखकर स्वयं हैरान हूँ कि मेरे विचारों में धरती और आकाश का सा अन्तर इतनी शीघ्रता से कैसे आ गया परन्तु आप दयालु हैं। आप अपनी कृपा-दृष्टि से जीव को भक्ति रूपी धन से मालामाल कर सकते हैं। मैंने गुरुवाणी में पढ़ा है:—

साचे साहिबा किआ नाहि घरि तेरै ॥
घरि त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥

यह बात आज प्रत्यक्ष मैंने देख ली। मेरी जिह्वा में यह शक्ति नहीं कि आप की महिमा का गायन कर सकूँ। धन्य हैं गुरुदेव। उसने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से नाम-दीक्षा ली और कृतकृत्य हो गया।

अब उसने अपने सम्बन्धियों से भी यह कह दिया कि मेरी कोठी का उद्घाटन बड़ी धूम धाम से हुआ है। उसने फिर उस कोठी का उद्घाटन कभी न करवाया। इतना प्रताप है एक पल की श्रेष्ठ संगति का। यदि जीव निरन्तर सन्त महापुरुषों की संगति करता रहे तो कितना लाभ होगा, इसका अनुमान कहां लगाया जा सकता है? जब आप नित्य-प्रति पावन सत्संग की गंगा में सर्वसाधारण

को मज्जन करवा कर चार पाँच दिन के पश्चात् श्री आनन्दपुर लौटने लगे तो सेठ जी ने एक दो दिन और रहने का आग्रह किया। यह विनय भी की—दीनदयाल ! हम जीवों के अवगुणों को न निहारते हुए इस भवन को अपना ही समझ कर यहां पधारने की कृपा करते रहिएगा। यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। आप उस स्थान को कृतार्थ कर और आशिष से उसके दामन को भर कर श्री आनन्दपुर में पधारे ।

जब जब भी आप कुछ दिनों के लिये जन कल्याण हेतु बाहर जाते तो श्री आनन्दपुर के प्रेमी, शरणागत उन दिनों आपके वचनानुसार सेवा में तथा आप की याद में एक एक क्षण चकोर को न्याईं बाट जोहने में लगाते। जब आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) की कार सुरीले मनहरण हॉर्न करती हुई वापिस आती तो श्री आनन्दपुर की धरती का कण कण और प्रेमियों के हृदय शरद्-पूर्णिमा के विधु को पाकर कैरव कुसुम की तरह खिल उठते । कार के हॉर्न ज़मीन व आसमान को बाँसुरी की धुन की न्याईं गुँजा देते। प्रेम दीवाने उस प्रेम की मधुरिमा को पाकर पुनः मस्ती में झूम उठते। श्री आनन्दपुर तो मानो यह चाहता कि मेरा एक एक कण श्री करकमलों से निर्मित हो ताकि मैं भी अपने सौभाग्य पर इठलाऊँ ।

श्री आनन्दपुर में शरणागतों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। जितनी शरणागतों की संख्या बढ़ती उतना ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अत्यन्त प्रसन्न होते क्योंकि उन की जन्मों से बिछुड़ी हुई रूहें अपने धाम में पहुंच रही थीं, जिन के लिये वे सब रचनाएँ रच रहे थे। वे उच्च संस्कारी तथा आतुर प्रेमियों को अर्थात् रूहों को जो आप के श्री चरणों में शरणागत होना चाहती थीं या भक्ति की अभिलाषी थीं उन्हें निज स्थान पर पहुँचा हुआ देख तथा अपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री वचनों को पूरा होता देखकर प्रसन्न हो रहे थे। अत्यधिक प्रसन्नता आपको इसलिये हुई कि आप जिस कार्य को पूरा करना चाहते थे वह सम्पूर्ण हो रहा था, आपने जैसे अपने ध्येय के पूरक को प्राप्त कर लिया। इस का विवरण इस प्रकार है:—

श्री पंचम पादशाही जी महाराज का श्री आनन्दपुर में शुभ आगमन

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी बचपन से ही सन्त महात्माओं की संगति में प्रसन्न रहते थे। सन्त महात्माओं की सेवा बड़े हित चित्त से करते थे। आप ग्राम रायपुरकलां, तहसील अजनाला, ज़िला अमृतसर (पंजाब) में रहते थे। एक उच्च धन-धान्य सम्पन्न कुल में अवतरित हुए। आप एक बार चैत्र मास की संक्रांति मार्च १६४१ में बदोमली गांव में एक मित्र के घर गये। उसने कहा कि आज हमने सन्त आश्रम पर जाना है। आप भी उसके साथ हो लिये और गंधोवाल ज़िला शेखूपुरा पहुँचे। नियति ने ऐसा संयोग बनाया कि गंधोवाल में महात्मा दयानन्द जी व महात्मा श्रद्धानन्द जी उच्चकोटि की भक्ति-भावनाओं से सम्पन्न श्री आनन्दपुर दरबार की ओर से सत्संग-सेवा-प्रचार कार्य कर रहे थे। आपने उनकी संगति में अपूर्व शान्ति तथा आनन्द का अनुभव प्राप्त किया तथा पन्द्रह वर्ष की आयु में उनसे नाम-दीक्षा ले ली।

अब आप हर संक्रान्ति को गंधोवाल आश्रम पर जाते तथा अपने भक्ति पूर्ण स्वभाव से सेवा करते। सन् १६४२ में वैशाखी के पर्व पर आप श्री आनन्दपुर श्री दर्शन के लिये पहुँचे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने आपको निहारते ही पहचान लिया तथा अपने ध्येय की पूर्ति के हर्ष में प्रसन्न हो उठे। उन्होंने आपको बुलाकर अपने सम्मुख बिठाकर पुनः भजनाभ्यास की समस्त युक्तियां अर्थात् सहज-समाधि, अजपा-जाप व अनाहत-शब्द (सुरत-शब्द-योग) की युक्तियां बताईं। आप श्री दर्शन करते ही मस्ती में झूम उठे। जैसे पूर्णिमा के दिन समुद्र में ज्वार भाटा आता है, समुद्र की लहरें आकाश को स्पर्श करती हुई दिखाई देती हैं, ऐसे ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) की प्रसन्नता रूपी समुद्र की लहरें तरंगित होने लगीं। जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिल कर विश्राम पाती हैं इसी प्रकार श्री पंचम पादशाही जी महाराज ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी

(श्री तीसरी पादशाही जी) को प्राप्त कर अपूर्व आनन्द अनुभव किया।

इसके पश्चात् जब आप रायपुर लौटे तो हर संक्रांति पर तथा जब भी पाठशाला से छुट्टियां होतीं तब सेवा की उमंग लिए गंधोवाल आश्रम में पहुँच जाते और हित चित्त से सेवा कर के नियम पूर्वक अभ्यास करते। इस प्रकार श्री दर्शन की चाह आपको हर समय उन्मत्त बनाये रखती।

प्रथम आप एक वर्ष में एक बार पुनः दो बार इस प्रकार से हर पर्व पर श्री आनन्दपुर में आने लगे। सन् १९४४ में आपने मैट्रिक पास कर ली। आप का दिल दुनिया के कार्य-व्यवहार से उपराम रहता था। आप जब भी श्री आनन्दपुर में आते तो एक पर्व से दूसरे पर्व तक कभी-कभी दो दो पर्व भी यहां सेवा में व्यतीत कर देते। आपके हृदय में शरणागत होने की लगन लगी हुई थी, किन्तु घर में सब बहन भाइयों से आयु में छोटे होने के कारण आप से सब स्नेह करते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि आप इतनी ऐश्वर्य-सम्पदा छोड़कर साधु (विरक्त) बन जाएँ। उन का जहां तक प्रयत्न था कि आप घर पर ही रह कर भक्ति करें। आपके पिता जी साधु वृत्ति के थे। वैराग्य, त्याग तथा संसार से उपरामता उन के जीवन का मुख्य अंग था। श्री आनन्दपुर में अनन्य श्रद्धा तथा प्रेम से श्री दर्शन के लिये भी आते थे। अपनी वृत्ति के अनुसार वे एकान्त में रहने के लिए हरिद्वार में साधु बन गए थे। आप के बड़े भाई साहिब जी ने देश विभाजन होने पर आपको कलकत्ता में बुला लिया और दुकान का कार्य करने के लिए विवश किया।

सन् १९४७ से १९५३ तक आप कलकत्ता में दुकान का कार्य करते रहे। इसी मध्य आप कई बार श्री दर्शन के लिए श्री आनन्दपुर में आए और दो तीन बार श्री चरणों में शरणागति के लिए विनय की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि श्री आनन्दपुर आपका ही है, अभी कुछ समय बाहर रह कर ही सेवा करो। श्री आज्ञा शिरोधार्य कर आपने ऐसा ही किया।

सन् १९५३ की वैशाखी के शुभ पर्व पर जब आप श्री दर्शन के लिये आये तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! अब बाहर

बिल्कुल ही मन नहीं लगता। अतः श्री चरणों में स्थायी निवास प्रदान करने की आज्ञा प्रदान कीजिये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपकी तीव्र लगन तथा अटूट श्रद्धा से पूर्ण इस विनय को स्वीकार किया।

आप श्री आज्ञानुसार पुनः कुछ कार्य व्यवहार समेटने के लिये कलकत्ता गए और शीघ्र ही दुकान का कार्य पूरा किया। ४ जून १९५३ सन् को श्री आनन्दपुर पुनः लौट आए तथा सर्वस्व समर्पित कर श्री चरणों में शरणागत हो गए। आप के पिता जी भी श्री दर्शन के लिये आए। आप के पिता जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में विनय की—"प्रभो ! यह तो धन-धान्य, ऐश्वर्य सम्पदा सब को छोड़ कर फ़कीर बन गया है।" श्री वचन हुये कि "हम ने तो इन्हें सब सम्पदाओं का मालिक बना दिया है।" इस रहस्य को उस समय किस की इतनी बुद्धि थी जो समझ सके। केवल एक लीला का रूप समझ कर इस रहस्य पर विचार ही न किया जो श्री वचनानुसार आज सब पर प्रकट है।

श्री आनन्दपुर में शरणागत होकर आप ने जिस योग्यता से श्री वचनों का परिपालन किया उसे देखकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी अत्यन्त प्रसन्न होते थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी के समय में भी इन्होंने आज्ञा-पालन तथा दरबार की हित चित्त से सेवा की। आप परिवार वालों के बन्धन में कहाँ फँसने वाले थेः—

आए हैं धुरधाम से जो, लेकर सन्देश परमार्थ का।
वे घट में ही सब जानत हैं, यह खेल बना सब स्वार्थ का॥

नहीं किसी के बन्धन में बँधते, देते हैं ज्ञान यथार्थ का।
अवतार धरें उपकारक बन, है पाठ पढ़ा निःस्वार्थ का॥

बढ़ते हैं अपने पथ पर वे, और लक्ष्य पर ही ध्यान धरें।
फिर उनकी उपमा का कोई, किस ज़ुबां से कैसे ब्यान करे॥

वे शब्द-शस्त्र दें जूझन को, जिस से कि महाकाल डरे ।
उन्हें किसी से कोई सरोकार नहीं, जगती कद्‌मों में स्वयं परे ।।

अतएव श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने इन रहस्यों को गुप्त रूप से श्री वचनों में फ़रमाया और आप ने उस लक्ष्य की पूर्ति में प्राणपन से श्री सेवा कर प्रसन्नता प्राप्त की ।

इस प्रकार श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने यथासम्भव साधनों से सर्वसाधारण को भी प्रेम भक्ति का अमृत पिलाया । जिन जीवों के हृदय में गुरु भक्ति की लगन जागरूक हो चुकी थी तथा जो श्री दरबार में शरणागति लेना चाहते थे उन की अटूट निष्ठा को देख कर उन्हें चरण-शरण प्रदान की तथा जो संस्कारी आत्माएँ आप की विमल भक्ति में लगन बढ़ाती हुई संसार में रह रही थीं आप उनके अन्तर्मानस को जानते हुए उन्हें उसी अनुरूप श्री प्रवचनामृत पान करा कर उन की भक्ति बना रहे थे ।

भक्त धर्मभानु जी का कथन है कि मैं देहली में रहता था तथा सभा समाजों में व्याख्यान दिया करता था । ग्रीष्मावकाश होने पर मैं प्रायः श्री दर्शन के लिये श्री आनन्दपुर आ जाया करता था । गर्मियों की छुट्टियां श्री दरबार की सेवा में ही व्यतीत होती थीं ।

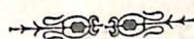
जब मैं यहाँ पहुँचा और श्री दर्शन की आज्ञा पाकर अन्दर श्री चरणों में उपस्थित हुआ—तब श्री भगवान् अकेले अपनी पवित्र मौज में पलंग पर विराजमान थे । श्रद्धापूर्वक साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और ज्यों ही आज्ञा पाकर मैंने श्री पदारविन्दों में सिर रख कर आँखें उठाईं तो सहसा श्री सद्‌गुरुदेव जी ने फ़रमाया— "सत्संग होता है ?" मैं असमञ्जस में पड़ गया—क्या उत्तर दूँ । महाप्रभु जानते थे कि मैं सभा-समाजों में बहुत व्याख्यान दिया करता हूँ—इसी विचार से ही श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने पूछ लिया कि "सत्संग होता है ।"

मैं तो यह प्रश्न सुन कर स्तब्ध सा हो गया । मुख से मेरे कोई उत्तर न

निकल सका। इस पर श्री प्रवचन हुए कि "सत्संग नहीं होता है, किसी पुस्तक का पाठ कर देने को 'सत्संग' नहीं कहते। पुस्तकों तथा ग्रन्थों की वाणी पढ़ कर सुनाना, उसके अर्थ करना परन्तु उस पर आचरण न करना इसे भी 'सत्संग' नहीं कहते। तब महाप्रभु ने बड़ी ही गम्भीर मुद्रा धारण की और अत्यन्त शान्तिपूर्वक समझाने लगे कि सत्संग=सद्वस्तु का संग कराना। सत् से मिलाप हो जाना। सत् से मेल कौन कराता है? इन विविध पुस्तकों की पंक्तियों के पाठ करके इन पर चिन्तन करो तब पता चलता है कि ये धर्मग्रन्थ भी यही कहते हैं कि सत्-वस्तु से संग करना चाहिये। सत् का ज्ञान महापुरुषों से होता है। अतः सन्त महापुरुषों से मिलाप कर सत् असत् का ज्ञान कराना ही सत्संग होता है। अतः अब सत्संग भी किया करो।"

इन श्री प्रवचनों में कितना रहस्य छिपा है कि एक तो महापुरुष जीव को असत् से सत् देश की ओर ले जाते हैं। दूसरा आपने यह स्पष्ट करा दिया कि भक्त धर्म भानु जी केवल महाभारत, रामायण का पाठ ही सभा समाजों में न किया करें अपितु इनका वास्तविक अर्थ समझाया करें जिस से अन्य जीव भी इन ग्रन्थों के रहस्य को समझकर सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त करें तथा अपने मानव जीवन का पूर्णतया लाभ उठा सकें।

इस प्रकार से आपने शरणागतों तथा अन्य प्रेमी जिज्ञासुओं को अपने अपने ढंग से ही लाभ पहुँचाया।



श्री आनंदपुर ट्रस्ट

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह किया कि अपने शरणागतों की व भक्तों की श्रद्धा भक्ति पूर्वक भेंट की गई चल व अचल सम्पत्ति की रक्षा के लिये दिनांक २२ अप्रैल १९५४ सन् ई० तदनुसार १० वैशाख संवत् २०११ विक्रमी को 'श्री आनन्दपुर ट्रस्ट' के नाम से एक संस्था की स्थापना की जिस में शरणागतों, महात्माओं, भक्तों व सेवकों के पालन-पोषण, देख रेख तथा सुरक्षा के सम्पूर्ण अधिकार एक ट्रस्टी-समिति को सौंप दिए गए। इस ट्रस्टी समिति अथवा बोर्ड आफ़ ट्रस्टीज़ के सदस्य कुछ महात्मा जन तथा कुछ भक्त जन हैं जिन की पूर्ण संख्या छत्तीस है।

इस ट्रस्ट के मुख्य उद्देश्य निम्न लिखित हैं:—

१. आश्रम की चल व अचल सम्पत्ति की सुरक्षा करना।

२. आश्रम के स्थायी निवासियों के शारीरिक निर्वाह हेतु (भोजन, वस्त्र, आवासगृह आदि) उचित प्रबन्ध करना।

३. आश्रम में आने वाले दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए आवासगृह एवं भोजन आदि का निःशुल्क प्रबन्ध करना।

४. आश्रमवासी व समीपवर्ती लोगों की सुविधा के लिए आधुनिक धर्मार्थ चिकित्सालय एवं पाठशाला स्थापन करना।

५. जनसाधारण को मानुष जन्म के लक्ष्य का बोध कराना तथा आध्यात्मिक लाभ पहुँचाना।

६. स्वाध्याय के लिए धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन करना।

७. भक्ति पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं की आत्मिक उन्नति व मनःशान्ति के लिए भजनाभ्यास तथा सत्संग आदि के विशेष कार्यक्रमों का आयोजन करना।

इन सब उद्देश्यों की पूर्ति श्री आनन्दपुर ट्रस्ट द्वारा अत्यन्त सुचारू रूप से की जा रही है।

श्री आनन्द भवन शिमला

आपकी मौज कई मौजों का भण्डार थी। आप ने क्या क्या किया और क्या करना चाहते थे इसका अनुमान लगाना कठिन है। आपकी मौज तो पहले भी हुई थी कि जिज्ञासुओं व यात्रियों के लिए दर्शनार्थ स्थान होने चाहिएँ ताकि बाहर से आए हुए जिज्ञासु जन कुछ भ्रमण कर सकें व साथ में एकान्त व गम्भीर वातावरण आपको वैसे ही प्रिय था। श्री आनन्दपुर का कण कण आपका चरण स्पर्श करने के लिए लालायित था कि कहीं ऐसा न हो कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी हमें दृष्टि से ओझल रख कर हमारे भाग्य न जगाएँ। अतः सन् १९५५ ई० में ही आबादी के उत्तर-पूर्वी भाग में एक ऊँची पहाड़ी ने श्री चरणों में सौभाग्यवती बनने की विनय की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कुछ महात्मा व भक्त जनों सहित यहां पधारे। पहाड़ी को ऊपरी सिरे से कटवाना आरम्भ करवाया। यहां पर कुछ महात्मा जन, भक्त जन व प्रेमी जिज्ञासु इस सेवा में सम्मिलित होते और रात्रि को कुछ एक को छोड़ कर वापिस घर लौट आते।

इसी समय में जब कि श्री आनन्द भवन शिमला को आबाद किया जा रहा था; श्री सद्गुरुदेव महाराज जी वहां महुआ पेड़ के नीचे पलंग पर विराजमान थे। दो चार सेवक समीप की फुलवाड़ी में सेवा कर रहे थे। दो निजी सेवक श्री

चरणों में बैठ कर पुस्तक सुना रहे थे। नीचे वाली मंज़िल जहां सेवा का कार्य हो रहा था, पहाड़ी को एक सिरे से काट कर बुनियाद खोदी जा रही थी। एक ओर तो ऊँची पहाड़ी थी और दूसरी तरफ़ एक खड्ड था। खुदाई होते हुए पहाड़ी में दरार पड़ गई और एकदम ही पहाड़ी का एक भाग नीचे आ गया। धमाके की आवाज़ होते ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने एक दम नंगे पांव ही वहां शीघ्रता से कृपा की। उन के पीछे पीछे सेवक भी भागते चले आये। खुदाई की सेवा करने वाली संगत आश्चर्य चकित एक ओर खड़ी थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पूछा कि–कोई नीचे तो नहीं आ गया। जांच पड़ताल करने पर मालूम हुआ कि एक भक्त कम है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के संकेत से मिट्टी हटाई गई और उसे बाहर निकाला गया। मिट्टी हटाने पर देखा गया कि वह भक्त बेहोश था। पहाड़ी का इतना भाग नीचे गिरने पर भी उसे कोई भी चोट नहीं आई थी। कुछ समय के पश्चात् वह भक्त होश में आया। उस भक्त से पूछने पर मालूम हुआ कि जब पहाड़ी मेरे ऊपर गिरी तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भागते हुए आये और उन्होंने मुझे अपनी गोद में ले लिया। उसके बाद मुझे कुछ पता न चला। बाद में होश में आने पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में दण्डवत् प्रणाम कर विनय की कि आप को मेरे लिये बहुत कष्ट उठाना पड़ा। सब संगत प्रसन्नता में जयकारे बोलने लगी। सब संगत ने उस समय कहा कि "धन्य हैं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ! जो सदा अपने भक्तों की रक्षा करते हैं।"

इसी पहाड़ी के एक ओर से चढ़ने के लिये ढलान का मार्ग और दूसरी ओर से सीढ़ियाँ बनवाईं। इस प्रकार से यह एक दर्शनार्थ स्थान बन गया।

इसी शिमला पहाड़ी की सेवा के मध्य में आप ने कई बार श्री मुख से प्रवचन फ़रमाये जिन्हें श्रवण कर संस्कारी आत्माओं में अत्यधिक लगन जागृत हुई गुरु-भक्ति व सेवा के लिये। एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पहाड़ी पर विराज रहे थे। भक्त धर्म भानु जी श्री चरणों में खड़े थे।

श्री पवित्र वचन हुए कि सन्त महापुरुष सूर्य के समान इस धराधाम पर

अवतरित होते हैं। जैसे सूर्य पृथ्वी के जल को, नदी, सरोवरों, नालों और कीच तक के पानी को अपनी किरणों से सोख लेता है—इतना ही नहीं, समुद्र के खारे पानी को भी अपनी प्रखर रश्मियों से आकर्षित करके उसे मधुर बनाकर मेघों के रूप में पुनः भूमण्डल पर बरसा देता है। ऐसे ही सन्त महापुरुष भी श्रद्धालु जीवों के अन्तःकरण में जितने भी विकार हैं, अवगुण हैं अथवा माया के मलिन संस्कारों की परतें जमी होती हैं—उन्हें गुप्त रूप में धीरे धीरे शुष्क करते रहते हैं। उनके स्थान पर भक्ति-प्रेम-त्याग-वैराग्य और क्षमा-दया-अहिंसा-सत्य इत्यादि सद्गुणों का प्रकाश अपने सेवकों के हृदय भवन में कर देते हैं। जिस प्रकार से सूर्य अपना सारा कार्य मौन भाव से करता है, उसे किसी से भी राग द्वेष नहीं होता। इसी प्रकार सन्त सद्गुरु भी समदर्शी होकर मनुष्य मात्र का परम कल्याण करना चाहते हैं। जीव अल्प बुद्धि होने से इसे नहीं जान पाते कि हमारा कितना सुधार हो रहा है।

भक्त जी ने इन श्री प्रवचनों को श्रवण किया। उन के हृदय में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों के प्रति पहले से भी अधिक प्रेम तरंगित हो गया और उन्होंने श्री दरबार की सेवा को बड़े हित-चित्त व सतर्कता से अन्तिम समय तक निभाया। यही पहाड़ी जिस का शुभ नाम श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने 'श्री आनन्द भवन शिमला' श्री मुख से फ़रमाया, आज तक इसी शुभ नाम से विख्यात है और यात्रियों के लिये दर्शनार्थ स्थान बना हुआ है।

दिन प्रतिदिन शरणागतों की संख्या बढ़ती जाती थी। उन में से कुछ शरणागत साधु-वेष ग्रहण करने के लिए बार बार विनय करते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कुछ अधिकारी गुरुमुखों को साधु वेष प्रदान करते। जब ये साधु वेष लेकर श्री चरणों में पुष्प-पत्रादि भेंट करने के लिए आते तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अत्यन्त हर्षित हो प्रसाद बंटवाते, उनकी खुशी का ठिकाना न रहता।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस साधु श्रेणी में से कुछ को सत्संग प्रचार के लिए भेज दिया ताकि यह नाम की अमर ज्योति शीघ्रातिशीघ्र भारत के कोने कोने

में फैलाएँ। प्रत्येक ग्राम तथा नगर में सत्संग आश्रम निर्माण करने का आदेश दिया और विशेष कर यह प्रवचन उसी दिन ही फ़रमाए:—

"जब तक मनुष्य अपना जीवन उन नियमों के सांचे में नहीं ढाल लेता, जिन नियमों पर वह दूसरों को चलाना चाहता है तब तक उस का प्रभाव पूर्ण रूप से दूसरों पर नहीं पड़ता। अपना आचरण ही दूसरों पर प्रभाव डालने के लिये उपदेश की अपेक्षा अत्यधिक प्रभावशाली होता है। अपने आचरण में कमी ही केवल वाचक ज्ञान बन कर रह जाती है, जिसका प्रभाव श्रोताओं पर पूर्ण रूप से नहीं हो सकता। गुरुवाणी में भी कहा है:—

अवर उपदेसै आपि न करै॥ आवत जावत जनमै मरै॥

अत्यधिक उपदेश देना या केवल दिखावा मात्र काम करना यह विचार केवल मान-बड़ाई और इज़्ज़त के लिये ही होता है कि लोग हमारी पूजा करें। इस के अतिरिक्त भक्ति के रूप में इस प्रकार से लाभ पहुँचाना कठिन है। जिन्होंने अमली तौर पर कुर्बानी की होती है उनका प्रभाव लोगों पर पड़ता है। इसीलिये पहले स्वयं आचरण करो पुनः दूसरों को उपदेश दो तो उसका प्रभाव सब पर अधिक पड़ेगा।

सेवक बन कर सद्‌गुरु की ओर से परमार्थ का सन्देश लोगों तक पहुँचाओ। उन की तरफ़ से जो सेवा भेंट हो उसे सद्‌गुरु की सम्पत्ति समझो। वह सब सेवा सद्‌गुरु के चरणों में भेंट करने की होती है ताकि अपनी ममता या अहंता किसी वस्तु में न हो। औरों को उपदेश देने का यह अभिमान नहीं करना कि मैं विद्वान् हूँ, मैं गुणवान् हूँ, मैं चतुर हूँ और मेरे ही उपदेश से मेरी मान्यता होती है। यह सरासर ग़लती और कमज़ोरी है।

जिस के ज़िम्मे सद्‌गुरु की ओर से जो सेवा लगी हो यदि वह स्वयं उस का मालिक बन बैठे तो उसकी वह हालत होती है कि:—

॥ दोहा ॥

सिख साखा बहुते किए, सतगुरु किया न मीत ॥
चाले थे निजधाम को, बीच में अटका चीत ॥

कबीर साखी

तुम साधु हो। तुम लोगों में यह कमज़ोरी नहीं होनी चाहिये। यहां पर भी जिस महात्मा या भक्त को सत्संग-प्रचार की आज्ञा दी जावे, यह सेवा सद्गुरु की ओर से उसे सौंपी गई है। यदि सत्संग करने वाला यह चाहे कि मेरी मान्यता हो, लोग मेरी प्रशंसा करें तो वह गिरावट की ओर जाएगा। स्वयं आचरण करता चला जाए, उसका प्रभाव स्वयं लोगों पर पड़ेगा।

श्री आनन्दपुर में भी जो महात्मा जन सत्संग करते हैं वे इसे अपनी सेवा ही समझें। इसी तरह हर सत्संगी चाहे वह श्री आनन्दपुर में है या बाहर सत्संग करता है वह अपने आपको सेवक (सेवा करनेवाला) ही समझे। श्रोतागणों को चाहिये कि वे यह समझें कि हमें महापुरुषों के वचन सुनाये जा रहे हैं जिस पर हमने आचरण करना है।

ऐसा करने पर दोनों श्रोता और वक्ता श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा के पात्र बन कर अपने जीवन को सफल करेंगे।

इस प्रकार से साधु मण्डली श्री अमृत प्रवचनों का रसपान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के अमर सन्देश को जन जन तक पहुँचाने के लिए सेवा में जुट गई। स्थान स्थान पर जाकर आश्रम स्थापित किए। भारत में उत्तर से लेकर दक्षिण तक व पूर्व से पश्चिम तक इस अमृत को उड़ेला। यहां तक कि विदेश में भी इस कलिमलहारिणी त्रि-ताप विनाशिनी भक्ति का सन्देश पहुँचाया।

श्री आनन्दसर

सन् १९५४ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की मौज ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के सम्मुख अपनी प्रमुखता तथा महत्ता को प्रकट किया। श्री आनन्दपुर की भूमि तीर्थों का सिरमौर बनने के लिए उत्सुकता की लहरों में झूम उठी। तीर्थराज श्री आनन्दसर की भूमि इसी समय की प्रतीक्षा में दामन फैलाए युगों से विनय कर रही थी कि करुणेश ! कब इधर भी कृपा-दृष्टि से मेरे सौभाग्य जगाएँगे। एक नया स्वप्न, एक उल्लसित उमंग और आशा की नवीन तरंग अरुणिम प्रभात की न्याईं हिलोरें लेने लगी।

मार्गशीर्ष संक्रन्ति से एक दिन पहले रात्रि समय श्री दर्शन खुले हुये थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अपने अनुपम उच्च सिंहासन पर विराजमान हो कर प्रेमियों को श्री दर्शन दे रहे थे। प्रेमी श्री दर्शन कर एक अनूठे आनन्द में झूम रहे थे। उन्होंने श्री दर्शन के समय उस रात्रि को पहले की अपेक्षा कुछ भिन्न प्रकार का नज़ारा देखा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आज उन्हें विशेष दिव्यतम स्वरूप में श्री दर्शन दे रहे थे। उधर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी किसी आतुर पुकार को सुनने में संलग्न थे। यह विह्वल पुकार कोई साधारण पुकार न थी। कभी तो आप तनिक मुस्करा देते, कभी गम्भीरता धारण कर लेते तो कभी कुछ क्षण पश्चात् कमल-नयनों में अलौकिक आकर्षण आ जाता। प्रेमी यह न समझ पा रहे थे कि आज क्या हो रहा है। थोड़ी देर बाद श्री दर्शन बन्द हो गये। आप धुरधाम से एक ललित चित्र उतार रहे थे जिसमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के स्वर्णिम श्री वचन और आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) की धुरदरगाही तथा हार्दिक मौज के मुक्ताकण संजोए हुये थे। इस रूपरेखा के विचार में सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत किया कि कब प्रातः हो और श्री मौज को साकार करने के लिये उद्घाटन किया जाये।

प्रकृति ने रंग छिटकाया। रात्रि ने अलस लोचनों के साथ विदाई ली। पूर्व की दिशा से सूर्यदेव अभी नभमण्डल पर विराजमान न हुए थे परन्तु उनकी

किरणों की लालिमा गगन पर ऊषा के रूप में स्वर्णिम आभा बिखराती हुई प्रभात का सन्देश दे रही थी। पक्षियों ने कलरव आरम्भ किया। जहां तहां सृष्टि में इस आलोक का अभिवादन किया जा रहा था। यहां श्री आनन्दपुर में प्रेमिजन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन के लिए अतृप्त नयनों से कार के आने की राह देख रहे थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रातः काल भ्रमण के लिये कार में विराजमान हुए। यह कार मुख्य द्वार (Main gate) से इस प्रकार निकली जैसे पूर्व दिशा से सूर्य उदित हो रहा हो। इस द्वार से कुछ आगे मार्ग में प्रेमिजन जिज्ञासु श्री दर्शन के लिए खड़े थे। उन्होंने कार को घेर लिया और अपने श्रद्धा के पुष्प-पत्र भेंट किए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री छवि पुष्प की सी मादकता बिखरा रही थी। वे किसी विचार में खोये हुए प्रतीत होते थे।

आज श्री आनन्दसर ने, फिर से करुण पुकारें कीं।
ऐ प्राणेश ! करो अनुकम्पा, विह्वल स्वर से गुहारें कीं॥
करुणामय ने मधु पुकारें सुन, इस दिशि चरण बढ़ाए हैं।
प्रेम पयोधि ने प्रेम प्याले, इस भू पर छलकाए हैं॥
गंगा यमुना सरस्वती ने, अनुनय की स्वीकार करो।
ऐ कुल मालिक सद्गुरुदेव जी, हम पर भी उपकार करो॥
अठसठ तीर्थ श्री चरणों में, आने को अकुलाते हैं।
श्री आनन्दसर में हम सब भी, ठौर तनिक सी चाहते हैं॥

आज श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बड़े हर्ष से सब गुरुमुखों को फ़रमाया कि चलो आज सभी गुरुमुख कार के साथ चलो। आज किसी विशेष कार्य का आरम्भ करना है। यह कार्य कोई साधारण कार्य नहीं। इस में परमार्थ, भक्ति, सेवा आदि सम्पूर्ण अंग समाहित हैं। आज किसी धुरधाम से उतरे हुए ललित चित्र का श्री आनन्दपुर में उद्घाटन करना है। चलो आज सब को वहीं ले जाते हैं। सभी प्रेमी हर्षित मन से कार के साथ चलने लगे। हंस-वाहिनी चाल से कार कभी कंटीली झाड़ियों में से गुज़रती तो कभी ऊबड़ खाबड़ ज़मीन पर से। मार्ग में

काँटे कभी प्रेमियों को भागने में बाधा डालते किन्तु प्रेम दीवानों को इन की क्या परवाह थी। वे तो कार के साथ साथ भागे जा रहे थे। इस ओर अभी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कृपा-दृष्टि न की थी। अतएव इस धरती ने श्री चरणों से लिपट कर अपनी व्यथा सुनाई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने धैर्य देकर फ़रमाया कि हम अब तुम्हारे प्रेम में बँधे हुए यहीं निवास करेंगे।

यह स्थान श्री आनन्दपुर की आबादी के उत्तर-पश्चिम में था जहां श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दसर का उद्घाटन करना था। आज वह साकार रूप लेने के लिए हिलोरें ले रहा था। यहां उपयुक्त स्थान देखकर १६ नवम्बर १९५४ सन् ईस्वी तदनुसार संक्रान्ति मार्गशीर्ष (मग्घर) संवत् २०११ विक्रमी मंगलवार के शुभ दिन श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निज कर-कमलों से श्री आनन्दसर निर्माण कार्य का उद्घाटन किया। श्री आनन्दसर के समीप ही वर्तमान बोरिंग (Tube Well) के स्थान पर पलंग पर विराजमान होकर सब प्रेमियों को बैठा कर अपनी हार्दिक मौज को प्रकट किया। श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी (साधु वेष में थे) को संकेत से उठाकर फ़रमाया—"सब को हमारी यह आज्ञा सुना दें कि श्री आनन्दसर का शुभ मुहूर्त्त १६ नवम्बर १९५४ संक्रान्ति मार्गशीर्ष को किया गया। यह कार्य हमारी हार्दिक मौज से करना है। इसे जितनी जल्दी हो सके तैयार करना है।" श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी ने खड़े होकर सब के सम्मुख इन श्री वचनों को दोहराया। जिस दिन यह शुभ मुहूर्त्त हुआ उसी दिन इसी तीर्थ धाम की मानो नींव रखी गई। धरती ने श्री चरणों में वन्दना कर कोटिशः धन्यवाद दिया। सेवकों के लिए सेवा का भण्डार खुल गया। प्रेमियों ने चातक बनकर श्री वचन स्वांति सुधा का पान किया। श्री आनन्दपुर के सभी सेवक, शरणागत तथा प्रेमी इसी मौज को साकार रूप देने में जुट गए। श्री आनन्दसर को यदि श्री आनन्दपुर का 'कीर्ति स्तम्भ' कहा जाए तो अनुपयुक्त न होगा।

श्री आनन्दसर की नींव रखने से पहले श्री आनन्दपुर में शरणागत सेवकों तथा जिज्ञासुओं की संख्या का अनुमान लगाया जा सकता था। परन्तु श्री

आनन्दसर ने तो दूर व समीप के प्रेमियों के हृदय की तारों को इस प्रकार झंकृत कर दिया कि कोई भी प्रेमी इस सेवा से वंचित रहने को तैयार न था। सब ने यथासम्भव समय निकाल कर इस सेवा में सहर्ष भाग लिया। इस सेवा में कितने नव जिज्ञासु एवं प्रेमियों ने सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया, इसका अनुमान लगाना कठिन है। श्री आनन्दसर ने भी अपने हृदय पर हृदयेश (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी) को ऐसा स्थान दिया कि वे यहां से मानो हटना ही न चाहते थे। उन्हें यही स्थान उपयुक्त लगा। ऐसी अनुपम लीलाएँ इस तट पर हुई कि देवलोक से देवता भी इस मनहरण लीला को निरखने के लिये मानव देह की प्राप्ति के लिये व्याकुल होने लगे।

जिन जिन गुरुमुखों भक्तों, महात्मा व जिज्ञासुओं को इस सेवा का प्रबन्धक बनाया गया उन सब ने मिलकर इस कार्य को प्राणपन से निभाया। सर्वप्रथम यह कार्य धीरे धीरे चलता रहा। इसके साथ साथ कई अन्य कार्य भी हुए। प्रत्येक गुरुमुख जो कि अन्य किसी सेवा पर थे एक या दो घण्टे इस सेवा में भाग लेते। कुछ एक जिन की ज़िम्मेवारी ही यहीं थी वे सारा दिन यहां पर सेवा करते। इस प्रकार से ऊबड़-खाबड़ टीलों को ट्रैक्टरों द्वारा खोद खोद कर समतल किया जाने लगा। कांटों व झाड़ियों को साफ़ करवा पत्थरों को एक ओर लगा दिया।

इस प्रकार से श्री आनन्दसर की सेवा की ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। इस श्री सेवा ने समस्त भारत में गुरु सेवा का डंका बजा दिया। भारत के कोने कोने से प्रेमी गुरुमुख इस सेवा में भाग लेने के लिये आये। किसी ने तन से, किसी ने मन से, किसी ने धन से यथाशक्ति इस सेवा में भाग लिया। यह कोई साधारण सेवा न थी। एक तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की परम पवित्र मौज व प्रसन्नता, दूसरा महान् तीर्थ की सेवा तथा अपने कल्याण के लिए ऐसा सुदुर्लभ सुअवसर; इन सब ने मिलकर प्रेमियों को आकर्षित किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं श्री आनन्दसर पर दिन में दो-तीन बार आते थे। श्री दर्शन से प्रेमियों को कृतार्थ कर भोग प्रसाद भी देते। १६५४

से १९६० तक धीरे धीरे यह कार्य ज़ोर पकड़ता गया। इसी मध्य में ही एक बोरिंग और श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर का काम आरम्भ हो गया। इस के पश्चात् सन् १९६० में दीपावली के शुभ पर्व पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज इसे शीघ्रातिशीघ्र बनाने की उठी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सम्पूर्ण संगत के सम्मुख यह श्री प्रवचन फ़रमाये—"यह आनन्द सरोवर का महान् तीर्थ कलिकाल के पापों को निवारण करने का यही एक साधन होगा। किसी समय पर इस महान् तीर्थ का सर्वप्रथम स्थान होगा। हम चाहते हैं कि महान् तीर्थ के स्नान करने का पुण्य अवसर शीघ्र से शीघ्र सब को प्राप्त हो। जितना भी समय इसके बनने में कम लगे उतना ही अच्छा है ताकि गुरुमुख प्रेमी इस के लाभ से वञ्चित न रह जाएँ और यथा शीघ्र लाभ उठाएँ।"

श्री वचनों ने सेवकों तथा गुरुमुखों में नया साहस तथा नई उमंगें भर दीं। सभी पूर्ण उत्साह से दिन रात एक करके इस कार्य में जुट गए। सब के सम्मुख उमंगों की एक तरंग लहरा रही थी कि कब श्री आनन्दसर तैयार हो और हृदय सम्राट् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करते हुए इस पावन तीर्थ में मज्जन करें। इस लहर ने भारत के कोने कोने तक प्रेमियों को यह शुभ सन्देश सुना दिया। अब तो श्री आनन्दसर पर देखो तो ऐसे लगता था मानो सृष्टि के सभी परमार्थ-भक्ति के अभिलाषी श्री सेवा में उपस्थित हो गए हों। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं भी सारा दिन श्री आनन्दसर के पावन तट पर विराजमान रहते। प्रेमिजन प्रातः ४ बजे से लेकर रात्रि के बारह बजे तक इस सेवा में जुटे रहते। किसी को न सर्दी न धूप और न ही भूख-प्यास की चिन्ता थी। जिस ओर दृष्टि डालो प्रसन्न मुख सभी हँस हँस कर सीमेंट से गुलाल खेल रहे हैं। कहीं क्रशर (पत्थर काटने वाली मशीन) चल रहा है तो कहीं पर मिक्स्चर मशीन (मसाला मिलाने वाली) और ट्रालियां चूना ला लाकर डाल रही हैं। उन दिनों का नज़ारा ही क्या अनूठा नज़ारा था। देवलोक की दुन्दुभियां इस निराले कोलाहल के आगे तुच्छ थीं। सभी इस पवित्र सेवा को जीवन की निजी पूँजी समझ कर उस कर्त्तव्य पालन में हित चित्त से लगे हुए थे।

ऐसे ही प्रेमियों की संगति से अन्य जिज्ञासुओं में भी इस भक्ति-परमार्थ तथा सेवा के पथ पर चलने की उमंग पैदा हुई। कुछ जिज्ञासु भी इस स्वर्णिम अवसर से लाभ उठाने के लिए श्री आनन्दपुर में पहुँचे। सब प्रेमी गुरुमुख सेवकों को एक आनन्द में भूमते हुए सेवा में सुध-बुध खोये हुए देख एक जिज्ञासु के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या इसी सेवा से मालिक की प्राप्ति हो सकती है ? यह सेवा कैसे कलुषित मन को धोने में समर्थ हो सकती है ? वह जिज्ञासु अन्य प्रेमियों के साथ प्रातः श्री आनन्दसर पर चला जाता और सायं तक देखा देखी सेवा में जुटा रहता। परन्तु जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दसर पर पहुँचते तो वह स्वयं ही सोचने लगता कि मुझे क्या हो गया है ? हृदय में अमित उत्साह भर जाता है तथा उन के सम्मुख अपने आप की सुधि भूले प्रेम में उन्मत्त हो सेवा में ऐसा खो जाता हूँ कि हृदय में किसी प्रकार के संकल्प-विकल्पों को पैदा होने के लिए समय ही नहीं मिलता। धीरे धीरे उसकी अवस्था ऐसी बदलती गई कि श्री आनन्दसर के प्रथम स्नान तक उसे ऐसा आभास होने लगा कि जैसे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उसकी आँखों में इस प्रकार समा गये हैं कि उसे बिना श्री सद्गुरुदेव जी के कोई अपना दिखाई ही न देता था। इस श्री पवित्र सेवा से उस प्रेमी का मोह तो जैसे सर्वथा नष्ट ही हो गया। उसे अपने सम्बन्धियों तक की याद ही न रही। अब उसे मालूम हो गया कि सचमुच ही सेवा मन के बन्धनों को काटने का विशेष शस्त्र है। अतः वह हित चित्त से सेवा करने लगा तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के गुणानुवाद गाने लगा।

जिन प्रेमियों ने इस सेवा का अनुपम पान किया वही उस आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। इस सेवा ने सेवकों को श्री सद्गुरुदेव जी की प्रसन्नता पाने का एक नूतन पाठ पढ़ाया। श्री आनन्दपुर के महात्मा, भक्त, बाइयाँ, भक्तानियाँ व सत्संगी जन एवं जिज्ञासु तथा भक्ति के अभिलाषियों ने इस सेवा में भाग लेकर अतुलनीय सुख प्राप्त किया। सन्त महापुरुषों की संगति के गौरव के विषय में श्री रामचरित मानस—बालकाण्ड में लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

मज्जन फल पेखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकहु मराला ॥
सुनि आश्चर्य करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥

अर्थात् सन्त महापुरुषों की संगति रूपी तीर्थ में जो ग़ोता लगाता है उस स्नान का फल उसी समय ही मिल जाता है । वह भाग्यशाली कव्वे से कोयल और बगुला से हंस बन जाता है । इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं । सन्तों की संगति की महिमा किसी से छुपी हुई नहीं अर्थात् काक वृत्ति के प्राणी कोयल जैसा मधुर बोलना तथा बगुला वृत्ति (कपटी-छली स्वभाव वाले) हंस वृत्ति (विवेक-विचारवान्) बन जाते हैं । जैसे यह कहा गया है वैसे ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रत्यक्ष करके दिखा दिया । जो प्रेमी तथा जिज्ञासु आप की पावन संगति में आए उन्होंने स्वयं इस अमृत को पीकर अपनी मनोदशा का अनुमान लगा लिया ।

यह तो केवल समय के अनुसार सन्त महापुरुष ही जानते हैं कि किस ढंग से किस समय में उद्धार करने का कौन सा साधन है । इस के अनुसार वे उन साधनों को जुटाते हैं । इस कलियुग में गुरु-सेवा ही मन की ऐसी औषध है जिस के सेवन से मन शुद्ध हो जाता है । अतः इसी पावन धारा को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर तीर्थ धाम की रचना कर के जन साधारण के लिये प्रवाहित किया ।

सब प्रेमियों का साहस रंग लाया । कर्त्ता-धर्त्ता तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं थे, परन्तु सेवकों को भगवान् सदा ऊँचा दर्जा देते आये हैं । सब में शक्ति की एक अनूठी लहर समा गई । इस लहर में डूब कर दिन रात एक कर प्रेमियों ने वह दिवस समक्ष देखा—यह वह भाग्यशाली पुण्य दिवस १३ जनवरी १९६१ सन् ई० शुक्रवार तदनुसार एक माघ संवत् २०१७ का था जब श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने बोरिंग का नल अपने कोमल कर-कमलों में थाम कर श्री आनन्दसर में जल डालने लगे तब उन के श्री

वस्त्र भी भीग गए परन्तु उन्हें इस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) की मौज के साकार होने की एक निराली प्रसन्नता में कुछ पता न चल रहा था। उन्होंने सब के सम्मुख इस तीर्थ की उपमा बताई कि स्वयं बिना चरण-पादुका के श्री आनन्दसर के तट पर आए। नंगे चरण ही इस पर विराजमान होकर अनुपम लीलाएँ की।

उस दिन की शोभा श्री आनन्दसर के तट पर अवर्णनीय थी। श्री सद्गुरु देव महाराज जी की प्रसन्नता की सीमा न थी। इस प्रसन्नता रूपी समुद्र की लहरों में प्रेमियों ने जी भर कर ग़ोते लगाए। पुलकित होकर प्रेम अमृत पिया। इस समय तक श्री आनन्दसर का आठवां भाग ही पूरा बन कर तैयार हुआ था। इसी भाग को दो भागों में विभक्त (Partition) किया गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के लिए सेवकों ने पहले से ही एक नाव बनाई थी। उस नाव को श्री आनन्दसर में लाया गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रथम श्री आनन्दसर के जल में चरण-स्पर्श किए पुनः नाव पर विराजमान होकर इस सरोवर को कृतार्थ किया। इस विधि इसका धूमधाम से मुहूर्त्त किया। इसके पश्चात् स्वयं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस सरोवर को (तीर्थ) पवित्र बनाने के लिये इस में स्नान किया। इसके पश्चात् सब संगत ने अर्थात् महात्मा भक्त तथा बाइयाँ व भक्तानियों ने अपनी अपनी दिशा में स्नान किया।

स्नान के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दसर के तट पर विराजमान हुए। उस समय प्रेमियों ने श्रद्धा व प्रेम के पुष्प श्री चरणों में भेंट किए तब:—

तीर्थराज श्री आनन्दसर पर, अनुपम धूम मचाई है।
इष्टदेव कुल मालिक ने यह, रचना मधुर रचाई है॥
अम्बर धरती दसों दिशायें, गूँजी जय जयकारों से।
झूम उठे प्रेमी के हृदय, रँग कर प्रेम फुहारों से॥

चन्द्र सूर्य तारागण ने, मुक्ता के हार सजाए हैं ।
रमेश, सुरेश, महेश, गणेश, सब पूजा करने आए हैं ॥
श्री आनन्दसर के तट पर, बज उठी हर्ष शहनाई है ।
तीन लोक चौदह भुवनों से, मिल रही आज बधाई है ॥
नभ मण्डल से पुष्प हैं झरते, दिग्वधुएँ झूम झुमाई हैं ।
रवि ने अर्चन-पूजन के हित, आरति खूब सजाई है ॥
इस सुषमा को मात करे को, यह अद्भुत लासानी है ।
प्रकटी ज्योति इलाही जग में, महिमा न जाए बखानी है ॥

इस प्रकार से सब ने मिलकर श्री गुरुमहाराज जी के गुणानुवाद गायन किए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का मुखारविन्द पूर्णिमा के चाँद की न्याईं धवल उज्ज्वल किरणों से सब के हृदयों को आनन्दित किये जा रहा था। सर्व प्रेमिजनों के मध्य में आप एक प्रफुल्ल पुष्प थे जिन पर प्रेमिजन रूपी भ्रमर चारों ओर मंडरा रहे थे। प्रेमियों ने सुरीले, मधुर भजन श्री आनन्दसर की स्तुति में गाये। प्रेमी भी इस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की प्रसन्नता एवं कृपा रूपी मणियों से अपने दामन भर रहे थे। सम्पूर्ण कार्यक्रम पूर्ण होने के पश्चात् प्रसाद बांटा गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रवचन फ़रमाये--"आज हम सब गुरुमुखों पर प्रसन्न हैं, जिन्होंने रात दिन एक करके सेवा से इस पुण्य कार्य को पूर्ण किया है। इस पुण्य तीर्थ में जो प्रेमी भी श्रद्धा तथा प्रेम से स्नान करेगा वह जन्म जन्म के पापों की मैल धो लेगा।" पुनः यह भी फ़रमाया कि प्रत्येक गुरुमुख का परम धर्म है कि श्री आनन्दसर में स्नान कर श्री आनन्दसर के तट पर १५ मिनट भजन-अभ्यास अवश्य करे। इस प्रकार श्री वचनों से सब को अनुगृहीत कर श्री त्रिभुवन मोहन ने अपने मंगलमय आशीर्वादों से प्रफुल्लित कर दिया।

इस के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने शेष श्री आनन्दसर को शीघ्रातिशीघ्र सम्पूर्ण करने के लिये श्री आज्ञा फ़रमाई। श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जो (साधु वेष में) को इस का प्रबन्धक नियुक्त किया। यह सम्पूर्ण श्री

आनन्दसर सन् १९६२ में बन कर तैयार हो गया। १३ अप्रैल सन् १९६२ वैशाखी के शुभ पर्व पर नाव में विराजमान होकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दसर की परिक्रमा करके इस महान् तीर्थ को कृतार्थ किया। इसके बाद श्री आनन्दपुर में प्रत्येक पर्व इस तीर्थ के तट पर ही मनाया जाने लगा और आज तक मनाया जाता है। आज भी इस महा तीर्थ में सहस्रों की संख्या में दूर व निकट से आई हुई संगतें स्नान तथा भजनाभ्यास कर जन्म-जन्मान्तरों के पापों की मैल को धोती हैं। यह महान् तीर्थ चौदह भुवनों एवं तीन लोकों में युग-युगान्तरों तक अपनी धर्म निष्ठा पर अटल रह कर जन-जन का कल्याण करता रहेगा और प्रेमिजन इस में मज्जन कर कृतकृत्य होते रहेंगे।

जय तीर्थराज श्री आनन्दसर,
वन्दन करते सब सुर मुनि नर।
कुल मालिक के कर कमलों से;
कण कण तेरा अति पावन तर॥

क्या धरा ने पुण्य कमाया है,
आनन्दसर जहां बनाया है।
सद्गुरु जी ने किरपा कर;
पलटी वसुधा की काया है॥

पारमार्थिक सेवा स्रोत है यह,
कलियुग में बना भव पोत है यह।
यह प्रेम भक्ति के रंग राता;
अठसठ तीर्थों की जोत है यह॥

इस का तट है शुभ लीलास्थल,
है मधुर अमिय रस इस का जल।
अति चंचल मन होता है शान्त;
हर लेता जन्म जन्म की मल॥

सुषमा इस की मन हरती है,
बरबस आकर्षित करती है ।
लहरों के सँग ही हर्षित हो;
जन मन में गरिमा भरती है ॥

यह वन्य भूमि में इठलाता,
श्री इष्टदेव के गुण गाता ।
श्री परमहंसों का नयनतारा;
गुरु–भक्ति भाव में इतराता ॥

चहुँ उपवन लेते अँगड़ाइयां,
तट पर झूमे हैं अमराइयां ।
हर समय यहां ऋतुराज रहे;
चलें आनन्द शान्ति की पुरवाइयां ॥

शुक पिक खग दल कलरव करते,
कलरोर मधुर इस में भरते ।
हंस आत्मा सुरत शब्द से;
सदा ध्यान प्रभु का हैं धरते ॥

आओ मज्जन कर कष्ट हरें,
नयनों में इस की प्रभा भरें ।
श्री परमहंस अवतार हमारे;
गद्गद हो जय जयकार करें ॥

अग जग पावन यह तीर्थराज,
मज्जन से होते सकल काज ।
अघ पुञ्ज विनाशक सुखद रूप;
रहे अटल तेरा यश और राज ॥

इसी श्री आनन्दसर के कार्य के मध्य में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बोरिंग खुदवाने की योजना बनाई। क्योंकि दो बावलियां जो पहले खुदवाई गई थीं (जिन का सम्पूर्ण विवरण श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम में दिया गया है) अब आवश्यकताएं बढ़ने पर इतना जल न मिल पाता था। पानी की कमी तो नहीं थी परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी यह चाहते थे कि पानी के लिये कभी तंगी न आने पाये। इसीलिए पहले से ही उसका प्रबन्ध किया जाये तो अच्छा है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उसी स्थान पर जहाँ श्री आनन्दसर के लिए श्री वचन फ़रमाए थे वहाँ बोरिंग के लिए आज्ञा दी। यह कार्य महात्मा अभेद दर्शन आनन्द जी को सौंप दिया। इस कार्य को आरम्भ करने और मशीन आदि मंगवाने और लगवाने में एक वर्ष लग गया। १९५६ जनवरी में श्री आनन्दसर के किनारे बोरिंग मशीन से कार्य आरम्भ हुआ। यह ज़मीन इतनी पथरीली और काले सख़्त पत्थरों से भरी हुई थी कि मशीन भी इसे कठिनता से काट सकती थी। कभी तो पूरे दिन में केवल ६ ईंच तक पत्थर काट पाती थी।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी समय के अनुसार अर्थात् प्रत्येक वर्ष में दो बार 'नया गांव' और दो बार 'श्री सन्त नगर' में पधारते थे। कुछ दिनों पश्चात् श्री आनन्दपुर कृपा करते थे। यह परमार्थ का रूहानी कार्य भी साथ साथ चलता रहा। बोरिंग आरम्भ करवा कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी 'नया गांव' में विराजमान हो गए थे। इधर बोरिंग कठिनता से कुछ गहराई तक पहुँचा तो काले पत्थरों के अतिरिक्त पानी का कहीं चिन्ह तक भी न था। महात्मा जी ने श्री चरणों में विनय पत्रिका लिखी जिसमें बोरिंग की कठिनता का वर्णन किया। उत्तर में कृपा पत्र में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि घबराने की ज़रूरत नहीं, काम करते चलो। उस स्थान से नई जगह पर डेढ़ फुट आगे की ओर खोदना आरम्भ करो, पानी निकल आयेगा।

श्री आज्ञा पाकर महात्मा जी ने वहीं से खोदना आरम्भ कर दिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भी कुछ दिन बाद श्री आनन्दपुर में कृपा की। पत्थरों को काटने के चार वर्ष बाद अर्थात् १९६० में गहराई ८३० फुट तक पहुँच गई।

इतना कड़ा परिश्रम करने पर भी पानी का चिन्ह तक दिखाई न देता था। प्रेमी, सेवकों ने हिम्मत खो दी व श्री चरणों में विनय की—प्रभो ! अब आप ही कृपा करिए। इतनी गहराई तक पहुँचने पर भी पानी एक बूँद भी दिखाई नहीं देता। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"कल प्रातः से सायं तक इस कार्य को अवश्य पूरा करना है। आप गुरुमुखों की सेवा अवश्य रंग लाएगी, घबराने की आवश्यकता नहीं।" गुरुमुख सेवक उसी समय ही पुनः बोरिंग की सेवा के लिए चल दिये। सारी रात मशीन पत्थर काटती रही। प्रातः समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने यहाँ कृपा की। दिन भर भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी वहां विराजमान रहे। सेवा का कार्य चलता रहा। अन्त में जब ८४० फुट के लगभग पहुंच गये परन्तु पानी निकलने की कोई आशा न हुई। सायं चार बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"पानी तो यह देखो निकल रहा है, घबराओ मत।" इधर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मशीन को निज कर-कमल लगाए। ज्यों ही मशीन उस समय पत्थर काटने के लिए नीचे झुकी कि पानी की एक फुहार बह निकली। प्रेमियों ने ऊँचे स्वर से जयकारे बोले। अत्यधिक उत्साह से मशीन को तेज़ कर दिया। बस पानी भी पाताली फ़िर से ऊपर निकल आया। एक पाईप इसमें डाल दिया गया जिस से पानी तेज़ी से बाहर की ओर निकला। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इस पाईप को निज कर-कमलों से पकड़ा। सभी प्रेमी दीवानों की न्याईं इस पाईप के आगे खड़े हो गये। किसी को यह होश ही न रहा कि हम गीले हो रहे हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पाईप को चारों ओर घुमा कर चारों दिशाओं व धरती तथा नभमण्डल को अपनी शीतलता देकर सब को शीतल कर दिया। वहीं पर प्रसाद बाँट कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी रात्रि समय प्रेमियों सहित लौट आए।

अब इस पानी के बढ़ने पर खेत तथा उद्यानों को भी बढ़ा दिया गया ताकि इसे उपयोग में लाकर सम्पूर्ण आवश्यकताएँ (भोजन सामग्री आदि) उपज की घर में ही जुटा ली जाएं। जब श्री आनन्दसर का आठवाँ भाग १९६१ में तैयार हुआ तो इसी बोरिंग का पानी उस में डाला गया। उस आठवें भाग को भरने में पूरा सप्ताह लग गया। उस समय कई प्रेमियों ने विनय की— प्रभो ! इस श्री

आनन्दसर के इस छोटे से टुकड़े को भरने में पूरा सप्ताह लग गया तो पूरा श्री आनन्दसर भरने में कितना समय लगेगा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"आप श्री आनन्दसर तैयार तो करो, पाताली गंगा निकलेगी जिससे स्वयं श्री आनन्दसर तो क्या, कई आवश्यकताओं की पूर्ति हो जायेगी।"

अब श्री दरबार की महिमा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। इधर भक्त भरतसिंह जो कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) का उपदेशी था उसे श्री आनन्दपुर के विषय में कुछ ज्ञात न था। जब उसने श्री आनन्दपुर के विषय में सुना तो वह भी श्री दर्शन के लिये आया। वह मेरठ की संगत का मुख्य भक्त था। उसे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के अन्तर्धान होने के पश्चात् यह पता न चला कि उन के स्थान पर कौन जानशीन हुए हैं। जब वह श्री आनन्दपुर पहुँचा तो उसके दिल में यह विचार पैदा हुआ कि यदि यथार्थ रूप में श्री आनन्दपुर के सम्राट् कहलाने वाले ही रूहानी उत्तराधिकारी हैं तो हमें उसी रूप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी) में दर्शन देवें तभी हमारा दृढ़ विश्वास होगा, तब हम मानेंगे। तो सचमुच ही उसे श्री दूसरी पादशाही जी महाराज के रूप में दर्शन होने लगे। इस प्रकार तीन दिन उसे इसी स्वरूप के दर्शन होते रहे। चौथे दिन उसने आपके श्री चरणों में आकर विनय की कि प्रभो! मैंने आपको बहुत कष्ट दिया है। इसलिए क्षमा कीजिएगा।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) ने फ़रमाया—"प्रेमी! सन्त महापुरुषों का अवतरण ही जन जन को परमार्थ का लाभ प्राप्त कराने के लिए होता है। इन्सान जो ख़्याल करता है वही रूप बन जाता है। यह तो अपने ख़्यालों पर निर्भर है। सन्त महापुरुष तो एक ही ज्योति से प्रकट होते हैं, चाहे उन्हें कोई श्री कृष्णचन्द्र जी के रूप में समझे अथवा श्री गुरुनानक देव जी या श्री कबीर साहिब जी के रूप में। अपने भावों के अनुसार ही रूप नज़र आएगा। विचार ही मनुष्य को वही रूप बना देते हैं। अब उस भक्त जी ने पुनः क्षमा मांग कर विनय की कि यदि मेरठ की संगत को श्री दर्शन करने की आज्ञा मिले तो वह भी

श्री दर्शन कर कृतार्थ हो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी करुणा के सागर ने अपनी कृपा फ़रमाई और वह संगत व्यासपूजा के पर्व पर श्री दर्शन के लिये आने लगी।

सन् १९५५ में जबकि श्री आनन्दसर अभी आरम्भ ही हुआ था, श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज इस सम्पूर्ण स्थान को उपासना के योग्य बनाने की हुई। श्री आनन्दसर के ठीक मध्य में १३ जनवरी १९५५ को श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की नींव रख कर उसका उद्घाटन किया। यहां पर भी सेवा आरम्भ हुई। श्री आनन्दसर, श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की सेवा एक साथ चलती गई। श्री आनन्दसर तो एक ही लहर में झूम कर तैयार हो गया और श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की सेवा धीरे धीरे चलती रही। यहाँ संगमरमर का काम शीघ्रता से सम्पन्न होने का न था। जब आप कार में विराजमान होकर श्री आनन्दसर तक पहुँचते तो कुछ प्रेमी कार के साथ भागना आरम्भ कर देते। एक बार कार श्री मन्दिर की तरफ़ जा रही थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपनी मौज वश उन को फ़रमाया कि साथ साथ चलते हुए यह उच्चारण करो—"प्रसन्नता को प्राप्त करने का यही रास्ता है।" ऐसा प्रेमिजन बोलते हुए कार के साथ जाते तथा कार श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर व दूसरे स्थान पर (जहां श्री आनन्द शान्ति भवन बना हुआ है) पहुंच जाती।

एक दिन सेवादार गुरुमुख तन्मय हो कर सेवा के कार्य में जुटे हुए थे। आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) ने सेवादार गुरुमुखों का उत्साह बढ़ाने और श्री दर्शन देने के लिये श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में पहले की भाँति कृपा फ़रमाई। आपने कुछ सेवादार गुरुमुखों को सम्बोधित करके उस ओर संकेत किया (जिस स्थान पर आज कल पवित्र श्री आनन्द शान्ति भवन का निर्माण चल रहा है) तथा ये श्री वचन फ़रमाये कि हम इस जगह पर बैठकर अशान्त रूहों को शान्ति प्रदान किया करेंगे और यहाँ एक विशाल भवन बनेगा जिस का नाम श्री आनन्द शान्ति भवन होगा। प्रेमियों ने सोचा शायद श्री आनन्दसर तथा श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के लिये श्री प्रवचन फ़रमा रहे हैं कि जैसे इन की सेवा में प्रसन्नता प्राप्त हो रही है वैसे ही इनके बन जाने पर

ये प्रसन्नता दायक होंगे किन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की भविष्य वाणी का संकेत किसी दूसरी ओर था।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रायः ये वचन फ़रमाया करते थे कि समय कीमती है और आप लोगों ने सेवा बहुत करनी है। जो समय हाथ में आया है उसी में ही लाभ उठा लो। मानव जन्म को प्राप्त कर सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो गई है। ऐसे सौभाग्यशाली दुर्लभ संयोग को यूँ ही व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिये। इसीलिए इसी समय में ही ऐसी कमाई कर लो जिस से कि चौरासी लाख योनियों में भटकना ही न पड़े। अतः आप ने स्वयं भी ऐसे ही शीघ्रातिशीघ्र इस श्री आनन्दपुर की रचना को नये रूप और नये ढंग से साज-सँवार दिया जिस की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सन् १९५६ में राजस्थान के कुछ प्रेमियों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को राजस्थान में कृपा करने के लिए आग्रह किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने वहां कृपा की तथा इसी राजस्थान की यात्रा करते हुए एक बार आप राजकोट (गुजरात) पधारे। महात्मा परम विवेकानन्द जी ने वहां के एक सेठ से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के ठहरने के लिये दो तीन दिन के लिए एक कोठी मांगी और उसने दे दी। जब भक्तों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के विराजमान होने के लिए पलंग सजाया और चादर लगाने के लिए दीवार में कीलें लगाने का विचार किया तो सेठ के घर वालों ने कीलें लगाने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम कीलें नहीं लगाने देंगे। यदि तुम्हें कीलें लगानी हैं तो किसी और कोठी की खोज करो। भक्तों ने चादर लगाने का विचार छोड़ दिया। जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने उस कोठी में कृपा की तो श्री दर्शन करने तथा सत्संग की अमृत-वर्षा सुनने के लिए राजकोट और उस के आस-पास की संगत भी आई। उस सेठ के घर के सब सदस्य भी वहां आये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने वचन फ़रमायेः—

"गुरुमुखो! संसार में रहना मना नहीं है परन्तु युक्ति से मुक्ति मिलती है। बिना युक्ति के मनुष्य की सुरति मोह बन्धन में कैद हो जाती है। वह कौन सी युक्ति है कि अन्दर की वस्तु अन्दर रखो और बाहर की चीज़ को बाहर रखो तो

सुखी और आज़ाद रहोगे। उदाहरणतया खाने की चीज़ें ले लो। अखरोट, बादाम, नारियल आदि अनेक वस्तुएँ हैं जिन का ऊपर का भाग बाहर फैंक दिया जाता है और अन्दर का भाग खा लिया जाता है। यदि कोई इस के विपरीत काम करेगा अर्थात् ऊपर के छिलके खाएगा तो उस का स्वास्थ्य बिगड़ जाएगा और हो सकता है कि उसे अपने जीवन से ही हाथ धोने पड़ें। इसी प्रकार पहनने के कपड़ों को ही ले लो। यदि कोई मनुष्य अन्दर पहनने वाली बुनियान को कमीज़ और कोट के ऊपर पहने तो उसे कोई भी बुद्धिमान् नहीं कहेगा। इसी तरह मकान को ही ले लो। मकान के अन्दर तुम ने रहना है परन्तु मकान को हृदय में नहीं बसाना है। जैसे कि नाव जल में रहे तो कोई भय नहीं। परन्तु जब नाव में जल भर जाता है तो नाव डूबने लगती है।

इसी प्रकार अपने मन में बसाने की चीज़ सद्गुरु का शब्द, मालिक का सच्चा नाम है और बाहरी चीज़ें शरीर के उपयोग की हैं अतः सदा अपने मन की निरख-परख करनी चाहिये। एक बार जो चीज़ भी अन्दर चली जाती है वह चीज अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। संसार में जितने लोग भी दुःखी दिखाई देते हैं वे सब अपनी असावधानता का परिणाम भोग रहे हैं। सन्त महापुरुष चेतावनी देते हैं और जीवों के मन का रुख़ बदलने के लिए समझाते हैं। इसलिए गुरुमुखों को सदा ध्यान रखना चाहिए कि अन्दर सद्गुरु का शब्द और ध्यान बसाना है और जल-कमल की भाँति संसार में रह कर सच्चा आनन्द प्राप्त करना है।"

श्री पावन दर्शन कर तथा अमृत-वचन सुन कर सब संगत गद्गद हो गई। उस सेठ के परिवार के सदस्यों पर भी काफ़ी प्रभाव पड़ा। जैसे पारस के छूने से लोहा सोना बन जाता है ऐसे ही उनका मन भी सत्संग के प्रभाव से निर्मल हो गया। परिणाम यह हुआ कि जो पहले दीवार में कीलें लगाने से मना कर रहे थे उन्हीं में से एक ने कहा कि श्री गुरुमहाराज जी की चादर लगाने के लिये कीलें दीवार की अपेक्षा हमारे सिर में गाड़ दी जाएँ तो हम अपने को भाग्यशाली समझेंगे। हमारे अहोभाग्य हैं कि धुरधाम के मालिक हमें घर बैठे ही अपने

पावन दर्शन देने आए हैं। श्री चरणों में विनय की कि हमें क्षमा किया जाए जो हमने भक्तों को दीवार में कीलें लगाने से मना किया। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने बड़े प्रेम से उत्तर दिया कि "सन्त महापुरुषों के दर्शन करने तथा वचन सुनने से वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाता है और उसी ज्ञान से ही मनुष्य सत्-असत् की परख कर सकता है। हम आप से बहुत प्रसन्न हैं।"

इस अत्यधिक परिवर्तन से प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है कि श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की संगति का प्रभाव कैसा अनूठा है। कहां यह हालत कि दीवार में कील लगाने से साधारण हानि भी असह्य थी और कहां यह हालत कि सेवा में अपना सिर भी हाज़िर कर दिया। सत्पुरुषों की यह प्रत्यक्ष कृपा नहीं है तो और क्या है ? थोड़े से समय के दर्शन तथा सत्संग के प्रताप से मोह माया में फंसा हुआ जीव अपने आध्यात्मिक लक्ष्य को समझने लगता है और संसार में रहता हुआ जीव कमल और मुरग़ाबी की भाँति संसार से अलग रहना सीख जाता है। यही मनुष्य-जन्म का वास्तविक उद्देश्य है। इस प्रकार राजस्थान व गुजरात को श्री दर्शन तथा श्री पावन वचनामृत से कृतार्थ कर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दपुर में पधारे।

सन् १९५६ में नए शरणागतों में से कुछ एक ने साधु वेष के लिए विनय की। आप ने उन को साधु वेष प्रदान किया। आप की श्री मौज अपने अनन्य शिष्य (श्री स्वामी जी श्री पंचम पादशाही जी) को साधु वेष प्रदान करने की थी। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने २ सितम्बर १९५६ तदनुसार १८ भादों सं० २०१३ भादों बदी द्वादशी रविवार को इन्हें (श्री स्वामी जी श्री पंचम पादशाही जी महाराज) साधु वेष प्रदान कर इनका शुभ नाम श्री महात्मा दर्शन पूर्ण आनन्द जी रखा। इस समय श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की प्रसन्नता का ठिकाना न था। वे दिल ही दिल में इस प्रसन्नता को अत्यधिक अनुभव कर रहे थे कि उन्होंने इस भक्ति परमार्थ के सूर्य को युग-युगान्तरों तक उदित रखने के कार्य को पूरा किया था। उन के सुरभित उद्यान में एक पुष्प खिला जिसका उन्होंने आरोपण किया था। उन्होंने जैसे अपने श्री परमहंस

दयाल जी श्री पहली पादशाही जी तथा श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी के कार्य को पूर्ण किया कि इस भक्ति रूपी पुष्प की सुगन्धि देश-विदेश के कोने कोने तक फैलनी चाहिए। इस सुगन्धि को जन जन तक पहुँचाने के लिए आप ने तद्-अनुरूप परिश्रमी, कर्त्तव्यनिष्ठ, कान्तिमय वीर योगी को प्राप्त किया।

कुछ झलकियां

१. प्रेमियों के अपने अपने विचार और अपना अपना अनोखा ही प्रेम होता है। कई प्रेमी श्री गुरुमहाराज जी के श्री दर्शन मात्र से, कई मधु मुस्कान से तथा कई मधुर प्रवचन से प्रसन्न होते हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जिस भाव के प्रेमी को देखते उसी रूप में उस का भाव पूरा कर देते। ऐसे ही भक्त बलराम जी के मन में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की निजी सेवा करने की भावना दृढ़ रूप से घर कर गई। उस समय अभी वे अपने राहबर महात्मा ध्यान सुखानन्द जी के साथ सत्संग पर होते थे। इस भावना के साथ साथ उच्च संस्कार तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा की ज़रूरत थी। जैसे पुरुषार्थ और भाग्य इन दोनों में मौलिक भेद नहीं। पुरुषार्थ करने पर भाग्य स्वयं बनता है परन्तु कभी कभी भाग्य ऐसा शक्तिशाली बन जाता है कि किए हुए पुरुषार्थ का फल लुप्त हुआ नज़र आता है।

ऐसे ही भक्त बलराम जी की रुचि सत्संग में कम होती गई। इस निजी सेवा की तीव्र लगन ने उन के मन को बेचैन कर डाला। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता त्यों ही श्री चरणों में पहुँचने की लगन प्रबल होती गई। उन की यह भी इच्छा थी कि मैं श्री आनन्दपुर में श्री पावन दर्शन हर समय करता रहूँ। अन्त में इस भावना ने उन्हें इस प्रेम की लहर में बहा दिया कि उन्होंने श्री चरण कमलों में एक विनय पत्रिका लिखी। इतने प्रेम में दीवाने बन गये कि पत्र डाक (Letter-Box) में डालने की अपेक्षा उसे नदी में फैंक आए। हृदय की गति न जाने उस समय किस धारा में झकोले ले रही थी, उस का उन्हें ज्ञान न था। वापिसी उत्तर की

प्रतीक्षा में दिन रात बाट जोहने लगे। यह दिल की तार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तक पहुँच गई।

इधर करुणा के सागर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपने सेवक को आज्ञा दी कि एक पत्र भक्त बलराम जी को लिखो कि वह शीघ्र ही श्री आनन्दपुर में पहुँच जाए। जब इन्हें कृपा पत्र प्राप्त हुआ तो इन की ख़ुशी का ठिकाना न रहा। वहां से चल कर श्री आनन्दपुर पहुँचे। श्री दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त किया और श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर में ही रहने लगे। इन के दिल में यह इच्छा प्रबल होती गई कि कब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी मुझे श्री चरणों की निजी सेवा का अवसर प्रदान करेंगे।

एक दिन श्री दर्शन के लिए पुष्प लेकर गेट पर अन्य प्रेमियों के साथ जा बैठे। उन दिनों कार में विराजमान हो कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रातः चार बजे भ्रमण के लिए जाया करते थे। उस दिन कुछ देरी हो गई। इस प्रतीक्षा में भक्त बलराम जी बैठे थे। प्रतीक्षा करते करते ध्यान में मग्न हो गए। ध्यान में क्या देखा—उसका वर्णन किया है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कार में विराजमान हैं। उठ कर मैंने (भक्त बलराम जी) साष्टांग दण्डवत् वन्दना की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के आदेश से उठकर हाथ जोड़ कर मस्तक झुकाया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मेरी ओर दृष्टि कर के आशीर्वाद दिया और फ़रमाया—कैसे प्रेमी, क्या हाल है ? मैंने विनय की कि मेरी यह तीव्र अभिलाषा है कि मैं आप के श्री चरणों में रह कर आपकी निजी सेवा तथा श्री दर्शन का लाभ उठा सकूं।

तब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कुछ समय के लिये मौन हो गए और फिर फ़रमाया कि प्रेमी यह इस जन्म में तो असम्भव है, अगले जन्म में वचन रहा कि तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त होगा। मैं वहां रोने लगा कि श्री स्वामी जी ! आप के लिये कुछ भी कठिन नहीं—आप कृपा करो—मैं आप से केवल यही मांगता हूं और मुझे कुछ भी इच्छा नहीं है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि इस के लिए तुम्हें कुर्बानी करनी पड़ेगी। मैंने विनय की कि स्वामिन् ! यह दास हर कुर्बानी के लिये तैयार है। श्री प्रवचन हुए कि केवल तुम्हें ही नहीं, हमें भी

कुछ परिश्रम करना पड़ेगा। इतनी बात ध्यानावस्था में हुई कि कार का हॉर्न बजा और सब प्रेमी चैतन्य हो गए। अपने अपने हाथों में फूल लेकर खड़े हो गए। भक्त बलराम जी भी उठे और श्री दर्शन कर पुष्प अर्पित किए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मुस्करा कर इन को आशीर्वाद दिया।

इसके पश्चात् सन् १६५६ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी 'नया गांव' (श्री प्रयागधाम) पधारे। अन्य सेवकों के साथ भक्त बलराम जी भी गए। यहां बावली की सेवा आरम्भ हो चुकी थी। भक्त जी भी हित चित्त से सेवा करने लगे। जब बावली कुछ गहरी हो गई तो एक दिन इनके दिल में एक आन्तरिक प्रेरणा हुई कि अब कुर्बानी का समय है, तैयार हो जाओ। उसके ठीक दो दिन पश्चात् बावली की सेवा करते हुए इनके सिर पर एक तेज़ धार का पत्थर आ पड़ा। जिस से सिर में तीन चार इंच गहरा ज़ख़्म हो गया। भक्त जी वहीं पर गिर गए।

इससे कुछ समय पहले इन्होंने आपसी चर्चा में कहा कि मेरा विचार है कि मैं सेवा करते हुए शरीर छोड़ूँ। भक्तजनों ने देखा कि इनकी दशा अति शोचनीय थी। देखने से ऐसा लगता था कि सिर के दो भाग हो गए हों। इनके बचने की कोई आशा न थी। सब ने कहा देखो अपने विचार अनुसार ही इसका अन्तिम समय आया। परन्तु किसे क्या मालूम अभी उन की तीव्र भावना कुछ और थी। पूना के बड़े अस्पताल में इनको ले जाकर दिखाया। डॉक्टर ने पूरी जाँच पड़ताल कर कहा कि बचना कठिन है, सिर की हड्डियां चूर चूर हो चुकी हैं। सेवकों ने श्री चरणों में सब वृत्तान्त सूचित किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि उसे अस्पताल में भर्ती कर डॉक्टर को कहो कि अच्छी तरह से चिकित्सा करे, सब कुछ ठीक हो जाएगा।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री प्रवचन सुन कर प्रेमी पुनः पूना गए और चिकित्सा आरम्भ हो गई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी देखो! अपने प्रेमी के लिए क्या कुर्बानी दे रहे हैं कि तीन दिन तक न रुचि से भोग लगाया और न ही किसी के साथ बातचीत की। अन्दर ही अन्दर अपने भक्त को नया जन्म देने की सोच रहे थे। वे अपने सेवक की भावनाओं को पूरा करने में संलग्न थे। सेवक

यह देख रहे थे कि बाहर से तो भक्त जी का शरीर कुछ गर्म था लेकिन होश बिल्कुल नहीं थी।

इधर भक्त बलराम जी ने बेहोशी अवस्था में अन्दर ही अन्दर देखा कि यह धर्मराज के दरबार में पहुँच गए हैं। चित्रगुप्त इन का हिसाब-किताब देख रहा है परन्तु उसे वह मिल नहीं रहा। इस दृश्य को देख कर भक्त जी हैरान हुए और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का स्मरण किया कि मैं कहाँ आ गया हूँ। एक दिव्य ज्योति सुनहरी सिंहासन पर प्रकट हुई। धर्मराज व अन्य गुप्तचरों ने उठ कर वन्दना की। उस दिव्य स्वरूप में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"यह हमारी रूह है, इस ने अभी सेवा करनी है। इसे यहाँ क्यों ले आये हो ? ख़बरदार! आगे से हमारी रूहों को कभी यहाँ मत लाना।" गुप्तचरों ने क्षमा मांगी। न जाने वह दिव्य ज्योति भक्त जी को साथ लेकर कहाँ लुप्त हो गई। यह कार्य वहाँ तो १५ मिनट में पूरा हो गया परन्तु इधर तीन दिन लगे। इधर भक्त जी ने तीन दिन पश्चात् आँख खोली और नाम-उपदेश का उच्चारण करते हुए करवट बदली तथा भक्त जी अन्य सेवकों के साथ बातें करने लगे। यह देखकर डॉक्टर दंग रह गये कि इन के बचने की तो आशा ही न थी। डॉक्टरों ने कहा कि इन का दूसरा जन्म है। इसके बाद भक्त जी के सिर की हड्डियाँ धीरे धीरे जुड़नी शुरु हो गईं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्तों को फ़रमाया कि उस का पूरा हाल हमें प्रतिदिन देते रहा करो। भक्त बलराम जी ने पाँचवें दिन पूरी घटना दूसरे सेवकों को सुनाई और सेवकों ने श्री चरणों में आकर विनय की। श्री सद्गुरु दीन दयाल जी मुस्करा कर फ़रमाने लगे—"इस का सचमुच ही दूसरा जन्म है। पहला जन्म तो इस का समाप्त हो गया है।" कुछ समय के पश्चात् भक्त जी बिल्कुल ठीक हो गए और उन्होंने अपनी तीव्र अभिलाषा को पूरा किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की निजी सेवा प्राप्त कर ली।

कितनी दयालुता होती है महापुरुषों में। संसारी जीवों व अपने प्रेमियों के लिए कितने ही कष्ट सह कर उन की भावनाओं को पूरा कर उनका कल्याण करते हैं। जिस ने भी सच्चे हृदय से उस दर पर पुकार की, प्रभु को अपने प्रेम-

पाश में बांधा, वह पुकार कभी भी खाली नहीं लौटती। इस के लिए अटल विश्वास, अचल निष्ठा, त्याग और प्रेम की आवश्यकता है। जिस ने भी कुछ खोया उसने ही कुछ प्राप्त किया। उस करुणामय भगवान् के भण्डार में तो किसी वस्तु की कमी नहीं है। प्रत्येक वस्तु वहां से प्राप्त हो सकती है जो कुछ इन्सान प्राप्त करना चाहे। देरी अपनी ओर से है महापुरुषों की ओर से नहीं। भक्त बलराम जी बड़े हित व पूर्ण श्रद्धा से दरबार की सेवा करने लगे। इस के उपरान्त साधु वेष में (महात्मा आत्म निर्लेपानन्द जी) अन्तिम समय तक श्री दरबार की सेवा बड़े उत्साह व हित चित्त से करते रहे।

२. एक बार कुछ सत्संगियों ने मिलकर श्री चरणों में विनय की कि ऐ प्रभो! हमें संगत अत्यधिक विवश करती है कि एक बार श्री सद्गुरु दीन दयाल जी को विनय कर नागपुर में ले आवें ताकि हम सब श्री दर्शन से कृतार्थ हों। कुछ संगत ऐसी थी जो किन्हीं कारणों से श्री दर्शन के लिये आ भी नहीं सकती थी और श्री दर्शन की चाह भी उन्हें अत्यधिक थी। प्रेमियों की इस तीव्र उत्कण्ठा ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को नागपुर पधारने के लिए विवश किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उनकी विनय स्वीकार कर नागपुर पधारे।

नागपुर में प्रेमियों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का भाव भीना स्वागत किया। सभी प्रेमी व जिज्ञासु रात दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन तथा श्री वचन अमृत श्रवण कर कृतकृत्य हो रहे थे। एक दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रवचन फ़रमाए:—

"जिस प्रकार साधारण संसारी मनुष्य दुनियादारी के व्यवहार को अपना मान कर उस में अधिक रुचि व लगन से काम करते हैं और अपनी सुरति की धार उसमें लगा देते हैं क्योंकि इसी काम को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य समझ रखा है। वह काम चाहे कितना ही कठिन क्यों न हो उस में अपनी सुरति की धार को लगा कर सफलता प्राप्त करते हैं और इसी काम को ही अपनी लाभ-हानि समझते हैं।

जिस मनुष्य ने जैसा काम करना होता है उसी के अनुसार सामान इकट्ठा करता है। जैसे एक कपड़ा बेचने वाला मनुष्य अपने व्यवहार के अनुसार उसी प्रकार का सामान गज़, कैंची, कपड़ा आदि रखता है क्योंकि उसका निशाना (लक्ष्य) यही कुछ है और अपने पूरे ख़्याल की शक्ति को उसी में ख़र्च करता है। इसी प्रकार परमार्थ में भी जीव को अपनी सुरति व ख़्याल की शक्ति को लगाना चाहिये। दिल में हर समय मालिक की प्राप्ति के ख़्याल को दृढ़ करो। सद्गुरु की सेवा को अपना काम समझ कर अपने दिल की गहराई में उस को स्थान दो। यदि काम को बिना रुचि व बिना किसी ख़्याल के किया गया तो सफलता का प्राप्त होना कठिन है। सद्गुरु की सेवा और मालिक की बन्दग़ी में देखने मात्र से तो कोई लाभ-हानि दिखाई नहीं देती परन्तु आन्तरिक दृष्टि में बहुत अन्तर है। जो काम रुचि से किया जाए उसका परिणाम कुछ और है और जो बिना रुचि से किया जाए उसका परिणाम कुछ और है।

अब सोचना इस बात को है कि जो काम दिल लगा कर व रुचि से किया जाये उस से बहुत लाभ है। श्रद्धा भाव व दिल लगा कर सेवा करने से मन की दशा कुछ की कुछ हो जाती है। महापुरुषों ने मन को कव्वे के समान दर्जा दिया है। सद्गुरु की सेवा, भजनाभ्यास व सत्संग से मन की अवस्था कव्वे से हंस की तरह हो जाती है। कव्वे की खुराक मांस है और हंस की मोती। कव्वा गन्दग़ी पर बैठता है और हंस मानसरोवर में रहता है। देखने में भी कव्वा काला होता है और हंस दूध की तरह सफ़ेद होता है। परन्तु मन की प्रकृति, मन का स्वभाव तभी बदल सकता है जब मन को सेवा, भजनाभ्यास व सत्संग में लगाया जाये। इन गुणों को ग्रहण करने से मन की हालत पलट जाती है।

॥ दोहा ॥

पहले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुग चुग खात॥

पहले इस जीव का मन विषय-विकारों की गन्दग़ी (काम, क्रोध, लोभ, मोह

आदि) की तरफ़ दौड़ता था। भजनाभ्यास व सत्संग से मन विषय विकारों की गन्दगी को छोड़ कर विवेक-विचार व भजन—कीर्त्तन की तरफ़ लग जाता है और अपनी पुरानी आदतें भूल जाता है। इस मन को सन्त महात्माओं ने अलग अलग नामों से पुकारा है। किसी ने कहा है कि मन हाथी की तरह बलवान् है, किसी ने सांप का दर्जा दिया है, किसी ने कव्वे के साथ इस की तुलना की है। किसी ने मन को भूत कहा है। परन्तु मन को कुछ ही समझ लिया जाए इसे सुधारने का, इसे वश में करने का ढंग समय के सन्त सद्गुरु से ही मिल सकता है। सन्त सद्गुरु ही मन रूपी सांप को पकड़ने का मन्त्र जानते हैं। उनके बताये हुए उपाए से मन सरलता से वश में हो जाता है और हाथी की तरह बलवान् होने पर भी निर्बल बन जाता है। इस मन को सत्संग, भजनाभ्यास और वैराग्य के ही शस्त्रों से काबू किया जा सकता है। जो जीव अपने मन को जितनी रुचि व लगन के साथ सत्संग व सद्गुरु की सेवा की ओर लगावेगा उतना ही अधिक मन को काबू करने में सफलता प्राप्त करेगा। जैसे शत्रु के साथ लड़ने में पूरी हिम्मत व दिलेरी होनी चाहिये। वैसे मन रूपी शत्रु पर विजय पाने के लिये दिल में किसी प्रकार की कमज़ोरी नहीं होनी चाहिये तभी मन रूपी शत्रु को जीता जा सकता है। जैसे कहा भी है:—

मन रिपु जीता, सब रिपु जीते।
मन रिपु जीता, सब रिपु जीते॥

इन पंक्तियों के पढ़ने में तो कोई अन्तर दिखाई नहीं देता परन्तु इनके अर्थ में बहुत अन्तर है अर्थात् इस का अर्थ यह है कि जिस ने मन रूपी शत्रु को जीत लिया उसने अपने सब शत्रुओं को जीत लिया। यदि किसी का मन रूपी शत्रु जीवित है तो उस के सब शत्रु जीवित हैं। इस मन रूपी शत्रु को नियन्त्रण में रखने के लिये अपने शरीर को, अपने ख़्यालों को सद्गुरु की सेवा, भजनाभ्यास व सत्संग में लगाना चाहिये। मन का स्वभाव बुराइयों की तरफ़ जाने का है। सद्गुरु के शब्द से ही मन को बुराइयों की ओर से रोका जा सकता है। इसलिये

जितनी रुचि व लगन से अपने ख़्यालों को सद्गुरु के शब्द में लगाया जाएगा उतनी ही शीघ्रता से इस काम में सफलता प्राप्त होगी। प्रत्येक मनुष्य को कोशिश करके अपने मन पर विजय प्राप्त करने के लिये समय के सन्त सद्गुरु की सेवा व उनके बताए हुए तरीके से मन को जीतना चाहिए। जिस ने स्वयं को मन की पराधीनता से बचा लिया, जिस ने मन पर विजय प्राप्त कर ली, उस का जीवन सफल हो गया ।

तीन चार दिनों के पश्चात् जब नागपुर से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अन्य स्थान पर पधारने लगे तो प्रेमियों ने काफ़ी अनुनय विनय की--प्रभो ! कुछ दिन और यहाँ पर रह कर प्रेमियों की प्यास बुझाइये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया--अब हमें अन्य स्थान पर अवश्य जाना है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज देखकर प्रेमियों ने प्रथम श्रेणी का डिब्बा रिज़र्व करा दिया था। अतः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी नियत समय पर अपने सेवादारों तथा प्रेमियों सहित प्लेटफ़ार्म पर पहुँचे। रेलगाड़ी आई और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उस काम्पार्टमेंट में विराजमान हो गए। सारी संगत प्रेम में विभोर होकर प्रेमाश्रु बहाती हुई श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन कर रही थी। प्लेटफ़ार्म पर कुछ दूरी पर तीन चार अंग्रेज़ आश्चर्य से इस दृश्य को देख रहे थे। उन्होंने परस्पर इस बात की चर्चा अंग्रेज़ी में की (क्योंकि वे हिन्दी भाषा न जानते थे) कि भारतवर्ष सन्त-महापुरुषों, ऋषियों-मुनियों की तपोभूमि है। त्रेता में श्री रामचन्द्र जी महाराज तथा द्वापर में भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने भारतभूमि पर अवतार लेकर इसे कृतार्थ किया था और अब कलियुग में भी वही सन्त स्वरूप में जीवों का कल्याण कर रहे हैं, यह भी वही अवतार ही प्रतीत होते हैं। समीप ही महात्मा सुख सागरानन्द जी उन की इन बातों को सुन रहे थे। प्लेटफ़ार्म से गाड़ी ने प्रस्थान किया। सब संगत प्रेमाश्रु बहाते हुए घरों को लौट पड़ी। महात्मा सुख सागरानन्द जी उनकी अंग्रेज़ी की यह बात सुन कर मन ही मन एक लम्बी सांस लेते हुए (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के विछोह में) कहा--सत्य हैं आप की बातें, लेकिन परख की दृष्टि रखने वाले ही इस सन्त रूप भगवान् को पहचान सकते हैं।

इतने में उन्होंने महात्मा जी को समीप बुलाया तथा अंग्रेज़ी भाषा में ही पूछा—ये महापुरुष कहां से आए हैं ? ये तो कोई महान् हस्ती दिखाई देते हैं। महात्मा जी ने उत्तर दिया कि यह महापुरुष भारत में मध्य प्रदेश में स्थित श्री आनन्दपुर से आये हैं। ये उच्च महान हस्ती के महापुरुष हैं, लेकिन बाहरी आँखों से उन की महानता को जानना कठिन है। किसी सौभाग्यवान् को ही उनके श्री दर्शन प्राप्त होते हैं। उन व्यक्तियों ने कहा कि यदि हमें पहले पता होता तो हम भी उन की पावन संगति को प्राप्त कर कृतार्थ हो जाते।

इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन गुणानुवादों का गायन करते हुए महात्मा जी आश्रम को लौट आए।

३. एक बार १९५९ में दीपावली का पर्व था। श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के पावन श्री दर्शन के लिए संगतें आ रही थीं। अक्टूबर का महीना था। अशोकनगर के रास्ते संगतें श्री आनन्दपुर आ रही थीं।

एक घटना घटित हुई कि एक बस जिस में लगभग पचास-साठ सवारियां थीं। उस बस के ड्राइवर महात्मा दर्शन विवेकानन्द जी थे। अशोकनगर से १४ मील की दूरी पर विजयपुरा के पास बस का टाईराड खुल गया। बस अपनी पूरी गति पर चल रही थी। वह काबू से बाहर हो गई। महात्मा दर्शन विवेकानन्द जी के होश उड़ गए और उनके मुंह से आवाज़ निकली—"ऐ श्री सद्गुरु दाता दयाल जी ! अब आप ही हमारे रक्षक हो।"

इतना सुनते ही बस वाली संगत समझ गई कि अब बस बे-काबू है। सब ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का सुमिरण किया। बस तो एक दो बार टेढ़ी होकर खड्ड में जा गिरी। दूसरी बस जो उसके पीछे आ रही थी वहां आ कर रुक गई। उसके ड्राइवर व संगतों ने नीचे उतर कर पहली बस में से लोगों को निकालना आरम्भ किया। सब का यही अनुमान था कि एक व्यक्ति भी जीवित न बचा होगा। किन्तु सब हैरान थे कि साधारण चोट के अतिरिक्त किसी को न तो हड्डी

आदि की चोट आई और न ही कोई ज़ख्मी हुआ। उस समय सब को दूसरी बस पर बिठाकर श्री आनन्दपुर लाया गया। थोड़ी बहुत मरहम पट्टी की गई। सब के मुख से यही शब्द निकल रहे थे कि श्री सद्गुरुदेव जी ने हमारा सूली का कांटा बना दिया है। उन की कृपा से हम बच गये हैं।

इधर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दपुर में जहाँ चहार दीवारी (कोट) की सेवा हो रही थी समीप ही कुर्सी पर विराजमान् थे। ठीक सायं पाँच बजे जब कि उधर बस टेढ़ी हो रही थी, एकदम कुर्सी से उठ बैठे और निज कर कमलों को दो तीन बार नीचे ऊपर किया। लगभग पचास-साठ सेवक समीप ही सेवा में लगे हुए थे। सेवादार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के समीप आए और विनय की—प्रभो ! क्या आज्ञा है ? श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि बस एक काम था वह हो गया है। सब विस्मित होकर देख रहे थे कि कौन सा काम था जो हो भी गया है।

रात को महात्मा दर्शन विवेकानन्द जी जो अपने मन ही मन दुःखी थे कि मेरे कारण सब को कष्ट हुआ है श्री चरणों में साष्टांग दण्डवत् वन्दना की और विनय की कि दीन दयाल जी ! मुझ से बहुत बड़ी भूल हुई है, यह तो श्री सद्गुरु देव महाराज जी की कृपा थी कि किसी की मृत्यु नहीं हुई, नहीं तो बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने (घट घटवासी अन्तर्यामी होते हुए भी) सारा वृत्तान्त महात्मा जी से पूछा। महात्मा जी ने ज्यों की त्यों सब घटना श्री चरणों में प्रस्तुत की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि मशीनरी के बिगड़ने का पता नहीं चलता, घबराओ मत, कुदरत ने सब बचाव कर दिया है।

यह बिल्कुल सत्य है कि महापुरुष, सन्त सद्गुरु अपने भक्तों को कष्ट में देख कर सहन नहीं कर सकते। यह परम्परा तो इन की आरम्भ से चली आती है। उस समय वे लोग जो उस दिन सायं ५ बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के कर-कमलों को ऊँचा-नीचा करते देख रहे थे, सब समझ गये कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अपनी मौज में क्या लीला कर रहे थे।

वैसे तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रत्येक क्षण प्रत्येक समय सहायता करते हैं। वे अंग-संग हैं। जिस ने भी उन को पुकारा वे रक्षा के लिए आते हैं। उनकी इस कृपा, इस दयालुता का कहां तक वर्णन किया जाए कि उन्होंने कहां कहां और कब, कैसे हम अधम जीवों की सहायता की। इस का विवरण देना कठिन नहीं महा कठिन है। महापुरुषों का यह स्वभाव ही है कि अपने पर कष्ट सहन कर जीवों का कल्याण करते हैं। अगणित ऐसे उदाहरण हैं जिनका वर्णन करना असम्भव सा है कि किस प्रकार से उन्होंने सहायता की। कभी किसी की सहायता के लिए वकील बने तो कभी थानेदार। कभी पथ-प्रदर्शक बने तो कभी सखा बन कर सहायता दी। यह तो अपने अनुभव से वे ही जान सकते हैं जिन्होंने समय पर दामन पसारा है और उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मालिक ने उनपर कितना उपकार किया। कितने कितने कष्ट सहन किये। किस प्रकार हमें इस मंज़िल पर ला कर खड़ा कर दिया। वे सदा संग साथ में हैं और रहेंगे। दृष्टि चाहिये देखने वाली, बुद्धि चाहिये समझने वाली।

४. भक्ति पथ पर जिसने भी दृढ़ निष्ठा से पग रखा, बाधाएं उसके मार्ग में अवश्य ही आएंगी। यदि श्री सद्गुरु देव महाराज जी की कृपा का आश्रय लेकर कदम आगे की ओर बढ़ाता गया तो उसके मार्ग से बाधाएं स्वयं दूर हो जाएंगी। अटल विश्वास व श्रद्धा के सम्मुख कोई भी ऐसी शक्ति नहीं जो न झुक पाए। ऐसा ही एक वृत्तान्त है भक्त गोबिन्दराम जी का।

बचपन में भक्त गोबिन्द राम जी की लगन, श्रद्धा व प्रेम सन्त महात्माओं से अधिक था। माता पिता के इकलौते लड़के थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी उस समय साधु वेष में सिन्ध को कृतार्थ कर रहे थे। उनको श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की पावन संगति का अवसर प्राप्त हुआ। इनके माता पिता को ज्योतिषियों ने बताया था कि इस लड़के को पानी के समीप मत जाने दिया करें, मृत्यु का भय है। अतः माता पिता ने भी भक्त गोबिन्द राम जी को समझा दिया कि पानी के समीप अर्थात् नदी, नाले व तालाब में मत नहाया

करें ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (साधु वेष में) नहर पर स्नान के लिए कुछ सेवकों को साथ लेकर जाते थे । सिन्धु नहर में भक्तों सहित स्नान कर पुनः अनुपम लीला करते थे । भक्त गोबिन्दराम जी भी अन्य भक्तों के साथ सम्मिलित होकर नदी पर श्री दर्शन के लिये जाते । सभी भक्त तो स्नान करते परन्तु यह एक ओर तट पर एक पत्थर पर बैठ जाते व आनन्दमयी लीला को निहारते रहते ।

एक दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निजी मौज से भक्त जी को समीप बुला कर पूछा कि तुम स्नान क्यों नहीं करते ? भक्त जी ने माता पिता द्वारा बताई गई शंका का वृत्तान्त आपके श्री चरणों में विनय किया । आपने फ़रमाया–कि भय की कोई बात नहीं–आओ नदी में निःशंक होकर स्नान करो । भक्त जी श्री आज्ञा पाकर नदी में कूद पड़े । अन्य भक्तों तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ स्नान का आनन्द लिया । स्नान के पश्चात् तट पर आकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सब को प्रसाद दिया और भक्त जी को पुनः फ़रमाया कि तुम निश्चिन्त होकर स्नान किया करो । उस दिन से भक्त जी नित्य प्रति नदी में स्नान करने लगे और उन का भय दूर हो गया तथा जो आशंका ज्योतिषियों ने प्रकट की थी, वह भी सब दूर हो गई ।

अचल निष्ठा से भक्त जी अब दिन रात सेवा व प्रेम में निमग्न हो आश्रम पर आने लगे । इनके पिता जी ने जब इनकी बढ़ती हुई लगन को देखा तो ज्योतिषियों के पास जाकर इन का उपाए पूछने लगे कि कैसे इस मार्ग से इन को हटाया जाए । ज्योतिषी बड़े ध्यान से, बड़े गर्व से कहते कि हम तुम्हें रख-धागा कुछ देते हैं । बस एक बार घोल कर पिला दो तो जीवन भर उधर मुँह भी न करेगा । इस प्रकार कितने ही जादू-मन्त्र चलाये परन्तु इधर दशा ऐसी बनती जा रही थी कि दिन प्रतिदिन प्रेम अधिक बढ़ता जा रहा था । यहां तक कि रात्रि समय भी इन्होंने घर आना छोड़ दिया ।

इस प्रकार यह बात प्रसिद्ध हो गई कि भक्त गोबिन्द राम जी साधु-सन्तों के

सेवक बन गये हैं और इन पर किसी का कोई वार नहीं चल सका। एक दिन भक्त जी ने सब कथा श्री चरणों में सुनाई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी (साधु वेष में) श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री दर्शन के लिए जा रहे थे तो भक्त जी भी साथ गये। वहां जा कर श्री चरणों में सारा वृत्तान्त प्रस्तुत किया। श्री प्रवचन हुए कि निश्चिंत होकर भजन-अभ्यास करते रहो जिस से कुछ भी प्रभाव उन वस्तुओं का तुम पर न पड़ेगा। भक्त जी ने ऐसा ही किया।

एक बार एक प्रसिद्ध ज्योतिषी ने इनके पिता जी को कहा कि मेरा वार न कभी ख़ाली गया है न जाएगा। परन्तु एक बार लड़के को साथ ले आओ तो उस के कदम फिर कभी उस ओर जाने ही न पाएँगे। इनके पिता जी इन्हें साथ ले गये। ज्योतिषी ने देखते ही कह दिया कि आज के पश्चात् इन्हें यहां पुनः कभी मत लाना। इनके सद्गुरु पूर्ण हैं; इन पर कोई वार नहीं चल सकता। इस प्रकार से यहां के लोगों की श्रद्धा भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के प्रति बढ़ गई और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने दर्शा दिया कि नाम के जपने से सब रोग दूर हो जाते हैं। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है:—

॥ दोहा ॥

कबीर सतगुरु नाम से, कोटि विघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा, केता काठ जराय ॥

जैसे अग्नि की चिनगारी से कितनी ही लकड़ियां जल जाती हैं उसी प्रकार नाम के जपने से करोड़ों बाधाएँ दूर हो जाती हैं। भक्त जी के सब सम्बन्धी भी श्रद्धालु बन गए। पुनः भक्त जी के पिता जी तथा चाचा जी ने भैन (सिन्ध) में सत्संग आश्रम भी बनवा दिया।

पुनः भक्त जी श्री दरबार में शरणागत होकर तन, मन व धन से सेवा करने लगे। अब साधु वेष में उनका नाम महात्मा आत्म अखण्डानन्द जी है। वे दरबार की हित चित्त से सेवा कर रहे हैं।

५. एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी (साधु वेष में) पंजाब में रमता राम घूमते फिरते प्रचार कर रहे थे। जिस गांव में जाने की मौज थी शाम को वहाँ जाने का विचार किया। गर्मी का मौसम था, इसलिये एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। पास ही एक कुआँ था, वहां पर कुछ स्त्रियां पानी भरने के लिये आईं और अपने अपने मटकों में जल भर कर वापिस चली गईं। उनमें एक वृद्धावस्था की औरत भी थी। वह आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी) के पास आई और कहने लगी—महाराज जी! आप के लिये मैं भोजन घर से ले आती हूँ। आपने फ़रमाया—हमें भूख नहीं है। उस वृद्धा स्त्री ने फिर विनय की कि गर्मी का मौसम है, मैं जाकर छाछ ले आती हूँ। इतना कहकर वह घर चली गई परन्तु घर जाकर घरेलू धन्धों के कारण वह छाछ लाना भूल गई। डेढ़-दो घण्टे के पश्चात् उसे याद आया कि मैं तो सन्तों को छाछ के लिये कह आई थी। अपनी भूल पर पश्चात्ताप करते हुए शीघ्रता से गिलास भरा और आपके पास आई तथा छाछ का गिलास आपके कर-कमलों में देकर प्रार्थना की—महाराज जी! हम गृहस्थी आदमी हैं। घर के धन्धों में उलझ कर मैं छाछ लाना भूल गई। आप यह सुनकर मुस्कराए और फ़रमाया कि "इसी तरह से इस मनुष्य को संसार में आकर संसार के धन्धों में फंसकर मालिक का भजन करने का भी ध्यान नहीं रहा। क्योंकि मनुष्य तो संसार में आया ही मालिक के भजन के लिये है परन्तु संसार के कामों में इतना उलझ गया है कि मालिक के भजन को बिल्कुल भूल बैठा है। जो लोग भजन नहीं करते वे बाद में पश्चात्ताप करते हैं। इसलिये तुम्हें भजन करना भी याद रखना चाहिये। प्रतिदिन मालिक का भजन किया करो।

इन वचनों का उस वृद्धा स्त्री पर इतना प्रभाव पड़ा कि आपको घर ले जाने के लिये विवश किया। आपने उसकी विनय स्वीकार कर उसके घर कृपा की। तीन चार दिन तक सत्संग प्रचार होता रहा। आपके सत्संग में इतना रस व जादू था कि गांव के लोग काफ़ी संख्या में आपके श्रद्धालु बन गए। संस्कारी आत्माओं को नाम उपदेश भी दिया। दिन प्रतिदिन इन लोगों का प्रेम श्री सद्गुरुदेव महाराज

जी के चरण-कमलों में बढ़ता गया। तीन चार दिन के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आगे जाने को तैयार हुए परन्तु गांव के लोग कहाँ मानते थे। उनके प्रेम व श्रद्धा को देखकर सात दिन तक आपको वहाँ ठहरना पड़ा।

६. एक बार आपने किसी स्थान पर कृपा फ़रमाई। वहां पर एक भक्त थोड़ी सी संगत श्री चरणों में बैठी देख कर श्रद्धा एवं प्रेमयुक्त थोड़ा सा प्रसाद बनाकर ले आया। उस समय तक कुछ संगत और भी आ गई थी। जब वह श्री चरणों में प्रसाद भेंट करने के लिये आगे आया तो उसने विनय की कि प्रभो! यह प्रसाद तो बहुत थोड़ा है। यदि आप आज्ञा दें तो और बनाकर ले आऊँ। आपने फ़रमाया कि तुम्हारी भावना और श्रद्धा से बना हुआ यह थोड़ा भी बहुत है। घबराओ मत, यह तो सब के लिए काफ़ी है।

उस दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वयं निज कर कमलों से प्रसाद बाँटना आरम्भ किया। उस बर्तन से थोड़ा सा कपड़ा ऊँचा किया और खुले दिल से सब को प्रसाद देने लगे। उस अनुमान से भक्त जी ने सोचा कि यह प्रसाद अभी समाप्त हो जाएगा, सब को पूरा न हो पाएगा। उसके आश्चर्य की सीमा न रही यह देख कर कि कुछ संगत और भी आ गई परन्तु श्री सद्गुरुदेव महाराज जी सब को बराबर प्रसाद देते गये। अन्त में कुछ प्रसाद बर्तन में शेष भी बच गया।

जब संगत चली गई तो उस भक्त ने श्री चरणों में विनय की कि दीन दयाल जी! सचमुच ही आप भक्त वत्सल हैं। आप की कृपा तथा शक्ति से प्रसाद पूरा हो गया है। आप ने फ़रमाया—"यह सब तुम्हारी श्रद्धा और प्रेम की शक्ति है।" सचमुच ही महापुरुषों की लीला न्यारी होती है। वे समय समय पर अनुपम शक्तियों को गुप्त रूप से दर्शाते हुए भी न्यारे बने रहते हैं।

यहाँ पाँच सात झलकियों को प्रस्तुत किया गया है। महापुरुषों के जीवन में परोपकारिता, परमार्थ आदि गुण तो स्वाभाविक होते हैं। उन की समस्त झलकियों का विवरण देना अति कठिन है। अतएव तुच्छ बुद्धि द्वारा कुछ गुणानुवादों से लेखनी को कृतार्थ किया गया है।

सन् १६६१ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने दूसरा बोरिंग (Tube-well) बनाने की श्री आज्ञा फ़रमाई। प्रेमियों ने विनय की—प्रभो! पहले बोरिंग को बनाने में ४ वर्ष लगे हैं तथा ८४० फुट पर पानी निकला है। क्या इसे बनाने में भी इतना ही समय लगेगा? श्री प्रवचन हुए कि आप कार्य आरम्भ करो अब पानी शीघ्र ही निकल आयेगा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं चल कर उस स्थान पर गये जहां बोरिंग बनना था। वह स्थान पहली बोरिंग से लगभग एक किलोमीटर दूर पैट्रोल पम्प के पास है। वहां चरण स्पर्श कर फ़रमाया कि यहां पर आरम्भ करो। सेवकों ने कार्य आरम्भ किया। बोरिंग की मशीन (पत्थर काटने की) यहां लगा दी गई। पाँच छः मास के पश्चात् यह देखकर सब को आश्चर्य हुआ कि केवल ८५ फुट की गहराई पर पानी की वही पाताली गंगा निकली जो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दसर के लिए फ़रमाई थी। सभी प्रेमी श्री आनन्दसर की सेवा करते समय यह देखते थे कि कहां से पाताली गंगा निकलनी है। यह तो चारों ओर से बराबर बनता जा रहा है।

महापुरुषों के रहस्य प्रकृति भी नहीं समझ सकती तो जीव कैसे समझने में सफल होगा। इसी बोरिंग (Tube-well) के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का संकेत था। जब श्री आनन्दसर पूरा हो गया तो इधर यह बोरिंग भी तैयार हो गया जिस से पानी की कमी न आने पाई। पहले श्री आनन्दसर का आठवाँ भाग पहली बोरिंग से एक सप्ताह में भरा गया था अब पूरा श्री आनन्दसर दोनों बोरिंग से एक सप्ताह में भरा जाने लगा। इस बोरिंग के समीप ही एक बहुत बड़ा तथा ऊँचा टैंक (टांची) बनाया गया। जिस में हज़ारों गैलन पानी जमा हो सकता है और उस पानी को एकत्र कर सब जगह वितरित किया जाता है। सब्ज़ियाँ, बाग़-बग़ीचे और बढ़ा दिये गये।

सन् १६६२ में श्री आनन्दसर सम्पूर्ण हो गया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेहत अब सुकोमल हो गई थी फिर भी परमार्थ-राह में पूर्ववत् आगे की ओर बढ़ रहे थे। अष्टग्रह ने लोगों को आतंकित कर दिया। ज्योतिषियों ने यह घोषणा कर दी कि अब प्रलय होने वाली है। सभी प्रेमिजनों तथा सेवकों ने (जो

बाहर रहते थे) श्री चरणों में विनय पत्रिकाएँ लिखीं कि हमें श्री आनन्दपुर आने की आज्ञा दी जाए। श्री सद्गुरुदेव दयाल जी ने कृपा पत्रों में ही ये वचन लिखवाए कि यहां आने के लिए किसी को मना नहीं है। किन्तु घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। ध्यान, भजन-सुमिरण में दिल लगाओ, सब ठीक हो जाएगा। फिर भी दिल में भय अधिक होने से कई प्रेमी श्री आनन्दपुर में आ गए। उनका यह ख़्याल था कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में पहुँच कर निर्भय हो जाएँगे। श्री आनन्दपुर में काफ़ी संगत आ गई।

उसी दिन रात्रि समय एकदम सर्दी बढ़ गई। लोगों ने समझा शायद अब कुछ होने वाला है परन्तु हुआ कुछ भी नहीं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख कौन अपनी शक्ति दिखा सकता है, कौन ऐसा साहस कर सकता था। लोगों को धैर्य देने के लिये एक फ़रवरी से पाँच फ़रवरी तक रात्रि समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री प्रवचनों से सब को निहाल करते रहे। प्रथम फ़रवरी को ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने यह प्रवचन किए कि जिसे गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास और पूर्ण श्रद्धा हो वे हाथ खड़ा करें। प्रेमियों ने हाथ खड़े किए, पुनः नीचे करवाए। इस प्रकार से क्रम से दो तीन बार हाथ ऊपर नीचे करवा कर पुनः श्री प्रवचन फ़रमाए—"यहाँ पर भय की कोई बात नहीं। भय स्वयं गुरुमुखों से डरता है। तुम निर्भय पद के इच्छुक हो, निर्भय बनो। कुछ भी होने वाला नहीं है। इसलिए भजन सुमिरण में अपना चित्त लगाओ।"

पुनः २ फ़रवरी १९६२ के दिन आप ने श्री दर्शन के समय प्रवचन फ़रमाए:—

"संसार को आम तौर पर दुःखों का घर कहा गया है। सन्तों की भाषा में इसे भवसागर का नाम दिया गया है। साधारण संसारी जीवों की अवस्था का अनुमान लगाया जाए तो दुःख, कल्पना, अशान्ति और क्लेश के दृश्य ही बहुधा देखने में आते हैं। मानो संसार रूपी समुद्र में क्लेश, कल्पना और अशान्ति की भयानक लहरें उठ रही हैं, जिन में जीव अधिकतर ग़ोते खा रहे हैं। कभी सुख है कभी दुःख, कभी लाभ और कभी हानि, कभी हर्ष कभी शोक, कभी भला कभी

बुरा, कभी मान है कभी अपमान, कभी ऊँच तो कभी नीच। यही साधारणतया संसारी जीवों की अवस्था है। इसी को ही भवसागर का नाम दिया गया है। इसी को ही भवसागर में ग़ोते खाना कहा जाएगा। कारण यह है कि चारों ओर काल और माया का पसारा है, जिसमें संसारी जीव भटक रहे हैं। यह गतिशील कालचक्र है जो अपने साथ संसार के प्राणियों को भी चक्र में डाल रहा है।

इसी संसार में इन्सान को रहना भी है। यहां से भाग कर कहां जाएगा? परन्तु संसार-समुद्र अत्यन्त वेग से ठाठें मारता हुआ दिखाई देता है तथा इस समुद्र में काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार, आशा, तृष्णा, राग-द्वेष, ईर्ष्या आदिक अनेकानेक समुद्री जन्तु जीव को हड़प लेने की चिन्ता में मुख फाड़े घूम रहे हैं। ऐसी अवस्था में जीव को बड़ी होशियारी तथा ख़बरदारी से अपने को बचाना होगा अन्यथा उसका कुशल नहीं।

तब संसारी जीव संसार सागर में ग़ोते खाने तथा इन भयानक शत्रुओं का ग्रास बनने से स्वयं को कैसे बचाए? यह एक असाधारण और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है जो प्रत्येक प्राणी के सम्मुख उपस्थित है।

संसार सागर में ग़ोते खाते हुए जीव के बचने का यही उपाय है जो कि सन्तों ने बतलाया है। अर्थात् मालिक के चरणों का आधार लेकर वह इस समुद्र से पार हो सकता है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय बचने का दिखाई नहीं देता। इस पर सन्तों के भी वचन हैं:—

॥ दोहा ॥

सत्तनाम की नाव है, सतगुरु खेवनहार।
चप्पू प्रेम भक्ति का, खेहि लगावैं पार॥

यदि भवसागर से पार होने की आशा है तो मालिक के सच्चे नाम की नौका में जीव सवार हों जिसके मल्लाह सद्गुरु हैं और प्रेम भक्ति के चप्पू से खे कर जीवों को पार लगाना ही उनका काम है। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी भी यही फ़रमाते हैं:—

गुरु से कर मेल गंवारा, का सोचत बारम्बारा ॥
जब पार उतरना चहिये, तो केवट से मिलि रहिए ॥
जब उतरि जाए भव पारा, तब छूटै यह संसारा ॥
जब दरसन देखा चहिये, तब दर्पण माँजत रहिए ॥
जब दर्पण लागत काई, तब दरसन कहँ ते पाई ॥

(आनन्द–शब्द–सार)

अर्थ–ऐ जीव ! यदि संसार की कल्पना, क्लेश तथा अशान्ति से छुटकारा पाना है तो गुरु से मिलने का यत्न कर। इस में बार बार सोचने या विचारने की क्या आवश्यकता है। सीधी सी बात है जिसे पार उतरना हो वह केवट (-मल्लाह) से मिले। जब तू केवट सद्गुरु से मिल कर भवसागर के पार हो जायेगा तब संसार के जितने भी क्लेश हैं वे सब अपने आप ही छूट जाएँगे। साथ ही जिसे अपना मुख देखने की इच्छा हो उसे चाहिए कि दर्पण को माँज कर साफ़ करे तब मुख साफ़ साफ़ देखने में अपने आप ही आ जाएगा। इसी प्रकार जब तक मन रूपी दर्पण पर मायावी संस्कारों की मैल चढ़ी है तब तक भला आत्म-स्वरूप कैसे देखने में आ सकता है। ज़रूरत है कि गुरु के शब्द की रगड़ से पहले मन के दर्पण को शुद्ध कर लिया जावे, तब स्वयं अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाएगा।

यह एक यथार्थ तथ्य है जिसे समझने की आवश्यकता है और सन्तों की वाणी ही मनुष्य के प्रति यथार्थ का प्रकाश कर सकती है। अपने विचारों के अधीन रहकर ही तो वह संसार सागर में ग़ोते खा रहा है; दुःखी और परेशान हो रहा है। काल और माया की इस रचना में मन लगा कर जीव दुःख और अशान्ति की तरंगों में झकोले खाने से कैसे बच सकता है। सिवाय सत्पुरुषों की शरण और सत्संग के और कहीं भी जीव को सुख और शान्ति का ठिकाना नहीं मिल सकता। इसीलिए सन्तों महापुरुषों की चरण-शरण में जाकर और उनसे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके उस पर आचरण करते हुए मनुष्य-जन्म का लाभ उठाना चाहिए।"

इस प्रकार रात्रि समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री प्रवचनों से सब को कृतार्थ करते। दिन के समय दो तीन बार श्री दर्शन खुलते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कार में विराजमान होकर सैर के लिए जाते तो प्रेमिजन, गुरुमुख भी विनय कर साथ उपवन में जाते। वहां अनुपम लीलाओं में सब के भय दूर हो जाते तथा प्रेमी आनन्द मग्न होकर दिन का समय व्यतीत करते। ३ फ़रवरी रात्रि को श्री दर्शन के समय प्रवचन हुए:—

"काल के चतुर शिकारी ने जीव रूपी पक्षी को पकड़ने और फँसाने के लिये माया का सुन्दर जाल बिछा दिया है। जिसमें बहुधा लुभा जाने के कारण जीव सरलता से फँस जाता है। अथवा यों कहा जाए कि काल और माया रूप दो पाटों से बनी संसार की चक्की है जिस में संसारी जीव अनाज के दाने की भाँति पिस रहा है।

॥ दोहा ॥

चलती चक्की देखि करि दिया कबीरा रोय।
दो पाटन में आय करि, साबत बचा न कोय॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

श्री कबीर साहिब जी ने चक्की को चलते हुए देखा तो उन्हें संसारी जीवों की अवस्था का ध्यान आया, जो काल और माया के दोनों पाटों में रात दिन पिसे जा रहे हैं। वे सोचने लगे कि अब इन का बचाव कैसे हो?

परन्तु प्रकृति के कारखाने में प्रत्येक रोग का इलाज, प्रत्येक दुःख का उपाय, प्रत्येक शिकायत को दूर करने का उचित और आवश्यक प्रबन्ध विद्यमान है। ज़रूरत केवल प्रकृति के कारख़ाने के शानदार प्रबन्ध को समझने की है, फिर कोई भी कठिनाई शेष नहीं रह जाती। जहां काल और माया का इतना प्रबल प्रपंच जीवों को फँसाने के लिए है वहां उस से बचाव करने का सामान भी प्राप्त है, वह यह है:—

॥ दोहा ॥

चलती चक्की देखि करि, दिया कबीरा खिल ।
राखनहारा राखि ले, जो जाए किली से मिल ॥
परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

चक्की के मध्य में जो कील होता है जिस के आधार पर चक्की चलती है; तो अनाज के जो कण उस कील की समीपता में पहुँच जाते हैं वे पिसने से बच जाते हैं। श्री कबीर साहिब जी ने यह दशा देखी तो मुस्करा दिए कि कुदरत का क्या ही उत्तम प्रबन्ध है। जहां दाने पिस रहे हैं वहां उनकी सुरक्षा की भी समुचित व्यवस्था कर दी गई है अर्थात् यदि जीव रूपी अन्न का कण कील से जा मिले तो पिसने से साफ़ बच जावे। वह कील क्या है जिसके आधार पर चक्की चलती है? वह मालिक का नाम है और सद्गुरु का शब्द है। जो जीव इस से सुरति लगाते हैं वे कलह-कल्पना और अशान्ति में पिस जाने से साफ़ बच जाते हैं।

बात सारी दिल की लगन की है। दिल जिस ओर को झुक गया वैसा ही बन गया। माया और काल के प्रपंच की ओर मनुष्य का मन झुका तो दुःख और अशान्ति का घर बन गया। जब यह मन मालिक के चरणों की ओर, सद्गुरु के शब्द और ध्यान की ओर झुक जाता है तो आनन्द और शान्ति का घर बन जाता है।

जबकि रहना संसार में है, जहां पग पग पर माया और काल का दुःखदायी प्रपंच है, हर स्थान पर जीव को भटकाने और गुमराह करने का सामान मौजूद है तो जीव को चाहिये कि अपने मन को ऐसे ठिकाने पर रखे, जहां संसार के दुःख-अशान्ति आदि उसे अपनी लपेट में न ले सकें। सन्तों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

जग में रहो अलग रहो, योग युक्ति की रीति ।
दूलन हिरदै राम सूं, दृढ़ करि राखो प्रीति ॥

सन्त दूलनदास साहिब जी का कथन है कि संसार में रह कर भी योग की

युक्ति से जीवन बिताते हुए संसार से अलग बने रहो। वह युक्ति क्या है? यह कि अपने हृदय में मालिक इष्टदेव सद्गुरु की प्रीति को दृढ़ बनाए रहो। फिर संसार का कोई भी बन्धन तुम्हें नहीं बाँध सकेगा। सन्त महापुरुष ही ऐसा मार्ग दर्शाते हैं। अतः सन्त-महापुरुषों की संगति कर जीव को संसार में व्यवहार करने का ढंग सीखना चाहिये। सन्त महापुरुष ही इस ज्ञान के पूर्ण तत्त्ववेत्ता होते हैं। अतः सन्त महापुरुषों की संगति कर जीव को मानुष जन्म का लाभ उठाना चाहिये।"

नित्यप्रति की भाँति श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने रात्रि को श्री दर्शन के समय चार फ़रवरी को श्री वचन फ़रमाये—

"मानव मन क्या है? यह विचारों की गुप्त और अनुपम शक्तियों का भण्डार है। मन में जो भावों और विचारों की प्रबल शक्तियां काम करती हैं; उन्हें सर्व साधारण मानव जानता हो या न जानता हो किन्तु मानव के भाव-उद्गार और विचार सचमुच ही प्रकृति के बनाए जादू से कम नहीं हैं। अपने विचारों और भावों की शक्ति से काम लेकर मानव असम्भव काम को भी सम्भव बना सकता है। विचारों का रुख़ जिस ओर को पलट जाए उसी रुख़ में कमाल कर सकता है। मनुष्य की दशा जो भी बनती या बिगड़ती है, उसके जीवन में जो भी उन्नति अथवा अवनति की अवस्थाएँ आती हैं इन में किसी और का हाथ नहीं अपितु यह सब मानव के अपने विचारों और भावनाओं पर निर्भर है। उसके विचारों और भावनाओं से बाहर कुछ नहीं होता। अपने विचार और संकल्प ही जीवन के चित्र को सुन्दर और आकर्षक तथा भद्दा और घृणास्पद भी बना सकते हैं। प्रत्येक मानव की वर्तमान अवस्था उसके अपने ही विचारों, भावनाओं तथा संकल्पों से उत्पन्न हुआ चित्र है तथा भविष्य में भी जैसी उसकी दशा होगी वह उसके अपने विचारों और संकल्पों का प्रतीक होगी।

इन्सान यदि काल और माया के जाल में उलझता है तो इस में भी उस के अपने विचार ही काम करते हैं अर्थात् जब ख़्याल का रुख़ काल-माया की रचना में रुचि लेने लगता है तब यह जीव काल व माया का शिकार बन जाता है। अपने

विचारों की कमज़ोरी के कारण ही वह उलझन, परेशानी, दुःख और चिन्ता में ग्रस्त होकर रह जाता है किन्तु यदि अपने विचारों और संकल्पों का रुख़ पलट कर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति तथा सद्गुरु के शब्द में लगा देता है तो इन्सान काल और माया के चक्र से मुक्त हो सकता है और अपने घट में सोई हुई शक्ति को जगा सकता है। इसके लिए कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं। इसी संसार में रहकर तथा काल-माया के इस चलते हुए चक्र में जीवन व्यतीत करता हुआ ही अपने विचारों और भावनाओं को आत्मिक विकास की ओर लगा सकता है। संसार में रहकर ही संसारी बन्धनों से मुक्त रह सकता है। जब तक संसार की मायावी रचना में मन की आसक्ति है, तब तक ही जीव काल और माया के घेरे में है। यदि विचारों का रुख़ मायावी पदार्थों की आसक्ति में नहीं है तो वह सब प्रकार से काल और माया के बन्धनों से मुक्त है।

॥ दोहा ॥

तुलसी कमलनि जल बसै, रवि ससि बसैं अकास ।
जो जाके मन में बसै, सो ताही कै पास ॥

सन्त तुलसीदास जी

कुमुद और कमलिनी के पुष्प तो जल में अर्थात् तालाब में रहते हैं और चन्द्रमा एवं सूर्य आकाश में हैं लेकिन इतनी दूरी होने पर भी कुमुद और कमलिनी के चित्त का सम्बन्ध चन्द्र, सूर्य के साथ स्थापित है। यदि इतनी दूरी से भी लगाव और सम्बन्ध रह सकता है तो इससे स्पष्ट हुआ कि जो वस्तु जिसके मन में बसती है वह उस से दूर होते हुए भी उसके निकटतम है।

कुमुद और कमलिनी के पुष्पों को बहुधा सब ने देखा ही होगा। ये अधिकतर सरोवरों में पाए जाते हैं। यह कितनी आश्चर्यजनक बात है कि जल में पैदा होने वाले ये पुष्प, चन्द्र-सूर्य से हार्दिक सम्बन्ध रखते हैं। कमल में यह विशेषता है कि वह सूर्योदय के समय खिल उठता है तथा सूर्यास्त के साथ साथ अपनी पंखुड़ियां समेट कर बन्द कर लेता है। दूसरी ओर कुमुदिनी के पुष्प में यह विशेषता

है कि वह चन्द्रोदय के समय खिलकर चन्द्रमा के अस्त होने के साथ बन्द हो जाती है। कमल तो रात भर कुम्हलाया रहता है और कुमुदिनी दिन भर मुरझाई रहती है।

जब साधारण वनस्पतियां आकाशवासी शक्तियों से अपने अनुकूल तथा प्रतिकूल खुराक अथवा शक्ति की धाराओं को खींच कर अपने अन्दर समा सकती हैं तो कोई कारण नहीं कि सृष्टि में सर्वोत्तम कहलाने वाला और प्रकृति द्वारा प्रदान की गई असीम शक्तियों का मालिक 'इन्सान' संसार और संसार के कारोबार में व्यस्त होकर अपने विचारों और भावनाओं को उन्नति के स्तर पर न ले जा सके। इन्सान के ख़्याल में जो काम करने की प्रबल शक्ति विद्यमान है तथा प्रकृति की ओर से जो दृढ़-संकल्प शक्ति का वरदान उसे प्रदान किया गया है; उसका सही और उचित उपयोग यही है कि इस असार संसार में सार वस्तु को प्राप्त करे तथा काल और माया के छलनामय प्रपंच में से सच्ची और अनुपम आत्मिक शान्ति को खोजे। मानव के लिए अपनी सुदृढ़ संकल्प शक्ति से कुछ भी कर दिखाना असम्भव नहीं।

सन्तों महापुरुषों की हुज़ूरी में जीव इसलिए हाज़िर होता है कि वह काल और माया के छलनामय प्रपंच से स्वतन्त्रता प्राप्त करने तथा सच्ची असीम आध्यात्मिक शान्ति को प्राप्त करने का अभिलाषी है। सन्त सद्गुरु महापुरुष उसे संसार में रहकर सुखमय जीवन व्यतीत करने की उचित विधि बताते हैं तथा वह विधि यही है जिसका वर्णन ऊपर हुआ है। अर्थात् काल और माया के प्रपंच में बर्तते हुए ही इससे आज़ाद होना है। यही गुरुमुख की रहनी है। ऐसी रहनी में दृढ़ रहकर मानव संसार में बर्तता हुआ भी संसारी बन्धनों से आज़ाद तथा जीवन्मुक्त रह सकता है। अतः मानव जीवन को पाकर सन्त महापुरुषों के वचन अनुसार जीवन बनाकर इस जन्म का पूरा पूरा लाभ उठाना है।"

इस प्रकार अष्टग्रह योग का भय धीरे धीरे समाप्त होता गया। ५ फ़रवरी को रात्रि के समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पुनः श्री प्रवचन फ़रमाए—

"मनुष्य का जहाँ जहाँ ख़्याल का लगाव होता है वैसी वैसी प्रेरणाशक्ति भी

मानव में उत्पन्न होती जाती है। संसार में रहकर ही मानव आध्यात्मिक उन्नति की ओर रुचि लगा कर उसकी प्राप्ति कर सकता है। अपने इष्टदेव की प्रीति का आँचल दृढ़ता से थाम कर उनके चरणों की प्रीति भी उपलब्ध कर सकता है। किन्तु यदि मन का झुकाव पूरी तरह अपने इष्टदेव के प्रेम में नहीं है तो फिर पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो सकेगा।

॥ दोहा ॥

मन दिया कहुँ और ही, तन सन्तन के संग ।
कहैं कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

अर्थः—यदि मन किसी और तरफ़ दे रखा है और शरीर से सन्तों की संगति में रहता है तो ऐसा पुरुष सन्त महापुरुषों से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं कर सकता। जैसे कि कोरे वस्त्र पर तब तक रंग नहीं चढ़ सकता जब तक कि उसके कोरेपन अथवा माँड को धोकर साफ़ न किया जाय। ऐसा परमसन्त श्री कबीर साहिब जी का विचार है।

यदि भक्ति और परमार्थ की इच्छा है तो मायावी दुविधा को चित्त से दूर करना अनिवार्य है। जिसने माया की दुविधा को चित्त से दूर करके फैंक दिया है तथा पूर्ण एकाग्रता और एकरस हो अपनी सुरति की धारा को भक्ति में केन्द्रित कर दिया, वह सब प्रकार से आज़ाद और जीवन्मुक्त है। संसार की कोई भी शक्ति उसे मायावी बन्धन में नहीं बाँध सकती क्योंकि वह अब माया की सीमा से बाहर जा चुका है और भक्ति तथा परमार्थ (रूहानियत) के साम्राज्य में उसने प्रवेश कर लिया है।

॥ दोहा ॥

खुलि खेलौ संसार में, बाँध न सकै कोय ।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर पोट न होय ॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

अर्थः—यदि तुम्हारा ख़्याल, तुम्हारी सुरति और तुम्हारा ध्यान मायावी दुविधा

से फ़ारिग है तो संसार में स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करो। अब तुम्हें किसी प्रकार का बन्धन नहीं। जिस व्यक्ति के सिर पर बोझ अथवा सामान की पोटली नहीं है तो चुंगी का कर लेने वाला कर्मचारी उस से क्या मांगेगा।

काल और माया चुंगी का कर वसूल करने वाले कर्मचारियों के समान हैं। यदि किसी के पास काल और माया की आसक्ति का कोई सामान नहीं तो उसे काल और माया का ख़्याल क्यों हो? इसीलिए यदि काल और माया से मुक्त होने की इच्छा है तो काल व माया की आसक्ति का कोई भी सामान अपने चित्त में मत रखो अर्थात् किसी भी प्रकार की मायावी कामना अथवा वासना को चित्त में स्थान न बनाने दो। फिर तुम सदैव निर्भय हो।

बस यही गुरुमुख की रहनी है और इसी रहनी को अपनाते हुए जीवन का कल्याण कर लो।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने यह अमूल्य अमृतमय वचन फ़रमा कर अष्टग्रह योग का भय दूर किया। सर्व प्रेमियों ने इस अमृत को पिया। इस अष्टग्रह योग के पश्चात् निश्चिन्त होकर सब अपने अपने कार्य व्यवहार में लग गये। अब सब को श्री वचनों पर पूर्ण विश्वास तथा श्रद्धा हो गई कि सचमुच कुछ भी नहीं हुआ। सन्त महापुरुष तो सदा जीवों के कल्याण के लिए अपने पर अनेकों कष्ट सहन करते हैं। बाहर से आये हुए प्रेमिजन श्री आज्ञा पा कर लौट गए।

अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की यह मौज हुई कि श्री आनन्दपुर में अनाज, सब्ज़ी व किसी फल अर्थात् सन्तरे, केले, मौसमी, आम आदि की तो कमी नहीं, अब यहां पर अंगूर भी होने चाहिएँ। इस रूपरेखा को बना कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री सन्त नगर, श्री आनन्दपुर, नया गांव (श्री प्रयागधाम) में अंगूरों के खड्डे खुदवाने आरम्भ करवा दिए। कैसी मौज है सन्त महापुरुषों की कि श्री आनन्दपुर की मोहरम (लाल मिट्टी), नया गांव का खोपरा (पथरीली ज़मीन) सन्त नगर की रेतोली भूमि (जहां रेत के टीले ही टीले थे) वहां पर उस धरती को उपजाऊ बनाना असम्भव सा मालूम होता था; उसी भूमि

पर अंगूरों के पौधों का आरोपण करवाया। १९६३ में दीपावली के पर्व से पहले पहले ये पौधे गड्ढों में लगा दिए गए। अब यहाँ पर सब प्रकार की सब्ज़ियाँ, फल व अँगूरों की बेलें लहलहाती नज़र आती हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर को व अन्य आश्रमों (नया गाँव, सन्त नगर) को जहां परमार्थ भक्ति का केन्द्र बनाया वहां दैहिक तथा आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी बड़े कौशल से की। विशेषकर श्री आनन्दपुर में तो उन्होंने प्रत्येक सुव्यवस्था की। भक्ति के रूप में उन्होंने इस प्रकार प्रेम भक्ति का अमृत भरा जैसा कि श्री शुकदेव जी ने भी कथन किया हैः—

॥ श्लोक ॥

यस्य भक्तिर्भगवति, हरौ निःश्रेयसेश्वरे ।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ, किम् क्षुद्रैः खातकोदकैः ॥

श्री मद्भागवत्

"जिसे सर्व-कल्याणकारी ईश्वर, हरि अथवा परमात्मा की भक्ति प्राप्त है; वह तो अमृत के समुद्र में ही क्रीड़ा करता है, उसे छोटे छोटे गड्ढों के जल से क्या प्रयोजन।"

अर्थात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने वह भक्ति पथ दर्शाया जो सब साधनों, यज्ञ, तप, व्रत, संयम सबका मूल एवं सरल से सरल है। इस पथ पर आकर मन विषय भोगों की ओर बिल्कुल ही नहीं जाता। विषय भोग विष के समान दिखाई देने लगते हैं। परम कल्याणकारिणी भक्ति प्रदान कर आध्यात्मिक-ज्ञान का मार्ग दिखाया। वह भक्ति क्या है ? गुरु-सेवा, गुरु-आज्ञा व शब्द की कमाई। यही सरल से सरल एवं अत्युत्तम मार्ग है प्रभु प्राप्ति का। श्री आनन्दपुर की रचना आपने इस प्रकार की जैसा कि कहा जाता हैः—

॥ शेयर ॥

बहिश्त आँजा कि आज़ारे नबाशद ।
कसे रा बा कसे कारे नबाशद ॥

अर्थात् वैकुण्ठ वह स्थान है जहां किसी प्रकार का दुःख नहीं, जहां किसी का किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। जहां सब अपने अपने आनन्द में निमग्न रहते हैं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भी श्री आनन्दपुर को ऐसा धाम बना दिया जहां पर दुःख-क्लेश, चिन्ता, आधि, व्याधि, उपाधि रोगों से मुक्ति मिलती है। यहाँ किसी का किसी से स्वार्थ व मोह का सम्बन्ध नहीं। सभी अपने आत्मिक आनन्द की मस्ती में झूमते रहते हैं। दुनिया से मानो इन्हें (शरणागतों को) कोई सरोकार नहीं। यदि है भी सही तो स्वार्थ के लिये नहीं परोपकार, परमार्थ तथा सर्वसाधारण को इस भक्ति रूपी संजीवनी के पिलाने का प्रयोजन। यह वैकुण्ठ से कहीं बढ़ कर है। यहाँ पर दैहिक और आत्मिक दोनों सुख उपलब्ध हैं। श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने जिन चार मुक्तियों का वर्णन किया है वे सरलता से आप के श्री चरणों में पहुँचते ही प्राप्त हो जाती हैं। आपने उन मुक्तियों को इस लोक में ही उपलब्ध करवा दिया अर्थात् वे चार मुक्तियाँ हैं—१. सालोक्य २. सामीप्य ३. सारूप्य ४. सायुज्य।

१. सालोक्य—श्री आनन्दपुर की रचना कर आपने अपने लोक में पहुँचा कर सालोक्य मुक्ति दी। अपना लोक अर्थात् निजधाम जहाँ पर पहुँचने से आनन्द ही आनन्द मिलता है, जहाँ से पुनः चौरासी के चक्र में जीव को नहीं फँसना पड़ता। यह है सालोक्य मुक्ति। तो श्री आनन्दपुर भी ऐसा ही धाम है जहाँ पर प्रत्येक समय आनन्द ही आनन्द श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बरसाया और अब तक बरस रहा है एवं बरसता रहेगा। इस धाम से बढ़कर सृष्टि में कोई भी ऐसा धाम नहीं जहाँ आठों याम गुरुभक्ति के ही आनन्द में डूबे रह सकें। यहां वह आनन्द है जिस की तुलना में स्वर्ग के सभी आनन्द भी तुच्छ हैं। देवी, देव भी इस धाम में आने को तरसते हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वयं ही श्री मुख से प्रवचन फ़रमाये किः—

"श्री परमहंस दयाल महाराज जी का दरबार तो सम्पूर्ण सृष्टि की शान

है। उसकी सेवा में तो नियति की समस्त शक्तियाँ दिन रात जुटी रहती हैं। अपने कल्याण के लिये चाहो तो इसकी सेवा करो अन्यथा इस दरबार की सेवा जीव की सामर्थ्य से बाहर है।"

२. सामीप्य–अर्थात् समीपता प्राप्त करना। गुरु और भगवान् में कोई अन्तर नहीं अपितु सन्तों की वाणियों से सिद्ध होता है कि सद्गुरु की बड़ी महानता है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी कहा है:—

॥ दोहा ॥

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिन्द दियो बताय॥

जिस ने भी अचल निष्ठा व पूर्ण विश्वास से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की चरण-शरण ग्रहण की उसने ही उन की समीपता प्राप्त कर ली। समीपता का अर्थ है नज़दीकी अर्थात् जिसने उनकी आज्ञा व मौज में निज जीवन को ढाला उस ने समीपता को प्राप्त कर लिया, यही है सामीप्य मुक्ति। जो सरलता से इस कलियुग में भी प्राप्त हो गई और हो रही है।

३. सारूप्य–अर्थात् एक रूप हो जाना। जब सुरति शब्द में जुड़ जाती है तो वह उसी रूप में समाहित होकर वही रूप बन जाती है। मैं के स्थान पर तू का शब्द उच्चारण करने लगती है तो उसी रूप में मिलकर आनन्द को प्राप्त कर लेती है।

४. सायुज्य–अर्थात् आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना। जिस के पश्चात् आवागमन शेष नहीं रह जाता। इस प्रकार आप के श्री चरणों में पहुँच कर चारों मुक्तियाँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं।

आप ने तो प्रेमियों को इस से भी ऊँचा दर्जा दिया हुआ था। आप प्रायः यह फ़रमाया करते थे:—

॥ दोहा ॥

प्रेमी के मैं कर बिकूँ, मेरा यही असूल ।
चार मुक्ति दूँ व्याज में, दे न सकूं मूल ॥

अर्थात् प्रेम भक्ति ही सरसता, माधुर्य व सरलता का एकमात्र साधन है जिसे आप ने अपनाकर लोगों के सामने उपस्थित किया। ये चारों मुक्तियाँ तो उस प्रेमी को व्याज (सूद) में मिलती हैं जो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में सर्वस्व न्यौछावर कर, दिलो-जान से आज्ञा व मौज में चलते हैं। कितना सरल है यह भक्ति पथ। यह सब कुछ हम जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिए ही तो किया, नहीं तो उन्हें क्या आवश्यकता थी इतनी रचना करने की, जब कि समस्त अंड-ब्रह्मांड उनके आगे हाथ जोड़े सेवा के लिए सदा उपस्थित रहते हैं। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी यही कहा है:—

॥ दोहा ॥

जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव ।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु की सेव ॥

कि जिस परमात्मा को पाने के लिए देव, मानव, मुनि, ब्रह्मा तप कर हार गए हैं वही सन्त महापुरुषों की सेवा करने से प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिए सद्गुरु सेवा ही अत्युत्तम भक्ति का साधन है जिससे मालिक की प्राप्ति सुलभ है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इसी सरल तथा अत्युत्तम भक्ति को ही हमारे सामने रखा। वे जीव कल्याण हेतु इस धरा पर अवतरित हुए थे। जीवन पर्यन्त अन्तिम क्षण तक उन्होंने जन कल्याण हेतु कार्य किये। आप ने यही प्रवचन फ़रमाये—"गुरुमुखो! तुम्हारा कल्याण ही हमें प्रिय है। वह कल्याण यों ही बातों से नहीं हुआ करता। जिसे कल्याण प्रिय है वह सद्गुरु से प्रेम बढ़ावे। प्रेम पुष्पों की वाटिका को बनाने के लिये अपने में सच्चाई, पवित्रता और विचार शुद्धि का होना परम आवश्यक है। अपने व्यवहार को मधुर बनाओ। प्रत्येक के साथ

सुन्दर व भद्र व्यवहार करो।

तुम्हारी प्रबल इच्छा क्या है कि श्री सद्गुरु का ध्यान बस जावे और वे हृदय के सिंहासन पर विराजमान हो जावें। मगर जैसे यह बाहर का सिंहासन साफ़ है इस पर किसी प्रकार की मैल नज़र नहीं आती। उसी प्रकार मन के सिंहासन को भी निर्मल, स्वच्छ और मलिनता से शून्य कर देना चाहिये। यदि सद्गुरु आ भी जावें तो कहां बिठाओगे? सेवक का क्या धर्म है, यही कि सद्गुरु को समासीन करने के लिए परम स्वच्छ स्थान बना कर उन्हें ऊँची जगह पर बिठाने की सुव्यवस्था करे। सद्गुरु की जगह विमल, पवित्र और ऊँची होनी चाहिये। यह विचार तो गुरुमुखों के दिल में होता ही है। इसीलिए यह ज़रूरी है कि गुरुमुख सद्गुरु की आज्ञा व मौज में चलकर मन को दुर्गुणों से ख़ाली करे। निर्मल विचारों को हृदय में परिपूर्ण करे। साथ में मस्तक में सद्गुरु को देखे। सद्गुरु के वचन ही जीव की अपनी पूँजी है। सद्गुरु की प्रसन्नता में ही जीव का कल्याण है। अपने कल्याण में ही लोगों का कल्याण छिपा हुआ है।

सद्गुरु का शब्द जीव को बहुत ऊँचा उठा ले जाना चाहता है। उन के नाम में, उन के ध्यान में और उनके प्रेम में ही जीवन है। प्रेम ही भगवान् है, भगवान् ही प्रेम है। दण्डवत् करना इस बात का चिन्ह है कि जीव मुर्दा बन गया है। मृतक बन कर वह सद्गुरु के आगे विनय कर रहा होता है कि ऐ दीनबन्धु श्री सद्गुरुदेव जी! मैं निर्जीव हूँ, मुझ में प्राण नहीं हैं, आप मुझ को जीवन प्रदान करें। जब सद्गुरुदेव जी आज्ञा प्रदान करते हैं तब सेवक उठ कर खड़ा हो जाता है यानि उस सेवक को जीवन मिलता है।

सद्गुरु जीवन के दाता हैं। केवल वे ही जीवनमय हैं। बाकी समूचे जीव प्राणहीन हैं। कोई कितना ही माया, धन-धान्य, ऐश्वर्य का स्वामी स्वयं को समझे, वास्तव में वह मृतक है। उस में ज़िन्दगी नहीं है। सद्गुरु का प्यारा शिष्य वही है जो दास भाव से रहता है और वही ज़िन्दा कहला सकता है।

ये जितने भी भूमि, मकान व खज़ाने के मालिक बने हैं भला इनके पास कौन

सी ऐसी वस्तु है जो नाशवान् न हो। सब कुटुम्ब-परिवार, धन जो कुछ भी है सब क्षणभंगुर ही तो हैं। फिर मान अथवा गर्व किस बात का ? सच्चा नाता जीव का सद्गुरु से ही हो सकता है, होता रहा है और हुआ है व होगा। शेष सब सम्बन्ध मिथ्या हैं। क्या लाभ लिया उस मनुष्य ने जो मायावी सामान पाकर भो अपने साथ कुछ न ले जा सका। एक ओर तो यह सौदा है और दूसरी ओर है कुल मालिक से मिलाप हो जाना। कितना अन्तर है ज़मीन आसमान से भी अधिक। इसीलिए सद्गुरु के वचनों को सदा सँभालो। उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करो ताकि सुख शान्ति को प्राप्त कर सच्चे आनन्दधाम में पहुँच सको।"

इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १९६२ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की मौज यह उठी कि 'उपासना के पवित्र स्थान' अर्थात् श्री आनन्दसर, श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के निर्माण के साथ ही 'श्री आनन्द अमृत कुण्ड' का भी उद्घाटन हो जाना चाहिये। इस स्थान के लिए धुरधाम से उतरे हुए ललित चित्र में अभी कार्य शेष था। अतः एक दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कार में विराजमान हो श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के समीप पधारे। वहां पर सब गुरुमुख प्रेमियों को एकत्र कर सद्वचन फ़रमाये—"इस श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के चारों कोनों पर चार कुण्ड बनाने हैं। यह सचखण्ड से उतरा हुआ चित्र है। इन में से केवल चरणामृत लेना होगा। इन का शुभ नाम 'श्री आनन्द अमृत कुण्ड' फ़रमाया। तत्पश्चात् उद्घाटन भी निज कर कमलों से किया। सब संगत ने हर्ष के साथ जयकारे बोले।

इस के पश्चात् वहां पर प्रसाद बांटा गया। आप ने उस दिन प्रेमियों को खूब प्रसाद दिया और फ़रमाया—"यह महापुरुषों का प्रसाद है अर्थात् इसमें उनकी कृपा भरी होती है। जो गुरुमुख जितना अधिक श्रद्धा एवं विश्वास से इसे ग्रहण करता है वह उतना ही अधिक लाभ प्राप्त करता है। महापुरुषों की कृपा ही तो गुरुमुखों का जीवन है। इस प्रकार श्री दर्शन तथा पावन वचनों का रसपान कर सभी प्रेमी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ निवास स्थान पर लौट आए।

श्री मौजानुसार यह कार्य आरम्भ हो गया। कुछ समय में चारों ओर की नींव भर दी गई तथा मध्य भाग की ज़मीन को समतल बना कर यह चारों ओर की सीमा तैयार हो गई। यह स्थान अभी निर्माणाधीन है।

इन दिनों प्रेमियों को भक्ति का मार्ग दिखा कर स्वयं यहां से दैहिक रूप से जाने की तैयारी कर रहे थे लेकिन कोई भी आप के प्रवचनों का रहस्य न समझ सका। सन् १९६२ में आप एक बार श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की सेवा पर विराजमान हुए जहां 'श्री परमहंस विभूतियां' अर्थात् श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी, श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी व श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी की श्री मूर्तियां विराजमान हैं। उस स्थान की ओर संकेत कर श्री तीसरी पादशाही जी ने फ़रमाया कि अब हम यहीं बैठकर भजन-अभ्यास करवाएँगे। भजनाभ्यास के लिए एकान्त स्थान होना चाहिये। इसके पश्चात् कार में विराजमान हो कर श्री आनन्दसर की सम्पूर्ण परिधि (घेरा) की परिक्रमा की।

पुनः श्री चरणों से इस क्षेत्र की समग्र भूमि को पवित्र कर श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के ठीक पश्चिम दिशा के मध्य में श्री आनन्दसर के तट से कुछ दूरी पर पूरा हिसाब लगा कर उस स्थान पर पधारे जिस स्थान की ओर कुछ समय पूर्व संकेत किया था। कार से नीचे उतर कर सीधे उस स्थान पर जाकर खड़े हो गए जिस स्थान पर इस समय परम पवित्र 'श्री आनन्द शान्ति भवन' स्थित है। महात्मा नित प्रेमानन्द जी उस समय साथ थे। उन को श्री आज्ञा फ़रमाई कि इस स्थान पर खूँटी गाड़ो और फिर वही वचन फ़रमाए कि हम यहां बैठ कर अशान्त रूहों को शान्ति प्रदान किया करेंगे। आपने फ़रमाया कि यहां 'श्री आनन्द शान्ति भवन' बनेगा। किसी को क्या मालूम कि इस में क्या रहस्य है। सब ने यही समझा कि शायद यह तीर्थ स्थान बनाने के लिये श्री मन्दिर का निर्माण करवा रहे हैं। महापुरुषों के गूढ़ रहस्यों को कौन समझ सकता है।

ज्यों ज्यों आप अपने अन्तर्हित (ओझल) हो जाने की तैयारी करने लगे

वैसे जीव-कल्याण की लगन भी अधिकाधिक बढ़ती गई। आप की सेहत सुकोमल हो चुकी थी। २४ वर्ष अन्न त्याग करने पर भी इतना कार्य करना कोई सरल बात नहीं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने रूहानी जानशीनी के चार-पाँच वर्ष पश्चात् अपनी मौज के अनुसार अन्न का बिल्कुल त्याग कर दिया था। केवल आहार मात्र थोड़ा सा शाक, पालक आदि का रस ही सेवन कर लेते थे। यह तो महापुरुष ही जानते हैं कि वे ऐसा क्यों किया करते हैं। फिर भी अन्तिम क्षण तक परमार्थ के पथ पर अग्रसर हो कर जन जन को लाभान्वित करते रहे। मुख मण्डल पर ऐसी दिव्य आभा इठलाती थी कि जिसे एकटक निहारना असम्भव था।

सेवक जन डॉक्टरों व वैद्यों को बुलाते, कभी कभी सेवक जन विनय करते कि प्रभो! आप तो करन-करावनहार हैं अपनी सेहत को ठीक रखें। श्री वचन हुए कि (एक प्रेमी को कर-भुजा दिखाकर) "देखो! हमें कुछ है, हमें कुछ भी नहीं।" दिव्यातिदिव्य आत्माएँ जिन जीवों का जिस रूप में कल्याण होता है वही अपना रूप बना लेती हैं। शायद सेवकों को सेवा का सुअवसर देकर उन्हें कृतार्थ कर रहे थे। वास्तव में रहस्य भी यही था कि:—

सन् १९६३ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी नया गांव पधारे। वहां पर पूना से डॉक्टर बुलवाया गया। डॉक्टर यह देखकर हैरान था कि श्री विग्रह (स्थूल शरीर) तो इतना सुकोमल है परन्तु वदन की कान्ति इतनी कि मुखमण्डल के तेज को सँभालना कठिन था। डॉक्टर ने परीक्षण के लिए एक बूँद रक्त की लेनी चाही परन्तु सारे श्री कोमल तन में कहीं से भी प्राप्त न हुई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"बस अब हमने अपने ध्येय को पूरा कर लिया है। हम भी यही चाहते थे कि हमारा जीवन व तन सर्वस्व परमार्थ में ही लग जाए।" ऐसी प्रसन्नता और सुमधुर वाणी में श्री वचन करते हुए उन्हें देखकर डॉक्टर ने लम्बी सांस भर कर कहा कि यह कोई मानवी शक्ति नहीं अपितु कोई महान् शक्ति हैं जिन की इस बुद्धि द्वारा पहचान कर सकना अति कठिन है।

कितना अनुपम त्याग! कितना साहस! ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया कि

स्थूल शरीर में इतनी सुकोमलता होते हुए भी परमार्थ के कार्य को एक क्षण के लिए भी न रोका। जन-कल्याण हेतु सत्संग-प्रवचन अमृत की पावन गंगा में स्नान करवाते ही गए। १२ अगस्त सन् १९६३ को आप ने अर्शाद किए—"गुरुमुखो ! यह सद्गुरु का शब्द क्या है ? यह समझो कि एक सार बीज मन्त्र है जो मनुष्य के भीतर चौबीस घण्टे स्वयं चल रहा है। परन्तु बाहर के ख़्यालों के कारण जीव को समझ नहीं आती। वास्तव में यह मन्त्र जीव की अपनी जायदाद है। परलोक की टिकट है। इस के आधार पर ही जीव चल रहा है।

"नाम के धारे सगले जन्त"—एक नाम होता है ज़ाती (मौलिक) और एक होता है सिफ़ाती (विशिष्ट)। भगवान् के अनेक नाम होते हैं, जिनका उच्चारण श्रद्धालु भक्तों ने अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार किया है परन्तु ज़ाती नाम वह है जो अपने आप चौबीस घण्टे अन्दर चल रहा है। सन्त ग़रीबदास जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

सकल बियापी सुरत में, मन पवना गहि राख।
रोम रोम धुनि होत है, सतगुरु बोले साख॥

गुरुमुखो ! आप को पता होना चाहिये कि सुख व शान्ति सच्चे नाम में है। नाम मालिक के पास पहुँचने की सीढ़ी है।

गुर का सबदु लगो मनि मीठा ॥ पारब्रहमु ता ते मोहि डीठा ॥

गुरुमुखों को सद्गुरु का शब्द मीठा लगता है। माया जीव के ऊपर पर्दा डालती है। इस नाम ने माया से आप को बचाना है। संसार मन को खींच रहा है। इस के धोखे से बचने के लिए सद्गुरु के नाम से प्रीति लगानी है। सद्गुरु का शब्द ही अपनी पूँजी है। सद्गुरु का ध्यान ही अपनी जायदाद है और कुटुम्ब-परिवार के मोटे बन्धन हैं जो सुरति को फँसा रहे हैं। उन में से सुरति हटाने के लिए ध्यान की आवश्यकता है। अब तुम्हारे मन की अवस्था संसार की

दशा से अलग है क्योंकि इस समय तुम दर्शन कर रहे हो। प्रेम सद्गुरु के ध्यान से ही पैदा होता है।

गुरु मूरत का करिए ध्यान, गुरु ऊपर जाइये कुर्बान।
गुरु के चरण राखे उर धार, हिरदै माहिं होए उजियार॥

इस जीव को हर समय खुशी व शान्ति की ज़रूरत है और वह नित्य-नियम से भजनाभ्यास व आरति-पूजा करने पर मिलेगी। सदैव अपनी सुरति को त्रिकुटी में लगाओ जहां सद्गुरु विराजमान हैं। गुरुमुखों का यही धर्म है कि सद्गुरु के वचनों पर आचरण कर जीवन का कल्याण करें।

आप का लगाया हुआ विमल गुरुभक्ति का नया पौधा (श्री आनन्दपुर) अभी अंकुरित होकर पनप रहा था कि आप ने निर्मोह भरे संकेत देने आरम्भ किए। देखने और सुनने में ज़मीन-आसमान का अन्तर होता है। जिन प्रेमियों ने अपनी आँखों से वह दृश्य देखा है वही इस की सत्यता पर विश्वास कर सकते हैं कि सितम्बर १९६३ में 'नया गांव' में जब अंगूर लगवाने की मौज उठी तो श्री चरणों से चलकर ही प्रेमियों को श्री दर्शन देने के लिए आते। निज कर-कमलों से अंगूरों को लगाया तथा बड़ी धूमधाम से इस उद्यान का उद्घाटन किया। अपनी मौज अनुसार ही २८ अक्टूबर १९६३ सोमवार १२ कार्तिक संवत् २०२० को महात्मा दर्शन अलखानन्द जी को फ़रमाया कि हमें कोई आवश्यक काम है। अतः श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी व महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को तार भेजो कि वे शीघ्र ही नया गांव (श्री प्रयागधाम) आ जावें। महात्मा जी ने श्री आज्ञा शिरोधार्य कर श्री आनन्दपुर में तार भेज दिया। उस समय श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज गुना गये हुए थे। उन्हें फ़ोन द्वारा अशोक नगर से सूचना दी गई।

महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी श्री आनन्दपुर से तथा श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज गुना में सूचना पाते ही वहीं से चल दिये। ३० अक्टूबर १९६३ को दोनों नया गांव (श्री प्रयागधाम) में पहुँचे। नया गाँव में पहुँचते ही

सेवादारों से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सुकोमल सेहत की सकुशलता तथा अन्य समाचार पूछा। सेवादारों ने बताया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निजी मौज से उनको बुलवाया है।

इनके नया गाँव में पहुँचने से पहले २८ अक्टूबर सन् १९६३ को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निजी मौज से सेवादारों अर्थात् महात्मा दर्शन अलखानन्द जी, महात्मा सुखसागरानन्द जी, महात्मा परम दयानन्द जी, महात्मा आत्म दयानन्द जी, महात्मा आत्म निर्लेपानन्द जी, महात्मा योग सत्यानन्द जी, महात्मा योग प्रेमानन्द जी एवं भक्त दीवानचन्द जी (ये सब उस समय अन्दर सेवा में मौजूद थे) इन सब को अपने समीप बुलाया। रूहानी रहस्य के विषय में सांकेतिक भाषा में सब को धैर्य देते हुए फ़रमाया—"यह रूहानी सिलसिला युग-युगान्तरों तक चलता रहेगा। दो महात्मा हमने चुने हैं, ये सत्संग का काम हमारे बाद सँभालेंगे। समय आने पर सब को विदित हो जायेगा। कोई भी दुःखी न हो।"

जब ३० अक्टूबर सन् १९६३ को श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी तथा महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी दोनों श्री प्रयागधाम श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री चरणों में उपस्थित हुए तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वयं ही फ़रमाया कि घबराने की ज़रूरत नहीं, हम ने किसी विशेष कार्य के लिए बुलवाया है। इस के बाद श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ३१ अक्टूबर सन् १९६३ को श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी (श्री चौथी पादशाही जी) को एकान्त में कुछ समय के लिये रूहानी रहस्य के विषय में सद्वचन फ़रमाते रहे। फिर महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को पास बुलवा लिया और दोनों को अपने पास खड़ा करके फ़रमाया—"आप दोनों ने हमारी बहुत सेवा की है। हम आप दोनों से बहुत खुश हैं। आप दोनों हमारी दाईं-बाईं आँख हो। हमारी निजी मौज कुछ और है। आप दोनों ने आगे के लिए परमार्थ का काम करना है। महात्मा बेअन्त आनन्द जी हमारे रूहानी जानशीन होंगे और महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को फ़रमाया कि आप ने हर प्रकार से इनसे (श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी) मिल कर सेवा करनी होगी।" श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की ऐसी

मौज देखकर दोनों महानुभावों के दिल में अत्यधिक दुःख हुआ परन्तु मुख से एक शब्द भी न निकाल सके।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पुनः फ़रमाया कि श्री आनन्दपुर में श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के तैयार होने पर संगत सुबह के समय श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में और सायं समय आरति-पूजा श्री समाधि पर (श्री आनन्द शान्ति भवन में किया करे) श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी (श्री चौथी पादशाही जी) को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया कि आप भी दोनों समय आरति-पूजा में शामिल हुआ करें। आप का आसन चौकी पर साथ ही बना दिया जाएगा और परम्परा अनुसार ऐसा ही कार्यक्रम चलेगा। अन्त में यह भी फ़रमाया कि श्री समाधि, (श्री आनन्द शान्ति भवन) श्री आनन्दसर की सीमा के अन्दर व श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की पश्चिम दिशा में होनी चाहिए जिस का निशान पहले ही लगवा दिया गया है।

इसके पश्चात् महात्मा दर्शन अलखानन्द जी को दरवाज़े पर खड़ा कर दिया तथा एकान्त में श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी को रूहानी रहस्य समझाने के साथ साथ यह भी फ़रमा दिया कि (श्री स्वामी जी श्री पंचम पादशाही जी का नाम लेकर) इन्होंने परमार्थ का अत्याधिक काम करना है। इन का अच्छी तरह से ख़्याल रखना।

इस प्रकार पूर्ण उत्तरदायित्व श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी को सौंप कर आप निश्चिन्त हो गए परन्तु अन्तिम समय तक स्वयं पूर्ण रूप से कार्य में व्यस्त रहे। इस के पश्चात् दीपावली के पर्व पर श्री आनन्दपुर में कृपा की और माघी तक यहां श्री दर्शनों से सब को कृतार्थ किया। कभी कोई प्रेमी सुकोमल सेहत के विषय में पूछता तो आप प्रायः यही फ़रमाया करते थे कि "अब हम बिल्कुल स्वस्थ हो जायेंगे। आप को वैशाखी के पश्चात् अच्छी सेहत में दर्शन देंगे।" सभी प्रेमी इस संकेत को न समझ कर अपने भावानुसार यही समझते कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के हाथ में सब कुछ है। जैसा करना चाहें कर सकते हैं तथा वह श्री चरणों में यही विनय भी किया करते थे कि प्रभो! हमारी

हार्दिक अभिलाषा यही है कि आप शीघ्रातिशीघ्र अच्छी सेहत में हमारे इन प्यासे नयनों की तृषा बुझाइये । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी थोड़ा सा मुस्करा देते परन्तु परन्तु....इस रहस्य को कोई न जान पाता ।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने २६ जनवरी १९६४ बुधवार को अन्तिम बार श्री आनन्दपुर से विदाई ली । जाने से पहले कार में विराजमान होकर श्री आनन्दपुर की चप्पा-चप्पा, कण-कण भूमि को कृतार्थ किया । ३० जनवरी वीरवार १९६४ को श्री प्रयागधाम पहुँचे । ३० जनवरी १९६४ से २२ मार्च १९६४ तक श्री प्रयागधाम (नया गांव) में विराजमान रहे । जिन प्रेमियों को अभी कृतार्थ करना शेष था उनके पास भी पहुँचे । २३ मार्च १९६४ सोमवार को बम्बई जाने की श्री मौज हुई और वहां कृपा की ।

यहां श्री मौज में एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने यह प्रवचन फ़रमाए कि "इस बार वैशाखी का पर्व नए ढंग से मनाया जाएगा ।" सेवकों ने विनय की—कैसे मनाया जाएगा ? श्री प्रवचन हुए—"हम किसी के साथ बातचीत नहीं करेंगे, न हम किसी को प्रसाद देंगे और न ही हार पहनाने का सुअवसर दिया जाएगा ।"

१ अप्रैल सन् १९६४ को सेवादारों ने विनय की कि श्री आनन्दपुर में कब पधारने की श्री मौज है, टिकटों के लिए प्रबन्ध किया जाए । श्री वचन हुए कि इस बार श्री आनन्दपुर में कार में जाने का ख़्याल है । ३ व ४ अप्रैल को श्री परम पवित्र सेहत कुछ सुकोमल थी । सेवादारों ने विनय की कि "प्रभो ! इस बार वैशाखी का पर्व न मनाया जाए तो अच्छा होगा । इस दशा में यात्रा करने में कष्ट होगा । श्री परम पवित्र सुकोमल सेहत ठीक हो जाने पर संगतों को श्री दर्शन का सुअवसर देने की कृपा करें ।" श्री वचन हुए कि १३ अप्रैल वैशाखी के दिन सब को श्री दर्शन का सुअवसर दिया जायेगा । श्री आनन्दपुर में आई संगतों को निराश नहीं लौटाना । ११ अप्रैल यहाँ से अवश्य चलना है ।

अब यहां भी देखिये जिनके भाग्य होते हैं श्री दर्शनों के अथवा वचनामृत पान करने के उनके लिए महाप्रभु किसी न किसी कारण को रच कर वहां अवश्य

पहुँच जाते हैं ।

जब (बम्बई में) डॉक्टरों ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की परम पवित्र सेहत को देखा तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही कि एक तरफ़ तो इतनी नाज़ुक सेहत और दूसरा चेहरे पर चमकती हुई इतनी ज्योति—तो उनके मुख से अनायास ये शब्द निकल पड़े कि ये तो दिव्यातिदिव्य असाधारण गुणों से युक्त कोई अवतारी विभूति हैं । ये सन्त महापुरुषों की श्रेणी से भी कहीं उच्चतम हैं । उन्होंने उन अलौकिक श्री दर्शनों की मनोरम छटा का पान करके अपने को कृतकृत्य कर लिया।

अविस्मरणीय दिवस

प्रेम के तार अति झीने होते हैं । ये लाखों मीलों की दूरी पर बैठे हुए भी झंकृत हो उठते हैं । उधर श्री आनन्दपुर नगरिया के सम्राट् हज़ार मील की दूरी पर विराजमान होकर कितनी ही नवीन आत्माओं को अपने परमार्थ के प्रकाश से धन्य करने में मग्न थे तथा मन ही मन गुप्त रूप से स्थूल दृष्टि से ओझल होने की तैयारी कर रहे थे । इधर श्री आनन्दपुर की दशा को देखिये ।

जिस श्री आनन्दपुर के कण कण को नयनाभिराम श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपने प्रेम रूपी जल से सींचा, जिसके कण कण में प्रसन्नता व आनन्द का अमृत उड़ेला, जिसे प्रेम के बन्धन में बांधा, उस श्री आनन्दपुर के कण कण से प्रेम की तारें हिल उठीं । एक एक दिन भारी हुआ जा रहा था । गगन में चाँद, सूर्य एवं तारागण बुझे बुझे से दिखाई देते थे । दिशाएँ सूनी सूनी भासती थीं । प्रातः व सायं कलरव करते हुये पक्षी प्रिय न लगते थे । प्रेमियों के हृदय में किसी अज्ञात दिशा से आती हुई अन्धकार की काली रेखा अपने आप खिंची चली जा रही थी । अत्यन्त सूनापन वह सूर्यास्त की लालिमा जिस के पीछे रात्रि का गहन अन्धकार छिपा हुआ था, जहाँ सुनहरे स्वप्न धुंधलेपन में छिपते हुये दिखाई देते थे, अशुभ

और अमंगल भावनाएँ रह रहकर सब के हृदयों को कचोटती थीं।

धरती के कण कण से, हवा के एक एक झोंके से, मेघों की जलभरी बूँदों से, उद्यानों में लगे हुये वृक्षों के पत्ते-पत्ते से यही प्रार्थना की एक पुकार उठती थी कि कब हमारे हृदयेश्वर शीघ्र ही दिव्यतम सुषमा से सनाथ करने आएँ। परन्तु....।

४ अप्रैल से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की निजी मौज जैसे सुदृढ़ होती गई। अन्त में वह दिन भी जो कि प्रेमियों के हृदयों को तड़पाता हुआ विधाता की ओर से आ पहुँचा जिसकी कभी किसी ने कल्पना भी न की होगी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने सेवकों को फ़रमाया कि आज हमने श्री आनन्दपुर जाना है। तत्पश्चात् सायं काल पलंग पर पद्मासन लगा कर सीधे ध्यान में बैठ गए। यह वही अभागा, लाखों हृदयों पर वज्रपात करने वाला दिन था जब ११ अप्रैल १९६४ तदनुसार ३० चैत्र सम्वत् २०२० शनिवार चैत्र बदी चौदस सायं ७-२५ मिनट पर श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी अपने निज स्वरूप में लीन हुए।

उस समय महात्मा व भक्त जन जो साथ थे बहुत दुःखी हुए व रोने लगे। हृदय की वेदना सम्भाले न सँभलती थी। डॉक्टर भी चकित होकर सेवादारों की ओर देख रहे थे कि यह क्या! श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के ओठों पर मधुर मुस्कान खेल रही थी। मुखमण्डल की आभा चाँद सूर्य को लजा रही थी परन्तु रहस्य विदित होने पर उनके हृदय चीत्कार कर उठे।

अब यह बात सामने आई कि क्या किया जाए। श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी व महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी उस समय वहीं मौजूद थे। उन्होंने सबको कहा कि अब श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के परम पवित्र श्री स्थूल शरीर को श्री आनन्दपुर ले चलना है। इस घटना से १० दिन पहले १ अप्रैल को जो पवित्र वचन हुए थे उनको याद करते हुए सब ने कहा कि ११ अप्रैल को कार द्वारा श्री आनन्दपुर जाने के जो वचन हुये थे वह सत्य निकले। उसी के अनुसार ही कार का प्रोग्राम बनाया गया।

उसी रात को भारत के सब नगरों व शहरों में तार व फ़ोन द्वारा यह दुःखद समाचार पहुँचा दिया गया और यह भी सब को बतलाया गया कि जिसने भी श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के अन्तिम दर्शन करने हों वे सब श्री आनन्दपुर आ जावें ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के परम पवित्र श्री स्थूल शरीर को श्री आनन्दपुर पहुंचाने के लिए कार ११ अप्रैल की रात को बम्बई से चली और १३ अप्रैल संक्रांति वैशाखी संवत् २०२१ के दिन सुबह ७ बजे कार श्री आनन्दपुर पहुँची । भारत के लगभग सभी नगरों व शहरों उदाहरणतया बम्बई, कलकत्ता, देहली, लखनऊ, कानपुर, इलाहबाद, आगरा, जयपुर, कोटा, बंगलौर, नागपुर, चण्डीगढ़, जालन्धर, अमृतसर, हैदराबाद, यू० पी०, पंजाब, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, जम्मू, काश्मीर आदि में इस दुःखद समाचार की सूचना दी गई थी । सब नगरों व शहरों की संगतें इस दुःखद घटना के सुनते ही श्री आनन्दपुर पहुँचने लगीं । जहाँ जिस ने सुना सब के हृदय पर एक बिजली सी गिरी ।

दुःखद समाचार तथा करुण-क्रन्दन ने तो पहले से ही सब के हृदय विदीर्ण कर दिये थे परन्तु जब १३ अप्रैल को श्री विग्रह युक्त कार श्री आनन्दपुर में पहुँची तो सब के धैर्य के बाँध टूट गये । प्रेम ने विरह का रूप धारण कर लिया । सब ने कार को घेर लिया । सुमञ्जुल छवि सूर्य की न्याईं किरणें बिखरा रही थी । परन्तु कमल नयन खुलने का नाम न लेते थे । सुकोमल ओठों से वह प्रिय मनहर वचन सुनाई न दे रहे थे । यह देखकर सब चीत्कार कर उठे । उस समय हृदयों की वेदना को सुन कर दीवारें हिल उठीं, पत्थर भी पानी बन गए परन्तु........।

आध घण्टे के पश्चात् महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी ने सब को कहा कि सायं चार बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री विग्रह (स्थूल शरीर) के सब को श्री दर्शन करवा कर बाद में श्री समाधि का प्रोग्राम बनाया जाएगा क्योंकि काफ़ी संगतें जो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के अन्तिम

दर्शन करने की भावना से श्री आनन्दपुर आ रही हैं वे भी शाम तक आ जावें। श्री समाधि के विषय में महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी व अन्य तीन चार महात्माओं ने बताया कि श्री आनन्दसर की सीमा के अन्दर श्री समाधि देने की श्री आज्ञा हुई है। महात्मा नित प्रेमानन्द जी ने कहा कि आज से दो साल पहले श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने श्री आनन्दसर की सीमा में, श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के पश्चिम में एक जगह अपनी समाधि के लिए बताई है। वहाँ निशानी के रूप में एक खूँटा लकड़ी का गड़ा हुआ है, उसी स्थान पर श्री समाधि बनाई गई। १३ अप्रैल सायं चार बजे तक हज़ारों की संख्या में संगतें श्री आनन्दपुर आ पहुँचीं।

सायं ४ बजे श्री परम पवित्र सुकोमल शरीर को स्नान करवा कर नये वस्त्र पहनाए गए और तिलक लगा कर सब संगतों ने विधिपूर्वक श्री आरति-पूजा की। सायं के पाँच बजे श्री पालकी सजा कर उस में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सुकोमल शरीर को विराजमान कराया गया। पालकी को धीरे धीरे चलाया गया ताकि सब संगतें अन्तिम दर्शन कर सकें। मार्ग में प्रेमियों गुरुमुखों ने बिना एक पलक झपकाए श्री छवि के दर्शन किए। सब की आँखों से अश्रु धारा नदी के तेज़ प्रवाह की न्याईं बह रही थी परन्तु सभी इस अन्तिम श्री छवि के श्री दर्शन एकटक से किए जा रहे थे कि पुनः इस दिव्यातिदिव्य अनूप स्वरूप के श्री दर्शन न हो पाएंगे।

श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर जो अभी तैयार नहीं हुआ था उसकी परिक्रमा कराई गई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री विग्रह को १३ अप्रैल १९६४ सोमवार चैत्र शुदी पहली वैशाखी के दिन सम्वत् २०२१ सायं ६–४५ मिनट पर महान् समाधि में विराजमान कराया गया। जब समाधि दी गई तो संगतों का धैर्य टूट गया और उन की आँखों से अश्रुओं की धाराएँ बहने लगीं। परन्तु उस समय हो ही क्या सकता था।

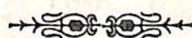
कुछ दिन पहले श्री वचन हुए थे कि १३ अप्रैल वैशाखी वाले दिन सब को श्री दर्शन का अवसर देना है। हम किसी के साथ बातचीत नहीं करेंगे न ही हम

किसी को प्रसाद ही देंगे और न ही किसी को हार आदि पहनाने का अवसर दिया जाएगा। उस समय सेवादारों ने बताया कि ऐसे संकेत कुछ दिन से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी कर रहे थे।

प्रेमी गुरुमुखों के लिए यह दुःख असह्य था। इस समय तो उनका एक एक क्षण युग सम व्यतीत हो रहा था। १३ अप्रैल की रात्रि ही मानो एक कल्प के समान बन गई थी। १४ अप्रैल मंगलवार के दिन महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी तथा अन्य सेवादारों ने मिलकर श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के रूहानी जानशीन के विषय में गुप्त प्रवचन सब के सामने प्रकट करने के लिए परामर्श किया ताकि हृदयों को कुछ धैर्य प्राप्त हो सके। अतः १४ अप्रैल सन् १९६४ को मंगलवार के दिन सब संगत को बड़े हॉल कमरे में एकत्र कर श्री प्रवचन सुनाए गए कि—

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने ३१ अक्टूबर सन् १९६३ को अपना रूहानी जानशीन श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज को नियुक्त किया है। सब संगतों ने इन वचनों को शिरोधार्य कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी के श्री चरणों में अपने मस्तक झुका दिए। विधि पूर्वक रूहानी जानशीनी का दिन २० अप्रैल १९६४ निश्चित किया गया।

श्री प्रवचनानुसार १४ अप्रैल से सुबह शाम दोनों समय श्री आनन्द शान्ति भवन (श्री समाधि जी) में आरति होने लगी।



श्री मुख प्रवचन

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने जितना परमार्थ का कार्य किया वह अवर्णनीय है। उन्होंने स्थान स्थान पर सत्संग आश्रम निर्माण करवाए और केन्द्रों की स्थापना की। समय समय पर उन केन्द्रों में विराजमान होकर जो अमृत प्रवचन फ़रमाए उन सम्पूर्ण प्रवचनों को लेखनीबद्ध करना अत्यन्त कठिन है। उनके श्री अमृत प्रवचन उस दिव्य ज्योति की आभा हैं जिसने घट घट में प्रकाश भर सब को आलोकित कर दिया और वही किरणें युग युगान्तरों तक प्रेमियों के हृदयस्थल में सदा जगमगाती रहेंगी। प्रेमिजन तथा सर्वसाधारण भी इस प्रकाश में अपना मार्ग खोजने में सफल हो सकेंगे। उनके दिव्य, अमर प्रवचन सरल भाषा में भक्ति की अलौकिक मधुरिमा को लिए हुए हैं जिनसे प्रत्येक प्राणी सन्मार्ग को सरलता से ग्रहण कर सकता है तथा अपने जीवन को श्रेयस्कर बना सकता है। उन श्री मुख प्रवचनों में से कुछ एक श्री अमृत प्रवचन यहां दिए गए हैं, जिन पर आचरण करके प्रेमिजन जीवन का कल्याण कर सकते हैं।

प्रवचन १. यदि किसी जीव में बिना भक्ति के अनेकों गुण हों तो वे सब गुण सत्पुरुषों की दृष्टि में कौड़ी के बराबर भी नहीं हैं। यदि केवल एक भक्ति का गुण हो तो वह अनेकों गुणों से भी कहीं बढ़कर है। सन्त महापुरुष शारीरिक गुणों को नहीं देखते, वे भक्ति के गुणों को ही देखते हैं। उनकी दृष्टि में भक्ति का गुण ही सर्वोत्तम गुण है। रामायण में भी कहा है कि:—

भक्तिहीन गुण सुख सब ऐसे। लवण बिना बहु व्यंजन जैसे॥

जिस प्रकार नमक के बिना सभी व्यंजन फीके लगते हैं अथवा चाँद के बिना

सितारों जड़ित आकाश भी शोभायमान नहीं होता इसी प्रकार ही भक्ति के बिना अनेकों गुण किसी काम के नहीं क्योंकि भक्ति ही मानुष जीवन का सुन्दर श्रृंगार है। सन्त महापुरुषों की दृष्टि में जिसके अन्दर भक्ति का गुण विद्यमान नहीं वह लोहार की धौंकनी के समान है अर्थात् वह निष्प्राण हो कर जीवन व्यतीत कर रहा है।

माया की ओर से चाहे कोई लखपति बन जाए अथवा महासम्राट् परन्तु भक्ति के बिना उसका कोई विशेष मूल्य नहीं। गुरुबाणी में भी लिखा है:—

एक भगति भगवान जिह प्रानी कै नाहि मन।
जैसे सूकरु सुआन नानक मानो ताहि तन॥

क्योंकि जिस ने अपने जन्म के मूल्य को ही न पहचाना तो उसकी बुद्धिमत्ता, सुन्दरता व कुशलता किस काम की? ये गुण तथा बुद्धिमत्ता तो उसे पिछले पुण्य कर्मों से मिल गई और अब यदि इस जन्म की श्रेष्ठता न समझी और शारीरिक सुखोपभोगों में फँसा ही रहा तो उसने मानो मानुष जन्म का दुरुपयोग किया।

अतएव मानव जन्म को भक्ति रूपी गुण से सुशोभित करके इस जन्म का पूरा पूरा लाभ उठाना है।

प्रवचन २. संसार में सद्गुरु के सेवक का पद बहुत ऊँचा है। सर्वसाधारण लोगों की दृष्टि में माया का दर्जा बहुत ऊँचा है और वे दिन रात मायावी पदार्थों की खोज में लगे रहते हैं। वे माया की सीमा से बाहर नहीं जा सकते। परन्तु जो सद्गुरु का सेवक है उसके लिए माया के पदार्थ तुच्छ हैं। सेवक के अन्दर यह भाव होता है कि इष्टदेव ही मेरे सच्चे मालिक हैं और केवल वे ही मेरी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि शत्रुओं से रक्षा करने वाले हैं। सेवक के दिल में अपने इष्टदेव के प्रति जो ऊँची श्रद्धा व भक्ति होती है उससे सेवक के अन्दर वही शक्ति पैदा हो जाती है। सेवकपन में बहुत लाभ है क्योंकि यह भाव अर्थात्

कुल मालिक का ख़्याल रखते हुए उसी कुल मालिक के स्वरूप में मिल जाता है। इस लिए सेवक को बिना सद्गुरु के स्वप्न में भी दूसरा ख़्याल नहीं आता। इसी का नाम भक्ति है और यही आत्मिक उन्नति का लक्ष्य है। संसार में कथनी करने वाले मनुष्य अपना पूरा जीवन वाचक ज्ञान में गुज़ार देते हैं। परन्तु वे गुरुभक्ति को प्राप्त नहीं कर सकते। महापुरुष फ़रमाते हैंः—

"भक्ति पंथ सम्भार तेरे भले की कहूँ"

मनुष्य जब तक भक्ति और प्रेम के मार्ग में पाँव नहीं रखता तब तक उसकी हालत कुछ और होती है किन्तु जब वह प्रेम भक्ति के मार्ग में चल पड़ता है, तब वह कुछ और ही बनता जाता है। भक्ति मार्ग में पग रखने से पहले उसकी हालत ग़फ़लत और बे समझी की होती है। तब उसकी आत्मा सुप्तावस्था (सोई हुई) में होती है और आत्मिक शक्तियां काम करने के योग्य नहीं होतीं। जिसने मालिक से मिलने की राह में पांव रखा है, वह तो जाग्रत अवस्था में है। क्योंकि जब तक जीवात्मा में जाग्रति नहीं आती, भक्ति और परमार्थ की कमाई की चाह ही पैदा नहीं होती तथा मालिक के मिलाप की इच्छा ही नहीं जागती। यदि किसी में यह चाह, यह इच्छा और यह लगन जागी है तो समझना चाहिए कि उस की आत्मा ग़फ़लत की नींद से जाग्रत हो चुकी है। यह जाग्रति सत्पुरुषों की संगति से ही मिलती है।

सेवक को सुख और दुःख दोनों अवस्थाओं में समान भाव से रहना चाहिये क्योंकि जिज्ञासु को भक्ति मार्ग में दुःख और सुख दोनों से लोहा लेना पड़ता है। जिस प्रकार दुःख की अवस्था में घबराना अच्छा नहीं इसी प्रकार सुख की हालत में हर्ष में फूलना अच्छा नहीं। दोनों हालतों में स्वयं को सम रख कर आगे क़दम बढ़ाना चाहिये। साधक तो हिम्मत और उत्साह से काम करता जाये, शरीर पर दुःख-सुख दोनों अवस्थाएँ एक परीक्षा की तरह हैं। इसीलिये सेवक का धर्म है कि निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक, मान-अपमान दोनों अवस्थाओं में सम रहे।

॥ चौपाई ॥

समदर्शी इच्छा कछु नाहिं । हर्ष शोक भय नहिं मन माहिं ॥
अस सज्जन मम उर बसहिं कैसे । लोभी हृदय बसत धन जैसे ॥

सेवक का पद प्राप्त करना ही उत्तम भक्ति है और यही सबसे ऊँचा ज्ञान है ।

प्रवचन ३. नमक और तेल बेचने वाले को लाल की परख और क़दर नहीं होती, इसी तरह माया आसक्त जीव जो सुखैश्वर्यों रूपी नमक और तेल के व्यवहार में लगे हुए हैं वे श्वासों की कीमत नहीं जानते । श्वास लाल के समान हैं । जिनकी कीमत गुरुमुखों को ही होती है । लाल को अगर मामूली पत्थर समझ कर गँवा दिया जाये तो दुनियावी दृष्टि में कितनी भारी हानि है । इसी प्रकार सत्पुरुषों की दृष्टि में एक श्वास का मालिक के सुमिरण के बिना व्यर्थ चले जाना बड़ा भारी नुकसान है । इसका अनुमान गुरुमुख ही लगा सकते हैं । परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने तो एक एक श्वास की कीमत त्रिलोकी के समान बताई है:—

॥ दोहा ॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहूँ बजाये ढोल ।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥

यह समय अनमोल लाल की भाँति है । इसे नष्ट न करते हुए इसकी क़दर करनी चाहिये । यदि श्वासों को परमार्थ की कमाई में खर्च किया जाए फिर तो इसकी कीमत ठीक है अन्यथा नहीं । एक एक श्वास का मूल्य जब तीन लोकों की सम्पदा है तो फिर दिन-रात चौबीस घण्टे में व्यर्थ जाने वाले श्वासों का कितना नुकसान होगा ? यही विचार करना है । सन्त सहजोबाई जी फ़रमाती हैं कि:—

॥ दोहा ॥

स्वास ख़ज़ानो जातु है, ताकी सोधी नाहिं ।
सहजो ख़र्चो का रह्यो, कर हिसाब घर माहिं ॥

विचार कीजिये एक संसारी मनुष्य जो संसार के धन्धों में लगा हुआ है, वह अपने समय को अत्यन्त कीमती मानता है। परन्तु महापुरुषों की दृष्टि में उनका समय व्यर्थ जा रहा है। वे हीरे के बदले कौड़ियों का व्यापार कर रहे हैं। गुरुमुख को यही विचार करना है कि क्या उसका समय तो कहीं व्यर्थ नहीं जा रहा? गुरुमुख का समय अत्यन्त कीमती है क्योंकि उसे सत्पुरुषों की संगति से यह ज्ञान हो गया है कि एक एक श्वास की कीमत का मूल्य गिनती से बाहर है। यदि यह खज़ाना लुट गया तो पछताने के सिवाय कुछ भी न मिलेगा।

सन्त सत्पुरुष गुरुमुख को पारखू बना देते हैं जिससे गुरुमुख जन अपने समय का मूल्यांकन कर सकें। अतएव गुरुमुखों का कर्त्तव्य है कि अपने समय की कीमत को पहचानते हुए अपने श्वासों की पूँजी को सद्गुरु के दिये हुये शब्द तथा नाम की ओर ही लगाएँ तभी सफलता प्राप्त हो सकेगी।

प्रवचन ४. बन्धन किसी को भी प्रिय नहीं है। वास्तव में बंधन बुरी चीज़ है। पराधीनता में सुख नहीं है। जीव की सुरति भी मन और माया, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, तृष्णा व ईर्ष्या के बँधन में बँध चुकी है। अज्ञानता का पर्दा इस पर ऐसा आ पड़ा है कि रूह ने स्वयं को वही रूप समझ लिया है। स्वयं रूह में अपने आप को इस बन्धन से छुड़वाने की शक्ति नहीं है।

जीव के सच्चे मित्र सन्त सद्गुरु हैं। शेष सब रिश्ते-नाते व सम्बन्धी कोई भी जीव का सच्चा मित्र नहीं है। ये सब सम्बन्धो जीव को मोह माया के बन्धन में फँसाते हैं। जीव को मोह-ममता में फँसाना जीव से शत्रुता करना है।

जब से ही सृष्टि की रचना हुई है तब से ही जीव माया में रह कर माया रूप हो गया है।

॥ शेयर ॥

कफ़स में रहते रहते कुव्वत–ए–परवाज़ तक खो दी।
इसी बायस मलाले तंगिए ज़िंदाँ नहीं होता॥

जिस तरह एक पक्षी जन्म से ही पिंजरे में रह रह कर उस पिंजरे को ही अपना घर मान लेता है और अपनी उड़ने की शक्ति खो बैठता है उसी तरह यह जीव भी माया के अन्दर रह रहकर मायारूप हो गया है तथा अपनी वास्तविकता को भूल बैठा है। समय के सन्त सद्गुरु ही इस जीव को जड़ माया व चेतन माया से बचाते हैं। सद्गुरु की कृपा से ही जीव माया और काल के चक्र से छूट सकता है। वे संसार में प्रकट होकर रूहों को चिता कर काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं से बचने की युक्ति बतलाते हैं अर्थात् प्रेम-भक्ति की ओर जीवों को लगाकर रूह (आत्मा) को आज़ादी (मुक्ति) दिलाते हैं। इसीलिए जीव को मन, वचन व कर्म से सद्गुरु की मौज व श्री आज्ञा में चलकर अपनी जीवात्मा को इन बन्धनों से मुक्त करवाना चाहिये।

प्रवचन ५. आंखों से ऊपर ब्रह्मांड देश है। अजपा-जाप, सहज-समाधि, अनाहत-शब्द और ध्यान आदि सहस्त्र दल कमल से ऊपर किया जाता है। शरीर से सुरति निकालने से ही अभ्यास में सुरति लगती है। सुरति शरीर से निकाल देना मर जाने के बराबर है। सन्त सद्गुरु जीवन में ही मरने की युक्ति सिखाते हैं कि अन्त समय अर्थात् मरते समय संसार की वस्तुओं में सुरति फँसी न रहे। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी फ़रमाते हैं:—

॥ दोहा ॥

जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द॥

इसीलिए सन्त सद्गुरु पहले से ही जीव को इस तरह का अभ्यास करवाते हैं। अभ्यास करते समय जैसी हालत जीव की होती है वैसी मरते समय होनी चाहिए। उस समय सुरति शरीर, मन, इन्द्रियों व सांसारिक लगाव में न फँसी हो इसी का नाम मुक्ति है। इसीलिए गुरुमुख पुरुष सांसारिक वस्तुओं के मोह का पहले से ही त्याग कर देते हैं और भजनाभ्यास में मन लगाकर जीते जी जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

प्रवचन ६. यह जीव नित्य सुख की खोज करता है परन्तु प्राप्त नहीं कर पाता। इसको यह पता नहीं कि सुख कहां मिलता है। वह सांसारिक वस्तुओं में सुख ढूंढता है।

॥ दोहा ॥

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं, किस विधि आवै हाथ।
कहे कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजै साथ॥

वस्तु तो कहीं और हो और उसकी तलाश किसी और जगह की जाए तो वह प्राप्त कैसे हो सकती है। यदि उस वस्तु को दूसरे स्थान पर ढूंढोगे तो सारा समय ही व्यर्थ जाएगा। जैसे सुई घर में खो गई और वहां अन्धेरा है इसीलिए बाहर रोशनी में देखने लगे, यह कितनी भूल है। संसारी लोग सुख को दुनिया के पदार्थों में ढूंढते हैं। सुख और शान्ति उस शब्द और प्रकाश में है जो तुम्हारे अन्दर है लेकिन तुम उससे बेखबर हो। तुम स्वयं अपने अन्दर के प्रकाश को नहीं देख सकते। इसीलिए उस को दिखाने के लिए भेदी राहबर (सद्गुरु) की ज़रूरत है।

॥ दोहा ॥

भेदी लीन्हा साथ करि, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुँचा जाय॥

अपनी मनमति से चाहे लाखों ही यत्न क्यों न किए जावें वह वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती। जिस प्रकार का काम करना हो उसी प्रकार के ज्ञाता (जानकार) और अनुभवी की राहनुमाई की ज़रूरत होती है। इसी प्रकार शब्द के भेदी सन्त सत्पुरुष होते हैं जो शब्द का भेद बताते हैं।

गुरुमुख का धन और सम्पत्ति सद्गुरु का शब्द, सद्गुरु का उपदेश, मन्त्र व जाप तथा श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा है। इसके विपरीत मनमुख अपनी जायदाद इन मायावी पदार्थ, झूठी इज़्ज़त, शारीरिक सुख और झूठे नातों को समझता है जो

नश्वर हैं और अन्त में उसको धोखा देते हैं। मनमुख को सुरति शरीर में तथा शरीर के सुखों में अटकी है जो सब नाशवान् हैं। गुरुमुख की सुरति रूह और रूहानी सम्बन्धों से होती है जोकि अमर हैं। आत्मा का सम्बन्ध सद्गुरु से, उनकी मौज व आज्ञा एवं उन के शब्द से होता है जो सत्य है और सुखदायी है। सद्गुरु स्वयं आज़ाद और निर्बन्ध होते हैं और संसारी जीवों की सुरति को भी मोह-माया के बन्धन से मुक्त व आज़ाद करा कर मालिक से मिला देते हैं। सद्गुरु की कृपा से ही जीव को सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

प्रवचन ७.

॥ दोहा ॥

शब्द बिना सुरत आंधरी, कहो कहां को जाय ।
द्वार न पावे शब्द का, फिर फिर भटका खाय ॥

जीव के मित्र और सज्जन सद्गुरु हैं लेकिन जीव अपना सज्जन मन माया और काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को समझ बैठा है जो वास्तव में इसके शत्रु हैं और यह अविद्यावश इन झूठे मायावी पदार्थों में फँस गया है।

गुरुमुखो ! इस मायावी धोखे से बचो। फिर यह समय हाथ नहीं आयेगा। सद्गुरु से जीव का सम्बन्ध होना बड़े भाग्यों की निशानी है। मन व बुद्धि पर अज्ञान के जो झूठे पर्दे (आवरण) पड़े हुए हैं इन को भजनाभ्यास, सद्गुरु की सेवा, ध्यान व श्री आज्ञा का पालन करने से दूर किया जा सकता है। यदि किसी ने अपनी आयु में लाख रुपया इकट्ठा कर लिया है लेकिन अन्त समय वह लाख रुपया साथ नहीं जाता तो फिर जो वस्तु साथ नहीं जा सकती वह तुम्हारी कैसे हो सकती है। तुम सोचते होगे कि शायद साथ ले जाएँगे लेकिन साथ कुछ भी नहीं जाएगा, सद्गुरु जीव को चिताते हैं कि अपनी रूह का काम करो। शरीर का निर्वाह तो प्रारब्ध अनुसार होता रहता है। प्रारब्ध की चिन्ता मत करो। सद्गुरु के प्रवचनों पर विश्वास रखो। मनुष्य इस भूल और अज्ञानता के कारण ही मोह-माया में भटक रहा है। इसलिए अपनी सुरति को सद्गुरु के शब्द के

साथ मिलाओ, सद्गुरु का शब्द ही रोशनी है, बिना सद्गुरु के शब्द के सुरति अन्धेरे में भटक रही है।

प्रत्येक मनुष्य प्रकाश में रहना चाहता है और प्रकाश में रह कर ही प्रसन्न होता है। अन्धेरा किसी को भी प्रिय नहीं। जो काम प्रकाश में किया जाता है वह बिल्कुल ठीक हुआ करता है। प्रकाश में सब कुछ स्पष्ट दिखाई देता है इसकी अपेक्षा अन्धेरे में की गई सब कार्यवाही ग़लत हुआ करती है। जिस तरह ये दो पहलू हैं, इस तरह माया और भक्ति के भी दो पहलू हैं। भक्ति रोशनी है और माया अन्धेरा है। माया में ज़ाहिरी तौर पर (ऊपरी दिखावा) तो सुख भासते हैं लेकिन वास्तव में इस से चिन्ता, ग़म, क्लेश व अशान्ति ही प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार विष पर मिठास चढ़ा दी जाये वही हाल माया के पदार्थों का है। यह मन माया का मसाला है और संकल्प-विकल्पों का समूह है। यह सब अन्धेरा ही है।

सद्गुरु का शब्द रोशनी है। आत्मा का सम्बन्ध सद्गुरु के शब्द से होता है, माया परछाईं की भांति उसके पीछे पीछे भागती है। इसलिए जीव को सद्गुरु के शब्द में अपनी सुरति को लगाकर प्रकाशरूप बनना चाहिये।

प्रवचन ८. सुरति यानि मनोवृत्ति की धारा को जिस काम में या जिस ओर लगाया जाय उसी में उन्नति व सफलता प्राप्त होती है। जिसने जिस काम में सुरति की धारा को लगाया, चाहे भजनाभ्यास हो या दुनियावी काम, दोनों कामों में उच्चतम स्तर तक पहुँच सकता है। लेकिन संसारी उन्नति का आत्मा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। दुनियावी कामों का सम्बन्ध दुनियावी सुखैश्वर्य के पदार्थों से है, नश्वर क्षणभंगुर पदार्थों से एवं मन की इच्छाओं से है; जो जीवात्मा के लिए बन्धन रूप बन जाते हैं। मनुष्य जन्म को पाकर सुरति की धारा को संसारी कामों में लगाना सन्त महापुरुषों की दृष्टि में कोई विशेषता नहीं। अपनी अनमोल सुरति की धारा को जिस का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता दुनियावी ख़्वाहिश व शारीरिक सुखों की ओर नहीं लगाना चाहिये। सुरति को सद्गुरु के शब्द में लगाना ही सर्वोत्तम है। सद्गुरु का शब्द ही सार वस्तु है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी का

वचन हैः—

"जाग री मेरी सुरति सुहागिन जाग री"

संसार में सुहागिन उस स्त्री को कहा जाता है जिस का पति जीवित हो और दिन रात चौबीस घण्टे वह पति को प्रसन्न रखे। श्री कबीर साहिब जी ने सुरति को सुहागिन बनने के लिये कहा है—ऐ मेरी सुहागिन सुरति! मोह-अज्ञान की नींद से जाग। सुहागिन वही सुरति है जिसने सद्गुरु की सेवा करके उनको प्रसन्न किया और सद्गुरु के शब्द में लीन हो गई। मानव जन्म में ही सुरति को जगाने का समय मिलता है। जिस को मानव जन्म भी मिल जाए, सत्संग की प्राप्ति भी हो जाए और समय के सन्त-महापुरुषों को मिलने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ हो; ऐसे स्वर्णमय अवसर के मिलने पर भी जो अपनी सुरति शब्द से नहीं मिलाता, जो सुरति को नहीं जगाता तो उसने संसार में आकर क्या प्राप्त किया? सर्व-साधारण तो मोह-माया की नींद में अचेत पड़े हैं। यदि गुरुमुख भी वास्तविकता को प्राप्त नहीं कर सकते अर्थात् अपनी पूरी आयु खाने-पीने व सोने में गुज़ार कर ऐसे अमूल्य समय को नष्ट कर देते हैं, वह भी सर्वसाधारण की भांति संसार से बिल्कुल ख़ाली हाथ जाते हैं और आगे भी आवागमन के चक्र में पड़ जाते हैं, जिससे पुनः समय मिलना कठिन है। इस लिये सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि लोभ, मोह की नींद से जाग। ऐ मेरी सुरति! सद्गुरु के शब्द से मिलकर सुहागिन बन। यही मनुष्य जन्म का वास्तविक उद्देश्य है।

प्रवचन ६. प्रकृति की रचना में प्रत्येक वस्तु के दो पहलू हैं। रोशनी व अन्धेरा, सत्य-असत्य, बुरा-भला, आत्मा-शरीर तथा माया व भक्ति। गुरुमुख जन माया में व्यवहार करते हुये भक्ति को ग्रहण करते हैं। जिस तरह माया प्राप्त करने के लिए बहुत सी अड़चनें मार्ग में आती हैं इसी तरह भक्ति या परमार्थ के रास्ते में भी बहुत सी रुकावटें सामने आती हैं। गुरुमुख इस पथ पर चलते हुये अपने आपको मन और माया के चक्र से बचाकर भक्ति में सफलता प्राप्त करते हैं। भक्ति में रुकावटें तो आती रहती हैं, परन्तु इन बाधाओं से घबराना नहीं। सत्पुरुषों के

वचनों से यह रोशनी मिलती है किः—

॥ दोहा ॥

नर संसारी लगन में, दुःख सुख सहै करोड़ ।
नारायण हरि भजन में, जो आवै सो थोड़ ॥

जब माया जीव को अपने पंजे में फँसा लेती है तो उसको निजधाम भूल जाता है। लेकिन गुरुमुख सन्त सद्गुरु की शरण लेकर अपने आप को माया की लपेट से आज़ाद कर लेते हैं। गुरुमुख सद्गुरु की भक्ति के द्वारा मन और माया पर काबू पा लेते हैं। जिस का माया के धोखे में आकर समय व्यतीत हो गया और माया के बन्धनों से आज़ाद न हो सका तो यह कितनी हानि है। केवल ज़िन्दगी के दिन ही पूरे नहीं करने हैं, खान-पान और पहरान में ही समय व्यर्थ नहीं खो देना है, बल्कि इसी समय में मालिक की प्राप्ति करनी है। एक समय में दोनों वस्तुओं की प्राप्ति नहीं हो सकती या तो माया मिलेगी या भक्ति।

॥ दोहा ॥

सत्तनाम कड़वा लगे, मीठा लागै दाम ।
दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम ॥

अब सोचो कि कितना लाभ या हानि है। यदि मालिक की प्राप्ति हो जाए तो कितना लाभ है ? इन बातों पर विशेष ध्यान देते हुए सन्त महापुरुष चेतावनी देते हैं कि लाभ से हानि अधिक है। इसीलिए सावधानी से काम लेना है। इस जीव को अपना समय व्यर्थ न गँवाते हुए सदा अपने अमूल्य समय को भजन, भक्ति, सद्गुरु के प्रेम व सेवा में व्यतीत करते हुए अपना जीवन सफल करना चाहिए।

प्रवचन १०. जिस तरह किसी के मन के विचार होते हैं वैसे ही मनुष्य शक्ति प्राप्त करता है यानि विचारों की धारा जिस भी कर्म में पूर्णरूप से होगी मन उसी काम में प्रवृत्त होकर उस वस्तु को प्राप्त करेगा। क्योंकि सुरति में अथाह

शक्ति है। सुरति जिस ताकत को दृढ़ कर लेती है वही रूप बन जाती है। मनमुख की कार्यवाही मनमति और शारीरिक सुख के लिये होती है और गुरुमुख की कार्यवाही प्रेम-भक्ति, सद्गुरु की प्रसन्नता के लिये होती है। दोनों में अन्तर केवल यही होता है कि गुरुमुख सेवा करता है उसका ध्यान, ख़्याल सब सद्गुरु की प्रसन्नता के लिए होते हैं। सद्गुरु की प्रसन्नता के बिना गुरुमुख कुछ भी नहीं चाहता।

गुरुवाणी में लिखा है ज्ञानी वही है जो गुरुमुख है। गुरुमुख को ही महापुरुषों ने ज्ञानी कहा है जो सद्गुरु की आज्ञा मानता है। यदि कोई मनुष्य बहुत सी विद्या पढ़ ले और कण्ठस्थ भी करले एवं अपने आपको बड़ा ज्ञानी कहलवाए, यदि स्वयं उस विद्या पर आचरण नहीं करता तो वह ज्ञानी नहीं है। जो जितना पढ़े उस पर आचरण करे।

ध्यानी वही है जो अपनी सुरति को हर समय सद्गुरु के ध्यान में लगाए रखे, अपनी सुरति को मोह-माया की कैद में न पड़ने दे। सुरति को आज़ाद रखने का प्रयत्न करे। यदि मनुष्य-जन्म को पाकर सुरति को मायावी पदार्थों के एकत्र करने में गँवा दिया, यदि काम-क्रोध-मोह-लोभ-अहंकार में सुरति उलझ गई तो जीवन का क्या बना? यह सुरति को खो देना है। जिसने अपनी सुरति की सँभाल की, वही ध्यानी है। सुरति यानि ध्यान की धारा को सद्गुरु के शब्द में लगाने वाला ही पक्का ध्यानी है। अतएव गुरुमुख ही पूर्ण ज्ञानवान् है और सार वस्तु को प्राप्त कर लेता है।

प्रवचन ११. प्रकृति का यह नियम है कि कोई न कोई ख़्वाहिश मनुष्य के मन में हर समय काम करती है और वह भीतर ही भीतर धीरे धीरे प्रबल होती रहती है। प्रत्यक्ष में चाहे ऐसा प्रतीत न हो, किन्तु जिस प्रकार की लगन या कामना जिसके अन्दर में डेरा डाले है, वह मनुष्य स्वयमेव धीरे धीरे उसी का रूप बनता जाएगा। यह मत समझो कि एक दिन की किसी ख़्वाहिश से या एक दिन के किसी मलिन, पापमय संस्कार के कारण जीव अपनी वर्त्तमान दुःखपूर्ण

अवस्था को प्राप्त हुआ है। चिरकाल से जो विभिन्न प्रकार के मलिन संस्कार धीरे धीरे जीव के अन्तर्मानस में एकत्र होते रहे हैं; वे ही प्रबलता को प्राप्त होकर आज जीव को व्यथित कर रहे हैं।

धन-पदार्थ प्राप्त करने की, सांसारिक सुखैश्वर्यों को पाने की, शरीर और इन्द्रियों के विषयों की अथवा इसी प्रकार की अन्य अनेकानेक कामनाएँ मनुष्य जन्म-जन्मान्तरों से अपने मन में एकत्रित करता आ रहा है जिनके परिणाम स्वरूप वह आज दुःखी और अशान्त है।

संसार काल और माया की रचना का खेल है। काल और माया जीव को चौरासी के चक्कर और अपनी अधीनता में रखते हैं। जीव जन्म-जन्मान्तरों तक इनके बन्धन में पड़ा रहा। लेकिन वास्तव में इस रचना से न जीव को छुटकारा मिलता है और न ही सुख शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। अतः जीव दुःख, अशान्ति और परेशानियों का शिकार बना रहता है। जीव को मनुष्य जन्म पाकर ऐसे कर्म करने चाहिएँ कि काल माया के चक्र व गुलामी से मुक्त होकर अपने घट में शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त कर सके। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि जो जीव के शत्रु हैं, बाहरी रूप से जीव के मित्र बने हुए हैं और आन्तरिक रूप से इसे लूटते जा रहे हैं। जीव को रूहानी खुशी और आत्मिक आनन्द से दूर करते रहते हैं। अपने अज्ञानवश ही जीव इनको मित्र मान बैठा है। सद्गुरु इस भ्रम व भूल को सत्य मार्ग दर्शा कर दूर करते हैं क्योंकि सद्गुरु ही जीव के सच्चे मित्र हैं। इसलिये जीव को भी सद्गुरु की आज्ञा व मौज में चलकर इन रूहानी शत्रुओं से बचने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए सद्गुरु की आज्ञानुसार भजनाभ्यास में सुरति को लगाकर अपने अन्दर भक्तिभाव के संस्कारों को एकत्र करना चाहिये।

प्रवचन १२. हर एक काम चाहे व्यवहारिक हो चाहे पारमार्थिक, उसके लिए इन तीन नियमों की ज़रूरत है:—शौक (व्यसन), परिश्रम और समय। यदि इनमें से एक की भी कमी हो तो मनुष्य सफल नहीं हो सकता। यदि कुछ समय

के लिए कुछ आशा हो भी जाए तो उसे पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती और न ही कोई अच्छा परिणाम निकलता है। जैसे एक विद्यार्थी स्कूल जाता है, वह पढ़ने तो रोज़ जाता है परन्तु उसके दिल में रुचि नहीं तो वह सफल नहीं हो सकता। सो रुचि का होना ज़रूरी है। शौक के साथ परिश्रम किया जाता है तो कुदरत की ओर से काम में सफलता प्राप्त होती है और समय दिये बिना तो कोई काम हो नहीं सकता। समय तो हर हालत में देना ही पड़ता है चाहे शौक हो या न हो। फिर मनुष्य क्यों न शौक और मेहनत के साथ समय देकर सफलता प्राप्त करे। लगन के साथ जब मेहनत से समय दिया जाएगा तो सफलता प्राप्त होगी। यह तो एक व्यवहार की बात है। इसी तरह परमार्थ रुहानियत-भक्ति के कामों में भी भजन अभ्यास तथा सेवा में आज्ञा-पालन करने में शौक-मेहनत और समय ख़र्च करने की आवश्यकता है।

प्रवचन १३. मृत्यु को दूसरे शब्दों में कहते हैं परिवर्तन। अर्थात् आत्मा का शरीर बदलने का नाम ही मृत्यु है। प्रश्न यह है कि मनुष्य को शरीर छोड़ने के बाद इसे कौन सा शरीर मिलेगा? इस का उत्तर मनुष्य के किये कर्मों पर निर्भर है। जैसे किसी मनुष्य ने कर्म किए होंगे वैसे उसे जन्म मिलेगा। अच्छे कर्म होंगे तो मनुष्य जन्म मिलेगा। अच्छे संस्कार होने से बचपन से ही सत्संग की ओर रुचि होगी। भक्ति के विचार होंगे तो मन भक्ति की ओर लगेगा। यदि पिछले जन्म में भी कोई कमी रह गई होगी तो वह उसे इसमें पूरा कर सकेगा। यदि बुरे कर्म किए होंगे या मानुष-जन्म में सत्संग, परमार्थ या कोई भी शुभ कर्म न किया होगा तो उनके अनुसार ही अन्यान्य योनियां मिलेंगी। अर्थात् चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा।

प्रकृति प्रत्येक मनुष्य के विचारों और कर्मों की क़दर करती है। जैसे जिसके ख़्याल होते हैं वैसे ही उसके शारीरिक कर्म होते हैं। जैसे कर्म होते हैं वैसे ही प्रारब्ध बनती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को ऊँचे व अच्छे विचार रखने चाहिएँ।

जब तक मनुष्य के पाँच तत्त्व अपने तत्त्वों में समा नहीं जाते तब तक

प्रारब्ध इसका पीछा नहीं छोड़ती और छाया की तरह इस शरीर के साथ जुड़ी रहती है। चाहे दिन हो या रात, देश हो या विदेश, सर्दी हो या गर्मी, तूफ़ान-अंधेरी कुछ भी हो, प्रारब्ध प्रत्येक जीव के साथ रहती है। अब प्रश्न यह है कि प्रारब्ध कैसे बनेगी ? यह सब मनुष्य के किए कर्मों पर निर्भर है। इसलिये मनुष्य को अच्छे तथा निष्काम कर्म करने का प्रयत्न करना चाहिए।

प्रवचन १४. प्रायः मनुष्य के मस्तिष्क (दिमाग़) में धन और माया के ही संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं। उस से यह ज़िन्दगी माया तथा धन रूप बन जाती है। इन्हीं ख़्यालों का इतना बड़ा ढेर उसके अन्दर जमा हो जाता है जिसके कारण जीव जन्म-जन्मान्तर तक उस से बच नहीं सकता।

यह ख़्याल जो मनुष्य जन्म में इसके अन्दर जमा हो जाते हैं मरने के बाद भी रूह पर उनका प्रभाव रहता है। यदि मनुष्य स्वयं को पूर्ण बुद्धिमान् समझे और कहे कि मैंने संसार में बहुत बुद्धिमत्ता के काम किए हैं, बड़े बड़े पद प्राप्त किए हैं, लेकिन सोचा जाए कि इन सांसारिक वस्तुओं का रूह के साथ क्या सम्बन्ध है ? जिसने अपनी बुद्धि को शारीरिक सुखों में लगा दिया तो उसने जन्म व्यर्थ गँवाने से बढ़कर कौन सा काम किया। अपने शरीर की रक्षा करना, शरीर का पालन करना तो पशु पक्षी भी जानते हैं।

॥ दोहा ॥

निद्रा भोजन भोग भय, पशु अरु पुरुष समान।
नर्न ज्ञान निज अधिकता, ज्ञान बिना पशु जान॥

अपने जीवन का प्रत्येक मनुष्य अनुमान लगा सकता है। यदि किसी ने शारीरिक निर्वाह और शारीरिक सुख ही मानुष जन्म का ध्येय समझ रखा है तो उसने मनुष्य जन्म के उद्देश्य को नहीं समझा। मानुष जन्म का ध्येय रूह को माया-मोह के बन्धनों से स्वतन्त्र कराने का होता है। मनुष्य जन्म का उद्देश्य यह होता है कि दिल को नफ़सानी ख़्यालों से ख़ाली करके सद्गुरु के प्रेम को दिल में

जगह दी जावे। जिस ने इस काम को कर लिया उस ने अपने मनुष्य-जन्म को सफल बना लिया।

प्रवचन १५. संसार में प्रत्येक मनुष्य समय व्यतीत कर रहा है। परन्तु यह विचार दुनिया में बहुत कम लोगों को है कि मेरा समय किस तरह गुज़र रहा है। मैं जो काम कर रहा हूँ इसका परिणाम क्या होगा? प्रत्येक मनुष्य को यह विचार होना चाहिए कि मेरे मन की इस समय क्या अवस्था है? विशेषकर जिज्ञासु को तो यह विचार होना बहुत ही आवश्यक है कि सन्त महापुरुषों ने जो उपदेश इस जीव के सम्बन्ध में किया है क्या मेरी ज़िन्दगी उस के अनुसार व्यतीत हो रही है? यदि मनुष्य को इस बात का विचार नहीं तो शेष योनियों और मनुष्य में क्या अन्तर हुआ? चाहे मनुष्य अपने मन में बहुत ही प्रसन्न हो कि मैंने मानुष जन्म धारण किया है। यदि वह मनुष्य जन्म पा कर भी रूह के सम्बन्ध में नहीं सोच सकता तो सन्त महापुरुष उसको दूसरे जीवों के समान दर्जा देते हैं।

॥ चौपाई ॥

भक्ति हीन विरंचि किन होई। सब जीवन सम प्रिय मम सोई ॥

श्री रामायण

यह रूह कई जन्मों से चौरासी लाख योनियों के बन्धन और कैद में पड़ी हुई है। क्या बन्धन और स्वतन्त्रता में कोई अन्तर नहीं? यह रूह माया के असत् पदार्थों में पराधीन हो चुकी है। परन्तु इस बन्धन से भाग्यशाली जीव जिनको शुभ कर्मों व संस्कारों के कारण सन्त महापुरुषों की संगति प्राप्त हो गई, उनको तो वास्तविकता की समझ आ जाती है। परन्तु जिस सुरति को सद्गुरु के शब्द की प्राप्ति नहीं हुई, प्रेम के रंग में रंगी नहीं गई वह किस तरह से काल-माया के बन्धन से मुक्त हो सकती है। वह सुरति काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि शत्रुओं से कैसे छुटकारा पा सकती है। कहावत है कि 'मालिक किसी को वैरियों के वश में न डाले।' शत्रुओं के वश में आया हुआ जीव कितना दुःखी होता है, इसको केवल सन्त सद्गुरु ही जानते हैं। सन्त सद्गुरु ही सच झूठ की परख करवाते हैं। इस

लिए जीव को भी सद्गुरु के वचनों पर विश्वास कर के अपनी विचारधारा को सद्गुरु की सेवा, भजनाभ्यास व रूह के हित में लगाना चाहिए।

प्रवचन १६. संसार में आम लोगों को यह पता ही नहीं कि मनुष्य संसार में किसलिए आया है? मनुष्य जन्म क्यों मिला है? संसार में आने का उद्देश्य क्या है? हमें क्या करना चाहिये था और क्या कर रहे हैं। इसे जीव स्वयं नहीं समझ सकता। मनुष्य का इतना ऊँचा दर्जा है और ऐसा अनमोल शरीर उसे मिला है किन्तु मनुष्य माया के धन्धों में लगकर अपनी वास्तविकता को भूल गया है। इस का सारा समय इच्छाओं व शारीरिक सुखों में व्यतीत हो रहा है। जीव को शारीरिक आराम, शारीरिक सुख व इज़्ज़त के सिवाय और कुछ भी याद नहीं। सारी भाग दौड़ व प्रयत्न यह मनुष्य शारीरिक सुखों, मान-बड़ाई व मोह-माया के लिए करता है। यदि सारा जीवन माया-मोह के धन्धों व शरीर के निमित्त हो गया तो मरते समय जब शरीर ही यहीं रह जाएगा फिर शरीर से सम्बन्धित वस्तुएँ किस काम आयेंगी? जीवन की सारी कार्यवाही मिट्टी में मिल गई। फिर इस मनुष्य जन्म की क्या विशेषता हुई? क्या मनुष्य-जन्म की क़द्र व कीमत यही थी? यह मनुष्य तो कुल मालिक का अंश है और इसी जन्म में ही शुभ कर्मों द्वारा मालिक का स्वरूप बन सकता है। परन्तु भूल से मनुष्य ने स्वयं को शरीर मान रखा है। सद्गुरु ही जीव को जगाते हैं कि तू स्वयं ही शक्तियों व सुख शान्ति का भण्डार है। तू मालिक का अंश है और तुझे मालिक से ही मिलना चाहिए। सुख का भण्डार होते हुए भी दुःख भोग रहा है। रूह मोह-माया में आसक्त हो कर कमज़ोर हो चुकी है। परन्तु रूह की तरफ़ मनुष्य का ध्यान ही नहीं है। अपनी रूह के सुधार के लिए जीव को समय के सन्त महापुरुषों की बहुत आवश्यकता है।

॥ दोहा ॥

अलख पुरुष की आरसी, सन्तन की ही देह।
लखा जो चाहे अलख को, इन ही में लखि लेह॥

भावार्थः—अलख पुरुष–जो लखा नहीं जाता अर्थात् जिस को समझने में बुद्धि का ज्ञान काम नहीं देता। अगम पुरुष जहाँ वाणी की गति नहीं है अर्थात् जिह्वा उसके वर्णन करने में असमर्थ है। "अकैह" पुरुष जो जिह्वा से कहा नहीं जाता अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियों और वाणी से परे जो कुल मालिक का स्वरूप है, यदि इसको देखने की इच्छा है तो उसको देखने का दर्पण सद्गुरु (सन्तन) की देह है। इस पवित्र दर्पण के अन्दर तू उस अलख पुरुष को ठीक प्रकार से देख सकेगा। ऐसा सन्त कहते हैं।

॥ शेयर ॥

गर बिजोई ज़ाते हक–रा सूरते मुरशद बबीं।
आशके शौ ज़ाते मुरशिद, अन्दरूँ रोशन बबीं॥

अर्थात् यदि तुझे मालिक के पवित्र स्वरूप के दर्शन की इच्छा है तो गुरु के रूप का ध्यान कर। जब तू गुरु के रूप में लीन हो जाएगा तो फिर अन्दर से तुझको मालिक के स्वरूप का साक्षात्कार स्वयं होगा। इस प्रकार से मनुष्य को समय के सन्त-सद्गुरु की चरण-शरण में जाने तथा उनके उपदेश पर आचरण करने से ही आत्मिक आनन्द, आन्तरिक सुख व सच्ची शान्ति तथा मानुष जन्म के लाभ की प्राप्ति हो सकती है।

प्रवचन १७. सज्जन पुरुष बुराई से सदा अपने आपको बचाते हैं क्योंकि वे कुसंगति के प्रभाव को जानते हैं कि कुसंगति का क्या परिणाम है? कुसंगति का विष खानेवाले विष से अधिक विषैला होता है। खाने वाले विष को तो पान करने से दुःख क्लेशादि का प्राणों के अन्त के साथ ही अन्त हो जाता है परन्तु कुसंगति का विष तो इतना भयंकर है जो जीवन भर के लिए दुःख क्लेशादि में डालकर जीवन को नष्ट नहीं कर देता अपितु जीवन में तथा जीवन के बाद भी घोर नरकों में डाल देता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या परमात्मा ने ही ऐसे जीव बनाये हैं; जिनकी संगति से बुद्धि मलिन हो जाती है अथवा सज्जन पुरुष की बुद्धि में स्वयं ही विवेक होता

है ? इसका उत्तर यही है कि परमात्मा ने तो कर्मानुसार सृष्टि में जीव उत्पन्न किये—जिनको सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो गई उन्हें विवेक मिल गया और वे सज्जन बन गये तथा जो माया की लपेट में आ गये, ईर्ष्या द्वेष के अन्धकार में, इन्द्रिय रस-भोगों में जीवन व्यतीत करने लगे उनका स्वभाव भी उसी अनुसार बन गया और वे दुर्जन की कोटि में गिने जाते हैं। श्री रामायण में भी लिखा है कि:—

॥ चौपाई ॥

उपजहिं एक संग जल माहीं। जलज जोंक जिमि गुण बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

अर्थः—जैसे जोंक और कमल का फूल एक ही जल में पैदा होते हैं परन्तु गुण दोनों में अलग अलग होते हैं। अमृत के समान साधु और मदिरा के समान असाधु हैं—इन दोनों का पिता संसार, अमृत और मदिरा का उद्भव स्थान जल है।

अब विचार किया जाये कि इन दोनों के गुणों में कितना अन्तर है—आकाश पाताल से भी अधिक। इसी प्रकार सुसंगति और कुसंगति का अन्तर है।

अतएव सज्जन पुरुष प्रथम तो कुसंगति से बचने का हर समय उपाय करते हैं। यदि कभी दैववश उन्हें कुसंगति मिल भी जाय तो वे इस प्रकार रहते हैं जैसे श्री रामायण में भी लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

विधिवश सुजन कुसंगति परहिं। फणि मणि सम निज गुण अनुसरहिं॥

सांप में सदा विष परिव्याप्त है परन्तु मणि उस सांप में रहती हुई भी विष को ग्रहण नहीं करती अपितु सर्प को प्रकाश देती है। इसी प्रकार सज्जन अपने आप को कुसंगति के प्रभाव से बचाते हैं और दूसरों को भी सुमार्ग पर लगाते हैं।

अतएव सत्पुरुषों की संगति प्राप्त कर सद्मार्ग ग्रहण करना है। कुसंगति से

दूर रहकर अपने जन्म के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

प्रवचन १८. मनुष्य के दिल का सम्बन्ध सद्‌गुरु के साथ होना चाहिये। यदि मनुष्य ने अपने दिल को किसी दूसरी तरफ़ लगा रखा है तो सन्त महापुरुषों की दृष्टि में यह बड़ी भारी भूल है। ग्रन्थों में दिल को सद्‌गुरु का निवास स्थान माना गया है। जो मनुष्य अपने दिल में विषय वासनाओं व अन्य ख़्यालों को जगह देता है वह ग़लत काम कर रहा है। अन्य विचारों को दिल में स्थान देना अपने साथ शत्रुता करना है।

॥ शेयर ॥

यह दिल मसकिन गुरु का है, गुरु ही इसका मालिक है।
ख़्याल–ए ग़ैर हुआ दाख़िल, तो दर्शन हो नहीं सकता ॥

यदि मनुष्य ने अपने दिल को मोह ममता तथा धन के लोभ में या मान बड़ाई की तरफ़ लगा दिया है और इन्हीं के ख़्याल दिल में भर लिए हैं तो मनुष्य अन्तर्हृदय में मालिक के दर्शन नहीं कर सकता। इसलिये यदि मालिक के दर्शन की इच्छा है तो अपने दिल से संसार की वासनाओं को निकाल दे और दिल के सिंहासन पर मालिक के लिए आसन बना ले। दिल के सिंहासन पर इष्टदेव ही शोभा देते हैं।

यदि कोई मनुष्य विषय-विकारों में उलझकर अपने दिल में सांसारिक इच्छाओं को जगह देता है तो सन्त महापुरुष इसे अच्छा नहीं समझते। इसलिए अपने दिल को द्वैतभाव तथा अहंता की मलिनता से साफ़ करके अपने हृदय के सिंहासन पर परम इष्टदेव को विराजमान करना चाहिए।

प्रवचन १९. जहाँ कहीं पर चोर, डाकू अधिक होते हैं वहाँ लोग अपने आप को बचाने के लिये किसी ऊँची मीनार पर बन्दूक लेकर चढ़ जाते हैं। वह जगह इतनी सुरक्षित होती है कि वहाँ पर चोर डाकू नहीं चढ़ सकते। यदि डाकू लोग ऊपर चढ़ने का प्रयत्न करें तो उन्हें अपनी ज़िन्दगी का भय होता है। इसी तरह

से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार व मन भी इस जीव की सुरति को पकड़ना चाहते हैं। इसलिये जीव को अपनी सुरति को ब्रह्मांड देश(आँखों के ऊपर) में ले जाना चाहिए। काम, क्रोध, मोह, लोभ अहंकार, मन व माया का निवास पिण्ड देश में है जो आँखों से नीचे है। जिस जीव की सुरति पिण्ड देश में है अर्थात् इन्द्रियों के विलास में फँसी हुई है, यह मानसिक डाकू उसी पर अपना अधिकार जमाते हैं। जिस जीव ने मालिक के बताये हुए भजनाभ्यास की कमाई से अपनी सुरति को ब्रह्मांड देश में पहुंचा दिया वहां ये मानसिक चोर डाकू नहीं पहुँच सकते। जिस तरह ऊँचे स्थान पर चढ़ने के लिए सीढ़ी से चढ़ा जा सकता है उसी तरह भजनाभ्यास की सीढ़ी से सुरति को ब्रह्मांड देश में पहुँचाया जा सकता है। सद्गुरु का शब्द ही ऐसा शस्त्र है जिस से काम-क्रोध आदि सब डरते हैं। जिस जीव के पास सद्गुरु का शब्द है, जो उनके बताए हुए नाम-उपदेश का अभ्यास करता है, जिसने अपनी सुरति को इन्द्रियों के सुखों से अलग करके ब्रह्मांड देश में पहुँचा दिया है उस जीव को काम, क्रोध, मोह, लोभ, मन, माया व काल से कोई भय नहीं।

ब्रह्मांड देश में उस जीव की सुरति पहुँच सकती है जिसने सद्गुरु की सेवा व सत्संग, वैराग्य तथा प्रेम के साधनों से अपनी सुरति को निर्मल व उज्ज्वल कर लिया है। मैली तथा विषयासक्त सुरति ब्रह्मांड देश में नहीं जा सकती। इसलिए अपनी सुरति को सत्संग व वैराग्य के साधनों से पवित्र करके भजनाभ्यास के द्वारा सत् लोक (जो ब्रह्मांड देश के ऊपर है) में पहुँचाना चाहिए। इसलिए यह बात ध्यान देने योग्य है कि बिना सद्गुरु की कृपा के जीव की सुरति ब्रह्मांड देश में नहीं पहुँच सकती। उन्हीं के बताए नाम-उपदेश की कमाई करके और आपाभाव भी अर्पण करके अपनी सुरति को इन मानसिक शत्रुओं से बचाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए।

प्रवचन २०. सर्वसाधारण लोग संसार में दीपावली के दिन माया की पूजा करते हैं, वास्तव में करनी चाहिए थी भगवान् की पूजा। भगवान् सत्-स्वरूप हैं, माया तो उनकी छाया है। ईश्वर की पूजा करने से माया तो बिना बुलाए स्वयं

चली आती है। जिसको ईश्वर की प्राप्ति हो गई, सांसारिक सुख बिना प्रयत्न किए ही उस मनुष्य को मिल जाते हैं। परन्तु लोगों ने ग़लत मार्ग अपना लिया है। वास्तव में दीपावली के दिन भगवान् राम अयोध्या में आए थे, उनके आगमन की खुशी में अयोध्यावासियों ने दीपक जलाये थे व खुशियाँ मनाई थीं। अब उसी दीपावली के पर्व को (लक्ष्मी-पूजा) का दिन माना जाता है। भगवान् की अपेक्षा लक्ष्मी की पूजा होने लगी। कितना उल्टा काम है कि सुखों के भण्डार ईश्वर को भूलकर जड़ वस्तु माया की उपासना यह जीव करने लगा है। आम लोगों की इस भूल को सन्त महापुरुष दूर करते हैं कि ऐ जीव! मालिक जो सत्-चित्-आनन्द है इस की पूजा करो। जिस प्रकार भगवान् राम के अयोध्या में पधारने पर दीपक जलाये गए थे उसी तरह से अपने दिल में प्रेम के दीपक जला कर ईश्वर को विराजमान करो। योग की अग्नि से प्रेम का दीपक जलाना सीखो। जब मायापति का तुम्हारे दिल में निवास हो जाएगा तो तुम्हें माया की इच्छा ही न रहेगी। श्री रामायण में भी लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

जिमि सरिता सागर पहि जाहीं। जद्यपि ताहि कछु इच्छा नाहीं॥
तिमि सुख सम्पति बिना बुलाए। धरमसील पहिं जाहिं सुभाए॥

अर्थः—जिस प्रकार सागर को कोई इच्छा न होते हुए भी सब नदियां स्वयं ही उस ओर आकर्षित होती हैं इसी प्रकार सब संसार की सुख सम्पत्ति, ऐश्वर्य भोग के सामान प्रभु-भक्त के पीछे स्वयं ही भागते फिरते हैं, यद्यपि वह कभी उनकी इच्छा नहीं करता। जब दिल में इष्टदेव का निवास हो जायेगा तो फिर सामानों की इच्छा नहीं रहती बल्कि वे तो उसके चरणों में आने को उत्सुक रहते हैं। जीव सद्गुरु द्वारा बताये हुये भजनाभ्यास की कमाई से योगाग्नि से दीपक जला सकता है। दिल में प्रेम का प्रकाश होने से ही सुरति जो माया व अज्ञान के अन्धेरे में भटक रही है, मालिक की ओर लगेगी।

प्रवचन २१. मनुष्य एक सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। जितने भी चराचर जीव हैं,

जितनी भी मालिक की सृष्टि की रचना है उन सब में से मनुष्य को उत्तम व श्रेष्ठ माना गया है। मनुष्य के अन्दर मालिक ने एक ऐसी शक्ति भर रखी है, इतना आनन्द व सुख इसके अन्दर है जिसकी कोई सीमा नहीं। स्वयं ईश्वर ने मनुष्य को अपना रूप बनाया है परन्तु अज्ञानता के कारण यह मनुष्य इस भेद को नहीं समझ सकता। कारण यह है कि माया व काल का चक्र जो निरन्तर चल रहा है यह जीव उसमें उलझ गया है। अब मनुष्य श्रेष्ठ व उत्तम तभी बन सकता है जब उस आनन्द रूपी शक्ति को प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा हुआ हो।

माया व काल के चक्र में पड़कर यह जीव बहुत नुकसान कर बैठा है। इसके मस्तिष्क में हर समय माया के ख़्याल चक्कर लगाते रहते हैं। यह कितने दुःख की बात है कि यह जीव इतने अनुपम सुख, शान्ति व शक्ति का मालिक होते हुए भी दुःखी रह कर जीवन व्यतीत कर रहा है। मनुष्य अपनी शक्ति को भूल कर ग़लत मार्ग पर चल पड़ा है और यही इसके दुःख का कारण है। माया के प्रभाव से अज्ञानता में उलझकर यह जीव अपनी ज़िन्दगी को व्यर्थ गँवा रहा है और इस जीव में इतनी निर्बलता आ गई है कि वह अपने आपको माया के बन्धनों से विमुक्त नहीं कर सकता। माया में उलझकर अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है। इस माया में उलझी हुई रूहों को छुड़वाने के लिए ही सन्त महापुरुषों का विश्व में अवतरण होता है। समय के सन्त सद्गुरु ही इस जीव को चिताते व जगाते हैं। जीव स्वयं इस हानि को नहीं समझ सकता। माया की लपेट में आकर इसने माया के पदार्थों, धन-कुटुम्ब आदि को अपना समझ लिया है और इसके मन में यह विचार दृढ़ हो गया है कि मुझे इनसे शान्ति मिलेगी परन्तु यह जीव की भूल है। माया न किसी की बनी है और न बनेगी। सन्त सत्पुरुष ही जीव को इस अज्ञान के अन्धेरे से दूर करते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि जीव के अन्दर प्रकाश ही प्रकाश है लेकिन अज्ञानता का पर्दा आ जाने से रोशनी उसके अन्दर छुप सी गई है जिससे यह जीव उस प्रकाश से लाभ नहीं उठा सकता। जिस समय तक मोह-ममता के पर्दे दूर न किए

जावेंगे, अन्दर का प्रकाश ढका रहेगा। जब साधनों द्वारा माया की मलिनता जिस ने प्रकाश को ढांप दिया है, दूर हो जाएगी तो यह जीव अपने घट में प्रकाश देख सकेगा। सन्त सद्गुरु ही जीव की ऐसी दयनीय दशा में रक्षा करते हैं। इसलिए शास्त्रों में जीव का सच्चा हितैषी सन्त सत्पुरुषों को ही कहा गया है। जिन संस्कारी रूहों ने सद्गुरु के उपदेश पर आचरण कर लिया उन्होंने ही अपने भीतर उस जगमग करने वाले प्रकाश को देख लिया। दिल में जो मोह-माया व अज्ञानता के पर्दे पड़े हैं उनको मालिक की कृपा व सेवा से ही दूर किया जा सकता है। जैसे एक बुझा हुआ दीपक जलते हुए दीपक के साथ लगने से जगमगा उठता है इसी तरह से समय के सन्त सद्गुरु ही संसार में उज्ज्वल ज्योति होते हैं। उनकी चरण-शरण व संगति में जो जीव आते हैं वे भी उस ज्योति का स्पर्श करके प्रकाशमान हो जाते हैं।

प्रवचन २२. परमार्थ पथ पर चलनेवाले जिज्ञासु को इन सात बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये क्योंकि जब जिज्ञासु के सामने कोई विशेष लक्ष्य न हो तो कई बार वह रास्ते में भटक जाता है। इसलिये सन्त महापुरुष एक सीमा बना देते हैं जिसके अन्दर रहने से गुरुमुख पुरुष सुरक्षित रह सकते हैं। वे सात बातें इस प्रकार हैं:—

१. समय पानी के बहाव की तरह गुज़र रहा है। इस से लाभ उठाया जाये। समय को व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। अपने समय को अपनी रूह के निमित्त कार्यों में ख़र्च करना चाहिये। इसे भजनाभ्यास में, सद्गुरु की सेवा में और सत्संग की तरफ़ लगाना चाहिए।

२. अपने विचारों में हर समय सत्-असत् की परख करनी चाहिए। कौन सी वस्तु सत् है? मृत्यु के पश्चात् कौन सी वस्तु साथ जावेगी? रूह के काम आने वाली कौन सी वस्तु है और उसी वस्तु को ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए तथा जो वस्तु आत्मा के लिये दुःखदायी है उससे दूर रहने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

३. संसार में माया व माया के पदार्थों के साथ शरीर का निर्वाह करते हुये अपने मन को व अपनी चित्तवृत्तियों को कमल के फूल की न्याईं उनसे अलग रखने की कोशिश करनी चाहिए।

४. शरीर से एक नौकर की भाँति काम लेना है। निर्वाह के लिये उसे रोटी कपड़ा देना है और इससे अपना परमार्थ का काम लेना है क्योंकि इसने एक दिन यहीं रह जाना है।

५. सद्गुरु ही जीव के मित्र हैं। जितनी अधिक सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में प्रेम व श्रद्धा होगी उतना ही जीव भजनाभ्यास में अधिक उन्नति कर सकेगा।

६. अपने आत्मिक धन को सदा काम, क्रोध, मोह, लोभ, अंहकार आदि मानसिक चोरों से बचाना है ताकि वे किसी भी समय धोखा न दे सकें।

७. संसार के विषय भोगों को विष के समान समझना चाहिए। माया की झिलमिल की तरफ़ मन को कभी नहीं जाने देना चाहिए। ये विषय-वासनाएँ ऊपर से मीठी लगती हैं मगर इनके अन्दर विष भरा हुआ है इसलिए इनकी ऊपर की मिठास पर नहीं भूलना चाहिए क्योंकि परिणाम इनका दुःखदायी है।

अतः जीव को पूर्ण रूप से इन नियमों का ध्यान रखना चाहिए। जो जिज्ञासु इन पर चलते हैं वे अपने मनुष्य जन्म का पूरा पूरा लाभ उठाते हैं।

प्रवचन २३. प्रत्येक मनुष्य मीठा बोलना पसन्द करता है। मधुर वाणी से दूसरे पर विजय पाई जा सकती है। कोई भी मनुष्य दूसरे के हृदय को तब अपने वश में कर सकता है जब उसकी अपनी बोलचाल मीठी हो। प्रेमभाव से दूसरों के साथ व्यवहार करने से द्रव्य ख़र्च नहीं होता केवल अपने स्वभाव को ही ठीक करने की कोशिश होनी चाहिये। मीठा बोलने को सन्त महापुरुषों ने 'मोहिनी मन्त्र' कहा है। जैसे किसी मन्त्र (जादू) से दूसरे को वश में कर लिया जाता है, ऐसे ही रस भरी वाणी भी एक तरह का जादू है लेकिन वाणी से तभी मीठा बोला जाएगा जब दिल में प्रत्येक के लिये हमदर्दी तथा भलाई की भावना होगी। यदि दिल में क्रोध व ईर्ष्या भरी होगी तो ज़रूरी है कि वाणी से भी कड़वे वचन ही निकलेंगे।

इसीलिए पहले दिल से द्वेषभाव को दूर करके उसे पवित्र व निर्मल बनाना चाहिए। मन में कभी कठोरता न हो। मन में निर्मलता आ जाने पर ही वाणी से मधुर वचन बोले जा सकते हैं। जैसे कहा है किः—

॥ दोहा ॥

कागा का कछु लेत है, कोयल का कछु देत।
मीठे वचन सुनाय कर, मन सब का हर लेत॥

अर्थात् कोयल और कव्वा रंग रूप में एक जैसे ही प्रतीत होते हैं मगर अपने गुण दोष के कारण एक तो लोगों को प्रिय है मगर दूसरे से लोग घृणा करते हैं। कव्वा तो निन्दनीय शब्द (कांय कांय) करने पर धिक्कारा जाता है, कोई उसे पास भी नहीं फटकने देता। इसके विपरीत कोयल की मीठी वाणी सब के मन को आकर्षित करती है। इसी प्रकार मनुष्य भी रंग रूप से नहीं बल्कि गुण से पूजा जाता है। स्वभाव ही जीव को पूजनीय बनाता है और स्वभाव ही घृणास्पद बनाता है। अतः मनुष्य को वाणी (स्वभाव) पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

जिसके मन में क्रोधाग्नि प्रचण्ड हो, इससे एक तो क्रोध करने वाले मनुष्य का अपना दिल ही आग के बिना जलता है दूसरा जिसपर क्रोध किया जाए, उसके दिल को दुःख देना कितना भारी पाप है। शास्त्रों ने क्रोध को चाण्डाल कहा है। इसलिये परमार्थ पथ पर चलने वाले प्रत्येक सेवक का कर्त्तव्य है कि सब के प्रति अपने दिल में क्षमा-प्रेम की भावना रखे। सब के साथ नम्रता का व्यवहार करे। दीनता और दया को सत्पुरुषों ने एक अमूल्य रत्न कहा है। श्री तुलसी दास जी लिखते हैं:—

॥ दोहा ॥

तुलसी इस संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साध संग सतगुरु शरण, दया दीन उपकार॥

दया और दीनता के अनमोल रत्न जिस सेवक ने प्राप्त कर लिये वह धनवान्

है । इसलिए मन में शीतलता व वाणी में मधुरता होनी चाहिये । सब के प्रति शुद्ध भावना हो ताकि मनुष्य स्वयं भी शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके और दूसरों को भी शान्ति प्रदान कर सकता है ।

प्रवचन २४. आहार व्यवहार और विचार इनका आपस में चोली दामन का सम्बन्ध है । विचारों का आहार तथा व्यवहार के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

१. सबसे पहले जिज्ञासु को अपने आहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए । सात्त्विक भोजन से स्वास्थ्य बनता है और बुद्धि भी सात्त्विक बनती है । सात्त्विक बुद्धि से ही शुद्ध व्यवहार किया जा सकता है । तामसी व राजसी भोजन का सम्बन्ध केवल जिह्वा के साथ है । खट्टे, मीठे, चरपरे व स्वादिष्ठ भोजन के सेवन करने से तमोगुणी व रजोगुणी प्रकृति बनती है । तमोगुणी भोजन से मन में विकारों की अधिकता होती है, भूख से अधिक खाने पर स्वास्थ्य बिगड़ जाता है । जिह्वा रस में लीन रहने वाले मनुष्य की वृत्ति भजनाभ्यास में नहीं लगती । इसलिए सात्त्विक भोजन करना ही उचित है । हल्का और ताज़ा भोजन सेवन करना चाहिए जो स्वास्थ्यप्रद हो और चटपटा न हो । सात्त्विक भोजन करना ही उचित है । सात्त्विक भोजन का सेवन करना जिज्ञासु के लिए अत्यावश्यक है ।

२. व्यवहार कहते हैं शारीरिक तौर से बोलने, उठने-बैठने, लेन-देन आदि के व्यापारों को । व्यावहार के शुद्ध होने पर विचार भी शुद्ध होते हैं । जिसका व्यवहार ग़लत है उसके विचार भी मलिन होंगे । सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि जिसका व्यवहार ग़लत है उसका परमार्थ भी ठीक नहीं हो सकता । परमार्थ पर ठीक तरह से चलने के लिए ज़रूरी है कि अपने व्यवहार को ठीक किया जाए । सत्य बोलना, सभ्यता से बोलना, स्वार्थ रहित काम करना, चोरी व झूठ से बचना, किसी की निन्दा न करना, ये सदाचरण के चिन्ह हैं । जब व्यवहार ठीक होगा तो कुदरती तौर पर विचार भी शुद्ध और पवित्र होंगे । इसलिए अपने व्यवहार को सदा ठीक रखने की कोशिश होनी चाहिए ।

३. विचारों का उत्तम होना मनुष्य के लिए बहुत ज़रूरी है । मनुष्य की

कीमत विचारों से ही होती है। अच्छे व उत्तम विचार सब पसन्द करते हैं लेकिन विचार उत्तम तब होंगे जब आहार और व्यवहार संयमपूर्वक हो। जिसका आहार व्यवहार ठीक है उसके विचार भी श्रेष्ठ होंगे। शुभ व शुद्ध विचारों से ही तृष्णा व मन के विकारों को परास्त किया जा सकता है। शुभ विचारों से ही अच्छे कर्म करने की भावना दिल में पैदा होती है और इन निष्काम कर्मों से ही भजनाभ्यास और परमार्थ के पथ पर सफलता प्राप्त की जा सकती है। इन शुभ कर्मों से ही संस्कार बनते हैं और शुभ कर्मों से ही मन की हालत बदलती है। संचित कर्म व प्रारब्ध का भी वर्तमान कर्मों से सम्बन्ध है। मरने के बाद भी निष्काम कर्मों के अनुसार ही जीव को मालिक के चरणों में निवास मिल सकता है। इसलिए ज़रूरी है कि श्रेष्ठ कर्म करने के लिए अपने आहार व्यवहार और विचारों को शुद्ध रखना चाहिए।

प्रवचन २५. सद्गुरु की सेवा तीन प्रकार की कही गई है—तन, मन और धन। इतिहास में ऐसे कई प्रमाण मिलते हैं कि सेवकों ने समय समय पर इष्टदेव की सेवा हर प्रकार से की। सेवा से ही अपने मनुष्य-जन्म के लक्ष्य को प्राप्त किया।

१. तन की सेवा—शारीरिक सेवा करने से सेवक के दिल में सद्गुरु के प्रति श्रद्धा बढ़ती है। शास्त्रों ने सद्गुरु की सेवा को बहुत ही महत्त्व दिया है।

॥ दोहा ॥

तन पवित्र गुरु सेवा कर, धन पवित्र कर दान।
मन पवित्र हरि भजन कर, इस विधि होत कल्यान॥

मनुष्य संसार में कितनी भी उच्च पदवी क्यों न रखता हो परन्तु गुरु दरबार में मान रहित होकर सेवा करे और सेवा करते हुए अपने को धन्य समझे कि मेरे कितने अच्छे भाग्य हैं कि मुझे सद्गुरु के दरबार की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

२. धन की सेवा—वे मनुष्य जो अपनी विवशता के कारण स्वयं गुरु दरबार

में पहुँचकर अपने शरीर द्वारा सेवा नहीं कर सकते उनका कर्त्तव्य होता है कि वे अपने धन को गुरु दरबार के लंगर में लगावें ताकि गुरु दरबार के साथ मन लगा रहे।

३. मन की सेवा—सद्गुरु संसार में प्रकट होकर सेवकों के लिये सेवा के भंडार खोलते हैं जिससे सेवक तन व धन से सेवा करते हैं। उनका वास्तविक उद्देश्य न तो किसी के तन से होता है और न धन से। उनका प्रयोजन जीव के मन से होता है। सद्गुरु सेवक के तन व धन को सेवा में लगाते हैं क्योंकि मन का सम्बन्ध तन व धन से होता है। जिधर तन व धन जाता है ज़रूरी है कि मन भी उधर जावेगा और ज़रूरत भी मन को सुधारने की है। भजनाभ्यास, सत्संग, सेवा, दर्शन, आरति-पूजा आदि सब साधन मन को सुधारने के लिए ही बनाए गए हैं जिससे मन को प्रत्येक उपाय से संसार की विषय-वासनाओं से हटा कर ईश्वर प्राप्ति के मार्ग पर लगाया जाए। सर्वसाधारण मनुष्य कठिन तपस्या नहीं कर सकते इसलिये वे मनुष्य सद्गुरु की सेवा के मार्ग पर चलकर अपना कल्याण कर सकते हैं।

प्रवचन २६. सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं कि माया कई रूपों में अपना जाल फैलाती है। तू सद्गुरु की कृपा से अपने को माया से बचा। वे फ़रमाते हैं कि:—

भाग रे भाग फ़कीर के बालके, कनक कामिनी बाघ लागा।
मार तोहि लेहिंगे पड़ा चिल्लाएगा, बड़ा बेवकूफ़ जो नाहिं भागा॥
स्त्रिंगी ऋषि हूँ से तो मारि लिए, बचे न कोऊ जो लाख त्यागा।
दास पलटू कहै बचेगा सोई जो, बैठि सतसंग दिन रात जागा॥

अर्थः—ऐ साधक! तू मायावी झिलमिल से अपने मन को दूर रख। क्योंकि कनक (सोना) और कामिनी (स्त्री) ये दोनों भयानक हिंसक बाघ हैं जो तुझे अपने दाव में फंसाने के लिए तत्पर रहते हैं। यदि इन्होंने दाव लगा लिया तो यह

बुरी तरह से घायल कर देंगे अर्थात् माया के चक्र में फंसा देंगे फिर चिल्लाता रहेगा तो तेरी कोई भी पुकार न सुनेगा। यदि इससे पीछा न छुड़ाया तो यह तेरी अज्ञानता का चिन्ह है। क्योंकि इससे तो श्रृंगी ऋषी आदि जैसे बड़े बड़े ऋषि मुनि भी नहीं बच सके। उन्होंने मनमति अनुसार अनेकों साधन बचने के लिए किए किन्तु बच नहीं सके। पलटूदास जी कहते हैं कि इससे वही बच सकता है जो दिन रात सत्पुरुषों की संगति में निमग्न रहता है अर्थात् सद्गुरु के आदेशानुसार अपना जीवन व्यतीत करता है।

यह संसार एक प्रबल माया का भंवर है जिसमें दिन रात जीव ग़ोते खाते हुए इसी में ही लीन हो जाते हैं, उन्हें कोई तट दिखाई नहीं देता। महापुरुष इस भंवर से बचाने के लिये केवट बन कर आते हैं तथा इस माया की भंवर से बचाते हैं। वही जीव भाग्यशाली होते हैं जो उनका आश्रय ग्रहणकर इस भंवर से बाहर निकल आते हैं। अतएव जिन्होंने सत्पुरुषों की संगति में आचरणमय जीवन बनाया है वही अथाह भवसिंधु से पार हो सकते हैं। यही सत्पुरुषों और सद्ग्रन्थों की वाणियां पुकार पुकार कर कह रही हैं।

प्रवचन २७. जब साधक का भजनाभ्यास की ओर मन अधिक प्रवृत्त होता है तो यह तीन शत्रु मार्ग से इसे भटकाने के लिए तत्पर रहते हैं। यह तीन शत्रु हैं— आलस्य, निद्रा और प्रमाद। आलस्य कहते हैं सुस्ती और ग़फ़लत को। जो साधक भजनभ्यास में नाग़ा करता है वह अपनी मंज़िल के रास्ते में रोड़ा अटकाता है। मन अगर चंचल है तो कुछ परवाह नहीं किन्तु भजनाभ्यास करने में आलस्य कभी नहीं करना चाहिये। निद्रा भी अभ्यास में रुकावट डालती है। प्रमाद कहते हैं बेपरवाही को। इन सब दुर्गुणों से साधक को परहेज़ रखकर मंज़िल की ओर बढ़ते जाना चाहिए।

जब साधक की चित्तवृत्तियां भजनाभ्यास में एकाग्र हो जाती हैं तो उसमें सिद्धियां (ताकतें) आ जाती हैं। अच्छा तो यह है कि इन ताकतों का उसे पता ही न चलने पाए। यदि उसे कुछ सिद्धि शक्ति का अनुभव होने भी लगे तो अहंकार करने से परहेज़ रखे तथा नम्रता व ग़रीबी से काम ले, नहीं तो शीघ्र ही गिरावट की

ओर जाएगा; फिर उसे संभलना कठिन हो जाएगा। सिद्धि शक्ति आने पर दूसरों से अपनी प्रशंसा करवाना प्रिय लगता है। दिखावा करना भी स्वाभाविक हो जाता है। यह ग़लती और धोखा है। परमार्थ के मार्ग में यह भी सबसे बड़ा अवगुण है। जहां तक सम्भव हो इससे बचना चाहिये। किसी ने सत्य ही कहा है:—

॥ शेयर ॥

फ़ना बग़ैर बक़ा का पता नहीं मिलता।
ख़ुदी मिटाओ न जब तक ख़ुदा नहीं मिलता॥

यही अहंकार भक्ति मार्ग में साधक के लिए सबसे भयंकर बाधक है। यही पतन का कारण है। अहंकार को सत्पुरुषों ने भयंकर अजगर का रूप कहा है जिसके मुंह में जाने पर बचना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो जाता है। इस अहंकार रूपी अजगर ने कितने तपीश्वरों तथा योगियों के तप अथवा योग में ऐसी फुफकार मारी कि उनके किए गए अनेकों वर्षों के जप, तप, ध्यान, संयमादि की सब कमाई को क्षण भर में बिल्कुल नष्ट कर दिया। कितने ही शारीरिक कष्ट सहे, उपवास किए, नग्न रहकर, शीत-गर्मी और वर्षा ऋतुओं को सम समझकर गुज़ारा परन्तु अहंकार के एक थपेड़े ने मुंह के बल नीचे गिरा दिया। यह कितना धोखा हुआ।

अतएव साधक, जिसे साधना से लक्ष्य की प्राप्ति करनी है उसे गुरुभक्ति मग को अपनाकर सद्गुरु के वचन अनुसार नित्यप्रति अपने मन पर ध्यान रखना चाहिए तथा अहंकार का हनन करके भजनाभ्यास में निरत रहना चाहिए। तभी इस भक्ति और परमार्थ के मार्ग में सफलता प्राप्त हो सकती है।

प्रवचन २८. जैसी करनी, वैसी भरनी। जैसा ज्ञान, वैसा ध्यान। जैसा ख़्याल, वैसा हाल। जो बोवोगे सो काटोगे। कीकर बो कर उस पर आम कदापि नहीं पाया जा सकता। जो बीज बोया जाता है, वह अवश्य फल लाता है, चाहे वह अति साधारण और तुच्छ ही क्यों न हो क्योंकि उसमें फल देने की क्षमता गुप्त

रूप से विद्यमान है। बिना बीज बोए कोई भी फल प्राप्त नहीं किया जा सकता। न ही ऐसा कभी होना भी सम्भव है कि बीज बो दिया जावे और फल प्रकट न हो।

किसान रूपी मानव जिस प्रकार के कर्मों की खेती जीवन रूपी भूमि में बोएगा उस अनुरूप ही अन्यान्य योनियों रूपी फल की प्राप्ति होगी। अतएव इस जन्म में शुभ कर्मों की कमाई करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है। यही साथ जाने वाली पूंजी है जिसे संचित करना है।

प्रवचन २६. महापुरुष सन्त सद्‌गुरुदेव यह कदापि नहीं चाहते कि जीव माया का दास बना रहे। अतएव वे उसे इस ग़ुलामी से छुड़ाना और स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं। अज्ञानवश जीव ऐसा ही समझता है कि माया के पदार्थों को पाकर मैं उनका मालिक बन गया हूँ। मगर यही उसकी ग़लतफ़हमी है। सन्तों का कहना है कि वास्तव में यह जीव तो उन मायावी पदार्थों का ग़ुलाम हो रहा है और उनके अधीन है फिर भी अपने को उनका स्वामी समझ रहा है, इससे बढ़ कर धोखा और भ्रम क्या होगा।

जब कोई व्यक्ति शत्रु के फन्दे में पड़ जाए तो क्या शत्रु अपने कब्ज़े में आये हुए शिकार को सुखी रहने देगा? हरगिज़ नहीं। यह स्वयं विचार कर लो कि जीव की दशा कुछ ऐसी है कि इसे ग़ुलामी, दुःख और बन्धन से छुटकारा पाने का तो कभी ख़्याल ही पैदा नहीं होता फिर छूटेगा भी कैसे? इसके अन्दर तो माया की ग़ुलामी का जुआ अपने कन्धों पर दृढ़तापूर्वक जमाये रखने की ख़्वाहिश काम कर रही है। यदि जीव काल और माया की ग़ुलामी से आज़ाद होने का अभिलाषी हो; तो उसे सन्त सद्‌गुरु की अधीनता, दासता और सेवा के मार्ग पर चलना तथा उन्हीं नियमों को अपनाने की आवश्यकता है। अपने बल व भरोसे पर तो जीव काल और माया की ग़ुलामी से आज़ाद कदापि नहीं हो सकता। केवल सद्‌गुरु ही जीव को ग़ुलाम से मालिक बना देते हैं।

ग़ुलामी ही दुःख, अशान्ति, कल्पना और चौरासी लाख योनियों के चक्र का

कारण है जो तुम्हारे पल्ले पड़ गये हैं। ये सब के सब जीव के अपने मांगे हुये हैं। यह जीव की अपनी ही ख़रीद है। जो कर्म भी भला या बुरा जीव करता है उसका फल तो उसे अवश्य भोगना पड़ता है। जीव अपनी इच्छाओं से स्वयं ही इन चीज़ों को एकत्रित करता है और फिर इनके कारण परेशान भी होता है।

इन्हीं दुःख, कल्पना, अशान्ति और नीच योनियों के बन्धन से मुक्त होने के लिए जीव को सद्‌मार्ग सन्त महापुरुष ही दिखलाते हैं। सन्त सद्‌गुरु की शरण पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप उत्तम संयोग से उपलब्ध होती है। विवेक-शील पुरुष (जीव) बन्धनमुक्त होने के लिये ही समय के पूर्ण महापुरुष सन्त-सद्‌गुरु की शरण ग्रहण करता है। सन्त सद्‌गुरु ही इस भेद को जानते हैं कि जीव क्यों दुःखी है और वे अपने सत्संग उपदेश द्वारा जीव को इन समस्त दुःखों से छुटकारा पाने के उपाय बतलाते हैं।

प्रवचन ३०. तुम सत्-चित्-आनन्द रूप निर्मल और चैतन्य आत्मा हो। तुम शरीर नहीं हो। यह शरीर तो केवल तुम्हारे रहने के लिये एक अस्थायी मकान है अथवा यात्रा करने के लिए प्राप्त एक सवारी अथवा रथ। इस रथ का रुख़ पहले विपरीत दिशा में अर्थात् काल और माया की ओर है। चौरासी लाख नीच योनियों की ओर यह रथ दौड़ा जा रहा है। अब इसका रुख़ पलट कर सन्त सद्‌गुरु के चरणों की ओर कर दो, तब समझो जीव का मुख अपने निजी देश की ओर हो गया।

काल और माया को अपना लक्ष्य स्थान बनाने की अपेक्षा कुल मालिक के धाम को अपना लक्ष्य बनाकर इस दिशा में जाने वाली लाइन के लिये इस काया रूपी गाड़ी का कांटा बदलना है। इस प्रकार मन का कांटा बदलने का काम सन्त सद्‌गुरु ही करते हैं और करने की सामर्थ्य भी वही रखते हैं।

भक्ति मार्ग में विघ्न भी आते हैं। यदि इन विघ्नों के कारण कभी पाँव फिसल भी जाये तो भी रुकना नहीं चाहिये। गिरते पड़ते हुए भी चलते रहने से जीव एक न एक दिन निश्चय ही अपने लक्ष्य स्थान तक पहुँच जायेगा। जीवन नाम ही

चलने का है और जीव वह है जो चलता रहे। रुकना तो मौत की निशानी है। इसलिए मालिक की सेवा, भक्ति, प्रेम, आज्ञा पालन तथा दृढ़ विश्वास के द्वारा अपने अन्तर में आत्मबल उपार्जित कर मंज़िल की तरफ़ कदम बढ़ाते रहना है और जीवन में ही मालिक की प्राप्ति कर मंज़िल पर पहुँच कर जीने का लक्ष्य प्राप्त करना है तथा मानुष जन्म का लाभ उठाना है। इसी ज्ञान की लखता करवाने और अज्ञानता को दूर हटाने के लिए महापुरुष युग युग में भिन्न भिन्न रूप में अवतार धारण करते हैं।

प्रवचन ३१. प्रत्येक जीव के अन्तराल से प्रतिक्षण एक विशेष प्रकार की झीनी सत्ता-स्फूर्ति, जिसे सुरति की धारा कहते हैं निर्यात होती रहती है, चाहे मनुष्य को स्वयं इसका भान हो या न हो। यही सुरति की धारा ही मानव जीवन का सार तत्त्व है। इसी को ही मनुष्य की महत्तम सत्ता अथवा शक्ति कहना चाहिये।

विचार करना है कि मनुष्य अपने घट से सुरति की इस धारा का निर्यात किस प्रयोजन से करता है अथवा इस का प्रयोग कहां करता है? सुरति की धारा किस मूल्य एवं महत्त्व की वस्तु है, इसका निर्यात कर बदले में क्या वस्तु आयात की जाती है? जिस प्रकार कोई नादान रुपये के मूल्य की किसी वस्तु के बदले दो कौड़ी का माल ख़रीद लाये; वैसे ही साधारण प्राणी इस संसार में आ कर अमूल्य वस्तु अर्थात् सुरति की धारा के बदले निरर्थक एवं मिथ्या मायावी पदार्थ ख़रीद करने में रात दिन व्यस्त है। ऐसा केवल उदाहरणार्थ कहा गया है अन्यथा करोड़ों रुपये तो क्या, सृष्टि की सम्पूर्ण सम्पत्ति भी सुरति की धारा के मूल्य एवं महत्त्व की तुलना में अति तुच्छ है।

साधारण प्राणी अपने जीवन का वास्तविक मूल्यांकन नहीं करता, न ही उसे जानने समझने का यत्न करता है। वस्तुतः यह मनुष्य आत्मा है, शरीर नहीं तथा आत्मसत्ता का जो मूल्य है उसकी तुलना में यदि अरबों ख़रबों की सम्पत्ति तथा असंख्य मायिक पदार्थ भी प्राप्त हो जाएं तो भी यह कौन सा लाभ हुआ?

प्रायः जीव ऐसा विश्वास कर लेता है कि मैंने बड़ी कमाई कर ली। परन्तु विचार तो इस बात का करना है कि संसार के मूल्यवान् से मूल्यवान् पदार्थ भी यदि उपलब्ध हों, तो क्या उनके द्वारा अशान्त आत्मा को शान्ति लाभ हो सकेगा? अथवा आत्मा पर अनेक जन्मों से चढ़े हुए मलिन आवरणों को उतार सकने में ये मायिक पदार्थ सहायता कर सकेंगे? यदि ऐसा नहीं हो सकता तो फिर ये समस्त पदार्थ लाभदायक तथा मूल्यवान् कैसे हुए? सत्य तो यह है कि सांसारिक पदार्थों में आसक्त रहने के कारण सुरति पर माया के मलिन आवरण प्रतिदिन चढ़ते और सघन होते जाते हैं। तब भी जीव इन मायिक पदार्थों को प्राप्त कर खुशी से फूला नहीं समाता।

कितने आश्चर्य एवं दुःख का विषय है कि जीव धोखे में फँसकर भी मिथ्या आश्वासन से प्रसन्न है, अपने आपको धोखे में डाल कर भी खुश हो रहा है। इस भ्रान्ति एवं गुमराही का भी कोई ठिकाना है? जो चीज़ आत्मा के लिए हानि कारक एवं आत्मा को नरक में धकेल देने वाली है, साथ ही जो आत्मा के लिये अशान्ति एवं क्लेश की उत्पादक है, उसी को ही प्राणी मूल्यवान् एवं लाभदायक समझता है यह बड़ी भूल है।

सन्त सद्गुरु जीव को इस भ्रम तथा धोखे का शिकार होने से बचाते हैं और यथार्थ की परख करवा कर यथार्थदर्शी परीक्षक बनाना चाहते हैं, जिससे कि जीव कम-अज़-कम इतनी तो पहचान रखे कि सत् को सत्, माया को माया, परमार्थ को परमार्थ जाने, दूध को दूध और पानी को पानी माने, दोनों को एक न समझे।

इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य रात दिन एक तरह का व्यापार या लेन देन कर रहा है। सुरति की धारा का व्यय करके उसके बदले कुछ न कुछ प्रत्येक मनुष्य ख़रीद करता ही रहता है। यह लेन देन या व्यापार इस प्रकार होता है कि सुरति की धारा जिस दिशा में जाती है; वहाँ से उसी प्रकार उसी वातावरण के संस्कार या प्रभाव आकर्षित करके लौटती है। अतः सत्पुरुष समझाते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो सके आदान-प्रदान अर्थात् अपने व्यवहार व्यापार को ठीक ढंग से

करना चाहिये। सत्य के बदले असत्य नहीं ख़रीदना चाहिये। लाभप्रद वस्तु अर्थात् भक्ति, प्रेम, गुरु-सेवा आदि सच्ची वस्तुओं को ख़रीदकर मनुष्य जन्म को हानि में नहीं बल्कि लाभ लेकर ही बिताना चाहिये ताकि जिस कार्य के लिये मालिक ने हमें भेजा है उसकी पूर्ति हो सके।

प्रवचन ३२. यदि कोई व्यक्ति किसी चिरंतन रोग से पीड़ित हो तो उसके कीटाणुओं को शरीर में से निकाल देने तथा भविष्य में परहेज़ और सावधानी बरतने से वह पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करके बलिष्ठ बन सकता है, अन्यथा नहीं। ख़ुद ही विचार एवं अनुमान करो कि जीवात्मा के अनुकूल खाद्य अर्थात् विचार-संस्कार कौनसे हैं? इसका सम्यक् विचार करके जो विचार एवं संस्कार आत्मा को उन्नत एवं आनन्दयुक्त बना सकें, वही सुरति में प्रविष्ट करो।

जीवात्मा को अनुकूल खाद्य प्राप्त हो, इसी विचार से सन्त महापुरुष मनुष्य के विचारों का रुख़ पलटते हैं; जिससे कि वह ग़लत विचारों की भर्ती करके अपने आप को अधिक रोगी एवं निर्बल न बनावे। सन्त सद्‌गुरु की भक्ति और उनके उपदेश में ही आत्मा के अनुकूल खाद्य पदार्थ एवं पौष्टिक तत्त्व निहित हैं। इसी में समस्त साधन, नियम, धर्म, भजनाभ्यास आदि स्वतः सिद्ध होते हैं।

जिसकी सुरति में सद्‌गुरु की भक्ति के भावों ने तथा सद्‌गुरु के ध्यान ने स्थान पा लिया, उस के सभी साधन मानो सिद्ध हुए। महापुरुष जीव से यही चाहते हैं कि वह अपने चित्त में से प्रतिकूल विचारों-संस्कारों को निकालकर बाहर करे और अपने अन्तर को परिशुद्ध करे। चित्त की परिशुद्धि ही सबसे बड़ा साधन है।

प्रवचन ३३. जिस माया का जीव को सामना करना है उसका पसारा भी अति विस्तृत तथा प्रबल है। वह भाँति भांति के रूप बदलकर जीव को धोखा देती है। अतः उससे नितान्त सावधान रहने की आवश्यकता है। भय, लोभ, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, सुख-दुःख, भलाई-बुराई इत्यादि माया के अनेकों बदले हुए रूप हैं। कोई कहां तक गिने? ये सब जीव के सम्मुख सामना करने के लिए

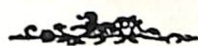
आया करते हैं ।

अतएव इन माया के अनेकों रूपों से सावधान एवं सचेत रहना ही साधक का ध्येय होना चाहिये । अतएव अपनी लाभ-हानि को स्वयं समझने का यत्न करो, यथार्थ की परख करो, अपनी आवश्यकताओं को समझो तथा माया के छल-कपट के जाल से अलग रह कर सार-तत्त्व के अन्वेषक बनो । यही मानव जीवन का लक्ष्य है और इसी में परम कल्याण है ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन वचन वे पुनीत स्मृतियां तथा दिव्य ज्योतियां हैं, जिन को पढ़ने से, हृदय में धारण करने से भक्ति की ज्योति स्वयमेव जगमगा उठती है । प्रेमिजन इन पर मनन कर कृतार्थ हों ।



श्री श्री १०८ श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज



॥ दोहा ॥

ज्योति श्री परमहंसों की, उल्लसित हो लहराय ।
उन्नायक पथ भक्ति के, रूप चतुर्थ सुहाय ॥
अन्तर्दृष्टि उघाड़ने, मञ्जुल भेद बताय ।
हृद्य कन्द्रा छा गया, प्रखर तेज निरुपाय ॥
तव किरपा की कोर से, उघरहिं नयन विवेक ।
अति अगम भव जलधि में, दीन्हीं सतगुरु टेक ॥
मम प्रणाम चरणार में, हे मेरे करुणेश ।
जिन के चरण-स्पर्श से, भाजत सकल कलेश ॥

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी ने भक्ति के वास्तविक रहस्यों का उद्घाटन नियम व सिद्धान्तानुसार अपने ही ढंग से किया। जैसा कि देश काल व परिस्थिति के अनुसार महापुरुष करते ही आए हैं। आप सौम्य वृत्ति, शान्त प्रकृति तथा गौर वदन की आभा लिए हुए मर्यादाओं के नायक थे। इसी लिए आप को अधिकांशतः मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी से उपमा दी जाती है। आप के जीवन में मर्यादाओं की झलक स्पष्ट झलकती है। अत्युदार, शरणागतप्रतिपाल, करुणा के अवतार, त्रिगुणातीत, सत्य पथ के नायक आप श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी के

स्वरूप में प्रकट होकर परमार्थ के सिंहासन पर समासीन हुए। आपने अल्पकाल में ही जन जन को प्रेम भक्ति तथा परमार्थ पथ का वास्तविक ज्ञान कराया। आप के जीवन की कुछ झलकियों को तुच्छ बुद्धि के द्वारा यहां प्रस्तुत कर लेखनी को कृतार्थ किया गया है।

अवतरण

परोपकारी और परमार्थ के पथ-प्रदर्शक महापुरुष तब ही इस धराधाम पर अवतरित होते हैं जब समय उनकी पुकार और युग उनकी गुहार करता है। प्रकृति इस सुव्यवस्था की प्रबन्धक होने के कारण आवश्यकता की पूर्ति करती है। प्रकृति का यह नियम है कि "मांगोगे तुम्हें दिया जाएगा, ढूँढोगे तो तुम पाओगे, खटखटाओगे तो द्वार खोल दिया जाएगा।" जो मांगता है, उसे मिलता है। जो ढूंढता है वह पाता है, जो खटखटाता है, उसके लिए द्वार खोल दिया जाता है। श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी ने इस अद्वैत-सम्प्रदाय का पौधा लगाया। इस के फलने फूलने तथा सुगन्धि फैलाने की परम्परागत सुव्यवस्था भी प्रकृति ने की। समय समय पर उसने अवतारी विभूतियों को प्रकट कर इस वसुधा को कृतार्थ किया।

ऐसी ही विभूतियों में से हमारे हृदय सम्राट् महाराजाधिराज श्री श्री १०८ श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री चतुर्थ पादशाही जी अवतरित हुए। जिस स्थान पर एक महापुरुष का अवतरण होता है वह स्थान पूजनीय बन जाता है और जहां पर दो दिव्य महान् व्यक्तित्व अवतरित हुए हों उस धरती के न जाने कितने भाग्य होंगे? इस लक्की के कण कण में जैसे उल्लास समा गया। जन कल्याण हेतु परम्परागत महापुरुषों के अवतरण को निरख श्री परमहंस दयाल जी की अमर ज्योति मानो मस्ती में जगमगाने लगी। अब तो संसार में अधर्म की अधिकता न होगी, भक्ति-परमार्थ पर अग्रसर कराने वाली अति दिव्य विभूतियों के प्रभाव से धर्म, सत्य, पवित्रता का जयघोष होगा--अतः नभ से हर्ष की दुन्दुभि

बजने लगी ऐसी छटा निरख कर। बहारों ने मुस्कान के साथ अपना दामन पसारा।

मुहब्बत के तराने हवा ने सुनाये।
उजड़े चमन में भी गुल मुस्कराए॥
सितारों के मोती फ़लक ने लुटाये।
सहर आई ज़रीन आँचल उठाये॥

दाम–ए–हवस से मिला छुटकारा।
उरफ़ान का मिल गया जब द्वारा॥
वली बन सद्गुरु ने अवतार धारा।
डूबे थी किश्ती दिया आ सहारा॥

बीसवीं शताब्दी के पदार्पण के साथ परमार्थ पथ के भास्कर, अन्तर्मानस के अन्धकार को मिटाने के लिये श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज का अवतरण हुआ। आप २२ जनवरी सन् १६०१ तदनुसार १० माघ संवत् १६५७ पौष शुदी पूर्णमासी मंगलवार के दिन की प्रभात वेला में लक्की मरवत् ज़िला बन्नू (सीमाप्रान्त) में अवतरित हुए। पूर्व दिशा में ज्यों ही ऊषा का आगमन हुआ, इस अमर-ज्योति की भी नवल प्रभात में ऊषा आ गई। जैसे सूर्य की किरणों को पाकर पंकज खिल उठता है, उसी प्रकार भक्ति-परमार्थ की अभिलाषी आत्माएँ इस भक्ति के दिवाकर को पाकर प्रफुल्लित हो उठीं। अरुणिम वेला में पक्षियों ने कलरव किया, लालिमा ने दिशाओं को लाली से भर दिया। भक्ति परमार्थ की लालिमा में प्रेमियों ने अपने भाग्यों को सराहा। पाप, अधर्म एवं कुप्रवृत्तियां अपना दामन संभाल विदाई लेने लगीं। पूज्य श्री चोखा राम जी को आप के पिता तथा पूज्य सुश्री कंवर बाई जी को आपकी माता बनने का श्रेय प्राप्त हुआ। दाएँ श्री चरण में चक्र चिन्हों का समन्वय ऐसा था जिसकी शोभा देखते ही मन मुग्ध हो जाता और चरण-स्पर्श करते ही आत्मिक सुख तथा शान्ति की अनुभूति होने लगती। नाम संस्करण के दिन आपका शुभ नाम श्री मूल चन्द जी रखा गया। सन्त महापुरुष जगत् की मन्दावस्था को सुधारने के लिये ही अवतार धारण

किया करते हैं ।

आते अनामी लोक से प्रभु, स्वरूप साकार का धर ।
करते उद्धार सुधार अति, उपकार जन जन पर ॥
दिखाते पथ निजधाम का, परमार्थ पर चला कर ।
जो शरण की टेक गहे, छूट जाए माया का डर ॥

कलि का देखकर यौवन, अधर्म ने धूम मचाई है ।
भक्ति पथ दृढ़ावन को, परमहंसों की ज्योति आई है ॥
दिया जो शब्द का शस्त्र, मन ने मुँह की खाई है ।
दिव्य आभा लिये परमहंसों ने, क्या लीला रचाई है ॥

बचपन से ही आप गम्भीर, एकान्तप्रिय, शान्त-प्रकृति, सुशील स्वभाव एवं अपनी ही मस्ती में मस्त रहने वाले थे । आप की बाल लीलाओं का सुअवसर भी इसी स्थान लक्की मरवत् को ही मिला । आप को अत्यधिक खेलना तथा बातचीत करना अच्छा न लगता था । अतः आप बचपन से ही चांचल्य को छोड़ साधु स्वभाव के कारण निर्लिप्त रहते थे जब कि प्रायः बाल्यकाल में क्रीड़ा, मनोरंजन, चंचलता एवं अबोधपन की प्रबलता रहती है, तब आप इन सब से विलग होकर अपने ही विचारों में खोए रहते थे ।

अभी आप की आयु लगभग चार पांच वर्ष की हुई होगी कि एक दिन आप की पूज्या माता जी कहीं बाहर घूमने के लिये गईं, वे आपको भी अपने साथ ले गईं। मार्ग में एक स्थान पर कुछ लोग जमघट लगाये कुछ देख रहे थे । माता जी भी उस भीड़ को देख कर उधर ही चल दीं । वहां पर मध्य में एक बैल खड़ा था। उसका मालिक जो भी प्रश्न करे वह अपनी सांकेतिक भाषा में उन प्रश्नों का उत्तर देता था । उस के चारों ओर खड़े हुए लोग अपने भावानुसार प्रश्न कर रहे थे । उस जन समूह में किसी व्यक्ति ने प्रश्न किया कि इस समूह में भगवान् का सब से प्यारा कौन है ? वह बैल चलता-चलता भीड़ को एक ओर करता हुआ वहां

आ खड़ा हुआ जहां आप अपनी माता जी के साथ खड़े थे। उसने अपने सिर से आपकी ओर संकेत किया। वह बेचारा सांकेतिक भाषा में यही उत्तर दे रहा था कि आप भगवान् के प्यारे ही नहीं अपितु बालक के रूप में स्वयं भगवान् हैं। उस समय जन-समूह बड़े आश्चर्य से आप की ओर देखने लगा। सचमुच ही जिन हृदयों में कुछ भक्ति-भावना तथा अपने इष्टदेव के प्रति प्रेम था वे आपकी ओर आकृष्ट हुए बिना रह न सके। वे एकटक आप की मनोरम छवि को निहारते ही रह गये। आप अपने सरल स्वभाव से अपनी माता जी के साथ घर लौट आए।

आप की शिक्षा-दीक्षा भी लक्की मरवत् में ही हुई। आपने उर्दू में उच्च शिक्षा को प्राप्त किया। इसके साथ साथ फ़ारसी और हिन्दी भी आप जानते थे। समय के साथ साथ आप बड़े होते गए और इस लौकिक शिक्षा को लोक मर्यादा अनुसार पूर्ण किया। व्यवहारिक शिक्षा-दीक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् आप अपने बड़े भाई साहिब जी के साथ दुकान के कार्य में हाथ बटाने लगे। घर में सब भाई बहनों से आयु में छोटे होने के कारण आप सब के स्नेह के पात्र बने हुए थे, परन्तु आप का तेज ही ऐसा था कि घर में सब आपके कथनानुसार चलते। पूज्य माता पिता जी ने आप का १८ वर्ष की आयु में ही विवाह कर दिया, किन्तु आप का मन इन संसारी झंझटों से उपराम रहता था। आपने अभी गुरु-दीक्षा भी प्राप्त न की थी, तो भी आप को साधु-सन्तों की संगति बहुत प्रिय लगती थी। आप के यहां एक पुत्र-रत्न ने जन्म लिया, किन्तु आप को उससे विशेष स्नेह न था। आप किसी दिव्य आनन्द की खोज में थे।

गुरु-दीक्षा

सन्त महापुरुष आदिकाल से चली आ रही परम्परा को अपनाते हैं। वे सर्वगुण सम्पन्न होते हुए भी मर्यादा में सब काम करते हैं। अन्य महापुरुषों की भांति आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज) ने भी उसी रीति को ही अपनाया। क्योंकि गुरुवाणी में भी यही उपदेश है किः—

धुरि खसमै का हुकमु पइआ विणु सतिगुर चेतिआ न जाइ ॥

सद्गुरु की प्राप्ति के बिना ज्ञान नहीं होता, यही धुर का सन्देश है। चाहे अवतार स्वयं ज्ञान के भण्डार, दाता एवं मालिक होते हैं, फिर भी गुरु-दीक्षा का आदर्श स्थापित करने के लिए मानवीय लीला में यही दर्शाते हैं कि सद्गुरु के बिना पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। आप नित्य नियम तो श्रद्धा पूर्वक किया करते थे। समय के पाबन्द रहना आपका मुख्य धर्म था, जिसे आपने पूर्णतया निभाया। इसी दैनिक नित्यकर्म एवं साधु-महात्माओं की सेवा तथा संगति से आप के हृदय में गुरु-दीक्षा के लिए उत्कट इच्छा जागृत हुई। आप प्रायः सभी आने जाने वाले साधु-महात्माओं को कहा करते थे कि अभी हमें पूर्ण शान्ति का अभाव खटकता है।

ऐसे ही समय पाकर वह स्वर्णावसर आ ही गया कि एक बार श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी लक्की मरवत् में भक्त साहिबराम जी के घर विराजमान थे। लक्की मरवत् शहर के समीप व दूर की संगतें श्री दर्शन के लिए आ रही थीं। श्री अमृत-वचनों का रसपान करते हुए श्रद्धा और प्रेम की निर्मल भावनाएँ उनके दिलों में लहरों के समान हिलोरें ले रही थीं। जो भी प्रेमी श्रद्धा व प्रेम से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी को अपना गृह पवित्र करने हेतु श्री चरणों में विनय करते तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी बड़े ही प्रेम से उस श्रद्धालु प्रेमी की विनय को स्वीकार कर लेते थे और दिन के ही समय उस प्रेमी के गृह को पवित्र करते। वहां अमृत-प्रवचन तथा सत्संग उपदेश से अधिकारी तथा संस्कारी आत्माएं अत्यधिक लाभ प्राप्त करतीं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के आगमन का समाचार सम्पूर्ण लक्की मरवत् में फैल गया। इस स्वर्णिम अवसर का सन्देश आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) के घर तक भी पहुँचा। आप उस समय दुकान पर गए हुए थे। पूज्य माता जी आपसे पूछे बिना कोई काम न कर सकती थीं। वे इसी प्रतीक्षा में थीं कि कब आप आएँ और माता जी आपसे पूछकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी

को गृह पवित्र करने के लिये विनय करें। उस दिन अचानक दोपहर को दुकान का कार्य अधिक होने से आप घर न आए। माता जी आपके आगमन की राह में नयन लगाए घड़ियाँ गिन रही थीं। रात्रि समय घर आकर अभी आपने भोजन भी न किया था परन्तु माता जी दिन भर की उत्सुकता को अधिक देर तक न रोक सकीं और आपके सम्मुख वह विचार प्रकट कर ही दिया कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्त साहिबराम जी के घर कृपा फ़रमाई है। आप भी गृह पवित्र करने के लिये विनय करें। आप के हृदय में एक नई उमंग जाग उठी। अन्दर ही अन्दर चित्त हर्ष में झूम उठा जैसे किसी ने हार्दिक अभिलाषा के पूर्ण होने का सन्देश दिया हो। माता जी को उत्तर दिया कि आप महापुरुषों को पहले ही घर क्यों न ले आईं? क्या हमने सन्त सत्पुरुषों के लिये कभी मना किया है? लो! हम अभी जाते हैं। इतना कहकर आप बिना भोजन किए ही भक्त साहिबराम जी के घर की ओर चल दिए।

कितनी विचित्र लीला है प्रकृति की। कभी प्रेमी प्रियतम की मिलन की चाह में तड़पता है तो कभी प्रियतम प्रेमी के पास चलकर आते हैं और कभी कभी समीप आकर भी कुछ सकुचा जाते हैं। रास्ते में आपके दिल में एक विचित्र प्रकार के आनन्द की लहरें कलरोर करने लगीं। आप मन ही मन सोचने लगे, पहले भी तो कई बार साधु सन्तों को गृह पवित्र करने के लिए विनय कर चुके हैं किन्तु तब तो कभी ऐसा हृदय में उल्लास नहीं हुआ, आज तो न जाने मन में क्या हो रहा है? ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे कोई खोई हुई निधि मिलना चाहती हो। आप भक्त जी के घर पहुँचे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी वहां सत्संग उपदेश कर रहे थे। उनके श्री दर्शन से ही आप का दिल अपना न रहा। श्री अमृत प्रवचन सुनते ही तन बदन की सुधि भी भूल गये। परम सन्त श्री कबीर जी का कथन है:—

॥ दोहा ॥

सतगुरु मारा तान कर, शब्द सुरंगी बान।
मेरा मारा फिर जिए, तो हाथ न गहूँ कमान॥

परब्रह्म सद्गुरुदेव जी की पहचान ही यही है कि उन का उपदेश तीनों गुणों से ऊपर का होता है। उनका दिया हुआ नाम मन्त्र एक अचूक बाण है जिसके हृदय में वह प्रवेश कर लेगा, वह अपनी बुद्धि के समस्त कौशल को भूल जाएगा। अपनी आत्मा के साक्षात्कार करने में उसे कोई कठिनाई न होगी यह शत-प्रतिशत निश्चित है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के सत्संग उपदेश की समाप्ति पर आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) ने उसी समय वहाँ गुरु-दीक्षा की मर्यादा को पूर्ण किया। नाम-दीक्षा प्राप्त करते ही जैसे एक दीपक से दूसरा दीपक उसी ज्योति को अपने में भर लेता है वैसे आपकी दशा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के शुभ संयोग से हुई। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) अपने परम प्रिय अनन्य शिष्य को पाकर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे। उनकी साधना भी नई उमंगों के हार पिरो रही थी। भक्ति पथ पर दृढ़ कदम रख कर चलने वाले अलौकिक शिष्य को पाकर श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी की मौज को साकार होता देख उनकी प्रसन्नता की सीमा न थी। उन्होंने आप को एक ही दृष्टि में निहाल कर दिया। क्योंकि सन्त महापुरुषों में यह विशेष गुण है कि:—

॥ दोहा ॥

पारस में अरु सन्त में, बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कञ्चन करे, वह कर ले आप समान॥

पारस (एक पत्थर है, जो लोहे से छू जाय तो लोहा सोना बन जाता है) और सन्त महापुरुषों में अत्यधिक भेद होता है। पारस यदि लोहे को छू जाय तो उसे सोना अवश्य बना देता है परन्तु उसे अपना रूप (पारस) नहीं बना सकता। सन्त महापुरुषों की संगति में यह विशेष गुण होता है कि जो जीव उनकी पावन संगति श्रद्धा विभोर हो कर करते हैं वे उन्हें अपना ही रूप बना लेते हैं। संस्कारी और अधिकारी आत्मा ही ऐसी बनने में समर्थ होती है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री दर्शनों ने ही आप के हृदय में मालिक के प्रेम की वह लटक लगा दी जिसके लगते ही आप ने समस्त संसार को भुला दिया। आपने नाम-दीक्षा लेकर श्री चरणों में गृह पवित्र करने के लिये विनय की। आपकी विनय को स्वीकार कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपके घर कृपा की। माता जी व घर के अन्य सदस्य तो आपके बदले हुए रंग ढंग को देखकर चकित रह गये। यह क्या? आप तो समस्त सुध बुध खोए हुये भ्रमर की भान्ति श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री छवि की कान्ति पर मुग्ध हो रहे थे। आपने दिल भर कर इस दर्शन-रूपी अमृत को पिया। अब आप की दशा मछली की न्याईं बन गई। जिस तरह मछली पानी से अलग होने पर तड़पती है, इसी प्रकार आपको श्री सद्गुरुदेव महाराज जी से एक क्षण के लिए विलग होना असह्य हो गया। आप ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख शिष्य रूप में इस कथन को बिल्कुल सत्य सिद्ध कर दिया कि:—

॥ दोहा ॥

जिमि चन्दा लहे चन्द्रमणि, अमि द्रवत तेंह काल।
गुरुमुख निरखत शिष्य को, अनुभव होत विशाल॥

जिस प्रकार चन्द्रमा को देखते ही चन्द्रकान्त मणि पिघल कर बहने लगती है इसी प्रकार सद्गुरु के स्वरूप को निहारते ही शिष्य का हृदय पसीज उठता है और उसका अनुभव विशाल हो जाता है अर्थात् जैसे चन्द्रमा को किरणों को अपने में समाहित करने की योग्यता केवल चन्द्रकान्त मणि में ही है, उसी प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन करते हुए उनसे रूहानी शक्ति ग्रहण करने की क्षमता केवल उच्च संस्कारी शिष्य में ही होती है। आपने भी ऐसे चन्द्रकान्त मणि की न्याईं ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री दर्शन से अपरिमित आत्मिक आनन्द अनुभव किया।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपके गृह को पवित्र किया तथा पुनः भक्त साहिबराम जी के घर पधारे, वहीं पर सत्संग उपदेश की पावन धारा में जन जन

को मज्जन कराने में निरत रहे । अब आपका प्रेम भी तीव्र गति से बढ़ता गया। आप सारा सारा दिन भक्त साहिबराम जी के घर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री सेवा में व्यतीत करते । रात्रि समय जब सारी संगत अपने अपने घरों को लौट जाती तो आप सेवा में ही लगे रहते । जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आप को घर जाने की आज्ञा फ़रमाते तो आपको श्री आज्ञानुसार घर जाना पड़ता । आप घर तो चले जाते परन्तु रात्रि का एक एक क्षण गिन गिनकर बीतता । उस समय ये वियोग के क्षण आपको युग सम व्यतीत होते हुए प्रतीत होते थे । जैसे तैसे रात गुज़ार कर, ब्रह्म मुहूर्त्त में ही घर से चल देते । अभी भक्त जी के घर का द्वार खुलने भी न पाता था कि आप द्वार पर जाकर खड़े हो जाते और प्रेम में मग्न हुए हुए किवाड़ खुलने की प्रतीक्षा करते ।

श्री सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज से आपका अत्यधिक प्रेम था । वे भी इसी लक्की मरवत् में ही अवतरित हुए थे तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में उनका अनन्य अनुराग था । भक्त साहिबराम जी भी उच्च कोटि के प्रेमियो में से थे । अतः आप तीनों (श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज, श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज तथा भक्त साहिबराम जी) परस्पर मिलते तो प्रेम के समुद्र में मानो बाढ़ आ जाती, जिसकी लहरें एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहती हों । अतः जब तक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी भक्त साहिबराम जी के घर विराजमान रहते, आप तीनों मिल कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा बड़े प्रेम, श्रद्धा एवं लगन से करते रहते ।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इस बार भी कुछ दिन लक्की मरवत् में विराजमान रहे । श्री अमृत प्रवचन, श्री सुमंजुल दर्शन तथा पावन संगति की त्रिवेणी में सब को मज्जन कराते रहे और आपके (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) बदलते हुए रंग ढंग को देखते रहे । अर्थात् आपको भी संसार की ओर से सर्वथा उपरामता हो गई और श्री चरणों से आपने अगाध प्रेम का सम्बन्ध जोड़ दिया । आप

अधिक रात्रि गये तक श्री चरणों में बैठे रहते। लंगर आदि की सेवा तथा श्री चरणों की निजी सेवा–ये सब आप बड़े हित चित्त से करते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने कुछ दिन यहां रह कर पुनः बन्नू एवं अन्य स्थानों पर सत्संग प्रचार करने के लिए प्रस्थान किया।

आप अब घर के कार्य व्यवहार को भूल गये। श्री आज्ञा ही आपके जीवन का लक्ष्य बन गई। जब भी सेवा के लिए आज्ञा पाते, तन प्राण से उसे पूरा करने में संलग्न हो जाते। हर समय उनके प्रेम में डूबे ही रहते। घर में पूज्य माता जी अथवा बड़े भाई साहिब आपको घर के कार्य व्यवहार के लिये कहते तो आप उधर ध्यान ही न देते। आप भजनाभ्यास में भी अधिक समय देने लगे। गुरु-दीक्षा लेते ही आपके दिल में अत्यधिक लगन गुरु भक्ति की लग गई। अतः जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की में विराजमान होते तो आप पूरा समय श्री चरणों में उपस्थित रहकर सेवा में व्यतीत करते। जब वे बाहर प्रस्थान करते तो आप प्रातः तीन-चार बजे उठकर भजन अभ्यास में बैठ जाते और काफ़ी दिन चढ़े तक बैठे ही रहते। संध्या समय भी भजनाभ्यास में बैठते तो कभी रात्रि तक, कभी कभी तो दूसरे दिन की दोपहर तक सुरत-शब्द-योग के साधनों में लीन रहते। भजनाभ्यास के बिना आपको भोजन भी अच्छा न लगता था। जब जब भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी लक्की मरवत् या अन्य समीपवर्ती स्थानों पर कृपा करते तो आप व भक्त साहिबराम जी दोनों वहाँ पहुँच कर कई कई दिन तक श्री सेवा में उपस्थित रहते। जब वहाँ से लौटते तो पहले से भी अधिक भजनाभ्यास में संलग्न हो जाते। इस प्रकार के नियमानुसार एक वर्ष व्यतीत हो गया।

एक दिन आपने भक्त जी को कहा कि भजनाभ्यास के लिये कोई एकान्त स्थान होना चाहिये। घर में अभ्यास ठीक रूप से नहीं होता। एकान्त स्थान में जब तक इच्छा हो अभ्यास में बैठे रहें। लक्की मरवत् स्थान से छः फ़र्लांग की दूरी पर एक छोटा सा दरिया जिसे गम्भोला दरिया (टोची) कहा जाता था, इसके किनारे एक मकान ख़ाली पड़ा था। आप दोनों एकान्त स्थान को ढूँढते हुए

वहाँ पहुँचे। यह मकान भक्त साहिबराम जी के घर से सवा मील की दूरी पर था। एक कमरे पर छत थी, शेष सब खुला हुआ चहार दीवारी में था। इस मकान को भक्त साहिबराम जी व आपने भजनाभ्यास के लिये उपयुक्त समझा और यहाँ पर भजनाभ्यास के लिये जाना आरम्भ कर दिया। रात्रि समय आप भक्त जी के घर चले जाते, वहां विश्राम कर रात्रि को तीन बजे उठ कर यहाँ दरिया के किनारे दोनों उस मकान में चले जाते। जब प्रेमी का प्रेमी से मिलाप हो जाए तो भक्ति का क्या ही कहना! दिन दुगुनी रात चौगुनी उन्नति हो जाती है। कहा भी जाता है:—

॥ दोहा ॥

प्रेमी ढूँढत मैं फिरूँ, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ति दृढ़ होय॥

प्रातः काफ़ी दिन चढ़ने पर वहाँ से लौट आते और अपने काम पर चले जाते। यह कार्यक्रम तीन वर्ष तक निरन्तर चलता रहा। सर्दी, गर्मी, अन्धेरी तथा वर्षा आदि किसी भी परिस्थिति में आपने इस नियम में कभी अवकाश नहीं होने दिया। जब आपका दिल चाहता तो कई बार पूरा पूरा दिन भजनाभ्यास में बैठे रहते। इस प्रकार सुरत-शब्द-योग द्वारा आन्तरिक मंज़िलों को पार करने में निरत रहे। जब भक्त साहिबराम जी परलोक सिधार गये तो आप कुछ समय तक तो यहाँ आते रहे परन्तु बाद में लक्की में कृष्णद्वारा (सत्संग आश्रम) का निर्माण हो जाने पर वहाँ ही भजनाभ्यास के लिये जाने लगे। आपकी भक्ति, प्रेम तथा सेवा को देखकर यहाँ के सब लोग अत्यधिक प्रभावित हुए।

इस प्रकार आपके नियमपूर्वक भजनाभ्यास करने का प्रभाव घरवालों पर भी हुआ। आपकी भक्ति भावना का यश लक्की मरवत् के सम्पूर्ण क्षेत्र में फैल गया। लोग आपको 'भक्त जी' के शुभ नाम से पुकारने लगे। जब भक्त साहिबराम जी परलोक सिधार गये तो उसके पश्चात् किसी सेवक ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! भक्त साहिबराम जी

दरबार की सेवा तन-मन-धन व हित चित्त से किया करते थे, वह सेवा अब कौन करेगा ? श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) की ओर संकेत करके फ़रमाया कि इन्होंने भक्त जी की जगह की पूर्ति कर दी है।

आप कुछ समय तो भक्त साहिबराम जी के (उनके जीवित रहते हुए) घर जाते रहे व परस्पर दोनों ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन यश तथा गुणानुवादों एवं मनोहारी लीलाओं को स्मरण कर आनन्दित होते। जब श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने जन-कल्याण हेतु लक्की मरवत् में आश्रम स्थापित करवाया, जो कि शुभ कृष्ण-द्वारा के नाम से विख्यात था; तब आप वहाँ जाकर अधिक समय सेवा तथा भजनाभ्यास में व्यतीत करने लगे। अब आपने कभी आठवें दिन, कभी दसवें दिन अपने घर जाने का नियम बना लिया। कभी कभी तो एक-दो मास में एक आध बार भी मुश्किल से घर जाते। आपके घरवालों ने जब आपका यह नियम देखा कि आप तो घर की ओर से बिल्कुल उदासीन होते जा रहे हैं तब आपके भाई साहिब जी ने आपको एक बार एकान्त में इतना ही कहा—"आप दुकान का कार्य न छोड़ें, धन से दरबार की सेवा कीजिये।" आपने उत्तर दिया—"जब तन-मन-धन सद्गुरु के अर्पण कर गुरु-दीक्षा ले ली तो अब शेष अपने पास क्या रहा, जिसे संसार की ओर लगाएँ। उनकी श्री आज्ञा व प्रसन्नता ही जीवन का लक्ष्य है, उसी में ही तन-मन-धन लगाना है। मेरा तो यही दृढ़ निश्चय है।" आपने ऐसा ही किया।

आदर्श गुरु-भक्ति

आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज) महान् व्यक्तित्व को लिये हुए जन्मजात अवतारी विभूति थे परन्तु आपने गुरुभक्ति के नियम व सिद्धान्तों को सुदृढ़ करने के लिये महान् आदर्श स्थापित किया। आप का आचरणमय

जीवन ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है । श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख आपने जिस योग्यता से श्री आज्ञा एवं श्री मौज को प्राणपन से निभाया वह सब आपके जीवन की प्रत्येक झलकी से स्पष्ट होता है । सत्यता और यथार्थता का साकार रूप आपकी जीवन झलकियों में इस प्रकार है:—

एक बार श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी टल में विराजमान थे । आप भी वहाँ श्री दर्शन के लिये गये । श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी की मौज कालाबाग़ की ज़मीन ख़रीदने की हुई । पहले उन्होंने कुछ अन्य सेवकों को इस ज़मीन को ख़रीदने के लिये श्री आज्ञा प्रदान की। वे सेवक श्री आज्ञानुसार वहां से चल दिये । धन की कमी तथा अन्य साधन सुगम न होने के कारण वे लौट आए और इस कार्य को पूरा न कर सके। पुनः श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आपको तथा भक्त साहिबराम जी को इस कार्य के लिए आज्ञा दी । आपने यथा-सम्भव साधनों से धन एकत्र किया और थोड़े समय में ही श्री मौज के अनुसार इस कार्य को पूरा कर दिया। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी आपके इस कार्य पर अति प्रसन्न हुए ।

इसी प्रकार एक बार श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने लक्की मरवत् में भण्डारा करवाया। इस भण्डारे के लिये पूर्ण धनराशि की सेवा आपके ज़िम्मे लगाई । आपने श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर इस कार्य को भी पूर्ण रूप से सम्पन्न किया । वैसे तो महापुरुष सर्व सम्पदाओं के मालिक होते हैं । प्रकृति उनकी चेरी होती है परन्तु वे संसार के सम्मुख एक आदर्श स्थापित करने के लिये उसी अनुरूप लीलाएँ करते हैं, जिन से वे एक उच्च आदर्श स्थापित कर सकें । इस भण्डारे के सम्पूर्ण होने पर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने अपनी निजी मौज में आकर आप से पूछा—"हम आप पर अत्यधिक प्रसन्न हैं, आज कुछ मांगना चाहो तो मांग लो; हम देने को तैयार हैं।" आपने विनय की कि "प्रभो ! केवल आपके श्री चरण कमलों की भक्ति की अभिलाषा है।" श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि ठीक है, यह दोहा तीन बार पढ़ो:—

॥ दोहा ॥

भक्ति दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
और नहिं कछु चाहिए, निसिदिन तुम्हरी सेव ॥

आपने श्री आज्ञानुसार तीन बार इस दोहे को पढ़ा । पुनः प्रवचन हुए ऐसा ही होगा ।

आप (श्री चौथी पादशाही जी महाराज) अपने श्री मुख से कई बार फ़रमाया करते थे कि "सद्गुरु चाहे कितनी भी दात जीव को बख़्शें, परन्तु सेवक को सदा विनम्र रहना चाहिए । सादगी से साधारण जीवन व्यतीत करना चाहिए ।" अतः आपने आजीवन यह सब कुछ करके दिखाया । आपके हृदय में सेवक भावना सदा विद्यमान रहती थी । आप सब को यही उपदेश देते थे कि "सेवक बनने में बहुत सुख है । सेवक भाव से प्रत्येक सेवा को करना चाहिए चाहे वह कोई भी सेवा क्यों न हो । दरबार में झाड़ू लगाना—दरबार के सदस्यों में प्रबन्धक बनना अथवा श्री चरणों को निजी सेवा करना—इन सब में से कोई भी सेवा मिल जाए उसे अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास से दिल लगा कर करनी चाहिए । सेवक के दिल में अहंकार को स्थान नहीं मिलना चाहिये; क्योंकि जब तक सेवक अहं को मिटा नहीं देता तब तक कुछ प्राप्त नहीं कर सकता । सेवक का पद अत्युच्च है परन्तु सेवक धर्म निबाहना कठिन है । इसमें स्वयं को मिटाना पड़ता है ।" जैसे कि भक्ति-पथ के लिए कहा भी गया है कि:—

॥ शेयर ॥

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे ।
कि दाना ख़ाक में मिलकर, गुले गुलज़ार होता है ॥

ऐ जीव ! यदि तू कुछ पाना चाहता है तो अपने आप को मिटा दे । क्योंकि बीज (दाना) मिट्टी में जब पूर्ण रूप से मिलकर अपने आप को मिटा देता है तभी वह पोधा बनकर फलता फूलता है । यदि कुछ बनने की अभिलाषा है तो

स्वयं को मिटा दे अर्थात् अभिमान को त्याग दे। अहंकार जीव की जन्म-जन्मों की कमाई को एक क्षण में नष्ट कर देता है। आपने जो श्री वचन फ़रमाये उन्हें यथार्थ रूप में आचरण कर सब के सामने आदर्श प्रस्तुत किया। आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के प्रेम में सदा खोए खोए से रहते थे। श्री आज्ञा व श्री सेवा में तत्पर रहना ही आपका ध्येय हो चुका था।

एक बार श्री दूसरी पादशाही जी महाराज स्थान टेरी में विराजमान थे। प्रभु प्रेम के मतवाले, हर समय श्री दर्शनों की मस्ती में खोए रहने वाले श्री चौथी पादशाही जी महाराज जब अभी लक्की मरवत् में भक्त वेष में अपने घर पर ही रहते थे, उस समय का वृत्तान्त है कि प्रातःकाल का समय, न जाने इतनी बेचैनी व बेकरारी क्यों? अभी लोग अपने काम-धन्धों पर जाने की सोच रहे थे, परन्तु आपको इन सांसारिक काम-धन्धों से क्या मतलब। आप तो अपने ही काम (ध्यान) में मग्न, न जाने रात कैसे कटी होगी, जो प्रभात होते ही दिल की तारें अपने प्यारे प्रभु से मिलने के लिए झनझना उठीं।

जैसे ही दिल में ख़्याल आया तो बस! अब घर पर कौन रुके। एक दम ही श्री दर्शन के लिये घर से निकल पड़े। रास्ते में भक्त साहिब राम जी मिल गये। उनके पूछने पर आपने अपने हृदय की सब बात कह दी कि हम तो श्री दर्शन के लिए जा रहे हैं, क्योंकि अब दिल आपे से बाहर हो चुका है, न जाने श्री प्रभु जी ने क्या ही जादू कर दिया है, अब हम से नहीं रहा जा रहा। भक्त साहिब राम ने कहा क्या अभी ही जाने की तैयारी है? आपने एक ही उत्तर दिया कि हमने तो अवश्य जाना ही जाना है, हमारे से तो अब नहीं रहा जाता। भक्त साहिब राम ने कहा कि चलो मैं भी श्री दर्शन के लिए आप के साथ चलता हूँ, इतने में फिर आप से विनय की कि मेरा एक मित्र कई बार मुझे कह चुका है कि जब तुम श्री दर्शन के लिए जाओ तो मुझे भी साथ अवश्य ले चलना। यदि आप की आज्ञा हो तो उसे भी साथ ले लें।

आपने फ़रमाया जल्दी करो, देर न लगाओ, गाड़ी का समय होने वाला है।

पास में ही उस भक्त का घर था। आप दोनों शीघ्रता से उसके घर पहुँचे। भक्त साहिब राम ने उसे श्री दर्शन के लिए चलने को कहा। पहले तो भक्त जी बोले क्या अभी अभी व इतनी जल्दी! आप ने कहा भक्त जी श्री दर्शनों के लिए क्या सोचना। जल्दी करो, नहीं तो हम दोनों जा रहे हैं क्योंकि गाड़ी का समय हो गया है। भक्त जी भी आपके कहे अनुसार झट से तैयार हो श्री दर्शन के लिए चल पड़े।

बस! अब क्या था। दिल में प्रेम का सागर हिलोरें लेने लगा। भक्त साहिब राम जी, आप व वह भक्त तीनों ही श्री प्रभु जी के श्री दर्शन के लिए निकल पड़े। प्रभु भी अपने प्रेमियों की परीक्षा लेने से कब चूकते हैं। परन्तु सच्चे प्रेमी भी अपनी मंज़िल पर पहुँचने के लिए रुकावटों व कष्टों से कब घबराते हैं, जब तक कि अपनी मंज़िल पर न पहुँच लें तब तक उन्हें चैन कहाँ?

परीक्षा भी देखो! स्टेशन पर अभी पहुँचे ही नहीं कि पता चला कि गाड़ी छूट चुकी है। दिल में एक ही धुन सवार है कि अभी अभी उड़कर पहुँचें व श्री सुन्दर छवि के श्री दर्शन करके अपने हृदय की तपत बुझाएँ। गाड़ी छूट गई तो क्या परवाह प्रेम के दीवानों को। स्टेशन लक्की मरवत् से पुनः वापिस लौटे तथा गम्भीला नदी को पार कर सराय नौरंग की सड़क पर टेरी के लिये पैदल ही यात्रा आरम्भ कर दी। आप दोनों तो पहले ही मस्ती में मस्त थे पर साथ वाले भक्त को भी आप के प्रेम ने दीवाना बना दिया, वह भी आपके सम्मुख कुछ कह नहीं सकता कि प्रभो! पैदल कब पहुँचेंगे। बेचारा चुपचाप साथ में चल रहा है। जब तीन चार घण्टे लगातार चलते ही रहे और रुकने का कहीं नाम तक न लिया तो वह भक्त बेचारा थक गया। आप दोनों को तो थकान की कुछ ख़बर ही नहीं। परन्तु भक्त जी जब अत्यधिक थक गए तो उसने आप से विनय की कि प्रभो! आप भी थक गए होंगे, अब थोड़ी देर विश्राम कर लो, पर आप को तो एक ही लगन दीवाना बनाए हुये थी आप किसी की थकान को क्या समझें। आप उन्हें भी बार बार ढाढ़स बँधवाते और फ़रमाते कि चलते चलो, देखो! श्री प्रभु जी अभी आपके लिये यहीं कार भेजेंगे। इस प्रकार आप चलते ही रहे।

रास्ते में उन्हें बहुत थका हुआ जान आप सराय नौरंग की सड़क पर एक छायादार पेड़ के नीचे रुके ही थे कि इतने में एक व्यक्ति सचमुच ही कार लेकर वहाँ आ पहुंचा। उसी पेड़ के नीचे वह भी दो मिनट रुका और फिर आपसे पूछने लगा कि आप लोगों ने किधर जाना है। आपने कहा कि हमें तो टेरी जाना है। तब उस व्यक्ति ने कहा मुझे इससे आगे कोहाट जाना है। आओ चलो, आप भी इस कार में जल्दी से बैठो, मैं आपको वहाँ छोड़ कर आगे चला जाऊँगा। मुझे भी जल्दी जाना है।

आप तीनों उस कार में बैठ गये और वह व्यक्ति कार चलाने लगा। आप तो ध्यान की मस्ती में मस्त थे। भक्त साहिबराम जी व वह भक्त आपस में आपका अटल विश्वास व असीम प्रेम देखकर चकित से रह गए थे कि देखो! इनके स्फुरण मात्र से ही झट कार यहाँ प्रगट हो गई। जो अपने पथ पर दृढ़ता से पग बढ़ाता है तो कुदरत की समस्त शक्तियां उसकी सहायता के लिए तैयार रहती हैं।

थोड़े समय के पश्चात् आप बाँडा दाऊद खैल पहुँच गए। आप उस व्यक्ति को किराये के रूप में कुछ रकम देने लगे, परन्तु उसने रकम लेने से इन्कार कर दिया। फिर उस व्यक्ति ने कहा कि चलो, मैं आपको तोई नदी तक छोड़ आता हूँ और उस ने आपको वहां पहुँचा दिया। टेरी तोई नदी से लगभग आध मील दूर थी। आपने शीघ्रता से पैदल चलना आरम्भ किया।

आप जैसे ही उस स्थान पर पहुँचे कि श्री प्रभु जी बाहर टहल रहे थे। आप ने झट से श्री चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की। आप श्री आज्ञा पाकर उठे तो महाप्रभु गद्गद कण्ठ से फ़रमाने लगे कि 'आप आ गये, अच्छा किया।' उस समय ऐसे लगता था कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी मानो पहले से ही आप की प्रतीक्षा कर रहे हों। उस समय आपके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की अविरल धारा प्रवाहित हो रही थी। मुख से कुछ बोल नहीं पा रहे थे। प्रभु जी के बार बार पूछने पर आप रूँधे हुये कंठ से केवल इतना ही कह पाए कि भगवन्! आप सर्वान्तर्यामी हैं। क्या करता आपके बिना रहा ही नहीं जा रहा था।

श्री प्रभु आपके ऐसे अथाह प्रेम को व आपके चेहरे को एकटक से निहारते

ही रह गये। आपके दोनों हाथों को अपने कोमल कर कमलों में लेते हुए फ़रमाने लगे कि 'समझ में नहीं आता कि तुम्हारे अन्दर इतना प्रेम कहां से आया? तुम तो सचमुच ही प्रेम के अथाह सागर हो।' इतना फ़रमाते हुए स्वयं श्री प्रभु जी के नेत्रों में भी जल भर आया। यह देख आप (श्री चौथी पादशाही जी) ने दण्डवत् प्रणाम की तो श्री प्रभु जी ने स्वयं निज कर कमलों से आपको उठा कर गले से लगा लिया।

भक्त साहिबराम जी तो हत-प्रभ यह नज़ारा देखते ही रह गए। कुछ क्षण के पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भक्त साहिबराम जी को फ़रमाया—'देखा है इनका प्रेम। यह तो प्रेम के अथाह सागर हैं। इन्हें देखकर हमारा दिल प्रफुल्लित हो जाता है।' भक्त साहिबराम जी ने दण्डवत् कर विनय की—प्रभो! महापुरुषों की लीला न्यारी होती है। आपकी लीला आप ही जानें।

एक बार आपने अचानक अपनी जन्म-पत्री (टेवा) में पढ़ा कि आपने ३६ वर्ष की आयु में संन्यास लेना है। आपने सोचा ३६ वर्ष की आयु से पहले इस कार्य को पूरा कर लेना ही उचित है। लक्की मरवत् में कृष्ण-द्वारा का प्रबन्धक तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपको पहले से ही बना दिया था। आप अधिकतर समय यहीं व्यतीत करते थे; फिर भी आपने दिल में पूर्ण निश्चय कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में विनय कर शरणागति प्राप्त की। श्री सद्गुरु देव महाराज जी स्वयं समय समय पर यहाँ पधारकर नामोपदेश की अमृत धारा बहाते रहे। आपने अपने कर्त्तव्य को बड़ी योग्यता से निभाया। यहाँ लंगर तथा सत्संग का कार्य आपके प्रबन्ध में सुचारू रूप से चलता रहा। आपके बड़े भाई साहिब श्री जेठानन्द जी भी साधु प्रकृति के थे। आपको जब भी लंगर की व्यवस्था के लिए धन की ज़रूरत होती अथवा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आपको सेवा के लिये आज्ञा भेजते तो आप बड़े भाई साहिब जी की दुकान पर चले जाते। आपके बड़े भाई साहिब जी का आपके साथ अत्यधिक स्नेह था। अतः आप जितनी धन अथवा तन से दरबार की सेवा करते वे देखकर अत्यधिक प्रसन्न होते। इस प्रकार आप कई बार दुकान से कितनी कितनी धनराशि (रक़म) सेवा के लिये ले आते

परन्तु आपके भाई साहिब आपको कुछ भी न कहते, बल्कि सहर्ष यही कहते कि जितना जी चाहे स्वयं दुकान से ले जाओ ।

सन् १६२४ ई० में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पंजाब में कृपा की। कुछ समय पश्चात् उन्होंने यहाँ पर आश्रमों का निर्माण करवाया । आप दो तीन बार सीमाप्रान्त से श्री दर्शन के लिये पंजाब में आए और आज्ञानुसार कुछ दिन यहाँ रहकर पुनः लक्की मरवत् (सीमाप्रान्त) में लौट गये । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज कई बार आपको साधुवेष प्रदान करने की हुई परन्तु अन्तर्यामी प्रभु यह जानते थे कि आपने भक्त वेष में अभी बहुत से कार्य करने हैं । अतः श्री मौज को बदल देते । वैसे तो उनके दिल में आपके प्रति अत्यधिक स्नेह तथा प्रगाढ़ प्रेम था । वे सदा आपको देखते ही प्रफुल्लित हो जाते थे । कई बार उन्होंने सब के सामने ये प्रवचन फ़रमाए–"आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) हमारे दिल के टुकड़े हैं ।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सर्वप्रथम पंजाब में चकौड़ी स्थान पर दो आश्रमों का निर्माण करवाया । एक आश्रम चकौड़ी गांव में स्थित था दूसरा गांव से बाहर । गांव वाले आश्रम को उस समय प्रेमिजन 'लोक की कुटिया' तथा गांव से बाहर वाले आश्रम को 'परलोक की कुटिया' के शुभ नाम से बुलाते थे । यही 'परलोक की कुटिया' ही उस समय पंजाब का मुख्य सत्संग आश्रम 'चकौड़ी सन्त आश्रम' के नाम से विख्यात हुआ ।

एक बार सन् १६२७ में 'लोक वाली कुटिया' में सीमाप्रान्त से शरणागत, प्रेमिजन श्री दर्शन के लिये आए हुये थे । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी इस 'लोक वाली कुटिया' में विराजमान थे । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पलंग के समीप महात्मा गुरुदर्शनानन्द जी तथा अन्य कई महात्मा जन खड़े थे । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने पहले तो आपके विषय में श्री पावन सद्वचन फ़रमाए कि "ये (आप) भक्त वेष में भी साधु हैं, महान् आत्मा हैं । हम इन से अत्यन्त प्रसन्न हैं । ये सच्चे लाल हैं ।" पुनः सब महात्मा जनों को आपकी ओर संकेत

कर फ़रमाया कि इनके (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) चरण-स्पर्श (मत्था टेकना) करो। सब महात्मा जन श्री आज्ञानुसार आपके श्री चरणों पर वन्दना करने के लिये आगे बढ़े। जैसे ही आपने उन महात्मा जनों को समीप आते हुये देखा, आपने तो संकोच करते हुये यथा सम्भव कर-कमलों से तथा धोती से श्री चरण-कमल छुपा लिये। इस प्रकार से कोई भी आपके श्री चरणों को स्पर्श न कर सका।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने महात्मा जनों को पुनः फ़रमाया—सब महात्मा जन इनके चरण स्पर्श करने का भरसक प्रयत्न करें। सब ने मिलकर श्री आज्ञा अनुसार आपके श्री चरणों पर वन्दना करने का ज्योंही प्रयत्न किया त्योंही आपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख दण्डवत् वन्दना कर विनय की—"प्रभो! यह दास इस योग्य नहीं है।" श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"आप तो इससे भी बढ़कर महान् हैं। हमने आपकी नम्रता (ख़ाकसारी) का प्रत्यक्ष प्रमाण दिखाना था। किसी को तनिक सी उच्च पदवी मिल जाए तो वह हर्ष से फूला नहीं समाता। मान, अहंकार उसके सिर पर सवार हो जाता है। आपके पास तो महानता के विशेष गुण हैं। यही साधु के लक्षण तथा गुण होते हैं कि मान, बड़ाई, अहंकार का त्याग करे। आप वास्तव में ही लाल हो। आपने विनम्रता का अद्भुत आदर्श स्थापित कर दिया है।"

वास्तव में ही आप विनम्रता, सहिष्णुता तथा सेवा का अदम्य प्रमाण थे। आपके जीवन की प्रत्येक जीवन झाँकी में ये सब गुण स्वाभाविक ही झलकते हैं। आपने गुरु भक्ति के प्रत्येक नियम व सिद्धान्त को अपने आचरण में ला कर एक अनुपम आदर्श स्थापित कर दिया। आपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की प्रत्येक मौज को तन-प्राण से अच्छी तरह पूर्ण किया तथा अपने इस क्रियात्मिक जीवन से गुरु भक्ति के नियमों को प्रत्यक्ष कर दिया।

सन् १९२९ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) की मौज ग्वालियर रियासत में कुछ भूमि ख़रीदकर आश्रम निर्माण करने की हुई।

अतः उन्होंने पहले स्वयं महात्मा सत् विचारानन्द जी के साथ घूम फिर कर इस सारे क्षेत्र का निरीक्षण कर लिया। पुनः जब पंजाब में लौटे तो वहाँ खीवड़ा नमक मण्डी, तहसील पिण्ड दादनखाँ (ज़िला जेहलम) के स्थान पर कुछ शरणागतों के सम्मुख इस मौज को प्रकट किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"इस जंगल में रहने के लिए आरम्भ में अत्यधिक कष्ट सहन करने पड़ेंगे। वर्षा, सर्दी, गर्मी आदि सब कुछ झेलना होगा। जो प्रेमी ऐसी भक्ति करने के लिए तैयार हों वे वहाँ पर (श्री आनन्दपुर में) जाएँ। सब प्रेमियों ने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! आपकी कृपा ही सब कुछ करेगी। उस समय उन प्रेमी शरणागतों में आप भी थे। आपने भी यहाँ आने के लिए श्री आज्ञा चाही।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तो जानते थे कि कौन कष्टों तथा कठिनाइयों को हँस हँस कर पार कर सकता है। अतः सन् १९३० में जब यह ज़मीन ख़रीद ली गई तो आपके साथ कुछ अन्य शरणागत देकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आप को श्री आनन्दपुर आबाद करने के लिए श्री आज्ञा दी। अतः आपने श्री आज्ञा अनुसार उन शरणागतों को साथ लेकर श्री आनन्दपुर के लिये तत्काल प्रस्थान किया। आपने रामायण के इस कथन को बिल्कुल सत्य सिद्ध कर दिया कि:—

॥ चौपाई ॥

आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसाद जन पावै देवा॥

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञा में तत्पर रहना इससे बढ़कर कोई सेवा नहीं। सद्गुरु की कृपा से ही सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। अतः आपने श्री आज्ञा का अक्षरशः परिपालन किया। आप श्री आनन्दपुर से श्री आज्ञा प्राप्त करके श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन के लिए जाया करते थे। कुछ समय श्री आनन्दपुर में निवास करने के पश्चात् आप श्री आज्ञानुसार टेरी में (सीमाप्रान्त) श्री दर्शनों के लिए गए। श्री चरणों में पहुँचकर आपने श्री आनन्दपुर के विषय में कुछ थोड़ा सा वृत्तान्त श्री चरणों में प्रस्तुत किया।

आपके दिल में उच्चकोटि का प्रेम था। एक बार रात्रि समय (टेरी में एक चौबारे

पर) आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में उपस्थित थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी पलंग पर विश्राम के लिए विराजमान हुए। आपने विनय की कि प्रभो! निजी सेवा (श्री चरण-कमल दबाने के लिए) के लिए कृपा कीजिये। श्री प्रवचन हुए कि क्या हम जो भी सेवा बताएँ आप करने को तैयार हैं? आपने विनय की कि श्री कृपा की आवश्यकता है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मौज वश फ़रमाया—"एक हाथ ऊँचा (ऊपर खड़ा) करो।" आपने पावन वचनों का पालन किया। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया कि दोनों हाथ ऊँचे करो। आप श्री आज्ञानुसार दोनों हाथ ऊपर करके खड़े थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने एक लीला के रूप में करवट बदल ली और नेत्र मूँद कर यह दर्शा रहे थे कि हम विश्राम में हैं। सारी रात श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने मौजवश करवट ही न बदली। आप भी श्री आज्ञा पालन में दृढ़ संकल्प थे। अतः आप रात्रि भर दोनों हाथ ऊँचे किए हुए खड़े रहे। उस समय न आपके नयनों में नींद रही और न ही हाथ नीचे करने के लिए दिल में भावना ही उत्पन्न हुई। आप दोनों हाथ ऊँचे किये हुए श्री दर्शन के मधुर मधुर अमृत का रात्रिभर रसपान करते रहे।

जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी प्रातः उठे तो उन्होंने आपको हाथ ऊँचे किये हुए ही पाया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आपकी इस अतुल श्रद्धा तथा प्रेम को देखकर अति प्रसन्न हुये। प्रेमविभोर होकर आपके हाथों को अपने सुकोमल कर-कमलों में लेकर फ़रमाया—"तुम्हारी महानता के अनुरूप तुम्हारे गुण भी उच्च कोटि के हैं।" उस समय आपको एक दिव्य ज्योति का अनुभव हुआ तथा हृदय को अपूर्व हर्ष प्राप्त हुआ। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी का कथन है कि:—

॥ दोहा ॥

सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग।
सेवक मन से प्यार है, निसि दिन चरनन लाग॥

अर्थात् सद्गुरु के पास तो समस्त सम्पदाएँ हैं, परन्तु जीव की जितनी कमाई होती है, वह उसी के अनुसार ही इस धन को प्राप्त करता है। इसीलिये सेवक

भाव से सद्‌गुरु के चरणों में प्रीति का नाता जोड़ कर उन के श्री चरणों में अधिकाधिक अनुराग बढ़ाना चाहिये। ऐसा ही आपने करके दिखाया। त्याग, तपस्या आप के जीवन के मुख्य अंग थे।

कुछ दिन टेरी में श्री दर्शन कर आप पुनः श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर में लौट आये। यहाँ पर शरणागतों से निवास स्थान के लिये कुछ स्थान से झाड़ियाँ, तेंदू, आक, बबूल आदि कटवाकर उस साफ़ क्षेत्र पर झोंपड़ियाँ बनवाईं। सन् १९३१ में श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने शरणागतों को श्री दर्शन देने के लिये श्री आनन्दपुर में कृपा की। सन् १९३० से १९३१ तक श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी यहाँ पर कुछ और शरणागत परिवार भी भेज चुके थे। अतः अब यहाँ पर ४०–५० के लगभग परिवार श्री आनन्दपुर के आरम्भिक निर्माण के कार्य में जुटे हुए थे।

सन् १९३१ में जब श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) यहां प्रथम बार पधारे तो सब भक्त जनों ने मिल कर श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! यदि कुछ भक्त जन अलग अलग चकों पर रह कर चक आबाद करें तो आशा है कि शीघ्र ही हरियाली के चिन्ह सब जगह दिखाई देने लगेंगे। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने इन की विनय को स्वीकार कर प्रत्येक चक की सुव्यवस्था के लिए लगभग दस-बारह भक्तजनों को नियुक्त किया और उन दस बारह भक्तों में से एक भक्त को उन का मुखिया नियुक्त किया। जैसे कि (१) श्री आनन्दपुर में महात्मा योग आत्मानन्द जी (२) चक सुखपुर में महात्मा योग प्रकाशानन्द जी (३) चक शान्तपुर में महात्मा ध्यान योगानन्द जी को नियुक्त किया। यह सब उस समय अभी भक्त वेष में थे। आप (श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज) ने भक्तों के साथ जो भद्रता, शिष्टता व प्रेम का व्यवहार किया, उस से भक्त लोगों का दिल बरबस ही आप की ओर खिंच गया। अतः उन्होंने श्री चरणों में विनय की कि आप को इन सब चकों का प्रमुख (मुखिया) बनाया जाए। श्री सद्‌गुरु देव महाराज जी के हृदय में तो पहले से ही आप स्थान प्राप्त कर चुके थे। अतः उन्होंने भक्तों की विनय को स्वीकार कर आपको इन सब चकों का प्रमुख प्रबन्धक

बना दिया। आप उस समय भक्त वेष में थे।

इस से दो चार मास पश्चात् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी स्थान भखड़ेवाली ज़िला लायलपुर में विराजमान हुए। आप श्री आज्ञानुसार स्थान भखड़ेवाली में श्री दर्शन के लिए गए। वहां पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज आप को साधु वेष प्रदान करने की हुई। उन्होंने जिस कार्य की पूर्ति के लिये अभी तक आप को साधु वेष प्रदान न किया था, वह यही कार्य श्री आनन्दपुर ख़रीदने का था। अतः इस कार्य के पूरा होने के पश्चात् श्री मौज के अनुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने भखड़ेवाली में सन् १९३१ में आप को साधु वेष प्रदान कर आप का शुभ नाम श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी रखा। श्री सद्गुरु देव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अपने कर-कमलों में आप का हाथ लेकर फ़रमाया कि "ये हमारे दिल के टुकड़े हैं। यह हैं ही बेअन्त।" आप कुछ दिन भखड़ेवाली में श्री दर्शन कर श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर लौट आये।

आप कभी कभी श्री आज्ञानुसार लक्की मरवत्, डेराइस्माइलखां तथा टांक, कुलाची (सीमाप्रान्त) में भी जाते तथा वहां से सेवा ले आते जिस से श्री आनन्दपुर के शरणागतों की पूर्ति करते थे। जब आप सीमाप्रान्त में जाते तो कितने ही प्रेमी श्रद्धालु आप को अपना गृह पवित्र करने के लिए विनय करके ले जाते और अपने भाग्य मनाते थे।

एक बार एक भक्त जी ने आपको अपने गृह में भोजन करने के लिये प्रार्थना की। आप उसकी विनय पर उसके घर गये। उस भक्त जी के लड़के को तपेदिक की बीमारी थी। वह इतनी उग्र हो चुकी थी कि डॉक्टरों ने उसे असाध्य बताकर जवाब दे दिया था कि अब इसकी चिकित्सा नहीं हो सकती। वर्तमान समय की भाँति उन दिनों हर स्थान पर क्षयरोग के अस्पताल नहीं थे। डॉक्टरों के जवाब देने पर घर के सब सम्बन्धी व परिवार वालों के दिल में उस रोगी से घृणा सी आ गई थी। वह लड़का भी अपने जीवन से निराश हो चुका था। जब आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) उस भक्त जी के घर पधारे तो

दरवाज़े से अन्दर जाते ही पहले उस लड़के का कुशल क्षेम पूछने लगे कि उसे क्या है और किसलिए वह यहां सोया हुआ है ? वह लड़का आपके श्री चरणों में गिर कर रो रो कर प्रार्थना करने लगा—"प्रभो ! मुझे क्षयरोग है। डॉक्टरों ने मुझे ला-इलाज बताया है। उस के घर के सदस्य भी उसके समीप आने में सकुचाते थे। परन्तु आप उस लड़के की चारपाई पर बैठ गये और स्वाभाविक ही मधुर प्रवचनों में फ़रमाया—"तुम तो बिल्कुल ठीक हो। कौन कहता है कि तुम्हें टी० बी० हो गया है। यह तो सब मन का भ्रम है। तुम विश्वास करो कि तुम बिल्कुल ठीक हो।"

उस बालक को आप के वचनों पर विश्वास हो गया और उसने विनय की कि प्रभो ! आप मुझे दर्शन देने की कृपा करते रहिये। मैं तो अपने जीवन की आशा छोड़ चुका हूँ।" सन्त महापुरुष तो वैसे ही करुणा के भंडार होते हैं। परोपकार करना उनका प्रथम कर्त्तव्य होता है। आपने उस दिन उनके घर भोजन किया और कृष्ण-द्वारा (लक्की मरवत्) में लौट आये। इसके पश्चात् आप उसके आग्रह पर दो तीन बार उनके घर पधारे और सत्संग उपदेश दिया।

दस बारह दिनों के पश्चात् उस लड़के को चार आने लाभ हुआ तो आपने फ़रमाया कि अब तुम स्वयं आश्रम पर आ जाया करो। पहले तो वह बालक घबराया कि मैं कैसे दो मील चल कर पहुँचूँगा परन्तु उसके दिल में आप के प्रति अटूट विश्वास तथा अत्यधिक श्रद्धा थी। उसने श्री वचनों को शिरोधार्य किया और वह धीरे धीरे आश्रम पर आने जाने लगा। उस बालक को कुछ अन्न भी पचने लगा। जब आश्रम पर आता तो आप कोई न कोई सेवा उसके ज़िम्मे लगा देते। आप तो कुछ दिन पश्चात् वहां से श्री आनन्दपुर लौट आये परन्तु वह लड़का आश्रम में सेवा करते हुए दो तीन मास बाद पूर्ण स्वस्थ हो गया।

एक दिन बाज़ार में जाते हुए वही डॉक्टर जिसने उस लड़के को ला-इलाज बताया था, उसे मिला। डॉक्टर ने लड़के से पूछा—क्या तू उस लड़के का भाई तो नहीं जिसे इस मुहल्ले में क्षयरोग हुआ था ? लड़के ने कहा जी हां। फिर डॉक्टर ने पूछा—तुम्हारा वह भाई जिसे क्षयरोग हो गया था वह मर गया है या जीवित

है ? उस लड़के ने कहा कि वह लड़का मैं ही हूँ। डॉक्टर को विश्वास न आया उसने कहा कि अरे ! तुम तो पहचाने भी नहीं जाते। तुम ने कहाँ से इलाज कराया है ? उसने उत्तर दिया—डॉक्टरों की दवा से सन्तों की दुआ कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। उस लड़के ने आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) का नाम बताया जिससे डॉक्टर अत्यधिक प्रभावित हुआ और मन्त्र-मुग्ध होकर रह गया ।

आप तो कुछ दिन वहां रहकर पुनः श्री आनन्दपुर लौट आए थे। श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने आपको चकों का प्रबन्धक बनाया था । उस समय श्री आनन्दपुर तथा अन्य चकों की भूमि बंजर, उजाड़ व घने बन के रूप में थी। आपके सुप्रबन्ध में बहुत कुछ भूमि उपज योग्य बन गई परन्तु इतनी उपज न हो पाती थी कि चालीस-पच्चास शरणागत परिवारों के लिए भोजन पूरा हो सके। इसलिए आप स्वयं सीमाप्रान्त के नगरों व शहरों में जैसे लक्की मरवत्, टांक, डेराइस्माइलखां, कुलाचो, बन्नू , गुमल, सराय नौरंग और जहां जहां भी आपके श्रद्धालु थे, उनसे सेवारूप में जितना धन अथवा अन्य वस्तुएँ भेंट में मिलतीं, उस सब भेंट को आप श्री आज्ञानुसार शरणागत परिवारों की पूर्ति के लिये श्री आनन्दपुर में ले आते। श्रद्धालु भक्त आप के नाम पर मनीऑर्डर भी भेजते थे, फिर भी कभी कभी धन की बड़ी कठिनाई होती थी। क्योंकि इन चकों की भूमि अभी तक उपजाऊ नहीं बनी थी। आपने कभी भी इन कठिनाइयों का वर्णन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख न किया अपितु इन कठिनाइयों को हँस हँस कर सहन किया । कभी कभी गुरु-भाइयों में बैठकर आप प्रायः फ़रमाया करते थे कि "हम किसी काम की चिन्ता क्यों करें। हमारे सिर पर त्रिलोकीश्वर पूर्ण सन्त सद्गुरु का हाथ है । वे स्वयं चिन्ता करेंगे। हमारा कर्त्तव्य तो कर्म करना है।"

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी जब श्री आनन्दपुर में कृपा फ़रमाते, उस समय पंजाब, सिन्ध, सीमाप्रान्त, उत्तर प्रदेश व अन्य प्रान्तों की संगतें श्री दर्शन के लिये आतीं, तब लंगर का खर्च इतना बढ़ जाता कि जो उस समय की आय (आमदनी) से कहीं अधिक होता । परन्तु

आपने इस भेद को किसी को न बताया कि इतना ख़र्च कहाँ से निकल रहा है। न ही कभी इन छोटी छोटी बातों के लिये श्री चरणों में विनय की। अधिक ख़र्च होने पर आप अपने बड़े भाई से सेवा के रूप में कुछ धन मंगवा लेते। कभी कभी स्वयं भी उनके पास जाते और सेवा ले आते। आपको अपने लिए तो कुछ भी ज़रूरत न थी परन्तु परमार्थ के लिये आप मांगने से भी न सकुचाते थे।

॥ दोहा ॥

मर जाऊँ मांगूं नहिं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज ॥

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी श्री आनन्दपुर में तीन बार अर्थात् १६३१, १६३३, १६३५ सन् में पधारे। आपने हर बार सुचारू रूप से संगतों के लिए सुव्यवस्था की। जितनी अधिक संगतें आतीं उतना ही आप अधिक प्रसन्न होते थे। कभी कभी आप मौजवश श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी के इन सद्वचनों को दोहराया करते थे कि:—

ए ख़ुदा ग़ैब से रसद भेज, भेजना है तो जल्द भेज।
वे अदद भेज, खाएँ लोग खुश हो मौला ॥

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञा में तत्पर रह कर आपकी व्यवस्था में कभी कमी न आने पाई। आपका अपना निर्वाह तो बिल्कुल साधारण था। पहनने के लिये केवल दो जोड़े वस्त्रों के अपने पास रखते थे। साधारण भोजन, साधारण निर्वाह तथा भजनाभ्यास में अधिक रुचि थी। शारीरिक रूप से आप चाहे जितने भी थक जाते परन्तु दोनों समय भजनाभ्यास में अवकाश न होने देते। आप स्वयं कई बार श्री मुख से फ़रमाया करते थे कि "जो लोग भजनाभ्यास नहीं करते वे धरती पर बोझ बने हुए हैं।" आप कई बार ईंट का तकिया बना कर पृथ्वी पर ही सुख से नींद कर लेते। कई बार भक्त लोग आपको आग्रह पूर्वक कहते कि आप ज़मीन पर क्यों सोते हैं? आपके साथ यह शोभा नहीं देता। आप

यही उत्तर देते कि हमें इस धरती के बिछौने तथा ईंट के तकिये पर अधिक आनन्द आता है। और कई बार आप यह भी फ़रमाया करते थे कि साधारण जीवन में जो आनन्द होता है वह शाही ठाठ में नहीं मिलता। आप यह दर्शाते थे कि भक्ति-मार्ग में जीव को सादा जीवन व्यतीत करते हुये अपने लक्ष्य की ओर पग बढ़ाते जाना चाहिए। शारीरिक आवश्यकताएँ जितनी भी बढ़ाते जाओ यह गीले ईंधन का सुलगता हुआ धुआँ है जो कभी समाप्त नहीं होने पाता। इस विषय में पूर्ण पुरुषों के वचन हैं कि:—

॥ शेयर ॥

तो कि दर बन्द-ए खेशतन बाशी ।
इश्क बाज़ी-ए-दरोगज़न बाशी ॥
गर नशायद बा दोस्त राह बुर्दन ।
शर्त—ए इश्क अस्त दर तलब मुर्दन ॥

अर्थः—ऐ मानव ! तेरा अहंता में बंधा होना और अपने को प्रियतम का प्रेमी कहलाना यह झूठ-मूठ का ढोंग रचाना है। यदि तुझे इष्टदेव के साथ निभाना नहीं आता तो इस राह को छोड़ दे, क्योंकि प्रेम की शर्त तो यह है कि उस की चाह में अपने आप को मिटा दे। अर्थात् अपने अस्थायी अस्तित्व को (अहं को) मिटा देना ही सच्चे प्रेम को पाना है। यही सच्चा आत्म-बलिदान है, इसके बिना काम नहीं बनता। अपना अस्तित्व मिटाना अहंकार को नष्ट कर देना है।

आप में अपार सहनशीलता का गुण विद्यमान था। एक बार आपने श्री आनन्दपुर से बैलगाड़ी द्वारा अशोक नगर जाने का प्रोग्राम बनाया। महात्मा शान्त आत्मानन्द जी भी साथ थे। अशोकनगर से कुछ दूरी पर एक चक भी ख़रीदना था। उस का निरीक्षण करने के लिए भी आपने परस्पर परामर्श किया। आप अधिकतर पैदल चलना ही पसन्द करते थे। अतः कुछ यात्रा बैलगाड़ी पर कर के पुनः आप तथा महात्मा जी बैलगाड़ी के साथ साथ सड़क पर पैदल चलने

लगे। अभी अशोकनगर डेढ़ मील की दूरी पर था कि सूर्यास्त हो गया। चारों ओर अन्धकार का साम्राज्य हो गया। आप इस अन्धेरे में भी सड़क पर पैदल चल रहे थे। सड़क पर चलते हुये अचानक एक सांप आप के दाएँ श्री चरण पर लिपट गया। आपने अपने श्री चरण को झटका दिया तो सांप दूर जा पड़ा, परन्तु सांप ने श्री चरण पर डंक मार ही लिया। महात्मा शान्त आत्मानन्द जी पहले तो कुछ घबरा गये, फिर सांप को मारने के लिए इधर उधर से पत्थर बटोरने लगे, लेकिन आप ने महात्मा जी को सांप मारने के लिए मना कर दिया। महात्मा जी श्री चरण को पकड़ कर आप की टांग पर कपड़ा बाँधने लगे तथा विनय की कि आप बैल गाड़ी में विराजमान हो जाएँ। आप ने न तो कपड़ा बाँधने दिया और न ही बैल गाड़ी में विराजमान हुये। बड़े साहस तथा धैर्य से पैदल चलते गए और महात्मा जी को भी धैर्य बंधाया कि हमें कुछ भी नहीं, घबराओ मत। अशोकनगर पहुँच कर कुछ थोड़ी बहुत औषधि लगवा ली और थोड़ी देर के बाद आगे चल दिये जहाँ जाने का विचार था। चक टकनेरी (पवारगढ़) में पहुँच कर रात्रि को विश्राम किया।

आप ने हँसते हुए महात्मा जी को फ़रमाया कि किसी प्रकार की चिन्ता की ज़रूरत नहीं। यह तो होना ही था। इस में एक रहस्य था जो केवल हम ही जानते हैं। हमें किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं हो रही। रात्रि को वहीं विश्राम करके प्रातःकाल आपने आनन्दपूर्वक स्नान कर नाश्ता किया और ज़मीन देखने के लिये चल दिये। यह कितने आश्चर्य की बात है कि सांप ने डंक मारा तो भी दो घण्टे लगातार पैदल ही चलते रहे। अशोकनगर पहुँच कर भी किसी योग्य डॉक्टर को दिखाये बिना ही साधारण सी औषध लगवा कर चल दिए। आप अपने कर्त्तव्य-पालन में इतने तत्पर थे।

जब पुनः दूसरे दिन शाम को ज़मीन का कार्य कर अशोकनगर पहुंचे तो महात्मा जी की विनय पर आप ने डॉक्टर को दिखाया। उस ने सर्प का विष उतारने वाले व्यक्ति को बुला कर दिखाया। वह व्यक्ति यह देख कर दंग रह गया कि जितने विषैले सांप ने आप को डसा था, उस से तो बचना भी कठिन था। परन्तु

आप को सर्प के विष ने तनिक भी हानि न पहुँचाई। अत्यन्त आश्चर्य का विषय है यह। वह कभी श्री चरण की ओर देखता तो कभी आप के मुखारविन्द को। अन्त में उस ने आप के ज्योतिस्वरूप चेहरे को निहार कर इतना ही कहा कि जो सब के आन्तरिक विष (मोह-काम-लोभादिक) को उतारने में समर्थ हों, उन पर बाहरी विष किस प्रकार प्रभाव डाल सकता है। यह तो सन्तों की अपनी ही विचित्र लीला होती है।

जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी चकौड़ी सन्त आश्रम अथवा किसी अन्य स्थान पर विराजमान होते तो आप श्री आज्ञानुसार श्री दर्शन के लिए वहाँ पहुँच जाते। श्री दर्शन की चाह तो आरम्भ से ही आप को दीवाना बनाये रहती थी। आप स्वयं निज मुख से कई बार फ़रमाया करते थे कि "प्रेम बिना कोई जीवन है। जिस के दिल में गुरु के प्रति प्रेम नहीं, वह दिल मुर्दा के समान है। उसका जीना न जीने के बराबर है।" श्री चरनदास जी ने भी लिखा है कि:—

॥ दोहा ॥

प्रेम बराबर जोग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति बिन साधिबो, सब ही थोथा जान॥

आप असीम शक्ति, अलौकिक गुणों के आगार होते हुए भी आप ने संसार के सम्मुख प्रेम, सेवा, त्याग और सच्चाई का अद्भुत आदर्श रखा। आप के त्याग, तपस्या एवं सेवा पूर्ण जीवन के यदि एक अंग को लेकर भी कोई आचरण करे तो क्या से क्या बन जाये।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने आप को कितना ही सेवा सम्भार सौंपा परन्तु आप ने सहर्ष सब श्री आदेशों को शिरोधार्य करके उन्हें प्राणपन से पूरा किया। ज़रा भी घबराये नहीं, चाहे जितने भी कष्ट आपको इस मार्ग में सहन करने पड़े। आपने तनिक भी परवाह न की। आप में साधुत्व के गुण पूर्ण रूप से भरे हुये थे। श्री आनन्दपुर की भूमि ख़रीदने पर आरम्भ काल

में यहाँ आप को कई बार भोजन भी प्राप्त न होता था। कितने कितने दिन स्नान के लिए पानी न मिलता। जिन दिनों शरणागत परिवारों की आवश्यकता पूर्ति के लिए आप कई बार सीमाप्रान्त में सत्संग उपदेश करके सेवा (धन) लाते तो उन दिनों रात्रि को विश्राम तक भी नहीं करते थे, परन्तु आप के मस्तक पर कभी भी किसी ने कोई चिन्ता, घबराहट अथवा थकावट की रेखा तक न देखी। आप सन् १९३० से १९३६ तक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के समय में श्री आनन्दपुर व सब चकों के प्रबन्धक बने रहे। आप दुःख-सुख, कष्ट-कठिनाइयों में एक समान रहते थे। क्योंकि भक्ति का ध्येय ही यही है:—

॥ दोहा ॥

भक्ति भाव भादों नदी, सबै चली घहराय।
सरिता सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय॥

अर्थात् सावन, भादों में तो सब नदियां पानी से भर कर इतराती हुई चलती हैं। प्रशंसनीय तो वह नदी है जिस में ज्येष्ठ मास में भी पानी रहे। अर्थात् तब तक भक्ति-श्रद्धा की भावना तो सब में विद्यमान रहती है जब तक कि सुख-सम्पदा के सब सामान मिलते रहें परन्तु विघ्न बाधाएँ आने पर भी जिस में श्रद्धा, विश्वास तथा प्रेम सुदृढ़ रहता है वही भक्तिमान् पुरुष ही प्रशंसनीय है। इस के अनुसार ही था आप का जीवन।

सन् १९३२ में एक बार आपने चक बड़ौता की भूमि (जो कि ज़िला शिवपुरी में है) का निरीक्षण करने जाना था। साथ में महात्मा शान्त आत्मानन्द जी भी थे। यात्रा के लिए बैलगाड़ी तैयार करवा कर सायं चार बजे श्री आनन्दपुर से प्रस्थान किया। बैलगाड़ी को महात्मा ध्यान अनादानन्द जी चला रहे थे। रात्रि समय ईसागढ़ से १३ मील की दूरी पर गांव पीरौंट में ठहरना पड़ा। महात्मा शान्त आत्मानन्द जी दुकान से आटा तथा अन्य सामग्री लाए और भोजन बनाने के कार्य में लग गए। महात्मा ध्यान अनादानन्द जी बैलों को चारा खिलाने के लिए गए। आप एकान्त में जाकर भजनाभ्यास के लिए बैठ गये। भोजन डेढ़

घंटे में तैयार हो गया। जब आप भजनाभ्यास से उठे तो महात्मा जी ने भोजन के लिए आग्रह पूर्वक विनय की। यद्यपि सूखी शुष्क रोटी और उबली हुई सब्ज़ी थी परन्तु आपने इस भोजन को अत्यधिक प्रशंसा करते हुए फ़रमाया कि "आज तो भोजन अत्यधिक स्वादिष्ठ है। रोटी में बहुत मिठास है क्योंकि वह प्रेम से बनाई गई है।"

भोजन से निवृत्त होकर भूमि पर चटाइयां बिछा कर सो गए। प्रातः चार बजे उठ कर यात्रा आरम्भ की। मार्ग में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आरति तथा उनके गुणानुवाद गाते हुए पचावली नदी पर पहुँचे। अब नाश्ता के लिए रात को जो रोटी बच गई थी उसी को ही सबमें बाँट कर और स्वयं आधा फुलका खाकर नदी का पानी पी लिया। महात्मा जी ने विनय की—"प्रभो! ताज़ा भोजन बना लिया जाये।" आपने फ़रमाया—"हमें तो आज इस भोजन में बहुत आनन्द आया है। अच्छे से अच्छे स्वादिष्ठ भोजन खाये होंगे परन्तु इतना रस कभी नहीं आया।" बैलों को भी चारा आदि खिलाने का आदेश दिया। इसके पश्चात् फिर चल दिये। सायं पाँच बजे कोलारस पहुँचे। आपने फ़रमाया—चक देख आवें, बाद में खाना बनाना। यद्यपि दिन भर के भूखे शरीर में थकावट भी थी परन्तु दिल में एक ही भावना थी कि इस शरीर से जितनी अधिक से अधिक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा हो जाए उतना ही अच्छा है। इसीलिए बिना कुछ खाए-पीये बड़ौता चक देखने चले गए।

रात्रि समय काफ़ी अन्धेरे में वापिस आने पर आप एकांत में भजनाभ्यास में मग्न हो गये। महात्मा जी भोजन बनाने लगे। आप जब भजनाभ्यास से उठे तो उसी प्रकार आनन्द से सूखी रोटी व दाल का भोग लगाया। आप बार बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का धन्यवाद करते कि परम पवित्र सेवा का सुअवसर तो मिला है। इस समय सुकोमल शरीर की परवाह न करते हुए आप ने सेवा को जीवन का ध्येय बनाया हुआ था। इस प्रकार दो तीन दिन के पश्चात् सम्पूर्ण कार्यक्रम को पूर्ण करके श्री आनन्दपुर लौट आये।

वास्तव में आप का जीवन सर्वसाधारण के लिये एक आदर्श है कि इतने महान् होते हुये भी साधारण मनुष्यों की तरह जीवन निर्वाह करते रहे। आपने इन सब कष्टों को मुस्कराते हुये पार किया। आप के मुखमण्डल पर हर समय मुस्कराहट खेलती थी। आपने आरम्भ में श्री आनन्दपुर में नये आए हुये शरणागत परिवारों के साथ घने जंगल में इतने प्यार से व्यवहार किया कि उन को यह अनुभव ही नहीं होने दिया कि हम निर्जन सघन जंगल में बैठे हैं अथवा किसी घनी आबादी वाले नगर में। आप प्रायः अपनी भक्त मण्डली में फ़रमाया करते थे कि किसी को यदि गुड़ नहीं दे सकते तो गुड़ वाली बातें कर लेने में क्या कोई मूल्य लगता है ?

अर्थात् आप ने यह दर्शाया कि मधुर वाणी प्रत्येक दुःख की औषधि है। किसी बीमार के साथ मीठी वाणी में दो शब्द बोल दिये जायें तो उसका दुःख दूर हो जाता है। महापुरुषों का कथन हैः—

॥ दोहा ॥

तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर ।
वशीकरण यह मंत्र है, परिहरु वचन कठोर ॥

आप ने शरणागत परिवारों के साथ जो सुजनता व प्रेम का व्यवहार किया वह सराहनीय है। सभी शरणागत प्रेमी आप को एक दिव्य पुरुष ही समझते थे। आप के व्यवहार ने उनके दिल में गुरु-भक्ति व गुरु-सेवा की उच्च भावनाएँ भर दीं। आपके सदाचरण का प्रभाव उन शरणागतों के जीवन पर ऐसा पड़ा कि सभी शरणागत गुरु-आज्ञा एवं गुरु-सेवा में आस्थापूर्वक तत्पर रहने लगे।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने सन् १९३६ में अपने भौतिक श्री विग्रह को समेट लिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के रूप में पारमार्थिक सिंहासन पर प्रकट हुए, फिर भी आप (श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज) का प्रेम उनके प्रति तनिक भी कम न हुआ अपितु उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। आप ने सेवा, त्याग तथा आज्ञा पालन का उसी अटल

नियमानुसार पालन किया। आपने प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य किया और उसे पूरा करने में सदा तत्पर रहे। आप को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने श्री आनन्दपुर के अधिकांश कार्य का व्यवस्थापक बना दिया। आप ने सब सेवाओं को प्राणपन से पूर्ण किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी सन् १९३९ में स्थायी रूप से श्री आनन्दपुर में विराजमान हुए। जिन कार्यों के लिए उन्होंने आप को प्रमुख प्रबन्धक बनाया, उनकी गिनती करना कठिन है। सारांश में इतना ही कहा जा सकता है कि श्री आनन्दपुर से सम्बन्धित सभी कार्य-व्यवहार आप के ही सुपुर्द थे।

प्रथम तथा मुख्य कार्य आपको रेलवे स्टेशन अशोकनगर में बाहर से आने वाली संगत, प्रेमी जिज्ञासुओं की सुव्यवस्था का कार्य भार सौंपा गया। आप अधिकतर अशोकनगर में रहने लगे। दो या तीन दिन पश्चात् आप श्री आनन्दपुर में आते और श्री दर्शन भी करके चले जाते और श्री चरणों में सब कार्य-व्यवहार के विषय में विनय भी कर जाते। वैसे तो कोई भी दिन खाली न जाता जबकि दो-चार-छः व्यक्ति प्रतिदिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री दर्शन के लिए न आते हों। विशेषकर जब पर्व होते अर्थात् वैशाखी, व्यास-पूजा, जन्माष्टमी, दीपावली तथा माघी–इन त्यौहारों पर सर्व प्रथम सभी संगतें अशोकनगर रेलवे स्टेशन पर उतरती थीं। संगतें भी दिन प्रतिदिन अधिक बढ़ रही थीं। अशोकनगर से श्री आनन्दपुर तक सब संगतों को बसों द्वारा आना होता था। बसों की प्रतीक्षा के लिए पहले संगत को स्टेशन पर ही बैठना पड़ता था, परन्तु आपने रेलवे स्टेशन के समीप ही एक छोटा सा कमरा किराये पर ले लिया जिससे उन्हें असुविधा न हो। अधिक संगत बढ़ जाने पर रेलवे स्टेशन से एक फ़र्लांग की दूरी पर श्री चरणों में विनय करके श्री आज्ञानुसार आपने एक आश्रम का निर्माण करवाया जिसमें भोजनशाला, स्नानगृह तथा संगतों के विश्राम के लिए खुला स्थान बनवाया। इस स्थान पर बिजली, पानी व आराम के लिये हर प्रकार से प्रबन्ध करवाया। इस स्थान के बनने के पश्चात् भी आप त्यौहारों के दिनों में तथा वैसे भी एक दो भक्त स्टेशन पर भेज देते जो आई हुई संगतों को सुगमता से आश्रम

पर ले आते। आई हुई संगत को भोजन खिलाना, बसों पर बैठा कर श्री आनन्दपुर भेजना इत्यादि यह सब प्रबन्ध आपकी ही निगरानी में सुचारू रूप से चलता था। आपकी मधुर वाणी तथा सुचारू व्यवस्था से रेलगाड़ी में थकी संगत के अशोक नगर आश्रम पर पहुंचते ही उनकी थकान दूर हो जाती। सब संगत सुखपूर्वक श्री आनन्दपुर पहुँच जाती तो आप सब से अन्त में श्री आनन्दपुर में पधारते। पर्व के पश्चात् भी संगतें जब लौटतीं तो आप उन को रेलगाड़ी में बैठाने तक का पूरा पूरा प्रबन्ध करवाते। इस प्रकार की सुव्यवस्था को देख कर सब का दिल अनायास ही आपकी ओर खिंच जाता तथा सब संगत श्री दरबार के गुणानुवादों को गाती हुई घर लौटती। नवम्बर १६३६ से अप्रैल १६६४ तक गुरु-गद्दी पर आसीन होने के समय तक यह काम आपने बड़ी कुशलता से निभाया।

इस आश्रम का निर्माण होने से प्रेमी गुरुमुखों को एक महान् लाभ यह भी हुआ कि कुछ प्रेमी परिवार जो कि शरणागत नहीं थे, सन् १६४७ के देश विभाजन के समय जब कि लोग केवल अपनी जान बचा कर ही भारत में पहुँचे तो उस समय किसी को कुछ समझ ही न आता था कि अब कहां रहें और क्या किया जाये। हृदय दुःखों का घर बन चुका था। उस समय उन कई गुरुमुख परिवारों ने अशोकनगर में ही निवास किया। आपने (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) आश्रम के बाहर साथ ही ज़मीन ख़रीद कर मकान बनवाये। इन परिवारों के लिये सब प्रकार की सुख-सुविधा का प्रबन्ध कर दिया जिससे दुखित हृदयों ने सुख की सांस ली। उन के लिये दोनों कार्य पूर्ण हो गये। एक तो दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्थान मिल गया। दूसरा श्री आनन्दपुर के समीप होने के कारण आत्मिक-आनन्द की प्राप्ति भी सुलभ हो गई। उन्होंने आपका कोटि कोटि धन्यवाद किया और कर रहे हैं। इन सब पर आपके व्यक्तित्व का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि जब कभी किसी कार्यवश आप श्री आनन्दपुर न जा सकते तो आप के श्री दर्शन के लिए अशोकनगर के प्रेमिजन आश्रम पर आकर आपको अपना गृह पवित्र करने के लिए अपने घर ले जाते। आपके द्वारा बनाए गए नियमों का पालन आज तक अशोकनगर में उसी

परम्परागत सुव्यवस्था का अन्य महात्मा जनों द्वारा हो रहा है।

आप अशोकनगर आश्रम में प्रबन्धक थे तथा कभी कभी श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर से बाहर अन्य सत्संग आश्रमों (अर्थात् देहली, यू० पी०, पंजाब, हरियाणा, श्री नगर आदि) पर निरीक्षण के लिये जाते। वहां पर कुछ प्रवचन भी फ़रमाते। आपके वचनामृत का रस पान कर प्रेमी जन मुग्ध हो जाते और श्रद्धा अनुसार पत्र पुष्प भेंट करते। श्री आनन्दपुर दरबार के कई महात्मा जन व बाइयां यहां से चलते समय श्रद्धा पूर्वक कुछ सेवा (धन) भेंट करते। कई प्रेमी भक्त आप के नाम पर मनीआर्डर भी भेजते। आप इस सारी सेवा को गुप्त रूप से श्री आनन्दपुर के प्रबन्धक महात्मा योगात्मानन्द जी को दे देते। वैसे तो प्रत्येक सेवक की यही अभिलाषा होती है कि यह सेवा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में स्वयं भेंट की जाए, परन्तु आप प्रायः यही फ़रमाया करते थे कि यह श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की अपनी देन है। दिखावा करने की ज़रूरत नहीं। उन की कृपा से ही सेवा आ रही है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) भी प्रायः जब आपको सम्मुख देखते तो कई बार श्री प्रवचन फ़रमाया करते थे कि आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज) विनम्रता, सहनशीलता, त्याग एवं सेवा के साक्षात् आदर्श हैं। आप श्री प्रवचनों को श्रवण कर दण्डवत् वन्दना कर विनय करते—"प्रभो! आप की कृपा सदा बनी रहे, हम तो सेवक हैं।"

आपकी जीवन झलकियों में जो महानता झलकती है उसका अधिकांश भाग पीछे दिया गया है। यहाँ भी श्री आज्ञा-पालन के विषय का एक प्रमाण प्रस्तुत है। देखने में तो चाहे यह बातें छोटी मालूम होती हैं, ये ऐसे महान् व्यक्तित्व के अनुरूप कोई अधिक विशेषता नहीं रखतीं, परन्तु छोटे छोटे गुण ही मिल कर महानता का प्रमाण बनते हैं। हम आपकी जीवन-झलकियों पर विचार कर अपने अन्तर्मानस में झाँक कर देख सकते हैं कि क्या इनमें से कोई गुण हमारे अन्दर भी विद्यमान है या नहीं? यदि नहीं तो महापुरुषों की गुणावलियाँ ही हमें

प्रोत्साहन देने का विशेष कार्य करती हैं। उन्हें पढ़ कर मनुष्य के हृदय में ऐसा करने के लिये लगन जागरूक होती है। यह लगन जब तीव्र रूप धारण कर लेती है तो इन्सान उन कर्त्तव्यों के पालन करने में लग जाता है। वह भी गुरु भक्ति के पथ पर अग्रसर हो जाता है और मंज़िल पर सुगमता से पहुँच सकता है। यह उदाहरण आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) के जीवन चरित में श्री आज्ञा-पालन एवं सहनशीलता के सम्बन्ध में है।

एक बार आप श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की श्री आज्ञानुसार किसी सरकारी कार्य के लिए गुना गए। अभी आपने उस कार्य को पूरा ही नहीं किया था कि इधर श्री आनन्दपुर से श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने गुना में आप को यह श्री आज्ञा भेजी कि रात्रि तक श्री आनन्दपुर अवश्य पहुँच जाएँ, यहाँ कोई आवश्यक काम है। जब आपको यह श्री आज्ञा मिली तो अभी गुना का सरकारी काम जिसके लिए श्री आज्ञा मिली थी वह भी करना अभी शेष था और साथ ही शीघ्र श्री आनन्दपुर पहुँचने के लिए श्री आज्ञा आ गई। आप शीघ्रता से सरकारी कार्यालय में गये और काम किया। इधर रेलगाड़ी का समय भी हो चुका था। आप कार्यालय से स्टेशन तक पहुँचने के लिए रेलवे लाईन के साथ छोटे मार्ग की ओर से तेज़ तेज़ क़दम रखने लगे। मार्ग में रेलवे की राख जिसमें जलते हुए अंगारे भी थे, लाईन के किनारे पड़ी थी। शीघ्रता के कारण आप को कुछ पता न चला और आपका एक श्री चरण-कमल राख के ऊपर आ गया—एक दम ही नीचे के अँगारों से आपका सुकोमल चरण-कमल कुछ झुलस गया तथा पीड़ा होने लगी। परन्तु आपने इसकी परवाह न की। थैले में से एक कपड़ा निकाल कर पांव पर बांध लिया और स्टेशन पर पहुँच कर रेलगाड़ी पकड़ी और अशोक नगर जा पहुँचे। यहाँ पर किसी प्रेमी ने प्रार्थना की कि पहले आप श्री चरण-कमल की चिकित्सा (इलाज) कर लीजिये—कल प्रातः श्री आनन्दपुर चले जाना। परन्तु आपको उस समय श्री आज्ञा मुख्य थी। अतः आप बिना कुछ कहे श्री आनन्दपुर की बस में बैठ कर श्री आनन्दपुर पहुंच गये।

रात्रि के समय जब श्री दर्शन खुलने का समय हुआ तो आप श्री दर्शन

खुलने से पहले ही दर्शन हॉल में जा बैठे ताकि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को पता न चल सके। जब श्री दर्शन खुले तो आपने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में उस सेवा कार्य का सब वृत्तान्त प्रस्तुत किया। आप का प्रयत्न यह था कि पांव के जल जाने के विषय में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को पता न चले तो अच्छा है। परन्तु जब वहां से लौटने लगे तो किसी प्रेमी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में आपके पांव के जलने के विषय में संकेत कर दिया। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपको पुनः बुलवाकर प्रवचन फ़रमाए कि इतनी क्या जल्दी थी यहां पहुँचने की। पहले चिकित्सा करवा लेते। हमें आपकी सहनशीलता देखकर अचम्भा हो रहा है कि आपने उफ़ तक नहीं की। आपने विनय की प्रभो! यदि चिकित्सा पहले करवाई जाती तो श्री आज्ञा का पालन कैसे होता। इस शरीर पर तो यों ही कष्ट आते रहते हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया--"अच्छा! अशोकनगर में पहले इसे ठीक कराओ। जब तक पूर्ण ठीक न हो जाओ तब तक किसी कार्य को नहीं करना।" साथ में महात्मा विचार प्रकाश आनन्द जी को भी सेवा में भेज दिया। आपने श्री आज्ञानुसार अशोकनगर में जाकर चिकित्सा करवाई। महात्मा विचार प्रकाशानन्द जी ने बड़े हितचित्त से आप की सेवा की। जिस डॉक्टर ने आपके श्री चरण की चिकित्सा की, उसने आपकी सहनशीलता की अत्यन्त सराहना की। कुछ दिन बाद स्वस्थ होकर पुनः आप सेवा में जुट गए।

अब विचार किया जाये तो कितनी अदम्य सहनशीलता का गुण है यह। आप ने इससे यह दर्शा दिया कि गुरुभक्ति शारीरिक दुःखों से ऊपर उठकर ही की जा सकती है। यदि किसी भी वस्तु में ध्यान चला जाए अर्थात् शरीर में, मन में अथवा धन आदि में तो भक्ति का पथ दूर हो जाता है। मन, वचन, कर्म तथा पूर्ण लगन के साथ गुरुभक्ति की प्राप्ति होती है।

जब भी कोई यात्री किसी अन्य गांव में पैदल चलकर पहुँचना चाहता है तो उसे मार्ग में ऊँची नीची भूमि, धूप, गर्मी, थकान सब कुछ सहन करना पड़ेगा। यदि वह चाहे कि मैं दूसरे गाँव में भी पहुँच जाऊँ और मुझे मार्ग की कठिनाइयों

को भी पार न करना पड़े तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। इसी प्रकार भक्ति मार्ग में भी अनेकों कष्ट आते हैं। सर्वप्रथम तो बाधक है शरीर। यह भक्ति पथ पर चलने के लिए बाधाएँ डालता ही रहता है। इस शरीर और मन से ऊपर उठकर भक्ति करना ही भक्ति मार्ग की सिद्धि है। क्योंकि सन्त दयाबाई जी ने अपनी वाणी में कहा है:—

॥ दोहा ॥

आप मरन भय दूर करि, मारत रिपु को जाय।
महा मोह दल दलन करि, रहै सरूप समाय ॥

अर्थात् अपनी मृत्यु का भय दूर करके अपने शत्रुओं को मारना है। जब मोह आदि शत्रु दूर हो जाएँगे तो उस परमात्म-स्वरूप में मिल जाएगा और अमर पद प्राप्त होगा।

इस प्रकार से आप शारीरिक कष्टों की परवाह न करते हुए अन्तिम समय तक परमार्थ के कार्य को कुशलता से निभाते रहे। सन् १६३६ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने आपको ग्वालियर राज्य में स्थित सभी अधिकृत चकों का मुख़्तयारे आम (Attorney general) बनाया। इसके पश्चात् सन् १६५४ में श्री आनन्दपुर ट्रस्ट बन जाने पर ट्रस्ट से सम्बन्धित सब कार्यों का मुख्य प्रबन्धक आप को ही बनाया। इसके अतिरिक्त जब भी जिस सेवा के लिए श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी आप को फ़रमाते, आप उसी को ही पूर्ण करने में संलग्न हो जाते। वैसे तो श्री आनन्दपुर की प्रत्येक सेवा में आप भाग लेते, परन्तु श्री आनन्दसर की सेवा में आप ने विशेष भाग लिया।

सन् १६६० में दीपावली के पर्व पर जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की मौज श्री आनन्दसर को शीघ्र बनवाने की हुई तो आप (श्री चौथी पादशाही जी) स्वयं भी श्री आनन्दसर के तट पर पूरा पूरा दिन विराजमान रहते थे और सब सेवक (श्री आनन्दपुर के स्थायी तथा बाहर से आये हुये) अपने धन्य भाग्य मनाते हुए इस सेवा में जुटे हुये होते। उन सब सेवकों को अलग अलग कामों पर लगाना अर्थात् सीमेंट, बजरी, चूना, मिट्टी आदि सब

मैटीरियल बाहर से मंगवाना, प्रत्येक काम में आई हुई बाधा को दूर करना, घूम फिर कर सब काम देखना, इन सब कामों की ज़िम्मेवारी आप पर थी। अशोकनगर के भी आप ही प्रबन्धक थे। वहाँ पहले-पहल आप दूसरे या तीसरे दिन काम की देख-रेख के लिये जाया करते थे, परन्तु जब श्री आनन्दसर का सम्पूर्ण कार्य भी आप को सौंप दिया गया तो पूरे श्री आनन्दसर का फर्श बनने तक आप ने अत्यधिक ध्यान श्री आनन्दसर की ओर दिया। इस समय में आप ने कभी आराम नहीं किया। भोजन भी दोपहर के समय श्री आनन्दसर के किनारे बैठकर कर लिया करते। रात्रि को काम समाप्त होने पर सब से अन्त में अपने निवास स्थान पर जाते और दूसरे दिन प्रातः सब से पहले श्री आनन्दसर पर आ जाते। जब तक पूरा श्री आनन्दसर तैयार नहीं हुआ तब तक आप ने अपने आराम की परवाह न की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री आज्ञानुसार सब काम पूरी ज़िम्मेवारी से करते रहे। नवम्बर १६६० से अप्रैल १६६२ तक डेढ़ वर्ष में श्री आनन्दसर का नीचे का फ़र्श पूरा बन कर तैयार हुआ। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इस कार्य को पूरा हुआ देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपको किसी आवश्यक कार्य के लिये जालन्धर जाने की आज्ञा प्रदान की। आपने श्री आज्ञानुसार श्री आनन्दपुर से जालन्धर के लिये प्रस्थान किया। उन्हीं दिनों में जन्माष्टमी का पर्व भी समीप ही था। वहाँ पहुँच कर उस कार्य को करने में कुछ समय अधिक लगना था अतः आपको जन्माष्टमी का पर्व वहाँ ही बिताना पड़ा।

आप श्री आज्ञापालन में भी दृढ़ थे तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में आपका प्रेम भी उच्च स्तर का था। अतः जब आप श्री आनन्दपुर में पहुंचे तथा श्री हुज़ूरी में उपस्थित हुए तो आपको देखते ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने फ़रमाया—"आप आ गए हैं ?" इतना सुनते ही आपके नयनों से प्रेमवश अश्रु प्रवाहित होने लगे। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में महात्मा विचार परमानन्द जी भी खड़े थे। उन्होंने

दिल में सोचा कि शायद इस बार आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी) ने श्री आनन्दपुर से बाहर पर्व बिताया है इसीलिए प्रेमाश्रु बहा रहे हैं। इतने में श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने आप से पुनः पूछा—क्या जन्माष्टमी का पर्व आपने जालन्धर में किया है ? आपने विनय की कि प्रभो ! आपकी कृपा से श्री आनन्दपुर में पावन जन्माष्टमी के पर्व पर हुईं सभी अनुपम लीलाएँ देखीं व श्री दर्शन हमने वहीं बैठे बैठे उसी दिन रात्रि समय किये। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने मुस्कराते हुए फ़रमाया "आप से पहले ही क्या छिपा है।"

महात्मा विचार परमानन्द जी यह सब देखकर चकित रह गये कि एक ओर तो श्री आनन्दपुर का दिव्य दृश्य देखा तथा दूसरी ओर नयनों से प्रेमाश्रु प्रवाहित हो रहे हैं। सत्य तो यह है कि आप जन्म-जात अवतारी विभूति होते हुए भी प्रेम तथा श्री आज्ञा का अलभ्य आदर्श स्थापित कर रहे थे। आपने यह भक्ति-पथ के अभिलाषियों को दर्शा दिया कि प्रेम का सम्बन्ध हृदय से होता है। सच्चे प्रेम में वह शक्ति है जो लाखों करोड़ों कोस की दूरी पर बैठे हुये स्वयमेव आकर्षित करती है तथा वह अपने इष्टदेव के समीप होता है। आवश्यकता है केवल सच्चे प्रेम की। पुनः आप ने कार्य व्यवहार के विषय में श्री चरणों में विनय की।

इस प्रकार आप श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी तथा श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की प्रत्येक श्री मौज और श्री आज्ञा का बड़ी श्रद्धा व निष्ठा से परिपालन करते रहे। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के आप दिल के टुकड़े थे और श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के परम सखा, परम स्नेही तथा हृदय से प्यारे थे। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के दिल में आप के प्रति अत्यधिक सम्मान था। क्योंकि महान् आत्माओं का परस्पर पुरातन आत्मिक सम्बन्ध होता है। वे परस्पर स्वात्मदर्शी होने के कारण एक दूसरे को पहचानते हैं परन्तु यह रहस्य समय आने से पूर्व किसी पर प्रकट नहीं करते अपितु रहस्य प्रकट होने से पहले तक वे सर्व साधारण की तरह अर्थात् सब से घुल मिल कर रहना, गुरु-भक्ति

के नियमों का परिपालन सेवक की न्याईं करना तथा किसी के सम्मुख अपने आप को बड़ा अनुभव न कराना, इस तरह से अपने गुणों को गुप्त रूप में रखते हैं। फिर भी विलत्त्रण पुरुषों की विलक्षणता उन के प्रत्येक कार्य में झलकती है। इस विलत्त्रणता के ज्ञान का उन के वास्तविक रूप में प्रकट होने से पहले कभी कभी अनुभव तो होता है परन्तु आकाश में कौंधती हुई बिजली की तरह। जब वे अपने यथार्थ रूप में प्रकट होते हैं तो निर्मल विशाल नील गगन में देदीप्यमान भास्कर की भाँति उनके वही गुण प्रत्यक्ष होते हैं। ऐसे महापुरुषों की परम्परा में ही था आप का अति दिव्य जीवन।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी आप को उच्च दृष्टि से देखते थे तथा परमार्थ पथ के शिरोमणि जानते हुये भी उन्होंने किसी के सामने इस रहस्य को प्रकट न किया। जैसे कि महापुरुषों के नियम होते हैं, इनका इल्म सीना-ब-सीना एक दिल से दूसरे दिल तक पहुँचता है परन्तु वे अपनी रूहानी शक्तियां गुप्त रूप से ही दे देते हैं। इसी नियम के अनुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) की श्री मौज अपना स्थूल शरीर समेट लेने की हुई तो उन्होंने लगभग छः मास पूर्व ही इस कार्य को इस प्रकार से सम्पन्न कर दियाः—

अक्टूबर सन् १९६३ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी पारमार्थिक केन्द्र नया गांव (श्री प्रयागधाम) में विराजमान थे। अपनी श्री मौज के अनुसार उन्होंने २८ अक्टूबर १९६३ को महात्मा दर्शन अलखानन्द जी को फ़रमाया कि तार द्वारा शीघ्र ही आप (श्री चौथी पादशाही जी महाराज) को तथा महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को बुलवाओ। महात्मा जी ने श्री आज्ञा शिरोधार्य की और आप दोनों को तार भेज दिया। आप उस समय किसी कार्य के लिये गुना गए हुए थे। श्री आनन्दपुर तार पहुँचने पर आप को फ़ोन द्वारा गुना में सूचना भेजी गई। आपके पास उस समय (गुना में) केवल पहने हुये वस्त्रों के अतिरिक्त और कोई भी वस्त्र न था। फिर भी आप श्री आनन्दपुर नहीं आये। वहीं से ही श्री

आज्ञा की सूचना पाते ही नया गांव के लिये प्रस्थान किया। इधर महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी भी श्री आनन्दपुर से नया गांव के लिये विदा हो गये। ३० अक्टूबर १९६३ को आप तथा महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी नया गांव में श्री चरणों में उपस्थित हुए। ३१ अक्टूबर १९६३ को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने रूहानी उत्तराधिकारी के लिये आप के विषय में प्रवचन फ़रमाये जिन का विवरण श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के जीवन चरित्र में दिया जा चुका है। आप को रूहानी दात उसी दिन ही एकान्त में बुला कर बख़्श दी और रुहानियत के सब रहस्य भी समझा दिये।

रूहानी-जानशीनी

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने आध्यात्मिक मार्ग के नियमानुसार परिनिर्वाण से छः मास पूर्व ३१ अक्टूबर सन् १९६३ को श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज को समस्त रूहानी रहस्य समझा दिए। इसी दिन श्री तीसरी पादशाही जी महाराज ने एक दिल से दूसरे दिल अर्थात् सीना-ब-सीना इल्म की रीति को पूरा किया। श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज को सर्वगुण सम्पन्न जान कर उन्हें रूहानी दात प्रदान की। इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी अपनी श्री मौज के अनुसार ११ अप्रैल सन् १९६४ तदनुसार ३० चैत्र सम्वत् २०२० को निज स्वरूप में लीन हुए। अतः उनके श्री पावन वचनों को सब के सम्मुख प्रकट करने के लिए १४ अप्रैल सन् १९६४ को श्री आनन्दपुर में सब संगतों को बड़े सत्संग हॉल में एकत्रित कर के श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री पुनीत वचन (अर्शाद) सुनाए गए।

उस समय बड़े हॉल कमरे में सब संगतों के अतिरिक्त श्री आनन्दपुर के मुख्य प्रबन्धक, श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के साथ रहने वाले सेवादार तथा समस्त श्री आनन्दपुर निवासी भी थे। सब के सम्मुख महात्मा दर्शन अलखानन्द जी तथा महात्मा सुखसागरानन्द जी ने भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री मुख

से फ़रमाये गए पुनीत वचन जो उन्होंने २८ अक्टूबर सन् १६६३ को सेवादारों को श्री प्रयागधाम में समझाये थे, वे सुनाये। उन्होंने बताया कि:—

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने २८ अक्टूबर सन् १६६३ को नया गांव (श्री प्रयागधाम) में अन्दर के सेवादारों को बुलाकर निजी मौज में यह फ़रमाया कि "यह रूहानी सिलसिला युग-युगान्तरों तक चलता रहेगा। दो महात्मा हमने चुने हैं, ये सत्संग का काम हमारे बाद संभालेंगे। समय आने पर सब को विदित हो जाएगा। कोई भी दुःखी न हो।"

इन श्री वचनों को सुनकर सब सेवादारों की आँखों से आँसू बहने लगे। श्री मुबारिक अर्शाद हुए कि धैर्य रखो, हम तुम्हारे अंग संग हैं।

इसके पश्चात् महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी ने खड़े होकर फ़रमाया कि जो श्री प्रवचन इन महात्मा जनों ने सुनाए हैं, इनका पूरा विवरण श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने हमारे सामने ३१ अक्टूबर सन् १६६३ को दिया। श्री वचन हुए थे कि:—

परमार्थ का काम करना है। तुम सब ने हमारी बहुत सेवा की है। हम आप से प्रसन्न हैं। पुनः निम्नलिखित अरशाद फ़रमाये:—

१. हमारे बाद हमारे रूहानी जानशीन (उत्तराधिकारी) महात्मा बेअन्त आनन्द जी होंगे जो रूहानी गद्दी को चलाएंगे।

२. श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के तैयार होने पर सब संगत प्रातःकाल 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' में आरति-पूजा करेगी और सायं समय सभी प्रेमी गुरुमुख श्री समाधि जी पर आरति पूजा किया करेंगे।

३. आप (श्री स्वामी जी श्री चौथी पादशाही जी महाराज को सम्बोधित करते हुए फ़रमाया) दोनों समय आरति पूजा में सम्मिलित हुआ करें। आपका आसन चौकी पर साथ ही बना दिया जायेगा। यही नियम भविष्य में चला करेगा।

अन्त में यह भी फ़रमाया कि श्री समाधि श्री आनन्दसर की सीमा के अन्दर

श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के पश्चिम में होगी जहाँ पर निशान लगवा दिया है, घबराना नहीं। ये सब बातें हमारे पश्चात् प्रकट करनी हैं।

इसके पश्चात् २० अप्रैल सन् १९६४ तदनुसार ८ वैशाख सम्वत् २०२१ सोमवार रामनवमी के शुभ दिन विधिपूर्वक रूहानी जानशीनी के लिये दिन निश्चित किया गया।

आबालवृद्ध सभी प्रेमी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के इस वज्रपात के कारण विरह-विह्वल हो रहे थे। उन्होंने इन सब श्री आदेशों को हृदय को धैर्य बँधाते हुए सुना। उन्हें निराशा तथा असीम शोक सागर में आशा की एक किरण फूटती हुई दिखाई दी। तत्पश्चात् सब ने श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री चौथी पादशाही जी के श्री पादपद्मों में वन्दना की।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी ने फ़रमाया—"गुरुमुखो! श्री मुबारिक आज्ञानुसार सेवा तो श्री दरबार की करनी है। यह पारमार्थिक कार्य युग-युगान्तरों तक चलता रहेगा। हमारा कर्त्तव्य श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा मानना है। उन्हीं की शक्ति से ही सर्व कार्य सम्पन्न होंगे। अतः सब गुरुमुखों को श्री आज्ञा का पालन करते हुए श्री दरबार की सेवा में निरत रहना होगा।" सब संगत ने इन पावन वचनों को शिरोधार्य किया।

अतः पुरातन मर्यादानुसार २० अप्रैल सन् १९६४ तदनुसार ८ वैशाख संवत् २०२१ सोमवार तिथि रामनवमी के शुभ दिन प्रातः ८ बजे श्री आनन्दपुर में श्री श्री १०८ श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज चतुर्थ रूप में पारमार्थिक राजसिंहासन पर विराजमान हुए। महात्मा योगात्मानन्द जी ने विधिवत् केसर का तिलक लगाया। इसके पश्चात् सब महात्मा जनों ने आपके शुभ्र भाल पर तिलक लगाने की रीति को पूरा किया। पुनः सब संगत ने आपके श्री मस्तक पर तिलक लगाया। तदुपरान्त आपकी श्री आरति उतारी गई। इसी दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भंडारा करवाया गया।

१४ अप्रैल १६६४ से श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के आदेशानुसार श्री आरति-पूजा का नियम श्री आनन्द शान्ति भवन में आरम्भ हो गया। श्री वचन तथा श्री आज्ञा थी कि प्रातः समय श्री आरति पूजा 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' में तथा सायं समय 'श्री आनन्द शान्ति भवन' में हुआ करेगी। श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर का निर्माण कार्य अभी कुछ शेष था। गुम्बज़ का भाग अभी पूर्ण न हो पाया था। इसी कारण पहले एक वर्ष श्री आरति दोनों समय 'श्री आनन्द शान्ति भवन' में ही होती रही।

आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) ने पारमार्थिक राजसिंहासन पर विराजमान हो कर अशान्त विरह-व्याकुल हृदयों को शान्ति प्रदान की। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने जिस ढंग से प्रेमियों, गुरुमुखों के हृदय पर शासन किया था, अब एक दम उन के विछोह से प्रेमियों के हृदय जैसे विरह के बाणों से छलनी हो चुके थे। उनकी वेदना पर मरहम लगाना इस समय सरल बात न थी। आप ने प्रेम से, स्नेह से सिंचित कर सब के हृदयों को शीतलता प्रदान की। आप के विनम्र, कोमल तथा सौम्य स्वभाव ने सब के दिलों को मोह लिया।

प्रेम भक्ति के बन उन्नायक, जन जन को निहाल करें।
आकुल, व्याकुल, विरह दग्ध, के हृदयों में आनन्द भरें॥
सौम्य मनोरम निज सुषमा से, त्रिभुवन के त्रय ताप हरें।
सुख शान्ति के दाता पाकर, सकल क्लेश स्वयमेव जरें॥

अब आप जन जन की आर्त्त पुकार को पूरा करने के लिए तथा सन्त मत के नियमानुसार परमार्थ का कार्य करने में संलग्न हो गए। आप ने सन् १६६४ जून के अन्तिम सप्ताह में पचमढ़ी के लिए श्री आनन्दपुर से प्रस्थान किया। कुछ महात्मा जन भी साथ गए। बस द्वारा श्री आनन्दपुर से चन्देरी, ललितपुर, सागर होते हुये नरसिंहपुर पहुँचे। मार्ग में इन स्थानों पर श्री दर्शन के लिए

आए हुये प्रेमियों को श्री दर्शन तथा श्री अमृत प्रवचनों से कृतार्थ करते गये। महापुरुषों का जन्म-जन्मान्तरों से भक्ति की अभिलाषी रूहों से आत्मिक सम्बन्ध होता है। अतएव वे युग युग में समय के अनुसार अवतार धारण कर भक्ति की तृषित आत्माओं को भक्ति का अमृत पिला कर उन की तृषा को मिटाते हैं।

इस प्रकार यहाँ नरसिंहपुर में जब आप की बस पहुँची तो सेवादार विश्राम के लिए विश्राम गृह अथवा किसी उचित स्थान को ढूँढने लगे। इतने में दो तीन प्रेमी भक्त (सरदार) वहां आए और बस में आकर आपको वन्दना की। आपने उन से कुशल-क्षेम और उनके आने का कारण पूछा। उन्होंने कोई उत्तर न दिया। आपने मौजवश प्रवचन फ़रमाने आरम्भ कियेः—

जा कउ मुसकलु अति बणै, ढोई कोइ न देइ ॥
लागू होए दुसमना साक भि भजि खले ॥
सभो भजै आसरा चुकै सभु असराउ ॥
चिति आवै ओसु पारब्रहमु लगै न तती वाउ ॥१॥
साहिबु निताणिया का ताणु ॥
आई न जाई थिरु सदा गुरु सबदी सचु जाणु ॥१॥ रहाउ॥

जिस प्राणी के सामने अत्यन्त कठिनाई उपस्थित हो जाए और उसे उस कठिनाई में कोई भी सहारा देने वाला न हो। अनेक शत्रु उसकी जान के दुश्मन हो जाएँ, उस समय सगे सम्बन्धी भी उसे आश्रयहीन छोड़ कर भाग जाएँ। सभी सहारे टूट जाएं और सभी आधार छूट जाएँ ऐसी दीन दशा में भी यदि मालिक का नाम उसके चित्त में आ जाए तो उसे गर्म वायु न लगेगी अर्थात् कोई भी कष्ट-क्लेश उसके निकट नहीं आएगा।

सच्चा मालिक ही निर्बलों का बल और आश्रयहीनों का आश्रय है। वह सदा एक रस है, आवागमन के चक्र से परे है और गुरु के शब्द द्वारा ही उस सच्चे मालिक को जाना जा सकता है। नाम ही सर्व दुःखों की औषध है, जिस

के सेवन से मन नीरोग होकर प्रभु-भक्ति में लगता है। अतएव जीव को मानव तन की प्राप्ति के सुदुर्लभ अवसर को हाथ से नहीं गंवाना चाहिये। इसी जन्म में नाम की कमाई कर के सुख-शान्ति-आनन्द की प्राप्ति कर जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना है।

आप ने ज्योंही गुरुवाणी के श्लोक को पढ़ा तथा प्रवचन फ़रमाए तो उन प्रेमियों के हृदय पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। उन्होंने आपके श्री चरणों में अपने घर पधारने के लिए विनय की। आप उनकी विनय स्वीकार कर उनके गृह (जो वहाँ से एक दो फ़र्लांग की दूरी पर था) में पधारे। उनके भवन के एक कमरे में श्री दरबार साहिब स्थापित किए हुये थे, दूसरा कमरा निवास के लिये तथा तीसरा अतिथियों के लिये बना हुआ था। आप ज्यों ही उस कमरे में से गुज़रे तो श्री दरबार साहिब के आगे नतमस्तक होकर अपने साथ आए हुये सेवकों को भी वन्दना करने के लिये आज्ञा दी। यह देखकर उन भक्तों के हृदय में आपके प्रति अत्यधिक श्रद्धा का भाव उत्पन्न हो गया। उन में से एक भक्त जी ने तो स्पष्ट ही श्री चरणों में विनय की कि विधाता की ओर से हमें भी यह पावन सुअवसर मिल गया है। दुनिया के बहकावे में हम आज तक अज्ञानता में भटकते रहे। अब तो हमने अपने सामने प्रत्यक्ष रूप में देख लिया कि श्री आनन्दपुर के उन्नायक स्वयं गुरुवाणी के शब्दों पर सत्संग-उपदेश करते हैं, स्वयं उन्होंने आज भक्तों को वन्दना करने के लिये आज्ञा प्रदान की है। हमारे हृदय में आपने एक नवीन दिव्य ज्योति का प्रकाश भर दिया है। स्वयं कुल मालिक ने हमारे मन पर आये हुये भ्रम के पर्दे को गृह में पधार कर दूर कर दिया है। हम भी पहले चकौड़ी सन्त आश्रम के समीपवर्ती स्थान पर रहते थे तथा भक्ति परमार्थ के सम्राट् श्री आनन्दपुर की महिमा हमने सुनी थी। आज प्रकट रूप में घर में ही आकर आपने कृतार्थ कर दिया है।

जब आप इस गृह में पधारे तो स्वाभाविक ही निम्नलिखित शब्द श्री दरबार साहिब में पढ़ा जा रहा था। आपने भी उसी शब्द पर ही श्री प्रवचन फ़रमाए:—

किरपा करे जिसु पारब्रहमु होवै साधू संगु ॥
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ हरि सिउ रंगु ॥
दुहा सिरिआ का खसमु आपि अवरु न दूजा थाउ ॥
सतिगुर तुठै पाइआ नानक सचा नाउ ॥

श्री गुरु नानकदेव जी उपदेश देते हैं कि जिस पर मालिक की कृपा हो और प्रभु कृपा से उसे पूर्ण सत्पुरुषों का सत्संग प्राप्त हो जाये फिर ज्यों ज्यों उस की रुचि सत्संग में बढ़ेगी त्यो त्यों ही उस प्राणी का मन मालिक के नाम में रँगा जाएगा। भले-बुरे, सम्पन्न-विपन्न, राजा-रंक दोनों ही पक्षों का तथा लोक परलोक का स्वामी मालिक ही है। जिस के नाम की सच्ची लगन तथा जिस के सच्चे प्रेम का मार्ग केवल सद्गुरु की कृपा और प्रसन्नता से ही प्राप्त होता है।

भाव यह कि सन्त महापुरुषों की संगति ही जीव को अपने मार्ग पर ले जाती है। सन्त महापुरुष तो निरपेक्ष भाव से उपदेश करते हैं। जो जीव उनके पावन वचनों पर आचरण करता है वह लाभान्वित होता है। इस प्रकार इन श्री प्रवचनों को श्रवण कर उन भक्तों ने बड़ी श्रद्धा से आप को भोजन करवाया तथा आपने २–३ घण्टे के पश्चात् वहाँ से प्रस्थान किया।

नरसिंहपुर से आप ने छिन्दवाड़ा की ओर कृपा की। नरसिंहपुर तथा छिन्दवाड़ा के मार्ग में नर्मदा नदी बहती है। जब आप की बस यहाँ नर्मदा नदी के किनारे पहुंची तो पुल के इस ओर काफ़ी संख्या में ट्रक तथा बसें रुकी हुई थीं। इस का कारण यह था कि इस बार वर्षा-ऋतु शीघ्र ही आरम्भ हो गई थी तथा दो तीन दिन पहले लगातार वर्षा होती रही थी, जिससे नर्मदा में बाढ़ आ गई। अब बाढ़ का पानी तो पुल से नीचे उतर चुका था परन्तु पुल पर चिकनी मिट्टी की तहें जम गई थीं। पुल पर चिकनी मिट्टी होने के कारण सब को यह भय था कि कहीं मोटर फिसल न जाए।

ज्यों ही आप की बस नर्मदा के पुल पर पहुँची तो आप ने यातायात

(Traffic) के बन्द होने का कारण पूछा। सेवकों ने बस से नीचे उतर कर इसके विषय में पूछ-ताछ कर श्री चरणों में निवेदन किया। आपने सब सेवकों को आदेश दिया कि सभी मिलकर इस पुल की मिट्टी को दूर हटा दो। सेवकों ने श्री आज्ञा का पालन किया तथा बस से नीचे उतर कर पुल से मिट्टी एक ओर करने लगे। अन्य लोग यह देखकर अत्यन्त चकित थे कि कैसे निःस्वार्थ भाव से सब अपनी वेष-भूषा की परवाह न करते हुये श्री आज्ञा पाते ही जुट गये हैं। इनको देखकर कई अन्य बाहर के व्यक्ति भी साथ जुट गये। एक घण्टे में पुल से मिट्टी हटा कर मार्ग को साफ़ कर दिया। पहले आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) की बस पुल से गुज़री, इस के पश्चात् सारा यातायात आरम्भ हो गया। अन्य लोगों के मुँह से अनायास ही ये शब्द निकले कि "सचमुच ही सन्त महापुरुष केवल परोपकार के लिए अवतार लेते हैं।" परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी अपनी वाणी में कहा है किः—

॥ दोहा ॥

बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमार्थ के कारने, साधन धरा शरीर॥

जिस प्रकार वृक्ष अपने फल को स्वयं नहीं खाता, नदी अपने लिये पानी को संचित नहीं करती अपितु वृक्षों तथा नदियों से अन्य भूत प्राणियों को ही अत्यन्त लाभ पहुँचता है। इसी प्रकार सन्त महापुरुषों का अवतरण भी परोपकार के लिए होता है।

आप परमार्थ, सहनशीलता की साक्षात् प्रतिमा थे। अतः आप परमार्थ का कार्य करते हुए पचमढ़ी पहुँचे। वहाँ पर कुछ दिन विराजमान रहकर पुनः व्यास-पूजा का शुभ पर्व मनाने के लिए श्री आनन्दपुर के लिये प्रस्थान किया। पचमढ़ी से छिंदवाड़ा, जबलपुर, दमोह, सागर, बसोदा को कृतार्थ करते हुए आपने अशोक-नगर में दो चार घण्टे के लिए आश्रम पर अनुकम्पा की। यह स्थान आपके उपकारों से कृतज्ञ था। यहाँ आप साधु वेष में चिरकाल तक रहे। अतः लोग आप

से परिचित थे। सभी प्रेमिजनों के हृदय में आप का स्थान था। प्रेमियों ने श्री दर्शनों तथा अमृत प्रवचनों से हृदय की तृषा मिटाने के लिए आपके श्री चरणों में दो-तीन दिन यहाँ कृपा करने के लिए विनय की। आप ने अशोकनगर के प्रेमियों के आग्रह पर एक रात्रि का अमूल्य समय उन्हें प्रदान किया। रात्रि समय श्री दर्शन खुले। आप ने सर्व संगत के सम्मुख श्री वचन फ़रमाए किः—

भक्ति के बिना मनुष्य कभी सुखी नहीं हो सकता, चाहे वह सारी सृष्टि का सम्राट् ही क्यों न बन जाये। नाम जपने से ही सुख प्राप्त होगा, ये सन्त सत्पुरुषों के निर्णय हैं। नाम जपने से जब इच्छाओं की समाप्ति होगी तभी जीव सुख को प्राप्त कर सकेगा। ऐसा कब हो सकता है जब कि सत्पुरुषों के बताए हुए उपदेश पर जीव चलेगा। सुख भी तभी मिलेगा जब भक्ति में मन लगेगा। भक्ति में मन लगाने के लिए यह आवश्यक है कि मन को अन्यान्य संकल्प-विकल्पों से ख़ाली कर दिया जाये। फ़क़ीरों का कौल है किः—

॥ शेयर ॥

भर रहे हैं दिल में दुनियावी ख़्याल।
आवे क्योंकर इसमें नूरे ज़ुल जलाल॥
चाहिए तुझ को अगर वस्ले-सनम।
दिल को ख़ाली ग़ैर से कर यक कलम॥
हुब्बे जाह-ो माल-ो फ़रज़न्दो पिदर।
उल्फ़ते लालो जवाहर सीमोज़र॥
तब्बा को जिस जिस तरफ़ का है ख़्याल।
है यही बस मान-ए-राहे वसाल॥

भावार्थः—जब तक हृदय में सांसारिक कामनाएँ भरी हुई हैं तब तक उस में परमात्मा का प्रकाश यानि खुदा का नूर कैसे आ सकता है? ऐ जिज्ञासु यदि तुझे मालिक का प्रेम प्राप्त करने की चाह है तो अन्य सभी कामनाओं से इसे खाली कर दे। माल-मिलकियत, लाल जवाहर तथा सोना-चाँदी की दिल में चाह

है और कहीं पिता की, कहीं पुत्र की दिल में मुहब्बत है—इस प्रकार जहां जहां भी सुरति या ख़्याल जाता है तो मालिक के मिलाप में ये रुकावट हैं।

सत्पुरुषों का यह भाव नहीं कि इन पदार्थों का प्रयोग न करो परन्तु इस बात का विशेष ध्यान देना है कि संसार के विषय भोग हृदय में ठौर न पाएं। अगर उन्होंने दिल में घर कर लिया तो परमात्मा के मिलने के मार्ग में बड़ी बाधा होगी। कारण:—

॥ शेयर ॥

दिल है तेरा एक, इस में ऐ हुज़ीं।
उल्फ़तें दो दो समा सकती नहीं॥

माया और भक्ति दोनों इकट्ठी नहीं रह सकतीं। यह दिल मालिक का मन्दिर है, इष्टदेव का उपासना-स्थान है, मायावी विषय विकारों के लिये इसे मुसाफ़िर-ख़ाना नहीं बनाना। अतः सांसारिक सुखैश्वर्यों में मन को न फँसाते हुए सन्त महापुरुषों के उपदेशानुसार जीवन व्यतीत करना ही गुरुमुखों का परम धर्म है। यही प्रवचन ही जीव की निजी पूँजी हैं, जिन पर आचरण कर लोक तथा परलोक में सुख की प्राप्ति हो सकती है।

इस प्रकार रात्रि के समय में श्री दर्शन तथा श्री सद्‌वचनों से प्रेमियों को कृतार्थ किया। सभी प्रेमियों ने श्री चरणों में और दो चार दिनों के लिए यहां कृपा करने की विनय की परन्तु आप ने फ़रमाया कि हम ने प्रातः श्री आनन्दपुर में अवश्य जाना है। अतः एक रात्रि वहां अशोकनगर में बिता कर प्रातः छः बजे श्री आनन्दपुर पधारे।

श्री व्यासपूजा का शुभ पर्व तीन चार दिन के पश्चात् था। कुछ संगतें श्री दर्शन के लिए श्री आनन्दपुर में पहुँच चुकी थीं। जो प्रेमिजन रूहानी जानशीनी के दिन श्री आनन्दपुर किन्हीं कारणों से न पहुँच पाए थे वे सब श्री व्यासपूजा के पर्व पर श्री दर्शन के लिए आए तथा आप के श्री सुमञ्जुल दर्शन पाकर धन्य हो गए। व्यासपूजा के शुभ पर्व पर हज़ारों की संख्या में प्रेमिजन श्री दर्शन के लिए आए।

आपने प्रथम व्यासपूजा के दिन सर्व संगत के सम्मुख श्री प्रवचन फ़रमाए:—

"मनुष्य जिन वस्तुओं में सुख की खोज करता है उन वस्तुओं में कभी भी सुख की प्राप्ति न होगी। क्या कभी सरसों के पेलने से भी घी निकला ? क्या कभी विष खाने से भी जीव ने अमर पद प्राप्त किया ? कदापि नहीं। सरसों के पेलने से तो तेल ही प्राप्त होगा। अमृत का पान करने पर ही अमर पद की प्राप्ति होगी। जीव संसार के आडम्बर में फंस कर उस में से शाश्वत सुख तथा वास्तविक आनन्द की प्राप्ति करना चाहता है। यह कैसे हो सकता है ? महापुरुष फ़रमाते हैं कि:—

ये मीठे फल ज़हर भरे हैं, सुख थोड़ा और विपद घनेरी।

जो मायावी पदार्थ दिखाई देते हैं इन में सात्त्विक सुख नहीं है। यदि इन में कहीं भौतिक सुख दिखाई देता भी है तो वह सुखाभास है। वह केवल दिखावा मात्र है। शाश्वत सुख उन में नहीं है। अब गुरुमुखों को विचार करना चाहिए कि वास्तविक सुख जहाँ से प्राप्त हो उसे खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। वह सुख कहां है ? सन्तों की वाणी है:—

॥ दोहा ॥

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढै बन माहिं।
तैसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं॥

जैसे हरिण अपनी नाभि-कुण्डल में बसी हुई कस्तूरी को झाड़-झंखाड़ में खोजता फिरता है, वैसे ही मनुष्य अपने घट में खोज न करके संसार और संसार के असत् पदार्थों में नित्य सुख की खोज करता है। जहाँ (अपने अन्दर) सुख का ठौर है वहाँ तो ढूंढता नहीं। असत् पदार्थों में सुख की खोज करते रहना मनुष्य-जन्म के क्षणों को नष्ट करने के अतिरिक्त और क्या है ? इस प्रकार से अनमोल समय को नष्ट करना बिल्कुल ठीक नहीं। फ़कीरों का क़ौल है:—

चिरा कारे कुनद आकिल कि बाज़ आयद पशेमानी॥

अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य ऐसा काम ही क्यों करे कि अन्त में उसे पछताना पड़े। अतः सन्त महापुरुष सदुपदेश करते हैं कि ऐ जीव! तू सत् वस्तु की सम्भाल कर जो अन्त समय तक तेरे साथ जा सके। गुरुवाणी में भी लिखा है कि:—

नानक कचड़िआ सिउ तोड़ि ढूढि सजण संत पकिआ ॥
ओइ जीवंदे विछुड़हि ओइ मुइआ न जाही छोड़ि ॥
सजण सेई नालि मै चलदिआ नालि चलंन्हि ॥
जिथै लेखा मंगीऐ तिथै खड़े दिसंन ॥

सत्पुरुषों का कथन है कि जिनकी मित्रता का नाता कच्चा है, उन से नाता तोड़ो। उन सन्त सद्गुरु से सम्बन्ध स्थापित करो जो कि पक्के सज्जन विश्वास के योग्य हैं, सहायी मित्र हैं। ये सांसारिक पदार्थ तथा सम्बन्ध आदि तो जीवन काल में ही साथ छोड़ जाते हैं, किन्तु सन्त-सत्पुरुष तो मृत्यु के बाद भी संग रहते हैं। वे लोक परलोक में जीव के सहायक हैं। जब धर्मराज के दरबार में कर्मों का लेखा पूछा जाता है तो वहां पर भी गुरुमुखों की सहायता के लिए सन्त सद्गुरु पहुँच कर जीव को सब बन्धनों से छुड़ा लेते हैं।

जिसे सन्त सद्गुरु के चरणों का भरोसा है और अपने इष्टदेव सद्गुरु के चरणों में जिस का चित्त जुड़ा हुआ है, जिस के हृदय में सद्गुरु का ध्यान बस गया है सन्त—सद्गुरु सदा उसके साथ हैं और सदा उसके रक्षक तथा सहायी हैं। सद्गुरु का ध्यान ही जीव का सच्चा संगी तथा साथी है। यही इस लोक में भी तथा परलोक में भी रक्षक है। यही ध्यान ही सर्व सुखों की खान है। यदि सद्गुरु का ध्यान साथ होगा तो कोई भी जीव का बाल बाँका नहीं कर सकता।

अतः गुरुमुखों का यह परम धर्म है कि सद्गुरु के चरणों में पवित्र प्रेम का सम्बन्ध स्थापित कर आठों पहर सद्गुरु का ध्यान ही हृदय में बसाएँ। काल तथा धर्मराज के भय से मुक्त होकर जीवन का सर्वोच्च लाभ प्राप्त करते हुए जीवन सफल करें।"

आपने इन पावन वचनों को फ़रमाकर सर्वसंगत को यह पुनः सदुपदेश दिया कि "प्रत्येक गुरुमुख चौबीस घण्टों में एक घण्टा अवश्य भजन किया करे। भजनाभ्यास के बिना अर्थात् सुरति को अन्तर्मुख किये बिना सद्गुरु का वास्तविक स्वरूप नहीं देखा जा सकता। सद्गुरु की प्रसन्नता ही गुरुमुखों की निजी पूँजी है। यदि गुरुमुख जन सद्गुरु को प्रसन्न करना चाहते हैं तो एक घण्टा भजनाभ्यास अवश्य करें और मौज तथा आज्ञानुसार कर्म करें। ऐसे गुरुमुखों के साथ सद्गुरु सदा अंग संग रहते हैं।"

आपके पास कोई भी प्रेमी आता तो आप उस से सब से पहला प्रश्न ही यही पूछते थे कि तुम कितना समय भजनाभ्यास में लगाते हो ? वह गुरुमुख पहले तो कुछ सकुचा जाता परन्तु जब आप अत्यधिक ज़ोर देते तो अधिकतर उत्तर यही मिलता था कि कभी कभी भजनाभ्यास कर लेते हैं। आप प्रायः इस विषय में प्रवचन फ़रमाते थे—"भजनाभ्यास के बिना जीवन निरर्थक है। भजनाभ्यास के बिना यदि जीव चाहे कि मुझे आत्मिक सुख-शान्ति-आनन्द की प्राप्ति हो जाए तो ऐसा होना असम्भव है। मनुष्य की भूख सदा रोटी खाने से ही दूर हुआ करती है। इसी प्रकार आत्मा को यदि ख़ुराक (भजनाभ्यास) न दी जाए तो उस की तृप्ति कैसे होगी ? आपके आचरणमय जीवन के कारण जिज्ञासुओं तथा गुरुमुखों पर आपके प्रवचनों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता। आपके प्रवचनामृत का पान करते ही गुरुमुख का विचार भजनाभ्यास करने के लिए दृढ़ हो जाता। श्री आज्ञापालन करने पर उनकी सुरति जब शब्द में लय होकर वास्तविक सुख का ज्ञान कराती तो गुरुमुख प्रेमी इस आनन्द को पाकर आपकी कृपा के कृतज्ञ होते। आप प्रेमियों से प्रायः यही पूछा करते थे भजनाभ्यास करते समय तुम्हें क्या दिखाई देता है ? पुनः उन्हें उस मंज़िल से आगे की मंज़िल का पथ बताते तो उन में उत्साह भर जाता और प्रेमी अधिकाधिक लगन से अभ्यास करने लगते।

आप प्रायः यह प्रवचन फ़रमाया करते थे कि जैसे पक्षी दो परों से उड़ता है, मनुष्य दो पावों से चलता है, पक्षी का यदि एक पंख काट दिया जाए तो वह

उड़ नहीं सकता। मनुष्य को एक पांव से चलना दुष्कर हो जाता है। इसी प्रकार जीव रूपी पक्षी के भी दो पंख हैं—१. सेवा २. भजनाभ्यास। इन दो परों से ही जीव ब्रह्माण्ड देश में पहुँच सकता है। अतः गुरुमुखों के लिये सेवा के साथ साथ भजनाभ्यास करना अत्यावश्यक है। इस नियम को पूरा करने के लिये श्री आनन्दपुर में महात्मा भक्तों के लिये श्री आनन्दसर के तट पर श्री शान्ति भवन तथा बाइयों-भक्तानियों की ओर 'श्री शान्ति भवन' ये दोनों स्थान भजन अभ्यास करने के लिए नियत कर दिये गये। जिस से कि सभी गुरुमुख तथा जिज्ञासु जन भक्ति के वास्तविक आनन्द को पाकर समृद्ध हो सकें।

सन् १९६४ की व्यासपूजा के शुभ पर्व के १०-१५ दिन के पश्चात् आप नया गांव (महाराष्ट्र) में पधारे। इस स्थान का निर्माण श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने आरम्भ करवाया था। यह महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश तथा भारत के पश्चिमी भाग का पारमार्थिक केन्द्र है। आप यहां पर पधार कर पारमार्थिक विकास-कार्य में संलग्न हो गये।

महापुरुष धुरधाम से ही अपने लक्ष्य-बिन्दु को साथ लाते हैं। उन्होंने अपने समय में जिन कार्यों को करना होता है, वे समयानुसार उन्हीं कर्त्तव्यों को निभाते हैं। महाराष्ट्र में नया गांव की भूमि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने पारमार्थिक कार्य के लिये ख़रीदी थी। उस पर निर्माण कार्य आरम्भ करवाया था; अब आप इस स्थान को विशाल रूप देने के लिए इस भूमि के भाग्य जगाने आए। आप अधिकतर समय नया गांव में ही व्यतीत करते थे। पर्वों पर बीस पच्चीस दिनों के लिए श्री आनन्दपुर में विराजमान होते। श्री आनन्दपुर का निर्माण कार्य भी साथ साथ चलता था।

सर्वप्रथम आपने इस 'नया गांव' में स्थित आश्रम का नाम बदल कर इस का शुभ नाम 'श्री प्रयागधाम' रखा जो आज भी इसी नाम से विख्यात है। यहां पर पहले भी निर्माण कार्य आरम्भ था, परन्तु दर्शनार्थ संगतों के लिए अभी पूरा प्रबन्ध न था। अतः आपने यहां पर निर्माण कार्य आरम्भ करवा

दिया । यहां पर पहले भी दशहरा का पर्व मनाया जाता था । आप ने उसी नियमानुसार दशहरा पर्व पर संगतों को यहां आने की आज्ञा दी तथा बड़ी धूम-धाम से पर्व मनाया । आप अपनी मौज के अनुसार भजनाभ्यास के विषय में ही अधिक प्रवचन फ़रमाया करते थे । आपने इस पर्व पर श्री प्रयागधाम में इसी विषय में प्रवचन फ़रमाये कि किस प्रकार जीवात्मा अपने आनन्द देश में पहुँचती है ? किस प्रकार सुरति नीचे उतरती है तथा माया के पसारे में उलझ जाती है । उसे इसी मार्ग से ही पुनः अपने स्थान पर पहुँचाना ही आनन्द को पाना है । आपने प्रवचन फ़रमाये किः—

"यह मानव शरीर प्रकृति की ओर से मुख्य तीन विभागों में बंटा हुआ है । एक भाग वह है जो नेत्रों के नीचे का पूरा धड़ है । इसे पिण्ड देश अथवा माया का देश कहते हैं । साधारणतया मनुष्य की सुरति माया की रचना में फैली होने से इसी पिण्ड देश में रहा करती है । अन्य दो दिव्य भाग नेत्रों से ऊपर हैं । नेत्रों के ऊपर से लेकर शिखा-मण्डल (सिर की चोटी) तक जो प्रदेश है, उसे ब्रह्मांड देश कहा जाता है तथा शिखा-मण्डल से आगे सिर की गुद्दी तक के प्रदेश का नाम दयाल देश है । सुरति या जीवात्मा का निजी ठिकाना पिण्ड देश नहीं, जहाँ यह प्रायः निवास करती है । इस का वास्तविक स्थान तो बहुत ऊपर है । इन दोनों देशों से ऊपर तीसरा देश अनामी स्थान है । यही जीवात्मा का निज देश है, जहां से नीचे उतर कर सुरति संसार में आई और फैल गई है ।

अनामी लोक अथवा अनामी धाम तक किन्हीं विरले अथवा विशेष पुरुषों की पहुँच होती है, उन्हें परम सन्त कहते हैं । इसी अनामी धाम से एक मौज उठी और शब्द की धारा बन कर नीचे को उतर चली । अनामी लोक से नीचे की ओर दो अन्य स्थान अगम लोक और अलख लोक हैं । इन में से गुज़रती हुई शब्द की धारा चौथे स्थान अर्थात् सत् लोक में आकर ठहरी । सत् लोक तक पहुँचने वाले सन्त कहलाते हैं । यह स्थान ठीक शिखा मण्डल के नीचे स्थित है और यह दयाल देश तथा ब्रह्मांड देश की एक प्रकार की सीमा है । अनामी लोक, अगम लोक, अलख लोक और सत् लोक—इन चारों धामों को मिला कर दयाल देश

कहते हैं। सुरति सत् लोक से नीचे उतरी तो भँवर गुफ़ा तथा महासुन्न नामक दो अन्य स्थानों से गुज़र कर पुनः सुन्न-मण्डल में आकर ठहरी, जिसे दशम द्वार भी कहा जाता है। यहाँ रह कर सुरति पाँच तत्त्वों, तीन गुणों और कारण-स्थूल-सूक्ष्म तीनों शरीरों आदि बन्धनों से बिल्कुल अलिप्त और निर्विकार रहती है। इस स्थान अर्थात् दशम द्वार तक पहुँचे हुए को पूरा साध कहते हैं।

सुन्नलोक से नीचे त्रिकुटी स्थान है, जिसे गगनमण्डल भी कहा जाता है। इस स्थान से महासूक्ष्म तीन गुण, पांच तत्त्व, वेदादिक दिव्य ग्रन्थ, सृष्टि रचना की सूक्ष्म सामग्री तथा निर्मल माया प्रकट हुई है। इस स्थान से भी नीचे सहस्रार या सहसदल कँवल का स्थान है जो दोनों नेत्रों के मध्य (भृकुटी) पृष्ठ-भाग में स्थित हैं। यही पिण्ड और ब्रह्मांड का सीमान्त है। सन्तमत में इसी स्थान से साधन—अभ्यास प्रारम्भ कराया जाता है। सन्त जन इसे निज मन भी कहते हैं। इस स्थान से सूक्ष्म तत्त्व (शब्द-रूप-रस-गन्ध और स्पर्श) पांच प्राण तथा पच्चीस प्रकृतियां प्रकट हुई हैं तथा पिण्ड की समस्त रचना इस स्थान से नीचे को फैली हुई है। दयाल देश में चार महाधाम—अनामी लोक, अगम लोक, अलख लोक और सत् लोक हैं। सत्लोक से नीचे ब्रह्माँड देश आरम्भ होकर उस में सत्लोक, भँवरगुफ़ा, महासुन्न, सुन्न, (दसवाँ द्वार) त्रिकुटी और सहसदल-कँवल ये छः लोक स्थित हैं। सहसदल-कँवल से नीचे की सब रचना पिण्डदेश की है।

जब सुरति सहसदल कँवल से उतर कर नीचे की ओर आती है तो पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन—इन ग्यारह से मिल जाती है। इन में से प्रत्येक में तीन गुण सत्-रज-तम का समावेश है। प्रत्येक गुण में एक एक कोटि (करोड़) वासनाएँ हैं। इस प्रकार ग्यारह को तीन करोड़ से गुणा करने पर कुल तैंतीस करोड़ वासनाओं के अधीन होकर सुरति मायासक्त हो जाती है। बहुत समय तक पिण्डदेश में रहने के कारण सुरति माया की दासता की अभ्यस्त हो जाती है और तब यह बुरी तरह से फँसकर रह जाती है। ऐसी अवस्था में उसका माया की रचना से तथा वासना के कुचक्रों से बाहर निकल सकना जन्म-जन्मान्तरों तक

कठिन हो जाता है।

जैसे स्वतन्त्र पक्षी को पिंजरे में बन्द कर दिया जाए तो बहुत समय तक पिंजरे में बन्द रहने पर वह बन्धन का अभ्यस्त हो जाता है और स्वतन्त्रतापूर्वक उड़ने की सामर्थ्य खो बैठता है। इसी प्रकार सुरति भी माया के दासत्व में चिरकाल से रहती हुई अपनी स्वतन्त्रता खो बैठी है तथा अपने निज-स्थान को भूल गई है।

इसी प्रकार जीवात्मा तो वास्तव में निर्मल और स्वतन्त्र था, परन्तु माया के पदार्थों के लोभ ने, इन्द्रियों की प्रेरणाओं ने तथा प्रकृति की रचना ने उसे भ्रम में डालकर फँसा दिया है और अब यह जन्म-जन्म तक इसी प्रकार बन्धन में पड़ा हुआ मन और माया के संकेतों पर तिगुनी (तीन गुणों) का नाच नाचता फिरता है।

॥ शेयर ॥

चमन के रंग-ो-बू ने इस क़दर धोखा दिया मुझ को।
कि मैंने शौके-गुलबोसी में काँटों पर ज़ुबाँ रख दी॥

अर्थात् बुलबुल गुलाब के फूल पर इतनी मुग्ध होती है कि उसे गुलाब के साथ लगे काँटे भी दिखाई नहीं देते। इसका कथन बुलबुल के मुख से कराया गया है कि मुझे उद्यान की अति सुन्दर तथा सुवासित छवि ने इतना भ्रमित कर दिया कि पुष्प के चुम्बन की इच्छा से मैंने अपनी जीभ काँटों से छेद दी तो भी मुझे पता न चला।

सन्त महापुरुष सदुपदेश करते हैं कि जब तक सुरति शब्द में नहीं मिल जाती तब तक सुख प्राप्त नहीं हो सकता। सुरति शब्द से बिछुड़ कर दुःखी है। जब तक वह शब्द को न पहचानेगी और उस में विलीन न हो जाएगी तब तक उसे सच्चे आनन्द की प्राप्ति कदापि न होगी तथा न ही संसार और संसार के मिथ्या पदार्थों में असत् का आभास होगा, यही शाश्वत् एवं शान्तिमय जीवन का रहस्य है। इसी को ही सुरत-शब्द-योग कहते हैं। अतः इस सुरति को जिस रास्ते से यह नीचे उतरी है, सन्त महापुरुषों की राहनुमाई के अनुसार उसी मार्ग से

अपने देश में पहुँचाना है। तभी इस जीवन का ध्येय तथा सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।"

इस प्रकार श्री प्रवचनामृत पान कर सब प्रेमियों के हृदयों में भजनाभ्यास के लिए उत्साह उत्पन्न हुआ। सारी संगत प्रवचनों को हृदयंगम कर धन्य हो गई। आप ने अज्ञान में भटकते हुए जीवों को वह मार्ग दर्शाया जिस पर चल कर सर्व साधारण भी उस दिव्य आनन्द को प्राप्त कर सकें। आप ने बार बार यही प्रवचन किए कि 'दिव्य-दृष्टि खोलो' फ़रमा कर जन जन के हृदय में अन्तर्दृष्टि खोलने की उत्कण्ठा जगा दी जिस से सभी प्रेमिजन इस दिव्य वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने में संलग्न हो गये।

आप के सम्मुख दो ही प्रमुख स्थान थे जहां पर आप ने पारमार्थिक सत्संग उपदेश कार्य तथा निर्माण कार्य किया। वे स्थान थे श्री आनन्दपुर तथा श्री प्रयागधाम। इन के अतिरिक्त अन्य छोटे छोटे स्थानों का भी निर्माण कार्य करवाया तथा समय समय पर अन्य कई स्थानों को भी कृतार्थ करते रहे।

श्री आनन्दपुर में

आप ने सर्व प्रथम श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के शेष कार्य को पूरा करवाया। गुम्बज़ का शेष भाग पूरा हो गया तथा इसके साथ साथ मार्च १९६५ तक श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में रंग-रोगन, पंखे, ट्यूब आदि विद्युत् का सब सामान लगवाकर इसे साज संवार कर एक अनुपम छटा युक्त कर दिया। तत्पश्चात् श्री श्री १०८ श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की श्री आज्ञा को साकार रूप देने के लिए १४ अप्रैल सन् १९६५ तदनुसार वैशाख संक्रान्ति संवत् २०२२ बुधवार के दिन श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी, श्री परमहंस सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री द्वितीय पादशाही जी, श्री परमहंस सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तृतीय पादशाही जी की श्री मूर्तियां विराजमान करने के लिए फ़रमाया। अतः इस शुभ तिथि पर प्रातः समय इन तीन

श्री मूर्तियों को एक पालकी में एक अनुपम सिंहासन बना कर उस पर विराजमान किया गया ।

यह अनुपम सुसज्जित सवारी निवास स्थान से बड़ी धूमधाम से निकली । मार्ग में हज़ारों की संख्या में प्रेमिजन जिज्ञासु तथा शरणागतों ने इन दिव्य विभूतियों के श्री दर्शन करते हुए गुरु-महिमा के भजन गाए । जयकारों की ध्वनि से दसों दिशाएं गुंजित हो उठीं । स्थान स्थान पर सवारी रोक कर पुष्प-वृष्टि की गई । कई उपवनों तथा सड़कों को पार करती हुई यह दिव्य झांकी श्री आनन्दसर के तट पर आ पहुँची । इस पावन तट ने श्री परमहंस विभूतियों का अभिवादन श्री आनन्दसर की उठती हुई कलोल भरी लहरों से किया । आज श्री आनन्दसर भी मानो हर्ष में झूम उठा कि श्री परमहंसों की दिव्य आभा लिए इस झांकी ने उसे भी कृतार्थ किया है । यहां यह दिव्य झांकी पन्द्रह-बीस मिनट रुक कर पुनः श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के मार्ग पर चलती हुई श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में पहुँची ।

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी ने निज कर कमलों से इन दिव्य सुषमायुक्त श्री मूर्तियों को श्री वचनानुसार श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में विराजमान किया। फिर श्री आरति-पूजा का कार्यक्रम आरम्भ हुआ । आप साथ ही बनी हुई चौकी पर विराजमान हुए । यहाँ पर श्री आरति-पूजा के कार्यक्रम के पश्चात् प्रसाद बांटा गया । तत्पश्चात् 'श्री आनन्द शान्ति भवन' में श्री आरति-पूजा का कार्यक्रम किया गया । इसी दिन ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा भी करवाया गया, जो पुरातन मर्यादानुसार वैशाखी के शुभ पर्व पर १४ अप्रैल को किया जाता है । उसी दिन से अब तक प्रातः श्री आरति-पूजा श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में तथा सायंकालीन आरति-पूजा श्री आनन्द शान्ति भवन में नियमानुसार हो रही है और होती रहेगी ।

अब आपकी श्री मौज श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री आनन्द शान्ति भवन को एक विशाल भवन बनवाने की

हुई। आपकी यह श्री मौज थी कि यह स्थान अत्यन्त सुन्दर और नई रूपरेखा से तैयार हो। इसलिए इन रूप रेखाओं को तैयार कराने तथा पास कराने में तीन चार मास से अधिक समय लग गया। इस रूप रेखा के बन जाने पर आपने आश्विन संक्रान्ति संवत् २०२१ तदनुसार १६ सितम्बर १९६४ दिनांक बुधवार भाद्रपद शुक्ला भादों दसमी को इस पावन स्थान की नींव निज कर कमलों से रखी तथा इस का उद्घाटन किया। आप ने श्री प्रवचन फ़रमाए—"इस सुरम्य भवन के निर्माण में चाहे कितना ही समय क्यों न लगे, परन्तु यह भवन अत्यन्त अनुपम होना चाहिये।"

आप की श्री मौज के अनुसार इस भव्य भवन का निर्माण आरम्भ हो गया। इस सारे भवन को अति सुरम्य संगमरमर की शिलाओं से तैयार करना था। यह कार्य शीघ्र न होने वाला था अतः यह कार्य धीरे धीरे चलता रहा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी इस कार्य की पूर्ति करवा रहे हैं।

अब आप की मौज इस हॉल कमरे को बड़ा बनाने की हुई जहाँ बड़े हॉल कमरे में श्री दर्शन खुलते हैं, यह हॉल कमरा २०-२१ वर्ष पहले बना था। श्री आनन्दपुर दरबार से भक्ति की दिव्य किरणें भारत के कोने कोने में जगमगा उठीं। श्री आनन्दपुर में आने वाले जिज्ञासुओं के लिए यह स्थान अब छोटा था। इस हॉल कमरे की छत भी टीनों की थी। अतः इसे हवादार भव्य भवन बनाने के लिए इस की नींव आप ने निज कर कमलों से १५ दिसम्बर सन् १९६८ संक्रान्ति पौष रविवार को रखी। इस का निर्माण कार्य आरम्भ करवाया। इसके अतिरिक्त आवास योग्य तथा अन्यान्य आवश्यक स्थानों का निर्माण कार्य भी चलता रहा।

श्री आनन्दपुर के निर्माण कार्य की अपेक्षा आप ने गुरुमुखों के जीवन को उच्च आदर्शों में ढालने पर अधिक बल दिया। प्रत्येक कार्य नियमानुसार करना तथा कराना अर्थात् समय की पाबन्दी आपने जीवन का मुख्य अंग बताया। जिस किसी प्रेमी को भी विशेष समय देना हो अथवा श्री दर्शन का समय तथा अन्यान्य कार्य करने हों आप समय-पालन को विशेष महत्त्व देते थे। आप

फ़रमाया करते थे कि जो समय का पाबन्द नहीं उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कठिनाई का सामना करना पड़ेगा।

एक बार एक प्रेमी ने आपके श्री चरणों में विनय की कि प्रभो ! मेरा भजन-अभ्यास में दिल नहीं लगता। मन को काफ़ी एकाग्र करता हूँ परन्तु न जाने क्यों यह एकाग्र ही नहीं होता। आपने श्री प्रवचन फ़रमाये कि "यदि तुम भजन भी करते हो और फिर भी यही शिकायत है कि भजन में मन नहीं लगता तो इसका एक ही कारण है कि तुम नियमानुसार प्रतिदिन भजनाभ्यास नहीं करते हो। जैसे सरकारी कर्मचारी को नियमानुसार निश्चित समय कार्यालय में देना होता है। तभी उसे वेतन मिल पाता है। इसी प्रकार तुम यदि भजनाभ्यास को भी नियम-अनुसार करो तथा निर्धारित समय से पहले अपने आसन से उठने का प्रयत्न न करो तो देखो कैसे यह मन भजननाभ्यास में नहीं लगता है ? उस समय जबकि भजनाभ्यास में बैठो तब कोई भी अन्य कार्य की चिन्ता साथ लेकर न बैठो।"

इन श्री प्रवचनों को श्रवण कर उस प्रेमी ने नतमस्तक हो वन्दना की तथा घर जाकर श्री वचनानुसार वह भजनाभ्यास करने लगा। कुछ ही समय के पश्चात् जब वह पुनः श्री दर्शन के लिये आया तो श्री चरणों में उसने विनय की कि प्रभो ! आपके श्री वचनों पर चलने से जो मुझे अपूर्व आनन्द की प्राप्ति हुई है उसके लिये मैं जन्म जन्मों तक आपका कृतज्ञ हूँ। वह प्रेमी इस दिव्य आनन्द को पाकर प्रसन्नता में झूम उठा तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन गुणानुवाद गाने लगा।

आप श्री आनन्दपुर में प्रत्येक पर्व पर अर्थात् वैशाखी, व्यासपूजा, दीपावली तथा माघी पर्व मनाने के लिये आते थे। आप पर्वों पर श्री अमृत प्रवचन फ़रमाते थे तथा वैसे भी कई बार निजी मौज में शरणागतों के लिये विशेष रूप से प्रवचन होते थे। एक बार आपने श्री आनन्दपुर के शरणागतों को एकत्र कर श्री वचन फ़रमायेः—

"गुरुमुखो ! श्री आनन्दपुर दरबार सारी सृष्टि में रुहानियत की शिक्षा के

लिये सर्वोच्च है। फिर इस दरबार में शरणागति लेना उच्च भाग्यों की निशानी है। जिस गुरुमुख प्रेमी को भी अपने जीवन के कल्याण की अभिलाषा हो वह इन चार बातों को नित्यप्रति, हर समय, हर घड़ी स्मरण रखा करे। इन चार बातों को आचरण में लाने के लिए कोई बहुत बड़ा काम नहीं करना। ये बातें साधारण सी हैं, पर हैं महत्त्वपूर्ण। वे चार बातें कौन सी हैं?

१. दरबार की हितचिन्ता (ख़ैरख़्वाही), २. सच्चाई, ३. सुमति, ४. समय की क़द्र।

१. दरबार की हित चिन्ता:—जिन साधनों से तुम्हारी भक्ति सुदृढ़ हो, उन्हें अपनाओ। दरबार के प्रत्येक नियम को आचरण में लाओ। किसी कार्य के करने में तुम्हारी हानि हो अथवा दरबार की हानि हो, उस कार्य को कदापि न करो।

२. सच्चाई:—जहां तक भी हो सके अपने जीवन को सत्य के सांचे में ढालो। यदि तुम्हारा जीवन आचरण रूप में ढला हुआ होगा तो तुम्हारा हृदय शुद्ध होकर शब्द में लगेगा। तुम्हारी वाणी में शक्ति व रस आने लगेगा। महापुरुषों के वचन हैं:—

सच्चाई को रखो हमेशा अज़ीज़।
सच्चाई बराबर नहीं कोई चीज़॥
सच्चाई से होती है दिल की सफ़ाई।
सच्चाई बुज़ुर्गों ने है आज़माई॥

सच्चाई पर बुज़ुर्गों ने आचरण करके पुनः सब को बताया है कि सच्चाई के समान दुनिया में कोई वस्तु नहीं। इसीलिए मुख से सदा सत्य वचन कहो। सत्य व्यवहार करो फिर देखो कि इसका परिणाम क्या अनूठा रंग लाता है।

३. सुमति—सुमति से रहो। यही दुनिया के सामने एक आदर्श दिखाओ। सांसारिक सुखैश्वर्य छोड़ कर भक्ति के अभिलाषी बन कर इस दरबार में आए हो।

आप सब गुरुमुख सद्‌गुरु के सेवक हो। सुमति से सब काम करने हैं। जहां सुमति हो वहां ईर्ष्या, वैर-विरोध कुछ भी नहीं रहता। वहां तो प्रेम ही प्रेम, आनन्द ही आनन्द हर समय बरसता है। श्री रामायण में भी लिखा है कि:--

॥ चौपाई ॥

जहां सुमति तहँ सम्पति नाना ।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना ॥

आप सब जानते ही हैं कि लंका के राजा रावण का क्या हाल हुआ। वह इतना पण्डित विद्वान् था, परन्तु वहां जब कुमति ने डेरे डाल लिए तो सोने की लंका जल कर राख हो गई। कुमति से अपने हृदय में भी अशान्ति, चिन्ता, कल्पना पैदा हो ज़ाती है; जिस से शब्द में सुरति नहीं लगती और मन वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है।

४. समय की कद्र:--समय का सदुपयोग करो। तुम्हें मालूम नहीं कि गुरुमुखों का समय कितना कीमती है। इस मनुष्य जन्म का मिलना करोड़ों जन्मों के पुण्यों का फल है। फिर इस मानव-जन्म के एक एक श्वास का मूल्य तीन लोक, चौदह भुवन, दो जहान से भी बढ़ कर है। अब सोचना यह है कि जीवन का एक एक श्वास कैसे जा रहा है और कैसे जाना चाहिये? गुरुमुख का प्रत्येक श्वास सेवा, भजन, सत्संग में लगना चाहिए। यदि इन तीनों कार्यों से समय शेष हो तो आराम करो, जिससे शरीर नीरोग रहे और इन कार्यों को करने में भी सफलता प्राप्त हो। व्यर्थ की निन्दा चुगली में समय व्यर्थ न गंवाओ। किसी के अवगुण न देखो। दूसरे के अवगुणों पर ध्यान देने से अपने हृदय रूपी दर्पण पर मैल आ जाती है। अतः दूसरों की मलीनता अपने अन्दर न भरो। हृदय में सद्‌गुरु का ध्यान बसाओ।

अतएव इन चार बातों को आचरण रूप में लाना है। इन्हें सदा स्मरण रखना है। कथनीमात्र से नहीं अपितु करनी रूप में। इन बातों के आचरण से

प्रत्येक गुरुमुख सुख-शान्ति-आनन्द की ज़िन्दगी व्यतीत कर सकता है। मानव जन्म की प्राप्ति के पश्चात् शुभ कर्मों से सन्त-सत्पुरुषों की संगति मिली है, अतः भक्ति के आनन्दमय स्रोत को प्राप्त करो। यही जीवन का सच्चा लाभ है।"

इस प्रकार आप यथोचित प्रवचनोपदेश श्री आनन्दपुर के निवासियों तथा सर्वसाधारण जिज्ञासुओं के सम्मुख फ़रमाया करते थे। आप की वाणी में माधुर्य तथा ओज था। आपके उपदेशों का प्रभाव श्रोताओं के हृदय में पूर्ण रूप से पड़ता था। आप इन नियमों का परिपालन परिपूर्ण रूप से कराने के लिए उपदेश दिया करते थे। श्री आनन्दपुर के निवासियों तथा बाहर से आए जिज्ञासुओं, संगतों को आपने भक्ति का अन्तर्मुखी मार्ग दर्शा कर सब को कृतार्थ किया।

आप ने एक विशेष कार्य यह भी किया कि पहले श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने श्री आनन्दपुर की चल-अचल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिये श्री आनन्दपुर ट्रस्ट की स्थापना की थी। इसी श्री आनन्दपुर सम्प्रदाय से सम्बन्धित कुछ सत्संग आश्रम अभी ट्रस्ट के नाम नहीं हुए थे, आपने सब आश्रमों को ट्रस्ट के नाम करवा कर उन को सुरक्षित करवा दिया।

सन्त महापुरुषों के सम्बन्ध में क्योंकि यह आदिकाल से नियम चला आ रहा है कि वे अपने तद्रूप ध्येय-पूरक तत्त्व दर्शी शिष्य को प्रथम दृष्टि में ही पहचान जाते हैं। इस नियमानुसार श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक श्री स्वामी दर्शन पूर्ण आनन्द जी महाराज को प्रथम दृष्टि में पहचान कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी को इनके विषय में प्रवचन फ़रमाए थे। आप भी इन (श्री पंचम पादशाही जी महाराज) को विशेष दृष्टि से देखते थे। आप अपने समय में ही इन को सर्व अधिकार देकर इन्हें उच्च पद दे रहे थे।

श्री दरबार के मुख्य प्रबन्धकों की समिति में भी आप (श्री चौथी पादशाही जी महाराज) ने इन को प्रमुख बनाया। इन का निर्णय ही सर्वमान्य था। श्री

आनन्दपुर ट्रस्ट के सदस्यों में भी इन को ही मुख्य माना गया। इस प्रकार दरबार के जितने भी बड़े बड़े कार्य थे इन को ही सर्वोपरि कर दिया। आप स्वयं निज मुख से फ़रमाते थे—"ये (श्री स्वामी जी श्री पंचम पादशाही जी) बड़े गुरुमुख हैं। ये हमें बहुत ही प्रिय लगते हैं। श्री गुरु आज्ञा पालन में तत्पर हैं। सब काम सच्चाई, ख़ैरख़्वाही एवं नेकनीयत से करते हैं।"

आप ने शरणागति को विशाल रूप नहीं दिया। आपके विचारों में जो जीव भक्ति का अत्यधिक अभिलाषी हो, भक्ति मार्ग में आने वाले सुख-दुःख तथा प्रत्येक कष्ट को जिसमें सहन करने की क्षमता हो उसे ही शरणागत बनाते थे। आप थे तो कृपा के भण्डार परन्तु बाहरी रूप से यह जान बूझ कर दर्शाते थे कि भक्ति मार्ग में कठिनाइयां अधिक होती हैं। शरणागतों को प्रायः आप ये प्रवचन फ़रमाया करते थेः——

॥ दोहा ॥

गुरु भक्ति अति कठिन है, ज्यों खाँडे की धार।
बिना साँच पहुँचे नहीं, महा कठिन व्यौहार॥

अर्थात् गुरु—भक्ति का मार्ग तलवार की धार के समान तीक्ष्ण है। सच्चाई पर चलने वाला ही इस मार्ग पर आ सकता है। यहां पर कायरों का काम नहीं है।

अतः आपने प्रबल भक्ति के अभिलाषियों को ही शरणागति प्रदान की।

आप का अप्रैल सन् १९६४ से मई १९७० तक यही कार्यक्रम चलता रहा कि आप प्रत्येक पर्व पर श्री आनन्दपुर पधारते, कुछ दिन यहाँ विराजमान रह कर पुनः श्री प्रयागधाम में आसीन हो जाते। इन दोनों स्थानों पर आपने पारमार्थिक कार्य को उन्नति दी। आप दृढ़ संकल्प के विषय में कई बार श्री सद्वचन फ़रमाते थे कि यदि मनुष्य में किसी कार्य को पूरा करने के लिए दृढ़ संकल्प हो तो कौन सा ऐसा कार्य है जो सिद्ध न हो सके। आप अधिकतर यह शेयर फ़रमाया करते थेः—

॥ शेयर ॥

मुश्किले नेस्त कि आसाँ नशवद ।
मर्द बायद कि हिरासाँ नशवद ॥

अर्थः—ऐसी तो कोई कठिनाई नहीं जिसे सरल न बनाया जा सके। मनुष्य को चाहिए कि वह वीर पुरुष बने तथा कठिनाइयों से कदापि न घबराए। इस पर किसी कवि ने भी कहा है किः—

॥ शेयर ॥

हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता ।
वह कौन सा उकदा है जो वा हो नहीं सकता ॥

अर्थात् कोई भी ऐसा कार्य नहीं जो मनुष्य के लिए असम्भव हो। केवल आवश्यकता है दृढ़-संकल्प की।

सन्त महापुरुषों में अलौकिक शक्ति होती है। वे सब कार्य इसी शक्ति से करते हैं परन्तु गुप्त रूप से। बाहरी रूप से तो वे साकार (मानव देह के) रूप में साधारण कार्य करते हुए दिखाई देते हैं। इसी दृढ़-संकल्प की पुष्टि का प्रमाण सब के सम्मुख आपने यों दियाः—

एक बार सन् १९६७ में व्यासपूजा के शुभ पर्व के पश्चात् जब आप श्री प्रयागधाम के लिए श्री आनन्दपुर से प्रस्थान करने लगे तो उस दिन से तीन-चार दिन पहले लगातार खूब वर्षा हो रही थी। श्री आनन्दपुर से लगभग २८ मील की दूरी पर पचावली नदी है जिसमें थोड़ी सी वर्षा होने पर भी बाढ़ आ जाती है, उसे पार करना कठिन हो जाता है। आप ने नियमानुसार कार पर प्रस्थान किया तथा साथ में संगतों की एक बस भी श्री आज्ञानुसार कार के साथ साथ चल दी।

अभी कार श्री आनन्दपुर में पैट्रोल पम्प के समीप पहुँची ही थी कि श्री आनन्दपुर के प्रमुख महात्मा जनों ने सोचा कि इतनी वर्षा हो रही है, अवश्य ही पचावली नदी में बाढ़ आई होगी। सभी महात्मा जन पैट्रोल पम्प पर पहुँचे तथा

वहीं कार रुकवा कर आपके श्री चरणों में विनय की कि प्रभो ! कुछ दिनों के पश्चात् श्री प्रयागधाम जाने का कार्यक्रम बना लेना। शायद पचावली नदी में बाढ़ आई हुई हो। अतः हमारी यह विनय है कि आप अभी श्री आनन्दपुर में कृपा करें। आपने फ़रमाया–"अब हमने जाने का संकल्प कर लिया है, अतएव इस कार्यक्रम को नहीं बदल सकते। जब चले हैं तो श्री प्रयागधाम पहुँच ही जाएंगे।" आप प्रवचन फ़रमा कर चल दिए तथा बस भी कार के साथ साथ चलने लगी।

जब आपकी कार पचावली नदी के समीप पहुँची तो नदी में पानी ख़ूब ज़ोरों से बह रहा था, लेकिन अभी उसमें बाढ़ न आई थी। आपकी कार तथा साथ वाली बस ने ज्यों ही नदी के पुल को पार किया, त्यों ही नदी में एकदम से पानी का प्रवाह अत्यधिक तेज़ हो गया। कार के पार करने के केवल पाँच मिनट पश्चात् ही नदी में बाढ़ आ गई और पानी पुल के ऊपर से गुज़रने लगा। कुछ लोग जो नदी के किनारे किसी कार्यवश खड़े थे, उन्होंने इस दृश्य को देखा। उन के मुंह से अनायास ही ये शब्द निकले कि "शायद महापुरुषों के आगमन की बाट जोह रही थी यह नदी। तभी यह अपनी उछल-कूद को रोके हुई थी।"

तीन चार घण्टे के पश्चात् पुनः श्री आनन्दपुर के मुख्य प्रबन्धकों ने परस्पर परामर्श किया कि शायद पचावली नदी में बाढ़ आ चुकी हो, वहाँ जाकर श्री सद्गुरु दीन दयाल जी को विनय कर लौटा लाएँ। पाँच सात प्रबन्धक ट्रक पर सवार होकर पचावली तक पहुँचे तो वहाँ क्या देखा कि यातायात रुका हुआ है। उन्होंने इधर उधर अपनी बस व कार को देखा। तत्पश्चात् वहां पर किसी से पूछा तो पता चला कि केवल श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कार तथा श्री आनन्दपुर की बस ज्योंही नदी के पुल से पार हुई त्योंही नदी में बाढ़ आ गई। श्री आनन्दपुर के मुख्य प्रबन्धक वहीं से लौट आए।

जब आप श्री प्रयागधाम पहुंचे तो आपने सेवकों को ये श्री प्रवचन फ़रमाए कि देखो ! दृढ़ संकल्प में कितनी शक्ति है। दृढ़ संकल्प से ही मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को भी सरल बना लेता है। यदि जीव दृढ़ संकल्प से भक्ति मार्ग में

चलता जाए तो सफलता उस के कदम अवश्य चूमेगी। दृढ़ संकल्प के आगे दैवी शक्तियां भी स्वयं झुक जाती हैं। महापुरुषों के पास भी दृढ़ संकल्प की ही शक्ति होती है। जिस कार्य को वे आरम्भ करते हैं, उससे पीछे पग नहीं हटाते। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो जाते हैं। इस प्रकार आपने अपने कर्मण्य जीवन से सेवकों को भी परिश्रमी, दृढ़ संकल्पवान् एवं स्वावलम्बी बना दिया।

श्री आनन्दपुर से श्री प्रयागधाम जाते समय तथा वहां से लौटते हुए इतनी लम्बी यात्रा में संगतों की बस को दो स्थानों पर रात्रि समय ठहरना पड़ता था। हर बार यही कठिनाई होती कि कभी तो विश्राम गृह अन्य लोगों द्वारा रुके हुए होते या कई बार अधिक रात्रि होने पर ये बन्द पड़े होते तो अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। आपने श्री प्रयागधाम तथा श्री आनन्दपुर के मार्ग में दो स्थान बनवाए। एक स्थान तो मनमाड रेलवे स्टेशन से १३ मील की दूरी पर सड़क के किनारे पर स्थान येवला ज़िला नासिक में श्री मौज के अनुसार बनाया गया। इस आश्रम का शुभ नाम श्री मुख से 'श्री निजधाम' फ़रमाया। दूसरा स्थान इन्दौर शहर से लगभग २० मील की दूरी पर स्थान राजपुरा की पक्की सड़क से दो फर्लांग की दूरी पर बनवाया। जिसका शुभ नाम श्री मुख से 'श्री सुखधाम' फ़रमाया। इन दोनों स्थानों के बन जाने पर बस द्वारा आने जाने वाली संगत को सुविधा हो गई।

सन्त महापुरुष तो जिस कार्य को करते हैं उसमें सदा रहस्य छिपे ही रहते हैं। इन स्थानों के बन जाने का अभिप्राय केवल संगतों के आराम के साधन तक ही सीमित न रहा अपितु साथ ही इन स्थानों पर आसपास के श्रद्धालु लोग जो भक्ति, परमार्थ के पथ में रुचि रखते थे, वे भी लाभ उठाने लगे। जब भी आप कार में विराजमान होकर श्री आनन्दपुर से श्री प्रयागधाम के लिए पधारते तो मार्ग में मुख्य नगरों में अर्थात् गुना, इन्दौर, अहमदनगर आदि स्थानों पर एक अथवा दो घण्टे ठहर कर गुरुमुख प्रेमियों को श्री दर्शन देकर कृतार्थ करते। श्री अमृत वचनों से मोह माया में जलते हुए हृदयों को शान्त करते। निजधाम तथा सुखधाम

पहुँचने पर समीप के श्रद्धालु प्रेमी श्री दर्शन के लिए आ जाते और रूहानी लाभ प्राप्त करते और अब भी वही परम्परा चल रही है।

अब आपने जो स्थान परमार्थ हेतु बनवाये थे उनका नाम बदलकर नये रूप में प्रस्तुत किया। नया गांव में स्थित आश्रम का नाम तो पहले से ही 'श्री प्रयागधाम' रख दिया। अब अन्य स्थान जैसे पंचगनी ज़िला सितारा में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने एकान्तवास के लिए ख़रीद करवाया था, वह पंचगनी के नाम से पुकारा जाता था, इस आश्रम का नाम आपने 'श्री आनन्दधाम' फ़रमाया। इस प्रकार से आपने सब स्थानों का नाम बदल कर उन्हें नया रूप प्रदान किया। अर्थात् इन स्थानों में स्थित आश्रमों के नाम परिवर्तित होकर इस प्रकार हो गए:—

नया गांव=श्री प्रयागधाम, येवला=श्री निजधाम, राजपुरा=श्री सुखधाम, पंचगनी=श्री आनन्दधाम, उरुली=श्री दयालधाम।

अर्थात् आपने इन आश्रमों में सभी धामों की रचना इस पृथ्वी पर ही दर्शा दी।

श्री प्रयागधाम

सन्त महापुरुष धुरधाम से ही जो सन्देश लेकर इस पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, उसी कार्य की पूर्ति में संलग्न हो जाते हैं। पृथ्वी पर जिस स्थान को उन्होंने श्री चरणारविन्दों से पवित्र करना होता है, ये सब कुछ उन्हें पहले ही ज्ञात होता है। इस गुप्त रहस्य को प्रकट न करते हुए वे गुप्त रूप से अपना कार्य करते जाते हैं। हां! इतना अवश्य होता है कि जिस स्थान पर उन्होंने पदार्पण करना हो वहां जाने के लिए प्रथम कोई न कोई कारण बना देते हैं ताकि लोग उन्हें सरलता से समझ न सकें।

इसी प्रकार आपने भी पारमार्थिक राज्य सिंहासन पर विराजमान होकर वही कुछ किया जो कुछ आप धुरधाम से करने के लिए आए थे। जैसा कि पीछे लिखा

भी जा चुका है कि आप अधिकतर समय श्री प्रयागधाम में व्यतीत करते और हर पर्व पर कुछ दिन के लिए श्री आनन्दपुर में पधारते। श्री प्रयागधाम ने तो मानो आपको हृदय-स्थल पर आसन देकर अपने प्रेम के पाश में बाँध लिया था। आप महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश एवं हैदराबाद आदि के प्रेमियों की अत्यधिक विह्वल पुकार से उन्हें भक्ति का अमृत पिलाने में संलग्न हो गए।

इस के साथ साथ आप ने श्री प्रयागधाम को नव्य भव्य रूप भी देना था। आप श्री आनन्दपुर से प्रस्थान करते समय ५०-६० शरणागत सेवकों को क्रम से बस पर श्री प्रयागधाम के लिए तैयार कर साथ ले जाते। श्री प्रयागधाम में भी प्रेमिजन विनय भरी पत्रिकाओं के द्वारा श्री आज्ञा मंगवा कर श्री दर्शन के लिये आते ही रहते थे। श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी ने श्री प्रयागधाम को प्रारम्भिक प्रारूप दिया। आपने उस पर भव्य भवनों का निर्माण करवाया। श्री प्रयागधाम में बाहर से आई हुई संगतें श्री दर्शन करके तथा आपके द्वारा भक्ति के अनुपम रहस्यों का उद्घाटन किया हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न होतीं। आपने श्री प्रयागधाम में इन नियमों का पूर्णरूप से पालन करवाया:—

१. जो भी प्रेमी गुरुमुख श्री प्रयागधाम में आएँ, उन के लिए चौबीस घण्टों में से एक घण्टा तो भजनाभ्यास करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कोई प्रेमी इस से अधिक भजनाभ्यास करे, उसमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को अधिक प्रसन्नता होगी।

२. दोनों समय श्री आरति में सम्मिलित होकर अटूट श्रद्धा एवं प्रेम से श्री आरति पूजा में दिल लगाना।

३. लंगर की सुव्यवस्था में अत्युत्तम संशोधन कर दिया, दोनों समय लंगर में ही भोजन करना।

४. किसी की निन्दा, चुगली, व्यर्थ की बातों में ध्यान न देकर अधिक से अधिक समय भजनाभ्यास करने में लगाना।

५. सेवा पर निश्चित समय पर पहुँचना तथा हृदय में गुरु सेवा का भाव लेकर निष्काम कर्त्तव्य निभाना।

आप अपनी मौज में कई बार यह वचन फ़रमाया करते थे कि—"पृथ्वी पर अथवा आकाश पर या यूं कहिये कि विश्व में जो कुछ भी दिखाई देता है अर्थात् नदियां, पर्वत, सूर्य, चाँद, सितारे आदि—ये सब जीव के अन्दर हैं। भजन-अभ्यास की कमाई से इन्हें देखा जा सकता है। बाहर तो मैल, गन्दगीयुक्त अशुद्ध पानी की नदियाँ हैं और अन्दर दूध की नदियां बह रही हैं। वृक्षों पर हीरे लाल लटक रहे हैं। पुष्पों की वर्षा हो रही है। जो जीव भजनाभ्यास की कमाई करता है वही इसे देख सकता है। इस से भी अधिक न जाने अन्दर क्या क्या है, उस का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह आनन्द चिरस्थायी तथा शाश्वत है। यह रस श्रवण करने से नहीं अपितु अनुभव करने से आता है। जिस ने भी अन्तर्मुख सुरति कर सहज-समाधि में ध्यान लगाया वही इन दृश्यों को देख सकने में समर्थ हो सकता है। क्योंकि सन्तों ने लिखा भी है कि:—

तेल सुआदु तदाओं आँदा, जाँ घृत सुआदु न लीया।
घृत सुआदु लीआ जद तेली, ताँ बहु बिसमिद थीया॥
कहिंदा घृत अजेहा आहा, ताँ मैं तेल क्यों पीया।
चूहड़ होर रसायन तुच्छ सभ जातो, जाँ नाम रसायन पीया॥

अर्थात् तेल से बनी वस्तुओं को खाने वाले मनुष्य को तब तक वे वस्तुएँ अधिक स्वादिष्ठ लगती हैं, जब तक उसने घी से बनी हुई वस्तुओं को नहीं खाया। जब उसने घी से बनी हुई वस्तुएँ खा कर देखीं तो वह हैरान रह गया और कहने लगा कि यदि मुझे यह पता होता कि घी का स्वाद ऐसा होता है तो मैं तेल से बनी वस्तुएँ कदापि न खाता। सन्त फ़रमाते हैं कि जब नाम रूपी रसायन का आनन्द अनुभव होने लगता है तो शेष सभी रसायन तुच्छ भासने लगते हैं, उनका स्वाद फीका हो जाता है।

अर्थात् जब तक जीव माया के घेरे में फँसा हुआ है तब तक इसे संसारी

सुखैश्वर्य अत्युत्तम लगते हैं परन्तु जब सन्त महापुरुषों की चरण-शरण ग्रहण कर लेता है और भक्ति का आनन्द प्राप्त कर लेता है तो इसे विदित होता है कि भक्ति में कितना आनन्द है ? तब ग़फ़लत में बिताए हुए समय के लिए पश्चात्ताप करता है। जब तक सुरति अन्तर्मुख होकर आन्तरिक दृश्यों को नहीं देखती, तब तक इसे दुनियावी सुखैश्वर्य फीके नहीं लगते। अतः सुरति को बाह्य पदार्थों से हटा कर अन्तर्मुख करना ही गुरुमुख का कर्त्तव्य है और परम धर्म है।"

आप ने समय समय पर श्री पावन वचन फ़रमा कर प्रेमियों को परमार्थ लाभ कराया तथा साथ साथ में श्री प्रयागधाम में श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री वचनानुसार निर्माण कार्य करवाते गए। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के समय में श्री दर्शनों के लिये छोटा हॉल कमरा तथा निवास के लिये कुछ कमरों का निर्माण हुआ था। अब चूँकि सम्पूर्ण महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश व अन्य कई शहरों में भक्ति-परमार्थ की ज्योति की किरणें तीव्र गति से प्रकाश फैला रही थीं, अतः श्री दर्शनों के लिए यह हॉल कमरा अब छोटा था। आपने इस हॉल कमरे को एक भव्य विशाल भवन के रूप में बनवाने की योजना बनाई। अतः इस हॉल कमरे की नींव की खुदाई तथा दीवारें एक वर्ष में तैय्यार हो गईं।

सन् १६६८ में आपने इस हॉल कमरे की छत के लिंटल का मुहूर्त्त किया। आप मिक्सचर मशीन के समीप विराजमान हो गये। सेवकजन आपके सम्मुख खड़े थे। आपने सेवकों को फ़रमाया कि यदि कुछ अन्य मज़दूरों की आवश्यकता हो तो समीपवर्ती गांवों से बुला लाओ। सेवकों ने विनय की कि प्रभो ! आप की कृपा से कार्य सम्पूर्ण हो जाएगा। उपस्थित इंजीनियरों ने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो ! ये तो केवल ५०–६० व्यक्ति हैं तथा साथ में अन्य नौकरों को मिलाने से केवल ८०–६० ही होंगे। यह कार्य बहुत बड़ा है। इस प्रकार तो तीन चार दिन इस कार्य में लग जाएँगे। आपने फ़रमाया कि कार्य आरम्भ करो कुदरत स्वयं सहायता करेगी। आपने निज कर-कमलों से सबको प्रसाद दिया। प्रेमियों गुरुमुखों में नव-उत्साह का संचार हो गया।

कार्य आरम्भ हो गया। आप समीप ही विराजमान रहे। सेवक अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सेवा के कार्य में जुटे हुए थे। आप उनकी सेवा में उत्साह बढ़ाने के लिये दो-तीन घण्टे बाद क्रम से सात-सात सेवकों को समीप बुलाते तथा उन्हें श्री भोग प्रसाद खिलाते। इस प्रकार प्रेमी सेवक साथ ही साथ श्री दर्शन का आनन्द लेते हुए सेवा में संलग्न रहे। दिन रात एक करके सेवा में जुट जाने से यह कार्य डेढ़ दिन में ही समाप्त हो गया। जब कार्य समाप्त हुआ तो गुरुमुखों ने जयकारों के स्वर से दसों दिशाओं को गुँजा दिया। आपने कार्य की समाप्ति पर सब गुरुमुख प्रेमियों को एकत्र कर श्री वचन फ़रमाये कि:—

"जो गुरुमुख प्रेमी सेवा में भाग लेकर हित चित्त से सेवा करते हैं उनके समान त्रिलोकी में बढ़कर कोई नहीं। क्योंकि गुरु-दरबार की सेवा बड़े पुण्य जन्मों की कमाई से मिलती है। परम सन्त श्री कबीर साहिब जी ने अपनी वाणी में कहा है:—

॥ दोहा ॥

गुरु की सेवा चाकरी, करिए मन चित्त लाय।
कहैं कबीर निज तरन को, नाहीं और उपाय॥
ज्ञान ध्यान अरु योग जप, गुरु सेवा सम नाहिं।
भक्ति मुक्ति और परम पद, सब गुरु सेवा माहिं॥

अर्थात् सद्गुरु की सेवा-टहल आज्ञानुसार मन-चित्त लगा कर करनी चाहिए क्योंकि भवसागर से तरने के लिये इससे उत्तम साधन अन्य नहीं है। ज्ञान, ध्यान, योग व जप-तप—जितने भी साधन हैं—ये गुरु-सेवा की समानता नहीं कर सकते। जो निष्काम भाव से सद्गुरु की सेवा करता है, उसे भक्ति, मुक्ति और परम पद सहज में ही प्राप्त हो जाते हैं।

सब गुरुमुखों की सेवा फल लाई। तुम्हारी सेवा के फलस्वरूप ही यह कार्य शीघ्र पूरा हो गया है। आप के समीप कुछ महात्माजन व भक्तजन खड़े थे। उन्होंने विनय की कि प्रभो! आप की कृपा से ही सब काम पूरा हुआ है। इतना कह कर

सबने दण्डवत्-वन्दना की। आपने फ़रमाया कि शक्ति तो चाहे मालिक की होती है परन्तु स्वामी सदा युग-युगान्तरों से अपने सेवकों का मान बढ़ाते ही आए हैं। जैसे त्रेतायुग में शक्ति तो श्री रामचन्द्र जी महाराज की थी परन्तु उन्होंने सेवकों का मान बढ़ाने के लिए हनुमान् जी की सेवा को प्रमुखता दी। द्वापर में शक्ति तो श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज की थी परन्तु भगवान् ने नाम अर्जुन का ही किया। स्वामी तो सदा सेवकों को उच्च दर्जा देते ही हैं। अतः सेवक बनने के लिए सेवक के सभी कर्त्तव्यों का पालन करते हुए गुरुमुखों ने अपनी मंज़िल तक पहुँचना है।"

इस प्रकार आपने इस हॉल कमरे का निर्माण करवा कर इसे एक भव्य विशाल भवन में तैयार करवाया। इस के अतिरिक्त संगतों के निवास के लिए आपने हवादार विशाल कमरे, भोजनालय (लंगर), स्नानगृह तथा अन्यान्य कई स्थानों की रचनाएँ करवाईं, जिससे कि उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई न हो। साथ ही श्री प्रयागधाम को एक सुन्दर अनुपम रूप देने के लिए पार्क तथा उद्यान बनवाये। इन पार्कों को बनवाने के लिए कितना कठिन परिश्रम करना पड़ा परन्तु आपने फ़रमाया कि हमने इन पत्थरों के स्थानों पर गेहूँ और फूल पैदा करने हैं। आपने सेवकों में उत्साह भर कर स्थान स्थान से पत्थरों के ढेर दूर करवाए। बुल्डोज़र से ज़मीन समतल करवा कर कितनी ही मिट्टी डलवाई और फिर उपज योग्य ज़मीन बनवा कर यहां पर उद्यान, पार्क तथा खेत बनवाए। जिसके फलस्वरूप आज श्री प्रयागधाम एक पारमार्थिक केन्द्र के रूप में अपनी ही शोभा पर इठला रहा है। दर्शनार्थ संगतें इस वातावरण में पहुँचते ही स्वयं कह उठती हैं कि यहां श्री प्रयागधाम में एक अनूठे आनन्द की प्राप्ति होती है। भजनाभ्यास करने के लिए मन स्वयं ही इच्छा करता है। सुरति निर्मल वातावरण को पाकर स्वतन्त्र होकर स्वयं शब्द में लीन होकर आनन्द प्राप्त करती है। यह सब प्रताप था आपके भजनाभ्यास के नियम को पूर्ण रूप से परिपालन करवाने का।

अब भी श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी इस पारमार्थिक केन्द्र श्री प्रयागधाम को और भी विशाल रूप देने में निरत हैं। आवास

स्थान का क्षेत्र दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई संगतों के लिए छोटा होने के कारण उसे भी विशाल रूप दिया अर्थात् पहले श्री प्रयागधाम के एक ओर ही कमरों का निर्माण हुआ था अब पूरे क्षेत्र में निर्माण-कार्य हुआ है जिससे अब हज़ारों की संख्या में दर्शनार्थी संगतें ठहर सकती हैं। एक बड़ा 'सत्संग हाल' तथा सुन्दर पार्क व उद्यान भी बनाए गए हैं।

आपने यहां पर श्री आरति-पूजन के लिए 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' की नींव का मुहूर्त्त १६ अगस्त सन् १९७१ ई० सोमवार के शुभ दिन निज कर कमलों से किया। यहां की ज़मीन अत्यन्त पथरीली (चट्टानी) होने के कारण इस के निर्माण में साढ़े पांच वर्ष लग गए। अतः यह 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' सन् १९७६ में भव्य रूप में निर्मित होकर तैयार हो गया।

दिनांक १४ जनवरी सन् १९७६ बुधवार माघी के शुभ पर्व पर प्रातः छः बजे श्री हुज़ूर दाता दयाल जी ने निज कर कमलों से श्री परमहंस महान विभूतियों की प्रतिमाएँ इस में विराजित कीं। तदुपरान्त श्री आरति-पूजा का कार्य-क्रम हुआ।

आरति-पूजन के पश्चात् श्री परमहंस महान विभूतियों की स्तुति में भजन गाए गए। इस के पश्चात् श्री सद्गुरु दाता दयाल जी ने श्री मुख से प्रवचन फ़रमाए—

"गुरुमुखो! मोह ममता की धधकती हुई अग्नि में सारा संसार जल रहा है। नाम मात्र को भी सुख शान्ति प्राप्त नहीं है मगर आन्तरिक तौर पर सुख की सब को इच्छा है।

सन्त महापुरुष संसार में प्रकट होते हैं और दुःखी जीवों की हालत देख सुख शान्ति (भक्ति) का मार्ग दर्शा कर उन्हें शान्त करते हैं। सत्पुरुषों का वास्तव में यही मिशन होता है कि मोह माया की लपेट में आए हुए जीव सद्मार्ग अपना कर सुखी हो जाएं। इसी हेतु ही अत्यन्त परिश्रम व उत्साहपूर्वक आज के दिन महापुरुषों की पवित्र भूमि 'श्री प्रयागधाम' में श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की स्थापना

कर इस परमहंस अद्वैत मत के उन्नायक श्री प्रथम पादशाही जी महाराज, श्री द्वितीय पादशाही जी महाराज, श्री तृतीय पादशाही जी महाराज व श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज जी की दिव्य प्रतिमाएँ विराजमान की गई हैं ।

यहां पर नित्य प्रति आज से ही श्री आरति-पूजा का नियम आरम्भ कर दिया गया है जिस से कि आत्मा प्रफुल्लित होती है और अन्तरात्मा में खुशी भर जाती है ।

जिज्ञासुजन नित्यप्रति आरति-पूजा, ध्यान, भजनाभ्यास करके अपने हृदय को निर्मल बना कर सच्चे सुख व शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं। प्रेमिजन जो भी हों चाहे स्थायी हों, चाहे देश से चाहे विदेश से आए हुए हों—श्री मन्दिर जी के दर्शन पाकर व आरति-पूजा कर तथा सत्पुरुषों के पावन वचनों की गंगा में स्नान कर अपने आपको पवित्र व निर्मल बना कर सच्चे सुख व शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं । इस लोक में भी सुखी जीवन व्यतीत कर परलोक भी संवार लेते हैं ।

इस के पश्चात् यह भी फ़रमाया कि इस 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' में सर्वदा के लिए दोनों समय प्रातः व सायं आरति-पूजा का नियम चलता रहेगा ।" अतः उसी नियमानुसार चल भी रहा है। अन्त में प्रसाद बाँटा गया व सब संगत प्रसन्नचित्त गुरु-महिमा का गायन करती हुई कृतकृत्य हो गई ।

कुछ झलकियां

१. एक बार एक भक्त जी के दिल में विचार आया कि नाम तो एक ही है इसे प्रतिदिन नियमपूर्वक जपना क्यों आवश्यक है ? उस ने एक दिन समय पाकर आप के श्री चरणों में इस विचार के विषय में निवेदन किया। आप ने प्रवचन फ़रमाए किः—

॥ शेयर ॥

हम चूँ आहन गर चे तीरा हैकले ।
सैकले कुन सैकले कुन सैकले ॥

जिस प्रकार लोहे पर ज़ंग चढ़ने से लोहा काला हो जाता है। यदि उस को साफ़ करना हो तो उसे बार बार रगड़ो, रगड़ से ही ज़ंग दूर होगा और लोहा चमकीला व साफ़ निकल आएगा। वैसे ही मन पर आए हुए विषय-विकारों के ज़ंग को दूर करने के लिये भजनाभ्यास को लगातार करना आवश्यक है। तभी आत्मदृष्टि प्राप्त हो सकेगी। यह जीव जन्म-जन्मान्तरों से काल माया के चक्र में फँसा हुआ है। इस के मन पर मोह-माया का गहरा ज़ंग चढ़ गया है। उस ज़ंग को मिटाने के लिये नाम की रगड़ से मन को मांजते जाओगे, यह स्वच्छ और निर्मल हो कर आनन्द के धाम में पहुँचने में समर्थ हो सकेगा। इसीलिये निरन्तर नाम का सुमिरण करना आवश्यक है।

अथवा यों समझो कि जैसे घर की सफ़ाई नित्यप्रति न की जाए तो घर में कितना कूड़ा करकट जमा हो जाएगा जिसे साफ़ करना मुश्किल हो जाएगा। इसी प्रकार मन की सफ़ाई भी नित्यप्रति होनी आवश्यक है।

२. आप प्रायः फ़रमाया करते थे कि जो जीव हृदय से दृढ़ निश्चय से जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहे कर सकता है। इस के लिए केवल यह बात आवश्यक है कि श्रद्धा-विश्वास अटूट हो। जब भी प्रेमी प्रियतम को प्राप्त करने की चाह करे, उस की विनय में आर्त्त स्वर, हार्दिक वेदना तथा दृढ़ विश्वास समाहित हो तो फिर इष्टदेव को भी विश्राम नहीं आता। प्रियतम सदा प्रेमियों की तारों में बंधे हुये होते हैं। इसी का ही एक प्रत्यक्ष रूप यह है कि:—

आप श्री प्रयागधाम से श्री आनन्दधाम (पंचगनी) में मई जून के मास में जाया करते थे। साथ ही आप का यह नियम था कि श्री प्रयागधाम में हर रविवार को भण्डारा किया करते थे। अतः श्री आनन्दधाम के लिये आप सोमवार के दिन प्रस्थान करते तथा शनिवार के दिन पुनः श्री प्रयागधाम में कृपा करते थे। आप अपने नियमानुसार श्री आनन्दधाम में विराजमान थे।

एक बार एक प्रेमी श्रद्धालु भक्त तोला राम जी जो भारत से उद्योग धन्धे के लिए स्पेन गए हुए थे, वहाँ से भारत में किसी कार्यवश तथा सम्बन्धियों को

मिलने के लिए आए। उनके सम्बन्धी तथा माता पिता देवास (म० प्र०) में रहते थे। भक्त जी के दिल में गुरु-भक्ति व सद्गुरु-प्रेम की चाह अत्यधिक थी। उन्होंने स्पेन में भी आरति-पूजा का कार्यक्रम नियमानुसार बनाए रखा। उनके दिल में श्रद्धा तथा प्रेम की एक लहर भूमी कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पहले श्री दर्शन करके फिर घर जाना चाहिए। वे स्पेन से बम्बई पहुँचे तो उन्हें किसी प्रेमी से यह भी सूचना मिल गई कि श्री सद्गुरु दीन दयाल जी श्री प्रयागधाम में विराजमान हैं। वे शीघ्र ही बम्बई से श्री प्रयागधाम के लिए चल पड़े।

मार्ग में भक्त जी ने मन ही मन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरण-कमलों में कितनी ही विनतियां भेजीं। कितनी बार ही वन्दना की तथा श्री दर्शन की तीव्र अभिलाषा आँखों से प्रेमाश्रु बहा कर व्यक्त की। यह प्रेम की तार तो श्री आनन्द धाम में विराजित श्री सद्गुरु दीन दयाल जी (श्री चौथी पादशाही जी) तक पहुँच गई परन्तु बाहरी रूप से अभी परीक्षा शेष थी।

जिस समय वह प्रेमी श्री प्रयागधाम में पहुंचा, उस समय अभी प्रातः दस बजे का समय था। श्री प्रयागधाम में पहुँचते ही उसे पता चला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दधाम को कृतार्थ कर रहे हैं। दिल से एक गहरी ठंडी सांस निकली। यहां पर अन्य महात्माजन एवं भक्तजन जो सेवा के लिए ठहरे हुए थे उन्होंने भक्त जी को काफ़ी समझाया कि श्री सद्गुरु दीन दयाल जी तो शनिवार यहां कृपा करेंगे, कोई एक दो घण्टे की तो बात नहीं। यात्रा की थकावट भी होगी, अतः भोजन कर विश्राम करो। भक्त जी ने एक ही उत्तर दिया कि मैं श्री दर्शन के बिना भोजन बिल्कुल न करूँगा।

उधर उसी दिन बुधवार प्रातः होते ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने निजी सेवादारों को फ़रमाया कि आज हमें श्री प्रयागधाम में अत्यावश्यक कार्य है, इस लिए हमें शीघ्र ही वहां जाना है। अतः बिना कोई सूचना दिए ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कार सायंकाल के समय श्री प्रयागधाम में पहुँच ही गई। सभी प्रेमी भक्त प्रसन्नता में झूम उठे। भक्त तोलाराम जी के हर्ष की सीमा न रही।

आपने पहुँचते ही फ़रमाया—"भक्त तोलाराम जी ! क्या हाल है ?" उन्होंने गद्गद कण्ठ से उत्तर दिया कि अन्तर्यामी प्रभो ! आप सब कुछ जानते हैं। आप की ही कृपा है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सभी प्रेमी गुरुमुखों के सम्मुख ये श्री प्रवचन फ़रमाए किः—

"जब कोई प्रेमी अपने हृदय में केवल सद्गुरु को स्थान देकर उन्हें आतुरता से पुकारता है तो सद्गुरु को भी प्रेमी की भावना को पूरा करने के लिए आना ही पड़ता है। आवश्यकता है केवल सुरति को एकाग्र कर सद्गुरु के ध्यान में विलीन कर देने की। दृढ़ निष्ठा तथा अचल विश्वास ही प्रेमी के इष्टदेव तक पहुँचने की सीढ़ी है।" श्री प्रवचन श्रवण कर तथा श्री दर्शन कर भक्त जी ने भोजन किया तथा दो दिन श्री प्रयागधाम में ठहर कर पुनः श्री आज्ञा लेकर अपने घर देवास चले गये। सन्त दया बाई जी ने प्रेम का वर्णन इस प्रकार किया हैः-

॥ दोहा ॥

प्रेम पुंज प्रगटै जहां, तहाँ प्रगट हरि होय ।
'दया' दया करि देत हैं, श्री दर्सन हरि सोय ॥

अर्थात् जिस हृदय में अत्यधिक प्रेम प्रकट होता है वहां भगवान् स्वयं प्रकट हो जाते हैं। सन्त दया बाई जी कहती हैं कि मालिक की दया से उसे श्री दर्शन हो जाते हैं परन्तु आवश्यकता है केवल यथार्थ प्रेम की।

३. इसी प्रकार एक बार फिर श्री सद्गुरु दीन दयाल जी श्री आनन्दधाम में विराजमान थे। महात्मा सुखसागरानन्द जी के उपदेशी एक भक्त पारसी जी थे। वे विलायत में रहते थे। जब वे भारत में आने लगे तो एक दो अंग्रेज़ उनके साथ भारत यात्रा के लिए आए। उन्होंने भक्त पारसी जी से कहा कि हमारा दिल चाहता है कि हम भी भारत के किसी महापुरुष के दर्शन करें। भक्त जी उस समय तो चुप रहे परन्तु ज्यों ही बम्बई पहुँचे तो उन्हें पता चला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दधाम में विराजमान हैं। वे सीधा ही उन अंग्रेज़ों को साथ लेकर श्री आनन्दधाम पहुँचे। श्री हुज़ूरी में उपस्थित होकर उस ने अंग्रेज़ों को

इंगलिश में कहा कि यह लो, अपने मन की भावना को पूर्ण कर लो। ये महापुरुष आपके सामने विराजमान हैं।

उन अंग्रेज़ों ने सचमुच ही आपको पाकर हृदय में आनन्द का अनुभव किया। उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा में विनय की तथा भक्त पारसी जी ने हिन्दी में अनुवाद किया। इसके साथ साथ उसने प्रवचनों का भी अंग्रेज़ी में अनुवाद कर उनको सद्वचन सुनाए। उन्होंने विनय की कि भगवन्! विलायत में शारीरिक सुखैश्वर्यों की तो कमी नहीं परन्तु आत्मिक-शान्ति के साधन सुलभ नहीं। वहाँ तो आध्यात्मिकता की ओर किसी का ख़्याल कम ही जाता है। अतएव ऐसा आत्मिक आनन्द सुलभ नहीं होता जैसा कि यहाँ उपलब्ध हो रहा है। आपने फ़रमायाः—

"सूर्य की किरणों से यदि कोई शीतलता प्राप्त करना चाहे तथा चन्द्रमा की किरणों से यदि कोई उष्णता प्राप्त करना चाहे तो ये उसे कदापि नहीं मिल सकते। यदि कोई शारीरिक सुखैश्वर्यों में मानसिक आनन्द की खोज करे तो उसे प्राप्त होना असम्भव है। इच्छाएँ तृष्णा रूपी अग्नि के लिये ईंधन हैं। जितनी इच्छाएँ बढ़ती जाएँगी उतनी तृष्णा रूपी अग्नि प्रचण्ड होती जाएगी। अतः इस अग्नि को शान्त करने के लिये सन्त-सत्पुरुष ज्ञान-अमृत की धारा प्रवाहित करते हैं। जो जीव इस धारा में मज्जन करते हैं वे आनन्द तथा शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं। महापुरुषों की संगति से ही अन्तर्दृष्टि खुलती है जिससे वास्तविक सुख का अनुभव होता है।"

उन अंग्रेज़ों ने इन पावन वचनों को भक्त पारसी जी से इंगलिश में श्रवण किया तथा दो तीन घण्टे के बाद नाम दीक्षा लेकर वहाँ से चल दिये। मार्ग में भक्त पारसी जी को धन्यवाद देते हुये उन्होंने कहा कि सचमुच ही ये पहुँचे हुए महापुरुष हैं। मुख मण्डल की आभा इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

४. आप इसी प्रकार एक बार श्री आनन्दधाम में विराजमान थे। आपने श्री प्रयागधाम से ३०—४० महात्माओं तथा शरणागत भक्तों को निजी मौज के अनुसार

श्री आनन्द धाम में बुलवाया । श्री आज्ञानुसार महात्माजन तथा भक्तजन अपनी ही बस पर श्री आनन्दधाम पहुँचे । वहाँ श्री आज्ञानुसार सेवा में जुट गये ।

एक दिन आपने निजी मौज में फ़रमाया कि चलो तुम्हें भ्रमण के लिये कहीं ले चलें । आगे आगे कार तथा पीछे पीछे महात्माजनों तथा भक्तजनों की बस चल दी। महाबलेश्वर में एक उद्यान के समीप आपने कार रोक ली तथा वहाँ ठहरने की श्री आज्ञा फ़रमाई । आपने सब को उस स्थान का भ्रमण कराया तथा एक स्थान पर कुर्सी पर विराजमान होकर सेवकों को पावन वचनों से कृतार्थ करने लगे । आप ने प्रवचन फ़रमाए—"देखो ! यही स्थान पहले अन्य पहाड़ियों की तरह असम (ऊँचा-नीचा) था । इस स्थान को समतल बना कर यहाँ उद्यान बना दिया गया है । अब यहाँ से कितनी सुगन्धि आ रही है, जो बरबस ही यात्रियों को उद्यान देखने के लिये अपनी ओर आकर्षित करती है । इस सुगन्धि से हृदय में उल्लास तथा आनन्द भर जाता है । ऐसे ही यदि भक्ति मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को साधक पार करता है, सद्गुरु की आज्ञा एवं मौज में जीवन ढाल कर भक्ति के लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तो वह सदा के लिए एकरस आनन्द को प्राप्त करता है । उसके अचरणमय जीवन का अन्य लोगों पर स्वयं प्रभाव पड़ता है, जिस से अन्य जीव भी उस भक्तिमान् पुरुष से लाभ उठा सकते हैं । अतः गुरुमुखों को सदा अपने लक्ष्य पर ध्यान रखते हुये अपने लक्ष्य पर पहुँचना है ।"

सभी गुरुमुखों ने श्री पावन वचनों का पान कर श्री वचनानुसार जीवन बनाने के लिये हृदय में दृढ़ संकल्प किया । आप वहाँ से सभी सेवकों सहित सायं समय श्री आनन्दधाम लौट आए । यहाँ कुछ दिन रह कर पुनः श्री प्रयागधाम में कृपा की ।

आपने श्री प्रयागधाम में कुछ समय कृपा कर पर्व से कुछ दिन पहले श्री आनन्दपुर में कृपा फ़रमाई । यहाँ पर प्रेमी गुरुमुखों को श्री दर्शन से कृतार्थ किया । न जाने आप के हृदय में इतनी शीघ्र प्रेमियों को वियोग देने की मौज क्यों उठी ? आप ने सांकेतिक भाषा में सब कुछ समझा दिया ।

आप इसी बार सन् १९६६ में एक दिन दोपहर के समय कार में विराजमान होकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के 'श्री आनन्द शान्ति भवन' के दाएँ भाग की ओर जो बगीचा था, वहां पर कृपा की। कार से नीचे उतरकर पेड़ की छाया में कुर्सी पर उसी स्थान पर विराजमान हो गए (जहाँ आज कल श्री आनन्द शान्तिधाम में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी की दिव्य प्रतिमा विराजमान है)। उस बग़ीचे में सेवा करने वाले गुरुमुख तो अपने भाग्य मनाने लगे कि आज नयनाभिराम प्रभु जी ने हमें श्री दर्शन का सुअवसर दिया है। इतने में महात्मा नित प्रेमानन्द जी भी वहां आ पहुँचे। आपने महात्मा जी को सब गुरुमुखों के सामने फ़रमाया—"यह स्थान बहुत ही एकान्त है तथा हमें बहुत ही पसन्द है। हमारा ख़्याल है कि हम सदा यहीं पर रहा करें।" सब प्रेमी गुरुमुख तो मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे कि श्री गुरुमहाराज जी हमारे बग़ीचे में नित्य प्रति विराजमान हो कर हमें श्री दर्शन दिया करेंगे परन्तु इस गूढ़ रहस्य की ओर किस का ध्यान जा सकता था कि हमें किस रूप में प्रतिदिन श्री दर्शन हुआ करेंगे और किस दिन के लिए यह स्थान पसन्द किया है।

आपने निज कर कमलों से वहाँ पर प्रसाद भी बांटा तथा पुनः मुस्कराते हुए फ़रमाया कि अच्छा! हम यहीं पर दर्शन दिया करेंगे। थोड़ी देर यहाँ विराजमान होकर प्रेमियों को प्रसन्न कर आप पुनः कार में विराजमान होकर आवास स्थान पर लौट आए।

आपने जिस ढंग से प्रेमियों गुरुमुखों एवं जिज्ञासुओं को परमार्थ लाभ कराया, उस लाभ का अनुभव जिह्वा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। वैसे तो प्रत्येक महापुरुष परमार्थ लाभ कराने हेतु ही अवतरित होते हैं परन्तु प्रत्येक महापुरुष अपने ही ढंग से भक्ति की अमृत धारा प्रवाहित करते हैं। आपने भी अपने ही ढंग से इस ज्योति को जन जन के हृदय में प्रकाशित किया, जन जन को भक्ति का अमृत पिलाया। आपने अन्तर्दृष्टि उघाड़ने के लिए भजन-अभ्यास पर ज़ोर देकर प्रत्येक गुरुमुख की सुरति में क्रान्ति ला दी। श्री आनन्दपुर तथा श्री प्रयागधाम में अथवा

अन्य स्थानों पर भी आप भजनाभ्यास के विषय में ही अधिकतर अरशाद फ़रमाया करते थे। आपने कई बार इस प्रवचन को दोहराया:—

"भजनाभ्यास के बिना यदि कोई अपना कल्याण चाहे तो यह कठिन बात है।" आप ने एक बार शरणागत मण्डली को एकत्र कर अरशाद फ़रमाये:—

"गुरुमुखों को विचार करना चाहिए कि मानव जीवन कितना बहुमूल्य तथा दुर्लभ है। इस का आदर करना उचित है। कृषक यदि काम की ऋतु में ग़फ़लत करे, भूमि की जुताई न करे और बीज न रोपे तो फ़सल कैसे प्राप्त करेगा? महापुरुषों का कथन है:—

जिन्हाँ मग्घर बीज रलाइया, से लुणसिन विच वैसाखि ।
जिनाँ सुतिआँ समै गँवाइया, सिर पाइनि उडाइनि ख़ाकि ॥
जिनाँ बोए अक बबूल फल किथो चासन द्राख ।
एथे करन सो अगे पायन एह वेद सुनायन साख ॥

अर्थात् जैसे किसान यदि मग्घर मास में खेत में बीज डाले तो वैशाख में फसल प्राप्त कर सकता है। जिसने बीज बोने के समय गफ़लत की, धरती में बीज ही न डाला तो उसने फल ही क्या प्राप्त करना है? इसके साथ ही जैसा बीज धरती में बोया जाएगा वैसा ही फल प्राप्त होगा। जिस ने आक व कीकर का बीज बोया, वह द्राख (किशमिश) के मीठे फल को कैसे प्राप्त करेगा! जैसा बीज बोया जाएगा वही फल ही प्राप्त होगा।

यह मानव कृषक के समान है यदि अवसर पर काम करे, खेत में बीज डाले तो लाभ प्राप्त करेगा, अन्यथा ग़फ़लत में समय बिताने पर घोर हानि उठाएगा। फ़सल काटने के समय वह अपने सिर में ख़ाक डालने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता है? जो कर्म अब किए जाएंगे वही अगले जन्म में फल के रूप में प्राप्त होंगे ऐसा वेद ग्रन्थ साक्षी देते हैं। अतः सन्त जन बार बार चिताते तथा जगाते हैं कि:—

इस वक्त ही कुछ विचार कर ले, फेर नहीं वेला हथ आउनै दा ।
टुट्टा शीशा न कारीगर जोड़ सकै, भजिया मोती न फेर गंढाउनै दा ॥
डिगा फल न डाली दे नाल जुड़दा, फिटिया दुध न फेर जमाउनै दा ।
सब सन्त पुकारदे साईं लोका, एही वेला ई रब्ब दे पाउने दा ॥

मनुष्य यदि उचित अवसर पर काम नहीं करता, तो फिर ऐसा दुर्लभ अवसर कब प्राप्त हो सकेगा। जिस प्रकार टूटे कांच को कारीगर फिर से साबित नहीं बना सकता । मोती यदि टूट जाए तो उसे फिर गांठा या जोड़ा नहीं जा सकता। जो फल एक बार डाली से गिर जाता है उसे पुनः टहनी पर नहीं लगाया जा सकता। फटे हुए दूध को जमा कर दही बनाना असम्भव है, ऐसे ही मानव जीवन का अमूल्य समय जब एक बार हाथ से निकल गया तो यह समय फिर हाथ आने का नहीं। सभी सन्त पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि यह मालिक से मिलने का सुअवसर है। ऐसा अवसर पुनः प्राप्त होना आसान नहीं।

मानव देह का सुदृढ़ पोत, मालिक की दया की अनुकूल वायु (सत्संग) और सन्त सद्गुरु जैसे चतुर केवट को पा कर जो भजनाभ्यास कर के भव से पार होने का उद्यम करने में आलस्य करता है, उसने मानो मालिक की दया, कृपा एवं स्नेह का आदर नहीं किया। फलस्वरूप वह दुःख एवं परेशानी ही उठाएगा।

स्मरण रहे कि नियति किसी का पक्षपात नहीं करती, न ही किसी के प्रति अन्याय करना उसका नियम है । भजन-बन्दगी के बिना काल कर्म के चक्र से छुटकारा कदापि न मिलेगा। इस धोखे में कोई न रहे कि भजन किये बिना अन्य योनियों की दीर्घ श्रृंखला काटी जायेगी। सन्तों के निर्णय हैं कि:—

॥ दोहा ॥

वारि मथे बरु होइ घृत, सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरिभजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥

श्री रामायण

अर्थः—यदि जल को बिलोने से घी निकल आए, चाहे रेत को पेलने से तेल प्राप्त हो जाए तो सम्भव है परन्तु यह अटल सिद्धान्त है कि भजन के बिना कोई भी भवसागर से नहीं तर सकता।

अतएव अपने अनमोल जीवन के बहुमूल्य क्षणों को भजन भक्ति में व्यय करके इस जन्म का पूरा पूरा तथा सच्चा लाभ प्राप्त करो। यही सत्पुरुषों का उपदेश है। भजनाभ्यास यों तो जितना भी अधिक हो सके उतना ही लाभ है। फिर भी रात दिन के चौबीस घण्टों में कम से कम एक घण्टा भजनाभ्यास करना सबके लिये अत्यावश्यक है।

इस प्रकार आप कभी गुरुमुखों शरणागतों को, कभी जिज्ञासु दर्शनार्थ संगतों को तो कभी विशेष प्रेमियों को तदनुरूप श्री प्रवचनों से लाभान्वित करते ही रहते थे। श्री आनन्दपुर में तथा श्री प्रयागधाम में आपने कितनो ही बार प्रवचन फ़रमाए। उनमें से कुछ एक को तो यहां संकलित किया है और कुछ एक सत्संग-उपदेश श्री मुख प्रवचन में आगे दिए हैं। उनके विशाल पारमार्थिक कार्य को शब्दों में सीमित नहीं किया जा सकता। अतः आप भक्ति-परमार्थ के पथ को उत्तरोत्तर उन्नति देते रहे। आपकी पावन संगति में जो भी आया वह मालामाल हो गया।

अन्त में अप्रैल सन् १९७० में आप श्री आनन्दपुर में विराजमान थे। सेवकों को आप की सेहत कुछ सुकोमल प्रतीत हुई। सेवकों ने श्री चरणों में विनय की—प्रभो! किसी डॉक्टर को बुलाने के लिये श्री आज्ञा प्रदान करें। आपने उस समय फ़रमाया—"हमारी सेहत डॉक्टरों की दवाइयों से कदापि ठीक नहीं हो सकती। यह सब तो श्री परमहंस दयाल जी के हाथ में है। उन्हीं का आधिपत्य है, वे जो चाहेंगे करेंगे। तुम तो समझ रहे हो कि हम धीरे धीरे चल रहे हैं सो हमारी सेहत सुकोमल है। हम व्यास-पूजा पर तेज़ तेज़ चला करेंगे।" पुनः फ़रमाया कि हम व्यासपूजा पर अथवा व्यासपूजा के पर्व से कुछ दिन पहले बिल्कुल स्वस्थ हो जाएंगे। महात्मा परम योगानन्द जी ने विनय की कि भगवन्! हम आपको सुन्दर

सेहत में देखना चाहते हैं। श्री सद्गुरु दीन दयाल जी तनिक मुस्करा दिये।

ओ विधना! तुझे क्या स्वीकार है? इस का किसी को भी ज्ञान नहीं हो पाता। सेवक ने तो अपनी हार्दिक अभिलाषा तथा सेवक धर्म के नाते विनय की परन्तु इष्टदेव जिन रहस्यमय प्रवचनों को दोहरा रहे थे उसके लिये किसी को तनिक भी आशा न थी। अभी हृदय अपनी पूर्ण स्थिति को भी प्राप्त न कर पाए थे कि आपने भी उन घायल हृदयों पर पुनः वज्रपात करने की ऐसी मौज ठान ली। भाग्यों की रेखाओं पर कौन........।

वैशाखी का शुभ पर्व बड़ी धूम धाम से मनाया गया। सब संगतों को आपने अच्छी तरह से प्रसन्नता प्रदान की। अन्त में ३० अप्रैल सन् १९७० दिनांक वीरवार सायं समय श्री आनन्दपुर से टकनेरी चक पर पधारे। रात्रि समय वहाँ पर विश्राम कर १ मई १९७० को प्रातः समय चक टकनेरी से विदिश स्टेशन पर कृपा फ़रमाई तथा रेलगाड़ी की प्रतीक्षा में प्लेटफ़ार्म पर ही कुर्सी पर विराजमान हो गए। उस समय महात्मा अखण्ड प्रकाशानन्द जी साथ थे। वहाँ पर महात्मा अखण्ड प्रकाशानन्द जी ने आप के श्री चरणों में विनय की कि भगवन्! आपकी सेहत सुकोमल होती जा रही है, आप किसी डॉक्टर से चिकित्सा अवश्य कराएं। आपने फ़रमाया कि हम तो बिल्कुल ठीक हैं। हम ने श्री आनन्दपुर में महात्मा परम योगानन्द जी से भी यही कहा था कि हम जब वापिस श्री आनन्दपुर आएंगे तो तुम्हें अच्छी तरह से चलते फिरते दिखाई देंगे। इतना फ़रमा कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी तनिक मुस्करा दिए परन्तु इस गुप्त रहस्य को कोई भी न समझ सका। इतने में गाड़ी आ गई और श्री सद्गुरु दीन दयाल जी गाड़ी में विराजमान हो गए। २ मई १९७० शनिवार को श्री प्रयागधाम पहुँचे।

१२ मई १९७० को मंगलवार दोपहर के समय सेवादारों को आपने श्री वचन फ़रमाये—"हमारा तो विचार है कि अब महात्मा दर्शन पूर्ण आनन्द जी को सब काम समझा दें। श्री आनन्दपुर के कई कामों का उत्तरदायित्व तो उन्हें पहले ही सौंप दिया है। यहाँ (श्री प्रयागधाम में) भी सब काम अर्थात् श्री मन्दिर,

तालाब, उरुली शहर का मकान और निजधाम (येवला) का स्थान—इन सब स्थानों की कार्य पूर्ति वे स्वयं करेंगे।" इतना फ़रमा कर श्री सद्गुरु दीन दयाल जी मौन हो गए। आप गुप्त रूप से तो उन्हें (श्री स्वामी जी श्री पचंम पादशाही जी) सब कुछ समझा चुके थे परन्तु बाहरी रूप में सांकेतिक भाषा में सब के सामने इस रहस्य को प्रकट कर रहे थे।

२० मई १९७० बुधवार ७ ज्येष्ठ संवत् २०२७ के दिन साढ़े दस बजे आप (श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी) ने निजी मौज के अनुसार महात्मा परम योगानन्द जी को समीप बुला कर पूछा कि महात्मा दर्शन अलखानन्द जी कहाँ हैं, उन को बुलाओ। महात्मा दर्शन अलख आनन्द जी को अन्दर बुलाकर जब ये दोनों महात्मा जन श्री चरणों में उपस्थित हुए तो आप ने फ़रमाया—"हम आप दोनों को एक गुप्त रहस्य की बात कहते हैं। आप दोनों को विदित हो कि हमारे बाद हमारे रूहानी जानशीन (उत्तराधिकारी) महात्मा दर्शन पूर्ण आनन्द जी होंगे, परन्तु हमारी यह आज्ञा है कि अभी किसी को इस रहस्य के विषय में नहीं बताना। समय आने पर महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी को सब वचन बता देना। वे हमारे अर्शाद (वचन) किसी को बताने के लिए कहें तो उस समय तुम सब को ये वचन सुना सकते हो परन्तु पहले किसी से भी बात नहीं करना।"

महानिर्वाण

२७ मई बुधवार को श्री सद्गुरु दीन दयाल जी श्री चौथी पादशाही जी की श्री मौज पूना जाने की हुई। निजी सेवादारों ने श्री चरणों में विनय की कि कितने दिन पूना में विराजित होने की श्री मौज है, ताकि ज़रूरत का सामान साथ रख लिया जाये। श्री वचन हुये कि केवल तीन दिन के लिए। सेवक इस श्री मौज को न समझ सके और तीन चार दिनों के लिये ज़रूरत का सामान साथ रख लिया।

केवल चार-पांच निजी सेवक श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के साथ पूना गए, शेष सब संगत श्री प्रयागधाम ही ठहरी हुई थी। पूना में कृपा करने से पहले आप ने पुनीत वचन फ़रमाए:—

"हम तीन दिन बाद लौट आएंगे और श्री आनन्दपुर चलेंगे। सभी गुरुमुख आरति-पूजा, भजनाभ्यास तथा सेवा नियम पूर्वक किया करें। सब सुमति से रहना।" ये प्रवचन फ़रमा कर श्री सद्गुरु दीन दयाल जी ने पूना के लिये प्रस्थान किया। उस समय सब प्रेमी गुरुमुखों की आंखों में आँसू भर आए।

आह ! महापुरुषों की निजी मौज व लीला ! यह किस रूप में सामने आयेगी, जीव की बुद्धि इसे सोच सकने में असमर्थ होती है। कौन जानता था कि अल्पकाल के पश्चात् पुनः प्रेमियों के हृदय पर विरह की बिजली आ गिरेगी।

ओह ! फिर वही दिन हृदय पर वज्रपात करने वाला, विरहदायक दिन आ पहुँचा—जब कि ३० मई १६७० तदनुसार १७ ज्येष्ठ संवत् २०२७ शनिवार ज्येष्ठ बदी दशमी रात्रि के २ बजे श्री सद्गुरु दीन दयाल जी विश्राम से उठकर पद्मासन लगाकर पलंग पर सीधे विराजमान हो गए। सेवादारों को फ़रमाया कि नाम का जाप करो। आध घण्टे के पश्चात् अर्थात् इसी दिन रात्रि को अढ़ाई बजे श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी निज स्वरूप में लीन हो गए। सेवादारों ने अकस्मात् श्री मुख की ओर निहारा........परन्तु यह क्या ! इस अकस्मात् घटना को देखकर सेवक अत्यन्त दुःखी हुए एवं रोने लगे। यह वही दिन था जिस दिन के लिए श्री सद्गुरु दीन दयाल जी ने फ़रमाया था कि तीन दिन के पश्चात् लौट आएंगे।

इधर श्री प्रयागधाम में प्रेमिजन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के आगमन की राह में नयन बिछाए प्रतीक्षा कर रहे थे कि आज हमारे प्रभु घर लौट आएंगे। सूनापन, उदासी हर ओर सन्नाटा ही छाया हुआ सा लगता था। आकाश से तो मानो चाँद शीतलता के स्थान पर अंगारे बरसा रहा था। प्रेमी हृदयों के प्रेम

चिराग़ विरह के झकोलों से बुझ गए। वे रात्रि समय ही उठे और परस्पर एक दूसरे से कहने लगे कि न जाने क्यों आज नींद तो आती ही नहीं, घबराहट, बेचैनी से दिल व्याकुल हुआ जा रहा है। रह रह कर प्रेमी यह कह उठते कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रातः यहां कृपा करनी है तो न जाने क्यों यह दिल हर्ष के स्थान पर दुःखों का घर बन रहा है? मन ही मन सभी प्रेमी गुरुमुख श्री इष्टदेव श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के लिए सकुशलता के लिये विधाता से प्रार्थना करने लगे। परन्तु उन्हें क्या मालूम कि जो भाग्य की रेखाओं पर वज्रपात होना था वह हो चुका है।

उधर पूना में सेवादारों ने सोचा कि पहले श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के परम पवित्र स्थूल शरीर को श्री प्रयागधाम में ले जाना चाहिए क्योंकि श्री आनन्दपुर से साथ आई हुई संगत जो श्री प्रयागधाम में ठहरी हुई है उन्हें साथ लेकर श्री आनन्दपुर जाना चाहिये। साथ ही भारत के सभी बड़े बड़े नगरों में, सम्प्रदाय के आश्रमों पर तथा प्रेमिजनों तक फ़ोन तथा तार द्वारा इस दुःखद समाचार की सूचना दे दी कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी के अन्तिम श्री दर्शन के लिए सब श्री आनन्दपुर पहुँच जावें।

पूना से परम पवित्र स्थूल शरीर को कार में विराजमान कर श्री प्रयागधाम लाया गया। दूर से ही कार को बिना हॉर्न करते हुए आती देख तथा सेवादारों के चेहरे का रंग बदला हुआ देख कर गुरुमुख जन घबरा गए। ज्यों ही कार समीप पहुँची तो श्री सद्गुरु दीन दयाल जी को इस स्वरूप में देख कर सब संगत करुण क्रन्दन करने लगी। कई तो वहीं बेसुध हो गए। यह क्या? विरह की ज्वाला ने समस्त वातावरण में इस अग्नि को प्रज्वलित कर डाला। अब उन्हें पता चला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जो तीन दिन के लिए श्री प्रवचन फ़रमा गये थे और आज वही चौथा दिन ३० मई १९७० का था।

अशोकनगर फ़ोन पहुँचने पर जब श्री आनन्दपुर में यह दुःखद समाचार मिला तो एकदम सन्नाटा छा गया। कौन जाने कि दुःख का पहाड़ टूटते हुये समय न

लगेगा। समस्त श्री आनन्दपुर भी शोक सागर में डूब गया।

श्री प्रयागधाम में ठहरी हुई संगत ने शीघ्र ही वहां से बस पर कार के साथ साथ प्रस्थान किया। मार्ग में दिल सँभाले न सँभलता था परन्तु हृदय पर पत्थर रखकर उन गुरुमुखों ने मार्ग पार किया। ३१ मई रविवार के दिन सायं ७ बजे कार श्री आनन्दपुर पहुँची। हज़ारों की संख्या में संगतें यहां पहुँच चुकी थीं। कार के पहुँचते ही सब सेवादारों तथा सभी संगतों की आँखों से न जाने कितनी नदियों के प्रवाह बाँध तोड़ कर बह निकले। तत्पश्चात् प्रमुख प्रबन्धकों ने यह आपस में परामर्श किया कि रात्रि समय तक जितनी संगतें पहुँच जाएंगी उनको भी श्री दर्शन हो जाएंगे। श्री आनन्दसर की सीमा में व श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के उत्तर-पश्चिम में, जो स्थान प्रभु अपने लिये पहले ही नियुक्त कर गये थे, वहां महासमाधि तैयार कराई गई।

अतः १जून तदनुसार १८ ज्येष्ठ सोमवार श्री सद्गुरु दीन दयाल जी श्री चौथी पादशाही जी के श्री विग्रह (स्थूल शरीर) को स्नान कराकर नए वस्त्र पहनाए गये। विधि पूर्वक तिलक लगा कर श्री आरति उतारी गई। सबने हृदय पर पत्थर रख कर अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ऐसे लग रहे थे मानो वे नयन मूंद कर प्रेमियों की परीक्षा ले रहे हैं और अभी वे अवश्य ही प्रवचन करेंगे।

गुरुमुखों ने अपने ही हाथों से अपने प्रभु को अन्तिम विदाई देने के लिये पालकी को तैयार किया और उसमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को विराजमान किया। सब संगत श्री प्रभु की पालकी के साथ साथ दिल थामे श्री दर्शन करती हुई जा रही थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को श्री पालकी में ही श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की परिक्रमा कराई गई। फिर श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री आनन्द शान्ति भवन की परिक्रमा कराने के बाद १ जून सन् १९७० तदनुसार १८ ज्येष्ठ संवत् २०२७ ज्येष्ठ बदी द्वादशी सोमवार प्रातः ८ बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी को महा समाधि में

चिराग़ विरह के झकोलों से बुझ गए। वे रात्रि समय ही उठे और परस्पर एक दूसरे से कहने लगे कि न जाने क्यों आज नींद तो आती ही नहीं, घबराहट, बेचैनी से दिल व्याकुल हुआ जा रहा है। रह रह कर प्रेमी यह कह उठते कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रातः यहां कृपा करनी है तो न जाने क्यों यह दिल हर्ष के स्थान पर दुःखों का घर बन रहा है? मन ही मन सभी प्रेमी गुरुमुख श्री इष्टदेव श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के लिए सकुशलता के लिये विधाता से प्रार्थना करने लगे। परन्तु उन्हें क्या मालूम कि जो भाग्य की रेखाओं पर वज्रपात होना था वह हो चुका है।

उधर पूना में सेवादारों ने सोचा कि पहले श्री सद्गुरु दीन दयाल जी के परम पवित्र स्थूल शरीर को श्री प्रयागधाम में ले जाना चाहिए क्योंकि श्री आनन्दपुर से साथ आई हुई संगत जो श्री प्रयागधाम में ठहरी हुई है उन्हें साथ लेकर श्री आनन्दपुर जाना चाहिये। साथ ही भारत के सभी बड़े बड़े नगरों में, सम्प्रदाय के आश्रमों पर तथा प्रेमिजनों तक फ़ोन तथा तार द्वारा इस दुःखद समाचार की सूचना दे दी कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी के अन्तिम श्री दर्शन के लिए सब श्री आनन्दपुर पहुँच जावें।

पूना से परम पवित्र स्थूल शरीर को कार में विराजमान कर श्री प्रयागधाम लाया गया। दूर से ही कार को बिना हॉर्न करते हुए आती देख तथा सेवादारों के चेहरे का रंग बदला हुआ देख कर गुरुमुख जन घबरा गए। ज्यों ही कार समीप पहुँची तो श्री सद्गुरु दीन दयाल जी को इस स्वरूप में देख कर सब संगत करुण क्रन्दन करने लगी। कई तो वहीं बेसुध हो गए। यह क्या? विरह की ज्वाला ने समस्त वातावरण में इस अग्नि को प्रज्वलित कर डाला। अब उन्हें पता चला कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी जो तीन दिन के लिए श्री प्रवचन फ़रमा गये थे और आज वही चौथा दिन ३० मई १९७० का था।

अशोकनगर फ़ोन पहुँचने पर जब श्री आनन्दपुर में यह दुःखद समाचार मिला तो एकदम सन्नाटा छा गया। कौन जाने कि दुःख का पहाड़ टूटते हुये समय न

लगेगा। समस्त श्री आनन्दपुर भी शोक सागर में डूब गया।

श्री प्रयागधाम में ठहरी हुई संगत ने शीघ्र ही वहां से बस पर कार के साथ साथ प्रस्थान किया। मार्ग में दिल सँभाले न सँभलता था परन्तु हृदय पर पत्थर रखकर उन गुरुमुखों ने मार्ग पार किया। ३१ मई रविवार के दिन सायं ७ बजे कार श्री आनन्दपुर पहुँची। हज़ारों की संख्या में संगतें यहां पहुँच चुकी थीं। कार के पहुँचते ही सब सेवादारों तथा सभी संगतों की आँखों से न जाने कितनी नदियों के प्रवाह बाँध तोड़ कर बह निकले। तत्पश्चात् प्रमुख प्रबन्धकों ने यह आपस में परामर्श किया कि रात्रि समय तक जितनी संगतें पहुँच जाएंगी उनको भी श्री दर्शन हो जाएंगे। श्री आनन्दसर की सीमा में व श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के उत्तर-पश्चिम में, जो स्थान प्रभु अपने लिये पहले ही नियुक्त कर गये थे, वहां महासमाधि तैयार कराई गई।

अतः १जून तदनुसार १९ ज्येष्ठ सोमवार श्री सद्गुरु दीन दयाल जी श्री चौथी पादशाही जी के श्री विग्रह (स्थूल शरीर) को स्नान कराकर नए वस्त्र पहनाए गये। विधि पूर्वक तिलक लगा कर श्री आरति उतारी गई। सबने हृदय पर पत्थर रख कर अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये। उस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ऐसे लग रहे थे मानो वे नयन मूंद कर प्रेमियों की परीक्षा ले रहे हैं और अभी वे अवश्य ही प्रवचन करेंगे।

गुरुमुखों ने अपने ही हाथों से अपने प्रभु को अन्तिम विदाई देने के लिये पालकी को तैयार किया और उसमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को विराजमान किया। सब संगत श्री प्रभु की पालकी के साथ साथ दिल थामे श्री दर्शन करती हुई जा रही थी। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी को श्री पालकी में ही श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर की परिक्रमा कराई गई। फिर श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के श्री आनन्द शान्ति भवन की परिक्रमा कराने के बाद १ जून सन् १९७० तदनुसार १९ ज्येष्ठ संवत् २०२७ ज्येष्ठ बदी द्वादशी सोमवार प्रातः ८ बजे श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी को महा समाधि में

विराजमान कराया गया । बस ! संगत प्रभु को अन्तिम विदाई देकर एकदम से चीत्कार कर उठी । जो जहाँ था वहीं बेसुध हो कर गिर पड़ा । उस समय प्रकृति ने भी शोक का बाना पहन लिया । सुबह की वायु सांय सांय के शब्द में रुदन करती हुई पेड़ पौधों के गले लग कर करुण क्रन्दन कर रही थी । चहुँ ओर उदासी छा गई । पुनः मर्यादानुसार सब कार्यवाही की गई ।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी के श्री मुख से २० मई १९७० को फ़रमाए गए वचनानुसार ४ जून को प्रातः ८ बजे श्री आनन्दपुर के सत्संग हॉल में सब संगत को एकत्र कर यह श्री आज्ञा सुनाई गई कि श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी की यह श्री आज्ञा हुई है कि हमारे रूहानी जानशीन महात्मा दर्शन पूर्ण आनन्द जी होंगे । सर्व संगत ने श्री आज्ञा शिरोधार्य कर श्री स्वामी जी श्री पंचम पादशाही जी के श्री चरणों में दण्डवत्-वन्दना की । श्री सद्गुरु दाता दयाल जी श्री पंचम पादशाही जी ने ये प्रवचन फ़रमाए—"हमारे लिये जो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री दरबार की सेवा करने की श्री आज्ञा प्रदान की है, हम उस का पालन करेंगे व आप सब गुरुमुखों को भी श्री सद्गुरु दीन दयाल जी की श्री आज्ञा का पालन करना होगा ।"

विधिपूर्वक रूहानी जानशीनी देने का दिन १० जून १९७० बुधवार निश्चित किया गया ।



श्री मुख प्रवचन

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी अधिकांश भजनाभ्यास तथा अन्तर्दृष्टि उघाड़ने के विषय में निज मुख से प्रवचन फ़रमाया करते थे। उन अमूल्य श्री प्रवचनों में से कुछ एक प्रवचन रश्मियों को यहां प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें पढ़ कर व मनन कर के प्रेमिजन अपना जीवन आनन्दमय बनाएं:——

प्रवचन १. संसार के चाहे कितने ही पदार्थ एकत्र कर लो, महल-मकान, माड़ी-मण्डप आदि का निर्माण कर लो अथवा करवा लो, कितनी ही अतुल धन-राशि का संचय कर लो; मान, बड़ाई, बल, ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लो किन्तु अन्ततः तो सब अनित्य एवं नश्वर सामग्री ही है। इन में से मनुष्य का साथ देने वाली तो कोई भी वस्तु नहीं है।

॥ शेयर ॥

मकुन तकिया बर दहरे–नापायेदार ।
ज़ सादी हमीं यक सुखन याद दार ॥

शेख़ सादी साहिब जी का कथन है कि हमारा केवल यही उपदेश याद रखो कि नश्वर तथा क्षणभंगुर जगत् का भरोसा कभी भूल से मत करना।

सांसारिक धन-सम्पत्ति तो अतृप्तिमूलक है। यदि लाख रुपये जमा कर लो, तो दस लाख बनाने की तृष्णा उत्पन्न होगी तथा यदि दस लाख जमा हो गए तो करोड़ बनाने की तीव्र इच्छा होगी। जब एक लाख असत् एवं मिथ्या है तो दस लाख उसकी अपेक्षा दस गुना मिथ्या तथा असत् है और एक करोड़ उसकी अपेक्षा

सौ गुना अधिक मिथ्या हुए। अन्ततः तो सब मिथ्या ही मिथ्या है।

सन्तों फ़क़ीरों का कथन है कि लालच, लोभ अथवा तृष्णा-इच्छाएं—ये सब एक ही व्याधि 'अशान्ति' के विभिन्न नाम हैं। यह व्याधि बहुत बुरी बला है, इस का पेट कभी भर नहीं सकता, सदा अतृप्त ही रहता है।

तमा रा सेह हर्फ़स्त व हर सेह तहीस्त।

शेख़ सादी साहिब

शेख़ सादी साहिब कहते हैं कि जैसे उर्दू में तमा (तृष्णा) में तीन अक्षर तोय, मीम, ऐन हैं और तीनों ही ख़ाली हैं अर्थात् बिन्दी से रहित हैं वैसे ही तृष्णा का पेट सदा ख़ाली ही रहता है। उसे भर सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।

भली प्रकार विचार करो कि क्या कभी तृष्णावन्त को भी तृप्ति मिली है, कदापि नहीं। जब कि सिकन्दर जैसे वैभवशाली सम्राट् की तृष्णा अतृप्त रही, तो फिर जन साधारण की तृष्णा कहां शान्त हो सकती है?

तेल कभी अग्नि को शान्त नहीं कर सकता अपितु वह तो अग्निशिखा को प्रचण्डतर (अधिक तेज) करने वाला, भड़काने वाला है। यदि अग्नि को शान्त करना हो तो उस पर मिट्टी अथवा जल डालने से वेग कम हो सकेगा। इसी प्रकार वासनाओं अथवा तृष्णा की पूर्ति का यत्न ही तृष्णा की ज्वाला को अधिक भड़काने के लिए तेल का काम करता है। प्रतिपल इच्छाओं को बढ़ाते रहने से उनकी तृप्ति कभी नहीं होती। हां वासनाओं को दबाने से तथा उन्हें बढ़ने व फैलने न देने से उनके वेग को मन्द किया जा सकता है। इसी प्रकार शनैः शनैः उनके प्रचण्ड वेग को मन्दतर बनाते रहने से उन्हें बिल्कुल नष्ट किया जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक मानव प्राणी सुख शान्ति का अभिलाषी है,

तृष्णा की ज्वाला से दुःखी है और सुख शान्ति की प्राप्ति के लिए दिन रात प्रयत्नशील भी रहता है। इसके साथ वह यह भी जानता है कि आनन्द तथा शान्ति भीतर है परन्तु कर्म इस प्रकार के करता है जो सुख शान्ति को प्राप्त करने में बाधक हैं अर्थात् इच्छाओं की बढ़ोत्तरी में लगा हुआ है इसीलिए इन्हें पाने से वंचित रह जाता है। अपने विचार और बुद्धि अनुसार सुख की खोज करने का परिणाम विपरीत निकलता है कि सुखी होने के बदले पहले से भी अधिक दुःखी अशान्त और परेशान होता जा रहा है। यह परिणाम इसीलिए निकलता है कि उसके खोजने का ढंग सही नहीं है। वह उस खोज के ढंग से अनभिज्ञ है। वह खोज करता है सांसारिक पदार्थों में। नाम भक्ति की ओर ध्यान ही नहीं देता, जिसमें सुख, शान्ति और आनन्द भरा हुआ है। वास्तविक आनन्द तथा इच्छाओं का दमन तो सद्गुरु के शब्द की कमाई तथा गुरु सेवा से ही होगा। इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं। अतएव इस सुख को प्राप्त करने का यत्न करना ही मनुष्य का कर्त्तव्य है।

प्रवचन. २ एक नन्हीं सी चिड़िया के घोंसले को यदि देखा जाए तो बुद्धि चकित रह जाती है अर्थात् मानव बुद्धि भी वैसे घोंसले का निर्माण कर सकने में असमर्थ है। इस से स्पष्ट है कि शरीर पालन तथा इन्द्रिय-तृप्ति के हेतु पशु पक्षियों के पास भी बुद्धि की कमी नहीं है। शरीर पालन तथा कुटुम्ब पोषण में चिड़िया भी किसी से पीछे नहीं। बुद्धि तो चिड़िया में भी है; किन्तु वह मात्र उदर पूर्ति तथा बाल बच्चों के पोषण में सीमित है। इससे अधिक कुछ करना उसकी बुद्धि के बस की बात नहीं। यदि मानव भी अपने विचारों और बुद्धि को केवल धन कमाने, शारीरिक मान प्रतिष्ठा प्राप्त करने तथा सुख-भोग में व्यस्त रहने के काम में ख़र्च करता है, तब तो साधारण जीवों अर्थात् पशु पक्षी आदिक जीवों जितना ही काम उसकी बुद्धि ने भी किया। यदि यही विचार हैं तो मानव जीवन के ध्येय की पूर्ति तो न हुई। अन्यान्य योनियों की अपेक्षा मानव की विशेषता तब है जब कि वह भजन भक्ति में मन लगावे, न कि आठों याम स्वार्थपरता, वासना पूर्ति और भोगलिप्सा में ही ग़लतान रहे।

॥ शेयर ॥

आदमी रा आदमियत लाज़िम अस्त ।
हर कि सन्दल बू नदारद हैज़म अस्त ॥
शेख़ सादी साहिब

मनुष्य को मानवता के पद का ध्यान रखना आवश्यक है। जिस प्रकार चन्दन की लकड़ी में यदि सुगन्धि नहीं तो उसे चन्दन कौन कहेगा ? सुगन्धि रहित होने से वह साधारण काष्ठ (लकड़ी) के समान ईंधन का ही काम दे सकती है और बस। इसी प्रकार मनुष्य यदि भजन-भक्ति का कर्त्तव्य—पालन करने से ग़ाफ़िल है तो उस में मानवता की सुगन्धि नहीं। मानवता की सुगन्धि के न होने से वह भी अन्य जीव जन्तुओं के तुल्य है।

प्रानी राम न चेतई मदि माया कै अंध ॥
कहु नानक हरि भजन बिनु परत ताहि जम फंध ॥
गुरुवाणी

मानव जन्म की विशेषता ही यही है कि मालिक के नाम सुमिरण में चित्त लगाए क्योंकि वास्तविक सुख तो एक मात्र नाम की कमाई भजन भक्ति एवं सद्गुरु के ध्यान में निहित है। सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि मानुष जन्म रूपी जो दुर्लभ अवसर तथा उत्तम संयोग प्राप्त हुआ है वह बार बार नहीं मिलता। परम सौभाग्य से प्राप्त हुए इस अमूल्य अवसर को हाथ से व्यर्थ न जाने दो। इस से पूर्व भी माया ने जीव को धोखा देकर इसे चौरासी का चक्र कटवाया है और इसके अनेक जन्म नष्ट किए। अब ध्यान देना है कि यह अनमोल समय हाथ से न निकल जाए, इसी में ही भक्ति की पूँजी को एकत्र करने का काम करना है।

प्रवचन ३. प्रभु प्राप्ति का एकमात्र साधन प्रेम ही तो है, ऐसा कोई और साधन नहीं है। सत्पुरुषों की वाणी है:—

साच कहूँ सुन लेहु सभी, जिन प्रेम कियो तिन ही प्रभु पायो ।

वस्तुतः तथ्य भी यही है कि प्रेम के बिना हरिदर्शन कदापि नहीं हो सकते। यही सरलतम साधन है जिसके द्वारा प्रेमी अपने प्रियतम को पा लेता है। भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी उपदेश करते हैं:—

॥ शेयर ॥

शुगलो उर्फा से है आसाँ—तर वसीला इश्क का ।
इश्क का मकसद फ़ना है और फ़ना में है बका ॥

मख़्ज़ने इसरार १२. १२

ऐ अर्जुन! कर्म-धर्म, योग-साधन और ज्ञान-ध्यान से अति सुगम मार्ग है सच्चा प्रेम। सच्चे प्रेम का लक्ष्य हो प्रियतम के स्वरूप में अपने आप को खो देने का है। जिसने अपनी सत्ता को जीवनकाल में इष्टदेव के प्यार में मिटा दिया वह सदा के लिए अमर पद को पा गया। उसका कोई कर्त्तव्य भी शेष नहीं रहता है। पुनः फ़रमाते हैं:—

॥ शेयर ॥

इश्के सादिक से जो मुझ पर जान करते हैं निसार ।
उन की हक तक है रसाई कुलज़मे बातिल के पार ॥

मख़्ज़ने इसरार १४. २६

अर्थः—ऐ प्रिय सखा! जो सच्चे प्रेम और हार्दिक सौहार्द से मुझ पर सर्वस्व समर्पित कर देते हैं वे इस मिथ्या संसार के झमेलों से पार हो जाते हैं और उन की पहुंच आत्मा तक हो जाती है।

जिस की विश्वपति तक पहुँच हो जाये उसे और इच्छा ही क्या रही? यही मानव जीवन का उच्चतम ध्येय है। यहीं पहुँच कर मनुष्य भय, चिन्ता, शोक, कल्पना आदि से मुक्त हो जाता है। योगी का योग, ज्ञानी का ज्ञान, ध्यानी का ध्यान, तपस्वी का तप—भाव यह कि सम्पूर्ण साधन इसी हेतु ही किये जाते हैं

कि मानव को आत्म-दर्शन हो जावें। उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन है सच्चा प्रेम जिसे दिव्य एवं अलौकिक प्रेम भी कहते हैं। यही सब का दृष्टिकोण होना चाहिए।

प्रेम अथवा भक्ति एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। इसीलिए दोनों को मिला कर प्रेम-भक्ति का नाम दिया जाता है तथा जहां प्रेम-भक्ति का निवास होगा, वहां का दृश्य ही कुछ अन्य प्रकार का होगा। जैसा कि गोसाईं तुलसीदास जी का कथन है:—

॥ चौपाई ॥

रामभक्ति चिन्तामणि सुन्दर। बसै गरुड़ जाके उर अन्तर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ वात न ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल शलभ समुदाई॥

श्री रामायण उत्तरकाण्ड

अर्थः—गरुड़ जी के प्रति काकभुशुण्डि जी उपदेश करते हुये कहते हैं कि ऐ गरुड़ जी! जिसके हृदय में मालिक की भक्ति रूपी चिन्तामणि बस जाती है, वह हृदय रात दिन परम प्रकाश रूप (दिव्य आलोक से परिपूर्ण) हुआ रहता है। यह ऐसे दीपक का प्रकाश है जो घी और बत्ती का मोहताज नहीं। चिन्तामणि का यह गुण है कि उस में से दिव्य प्रकाश की किरणें स्वतः ही हर क्षण फूटती रहती हैं। इसी प्रकार मालिक के चरणों में जिसका प्रेम है, उसका चिन्ह क्या है? यही कि उसके हृदय में दिन रात प्रेम-भक्ति का प्रकाश व्याप्त रहता है। माया-मोह का अन्धकार उसके निकट तक नहीं फटक सकता। जहाँ चिन्तामणि हो, वहाँ मोह रूपी दरिद्रता का क्या काम? फिर इस प्रेम-भक्ति रूपी प्रकाश को लोभ की वायु चाहे कितनी ही प्रबल हो, नहीं बुझा सकती; क्योंकि चिन्तामणि का आलोक वायु के कारण मन्द नहीं पड़ सकता। अविद्या अर्थात् अज्ञान का प्रबल अन्धकार इस ज्योति से स्वतः नष्ट हो जाता है तथा मन के जितने भी विकार हैं वे पतंगों के

समान इस प्रकाश पुंज द्वारा जल कर भस्मसात् हो जाते हैं।

प्रेम-भक्ति की यही पहचान है कि माया-मोह का अन्धकार चित्त में न रहने पावे। जब तक माया का अन्धकार चित्त से दूर नहीं होता, वहाँ भक्ति कहाँ है? भक्ति रूपी चिन्तामणि को तो जब हृदय में बसा लिया जाता है तब अज्ञान का अन्धकार और मन के विकार आदि जीव को कदापि नहीं सता सकते।

जब तक हृदय में प्रेम-भक्ति रूपी अग्नि प्रज्वलित न हो, संचित कर्मों का विनाश क्योंकर हो ? तभी तक संचित कर्मों के संस्कार तथा मन के विकार आदि मनुष्य को क्लेश पहुँचाते रहते हैं, जब तक कि प्रेम भक्ति की अग्नि हृदय में प्रचण्ड नहीं होती।

भाव यह कि प्रेम का साधन सभी साधनों से उत्तम है। इसके द्वारा साधक का काम अति शीघ्र तथा नितान्त सरलतापूर्वक बन जाता है। प्रेम-मार्ग को विहंगम मार्ग कहा जाता है अर्थात् यह पक्षी की भाँति उड़ान का मार्ग है। प्रेम की अपेक्षा अन्यान्य कर्म-धर्म सब पिपीलिका-मार्ग हैं। जिसे बड़ी लम्बी यात्रा करनी हो, वह यदि चिउँटी चाल से चले तो कब तक अपने लक्ष्य स्थान को प्राप्त करेगा और यदि पक्षी की गति से उड़े तो कितनी देर लगेगी ? इसका अनुमान कर सकना बहुत कठिन नहीं है। जीवात्मा भी जन्म-जन्मान्तर से अपने मालिक से दूर पड़ा हुआ है। इसके सम्मुख भी बड़ी लम्बी यात्रा है। इसलिये जब तक मालिक के चरणों में प्रेम न होगा, भक्ति मार्ग में सफलता की आशा नहीं की जा सकती। प्रेम के बिना लक्ष्य की प्राप्ति कठिन है।

प्रवचन ४. समय परमात्मा की अति मूल्यवान् धरोहर (अमानत) के रूप में मनुष्य को प्राप्त हुआ है। महापुरुषों का कहना है कि समय का एक क्षण व्यर्थ गँवाना भी मानो परमात्मा की धरोहर का दुरुपयोग करना है। कोई व्यक्ति किसी को कोई पदार्थ रखने के लिये दे तो उसे धरोहर कहते हैं तथा जब वह वस्तु उसे वापिस न कर के नष्ट-भ्रष्ट कर दी जाये तो उसे धरोहर का दुरुपयोग

कहते हैं और ऐसा करना महान् सामाजिक अपराध है। इसी प्रकार समय को नष्ट करना भी परमात्मा की धरोहर का दुरुपयोग करने का महान् अपराध है। अतएव समय को कभी व्यर्थ न जाने देना चाहिये।

खोए हुए धन को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। भूली हुई विद्या को परिश्रम द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है। बिगड़े हुए स्वास्थ्य को उचित औषध सेवन के द्वारा सुधारा जाना सम्भव है परन्तु बीते हुए समय को किसी भी साधन अथवा उपाय द्वारा लौटा सकना सम्भव नहीं है।

समय के लघुतम कण (क्षण) हीरे मोतियों के समान हैं। इन्हें बेकारी के खण्डहरों में नष्ट मत करो। जो मनुष्य समय का उचित मूल्याँकन नहीं करता, समय भी उस का मूल्याँकन नहीं करता।

हमारे जीवन का प्रत्येक दिन एक प्रिय अतिथि है, जो प्रकृति की ओर से हमारे लिए सौभाग्य के नए उपहार साथ लाता है और हमें भेंट करता है। यदि अपने घर में उसका स्वागत सत्कार न किया जाए तो वह निराश होकर लौट जाता है और फिर कभी लौट कर नहीं आता।

इसी प्रकार समय भी जीवन का ताना-बाना है इसके अति कोमल नन्हें नन्हें तारों अथवा क्षणों से ही जीवन की विस्तृत चादर बुनी जाती है। यदि इस ताने-बाने को बाल्यकाल तथा युवावस्था की अनियमितताओं द्वारा तोड़ दिया जाता है तो यह बहुत बड़ी हानि होगी क्योंकि यह ताना-बाना फिर कभी नहीं ताना जा सकता। अतः जो काम इस दुर्लभ समय में आज करना है उसे कल पर कदापि न डाला जाए अभी इसी क्षण पूरा कर लिया जाए। अर्थात् इसी समय में भजन-अभ्यास कर लिया जाए, भजनाभ्यास में आलस्य अथवा प्रमाद न आने पाये। समय को शब्द तथा नाम की कमाई में लगाना ही बुद्धिमानी और चतुराई का रहस्य है।

प्रवचन ५. सभी महापुरुष, वेद-शास्त्र तथा सत्पुरुषों की वाणियाँ भक्ति की

महिमा का गान करती हैं। भक्ति की महिमा को कोई एक प्रकार से वर्णन करता है तो कोई अन्य प्रकारान्तर से। जिस भक्ति की इतनी महिमा है तथा जिसे सात्त्विक प्रकाश कहा जाता है, वह क्या वस्तु है और उसे किस प्रकार से प्राप्त किया जाता है ? श्रद्धा विश्वास के द्वारा मन को निर्मल बनाना है, जिससे कि उस में भक्ति का प्रकाश भरा जाए। इसके लिए सत्य व्यवहार की आवश्यकता है।

गुरु के प्रति कोई छल-कपट का व्यवहार करे अथवा आज्ञा उल्लंघन करे तो क्या उस के हृदय में भक्ति का प्रकाश हो सकेगा ? कदापि नहीं, गुरु के साथ छल कपट करना हानिकर है।

गुरु-आज्ञा का उल्लंघन करने पर काल और माया जीव पर अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। यदि सेवक आज्ञा रेखा के भीतर रहे तो काल का दाँव उस पर नहीं चल सकता।

॥ दोहा ॥

सतगुरु सबद उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कबीर समुझाय॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब जी

अर्थः—सद्गुरु के वचन का उल्लंघन करके सेवक कदापि सुखी नहीं रह सकता। क्योंकि वह जहाँ भी जाएगा सर्वत्र उसे फन्दे में फँसाने के लिये काल विद्यमान है। गुरु-आज्ञा की परिधि में रहने वाले सेवक का तो काल भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। श्री कबीर साहिब जी का कथन है कि इस परिधि से बाहर होते ही सेवक पर काल का दाँव चल जाता है और वह उस से अपना बचाव कर ही नहीं सकता।

माया और काल का चक्र संसार में दिन रात चल रहा है। सीता रूपी सुरति अहंकार रूपी रावण की कैद में पड़ गई है। इसे अहंकार के बन्धन से मुक्त कराने के लिये गुरु-आज्ञा पालन आवश्यक है। गुरु-आज्ञा का पालन करने से ही भक्ति प्राप्त होगी। क्योंकि गुरु शिष्य का नाता वचन से ही होता है। महापुरुषों का कथन है:—

गुरु सिष वचन का नाता ।
सिष सोई जिस वचन पछाता ॥

गुरु का वचन मानना ही भक्ति मार्ग की प्रथम सीढ़ी है । वही भक्ति के दुर्लभ फल की प्राप्ति करता है जिस ने सद्गुरु की आज्ञा को सत्य सत्य कर मानना सीख लिया है ।

प्रवचन ६. जिन नेत्रों द्वारा हम बाह्य जगत् के रंग रूप तथा कौतुक देखते हैं, यह बाह्य चक्षु अथवा चर्म चक्षु हैं । अन्तर्मन के चक्षु और हैं । उसको दिव्य-चक्षु, तीसरा नेत्र, अन्तर्दृष्टि अथवा विवेक दृष्टि आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है । प्रत्येक व्यक्ति इस अन्तर्दृष्टि को प्राप्त कर सकता है परन्तु इस दृष्टि की उपलब्धि एकमात्र महापुरुषों की कृपा तथा गुरु-भक्ति के द्वारा हो सकती है ।

॥ चौपाई ॥

श्री गुरु पद नख मणि गण जोति । सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती ॥

सद्गुरु के चरण कमलों के नाखुनों का प्रकाश हीरे, मणियों से भी अधिक है । इन का ध्यान करने से दिव्य दृष्टि खुलती है ।

दिव्य दृष्टि खुलने पर ही सत् असत् का ज्ञान हो जाता है कि वास्तव में जगत् सत्य है अथवा मिथ्या । अनेकों संयम साधन इस मंज़िल तक अत्यधिक कठिनता से पहुँचाते हैं परन्तु सद्गुरु का ध्यान अथवा गुरु-भक्ति एक ऐसा सुगम साधन है जिससे जीव सरलता से इस मंज़िल तक पहुँच सकता है । दिव्य दृष्टि का प्राप्त होना ही मानो सर्वसुखों को पाना है । यह दिव्य दृष्टि सद्गुरु के चरण कमलों का ध्यान करने से अथवा शब्दाभ्यास की कमाई से प्राप्त होती है । जिस से मोह माया का समस्त अन्धकार दूर हो जाता है और विमल प्रकाश की प्राप्ति होती है ।

यही दिव्य नेत्र अथवा तीसरे तिल को ही शिव नेत्र कहते हैं जो सद्गुरु की कृपा बिना नहीं खुल सकता । अतएव सद्गुरु की शरण में जाकर नाम की कमाई

से दिव्य दृष्टि खोलने का ढंग सीखना है।

प्रवचन ७. जीवात्मा भी कुल मालिक का अंश है। अंश को यदि अपने मालिक से, जिस का कि वह अंश है, मिलने की सच्ची लगन हो तो उस का मालिक से मिल जाना कुछ कठिन नहीं। इस में सन्देह नहीं कि अंश रूप जीव अपने मालिक से बिछुड़ा हुआ होने से पृथक् है किन्तु अपने कुल से तो भिन्न नहीं है। इस में भी अपने कुल अर्थात् परमात्मा के समस्त गुण तथा शक्तियां विद्यमान हैं। तथा जब अंश परमात्मा से मिल जाएगा तो वही शक्ति इस में भी प्रकट होगी। जीव परमात्मा का अंश होने से चेतन, निर्मल और अविनाशी भी है पर परमात्मा की सत्ता एवं शक्ति इस में तभी प्रकट होगी, जब यह परमात्मा से मिलने की लगन रखे तथा विधिपूर्वक पुरुषार्थ करे।

जल की एक बूँद सागर से यदि पृथक् है तो उस समय बूँद मलिन, शीतल, गर्म आदि रूप में होती है। उस की सत्ता शक्ति न होने के तुल्य है। परन्तु जब वही बूँद अपने भण्डार अर्थात् सागर से मिल कर उस में समाहित हो जाती है तो वह सागर रूप हो जाती है। इसी प्रकार जीव रूपी सुरति जो मालिक रूप शब्द से बिछुड़ी हुई है तथा बिछुड़ कर चिरकाल से संसार के बंधन में पड़ी क्लेश-ग्रस्त हो रही है, वह यदि शब्द से मिल जाय तो इस की शक्ति अनन्त और अपार हो जाये। फिर तो वह सदा सर्वदा के लिये दुःख क्लेशादि के कुचक्र से मुक्त होकर शाश्वत आनन्द एवं स्थायी सुख को प्राप्त करती हुई उसी परम सुख में समा सकती है। सुरति में चेतन सत्ता एवं आनन्द का अस्तित्व तो है परन्तु जब तक यह शब्द से न मिले इस में सत्ता शक्ति नहीं आ सकती।

तनिक सुरति को पिण्ड देश से हटा कर ब्रह्मांड में ले जाकर देखें तो मालूम होता है कि वहाँ पहुँच कर कितना अपूर्व आनन्द एवं अनन्त शक्ति सुरति को प्राप्त हो रही है। यही काम करना है कि सुरति को पिण्ड देश से निकाल कर ब्रह्मांड में पहुँचाना है।

जहाँ पिण्ड और ब्रह्माण्ड की सीमाएँ मिलती हैं इससे आगे एक नाका है, जिसे बंकनाल कहते हैं। सुरति को इसी नाके से पार करना है। इस नाके को पार किये बिना सुरति ब्रह्मांड में नहीं पहुँच सकती और न ही वहाँ के परम आनन्द का रसास्वादन कर सकती है। यह नाका अति सूक्ष्म है तथा इसी को पार कर सकना कठिन है। अभ्यासी सद्गुरु के ध्यान के सहारे ही इसे पार कर सकता है। क्योंकि सुरति को इस नाके से पार करने के लिये सूक्ष्म बनाना पड़ता है अर्थात् संसार के सम्पूर्ण लाग-लपेट से रहित करना होता है। जब तक सुरति के साथ स्थूल माया की सामग्री शामिल है; सुरति में सूक्ष्मता नहीं आ सकती। अथवा यह सूक्ष्म नहीं बन सकती। सूक्ष्म हुए बिना सुरति नाके को पार नहीं कर सकती।

॥ दोहा ॥

मुक्ति द्वारा साँकरा, राई दसवैं भाइ ।
मन तो मैंगिल होइ रह्यो, निकसै केहि विधि जाइ ॥

अर्थः—श्री कबीर साहिब जी कथन करते हैं कि मुक्ति का द्वारा अर्थात् ब्रह्मांड देश में प्रवेश पाने का नाका तो अति संकीर्ण है व राई के दाने के दसवें अंश से भी अधिक सूक्ष्म है परन्तु मन तो हाथी के समान स्थूल हो रहा है। ऐसी अवस्था में यह उस नाके में क्योंकर निकल सकेगा ?

माया ममता की आसक्ति एवं बन्धन ने ही सुरति को स्थूल बना रखा है। सुरति अथवा मन हाथी के समान स्थूल होने का यही अभिप्राय है। जब तक सुरति जगत् के बन्धनों तथा विषय विकारों की आसक्ति से मुक्त न होगी यह सूक्ष्म न बन सकेगी तथा इसकी वर्तमान स्थूलावस्था में उस नाके को पार कर सकना कठिन ही नहीं असम्भव भी है।

विचार करो कि जो शक्ति सूक्ष्म पदार्थों में होती है, वह स्थूल पदार्थों में कहां होती है ? जिस प्रकार पृथ्वी के गर्भ से तेल निकाला जाता है। सर्व प्रथम

वह स्थूल अथवा मलिन रूप में होता है। स्थूल धातुओं की मिलावट के कारण गाढ़े और काले उस तेल में अति साधारण क्षमता होती है तथा वह साधारण कार्यों में प्रयोग लाया जाता है। तब उसे शुद्ध करते हैं, जिस से वह 'क्रूड आयल' का रूप धारण करता है। इसकी क्षमता काले तेल की अपेक्षा अधिक होती है तथा विभिन्न इंजिनों में उस का प्रयोग किया जाता है। तदुपरान्त और भी शुद्ध किये जाने से हाई-स्पीड-डीज़ल बनता है तब उसकी क्षमता और भी बढ़ जाती है तथा वह और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होता है। और भी शुद्ध होने पर घासलेट अथवा मिट्टी का तेल बनता है। यह और भी अधिक सूक्ष्म अथवा अधिक उपयोगी होता है। पुनः शुद्ध करने पर उसमें से पावरीन और पैट्रोल आदि बनते हैं, जो अपेक्षाकृत रूप से अधिक क्षमता रखने वाले तथा अधिक उपयोगी हैं। इनकी सहायता से गाड़ियां और मोटरें चलती हैं। आगे चल कर पुनः उस में से वायुयान का ईंधन बनता है जो और भी अधिक शक्ति रखनेवाला है। अर्थात् तेल को जितना अधिक परिशुद्ध एवं सूक्ष्मतर बनाया गया वह उतना ही अधिक शक्ति-शाली उपयोगी एवं मूल्यवान् बनता गया। इसी प्रकार सुरति जब तक मलिन माया में लिप्त एवं स्थूल है, उसमें नाममात्र भी सत्ता शक्ति एवं आनन्द नहीं परन्तु जब इसे माया ममता की सम्पूर्ण मिलावट से रहित अथवा परिशुद्ध बना लिया जाता है तब यह सूक्ष्म बनती जाती है और इसमें अपार शक्ति तथा अकथनीय आनन्द का उदय होता है।

मिट्टी के साथ मिलकर शुद्ध जल भी कीचड़ का रूप धारण करता है तथा यह उसका मलिन एवं स्थूल रूप कहलाता है। इस रूप में उस का मूल्य और महत्त्व कुछ भी नहीं परन्तु जब वही जल सूक्ष्म होकर वाष्प अथवा भाप का रूप धारण करता है, तब उसकी शक्ति एवं उस का मूल्य बहुत बढ़ जाता है।

इसी प्रकार जब तक सुरति स्थूल रूप में है अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादिक विकारों की मैल उस के साथ चिपकी हुई है; वह मूल्यहीन है। ऐसी अवस्था में काम नहीं बनेगा। अब इसे इन समस्त मलिनताओं से रहित अर्थात्

शुद्ध करके सूक्ष्म रूप देना है तथा बंकनाल के सूक्ष्म नाके से गुज़ार कर ब्रह्मांड में पहुँचाना है। यह काम जब तक नहीं किया, यों समझो कि जीवन का पूरा लाभ नहीं उठाया।

सुरति जब तक स्थूल रूप में है, तब तक चाहे कोई विद्वान् हो, गुणी और चतुर हो, धनवान् हो अथवा बलवान् हो, वह आत्म-आनन्द तथा आत्म-शक्ति से वंचित रहेगा। सब प्रकार की भौतिक सामर्थ्य उपलब्ध होते हुए भी वह निर्बल तथा दीन बना रहेगा।

इसीलिए सुरति को पिण्ड देश सम्बन्धी सब प्रकार की आसक्ति से रहित करना तथा बन्धनों से मुक्त करना है। पिण्ड देश से ब्रह्मांड देश में ले जाना है। अपना देश अनामी लोक है वहाँ पहुँच कर ही वास्तविक आनन्द मिलेगा।

प्रवचन ८. इस संसार की रचना अनादिकाल से चली आ रही है और चलती रहेगी। इसका आदि अन्त कोई नहीं पा सकता। सतयुग से लेकर कलियुग और कलियुग से लेकर फिर सतयुग कितनी बार आया और आता रहेगा—इस की कोई गणना नहीं। यह क्रम कब से है और कब तक रहेगा—इसकी गति कौन जान सकता है? सन्त महापुरुष फ़रमाते हैं:—

पड़े भटकते हैं लाखों पण्डित,
करोड़ों दाना हज़ारों सयाने।
जो ख़ूब देखा तो यार! आख़िर,
ख़ुदा की बातें ख़ुदा ही जाने॥

इस संसार की रचना जो आदिकाल से चली आ रही है, इसे सत्पुरुषों ने जड़-चेतन और चार खानि (अण्डज, जेरज, स्वेदज और उद्भिज्ज) और चौरासी लाख योनियों का नाम दिया है। ये सब के सब जीव आवागमन का चक्र काट रहे हैं।

॥ चौपाई ॥

आकर चारि लाख चौरासी । योनि भ्रमत यह जीव अविनासी ॥

श्री रामायण—उत्तरकाण्ड

विचार करना है कि इस चक्र से ये जीव कब और किस तरह से छूट सकते हैं ? जड़-चेतन प्रत्येक योनि में जीवात्मा की कला विद्यमान है परन्तु जड़ जगत् में वह अज्ञात और शून्य सम है। छोटे से छोटे जीव जन्तु कीड़े-मकौड़े, पशु-पक्षी, खग-मृग से लेकर पशुओं और मनुष्यों में उस चेतन जीवात्मा की कला उत्तरोत्तर विशेष होती चली गई है। सब योनियों में से मनुष्य को गौरव और श्रेष्ठता दी गई है। श्री रामायण के वचन हैं:—

॥ चौपाई ॥

नर तन सम नहीं कवनिउ देही । जीव चराचर याचत जेही ॥

उत्तरकाण्ड

मनुष्य जन्म चौरासी लाख योनियों में उत्तम और श्रेष्ठ एवं दुर्लभ है। फ़क़ीरों ने इसे अशरफ़-मख़्लूकात कहा है। सोचने और विचारने का विषय है कि मनुष्य में इतनी योनियों में से कौन सी विशेषता है ? वह कौन सी वस्तु है जो अन्य जीवों को प्राप्त नहीं ? वह कौन सा कर्म है जो अन्य योनियां नहीं कर सकतीं ?

सन्त महापुरुष कथन करते हैं कि अन्य योनियां केवल पहले के जन्मों में किए हुए कर्मों का फल भोग रही हैं—अतः उन्हें 'भोग योनि' कहा गया है और मनुष्य को कर्त्ता और भोक्ता कहा गया है। पिछले जन्मों में किए हुए कर्मों के अनुसार इसकी प्रारब्ध बनी। उस के अनुसार शरीर और सम्बन्धी, कुल और जाति, देश व काल आदिक मिले। जीवात्मा मनुष्य-देह पाकर प्रारब्ध को भोग रही है—साथ ही इसमें विशेषता या बड़ाई यह है कि भले-बुरे जैसा भी कर्म चाहे कर सकता है और उन कर्मों के करने से अपने आपको सदा के लिए स्वतन्त्र व परम-सुखी अथवा जीवन्मुक्त तक बन सकता है और प्रमाद में पड़कर यह अपना

लोक-परलोक बिगाड़ कर सदैव के लिए अपने आप को चौरासी लाख योनियों के चक्कर में भी डाल सकता है। सारांश यह कि आवागमन से मुक्त होने का यही अवसर है।

प्रवचन ६. सर्व साधारण जीवों और गुरुमुखों का मेल नहीं है। संसारी जीव तो दिन रात काल और माया के चक्कर में पड़कर 'हाय हाय' कर रहे हैं। उनकी सुरति काम, क्रोध, अहंकार एवं विषयान्धता की पकड़ में आई हुई है। उन्होंने कुटुम्ब-परिवार, महल-माड़ियां, धन-ऐश्वर्य एवं संसार के अनित्य और नश्वर पदार्थों को अपनी सम्पत्ति समझ रखा है। इसी में उनकी मन-सन्तुष्टि, ममता एवं आसक्ति है। इन्हीं नाशवान् पदार्थों में उनका मन आसक्त है—तनिक सोचो कि अन्त में इनका परिणाम क्या होगा ? रावण और कारूं के इतिहासों पर दृष्टिपात करो, अन्त में उनके पल्ले क्या पड़ा ?

इस जगह आकर रहे न, जो बड़े सुलतान थे ।
जा समाये ख़ाक में जो, नवाब औ ख़ान थे ॥
ताज ज़र्री से जड़े यों, चमकते थे बर्कवश ।
हर तरह से पास जिन के, ऐश के सामान थे ॥
चार दिन नौबत बजा कर, अपनी अपनी चल दिए ।
चाहे बा—ईमान थे और चाहे बे—ईमान थे ॥
नेक नामी ले गए वे, कर गये जो नेक काम ।
ले गए लानत वे जिनसे, पहुँचते नुकसान थे ॥

प्रकृति का नियम सदा अचल है। इस में किसी का पक्षपात नहीं और न ही वहाँ अनीति है। प्रकृति तो दूध का दूध और पानी का पानी कर दिखाती है। यह देखकर भी संसारी लोग दिन रात माया के धन्धों में व काम—काज में मग्न रहते हैं। उन्हें एक मिनट का भी अवकाश नहीं मिलता कि वे आत्मिक उन्नति की ओर ध्यान दें। चौबीस घण्टे उनकी सुरति मोह-माया में फँसी व उलझी रहती है। भक्तों,

गुरुमुखों और विचारवानों, श्रेष्ठ पुरुषों की दशा उनके विपरीत है।

॥ शेयर ॥

आरिफ़ों का रोज़े-रौशन, जाहिलों की रात है।
जाहिलों का रोज़े-रौशन, आरिफ़ों की रात है॥

गीता २. ६९

गुरुमुखों व सर्वसाधारण संसारियों के विचारों में दिन-रात का अन्तर है। पूर्व जन्मों की शुभ कमाई से जीव को सद्‌गुरु की शरण मिलती है--"कोटि जन्म के पुण्य से सद्‌गुरु मिले कबीर" गुरुमुखों को जब ऐसा भाग्यशाली अवसर मिल जाता है तो वे भाग्यवान् प्राणी अपनी अधूरी कमाई (योग) को पूरा करने में जुट जाते हैं।

पूर्ण सन्त सद्‌गुरु की शरण का मिलना सुगम नहीं। बड़े भाग्यों से सुनहरी अवसर हाथ आता है। जिन गुरुमुखों को ऐसा अमूल्य समय मिल गया है और जो गुरुमुख सद्‌गुरु की मौज और आज्ञा में चलते हैं उन जीवों को आत्मिक ज्ञान की जो उपलब्धि होती है उसकी सीमा नहीं।

मायाधारी संसारी लोग गुरु-भक्ति के नियमों के परायण नहीं होते, केवल वह पढ़ने सुनने में ही तत्पर रहते हैं परन्तु गुरुमुख जन गुरु-भक्ति के पथ पर दृढ़ता से पांव धरते हैं। वे महापुरुषों के वचनों पर आचरण करते हैं क्योंकि आचरण के बिना निस्तार नहीं।

यदि कोई गुरुमुख कहला कर भी संसारियों जैसे विचार रखता है और वैसे ही कार्य करता है तो उसे भी संसारी ही समझना चाहिए। यह कोई न कहे कि हम गुरुमुख हैं। इसलिए हम काल-जाल से छूट जाएंगे, नहीं नहीं। जब तक महापुरुषों की वाणियों को पढ़ सुनकर मनन नहीं किया जाता फिर उन्हें आचरण में नहीं लाया जाता तब तक उनका पूरा पूरा लाभ नहीं होता। गुरुमुख का धर्म है कि महापुरुषों के वचनों को श्रवण, मनन, निदिध्यासन अर्थात् आचरण में लाता हुआ

क्रमपूर्वक परमार्थ अटारिका पर चढ़ता जाए--यदि वह गुरुभक्ति के नियमों का परिपालन नहीं करेगा तो अपने अभीष्ट लक्ष्य पर कदाचित् नहीं पहुंच सकेगा।

॥ दोहा ॥

ढिग रहा तो क्या भया, जो नेक न समझी सैन ।
सुआ समझ कर उड़ गया, सुन सतगुरु के बैन ॥

यदि कोई शिष्य अपने सद्गुरुदेव जी के निकट रहकर भी उनकी मौज और इशारों को नहीं समझ पाता तो उसे उनके सामीप्य का क्या लाभ ? किन्तु संस्कारी रूहें तो दूर अति दूर रहती हुई भी लाभ उठा लेती हैं—जैसे पिंजरे में पड़े हुए तोते ने गुरुमुख के मुख से सद्गुरु के इशारे को सुनकर व समझ कर और उस पर आचरण कर कैद से मुक्ति पाई।

ज़रा सोचो—विचार करो कि यह कितना बहुमूल्य समय है। गुरुमुखों का समय तो और भी अधिक मूल्यवान है। गुरुमुखों को चाहिये कि इस से पूरा पूरा लाभ उठावें ऐसा न हो कि समय के गुज़र जाने पर पछताना पड़े।

महापुरुष यों समझाते हैं कि राजा जनक की तरह विलासिता और आपाभाव को छोड़ कर गुरु की आज्ञा अनुसार कार्य करो। राजा जनक के पास क्या कुछ न था, राज-पाट, नौकर-चाकर सब कुछ होते हुए भी राजकाज का काम सँभालते हुए भी 'विदेही' कहाए। इस पद को वह समझते हैं जिनकी अन्तर्दृष्टि उघड़ गई है। वाल्मीकि ऋषि जी की वह दिव्य दृष्टि सन्तों की कृपा से खुल गई थी जो उन्होंने श्री रामचन्द्र जी महाराज के जन्म से भी दस हज़ार वर्ष पूर्व श्री रामायण का इतिहास लिख कर रख दिया। यह दिव्य-चक्षु महापुरुषों की आज्ञा मानने और उन के वचनों का पालन करने से खुलते हैं। भक्ति के नियमों का पालन करने से जीव को परमार्थ का बोध होता है। इसलिए सद्ग्रन्थ और सद्शास्त्र जीव को सत्पुरुषों के विचारों के अनुसार इसी तरह जीवन बिताने पर बल देते हैं कि ऐ जीव ! अब तू मन की मति को त्याग कर गुरु की मति को धारण कर।

जो भाग्यशाली संस्कारी आत्माएँ इसी तरह मनमति को छोड़ कर गुरुमति के नियमों का अनुसरण करती हैं और अपनी सुरति को गुरु शब्द से मिलाए रखती हैं—वे संसार में निर्लिप्त रह कर जीवन का ध्येय पा लेती हैं।

प्रवचन १०. जगत् और जगत् की दृश्यमान भोग सामग्रियां उन लोगों की दृष्टि में बड़ी चीज़ हैं, जिन्हें भक्ति की सम्पदा प्राप्त नहीं है। माया के ये समस्त पदार्थ असत्, मिथ्या तथा नाशवान् हैं। इनकी तुलना में भक्ति सत् है, यथार्थ है और सुख शान्ति का भण्डार है। मिथ्या एवं असत् पदार्थों की कामना सदैव बेसमझ लोग किया करते हैं। समझदार तो उस वस्तु की कामना करते हैं जो सत् एवं स्थायी हो। वह एकमात्र भक्ति ही है। आरिफ़ों का कथन हैः—

॥ शेयर ॥

हमा चीज़ें बका फ़ानी मुयस्सर अन्द बदरगाहश ।
चश्म बीना बक़ा खाहन्द फ़ना खाहन्द जाहिलहा ॥

अर्थः—मालिक के दरबार में अथवा मालिक के द्वारा रचाई गई इस सृष्टि में सब प्रकार के पदार्थ उपलब्ध हो सकते हैं। यहाँ असत् और नश्वर पदार्थ भी हैं तथा सत् एवं शाश्वत वस्तुएँ भी। जो लोग देखने और परखने वाली दृष्टि रखते हैं वह तो सत् पदार्थों की कामना करते हैं किन्तु जिनकी दृष्टि पर भ्रम व अज्ञान का आवरण छाया है वे असत्, मिथ्या तथा नश्वर पदार्थों के इच्छुक होते हैं।

विचार करना चाहिये कि जो पदार्थ असत् और नाशवान् हैं जो मिथ्या और अस्थिर हैं, वे चाहे कितने मूल्यवान् हों, तो भी किस काम के? जीवात्मा को उन से क्या लाभ प्राप्त होगा? जन्म-जन्मान्तर से जीव इन्हीं असत् पदार्थों के मोह में बँधा चला आता है, किन्तु सुख-शान्ति को कभी नहीं पा सका। सुख-शान्ति तो एकमात्र भक्ति में है। नाम की कमाई तथा भक्ति की लगन के बिना माया की अनेकानेक सामग्रियां तथा भौतिक सुख आदि मिल कर भी आत्मा को सुख-शान्ति

प्रदान नहीं कर सकते, उसे सन्तुष्ट एवं परितृप्त नहीं कर सकते तो क्यों न वास्तविक सुख की खोज की जाए, जिससे कि परम सुख की प्राप्ति हो।

मनुष्य का निश्चय, विश्वास तथा श्रद्धा मालिक पर नहीं, इसी कारण चिन्ताग्रस्त रहता है। सत्य तो यह है कि मनुष्य स्वयं मालिक से प्रतिक्षण चिन्ता और दुःख माँगता है। माया के पदार्थ जो माँगता है तो मानो चिन्ता एवं क्लेश ही मांग रहा है।

विणु तुधु होरु जि मंगणा सिरि दुखा कै दुख ॥
देहि नामु संतोखीआ उतरै मन की भुख ॥

माया के जिन पदार्थों की मनुष्य हर समय याचना करता है, उनमें सुख कहाँ है? उनमें तो दुःख ही दुःख और चिन्ता-क्लेश ही भरे हैं। मालिक से नाम और भक्ति की याचना तो करता नहीं जिस में सुख और संतोष है।

भक्ति की ज्योति तो वह ज्योति है जो कि हज़ारों चन्द्र सूर्य से भी बढ़कर है। किन्तु जब तक चित्त में सद्गुरु का ध्यान दृढ़ न हो, यह ज्योति प्रज्वलित नहीं होती तथा जब तक भक्ति की इस ज्योति का प्रकाश अन्तर में नहीं है, माया और अज्ञान के अन्धकार का विनाश कैसे सम्भव है और काम-क्रोधादिक का मूलोच्छेदन (जड़ सहित विनाश) क्योंकर हो?

मानुष जीवन के ये क्षण अत्यन्त दुर्लभ हैं। परम सौभाग्य से ही इस जन्म में पूर्ण सद्गुरु का मिलन होता है। ऐसा दुर्लभ संयोग और मूल्यवान् अवसर पाकर भी यदि कोई ग़ाफ़िल रह गया तथा भक्ति की ज्योति से हृदय को प्रकाशित न किया तो मानो मानव-जन्म का मूल्यांकन न किया। यह सुदुर्लभ-अवसर यदि हाथ से निकल गया तो फिर कब यह महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकेगा? इसी लिए इसी जन्म में ही भक्ति की अमूल्य निधि को प्राप्त करना है।

प्रवचन ११. महापुरुषों के उपदेशों तथा उनकी वाणियों के प्रकाश में इस

बात का विचार करना है कि जीव तो मालिक का अंशज है, वह माया का अंशज तो नहीं। जब मालिक का ही अंशज है तो उस का मिलन मालिक से ही होना चाहिये। माया के साथ उसका मेल कैसे हो? नियम की बात है कि जिसका अंशज अथवा सजातीय होगा वह उसी से मिलेगा।

॥ शेयर ॥

कुनद हमजिन्स बा हमजिन्स परवाज़ ।
कबूतर बा कबूतर, बाज़ बा बाज़ ॥

अपनी जिन्स अथवा जाति के साथ ही हमेशा सम्बन्ध बन सकता है, विजातीय के साथ कदापि नहीं। जैसे कि कबूतर दूसरे कबूतर से मिल कर उड़ता है और बाज़ दूसरे बाज़ के साथ। कबूतर और बाज़ को कभी मिल कर उड़ते न देखा होगा। इसी प्रकार माया का संयोग माया के साथ तथा आत्मा का परमात्मा के साथ है। माया और आत्मा का परस्पर मिलन कैसे सम्भव होगा?

परन्तु मनुष्य भ्रमवश आत्मा को माया के साथ मिलाना चाहता है जो सर्वथा असम्भव है। इसी कारण दुःख एवं परेशानी की सूरत पैदा होती है। जैसे कि सोना-मिट्टी, लकड़ी आदि किसी अन्य वस्तु के साथ जुड़ नहीं सकता क्योंकि उन का परस्पर मेल नहीं होता। यदि कोई सोने को किसी अन्य वस्तु के साथ जोड़ना चाहे तो सफल नहीं हो सकता।

धातु मिलै फुनि धातु कउ सिफती सिफति समाइ ॥
गुरुवाणी

अर्थः—"प्रत्येक धातु अपनी सजातीय धातु से ही मिल सकती है तथा गुण अपनी ही जाति के गुणों में समा सकते हैं।"

जिस प्रकार गुण गुणों में बर्तते और समाते हैं तथा जिस प्रकार धातु सजातीय धातु से मिलकर तदाकार हो सकती है, वैसे ही आत्मा का संयोग परमात्मा के

साथ सम्भव है किन्तु माया के साथ सम्भव नहीं। गुरुमुखों को मालिक के साथ मिलना है। माया के साथ मिलना, माया की चाह करना तथा माया का दास बने रहना गुरुमुखों के लिए सर्वथा अशोभनीय है।

भक्त को भगवान् से ही मिलना है और यह भक्ति के प्रताप से ही मिल सकता है।

हरि हरिजन दोऊ एक हैं, बिब विचार कछु नाहिं।
जल ते उपजि तरंग ज्यों, जल ही विषै समाहिं॥

अर्थः—मालिक और मालिक के प्रेमी भक्त दोनों एक ही रूप हैं उनमें द्वैत तथा भिन्नता कुछ भी नहीं है जैसे कि तरंग अथवा बुदबुदे जल से उठकर जल ही में समा जाते हैं वैसे ही भक्त भक्ति के प्रताप से अपने भगवन्त में जा मिलते हैं।

माया की चाह तथा वासनाएँ विजातीय वस्तु होने के कारण जीवात्मा के लिए नितान्त हानिकारक हैं। यह जीव की भूल है इस भूल को दूर करना है। जीवात्मा परमात्मा का अंशज और वंशज है तथा जब अपने मालिक से मिलने की इच्छा आतुरता से चित्त में उत्पन्न होगी तभी सुख शान्ति एवं आनन्द की प्राप्ति होगी। माया की चाह में न सुख मिला है न मिलेगा।

अतएव मालिक के साथ मिलने की सच्ची चाह एवं उत्कण्ठा अर्थात् मालिक का सच्चा प्रेम अपने चित्त में उत्पन्न करो। सद्गुरु का अवतरण ही बिछड़ी रूहों को मिलाने के लिए होता है। अतः इस अनोमल दुर्लभ मानव जीवन में सद्गुरु द्वारा भक्ति प्रेम की कमाई करके मालिक से जा मिलो और अपने जन्म को सफल बनाओ।

प्रवचन १२.

॥ दोहा ॥

मन सम सरि शत्रु नहीं, गुरु समान नहिं सज्जन।
गुरु को मन अर्पण करै, बड़भागी सो भक्तजन॥

मनुष्य का सब से बड़ा शत्रु अपना मन ही है तथा सन्त सद्गुरु के बिना जीव का अन्य सज्जन अथवा सच्चा मित्र नहीं है। सज्जन अथवा मित्र उसी को कहा जाता है जो शत्रु का सामना करने में सहायता प्रदान करे तथा शत्रु के आक्रमण से रक्षा करे। इस दृष्टि से देखा जाए तो मन के घातों से जीव को सन्त सद्गुरु के अतिरिक्त कोई भी नहीं बचा सकता, न ही मन पर नियन्त्रण रखने में कोई अन्य सहायक हो सकता है।

मन अत्यन्त चंचल उद्दण्ड तथा क्रूर है। दसों इन्द्रियों की सेना का यह नायक है और प्रतिपल अपनी सेना सहित आठों दिशाओं का परिभ्रमण करता है। सन्तों ने मन के आठ दल कहे हैं जिस क्षण जिस दिशा की ओर तथा जिस दल पर रुख़ करता है, तब वैसी ही इस की अवस्था हो जाती है। जब यह मन पूर्व दिशा की ओर जाता है, तब परोपकार, अन्यों की भलाई तथा शुभ कर्म की ओर प्रेरित होता है। जब वहाँ से सरक कर दक्षिण-पूर्व की ओर मुख करता है तब चोरी, जुआ और अन्य बुरे कर्मों को चाहने लगता है। जिस क्षण यह दक्षिण दिशा की ओर मुड़ता है, तब कुटिल कठोर बन कर अन्य जीवों को दुःख देता तथा अन्याय करता है। दक्षिण-पश्चिम दिशा में जाकर मन निद्रा, आलस्य, प्रमाद और तमोगुण की ओर आकृष्ट होता है। पश्चिम की ओर जब इस का मुख रहता है, उस समय राग-रंग, नाच-तमाशे, क्रीड़ा-लीला आदि की ओर रुचि होती है। उत्तर-पश्चिम की दिशा में जाने पर मन दूरवर्ती प्रदेशों की यात्रा का संकल्प करता है। उत्तर की ओर जब मन जाता है, तब मैथुन, भोग विलास और विषय सुख की इच्छा करता है तथा जब इस का मुख पूर्वोत्तर की ओर रहता है, तब उदारता, दान देने और फ़िज़ूल खर्ची को चाहता है। इस प्रकार यह मन जिस दिशा की ओर जाता है वैसी ही अवस्था इसकी होती रहती है। परन्तु जब आठों दिशाओं से हटकर मध्य में स्थित हो रहता है, तब भजनाभ्यास, सुमिरण-ध्यान में लगता है।

इस प्रकार यह मन प्रतिपल चलायमान ही रहता है। एक क्षण भी निश्चल होकर बैठने नहीं पाता। कभी इस दिशा में तो कभी उस दिशा में भटकता ही

रहता है । इसी कारण मनुष्य सदैव परेशान, दुःखी और कल्पनाग्रस्त ही रहता है। जिस प्रकार कुम्हार का चाक जब तक घूम रहा है उस पर भांति भांति के बर्तन निर्मित होते रहते हैं। किन्तु जब वह घेरा घूमना बन्द करता है तब बर्तन भी नहीं गढ़े जा सकते। वैसे ही मन रूपी चाक जब तक गतिमान् है—संकल्प-विकल्प, स्फुरण तथा अनेक प्रकार की इच्छाओं के बर्तन गढ़े जाते हैं। जब यह मन ठहर जाए तभी इच्छा संकल्प आदि का ताना-बाना समाप्त हो जाता है परन्तु कुटिल मन तो हर क्षण चलायमान है और विषय-वासनाएँ मनुष्य को सताती ही रहती हैं। जब तक मन की इच्छाएँ पूर्ण की जाती रहेंगी तब तक आवागमन के चक्कर में भटकना पड़ेगा। अन्य शब्दों में मन का चक्र ही आवागमन के चक्कर का मूल हेतु है। मन को वश में करने के लिये सत्पुरुषों के उपदेशानुसार सद्गुरु का शब्द ही समर्थ है, सद्गुरु के शब्द से ही इस मन पर नियन्त्रण किया जा सकता है तथा इसके अतिरिक्त मन को काबू करने का और कोई भी उपाय नहीं है ।

अतएव सत्पुरुषों का कहना है कि इस मूज़ी मन को मारना अथवा नियन्त्रण में रखना आवश्यक है। जब तक मन वश में न होगा इन्द्रिय सेना भी वश में न हो सकेगी ।

प्रवचन १३. सन्त सद्गुरु ही शिष्य को नाम का धन प्रदान करते हैं। उन के अवतरित होने का उद्देश्य ही यही होता है। नाम के बिना जीव काल माया की ठोकरों से पीड़ित होकर अति व्याकुल रहते हैं। उन्हें सद्गुरु नाम-दान देकर प्रशान्त कर देते हैं। वे सेवक भी सौभाग्यशाली होते हैं जो सद्गुरुदेव जी की सेवा का गौरव प्राप्त करते हैं। उनका चित्त जब नामाभ्यास से सुनिर्मल हो जाता है तो उस समय उनके अन्तःकरण से यही आवाज़ आती है:—

जैसा सतिगुरु सुणीदा तैसो ही मै डीठु ॥
विछुड़िआ मेले प्रभू हरि दरगह का बसीठु ॥
हरि नामो मंत्रु दड़ाइदा कटे हउ मै रोगु ॥

नानक सतिगुरु तिना मिलाइआ जिना धुरे पइआ संजोगु ॥

रामकली की वार—सलोक महला ५

भावार्थः—जैसा हम सुनते थे हम ने सद्गुरु को ठीक वैसा ही पाया। सचमुच ही सद्गुरुदेव विश्वपति के दरबार में बैठने वाले हैं। वे बिछुड़ी हुई आत्माओं को प्रभु से मिलाने आये हैं। सच्चे नाम का जाप करा कर अहंभावना का समूल नाश कर देते हैं। सन्त सत्पुरुष कथन करते हैं कि ऐसे सन्त सद्गुरुदेव जी से उन्हीं आत्माओं का सम्बन्ध होता है जिन्हें परब्रह्म का आदेश होता है। सार यह है कि पिछले अनेक जन्मों के शुभ कर्म जागते हैं तब कहीं जा कर महापुरुषों के पावन दर्शन होते हैं।

सौभाग्य से जिन्हें ऐसे सन्त सद्गुरुदेव जी की शरण मिल जावे—उनके संग (जिसका नाम सत्य है) का सुअवसर मिल जाये फिर उन्हें अपने मन को सुदृढ़ चित्तता से सद्गुरु की आज्ञा में दृढ़ रखना चाहिए। शेष सकल दायित्व (भार) सद्गुरु स्वयं सँभाल लेते हैं। सद्गुरु ही जीव को सच्चे नाम का धन प्रदान करते हैं।

प्रवचन १४. ग्रीष्म शुष्क देशों का जलवायु और अति शीत देशों का जलवायु क्रमशः उष्ण और शीत होता है। सुगन्ध विक्रेता के समीप से निकलते हुये प्राणी का मस्तिष्क सुवासित हो उठता है। जबकि जड़ वस्तुओं की संगति अपने प्रभाव को डाले बिना नहीं रहती तो क्या महापुरुषों का संग अपने प्रभाव से ख़ाली रहेगा ?

॥ दोहा ॥

कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी की बास ।
जो कछु गंधी दे नहीं, तो भी बास सुबास ॥

सोचो और गम्भीर विचार करो। जैसा संग करोगे वैसा रंग आएगा ही। संगति का प्रभाव निष्फल नहीं जाता।

॥ दोहा ॥

जिन जैसी संगत करी, तैसो ही फल लीन ।
कद्ली सीप भुजंग मुख, बूंद् एक गुण तीन ॥
सीप गयो मोती भयो, कद्ली भयो कपूर ।
अहि मुख गयो तो विष भयो, संगत को फल सूर ॥

आनन्द् शब्द् सार—पृ० ३६

जो जिस संगति में विचरण करता है उसे वैसा ही फल मिलता है । जैसे एक स्वाँति बूंद् भिन्न भिन्न आधार पाकर अलग अलग ही रूप बद्ल गई । जब वह केले पर पड़ी तो कपूर बन गई । सीप में आई तो मोती बन गई और यदि दुर्भाग्यवश कहीं साँप के मुख में जा पड़ी तो विष बन गई । विचार करने से ज्ञात होता है कि यह सब विभिन्नता संगति का ही प्रभाव है । मनुष्य के लिए किस प्रकार की संगति लाभदायक है । श्री रामायण में लिखा है:—

॥ चौपाई ॥

बिनु सतसंग विवेक न होई । राम कृपा बिन सुलभ न सोई ॥
सतसंगति मुद मंगल मूला । सोई फल सिधि सब साधन फूला ॥

बिना सत्पुरुषों की संगति के ज्ञान नहीं होता मगर यह प्रभु—कृपा के बिना सुलभ नहीं हो सकती । सत्पुरुषों की संगति ही आनन्द् मंगल की जड़ है । सिद्धि उसका फल है और साधन फूल हैं अर्थात् सत्पुरुषों की संगति ही मानव के लिये श्रेयस्कर है जहाँ से इसे विवेक मिल सकता है ।

प्रवचन १५. परमात्मा ने जब जीव को जन्म दिया है तो उसके प्रारब्ध का भोग भी पहले से ही तैयार करके रख दिया है । परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि मनुष्य के चित्त में परमात्मा पर विश्वास नहीं है । इसी कारण चिन्ता का शिकार बना रहता है । प्रकृति ने तो मनुष्य के लिये सब प्रबन्ध कर दिया है । मनुष्य के लिये नियति के भंडार में कोई कमी नहीं । यदि कोई यह समझे कि मैं अपनी

बुद्धि व चतुराई से जीविकोपार्जन (आजीविका कमाना) करता हूँ तो ऐसा सोचना ग़लत है।

॥ शेयर ॥

अगर रोज़ी बदानिश बर फ़ज़ूदे, ज़ नादाँ तंग तर रोज़ी नबूदे।
बनादाँ आँ चुनाँ रोज़ी रसानद, कि दाना अन्दराँ हैराँ बिमानद ॥

शेख़ सादी साहिब

अर्थः—"फ़क़ीरों का कथन है कि यदि आजीविका का कमाना बुद्धि-चतुराई पर निर्भर होता तो जगत् में नादान प्राणी तो आजीविका प्राप्त ही न करते परन्तु ऐसा नहीं है। नादान प्राणियों को परमात्मा ऐसे ढंग से जीविका देता है कि बुद्धिमान् देख कर चकित रह जाते हैं।"

प्रारब्ध-भोग प्राणी के साथ लगा रहता है। जहाँ कहीं और जिस अवस्था में भी वह हो, उसका प्रारब्ध भोग उसे अवश्य मिलता है।

॥ शेयर ॥

ऐ करीमे कि अज़ ख़ज़ाना-ए-ग़ैब, गिब्र-ो-तरसा वज़ीफ़ा—ख़ुरदारी।
दोस्ताँ रा कुजा कुनी महरूम, तू कि बर दुश्मनां नज़रदारी ॥

अर्थः—शेख़ सादी साहिब मालिक के चरणों में प्रार्थना करते हैं कि ऐ दाता! तू अपने अदृश्य भण्डार से नास्तिक एवं दुष्ट लोगों को भी जीविका प्रदान करता है। जब तू अपने विरोधियों पर भी ऐसी कृपा दृष्टि रखता है तो अपने समर्थक सज्जनों (उपासक भक्तजनों) को भला तू कैसे वंचित रखेगा?

ऐसा नियति का प्रबन्ध है कि जो मालिक की याद से ग़ाफ़िल हैं उन्हें भी जीविका प्रदान की जाती है। तब फिर जो रात दिन उसको याद करते हैं, परमात्मा उन्हें क्योंकर वंचित रहने देगा? क्या किसी की बुद्धि यह स्वीकार कर सकती है कि जो व्यक्ति भजन करेगा, वह भूखा रह जाएगा। नहीं, जो भजन-भक्ति में लीन रहते हैं, उनके लिये तो देवता भी प्रारब्ध भोग लेकर उनके पीछे फिरा करते हैं।

अतएव मनुष्य का धर्म है प्रारब्ध की चिन्ता को छोड़कर भजन भक्ति में मन लगावे तथा अपने मार्ग को सुगम करे।

प्रवचन १६. कुछ ज्ञानवानों ने मन के सम्बन्ध में कहा है कि मन मन्त्री है, आत्मा राजा है और पाँच भौतिक शरीर एक प्रकार का साम्राज्य है। यदि राज्य का मन्त्री विद्वान्, बुद्धिमान्, विवेकशील तथा नीतिज्ञ हो, साथ ही इसके वह राजा का आज्ञाकारी भी हो, तब तो राज्य सुव्यवस्थित तथा समृद्ध रहता है। विपरीत इसके यदि मन्त्री अन्यायी, मनमानी करने वाला तथा अभिमान में चूर रहने वाला हो तो उस राजा की प्रतिष्ठा तथा उसका जीवन नष्ट होता है। इसके साथ ही साथ साम्राज्य का प्रबन्ध अव्यवस्थित रहने से राज्य के विनाश में सन्देह नहीं। अर्थात् ऐसा होने से जीवात्मा की हानि निस्सन्देह है।

प्रवचन १७. विचार करो कि जीवन के क्षण अत्यन्त अनमोल हैं। एक एक श्वास का मूल्य सत्पुरुषों ने अपने अपने विचार अनुसार कहीं तीन लोक की सम्पदा के तुल्य तथा कहीं चौदह भुवन के तुल्य कहा है किन्तु यह भी श्वासों का मूल्य कम आंका गया है। मानव जीवन के प्रति श्वास का मूल्य तो इससे कहीं अधिक है। मनुष्य को विचार करना चाहिये कि रात दिन के चौबीस हज़ार श्वास किस उद्देश्य की पूर्ति में व्यतीत हो रहे हैं? श्वासों का मूल्य कितना अधिक है तथा इनके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग में लाभ-हानि कितनी है?

गुरुमुखों को जीवन के इसी अल्प समय में अपना काम बनाना है। जगत् के कार्य व्यवहार भी निस्सन्देह करने हैं तथापि स्मरण रहे कि भक्ति-भजन बिना तो निस्तार नहीं। अपनी सच्ची कमाई अथवा पूँजी तो भजन ध्यान ही है। यदि इस अमूल्य समय में मनुष्य भजन से ग़ाफ़िल रहा तो अन्त में पछताना पड़ेगा, पर कुछ बन न सकेगा।

संसार भर का धन भी भक्ति भजन की क्षणमात्र की कमाई की तुलना में तुच्छ है तथा ग़फ़लत में नष्ट किया गया श्वास भी संसार भर के धन के बदले नहीं लौटाया जा सकता। सभी मूल्यवान् वस्तुएं यदि नष्ट हो जाएँ अथवा खो जाएं,

तो वह किसी न किसी प्रकार से पुनः प्राप्त की जा सकती हैं। केवल खोया हुआ श्वास ही ऐसी वस्तु है जो कभी तथा किसी उपाय से लौट कर नहीं आ सकता। इस अमूल्य श्वास से यदि कोई लाभ प्राप्त न करे तो उसने जीवन में क्या किया ? गोस्वामी तुलसीदास जी ने एक एक श्वास का दाम चौदह भुवन कहा हैः—

॥ दोहा ॥

मोल चतुर्दश भुवन को, एक श्वास है तोहि ।
ऐसे धन रघुनाथ को, तुलसी वृथा न खोहि ॥

शेख़ सादी साहब जी फ़रमाते हैंः—

॥ शेयर ॥

कीमते—हर यक नफ़स हस्त दो जहाँ ।
गौहरे—नायाब शुद राये—फ़ग़ाँ ॥

दोनों जहाँ की सम्पदा के तुल्य एक श्वास की कीमत है। ये हीरे जवाहरात से अधिक मूल्यवान् श्वास यों ही व्यर्थ जा रहे हैं। यदि एक श्वास की कीमत दो जहान है तो दिन रात में आने वाले चौबीस हज़ार श्वासों की कीमत कितने जहान होगी, जो मनुष्य के हाथ से निकलते जा रहे हैं।

जो मनुष्य दिन रात संसार के काम काज में निमग्न रहते हैं उन की आँखों पर विषयासक्ति की पट्टी बंधी हुई है तथा मोह माया की दलदल में पड़े हुये हैं। उन का ऐसा अमूल्य दुर्लभ हीरे जैसा जन्म नष्ट होता जा रहा है। दुर्लभ मानव जन्म प्राप्त हुआ है। पुनः उत्तम भाग्य से सत्संग और पूर्ण गुरु की शरण भी प्राप्त हुई। अब भी यदि जीवन का वास्तविक लाभ न लिया तो फिर पश्चात्ताप करना होगा। अतएव जितना हो सके अधिकाधिक श्वास भक्ति-भजन के अर्थ

व्यतीत हों, वे निजी लाभ अथवा पूंजी हैं। भक्ति की कमाई जितनी अधिक बन पड़े, उतना ही अच्छा है, जिससे कि अन्त समय हाथ मलना और पछताना न पड़े।

महापुरुषों के इन दिव्यतम प्रवचन-ज्योति को हृदयंगम कर सभी प्रेमिजन, गुरुमुख जिज्ञासु सुख-शान्ति तथा आनन्द प्राप्त करें। भक्ति के वास्तविक रहस्य को समझने का सरल मार्ग सन्त महापुरुषों के सद्वचनों का परिपालन करना ही है।



सम्प्रदाय के पंचम जानशीन युग–सम्राट्

अवतरण

॥ दोहा ॥

अमर ज्योति रहै अमर जग, मुखरित होय विशाल ।
प्रकटे पंचम रूप में, श्री सद्गुरु दाता दयाल ॥
परम पुरुष पूरण धनी, शरणागत प्रतिपाल ।
एकहि किरपा–दृष्टि से, सेवक करैं निहाल ॥
वन्दौं श्री गुरु पद कमल, मंगल मोद निधान ।
परंब्रह्म साकार हो, सर्व सुखों की खान ॥
जन मन अति हर्षित भया, भक्ति सुधा को पाय ।
प्रेम–भक्ति अति महा महिम, चहुँ दिशि रही लहराय ॥

दिव्य विभूतियां दिव्य स्वरूप धारण कर दिव्य लोक से दिव्यतम कार्य करने के लिए ही इस धराधाम पर अवतरित होती हैं । उनका अलौकिक आलोक भास्कर की भाँति सर्वव्यापी नव जीवन प्रदान करनेवाला होता है । उसी अलौकिक आभा को लिए हुए 'श्री परमहंस अद्वैत मत' के अमर सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने, युग-युगान्तरों तक भक्ति का दिव्य प्रकाश फैलाने के लिए सम्प्रदाय के प्राण बन कर अवतरित हुए हमारे हृदय सम्राट्, सर्व-जन हितैषी प्रभु ! श्री श्री १०८ श्री स्वामी दर्शन पूर्ण आनन्द जी महाराज ।

आप २० सितम्बर सन् १९२६ तदनुसार आश्विन शुक्लपक्ष त्रयोदशी सम्वत् १९८३ सोमवार के शुभ दिन संध्या समय ग्राम रायपुर कलां, तहसील अजनाला, ज़िला अमृतसर (पंजाब) में अवतरित हुए। पूज्य श्री अर्जुनदास जी को आप के पिता तथा पूज्या ज्ञानदेवी जी को आपकी माता कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आप को पाकर सेतिया वंश तथा पंजाब की भूमि धन्य हो गये।

आप के पूज्य पिता जी को आपके शुभ जन्म से पहले किसी ज्योतिषी ने कहा था कि—"लाला जी! आप के घर दिव्य गुण सम्पन्न महापुरुष का जन्म होगा।" जन्म के पश्चात् जब आपके पिता जी ने जन्म कुण्डली बनवाई तो आप का शुभ नाम उसमें 'श्री साधुराम जी' लिखा गया। उसी समय ही आपके पूज्या माता जी व पिता जी दिल में सोचने लगे कि हो सकता है, ज्योतिषी की वाणी सत्य हो तथा कभी कभी चमत्कार देखकर पूर्ण विश्वास भी हो जाता कि ये वास्तव में ही महापुरुष हैं; परन्तु आपकी प्रबल माया उन्हें सब कुछ भुला देती। आप के पिता जी ने सोचा कि कहीं यह नाम यथार्थ ही सिद्ध न हो जाए, अतः उन्होंने आपका नाम बदल कर 'श्री राम प्रकाश जी' रखा। यही नाम अन्य सम्बन्धियों में भी प्रचलित हुआ।

आपके तेजोमय स्वरूप की विलक्षणता तथा एक ही मधुमय दृष्टि जन मन को आकर्षित कर देती है। आपके शुभ्र भाल पर, श्री चरण-कमलों व कर-कमलों में विलक्षण रेखाओं का समन्वय ही अवतार होने का साक्षात् प्रमाण हैं। महापुरुषों की महिमा को लेखनीबद्ध करना सूर्य को दीप दिखाना है। यहां पर तो 'अनन्ततः की एक तरंग' के रूप में झलकी प्रस्तुत कर लेखनी को कृतार्थ किया जा रहा है।

आपके जन्म के पश्चात् आपके पिता जी को दुनिया से उपरामता सी हो गई। वे हरिद्वार में एकान्त वातावरण में रहने लगे। कभी कभी घर वालों के आग्रह पर घर आ जाते थे। अधिकांश समय हरिद्वार में ही बिताते; यहां उन्होंने साधु वेष भी धारण कर लिया।

आप बचपन से ही सौम्य प्रवृत्ति, साधु सेवी तथा एकान्त वातावरण में प्रसन्न रहते थे। आपको दिव्य आनन्द की अनुभूति तो आन्तरिक रूप से प्राप्त थी, परन्तु लोक-मर्यादानुसार आपने उन सब कार्यों को सम्पन्न किया—जैसे लौकिक शिक्षा ग्रहण करना, शिष्य रूप में गुरु से नाम-दीक्षा प्राप्त करना, शरणागति, गुरु-आज्ञा पालन आदि आदि (इन सब विषयों का वर्णन पीछे श्री तृतीय पादशाही जी के जीवन चरित्र में दिया गया है)।

४ जून १९५३ को श्री चरणों में विनय कर आप पूर्ण रूप से शरणागत होकर हित चित्त से सेवा में तत्पर हो गये। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तृतीय पादशाही जी ने २ सितम्बर १९५६ रविवार के शुभ दिन आपको साधु वेष प्रदान कर आपका शुभ नाम 'श्री स्वामी दर्शन पूर्ण आनन्द जी' रखा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपको पाकर अपूर्व आनन्द अनुभव किया।

इस प्रकार श्री तृतीय पादशाही जी महाराज तथा श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज के समय में आपने सेवा में कर्त्तव्य-निष्ठता का साक्षात् प्रमाण दिया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी ने अपने स्वात्मरूप कर्मवीर शिष्य को पाकर अपनी रूहानी शक्ति की दात निज स्वरूप में लीन होने से कुछ समय पहले ही आपको समर्पित कर दी तथा स्वयं निश्चिन्त हो गये।

रूहानी-जानशीनी

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी की श्री आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए दिनांक १० जून सन् १९७० तदनुसार २८ ज्येष्ठ सम्वत् २०२७ वि० बुधवार के शुभ दिन श्री श्री १०८ श्री हुजूर स्वामी दर्शन पूर्ण आनन्द जी महाराज रूहानी राजसिंहासन पर विराजमान हुए। उसके पश्चात् सब महात्मा भक्त व बाइयां भक्तानियों ने मिलकर आपके शुभ्र भाल पर केसर का तिलक लगाया—श्री आरति उतारी गई तथा प्रसाद बांटा गया। उसी दिन ही

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी की पुण्य स्मृति में भण्डारा किया गया।

आनन्द, शान्ति, सर्व सुखों के आगार, श्री सद्गुरुदेव महाराज जी इस सम्प्रदाय के उन्नायक बन परमार्थ की दिव्य किरणों का आलोक जन-जन तक पहुँचाने में संलग्न हो गए तथा अथक परिश्रम व उत्साह से सर्वसाधारण को कृतार्थ कर रहे हैं, जो सब के सम्मुख प्रकट है।

आप श्री परमहंस महान् विभूतियों की श्री मौज को साकार रूप देकर तथा अपने ही निराले ढंग से भक्ति-पथ को अनुप्राणित कर जन-जन को आनन्दित कर रहे हैं। आप निर्माण कार्य तथा परमार्थ-लाभ—दोनों को विकसित रूप देने में तत्पर हैं। श्री आनन्दपुर, श्री प्रयागधाम तथा श्री सन्त नगर—जो इस सम्प्रदाय के प्रमुख आश्रम हैं—उनके निर्माण कार्य को विकास दे रहे हैं क्योंकि उत्तरोत्तर बढ़ती हुई पावन कीर्ति से जिज्ञासु, दर्शनार्थी संगतों के लिए निर्मित स्थान छोटे तथा कम हैं। साथ ही श्री आनन्दपुर में वैशाखी, श्री भण्डारा (श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज की पुण्य स्मृति में) श्री व्यासपूजा तथा दीपावली के पर्व—श्री प्रयागधाम में माघी का पर्व मनाकर समयानुसार श्री सन्त नगर व अन्य स्थानों को श्री दर्शन व प्रवचनामृत की वृष्टि कर आत्मिकोन्नति की ओर अग्रसर कर रहे हैं।

आप अपनी ही मौजानुसार स्थान स्थान पर 'श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर' का निर्माण करवा कर उद्घाटन कर रहे हैं ताकि श्री परमहंस महान् विभूतियों के श्री दर्शन व सत्संग लाभ से युग-युगान्तरों तक इस अमर ज्योति का आलोक सर्व-साधारण के लिए प्रेरणा-स्रोत बना रहे। साथ ही भारत तथा विदेश में जिस दूर-वर्ती क्षेत्र में अभी पूर्णरूपेण इस सम्प्रदाय का अमर सन्देश विकासशील न था, वहां अपने आश्रम स्थापित करवा कर प्रचारक भेजे हैं। स्वयं भी समयानुसार वहां श्री दर्शन व श्री अमृत प्रवचनों से निहाल करने के लिए कृपा फ़रमाते हैं।

सर्वप्रथम आपने अपने ही आश्रमों—श्री प्रयागधाम, श्री सन्त नगर में श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर का निर्माण करवाया—जहां श्री आनन्दपुर के नियमानुसार

दोनों समय आरति-पूजा की जाती है।

श्री प्रयागधाम के समीप बम्बई चैम्बूर में देवनार डिपो के समीप अपना एक आश्रम स्थापित करवाया ताकि प्रेमी श्रद्धालुओं को आत्मिक कल्याण के साधन सरलता से सुलभ हों।

दिनांक १४ मई १६७७ ज्येष्ठ संक्रान्ति शनिवार के शुभ दिन आपने यहां श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में श्री परमहंस महान् विभूतियों की प्रतिमाएं निज कर कमलों से विराजित कीं। विधिवत् श्री आरति-पूजा हुई तथा गुरु-महिमा के भजन गाए गए। प्रसाद बांटा गया। श्री दर्शन व सत्संग से जिज्ञासु हृदय पुलकित हो उठे।

ग्वालियर में स्थित जनक बाग में श्री मन्दिर बनवाने की मौजानुसार फ़रवरी १६७६ में इसकी नींव का मुहूर्त्त निज कर कमलों से किया। दिनांक १५ दिसम्बर सन् १६८२ बुधवार को इस श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में श्री परमहंस महान् विभूतियों की प्रतिमाएँ विराजित कर इस आश्रम का शुभ नाम 'परमधाम' फ़रमाया। यहां भी आप श्री दर्शन व सत्संग से प्रेमियों को कृतार्थ करते ही रहते हैं।

कर्नाटक प्रान्त के बंगलौर नगर में किनसिंगटन रोड, अलसूर लेक के समीप क्षेत्र को उपयुक्त जानकर यह स्थान खरीद करवाया। २३ दिसम्बर सन् १६७६ रविवार के शुभ दिन इस आश्रम में श्री मंदिर की नींव का उद्घाटन किया। पुनः दिनांक २७ सितम्बर सन् १६८२ सोमवार के शुभ दिन इस श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर में श्री परमहंस महान् विभूतियों की प्रतिमाएँ निज कर कमलों से विराजित कीं तथा इस आश्रम का शुभ नाम 'विवेक धाम' फ़रमाया। इस आश्रम के निर्माण पर दक्षिणी भारत के प्रेमी, जिज्ञासुओं को भक्ति रूपी पावन गंगा में मज्जन करने की सुविधा हो गई। यहां के प्रेमिजन समयानुसार आपके श्री दर्शन व प्रवचनामृत पान कर कृतार्थ हो रहे हैं व इस असीम उपकार के लिए कृतज्ञ हैं।

विगत जन्मों से बिछुड़ी रूहों को निज स्वरूप का ज्ञान कराना ही सन्त महापुरुषों का ध्येय है। श्री तृतीय पादशाही जी महाराज की मौज (कि विदेश में भी इस अमर ज्योति की पताका फहराए) को साकार रूप देने के लिए आपने विदेश को कृतार्थ किया। कुछ प्रेमी जिज्ञासु जो भारत से कार्य व्यवहार के लिए उधर गए हुये थे, उन्हें वहां श्री दर्शन व सत्संग की सुविधा उपलब्ध न होने से जब भी वे श्री आनन्दपुर में आते तो आप के श्री चरणों में वहां श्री दर्शन देने के लिये बार बार विनय करते तथा कुछ विदेश निवासी पुरातन संस्कारी रूहों की पुकार सुन कर आपने सन् १९७६ में प्रथम बार पूर्वी देश (सिंगापुर, इन्डोनेशिया, थाईलैंड आदि) में कृपा फ़रमाई तथा श्री दर्शन व पावन वचनों की वृष्टि से सुप्त हृदयों में जागृति उत्पन्न की। संस्कारी रूहों ने नाम-दीक्षा लेकर स्वयं को कृतार्थ किया।

पुनः सन् १९७७ व सन् १९७९ में दो बार पश्चिमी देश (अरब, स्पेन, इंग्लैंड, अमेरिका, कैनेडा आदि) में श्री दर्शन व श्री अमृत प्रवचनों से जिज्ञासुओं को शान्ति, आनन्द व प्रेम की त्रिवेणी में मज्जन करा कर कृतार्थ किया और अब भी समय समय पर उन्हें कृतार्थ करते रहते हैं। आपके इस महान् उपकार से अब विदेश में रहने वाले जिज्ञासु भी लाभान्वित होकर जीवात्मा का कल्याण कर रहे हैं। इस प्रकार आपने इस अमर-ज्योति के आलोक को देश-विदेश के कोने कोने में भर दिया। अब समय पाकर वे श्री आनन्दपुर में आते हैं तथा मुक्त कण्ठ से आपके गुणानुवाद गाते हैं।

आपके जन-कल्याण के लिए किए गए कार्यों का उल्लेख तो समुद्र सा अथाह है। आपने अपने सम्प्रदाय के लिए यह एक महान् उपहार दिया कि 'पूजा के फूल' में उपासना के लिए आराधन, विनति तथा स्तुति को सम्पूर्ण रूप से अपनी वाणी में प्रकट कर दिया है।

उपासना के लिए यही 'पूजा के फूल' में दिए गए पद्य ही श्री परमहंस अद्वैत मत के प्रत्येक आश्रम में प्रातः सायं गायन किए जाते हैं तथा सर्वदा के लिए

किए जाएंगे ।

प्रेमियों, जिज्ञासुओं की तीव्र मांग व अत्यधिक विनय पर आप सम्पूर्ण भारत के कई स्थानों पर (जहां श्री परमहंस अद्वैत मत के आश्रम स्थापित हैं तथा प्रचारक हैं) कृपा फ़रमाते हैं। श्री दर्शन व श्री अमृत प्रवचनों की वृष्टि से माया-मोह की अग्नि में जलते हुए हृदयों को शान्ति प्रदान करते हैं । जन-जन आप के महा-महिम उपकारों के लिए मुक्त-कण्ठ से स्तुति करता हुआ आभारी है । आपका एक एक क्षण जनकल्याण हेतु है।

नयनाभिराम, जन जन के हृदय पर साम्राज्य करने वाले, कृपा के भण्डार श्री परमहंस सद्गुरु दाता दयाल जी परमार्थ पथ के दिवाकर बन परमार्थ का आलोक जन-मन में भरने के लिये सेवा, शब्दाभ्यास व सत्संग की त्रिवेणी में जन-साधारण को मज्जन करा कर आनन्द शान्ति से भरपूर कर रहे हैं व सदा के लिए करते रहें । आपकी महिमा उदित सूर्य सम सब पर प्रकट है जिसे वाणी गायन करने में अशक्त है । आपकी वरदमय छत्रच्छाया में यह सम्प्रदाय फूले फले और उन्नति के पथ पर विकासशील रहे ।



आदर्श जीवन

आनन्दकन्द, प्रशान्त मूर्ति, दिव्यातिदिव्य श्री परमहंस महान् विभूतियों ने इस वसुधा पर अवतरित होकर परमार्थ तथा भक्ति का विमल पथ सर्वसाधारण को दर्शाया। गुरु-भक्ति के सिद्धान्तों व नियमों को देश, काल तथा परिस्थिति को लक्ष्य में रखकर लोकोपयोगी बना दिया। उन सब का प्रत्यक्ष रूप उनकी जीवन झलकियों में मिलता है। वे क्या थे, उन्होंने किस किस ढंग से भक्ति-परमार्थ का सरल तथा अत्युत्तम मार्ग जनसाधारण के सम्मुख रखा इसका विशद् वर्णन करना असम्भव है। संक्षेप में उन महान् आत्माओं ने इस घोर कलिकाल में प्रकट होकर मायालिप्त जीवों के कलुषित हृदयों से अज्ञान का अन्धेरा दूर कर के अलौकिक ज्ञान का प्रकाश भर दिया।

किसी व्यक्ति विशेष की भी महत्ता पूर्ण रूप से लेखनी-बद्ध नहीं की जा सकती तो अलौकिक शक्ति निधान पराविद्या के स्वामी श्री परमहंस विभूतियों की गौरव गरिमा को कैसे शब्दों में बाँधा जा सकता है। यहाँ तो केवल श्री पद-पंकजों में अपनी भावना, श्रद्धा के कुछ साधारण शब्द रूपी पुष्प अर्पित किये जा रहे हैं कि हमारे हृदय सम्राट् श्री परमहंस सन्त सत्पुरुष क्या थे?

श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी

(श्री प्रथम पादशाही जी महाराज)

तूफ़ान खुदगर्ज़ी का, चहुँ ओर था छाया।
नफ़्स-परस्ती में था, खुद को इन्सां ने भुलाया॥

नहीं मालूम कौन अपना, और कौन है पराया ।
मकरो–फ़रेब ने था, सब पर अन्धेर मचाया ॥
सद्गुरु लिया जहूर, हर घट में हुआ उजाला ।
मैल कदूरत धुल गई, हर शख्स हुआ मतवाला ॥
आ गया दुनिया में, हकीक़ी दीप जलाने वाला ।
बे गर्ज़ी से पिला दिया, नाम का अमृत प्याला ॥

श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जीश्री स्वामी अद्वैत आनन्द जी महाराज श्री पहली पादशाही जी–श्री परमगुरुदेव, ब्रह्मनिष्ठ, श्री परमहंस अद्वैत मत के संस्थापक, त्याग की साक्षात् मूर्ति, अवधूत शिरोमणि, युग प्रवर्त्तक तथा मर्यादाओं के उन्नायक थे । आपने जिस कार्य हेतु संसार में अवतार लिया था उसे परिपूर्ण किया । आपकी दूरदर्शिता तथा अगणित उपकारों के लिये इस सम्प्रदाय के अनुयायी युग युग तक ऋणी रहेंगे । आपका जीवन तप, त्याग, वैराग्य, तितिक्षा से परिपूर्ण था । आप बचपन से ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे । अतः प्रकृति की ओर से सांसारिक बन्धनों से भी आप को शीघ्र छुटकारा मिल गया । कुदरत की ओर से जिस महान् कार्य की पूर्ति के लिये आपका प्रादुर्भाव हुआ, वह सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । क्योंकि फ़कीरों का क़ौल है:—

॥ शेयर ॥

हर कसे रा बहरे–कारे साख़्तन्द ।
मेल–ऊ अन्दर दिलश अन्दाख़्तन्द ॥
शेख़ सादी साहिब

अर्थः—इस संसार में प्रत्येक को किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिए जिन लक्षणों अथवा विशेष गुणों की आवश्यकता होती है वे सब उस व्यक्ति विशेष में प्रकृति आरम्भ से ही भर दिया करती है । आप भी भक्ति-परमार्थ, त्याग तथा वैराग्य के गुणों से आरम्भ से ही पूर्ण थे ।

आप भक्ति के भवन की नींव थे। आप ने मानवता की विह्वल पुकार को सुना तथा युग-युगान्तरों तक पथ भटके जीवों को सन्मार्ग पर लगाने की सत्प्रेरणा दी। आपने युग की नाड़ी को आत्मिक वैद्य बन कर पहचाना। आपने इस माया लिप्त युग में जनसाधारण में भक्ति-परमार्थ की ज्योति भरने के लिए अनेक कठिनाइयों को सहन किया। आपने जिस प्रकार से तप में अपने कोमल तन पर सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि ऋतुओं को सम समझ कर व्यतीत किया, उस उपमा का वर्णन करना कठिन है। आपका जीवन खिले हुए फूल की भाँति भक्ति-परमार्थ की सुगंधि को फैलाता हुआ अशान्त हृदयों को शान्ति तथा आनन्द प्रदान करता था। अत्यधिक तपस्या करने से आप में वह लोकोत्तर तेज परिव्याप्त हो चुका था, जिसके समक्ष कोई आँख उठाकर देख नहीं सकता था। आपके दर्शनमात्र से ही सांसारिक जीव का मन निर्मल हो जाता था। आपका तेजोमय स्वरूप, गौर-वदन, विशाल ललाट, मुस्काता हुआ मुखमण्डल सूर्यवत् देदीप्यमान था। बड़े बड़े लोग भी आपके सम्मुख नतमस्तक हो कुछ कहने का साहस न रखते थे। आपके नयनों में समस्त ब्रह्माण्ड की कान्ति थी। आपको देखकर कोई भी मन्त्र मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। आपकी वाणी में इतनी मधुरता तथा ओज था कि जो भी आपके अमृत प्रवचनों को श्रवण करता उसका हृदय एक दिव्य मस्ती में झूम उठता था।

आप नीति-निधान तथा धर्म मर्यादाओं के संस्थापक थे। गुरु-दीक्षा लेकर आपने गुरु-दीक्षा की परम्परा को सुदृढ़ किया क्योंकि यह आदिकाल से सन्तमत के आचार्यों का उपदेश है कि बिना गुरु के आध्यात्मिक विद्या प्राप्त नहीं की जा सकती। आपने भक्ति के भवन की नींव को तपस्या से खूब सुदृढ़ किया। आपने दिगम्बर वेष में वनों में उग्र तपस्या की क्योंकि उस समय फ़कीरी दशा में आप को किसी से कोई सरोकार न था लेकिन मर्यादा के अनुसार जब परमार्थ पथ पर आरूढ़ होने के लिये लोगों के सम्मुख आये, उस समय पहले भोज-पत्र की कोपीन को धारण कर लिया, पुनः वेष धारण कर लिया। त्याग और वैराग्य आप के जीवन की एक एक लीला से स्पष्ट झलकता है। आप वैराग्य की अवस्था में वनों में

सिंह, चीते तथा वन्य पशुओं से निर्भीक होकर विचरण करते रहे। यहां तक कि शेर, चीते, भेड़िये हिंसक पशु व हरिण आदि आपके समीप आकर बैठ जाते। कितने आश्चर्य की बात है कि हरिण जो इन हिंसक पशुओं का आहार मात्र है, आप की छत्र-छाया में आपके पास बैठे रहते और हरिणों को कोई भी हानि न होती। हरिण के मन में कोई भय न होता। ऐसा इतिहास में अन्यत्र प्रमाण मिलना सुलभ नहीं कि एक ही समय में शेर व हरिण एक ही स्थान पर बैठे रहें। आप मानो मूर्तिमान् अद्वैत पुरुष थे। आप के समीप आकर हिंसक पशु भी अपने स्वभाव व प्रकृति को भूल जाते। त्याग अवस्था में आप अपने सुकोमल तन से वस्त्र तक उतार कर दे देते थे। ऋद्धियां सिद्धियां तो आप की चरण चेरी थीं। परन्तु सिद्धि शक्ति का उपयोग करना आप भक्ति के विरुद्ध समझते थे।

आप का हृदय गंगा सम निर्मल, आकाश सा विराट् और समुद्र सा परम गम्भीर था। उस में संकीर्णता नहीं थी। आप सब से प्रेम से मिलते थे। आप अपने आपको छिपा कर अत्यन्त नम्रता और सरलता ग्रहण किये रहते थे। आप सदा शान्त और ब्रह्मभाव की स्थिति में रहे। आप के गुणों का किन शब्दों में वर्णन किया जाय! आप अवर्णनीय और अनिर्वचनीय थे। आप सर्वगुण निधान, परमार्थ, भक्ति और अध्यात्म-ज्ञान के स्रोत थे।

आप सन्त स्वरूप में इस घोर कलि का उद्धार करने के लिये प्रकट हुए। आपने सब सिद्धान्तों को समयानुसार अपनाया। प्रथम योगसाधना से आत्म-साक्षात्कार कर पुनः परमार्थ पथ पर अग्रसर हुए। इस मार्ग पर आरूढ़ होकर सत्संग भरे उपदेशों से कलुषित हृदयों को निर्मल कर उस पर भक्ति का रंग चढ़ाया। आप ने सत्संग केन्द्र की स्थापना कर युग युगान्तरों तक इस सराहनीय कार्य को पूरा किया। परम अनन्य शिष्य श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी महाराज श्री दूसरी पादशाही जी की खोज कर एक दिल से दूसरे दिल तक सीना-ब-सीना आध्यात्मिक विद्या देकर आदिकाल की परम्परा को पूरा किया तथा साथ में भविष्य का पथ निर्माण किया। आप के ही पद-चिन्हों पर चल कर यह सम्प्रदाय अमर सत्यता की ज्योति हर घट में पहुँचाने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। आप ने

जिस भक्ति अर्थात् त्याग, वैराग्य तथा प्रेम का बीज बोया, उसी का पनपता हुआ पौधा ही आज पुष्पित, पल्लवित होकर दसों-दिशाओं में सौरभ बिखरा रहा है। आज उसी सौरभ से ही सभी प्रेमिजन आनन्द एवं मस्ती में झूम रहे हैं।

आप ने भक्ति का सरल तथा सुगम पथ दिखाया। जिस ढंग से जो जीव भक्ति-पथ पर आ सकें उन्हें उसी अनुरूप ढँग से ही चलाया। जो प्रेमी जैसी भावना लेकर आया, आप मौन रूप में ही उस की भावना पूर्ण कर देते थे। आपके इस सरल भक्ति-पथ पर सर्व साधारण भी चल कर अपना कल्याण कर सकते हैं और उसी पथ को अपना कर आज परम्परागत जनसाधारण लाभान्वित हो रहे हैं। आपकी मौज थी कि इस मूल मन्त्र (शब्द) की झंकार प्रत्येक प्राणी के हृदय रूपी सितार पर झंकृत हो उठे। अतः आपकी श्री मौज के अनुसार ही भावी महापुरुष उसी ध्येय को पूर्ण कर रहे हैं। आप इस सम्प्रदाय के प्राण थे और सदा के लिए भक्ति की अमिट छाप छोड़ गये। आप के किये गये उपकारों के लिए यह 'श्री परमहंस अद्वैत मत' तथा इस सम्प्रदाय के प्रेमी ऋणी हैं। आप प्रेरणा के स्रोत हैं। श्री आनन्दपुर में भक्ति, परमार्थ, रुहानियत के स्वरूप श्री परमहंस विभूतियां श्री परमहंस दयाल जी की रूहानी ज्योति के विविध रूप हैं। आप के गुणों का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस ने भक्तिरूपी अमृत को पिया वही आपकी परोपकारिता का अनुभव कर सकता है। आज आपके ही आशिष के फलस्वरूप यह सम्प्रदाय उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी

(श्री द्वितीय पादशाही जी महाराज)

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री स्वामी स्वरूप आनन्द जी ब्रह्म-निष्ठ, योगिराज, वैराग्य पुञ्ज, सर्व गुण सम्पन्न, तत्त्वदर्शी, स्वनाम धन्य इस सम्प्रदाय के द्वितीय सम्राट् थे। आपका जीवन गुरुभक्ति की ऊषा की अरुणिमा,

कुन्दन की चमक, बसन्त की छवि की भाँति था। सर्वकला सम्पन्न दिव्य ज्योति से परिपूर्ण था। आपने गुरु-भक्ति के सिद्धान्त को सुदृढ़ किया। बचपन से ही अवतारी होने के लक्षण स्पष्ट थे कि पर्वत की कन्दराओं में बैठे रहना, किसी से कुछ भय न लगना, अपनी ही मस्ती में लीन रहना। आपने गुरु-दीक्षा लेकर गुरु-आज्ञा अनुसार निज जीवन को योग साधना से कुन्दन बना लिया। आपने यह सिद्ध कर दिया कि गुरु के वचनानुसार जीवन बनाने से लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। आप जन्मजात अवतारी विभूति थे। अतः श्री परमहंस अद्वैत मत सम्प्रदाय के प्रथम सम्राट् श्री परमहंस दयाल जी आपको पाकर अत्यन्त हर्षित हुए। आपने प्रेमी और प्रियतम के सम्बन्ध का ज्ञान अपने आचरण से स्पष्ट दर्शा दिया कि जब प्रेमी प्रियतम की पूर्ण रूप से चाह करता है तो प्रियतम भी प्रेमी के बिना कैसे तड़पता है। आप के प्रेम की अनुभूति में श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी के नयनों में कितनी बार अश्रु-कण छलछला आते थे। आपने यथार्थ प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण संसार के सम्मुख रखा। जैसा कि सन्त दादूदयाल जी ने भी प्रेम की सराहना की है:—

॥ दोहा ॥

प्रीत जो मेरे पीव की, पैठी पिंजर माहिं ।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नाहिं ॥

अर्थः—जब प्रियतम का प्रेम हृदय में बस गया तो रोम रोम में से इष्टदेव के नाम की ध्वनि निकलने लगी। इसके सिवाय और कुछ नहीं रहता। ऐसा ही आपका प्रेम था।

आपकी मनोहर मूर्ति, साँवली सूरत तथा मधुर चित्ताकर्षक वाणी बरबस दिलों को खींचती थी। जो भी प्रेमी अपने हृदय में जैसी भावना लेकर आया, आपने सत्संग में ही उसकी भावना का उत्तर दे दिया। कई बार तो श्री अमृत प्रवचनों को सुनते हुए कई प्रेमियों की सुरति मायावी आवरणों से विलग होकर सहज-समाधि में लीन हो जाती और सचखण्ड के दिव्य आनन्द में झूमने लगती

थी। आपके परमार्थ पथ पर आरूढ़ होने से आध्यात्मिक क्षेत्र में एक प्रकार से क्रान्ति आ गई। जिसको भी आपकी पावन संगति प्राप्त हुई, उसको दुनिया से कोई सरोकार न रहा। वह सुध-बुध भूले इस भक्ति रूपी शमा का परवाना बन गया। आपने श्री परमहंस दयाल जी की श्री मौज के अनुसार गांव-गांव, नगर-नगर में तथा झोंपड़ी से राजमहल तक इस सत्य नाम के मन्त्र को गुँजा दिया। सीमाप्रान्त, पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में आपने कई आश्रमों का निर्माण भी करवाया जिससे कि जनसाधारण घर बैठे ही परमार्थ लाभ प्राप्त कर सकें। आपने शरणागति पथ को विशाल रूप दिया। आपके श्री चरणों में कितने ही परिवारों ने सर्वस्व समर्पण कर शरणागति प्राप्त की। उन में से कुछ अधिकारी व संस्कारी प्राणियों को आपने साधु वेष प्रदान कर एक साधु मण्डली तैयार की। जब इस साधु मण्डली के बीच आप विराजमान होते तो बिल्कुल ऐसे प्रतीत होते जैसे सितारों के बीच शरद्-पूर्णिमा का चाँद। कभी प्रेम के भंडारी बनते तो कभी त्याग और वैराग्य का उपदेश देते। वात्सल्य, करुणा, नम्रता और गम्भीरता के आप समुद्र थे।

आपने गुरु-भक्ति के लिये सेवा तथा गुरु-आज्ञा—इन दो नियमों को मुख्यता प्रदान की। भजनाभ्यास आप अत्यधिक करवाते थे। आपकी दिव्य झलक पे कौन ऐसा होगा जो मुग्ध हुए बिना रहा होगा! आपके अगम तथा अकथनीय भेद को जिस पर आपकी कृपा होती वही समझ पाता था। आप अनन्त थे। आपने प्रचारक साधु महात्माओं की मण्डली बनाकर भारत में स्थान स्थान पर सत्संग आश्रम बनवाने की श्री आज्ञा प्रदान कर लोगों को घर बैठे ही नाम का अमृत पीने में जो सुविधा दी उस के लिए प्रेमी हृदय उऋण नहीं हो सकते। आपने अपने मत की श्री आरति की इन पंक्तियों को सिद्ध कर दिखाया किः—

हम जैसे भागियन को गृह दर्शन दीन्हा ॥

अर्थात् घर में बैठे ही संसार में फँसे हुये जीवों को श्री दर्शन देकर व श्री

अमृत प्रवचन श्रवण करवा कर उन्हें संसार में व्यवहार करते हुए संसार से विलग कर दिया। उन कलियुग के अधम जीवों को भाग्यशाली बना दिया। आप फ़रमाया करते थे कि इस संसार में गुण और अवगुण दूध तथा पानी की तरह मिले हुये हैं। बुद्धिमान् पुरुष गुणों को ग्रहण कर अवगुणों का त्याग करते हैं जैसे हंस दूध और पानी को अलग कर लेता है वैसे ही गुण तथा अवगुणों को परखने का ज्ञान सन्त महापुरुषों से मिलता है। सन्त महापुरुष ही जीव को सत्–असत् की परख करा सकते हैं। श्री रामायण में भी लिखा है:—

॥ दोहा ॥

जड़ चेतन गुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार॥

विधाता ने इस चराचर सृष्टि की रचना में गुण और दोष दोनों भर दिये हैं। सन्तजन हंस बनकर गुण रूपी दूध को ग्रहण कर अवगुण रूपी पानी का त्याग कर देते हैं। इसी प्रकार गुरुमुखों को माया असत् तथा भक्ति सत् दिखाई देनी चाहिये। जिन्होंने सन्त महापुरुषों की शरण प्राप्त कर ली है वे हंस आत्माएँ हैं। उन्हें सत् असत् की परख का यन्त्र (शब्द) मिल चुका है। अतः सब का परम कर्त्तव्य हो जाता है कि इस शब्द की कमाई करते हुए प्रत्येक गुरुमुख हंस की न्याईं भक्ति के मुक्ताकण चुगें।

इन प्रवचनों से स्पष्ट झलकता है कि आपने पापमयी कुप्रवृत्तियों से युक्त तथा जन्म-जन्मान्तरों से मलिन आत्माओं को अपने निज स्वरूप का बोध कराया। आपने मालिक से बिछुड़ी हुई रूहों की आतुर पुकार को सुनकर उन बिछुड़ी संस्कारी रूहों को अपने धाम में पहुँचाने के लिए भारत के उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक अधिकांश भागों में श्री दर्शन देकर तथा प्रवचनामृत श्रवण करा कर लाभान्वित किया। आपके इस पथ पर चलकर यह सम्प्रदाय अधिकाधिक उन्नति की ओर जा रहा है।

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्‌गुरुदेव जी

(श्री तृतीय पादशाही जी महाराज)

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्‌गुरुदेव जी श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी एक उच्च कोटि के महापुरुष, सन्त शिरोमणि, पूर्ण तत्त्ववेत्ता, वीर कर्मयोगी अवतारी विभूति थे। आपने संसार में वह आदर्श स्थापित किया जिसका प्रमाण संसार में नहीं मिलता। वैसे तो गुरु-शब्द की महिमा अवर्णनीय है किन्तु आपकी महिमा का कोई कहाँ तक वर्णन करे। आपने जिन सिद्धान्तों को अपनाया, जिस आदर्श को दिखाया, वह सब के सम्मुख दिनकर के समान प्रकट है। साधन-अभ्यास के साथ साथ निष्काम कर्मयोग का पान कराना आपके जीवन का विशेष आदर्श था। जनसाधारण के जीवन स्तर को दैहिक तथा आत्मिक दृष्टि से ऊँचा उठाना आपका ध्येय था। मानुष जीवन के सर्वांगीण विकास को आप विशेष महत्त्व प्रदान करते थे अर्थात् शारीरिक-मानसिक-बौधिक एवं आध्यात्मिक उन्नति समान रूप से विकसित हो। इतिहास में ऐसा प्रमाण अति कठिनता से मिलता है कि किसी युग में परोपकार, जनकल्याण, त्याग, वैराग्य का ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ हो।

सिद्धान्त के अनुसार एक मनुष्य जिन नियमों को मान्यता प्रदान करता है, जिन सिद्धान्तों में विश्वास रखता है वे तभी ठीक हो सकते हैं जब स्वयं उन पर आचरण करता है। यदि उसने स्वयं इन नियमों व सिद्धान्तों को जीवन में नहीं ढाला तो उसके सब सिद्धान्त थोथे हैं, नियम निरर्थक हैं। परमसन्त श्री कबीर साहिब जी ने भी लिखा है:—

॥ दोहा ॥

यह करनी का भेद है, नाहिं बुद्धि विचार।
कथनी छांडि करनी करै, तो कुछ पावे सार॥

प्रकृति का यह अटल नियम है कि प्रत्येक कार्य को उसने किसी सिद्धान्त व नियम में बाँधा हुआ है। इसके अनुसार आचरण मनुष्य के प्रतिभाशाली उपदेशों से कहीं अधिक प्रभावशाली है। आपने अपने आचरण से सारे संसार में क्रान्ति ला दी। जन जन के हृदय में वैराग्य, त्याग, परमार्थ तथा कर्मयोग की वह सुगन्धित पवन भर दी जिस से प्रत्येक गुरु-भक्ति के अभिलाषी का जीवन सफल हो गया। आप ने विदेही जनक का उपदेश देकर सब को विदेह बनाने का प्रयत्न किया, जो भी आपकी पावन संगति में आया। जिन प्रेमियों ने आप की श्री छवि को निहारा, अमृत तुल्य पावन वचनों का पान किया वही इस आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। भँवरे से पूछिये उसे फूलों से क्या रस मिलता है, वह अपनी मस्ती में फूल के मकरन्द को पीने में मस्त है। उसे क्या परवाह किसी की कि किसी को कुछ बताये। वह तो मस्ती में इतना लीन है कि पुष्प के बन्द हो जाने की भी उसे ख़बर नहीं। पतंगे से पूछिये कि शमा पर मर मिटने का क्या आनन्द है? बस जिसे एक रस का आनन्द आ गया वह बताये कैसे? उसे समय ही कहां है बताने के लिये। इसी प्रकार ही आपकी सुन्दर, कन्तियुक्त ऊषा की प्रफुल्ल लालिमा के समान जब कि नील गगन स्वर्णिम आभा से आलोकित होता है ऐसी दिव्य सुषमा का श्री दर्शन करने से तथा श्री मुख से अमृत प्रवचन श्रवण करने से हृदय में भक्ति प्राप्त करने की तरंगें स्वतः लहराने लगती हैं। उस प्रेम-भक्ति के पुष्प का रस अकथनीय है। यह वह मधुर अमृत है जिस का केवल अनुभव किया जा सकता है वर्णन नहीं।

आप ने वह प्रेम-भक्ति की धारा बहाई जिस में मज्जन कर प्रेमियों ने परम शान्ति, नित्यसुख और शाश्वत आनन्द का आस्वादन लिया। नारद भक्ति सूत्र के पाँचवें सूत्र में भी कहा है:—

॥ श्लोक ॥

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति न शोचति।
नद्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥ ५ ॥

भावार्थः——इस प्रेम-स्वरूपा भक्ति को पा लेने से मनुष्य को किसी वस्तु की इच्छा नहीं रह जाती। न वह शोक करता है, न ही द्वेष करता है, न किसी वस्तु में आसक्त रहता है। न ही वह विषय-भोगों की प्राप्ति में उत्साह करता है। आप ने ऐसी अमूल्य निधि ही प्रेमियों को प्रदान की जिस को पाकर संसार की झिलमिलाती माया उन्हें धूल दिखाई देती थी। संसार जिन विषय-विलासों एवं भोगैश्वर्यों के पीछे दिन रात मदमत्त हुए फिरता है और कुछ प्राप्त नहीं कर सकता, गुरुमुखों के पीछे वही सुख-सामग्री स्वयं दौड़े आती है। परन्तु गुरुमुख प्रेम-भक्ति रूपी चिन्ता-मणि को प्राप्त कर इन सब को ठुकरा देते हैं। आपने जनसाधारण तक इस सन्देश को पहुँचाने का प्रयत्न किया कि:——

॥ शेयर ॥

आतिशे-इश्क में तू ख़ुद को मिटा के देख।
कि गुमशुदगी में जीने का लुत्फ़ क्या है॥
मेरे साकी का मयखाना सदा आबाद रहता है।
पी ले दो घूंट उस से सदा दिल शाद रहता है॥

अर्थात् ऐ जीव! तू प्रेम-अग्नि में अपने आपको जला दे। जब तेरा आपा-भाव मिट जाएगा तब तुझे उस आनन्द का पता चलेगा कि वह आनन्द क्या है। इस प्रेम रूपी सुरा (शराब) की धारा तो हर समय बह रही है। उस से दो घूंट पी कर देख कि कैसे दिल सदा प्रसन्न रहता है। यह सन्देश दिया आपने सर्वसाधारण को भी, जिससे सभी इस अमृत के स्रोत में गोता लगा कर अमर हो जाएँ।

मनुष्य की बुद्धि असमंजस में पड़ जाती है कि आप को द्वापर के लीलाधारी श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज कहें या त्रेता के मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी महाराज। साधनलीन बुद्ध कहें अथवा परमार्थ-पथ का दिनकर। कुछ भी समझ में नहीं आता कि क्या उपमा दें। आपने वे अनुपम लीलाएँ की जिन के रहस्यों

को हृदय की गहराई से सोचने पर भी समझ में नहीं आ सकतीं। वे मर्यादाएँ बांधी जिन में से परा-बुद्धि की विशेषता स्पष्ट झलकती है। सत्य नाम का ऐसा अमृत पिलाया कि जन जन को भूल ही गया कि हम कलिकाल में निवास कर रहे हैं या कि सत्य-युग में? आपने समझाया कि हठ योग, क्रिया योग, साधन-योग तथा कर्मकाण्ड की गुत्थियों में उलझे रहने से जीवन निरुद्देश्य तथा लाभरहित बन कर रह जाता है। आपने सुरत-शब्द-योग अथवा राजयोग को ही सर्वोत्तम योग बतलाया जिस से जीवन को पूर्ण रूप से सफल कहा जा सकता है। आप ने सब के लिए गीता के निम्न उपदेश को आवश्यक बताया:—

॥ श्लोक ॥

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

श्री मद्भगवद्गीता अ० ६ श्लो० १६—१७

अर्थः—हे अर्जुन! न तो बहुत खाने वाले का योग सिद्ध होता है, न ही बिल्कुल न खाने वाले का। न अति शयन करने वाले का, न ही अत्यन्त जागने वाले का योग सिद्ध होता है। प्रत्युत दुःखों, क्लेशों को हरने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का यथायोग्य जागने और शयन करने वाले का सिद्ध होता है।

इस के साथ साथ ही जिस निष्काम कर्मयोग का उपदेश गीता में भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज ने अर्जुन को किया है, श्री रामचन्द्र जी महाराज ने जिस नवधा भक्ति का उपदेश शबरी को किया है, वही उपदेश सरल भाषा में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने अपने प्रेमियों, सत्संगियों को कर्त्तव्य-परायणता तथा निष्काम-सेवा का दिया है। आप तप, तितिक्षा, प्रेम, भक्ति, पवित्रता एवं सदाचार की साक्षात् मूर्ति थे। त्याग एवं वैराग्य आप के जीवन

का मुख्य अंग था। निष्काम भाव-पूर्ण कर्म करते रहना आप का मुख्य सिद्धान्त था। संसारी जीवों को आत्मिक तथा भौतिक दोनों स्तरों से उन्नत करना आपका ध्येय था। आपके कर्म प्रधान जीवन की रहनी सहनी, गम्भीर प्रकृति, सद्व्यवहार, मधुर भाषण, सरल स्वभाव का गहरा प्रभाव सभी शिष्यों, सेवकों और सत्संगियों पर पूर्ण रूप से पड़ा। आपके कार्यशील स्वभाव से सभी अनायास ही खिंचे चले आते। आप की वाणी में ऐसा जादू था कि एक प्रवचन से सभी मन्त्र मुग्ध हो जाते, दिशाएँ झूमने लगतीं, प्रकृति स्तब्ध सी हो जाती, प्रेम का सागर उन्मत्त हो उठता, हृदय प्रसन्नता तथा आनन्द की पयोनिधि (समुद्र) में तरंगित होने लगता। जो एक बार भी आपकी ओर आकृष्ट हुआ, वह तार से बँधी हुई कठपुतली के समान खिंचा चला जाता। आप में सर्व हृदय-विजयी चुम्बकीय आकर्षण शक्ति, मलय पवन सी सुगन्धि भर देने का गुण, स्वयं पारस सम काया पलटने का गुण विद्यमान था। जैसे मलयागिरि पर आबनूस, सागौन, चोड़ आदि वृक्ष होते हैं। जब वायु चलती है तो आस-पास के सभी वृक्ष उसकी सुगन्धि से चन्दन रूप बन जाते हैं। उन में से भी चन्दन की सुगन्धि आने लगती है और उस चन्दन के भाव वह लकड़ी भी बिकनी आरम्भ हो जाती है। उस एक वृक्ष ने सब वृक्षों में वह सुगन्धि भर दी तो सम्पूर्ण पर्वत मलयागिरि के शुभ नाम से सम्बोधित हो गया। महापुरुषों के वचन हैं:—

॥ दोहा ॥

नीम मिली चन्दन भई, मलयागिरि के संग।
जो जन साधु संग करै, चढ़ै भक्ति का रंग॥

आप के पावन व्यक्तित्व में यही विशेष गुण था कि अवगुणों, बुराइयों, पापों तथा विषय-वासना युक्त जीव जब भी आप की पावन कल्याणकारी मनोहारी श्री छवि को निहारने के लिए आते तो मलय समीर की न्याईं आपकी पवित्रता, सदाचार तथा महानता से प्रभावित होकर थोड़े समय में ही भक्ति-परमार्थ-सेवा के गुणों से भरपूर होने लगते। इस श्री आनन्दपुर के कण कण में आपने निर्मोहिता का ऐसा

रंग भरा, जो भी जिज्ञासु यहां पहुँचता वह श्री दर्शन करने से पहले ही मन की अवस्था को बदला हुआ पाता। वह मोह के स्थान पर प्रेम के रंग में रंग जाता। वह स्वयं निज मुख से यह कहता कि यहां तो तिथि, दिन का नाम तथा मास आदि किसी का पता नहीं चलता। सब ऐसे भूल जाते हैं जैसे हमें इनकी ज़रूरत ही नहीं।

आप अनन्त थे, सर्वज्ञ अन्तर्यामी, हृदय सम्राट्, नयनाभिराम, जीवनधन न जाने क्या क्या थे। कुछ समझ में नहीं आता, कभी तो लीलाधारी बनकर लीला करते, कभी गुरु रूप धारण कर उपासना करवाते, कभी माता पिता बन कर दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्वयं प्रबन्धक बन जाते तो कभी आत्म-ज्ञान के आन्तरिक मार्ग का उपदेश देकर योगीश्वर बन जाते। आपने कैसे प्रेमी हृदयों पर शासन किया, इसका विस्तार समुद्र को नापने की न्याईं बताना कठिन है। जैसे श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने भगवद्गीता में अनेक प्रकार के योगों का वर्णन किया है। अर्जुन ने विनय की–प्रभो! इतना ज्ञान सुनने पर मेरी बुद्धि चकरा सी गई है, मुझे समझ नहीं आता कि क्या करूँ। किस योग को अपनाऊँ? तब श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज ने अत्युत्तम मार्ग दर्शाया कि इस मार्ग को अपना:—

॥ शेयर ॥

जो करे सो मेरी ख़ातिर, जो धरे मेरे लिए।
सादगी में मेरा आशिक, क्या गज़ब हुशियार है॥
हो मुहब्बत उसको उनसे, जिनको मैं पैदा करूँ।
बे तमा हो बे गरज़ हो, जब वह मेरा यार है॥
मुझ से चाहे मुझ को, और मेरी परस्तिश में रहे।
दूसरी सूरत से जब देखो, जभी बेज़ार है॥
जो बताना था बताया, देख क्या बाकी रहा।
एक नुक्ता है जो तेरे, हक में अब दरकार है॥
तर्क कर सब मिल्लतें, ले मुझ अकेले की पनाह।
यह मेरा ज़िम्मा है अर्जुन, तेरा बेड़ा पार है॥

आपने यही कुछ उपदेश दिया। आप प्रायः फ़रमाया करते थे कि सब ख़्यालों को श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा में केन्द्रित कर दो, फिर लोक परलोक की चिन्ता की कोई आवश्यकता ही नहीं। आपने ये प्रवचन स्पष्ट फ़रमाए:—

"जो कुछ ख़्याल किया जाता है वैसा ही इन्सान बन जाता है। जैसा निश्चय किया जावे वही होता है। चाहे कमज़ोर ख़्यालों को तरक्की दी जाये, चाहे अच्छे ख़्यालों को ग्रहण किया जावे, दोनों को मज़बूती मिल सकती है। नतीजा अलग अलग होगा। अब आप सभी क्या बनना चाहते हो ?

सेवक का दर्जा बहुत ऊँचा है। दुनिया में कोई भी बड़े से बड़ा आदमी भी सेवक से ऊँचा नहीं है। चाहे राजा महाराजा क्यों न हो। जैसे श्री रामचन्द्र जी महाराज ने श्री रामायण में सेवक का दर्जा ज्ञानी-विज्ञानी से भी ऊंचा बताया है:—

॥ चौपाई ॥

पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहिं सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं ॥
भक्तिवन्त अति नीचहु प्राणी। मोहिं परम प्रिय अस मम वाणी ॥

बस अगर एक सद्गुरु की सेवा करोगे तो बाकी हर किसी की गुलामी से आज़ाद हो जाओगे वरन् काल और माया की गुलामी करनी पड़ेगी। इस के विपरीत केवल सद्गुरु की सेवा करने से काल-माया, काम, क्रोधादिक की गुलामी से छूट जाओगे। सद्गुरु की एक आज्ञा के बन्धन में रहने से लाखों बन्धनों से छुटकारा मिलता है, आज़ादी मिलती है।

वास्तव में सेवक न सुख चाहता है, न मान, न इज़्ज़त न आराम, न बड़ाई कुछ भी नहीं चाहता। लेकिन सद्गुरु का सेवक होने के नाते सब सुख उस के पीछे पीछे फिरते हैं। सेवक को अन्दरूनी सुख व शान्ति हद से ज़्यादा होती है। बस ऐसे ख़्यालों को अपने दिल में पक्का करो—कमज़ोर ख़्यालों को दिल में स्थान न दो। नीचे दर्जे के और कमज़ोर ख़्यालों की क़दर व कीमत नहीं है।

किसी के लिये बुरा न कहो, चाहे वह बुरा हो। अगर वह बुरा है तो तुम

अपने अन्दर बुरे ख़्याल क्यों जमा करते हो। अगर वह अच्छा है तो उसे बुरा कह कर तुम स्वयं बुरे क्यों बनते हो। हमारी आज्ञा है कि सब ओर से ख़्यालों को हटा कर केवल श्री सद्गुरुदेव जी की आज्ञा व प्रसन्नता में ख़्यालों का रुख़ मोड़ दो।

हमेशा सद्गुरु की सेवा में दिल व जान से समय ख़र्च करो। यदि सद्गुरु की सेवा को शौक, श्रद्धा व प्रेम से करोगे तो समय का पूरा पूरा लाभ प्राप्त होगा। इस प्रकार की सेवा ऊँचे स्तर की सेवा है। उन्नति की ओर पग बढ़ाओ, लक्ष्य की प्राप्ति स्वयं हो जाएगी।"

श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी ने निराले ढंग से जिज्ञासुओं को आकृष्ट किया। आपने सेवकों को सद्गुरु-आज्ञा, सद्गुरु-सेवा तथा भक्ति की प्राप्ति का सरल तथा अत्युत्तम साधन दर्शाया—जन कल्याण हेतु प्रेम, दया, करुणा के भण्डारी बन जन जन को इस सत्संग रूपी पावन भागीरथी में मज्जन कराया तथा शरणागतों को स्वावलम्बी, कर्मयोगी बनने का निराला ढंग बताया। प्रेम, करुणा, स्नेह, कृपा के इस मूर्तिमान् स्वरूप पर यदि लोग अपना तन प्राण लुटाने को एवं अनेक प्रकार से न्यौछावर होने को सदैव उद्यत रहते तो इस में आश्चर्य करने अथवा दंग रहने की बात ही क्या है? आप स्वयं निज मुख से फ़रमाते थे—"हम ने भी जो कुछ प्राप्त किया है, वह सब गुरु सेवा से ही प्राप्त किया है। सेवा आधिभौतिक, आधि दैविक, आध्यात्मिक रोगों की औषध है। जो सद्गुरु आज्ञा करें, जीव उस को अपनी सम्पदा समझ कर उन वचनों पर प्राणपन से जुट जाये तो कौन सी ऐसी शक्ति है जो उसके सम्मुख न झुकेगी अर्थात् समस्त शक्तियां सद्गुरु के सेवक के समक्ष हाथ बाँधे खड़ी हैं।" इसी कथन की पुष्टि आप ने भी की है:—

॥ शेयर ॥

हर कि ख़िदमत कर्द, ओ मख़दूम शुद।
हर कि ख़ुद रा दीद, ओ महरूम शुद॥

शेख़ सादी साहिब

शेख़ सादी साहिब जी का कथन है कि जिस ने भी सेवा की वह मालिक बन गया, जिस ने अपने आप को देखा, वह कोरा रह गया। अर्थात् जिसने भी सन्त महापुरुषों की सेवा की, वह संसार के लिए पूजनीय बन गया। परन्तु जो अपने आपको देखता रहा अर्थात् मान गुमान में भरा रह कर किसी के आगे जिसने झुकना पसन्द न किया, वह उन समस्त गुणों और विशेष लाभों से वंचित रह गया जो कि सेवा के परिणाम में प्राप्त होते हैं।

इस संसार में जिस किसी ने भी महिमा, प्रतिष्ठा, सुनाम एवं सफलता के शिखरों का स्पर्श किया, निश्चय ही वह महापुरुषों, पूर्ण पुरुषों की सेवा रूप सीढ़ी पर चढ़ कर ही पहुँच सका। प्रत्येक कठिनाई को और विषम घाटी को उस ने हँस हँसकर पार किया। दुःख-सुख में उसने एक रस रह कर जीवन के ध्येय को प्राप्त किया। जैसा कि श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के उच्च जीवन की झलकियों से हमें ज्ञात होता है। आप ने अपने श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की प्रत्येक मौज एवं आज्ञा में अपने को ढाला, प्रत्येक कर्त्तव्य को आपने प्राणपन से निभाया, शारीरिक कष्ट-क्लेशों को उपेक्षा की कोटि में डार रखा था। आप स्वयं फ़रमाया करते थे कि दृढ़-संकल्प ही मनुष्य की निजी निधि है। आप ने श्री वचनों में इस झाँकी को प्रदर्शित किया:—

"जो स्वांग भी रचा जाय उस में तद्रूप होकर उस का यथातथ्य अभिनय किया जाय। जैसे एक स्वांग करने वाले ने साधु का स्वांग करते हुए राजा के द्वारा लाई हुई हज़ारों रुपयों की अशर्फ़ियों को स्वीकार न किया और बाद में पांच व दस रुपये ही पुरस्कार रूप में ग्रहण किए।

इसी प्रकार वास्तविक रूप में तुम ने साधु का भेष धारण किया है, यानि तुम साधु बने हो और सब कुछ त्याग किया है इसीलिए तुम्हें यह स्वांग पूरा उतारना चाहिए।

जिस काम को करो, वही रूप बन जाओ, उसी को पूरा करो। मतलब यह

है कि भक्ति को आख़िरी मंज़िल तक पहुँचाओ।

केवल साधु वेष धारण कर लेना ही साधु के लक्षण नहीं हैं। साधु वह है जिसने इन्द्रियों पर संयम कर मन को जीता है। सद्गुरु का ध्यान मस्तक में दृढ़ किया हो। सद्गुरु की आज्ञा में निज जीवन को ढाला हो। श्री आनन्दपुर के सभी निवासियों को सदा यही शिक्षा दी जाती है और उसे आचरण में उतारा जाता है। यहां का आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभी साधु हैं, क्योंकि त्याग और विषयों से वैराग्य ही यहां का मुख्य नियम है।" आप के इन्हीं उपदेशों का अनुसरण करते हुए इस दरबार के सेवकों में कर्त्तव्यनिष्ठा की जो भावना जागृत हुई है तथा इस भावना से प्रेरित होकर जो ठोस कार्य तथा कठोर परिश्रम सेवकों ने किया है, उस का स्पष्ट परिणाम वर्तमान 'श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम' के रूप में सब के सम्मुख प्रकट है।

आप मानवीय गुणों से परे एक दिव्य विभूति थे। फिर भी मानव बुद्धि मानव गुणों के अनुसार ही केवल देख या परख सकती है। उसी अनुरूप ही गुणों को कुछ स्तर तक लेखनी द्वारा वर्णित कर देती है। इस के अनुसार महानता और पवित्रता ये दोनों विलक्षण गुण आप में विद्यमान थे। यद्यपि इन दोनों में कोई मौलिक भेद नहीं तो भी इन दोनों गुणों का मिश्रण मनुष्य में बहुत कम होता है। इसका सरलार्थ यह है कि बुद्धिमान्, विचारवान् तथा प्रतिभावान् तो संसार में बहुत मिलते हैं, परन्तु सच्चे पूर्ण सन्त महापुरुष अलभ्य हैं। इस प्रकार के दिव्यतम गुणों से विभूषित (सजे हुए) थे हमारे प्रातः स्मरणीय, अभिनन्दनीय श्री परमहंस अवतार जी महाराज। ऐसे सत्पुरुष सृष्टि में चिरकाल उपरान्त प्रकट होते हैं। ये सत्पुरुष ही वास्तविक अर्थों में सृष्टि की अमूल्य निधि हुआ करते हैं क्योंकि वे ही मनुष्य मात्र के पथप्रदर्शक, उपदेष्टा और मोक्षदाता होते हैं। यद्यपि वे नित्य अवतार रूप में जन कल्याण हेतु मानुषी-भेष में हमारे सम्मुख आते हैं तथापि उन्हें साधारण मनुष्यों की श्रेणी में गिनना सर्वथा अनुपयुक्त है।

आप में उपर्युक्त दोनों गुण विद्यमान थे महानता और पवित्रता। आप के

जीवन की प्रत्येक झाँकी में विलक्षणता तथा अलौकिक आभा प्रकट होती है। बार बार केवल इतना ही कहना पड़ता है कि आप के गुणों की संक्षिप्त रूपरेखा का भी वर्णन करना मानव बुद्धि से बाहर है।

बेतार का तार (Wireless) एक वैज्ञानिक आविष्कार है। उसमें जहां भी सन्देश पहुंचाना हो, किसी विशेष व्यक्ति के नाम पर एक समय में एक को ही वह पहुँच सकता है। इस के लिए विद्युत (बिजली) धारा तथा वायु तरंग की ज़रूरत पड़ती है। आप में तो वह आध्यात्मिक 'बेतार का तार' की शक्ति समाहित थी कि बिना किन्हीं उपकरणों (साधनों) के सैंकड़ों लाखों मील दूर बैठे हुए—बिना किसी के सन्देश पहुँचाए हुये दिलों को बरबस खींचती थी। जिसने भी एक बार गुरु-भक्ति की अभिलाषा की, श्री आनन्दपुर के सम्राट्, त्रिभुवन मोहन का नाम सुन लिया, बस वह वहीं दीवाना बन गया। जब तक उसने श्री आनन्दपुर के सम्राट् को हृदय सम्राट् न बना लिया उसे चैन कहाँ। उस ने नयनों की तृषा श्री दर्शन से बुझानी चाही परन्तु वह तो आग की तरह लपटों में अधिक सुलगने लगी। इस प्रेम की सच्ची आग से सांसारिक विषय-वासनाओं, मोह-आसक्ति आदि बन्धन से मुक्त होकर वह त्याग, वैराग्य और सेवा की मूर्ति बन गया। उसे जीने का ढंग आ गया। वह दुनिया में रहता हुआ भी निर्लिप्त हो गया। वह अपने वास्तविक ध्येय को पा गया।

महापुरुषों के उत्तमोत्तम लक्षणों का वर्णन करते हुए संस्कृत भाषा में एक विद्वान् कवि ने जो कुछ लिखा है वह शायद आपकी महान् महिमा का वर्णन करते हुए ही लिखा गया प्रतीत होता है कि:—

॥ श्लोक ॥

वदनं-प्रसाद सदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः ॥

अर्थः—जिनका कमल-मुख सदा प्रसन्नता से खिला रहता है, जिनका हृदय

अत्यन्त कोमल, सरल एवं दया से पूर्ण है। जिन के वचन अमृत-तुल्य मधुर एवं प्राणदायक हैं। जिन की रसना पर मधुरिमा विराजित है। जो सदा दीन जनों के हित एवं परोपकार के लिए कार्य करते हैं, जिनके व्यक्तित्व में इतने उत्तम लक्षण नित्य विद्यमान हैं, उनकी भला कौन वन्दना-पूजा नहीं करेगा।

जिस प्रकार चन्द्रमा की शुभ्र ज्योत्सना को न श्रृंगार की आवश्यकता है, न आभूषणों की, प्रत्युत चन्द्रमा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से तथा आकर्षण युक्त चन्द्रिका से संसार के मन पर शासन करता है। जैसे सूर्य के प्रकाश को दीपक दिखाने की आवश्यकता नहीं, बिल्कुल ऐसे ही सन्त महापुरुष स्वयं आत्म-प्रकाशी होते हैं। आप वर्णनातीत, दयालुता, स्नेह, कृपा एवं महानता के प्रताप से हज़ारों व लाखों मानव हृदयों पर शासन करते थे और करते रहेंगे। युग भले ही पलट जाएँ आपके प्रेम की अमिट छाप प्रेमियों के हृदयों से कभी नहीं मिट सकती। आपके पावन कार्य-कलापों की पुण्य स्मृतियां अनन्त काल तक उज्ज्वल तथा अमिट हैं। आपकी महिमा का यदि अनेक ग्रन्थों में वर्णन किया जाए तो भी अवर्णनीय है। आपने सृष्टि में पदार्पण करते ही सृष्टि की बिगड़ी हुई दशा को सुधारा। अनियमितता को दूर कर नियमितता उत्पन्न की। पावन चरण-रज के प्रताप से सर्व स्थान आनन्द के भण्डार बन गए। कांटों के स्थान पर गुलाब दिखाई देने लगे। शरद् को बसन्त के रूप में परिवर्तित किया। मानव जीवन को सच्ची मानवता प्रदान की। प्रेम भक्ति रूपी चिन्तामणि का प्रकाश घट घट में पहुँचाया, विषयासक्ति तथा स्वार्थ परायणता के बदले प्रेम, परमार्थ तथा त्याग की जो भावना आपने सर्वसाधारण के अन्दर जाग्रत की उसका वर्णन करना कठिन है। आपकी महानता तथा सर्वप्रियता का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आज भारतवर्ष के कोने कोने में आपके पावन नाम तथा पवित्र उपदेशों का डंका बज रहा है।

आपने जहां गुरु सेवा का शुभ सन्देश जन जन को दिया वहाँ साथ ही साथ जीवों को अन्तर्मुख होकर आत्म दर्शन का पवित्र उपदेश दिया। आप प्रायः यही इर्शाद फ़रमाया करते थे—"महापुरुषों का वास्तविक स्थान अनामी लोक है और

यदि गुरु के वास्तविक स्वरूप को देखना चाहते हो तो अपने अन्तर में मस्तक से ऊपर देखो। इस प्रकार नित्यप्रति संध्या समय स्वयं विराजमान होकर मूलमन्त्र का जाप भी करवाया करते थे।" संक्षेप में यह भक्ति-पथ सुधा-स्रोत, हिम के समान निष्कलंक, नव-कुसुम की भाँति मनोहारी तथा बचपन की भाँति सरल है जिस पर प्रत्येक प्राणी चल कर लाभ उठा सके।

आपने श्री परमहंस अद्वैत मत का जन जन में प्रचार करने तथा अध्यात्म-विद्या से विश्व को लाभान्वित करने के लिए भारत के अन्य प्रान्तों में भी शरणागत सेवकों ने आप के उपदेशानुसार कितने ही नगरों तथा कसबों में सत्संग के स्थान तथा आश्रमों का निर्माण किया तथा करवाया है। उन आश्रमों का समुचित प्रबन्ध तथा व्यय आदि वहाँ के सत्संगी लोग—महात्मा तथा बाइयां स्वयं करते हैं। ऐसे आश्रमों में जिज्ञासुओं की माँग के अनुसार समय समय पर सत्संगी उपदेशक महात्मा लोग सत्संग सभाएँ करने तथा प्रेमियों को परमार्थ लाभ कराने में तत्पर रहते हैं। इस प्रकार आपके देदीप्यमान प्रताप से भारतवर्ष के उत्तर से लेकर दक्षिण तक तथा पूर्व से पश्चिम तक सब स्थानों पर इस अमर सत्य, परमार्थ-भक्ति का सन्देश पहुँचाने के लिये भरसक प्रयत्न किया।

आप के परोपकार, उदारता, कृपालुता तथा करुणा को कहां तक गाया जाए। जब कि सन्त सहजोबाई जी ने भी गुरु-महिमा के विषय में यही शब्द कहे हैं:—

॥ दोहा ॥

सब परबत स्याही करूँ, घोलूं समुन्दर जाय।
धरती का कागद करूं, गुरु अस्तुति न समाय॥

आपके उच्च महान्, पवित्र तथा श्रेष्ठ जीवन के आदर्श से जो किरणें प्रस्फुटित हुईं, उनसे आज भी जन जन नव जीवन पा रहा है। आपके श्री वचन देदीप्यमान भास्कर हैं जो युग-युगान्तरों तक पथ-प्रदर्शक बन कर जीवन के अन्धकार को मिटाने में समर्थ हैं। आप की मधुर वाणी तथा प्रेम एवं मनोहारी छटा का

स्मरण ही अमृत तुल्य है जिस में प्रेमिजन मज्जन कर कृतार्थ होते रहेंगे। आप के आशीर्वाद से अवश्यमेव यह सम्प्रदाय युग-युगान्तरों तक उन्नति के शिखर पर आरूढ़ रहेगा।

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी

(श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज)

श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज पूर्ण तत्त्ववेत्ता, नयनाभिराम, मर्यादाओं के नायक, करुणावतार, प्रेम-भक्ति के अतुल्य भण्डार, दिव्यतम छटा धारण किये चतुर्थ स्वरूप में प्रकट हुये। आपने भक्ति के अनुपम रहस्यों का उद्घाटन किया। आप यह फ़रमाया करते थे कि जब तक घट में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री दर्शन नहीं किये तब तक जीव का मन स्थिर अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः आप ने भजनाभ्यास पर अधिक बल दिया और आपके इस नियम ने वास्तविकता भी दर्शा दी। आप सहनशीलता, विनम्रता, सत्यप्रियता, प्रेम, कोमलता, साहस, संयम, क्षमा तथा उदारता के अवतार थे। गुरु-भक्ति मग में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की प्रत्येक श्री मौज में जीवन ढालना, प्रत्येक कठिनाई को सहर्ष सहन करना, दूसरों के दुःख को देखकर शीघ्र उसे निवारण करना तथा सदा मधुरवाणी से सबके साथ विनम्र वचन बोलना आपके उदात्त चरित्र के अंग रहे। आप की जीवन झलकियां इनका ही ज्वलन्त उदाहरण हैं। आप इतने धीरे धीरे तथा मधुरिमा से सने हुये प्रवचन फ़रमाते थे कि सुनने वालों का दिल बरबस आप की ओर खिंच जाता। आप के हृदय में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के प्रति पूनम के सागर की न्याईं अगाध प्रेम हिलोरें लेता था। आपके आचरणमय जीवन का सर्वसाधारण पर अदम्य प्रभाव पड़ा। आपने इस श्री दरबार के भक्ति रूपी पौधे में कोमलता, सरसता तथा सौरभ को भर दिया। आपके श्री दर्शन करते ही शोक, दुःख, पीड़ा से संतप्त हृदय शीतलता तथा आनन्द का अनुभव करते थे। आपने अल्पकाल में ही जो प्रेमियों के हृदय

में स्थान बना लिया, वह प्रेमियों के हृदय पर अमिट छाप बन गया।

आप ने श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के बनाये हुए नियमों का श्री आनन्दपुर में परिपक्वता से पालन करवाया। आपने अपने समग्र जीवन में सेवक धर्म निबाहने का जो आदर्श दिखाया वह अन्यत्र मिलना सम्भव नहीं।

आप अवतारी गुणों को लेकर इस धराधाम पर अवतरित हुये। सब कुछ जानते हुए भी आपने गुरु-भक्ति के आदर्शों को सम्मुख रखा। आप यह यथार्थ प्रवचन फ़रमाया करते थे कि "महापुरुष सच्चाई पसन्द होते हैं। अतः हमें भी सचाई पसन्द है। जो व्यक्ति सत्य व्यवहार और सत्यता का पुजारी है, वह हमें अत्यधिक प्रिय है।" आप फ़रमाते थेः—

॥ चौपाई ॥

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

इस प्रकार आप स्वयं भी यथार्थ वचन कहते थे। भक्ति के यथार्थ रहस्य का ही आपने प्रतिपादन किया। आपका जैसा ही शुभ नाम श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जो था वैसे ही आप थे भी बेअन्त। आपके इस प्रवचन ने "अन्तर्दृष्टि उघाड़ो, चर्मदृष्टि छोड़ो" जन जन के हृदय में एक अनूठी क्रान्ति ला दी। जब भी कोई प्रेमी अथवा जिज्ञासु आपके पावन श्री दर्शन तथा आनन्ददायिनी संगति को प्राप्त कर पुनः घर लौटता तो ये सारपूर्ण वचन उसके हृदयाकाश में श्रावण मास के मेघ-गर्जन के समान रह रह कर गूँज भर जाया करते। जिससे यह परावाणी मायालिप्त और अन्धकारमयी हृदयों में भक्ति की ज्योति जगाये रखने में सहायता देती। प्रत्येक भक्ति के अभिलाषी जिज्ञासु तथा प्रेमी के सम्मुख आपका सब से प्रथम प्रश्न ही यही होता था कि भजनाभ्यास में कितना समय देते हो? आपने स्थायी सुख का वास्तविक स्वरूप दर्शा दिया। संसार की झिलमिलाती माया की वीथिकाओं में रमण करते हुए शाश्वत आत्मिक आनन्द का अमृत रसपान करने का सुगम मार्ग बताया।

आपके श्री प्रवचन थे कि दिल को सराय (मुसाफ़िर खाना) मत बनाओ। यह केवल प्रभु के निवास के लिए है। प्रेम की भावना का सीधा सम्बन्ध प्रियतम के साथ है। अर्थात् प्रेम-भक्ति मोती तथा धागे के समान है जो प्रियतम और प्रेमी को एक लड़ी में पिरो देती है। जब प्रियतम और प्रेमी के बीच प्रेम का अटूट सम्बन्ध जुड़ जाता है तो ये तीनों मिलकर एकरूप हो जाते हैं। जब मन प्रेम के रंग में रंगा जाए तो शेष प्रियतम के अतिरिक्त स्वयं ही सब कुछ जल जाता है। इस विलक्षण प्रेम का अनुभव वही कर सकता है जो पहले स्वयं को मिटा कर देखे। ऐसा चित्र आपकी जीवन झलकियों में प्रत्यक्ष मिलता है तथा आप प्रत्येक प्रेमी के हृदय में ऐसी प्रेम रूपी ज्योति को प्रज्वलित करने का भरसक प्रयत्न करते रहे। आप चाहते थे कि मानव जन्म के सुदुर्लभ अवसर को पाकर पुनः सद्गुरु की पावन संगति को प्राप्त कर जीव कोरा ही न रह जाये अपितु वह जीवन को आत्म-सुधारस (आनन्द) से भर कर इसके वास्तविक रहस्य को समझ सके।

आपने मध्यप्रदेश में स्थित श्री आनन्दपुर तथा महाराष्ट्र में स्थित श्री प्रयागधाम में समय समय पर प्रवचन-वृष्टि से जन जन में जाग्रति ला दी। श्री प्रयागधाम में निर्माण कार्य कर इसे विशाल पारमार्थिक केन्द्र बनाकर महाराष्ट्र, आन्ध्रप्रदेश आदि प्रान्तों के प्रेमियों के लिए सेवा, श्री दर्शन तथा गुरु-भक्ति प्राप्त करने का मार्ग सुगम बना दिया।

आपका प्रत्येक कार्य मर्यादित होता था। नियम पर दृढ़ तथा समय के पूरे पाबन्द थे। सन्त महापुरुषों के गुणों की गणना करना तो जीव बुद्धि के लिए समुद्र की तरंगों को गिनने के समान है। जैसे समुद्र की तरंगें अनगिनत हैं उन्हें किसी दशा में भी सीमित नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार आपकी महिमा भी अवर्णनीय, असीमित है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि आपने गुरुभक्ति के जिन नियमों को अपने जीवन में कार्यान्वित किया, उन नियमों के अंश को भी यदि जीवन में ढाल लिया जाए तो मानव जीवन का लक्ष्य मानो सफलता के शिखर पर पहुँचने के लिये निकट ही खड़ा है।

सारांश यह है कि सन्तों, महापुरुषों की महिमा को परिमित शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। सन्त महापुरुष जब पृथ्वी पर अवतार धारण कर प्रकट होते हैं तो सत्यता, पवित्रता एवं प्रेम के पुष्प स्वयं खिले हुए फूल की न्याईं अपनी सुगन्धि बिखेरना आरम्भ कर देते हैं। आत्मिक-ज्ञान की मानो बाढ़ सी आ जाती है। जिस प्रकार नदी के तेज़ वेग में तिनके, घास-फूस तथा मलिनता सब शीघ्रता से बह जाते हैं और वह नदी पर्वतीय, मैदानी तथा चट्टानी सब भागों को सिंचित करती हुई आगे बढ़ती जाती है, वैसे ही जब अध्यात्मवाद में बाढ़ आती है तो प्रवर्त्तकों का भी कुछ ऐसा ही प्रभाव जगत् में होता है। अर्थात् समस्त जीव उन के अध्यात्म-प्रचार से प्रभावित होकर आत्मोन्नति की धारा में बहने लगते हैं। उनमें से जो संस्कारी आत्माएँ होती हैं वे महापुरुषों के उपदेशों से अधिक लाभ प्राप्त करती हैं। हमारे सच्चिदानन्दघन श्री परमहंस विभूतियां भी अपने साथ ऐसी ही बाढ़ लाईं और थोड़े ही समय में उन्होंने संसार की कर्म-धर्म की उर्वरा भूमि को प्रेम-भक्ति के अमृत जल से सींच कर इसे समृद्ध बना दिया।

इन महान् अवतारों ने परम्परागत गुरु-भक्ति के नियमों अर्थात् गुरु-आज्ञा पालन, गुरु-सेवा तथा गुरु-उपदेशानुसार जीवन ढालना ही सब ने अपना परम ध्येय बनाया ताकि जनसाधारण पर स्वयं इन गुणों का प्रभाव पड़ सके। गुरु-दीक्षा की परम्परा, अवतारी गुण होते हुए भी सेवक भाव दर्शाना, आचरणमय जीवन बनाना इस सम्प्रदाय के मुख्य नियम हैं जिन्हें सम्प्रदाय के पूर्ण तत्त्वनिष्ठ महापुरुषों की जीवन झलकियों में स्पष्टतया देखा जा सकता है। आप सब ने शास्त्र के इस कथन को सत्य सिद्ध किया कि:—

॥ श्लोक ॥

शशिहीना यथा रात्रिः रविहीनं यथा दिनम्।
नृपहीनं यथा राज्यं गुरुहीनस्तथा मनुः॥

चन्द्रमा के बिना जैसे रात्रि अन्धकार पूर्ण होती है तथा सूर्य के बिना जैसे दिन, दिन नहीं कहला सकता तथा जैसे राजा से विहीन राज्य की दशा अति

मन्द होती है, वैसे ही गुरु से हीन (गुरु-दीक्षा बिना) मनुष्य की मन्द अवस्था होती है।

श्री श्री १०८ श्री परमहंस दयाल जी श्री पहली पादशाही जी ने जिस भक्ति रूपी भवन की नींव रखी श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी ने उस पर भव्य भवन खड़ा किया। श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी ने उस भव्य भवन पर अति सुन्दर, अद्भुत कला से सँवार कर इस भक्ति रूपी भवन की शोभा को निखारा। श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री चौथी पादशाही जी ने इस सम्प्रदाय के भक्ति रूपी भवन की मंज़िलों को तय करने का मार्ग बताकर जन जन के हृदय में अध्यात्म-विद्या की ज्योति जगा दी।

प्रेम-भक्ति की गंगा, निष्काम कर्म योग की यमुना तथा भक्ति-परमार्थ की सरस्वती बहा कर श्री परमहंस महान् विभूतियों ने इस उच्च आदर्शमय सम्प्रदाय 'श्री परमहंस अद्वैत मत' को त्रिवेणी का संगम स्थल बना दिया। श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री पंचम पादशाही जी भी इस सर्वोत्कृष्ट सम्प्रदाय के नियम व सिद्धान्तानुसार जन जन को प्रेम-भक्ति का अमृत पिला रहे हैं। श्री परमहंस विभूतियों के महान् व्यक्तित्व रूपी सूर्य से सदाचार, सत्यता, शीलता, सहिष्णुता तथा गुरु-भक्ति के सर्वोत्तम लक्ष्य आदि गुणों की किरणों को प्राप्त कर गुरु-भक्ति के अभिलाषी तथा प्रेमिजन इस सुगम निर्धारित मग पर चल कर लाभान्वित होते रहेंगे।



श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम

श्री आनन्दपुर

महापुरुष त्रिकालदर्शी, पूर्ण तत्त्ववेत्ता, महामनीषी तथा पराविद्या के निधान होते हैं। वे दिव्य दृष्टि से भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् के ज्ञाता होने के कारण सर्व परिस्थितियों का यथोचित उद्धार करने के लिये पहले से ही प्रबन्ध करना आरम्भ कर देते हैं। इसी प्रकार 'श्री आनन्दपुर' जो कि आज अनुपम विख्यात तीर्थधाम है, जिस की महिमा चौकुण्ठी में फैली हुई है, जो सर्व तीर्थों का सिरमौर, अतुल ज्ञान का भण्डार, प्रेम-भक्ति-सेवा का आगार, पथ-प्रदर्शक, प्रेमियों गुरुमुखों का प्राण है उस का नाम लेते ही अथवा यहां के आदिम शरणागतों से इसके सम्बन्ध में अलौकिक दृश्यों का वर्णन सुनते ही इस के विषय में सम्पूर्ण जानकारी लेने की उत्सुकता बढ़ जाती है। यहां आज हज़ारों की संख्या में जिज्ञासु आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ऐसी पावन भूमि जो इस कलियुग में द्वापर तथा त्रेता के संगम का स्थान है, अवतारी विभूतियों की लीला-स्थली है और अघ-पुँज विनाशिनी सिद्ध हो रही है, उसके पावन प्रसंग संक्षिप्त रूप से इस प्रकार हैं:—

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी आध्यात्मिक राजसिंहासन पर आरूढ़ होकर भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशों में उपदेशामृत की धारा प्रवाहित करते हुए तथा नगर-नगर में जनता को अपना परमार्थ संदेश देते हुए महात्मा सत् विचार आनन्द जी के साथ एक बार ग्वालियर राज्य में पधारे। यह घटना लगभग ई० सन् १६२६ तदनुसार १६८६ संवत् की है। उस समय यह राज्य सिंधिया महाराजाओं द्वारा शासित था। पीछे जा कर भारतवर्ष में अंग्रेज़ी शासन की समाप्ति पर यह राज्य मध्य भारत का एक खण्ड बना। आजकल यह राज्य मध्य प्रदेश के अन्तर्गत

है । यहां का वन्य प्रान्तों का शान्त-कान्त वातावरण, एकान्त प्रदेश, भजनाभ्यास की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त था । आपकी मौज इस स्थान को ख़रीद लेने की उठी । अब उसे साकार रूप देना था और इस स्थान को देख कर तथा पसन्द कर के आप पंजाब पधार गये ।

आप खीवड़ा नमक मण्डी तहसील पिण्ड दादनखां, ज़िला जेहलम में जनवरी सन् १९३० में सत्संग उपदेश की धारा प्रवाहित करने लगे । वहां पर दर्शनार्थ संगतें आई हुई थीं। आपने कुछ सेवकों के सम्मुख श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम की योजना बनाई । एक दिन मौजवश कुछ भक्तों तथा महात्माओं को एकत्र कर वचन फ़रमाने लगे—"फ़कीरी आसान नहीं है । भक्ति मार्ग में तो कई प्रकार के कष्ट व कठिनाइयां आती हैं इसलिए सोच समझ कर इस मार्ग पर पांव रखो । फ़कीरी में तो भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी सब कुछ सहन करना पड़ता है । दुनिया की झिलमिल से दूर यदि हम आप को किसी निर्जन वन में भेज दें तो क्या आप ऐसी भक्ति कर सकते हैं ? आप को वन में यदि कोई स्थायी निवास न मिले तो क्या यह सब कुछ सहन करने की सामर्थ्य आप में है ?" सब ने मिलकर श्री चरणों में विनय की कि दाता दयाल जी ! आपकी कृपा व दया का हाथ हमारे सिर पर होना चाहिए । आपकी प्रसन्नता ही हमारा जीवन है । जैसी आप की श्री मौज व आज्ञा होगी हम हर तरह से उसका पालन करेंगे । आपकी कृपा ही सब कार्यों को सिद्ध करने वाली है ।

वास्तविकता तो यह है कि महापुरुष इतने कष्ट जीवों पर आने नहीं देते । जो इस मार्ग पर दृढ़ विश्वास, अटूट श्रद्धा तथा अचल संकल्प से चलते हैं उन्हें किस वस्तु की कमी ? ऋद्धियां—सिद्धियां तो चरणों की चेरी बन कर महापुरुषों की रज को प्राप्त करने के लिए तरसती हैं । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने तो परीक्षा हेतु इन कठिनाइयों का वर्णन किया कि केवल देखने के लिये कहीं ये प्रेमी इस मार्ग से विचलित तो नहीं होते ? सोने को जब तक आग की भट्ठी में न तपाया जाय तब तक उस में चमक नहीं आती । इसी तरह भक्ति-मार्ग में थोड़ी बहुत तकलीफ़ जब तक कोई सहन नहीं करता तब तक सेवक में दृढ़ता नहीं आती। परन्तु प्रेम

दीवानों को इन कठिनाइयों की क्या परवाह ? उन्होंने तो श्री आज्ञा में मिटना ही जीवन का ध्येय बनाया था। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी भी परमार्थ तथा भक्ति के ध्येय को सम्मुख रख कर जन कल्याण हेतु नई रचना की योजना तैयार कर रहे थे।

अपनी मौज के अनुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने इस श्री आनन्दपुर स्थान के सभी संकेत चिन्ह बता कर महात्मा शान्त आत्मानन्द जी, भक्त धर्मजस जी तथा अन्य एक दो भक्तों को इस स्थान की जानकारी लेने के लिये भेजा। उस समय यातायात के साधन सुगम न थे। शिष्यों ने कहीं पर पैदल चलकर, कहीं सवारी पर श्री आज्ञा से अत्यन्त परिश्रम से इस स्थान को ढूंढा। यह देख कर आश्चर्य हुआ कि क्या श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी इस भूमि को पावन करेंगे ? कठिन ही नहीं असम्भव शब्द भी यहां अनुपयुक्त नहीं लगता। वर्षा ऋतु में इतनी वर्षा होती कि पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक सूर्य दिखाई ही न देता। शायद हम किसी और स्थान पर तो नहीं आ गए ऐसा अचम्भा होता था इस स्थान को देखकर। न कहीं पीने के लिए पानी का नामो-निशान था, न कहीं समतल भूमि दिखाई देती थी। जहां तक दृष्टि डालो घना जंगल, ढाक, आक, तेंदु, महुए आदि वृक्षों की कंटीली झाड़ियों के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई न देता था। इस प्रकार की भूमि को देखकर पहले तो महात्मा तथा भक्त घबरा गए परन्तु जिसके पीछे अतुलनीय असीम शक्ति का हाथ हो वे निराश कहां होने वाले थे। ज़मीन देखकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री चरणों में पत्र द्वारा समस्त वृत्तान्त लिख भेजा। पुनः श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने महात्मा ध्यान योगानन्द जी तथा श्री चौथी पादशाही जी महाराज को इस भूमि को ख़रीदने के लिए भेजा तथा कृपापत्र लिखवाया कि घबराओ मत यही ज़मीन ख़रीदनी है। इन्होंने यहां पहुँच कर ४ अगस्त सन् १९३० को डिपॉज़िट द्वारा इस भूमि को ख़रीदा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के अलौकिक तेज तथा आत्मिक शक्ति से लोग उनके श्री चरणों में शरणागत होने के लिए विनय कर रहे थे। इस समय श्री सद्गुरुदेव महाराज जी चकौड़ी सन्त आश्रम में विराजमान थे। अब यहां कई प्रेमी परिवार सहित

शरणागत हुए। आपने उन में से कुछ प्रेमियों को सपरिवार श्री आनन्दपुर की सेवा का सौभाग्य प्रदान किया जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा शिरोधार्य कर वे सेवक वहां से चलकर श्री आनन्दपुर पहुँचे। यहां आते ही उन्होंने देखा कि यहां तो निवास के लिए घास-फूस की झोंपड़ी तक भी नहीं है। वे यहां से तीन मील की दूरी पर कसबा ईसागढ़ में सेठ सूरजमल के घर में जाकर रहे। सुबह के समय भक्त यहां आते और संध्या समय फिर ईसागढ़ लौट जाते। जिस मकान में इन्होंने परिवारों को रखा था लोगों में यह प्रसिद्ध था कि इस मकान में भूत प्रेत निवास करते हैं। जो भी यहाँ पर रहा वही रोग ग्रस्त होकर संसार से चल बसा परन्तु इन सेवकों पर इस कथन का कोई प्रभाव न पड़ा। वे आनन्द से इस मकान में रहने लगे। लोगों को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि इन्हें तो भूत-प्रेत कुछ नहीं कहते। इनके बच्चे तो सदा हँसते हुए दिखाई देते हैं। जहाँ पूर्ण सद्गुरु की शक्ति काम कर रही हो वहां इन मिथ्या भ्रान्तियों की क्या हस्ती। भक्त लोगों ने कहा कि हमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा से इन भूतों से क्या भय है कि हम इनसे डर कर भागें? 'सद्गुरु' शब्द की महिमा वेद शास्त्रों तथा उपनिषदों में 'नेति नेति' कही है तो साकार पारब्रह्म श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की शक्ति कितनी अपरिमित होगी। यह बताना बुद्धि से परे की बात है। बड़े बड़े कवियों, ऋषि-मुनियों तथा योगियों ने अपने विचार से यही कहा है कि गुरु की महिमा भगवान् से कहीं बढ़ कर है। श्री रामायण में लिखा है कि जब श्री रामचन्द्र जी महाराज ने वाल्मीकि जी से पूछा कि हमारे रहने के लिए कौन सा स्थान उचित है? उत्तर मिलाः—

॥ चौपाई ॥

तुम ते अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भाव सेवहिं सनमानी॥
काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न क्षोभ न राग न द्रोहा॥
जिन के कपट न दम्भ न माया। तिन के हृदय बसहु रघुराया॥

ऐसी बात जब महर्षि वाल्मीकि जी ने भी कह दी कि भगवन्! तुम्हारे

से अधिक जो गुरु का सम्मान करता है, उसके हृदय में बस जाओ। इन सेवकों के दिलों में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के ध्यान के सिवाय और कोई चाह न थी। फिर जिसके हृदय में पूर्ण सद्गुरु निवास करें वहाँ भूत-प्रेतों का क्या काम। सब ने इस बात की पुष्टि इस प्रकार की है:—

॥ चौपाई ॥

जो नर गुरु आयसु अनुसरहीं। ते जनु सकल विभव वश करहीं॥

अर्थः—जो मनुष्य गुरु की आज्ञा पर चलते हैं समस्त सम्पदाएँ उनके अधीन हो जाती हैं। ये सेवक भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा में ही सब कुछ कर रहे थे। इस बंजर और बीहड़ पठारी भूमि को साफ़ करने में इन्होंने कोई कसर न छोड़ी। कुछ समय पश्चात् थोड़ी सी भूमि जिस पर पाँच सात परिवार निवास कर सकें, साफ़ हो गई। उस पर कुछ घास-फूस के झोंपड़े बनाए गए। अब वे शरणागत परिवार जो ईसागढ़ में रहते थे यहाँ श्री आनन्दपुर में आ गए। धीरे धीरे उन सेवकों का निरन्तर का परिश्रम सफल होने लगा तथा आबादी व उपज के लिए थोड़ी सी धरती बन गई। हरियाली के चिन्ह प्रकट हो आए। इस प्रकार ईसागढ़ से तीन मील की दूरी पर श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम स्थापित हुआ। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने स्वयं सन् १९३१–१९३३–१९३५ में यहाँ पधार कर यहाँ के शरणागत निवासियों को अपने पावन प्रवचनों तथा श्री दर्शन से कृतार्थ किया।

यहां एक दो विशेष घटनाओं का प्रसंगवश उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा। प्रथम घटना श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम की स्थापना से बहुत पहले की है तथा इस से यह सिद्ध होता है कि सत्संग के इस महान् केन्द्र के संस्थापन की मौज पर्याप्त समय पहले उठ चुकी थी। घटना यों है कि:—

एक बार श्री परमहंस दयाल जी महाराज श्री पहली पादशाही जी आगरा में विराजमान थे तथा अपने पावन उपदेशामृत से जन जन को कृतार्थ कर रहे थे।

तब ईसागढ़ निवासी सेठ पन्नालाल जी जो व्यापार के सम्बन्ध में आगरा आए थे, आपके दर्शन तथा सत्संग के लिये श्री चरणों में उपस्थित हुए। श्री परमहंस दयाल जी के पवित्र सत्संग का उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा। जितने दिन सेठ जी आगरा में रहे उतने दिन श्री चरणों में उपस्थित होकर सत्संग का लाभ प्राप्त करते रहे। जब सेठ जी आगरा से ईसागढ़ लौटने लगे तो श्री चरणों में उपस्थित होकर घर जाने की आज्ञा मांगी। उसी समय यह भी विनय की कि श्री सद्‌गुरु देव दयाल जी कभी ईसागढ़ में भी दर्शन देकर हमारे भाग्य जगाएँ तो बड़ी कृपा होगी। उनकी यह विनती सुनकर भक्ति-परमार्थ के विराट् सम्राट् श्री परमहंस दयाल जी मन्द मन्द मुस्कराए और बोले—"सेठ जी! आपके सच्चे हार्दिक प्रेम से हम अति प्रसन्न हैं और आप की बात हमें स्वीकार है। हमें इस समय तो उधर जाने का समय नहीं, लेकिन आप से हमारा यह वचन रहा कि हम आपके यहां अवश्य कभी आएंगे।"

जब श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की मौज ग्वालियर राज्य में श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम स्थापित करने की हुई तथा चक भी ख़रीद लिए गए, तब श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) स्वयं यहां पधारे। सेठ पन्नालाल जी को भक्तों द्वारा यह समाचार पता चला कि उनके कसबा से मात्र तीन मील की दूरी पर एक महापुरुष पधारे हैं तो इनको भी दर्शन पाने की इच्छा हुई। उन दिनों अर्थात् १९३१ सन् की और आज की परिस्थितियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। आजकल तो इस क्षेत्र में सब ओर मोटरें, बसें, कारें दौड़ती फिरती हैं, पक्के मार्ग बन चुके हैं परन्तु जिस समय का यहां वर्णन दिया जा रहा है, तब ऐसी सुविधाएं प्राप्त न थीं। श्री आनन्दपुर के आस-पास का क्षेत्र अत्यन्त घना एवं दुर्गम था जिस में दिन दिहाड़े सिंह, चीते आदि वन्य पशु घूमा करते थे। सेठ जी बैलगाड़ी में अपने कुछ सम्बन्धियों सहित यहां आये। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के पावन दर्शन करके सेठ जी को अपूर्व आनन्द प्राप्त हुआ तथा उन्होंने श्री चरणों में विनय की कि अपने सहवासी भक्त-महात्माओं सहित हमारे यहां भोजन करने की कृपा करें। इस विनय को स्वीकार कर श्री

सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) अपने कुछ महात्माओं व भक्तों को साथ लेकर ईसागढ़ में सेठ जी के घर पधारे। भोजन के पश्चात् जब सत्संग चर्चा चली तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"लो सेठ जी! आपके साथ हमारा किया हुआ वचन पूरा हो गया है।"

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी द्वारा स्मरण कराये जाने पर सेठ जी के स्मृति पटल पर कई वर्ष पहले की वह बात उभर आई और उन्होंने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"हाँ कृपालु जी! अब मुझे याद हो आया है कि आगरा में मैंने आप को ईसागढ़ में दर्शन देने के लिए विनय की थी। आप ने उसे स्वीकार किया था। वह घटना मेरे मस्तिष्क से इस कारण विलुप्त हो गई कि आप उस समय दूसरे रूप में थे। अस्तु आपकी कृपादृष्टि का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। वर्त्तमान रूप में आपको न पहचान सकने के कारण मैं आप से क्षमा चाहता हूँ।"

यह कह कर सेठ जी श्री चरणों में गिर गए तथा अगाध प्रेम प्रदर्शित किया। उनकी आँखें श्रद्धा भाव से सजल हो गईं। सेठ जी के हार्दिक प्रेम को देख कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी अति प्रसन्न हुये। उन्हें धैर्य बंधाते हुए फ़रमाया कि अब हम यहीं आपके निकट ही रहेंगे। इस घटना के बाद सेठ पन्नालाल जी का प्रेम बढ़ गया तथा वे श्री दर्शन के लिए प्रायः आते रहे और श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सत्संग से लाभ प्राप्त करते रहे।

दूसरी घटना तब की है जब श्री आनन्दपुर तथा इस से सम्बन्धित अन्य चकों को बड़े परिश्रम से कँटीली झाड़ियों, वृक्षों एवं लताओं को काट कर आबादी के कुछ चिन्ह दिखाई देने लगे थे। आवास के लिए कुछ झोंपड़े भी बनाए जा चुके थे। एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी यहाँ पधारे तो उन्हीं दिनों एक बार कसबा अशोकनगर (तत्कालीन पछार) और गुना से कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति श्री दर्शन के लिये आये। वार्त्तालाप के मध्य में आए हुये अतिथियों ने विनय की—"श्री सद्गुरुदेव जी! आपने यहाँ की बंजर भूमि ख़रीद

की है किन्तु आप लोगों से इस भूमि के आबाद करने की आशा कम है क्योंकि यह भूमि कठोर पठार होने से उपजाऊ के अनुकूल नहीं। इसके अतिरिक्त यहाँ के जंगलों में हिंस्र वन्य-पशुओं का बसेरा है। इन जंगलों को साफ़ करना तथा उपजाऊ बनाना अत्यन्त दुष्कर तथा बड़े परिश्रम का काम है। हमारे सामने कितनी पार्टियों ने यहाँ की भूमि ख़रीद की, आबाद न कर सकने के कारण वे डिपॉज़िट की धनराशि तक ज़ब्त कराकर भूमि छोड़ गये। फिर आप तो सन्त लोग हैं, आप लोगों से इतना कड़ा परिश्रम एवं कठिनतम कार्य क्योंकर सम्भव होगा।"

यह सुनकर श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—"आप लोग धीरज धरें, यहाँ आबादी होगी और अवश्य होगी। हमारी साधु मण्डली तथा हमारे सेवक परिश्रम से जी चुराने वाले नहीं हैं। जो लोग कठिन परिश्रम से घबराकर चक छोड़ कर चले गये हैं वे और कोई होंगे। हमारे सेवक छोड़ जाने वालों में से नहीं हैं। इसी घने वन्य प्रदेश में ही आप स्वल्पकाल के भीतर आबादी के चिन्ह, हरियाली व चहल-पहल देखेंगे। ढाक के पेड़ों के बदले आप आम के बाग़ (अमराइयाँ) देखेंगे। पथरीली चट्टानों के स्थान पर यहाँ कुएँ, तालाब, बावलियाँ, सड़कें और उद्यान दिखाई देंगे। बिजली होगी तथा यहीं अनाज और तरकारियों के हरे-भरे खेत लहलहाएँगे। यहां नगर बसेंगे। पाठशाला और चिकित्सालय होंगे। इसके अतिरिक्त समय आने पर यहां और भी बहुत कुछ होगा।" श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के उपर्युक्त शब्दों का प्रभाव उन लोगों पर उत्तम हुआ और वे सन्तुष्ट होकर विदा हो गए।

तीसरी घटना १९३५ ई० की है जब श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम में विराजमान थे। सीमाप्रान्त तथा पंजाब से संगतें श्री दर्शन के लिए आ रही थीं। इसी अवसर पर सिन्ध प्रान्त से श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी (साधु वेष में) संगतों सहित श्री दर्शन के लिये आये। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने उन्हें फ़रमाया कि जाने से पहले आप एक बार अपने अधिकृत समस्त क्षेत्र को घूमकर देख लें

क्योंकि आपको यहाँ श्री आनन्दपुर में बहुत सा काम करना है। अतएव आज्ञा अनुसार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने घोड़े पर सवार होकर श्री आनन्दपुर तथा अन्य निकटवर्ती चकों का पूरा क्षेत्र देख लिया। इसके पश्चात् श्री आज्ञा प्राप्त कर सत्संग के कार्य के लिये सिन्ध की ओर लौट गए।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की श्री मौज थी कि इस आश्रम निर्माण के कार्य को शीघ्र उन्नति दी जाए। इसके लिए भरसक प्रयास प्रारम्भ हो गये। जितने भी शरणागत होने के लिए विनय करते सब को इस स्थान की कठिनाइयों का वर्णन करते हुए उन के हृदयों में श्रद्धा-विश्वास की परीक्षा करते—फिर उन्हें शरणागत होने की आज्ञा देते। उस समय शरणागतों की संख्या इतनी अधिक न थी जितनी आज के समय में है। प्रायः जिज्ञासु सपरिवार ही शरणागत होते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी उन में से अधिकांश को श्री आनन्दपुर में भेज देते। श्री आज्ञानुसार इन शरणागतों ने श्री आनन्दपुर के जंगलों में डेरा लगा लिया। घास फूस के झोंपड़े बनाए गए और कई वर्षों तक ये लोग इन्हीं में रहे। कई बार इतनी ज़ोर की वर्षा होती कि सब पानी झोंपड़ों के अन्दर आ जाता था और खाने-पीने की वस्तुएं कपड़े आदि सब भीग जाते थे। गर्मियों के दिनों में कुएं में पानी तक समाप्त हो जाता परन्तु ऐसी विकट परिस्थितियों के होते हुए भी सब ने यह समय हँस हँस कर गुज़ारा। जंगल होने के कारण खाने-पीने की सब वस्तुएँ ईसागढ़ एवं अशोकनगर से लानी पड़ती थीं। कभी कभी ऐसा भी समय आ जाता था कि सामान समय पर न पहुँचने से एक दो समय भूखे भी रहना पड़ता। परन्तु इन छोटी छोटी बातों की तरफ़ किसी का ध्यान तक न जाता था। रात दिन इन लोगों के दिल में यह धुन समाई रहती कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री मौज व श्री आज्ञा पालन करने में कोई कमी न रहने पावे। सब शरणागत परिवार सर्दी-गर्मी की परवाह न करते हुए दिन-रात श्री दरबार की परम पवित्र सेवा और भजनाभ्यास में लगे रहते। किसी के दिल में नाममात्र के लिए भी कमज़ोरी न आती थी। इन भक्तों व इनके परिवारों की श्रद्धा व प्रेम एवं सच्चाई

दिन दुगुनी रात चौगुनी बढ़ती गई। इसका परिणाम यह हुआ कि जब पहली बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री आनन्दपुर पधारे तो इनकी श्रद्धा, प्रेम, सच्चाई व भक्ति से बहुत ही प्रसन्न हुए। जिस प्रकार माली अपने लगाए हुए पेड़ों को फलता-फूलता हुआ देखकर हर्ष में फूला नहीं समाता, इस तरह इस रूहानी बाग़ के माली ने अपने श्रद्धालु सेवकों की बढ़ती हुई भक्ति, सच्चाई एवं सेवा की भावनाओं को देखकर उनकी बड़ी प्रशंसा की। किसी ने सत्य कहा है:—

॥ शेयर ॥

अगरचे १कुतुब जगह से टले तो टल जाए।
अगर २बहर भी जुगनू की ३दुम से जल जाए ॥
हमाला ४बाद की ठोकर से गो फिसल जाए।
और ५आफ़ताब भी ६क़िबला अरुज ढल जाए ॥
मगर न साहिबे हिम्मत का हौसला जाए।
न भूले से कभी उस की ७ज़बीं पै बल आए ॥

अर्थात् ध्रुव तारा जो एक स्थान पर स्थित है यदि वह भी अपने स्थान को छोड़ दे, यदि समुद्र भी जुगनू की पूंछ से जल जाए, यदि हिमालय भी हवा की ठोकर से विचलित हो जाए, यदि सूर्य भी समय से पहले ढलना शुरू हो जाय—ये सब न होने वाली बातें भी अगर हो जाएं तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सच्चे सेवकों में हौसला कम होकर उनके माथे पर हार मान लेने का एक शिकन भी पड़े। भूल कर भी ऐसा नहीं हो सकता।

लगभग इन परिवारों ने अपनी पूरी ज़िन्दगी गुरुदरबार की सेवा में व्यतीत की और कर रहे हैं। संसारी सुखों के लिए सारी दुनिया काम करती है मगर

१—ध्रुव तारा २—समुद्र ३—पूंछ ४—हवा ५—सूर्य ६—समय से पहले ७—मस्तक।

सद्‌गुरु के सच्चे सेवक सद्‌गुरु की प्रसन्नता के लिए ही अपने जीवन का बलिदान कर देते हैं। इनमें से कुछ भक्तों ने साधु वेष भी श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी से ग्रहण कर लिया। अब स्त्रियों के दिल में भी साधु वेष ग्रहण करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने श्री चरणों में विनय की कि प्रभो! हम भी साधु बनना चाहती हैं। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने त्याग, वैराग्य, ज्ञान व भक्ति का उपदेश देकर अधिकारी आत्माओं (स्त्रियों) को भी साधु वेष दिया जिन्हें इस सम्प्रदाय में 'बाइयों' के नाम में पुकारा जाता है। 'बाइयां' व भक्तानियां चक शान्तपुर में रहती थीं। इन परिवारों की दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रबन्धक श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (श्री चौथी पादशाही जी) थे। इन के साथ भक्त धर्म जस जी तथा अन्य कुछ सेवकों को मण्डली थी। स्वयं श्री सद्‌गुरुदेव जी महाराज श्री दूसरी पादशाही जी तीन बार यहां पधारे और सब कार्यवाही को देख गए। जैसे यह कहावत प्रसिद्ध है:—

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात"

जिसने कुछ बनना हो उस में लक्षण तथा चिन्ह स्वभावतः दिखाई देने लगते हैं। उसकी विलक्षणता ही उस के ध्येय का चिन्ह है। कार्य के साथ साथ आवश्यकताएँ बढ़ती हैं। श्री आनन्दपुर में श्री तीसरी पादशाही जी महाराज को अपनी विचक्षणता दर्शाने के लिए श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने सिन्ध में श्री आज्ञा भेजी कि श्री आनन्दपुर का कार्य भी अब आप सम्भालो। सिन्ध की संगत अथाह प्रेम के समुद्र में डुबकियां लगा चुकी थी। वह आप को एक क्षण के लिए विलग करने को तैयार न थी। परन्तु आप श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) के श्री आदेश को शिरोधार्य करके श्री आनन्दपुर के लिए चल दिए तथा नवम्बर १९३५ को आप अशोकनगर तक रेलगाड़ी में, इसके आगे सुखपुर तक बस द्वारा पहुँचे। चक सुखपुर में श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज (श्री चौथी पादशाही जी) रहते थे। ये कभी कभी चक शान्तपुर की देख-रेख करने जाते तो शरणागत गुरुमुख इनके स्वागत के लिए

आगे आते थे। वहाँ इनके लिए एक छोटा सा कमरा बना हुआ था।

रात्रि को सुखपुर में विश्राम कर श्री स्वामी जी श्री तीसरी पादशाही जी महाराज ने (साधु वेष में) दूसरे दिन प्रातः होते ही बैलगाड़ी में शान्तपुर के लिए प्रस्थान किया। जब आप शान्तपुर के समीप पहुँचे तो कुछ एक निवासी बाहर घूम रहे थे। उन्होंने तुरन्त सब को सूचित कर दिया। इतने में बैलगाड़ी शान्तपुर पहुँच गई। सभी चकित चित्त होकर इन्हें देख रहे थे। उनमें से कुछ ने तो केवल आप का शुभ नाम सुना हुआ था और कुछ एक बिल्कुल अपरिचित थे। शरणागतों ने आप के स्वरूप को देखा तो देखते ही रह गए। साक्षात् परब्रह्म भगवान् इस वेष में यहाँ कहाँ आ गए। बच्चे अपनी माताओं से पूछने लगे कि मां! "क्या ये महन्त हैं?" आप की दिव्य अलौकिक आभा मुखमण्डल पर दीप्त हो रही थी। आप भी उनकी चेष्टाओं को देख कर मन्द-मन्द मुस्करा दिए। सब के हृदय उल्लास से भर गए। इस तरह लगता था मानो कंगाल को कुबेर का ख़ज़ाना, मयूरों को बादल, पपीहे को स्वाँति बूँद की प्राप्ति हुई हो। धरती ने भी मन ही मन आप को शतशत धन्यवाद दिया। दिशाओं ने अभिवादन किया। हवा ने सुरीले राग गाए। चक शान्तपुर के सोए हुए भाग्यों ने रंग छिटकाया।

खिलाने कांटों में गुल, चमन के महाराज आए हैं।
दिया ऐसा नशा साकी, सभी ग़म दूर भगाए हैं॥
दिखाया प्रेम–सेवा मग, जो ले पैग़ाम आए हैं।
बना कर शान्त शीतल उर, शान्तपुर में सुहाए हैं॥
कहीं कांटे कहीं झाड़ी, लताओं ने कहीं घेरा।
बना मैदान सब समतल, लगाया एक जब फेरा॥
उठाया शिशिर ने दामन, किया ऋतुराज ने डेरा।
दो आलम के तुम्हीं वाली, है अति शुभ आगमन तेरा॥

अभी आप साधु वेष में थे। वेष चाहे कैसा भी हो, शक्ति छिपाए नहीं

छिपती। आप ने पूछा—"यही कमरा है श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज का ?" जी हां, का उत्तर पाकर आप के हृदय में संकल्पों का तूफ़ान उमड़ आया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी की मौज रूपी समुद्र में एक लहर तरंगायित हुई। आपने मौज को साकार रूप देना आरम्भ किया। आपने सोचा यहां ये घास-फूस की झोंपड़ियाँ, कंटीली झाड़ियां तथा बंजर स्थान शोभा नहीं देते। यहां तो पक्की इमारतें, लहलहाते खेत होने चाहिए। रात उस कमरे में गुज़ारी, सुबह होते ही बाहर भ्रमण के बहाने दूर चले गये। जब कुछ देर तक लौट कर न आए तो कुछ भक्त आप के पीछे गए। मार्ग में स्थान स्थान पर आप के श्री चरण-कमलों को लताओं और झाड़ियों ने उलझा रखा था और मानो पुकार कर रही थीं कि "प्रभो! कृपया हमारा उद्धार भी करते जाइये। हम कब तक इस योनि में यों ही पड़ी रहेंगी ?" कृपा-दृष्टि जिधर भी पड़ जाये वहां कार्य में क्या देरी लगती है। आपने सब शरणागतों को वहीं बुलवा लिया। वहां सब को आदेश दिया कि मिलकर आज ही इसे साफ़ कर दो। बस फिर क्या था, सब के सब उस स्थान को साफ़ करने में जुट गए। यहाँ तक कि बच्चे भी काटी हुई कंटीली झाड़ियों को उठा उठा कर एक ओर फैंकने लगे। देखते ही देखते संध्या समय तक एक खेत जितना स्थान साफ़ हो गया। सभी प्रेमी भक्त यह देख कर दंग थे कि इतना क्षेत्र तो वे एक मास में भी साफ़ करने में असमर्थ होते थे। थकावट भी अधिक हो जाया करती थी और आज थकावट का नामोनिशान तक न था। इस सेवा से छुट्टी करने को दिल न चाहता था किन्तु रात्रि के आगमन ने सब को घर लौटने के लिए विवश कर दिया। आपने इस प्रकार से प्रेम-उत्साह और सुमति से सेवा करने का एक सुन्दर उदाहरण उन के समक्ष रखा।

अगले दिन वहां के लिये सब आवश्यक सामान की सूची बनाकर चक सुखपुर आ गये। फिर उन वस्तुओं को ईसागढ़ से मंगवा कर अभाव की पूर्ति की। कुछ समय चक सुखपुर में रहे और श्री आनन्दपुर का भी निरीक्षण किया।

इधर सिन्ध में भी प्रेमियों की दशा आप के बिना 'बिन पानी के मछली' की

न्याई हो रही थी। उन्होंने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी के चरण-कमलों में चकौड़ो सन्त आश्रम में विनय-पत्र लिखे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने विनय स्वीकार कर पुनः श्री तीसरी पादशाही जी महाराज को सिन्ध जाने के लिए आज्ञा पत्र भेजा तथा उसमें फ़रमाया कि श्री आनन्दपुर का प्रबन्ध भी आपने साथ में करना होगा।

एक दिन मौज में आकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री दूसरी पादशाही जी) ने फ़रमाया था—"श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम तीर्थधाम बनेगा। यहाँ यात्रियों के स्नान के लिये निर्मल जल से पूर्ण एक सरोवर होगा तथा भजनाभ्यास के लिये एकान्त शान्त भव्य स्थान होंगे।" इस प्रकार सन् १९३० से लेकर सन् १९३६ तक शरणागत भक्तों, महात्माओं तथा सेवकों के निरन्तर परिश्रम से श्री आनन्दपुर तथा अन्य अधिकृत क्षेत्रों में निवास के लिये थोड़े से स्थान साफ़ हो गए।

इसी बीच भारत के अन्यान्य प्रान्तों अर्थात् सीमाप्रांत, पंजाब, सिन्ध, उत्तर-प्रदेश, मध्य-भारत तथा अन्य स्थानों अर्थात् चकौड़ी सन्त आश्रम, कबरपट, पगाला, कोटली मुहम्मद सदीक, रसाले वाला, गंधोवाल, चक पैंताली, मिर्जा आदि में सत्संग प्रचार निरन्तर गतिशील रहा। जनता की बढ़ती हुई माँग को दृष्टि में रख कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अपने सेवकों और महात्माओं को स्थान स्थान पर घूम कर जनसाधारण को घर बैठे सत्संग तथा परमार्थ लाभ कराने का आदेश दिया था। फलस्वरूप प्रत्येक प्रदेश के नगर नगर में प्रेम-भक्ति की धाराएँ प्रवाहित होने लगीं। इन सब प्रान्तों के लगभग सभी विख्यात नगरों एवं कसबों में भी शरणागत सेवकों, महात्माओं तथा सत्संगियों ने सत्संग-केन्द्रों तथा आश्रमों का निर्माण-कार्य आरम्भ कर दिया।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पाशाही जी जब १९३६ ई० में निज स्वरूप में लीन हुए तो श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री स्वामी वैराग्य आनन्द जी महाराज रुहानियत के तृतीय उत्तराधिकारी श्री आज्ञा से पंजाब में स्थित चकौड़ी सन्त आश्रम में जानशीन हुए। युगपुरुष श्री तीसरी

पादशाही जी महाराज ने दो तीन वर्ष सीमाप्रांत, सिन्ध, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब को अपने पवित्र वचनों से कृतार्थ किया।

एक बार सिन्ध जाते हुये श्री मौज उठी कि श्री आनन्दपुर को भी समय देना है। बस फिर क्या था–श्री सद्गुरुदेव जी महाराज श्री तीसरी पादशाही जी ने दीपावली पर्व सिन्ध में मनाकर पुनः कुछ दिन बाद श्री आनन्दपुर के महा सम्राट् के रूप में इस भूमि को पुण्यवती बनाने के लिये इधर कृपा की।

यहाँ के शरणागतों ने विनय की कि "प्रभो ! यह प्रदेश तो चीते, बाघ, सिंह आदि जंगली पशुओं से भरा हुआ है। साथ में रात्रि समय जब भी हम किसी कार्यवश दूसरी जगह जाने के लिये निकलते हैं तो पीछे से बहुत भयावनी आवाज़ें आती हैं जिन्हें सुन कर हम भयभीत हो जाते हैं। अब आप कृपा करके कोई उपाय कीजिए।" श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने धैर्य देते हुए प्रवचन फ़रमाये:—

"गुरु का शब्द रखवारे, चौकी चौगिर्द हमारे।"

"सद्गुरु का दिया हुआ उपदेश जो है उस से काल क्या महाकाल भी भय खाता है। आपके पीछे पूर्ण महापुरुषों परमहंसों का हाथ है। आप घबराइए नहीं सब ठीक हो जाएगा। जहां भी भय लगे, सद्गुरु का ध्यान करो– बस फिर भय स्वयं वहाँ से भाग जायेगा। आप गुरुमुख हैं, निर्भय होकर रहा करें। महापुरुषों के सच्चे सेवक हो इसी लिये निर्भय बनो।" अब प्रेमी बड़े उत्साह से अपनी अपनी सेवा में जुट गये। जहाँ कहीं भी भय की बात होती, बस सद्गुरु का नाम लेते ही भय दूर हो जाता। इन प्रेमी गुरुमुखों ने शूरवीरता का पाठ पढ़ा। शूरवीरता केवल युद्ध में विपक्षी दल को हरा देने में नहीं होती अपितु वास्तविक शूरवीर तो वही है जिसने मन को पराजित किया हो। इन्द्रियों पर संयम एवं श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की मौज में निज जीवन को ढाला हो। उस से महाकाल भी भय खाता है। यहां के शरणागत व सेवक इस ढंग के शूरवीर बन गये।

यह भूमि जो कि ग्वालियर के महाराजा से ख़रीदी गई थी उस डिपॉज़िट (संचित-राशि) के अनुसार यह शर्त थी कि जो इस भूमि को बारह वर्ष में आबाद न कर सकेगा उस से यह भूमि लौटा ली जाएगी व संचित राशि ज़ब्त हो जाएगी। अब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) की मौज स्थायी रूप से यहाँ रह कर इस स्थान को सुधारने की हुई। अपने भ्रमण के बीच एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी चक शान्तपुर पधारे। वहाँ शान्तपुर का क्षेत्र निरीक्षण करने के लिए महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी, महात्मा योगात्मानन्द जी व अन्य महात्मा भी साथ थे। सुबह से शाम तक पैदल इस सारे क्षेत्र का भ्रमण किया। कहीं भी पानी का नामोनिशान न था। प्यासे ही वापिस लौट आए। रास्ते में एक दो बार महात्मा सद्गुरु सेवानन्द जी ने विनय की—"प्रभो! आपके वस्त्रों में से लम्पे (घास के कांटे) निकाल लिए जाएँ। श्री वचन हुए कि लौट कर निकालेंगे। इतनी कंटीली झाड़ियों, पठारी भूमि, ढाक और आक के अतिरिक्त कहीं भी किसी फलदार वृक्ष का नामो-निशान तक दिखाई न देता था। स्वयं अनवरत परिश्रम, अदम्य साहस और अतुलनीय सहनशीलता को आचरण रूप में लाकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने अपने सेवकों में नये जीवन का संचार किया। सेवकों ने भी श्री आज्ञा पालन का मार्ग अपना कर आदर्श स्थापित कर संसार को अमली कार्यवाही का सन्देश सुनाया, जिसका प्रत्यक्ष अनुमान आज के समय में भी सेवकों के जीवन से लगाया जा सकता है। कथनी तो इस सम्प्रदाय के लिए विष के समान है। यहाँ का बच्चा, बूढ़ा, जवान सभी स्वावलम्बी, परिश्रमी तथा साहस के स्पष्ट प्रतीक हैं और उन का जीवन मूर्तिमान कर्मयोग है।

संचित राशि

(डिपॉज़िट)

ग्वालियर राज्य में यह आरम्भ से नियम था कि बंजर, अनुपजाऊ और ग़ैर आबाद ज़मीन जो कोई भी ख़रीदे, उस के साथ यह शर्त होती थी कि यदि वह

बारह वर्ष में उस ज़मीन को उपजाऊ कर आबाद् कर देवे तो ग्वालियर राज्य की ओर से ज़मीन का क्रय मूल्य ब्याज सहित उसे लौटा देते। ज़मीन भी आबाद् करने वाले के पास रहती और दिया हुआ धन भी पुनः मिल जाता। वे उस ज़मीन के मालिक बन जाते। लेकिन जहां तक देखने या सुनने में आया था कि कई पार्टियां इस ज़मीन (ग्वालियर राज्य) को न तो आबाद् कर सकीं और न ही धन-राशि वापिस ले सकीं। श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने जब सन् १९३९ में श्री आनन्दपुर में स्थायी रूप से निवास किया तो सब से पहले यह मौज उठी कि सब चकों की ज़मीन आबाद् कर इस डिपॉज़िट (धन-राशि) को वापिस ले लिया जाए। उस समय नीचे लिखे चक जंगल के रूप में ग्वालियर राज्य से लिए थेः—

१. श्री आनन्दपुर २. चक शान्तपुर ३. चक सुखपुर ४. चक दयालपुर ५. चक टकनेरी ६. ब्लॉक कुलवार।

इन सब चकों की ज़मीन नौ हज़ार बीघा के लगभग थी। ज़मीन के आबाद् होने पर उस में साथ साथ फसल बो दिया जाता। इसका परिणाम यह हुआ कि दो वर्ष में अर्थात् सन् १९४१ तक चकों की बंजर भूमि को उपजाऊ बना दिया गया। जब ग्वालियर राज्य के कर्मचारियों व आस-पास के लोगों को पता चला तो वह सब बड़े हैरान हुए कि इतनी जल्दी इतनी ज़्यादा बंजर ज़मीन को उपजाऊ बना लेना और डिपॉज़िट वापिस ले लेना निश्चय ही आश्चर्यजनक बात थी। वैसे तो श्री दरबार के सेवकों को डिपॉज़िट लेने की इतनी प्रसन्नता भी न थी क्योंकि यह काम उनके कुल मालिक श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा और प्रसन्नता पाने की तुलना में तुच्छ था। वे सेवक अति प्रसन्न इसलिए हुए कि हमें श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की सेवा व श्री प्रसन्नता को प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

ग्वालियर के महाराजा सिंधिया को इतना हर्ष हुआ कि गर्वनमैंन्ट गज़ट (राज्य-समाचार-पत्रिका) में श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी

पादशाही जी के शुभ नाम के साथ में 'उपकारक' की पदवी लगा दी। पूरी रियासत में इस बात की प्रसिद्धि हो गई कि श्री आनन्दपुर वालों ने चकों को आबाद कर डिपॉज़िट ले लिया है। उन्हें क्या मालूम कि ये कैसी सशक्त आत्माएँ हैं, इन्होंने केवल ज़मीन को आबाद ही नहीं करना अपितु पथ भटके जीवों की व्याकुल आत्माओं को भी हर्षाने आये हैं। वे क्या जाने कि इन्होंने भूमण्डल पर क्या क्या अद्‌भुत और अपूर्व परिवर्तन करने हैं। अब श्री आनन्दपुर में श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने स्थायी निवास रखकर श्री आनन्दपुर की रूप रेखा श्री मौज के अनुसार इस प्रकार बनाई।

१. श्री श्री १०८ श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने जो सन् १९३१ में रियासत ग्वालियर के कर्मचारियों को व अन्य कई व्यक्तियों को यह फ़रमाया था कि सब बंजर भूमि आबाद होगी, यहां बगीचे होंगे, पाठशाला होगी तथा अपनी मोटरें चलेंगी आदि आदि सब श्री वचनों को शीघ्र साकार रूप में लाया जाए।

२. यहाँ की जितनी ज़मीन बंजर और अनुर्वरा रूप में है चाहे वह श्री आनन्दपुर में है या अन्य चकों पर इसे पूरी तरह से आबाद किया जाये। कोई भी स्थान बिना आबाद किये या अनुपजाऊ नहीं रहना चाहिये ताकि यहाँ के स्थायी शरणागतों के लिए अनाज, फल व सब्ज़ियों की सब अपनी उपज होनी चाहिये।

३. इसके अतिरिक्त श्री आनन्दपुर की शोभा बढ़ाने के लिए पार्क, उद्यान बनाए जावें। वर्षा अधिक होने से जो तीन चार मास कीचड़ व पानी में सब को चलने फिरने की कठिनाई होती है, इसके लिए पक्की सड़कें बनवाई जावें।

४. सब से अधिक ध्यान पानी की कमी को पूरा करने पर दिया जाये।

५. शरणागत सेवकों की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये गुड़

व कपड़े के साधारण ढंग के कारखाने लगाए जाएं ताकि सब आवश्यक सामग्री का उत्पादन व निर्माण यहीं पर हो सके ।

६. दुःख-बीमारी के लिए एक अस्पताल खुलवाया जाये जिस में श्री आनन्दपुर के अतिरिक्त आस पास के गांव के लोग भी यहाँ से दवाई ले सकें ।

७. छोटे-छोटे बच्चे जो शरणागत परिवार अपने साथ लाए थे उनके पढ़ने के लिये एक स्कूल खोला जाए जिस में आस-पास के गाँवों के बच्चे भी शिक्षा प्राप्त कर सकें ।

८. हिंस्र पशु जो जंगल में प्रायः सिंह, चीते, लोमड़ आदि थे उनसे बचाव के लिए चारों ओर चहार दीवारी (कोट) बनाई जाये ।

९. कंटीली झाड़ियाँ, तेंदू, आक आदि पेड़ों को काट कर धरती को साफ़ किया जाए ।

१०. रोशनी के लिए बिजली की सुव्यवस्था की जाए ।

११. शरणागतों तथा संगतों के लिये हवादार पक्के मकान होने चाहिएं ताकि गर्मी सर्दी व बरसात में कोई असुविधा न हो ।

इस प्रकार की रूपरेखा तैयार कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने इसे कार्य रूप में परिणत करना आरम्भ किया । आरम्भ से थोड़े से शरणागत परिवार होने से उन की आवश्यकता पूर्ति शीघ्र हो जाती थी । जब आप ने शरणागति का मार्ग ही खोल दिया तो सैंकड़ों की संख्या में भक्त व प्रेमी आए । कभी कभी तो श्री पावन दर्शन के लिए इतनी संगत आ जाती कि उनके ठहरने के लिए स्थान पूरा न हो पाता । उस समय सरल साधन यही अपनाया गया कि घास फूस के झोंपड़े जिसे मध्य-प्रदेश की भाषा में 'टपरे' कहते हैं बना कर उस समय की आवश्यकता को पूरा किया गया । जंगल से लकड़ी काट कर लकड़ी के शहतीर (बल्लियां) बनाये गए और पत्तों तथा टहनियों से झोंपड़े

बनाये। इस प्रकार एक तो निवास स्थान की ज़रूरत पूरी हुई दूसरा साथ ही साथ वन भी साफ़ होता गया। अतः तीन चार सौ झोंपड़े थोड़े समय में तैयार हो गए। उस समय इतनी शीघ्रता से पक्के मकान बनाने सुगम न थे।

इसके पश्चात् जहां जहां बंजर ज़मीन जो उपजाऊ (बोने योग्य) बन सकती थी चाहे वह श्री आनन्दपुर में थी अथवा अन्य चकों पर सब को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न किया गया। साफ़ ज़मीन में खाद डालकर उसे सब प्रकार से उपज के अनुकूल बना कर उसमें बीज बो दिया गया। कुछ ज़मीन बैलों द्वारा और कुछ को ट्रैक्टर द्वारा जोता गया। इस प्रकार खेती का काम आरम्भ किया गया। कहीं पर तरकारियां, कहीं फलों के पेड़ और कहीं अनाज के खेत बनाये गये। धीरे धीरे सारी ज़मीन उपजाऊ बना ली गई। इस से शरणागत निवासियों की ज़रूरत पूरी होने लगी।

वर्षा ऋतु समाप्त होने पर सब से बड़ा अभाव पानी का खटकता था। आप ने एक स्थान पर बावली खोदने की योजना बनाई। नवम्बर १९४१ में बावली की खुदाई आरम्भ हो गई। बावली का काम सब सेवकों ने शौक व रुचि से किया परन्तु जिस जगह पर बावली खोदने का निशान दिया गया था वह जगह पथरीली थी। साधारण तरीके से उसका खोदना हो ही नहीं सकता था। अन्त में सुरंगें लगाने की सलाह हुई। इतना सख़्त पत्थर बिना सुरंगों के नहीं टूट सकता था और सुरंगें लगा कर बारूद के द्वारा उन पत्थरों को तोड़ा गया। जब सुरंग चलती तो काफ़ी दूर तक आकाश की ओर मोटे मोटे पत्थर उड़ते। इस तरह से सेवक दिन-रात इस सेवा में लगे रहे। ५०-५५ फुट गहरी बावली खुद जाने पर भी पानी का कोई निशान नज़र न आया।

एक दिन एक व्यक्ति ने बावली पर आकर कहा कि इन पत्थरों में कहां पानी रखा है। यह तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने हमें सेवा का सुअवसर दिया है। यहां पानी की कहां आशा हो सकती है! उसी दिन सायं को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बावली पर कृपा की। पहले जब भी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी

बावली पर पधारते थे तो बावली के बाहर ही विराजमान होकर सेवा का कार्य देखते परन्तु इस दिन बावली के अन्दर जाने की श्री मौज हुई। सीढ़ी के रास्ते नीचे उतरे। बावली पर काम करवाने वाले महात्मा शब्द अलखानन्द जी ने यह बात श्री चरणों में प्रस्तुत की कि प्रभो! कुछ आदमी ऐसा विचार प्रकट कर रहे हैं कि इन पत्थरों में क्या पानी निकलना है। यह सुन कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने एक कोने में संकेत करते हुए फ़रमाया कि "इस स्थान से पानी निकलेगा, किसी के दिल में निराशा नहीं होनी चाहिये। पानी निकलेगा और अवश्य ही निकलेगा। तुम हित चित्त से सेवा करो। तुम्हारा परिश्रम कभी निष्फल नहीं हो सकता। इन पत्थरों में बहुत पानी भरा हुआ है, ज़रूरत परिश्रम करने की है। इस लिये अपने कर्त्तव्य-पालन में दिन रात एक कर दो।" सेवकों ने श्री आज्ञा शिरोधार्य कर कार्य आरम्भ कर दिया।

इसी तरह खोदते खोदते जब बावली की खुदाई ६० फुट तक पहुँची तो एक पाताली झिर उसी जगह से निकली जहाँ पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने संकेत किया था। आठ नौ मास के बाद जून १९४२ तक बावली पूर्ण हो गई। उस में इतना पानी निकला कि सब श्री आनन्दपुर निवासी लोगों को नहाने, पीने और पशुओं आदि को पिलाने की सुविधा हो गई। बावली खोदने से पहले पानी दूर दूर के झोरों (नालों) से लाया जाता था। वैसे तो सरकार की ओर से एक कुआँ मिला हुआ था परन्तु उसका पानी गर्मियों में समाप्त हो जाता था। अत्यधिक खोज करने पर पता चला कि समीप ही श्री आनन्दपुर से दो तीन मील की दूरी पर राजा नल का तालाब है जो अपने अधिकृत क्षेत्र में नहीं था और वहाँ से टंकियों में पानी मंगवाया जाता था। बावली खोदने पर वहाँ से पानी लाना बन्द कर दिया गया। इसी बावली में एक पाताली झिर ऐसी निकली जिस का पानी फिर कभी समाप्त होने में न आया। प्रायः इस रियासत में इस प्रकार के कुएं थे जो वर्षा ऋतु में तो इतने भर जाते कि ज़मीन की सतह तक पानी आ जाता और गर्मियों में ऐसे सूख जाते कि लोग पानी पीने के लिए भी तरसते रहते थे। यह असुविधा इस बावली की पाताली झिर ने समाप्त कर दी।

पहले यहाँ लैम्पों व गैसों से गुज़ारा होता था। १६४२ में एक बिजलीघर बनाया गया जिसे रात के समय चलाया जाता था। परिस्थिति अनुसार कार्य बढ़ने पर और भी कई काम इस से लिए जाने लगे। उदाहरणतया पंखें, बिजली, मशीन आदि की ज़रूरत पूरी होने लगी।

दो वर्ष बाद १६४४ में श्री आनन्दपुर के निवासियों की संख्या बढ़ गई और बाहर से काफ़ी संगत आने लगी। एक दूसरी बावली खुदवाने की श्री मौज उठी। एक उचित स्थान देखकर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने बावली खोदने का निशान दिया। दूसरी बावली खोदने में बहुत आसानी हुई। ऊपर से नीचे तक मिट्टी थी। कहीं कहीं थोड़े पत्थर भी निकले। पचास-साठ फुट गहरी बावली खोदने में लगभग पाँच मास लग गए। परन्तु बावली खोदने में जितनी आसानी हुई, अन्दर से चुनाई करने में (दीवारें बनाने में) उतनी अधिक कठिनाई भी हुई। क्योंकि जब बावली के अन्दर पक्की दीवारें बनाने लगे तो बावली की चारों दीवारें जो मिट्टी की थीं फट गईं और उन्होंने भयानक रूप धारण कर लिया। जब सेवक लोग बावली के अन्दर सेवा के लिए जाते तो दीवार का कोई न कोई भाग गिर पड़ता और बावली का काम त्यों त्यों कठिनतर हो जाता। रात रात में ही दीवार का कुछ भाग गिर जाता। दिन को वही मिट्टी निकाली जाती। इतना ही नहीं अभी पहली मिट्टी न निकली होती कि ऊपर से और मिट्टी का धमाका आ पड़ता। परन्तु सेवक लोग बिना किसी घबराहट के बावली की सेवा में लगे ही रहे।

जहाँ सृष्टि के रक्षक समर्थ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी विराजमान हों वहां किसी को क्या कष्ट हो सकता था। बावली की सेवा के दिनों में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी दिन में काफ़ी समय तक बावली पर विराजमान रहते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सब को उत्साहित करते हुए फ़रमाया कि "घबराओ नहीं। मिट्टी ने अपना काम करना है, तुम अपना काम किए जाओ।" इन श्री वचनों को सुनकर सेवक पहले से भी अधिक उत्साह के साथ सेवा में लग गए। ऊपर से पत्थर, चूना, सीमेंट नीचे भेजा जाने लगा और नीचे से दीवार बननी शुरू हो गई।

इससे मिट्टी के गिरने की सम्भावना कम होती गई। डेढ़-दो मास में सद्गुरु-कृपा से बावली की दीवारें बन कर तैयार हो गईं। एक महीना और बावली की सीढ़ियाँ व घाट बनाने में लग गया। पहली बावली की तरह दूसरी बावली भी सात आठ मास में पूरी तरह तैयार हो गई। फलतः इसके अन्दर से भी मीठे पानी का एक ऐसा स्रोत निकला जो स्वास्थ्यप्रद तथा स्वादिष्ठ था। १९४५ के बाद जल की असुविधा समाप्त हो गई। कहते हैं कि इस बावली का पानी इतना स्वास्थ्यप्रद और मधुर निकला कि इस समस्त क्षेत्र में ऐसा पानी कहीं न था। डॉक्टरों ने इस जल का परीक्षण कर इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। अब नहाने, पीने, सिंचाई करने का काम दोनों बावलियों के पानी से किया जाने लगा। बावलियों पर रहट लग गए। पानी की बहुतायत होने से कई स्थानों पर बग़ीचे व उद्यान भी लगाए गए। इन उद्यानों में पपीते, संतरे, माल्टे आदि के पौधे लगा दिये गए। सड़कों के दोनों किनारों पर ढाक के स्थान पर आम और जामुन के वृक्ष लगे इस नगरी की शोभा को बढ़ाने।

इतना काम हो जाने पर पक्की सड़कों तथा पक्के मकानों की ओर ध्यान दिया गया। सब से पहले सत्संग हॉल व भोजनशाला (लंगर) के लिए पक्का भवन बनवाने की योजना बनाई गई। लोगों के आने जाने के लिए पक्की सड़क की व्यवस्था हो गई। इस सब सेवा का कार्य शरणागत परिवार, जिज्ञासु, प्रेमी गुरुमुख ही करते थे। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने ऐसी प्रेम की डोरी में सब को बाँध लिया कि किसी को भी दिन व रात का ख़्याल ही न रहता। जहाँ सेवा का काम होता श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं वहाँ पर विराजमान रहते। सेवक भी पूर्ण रुचि व श्रद्धा से इस सेवा में भाग लेते। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के आगमन से सब में नया उत्साह तथा साहस भर जाता। इस प्रकार सत्संग हॉल तथा भोजनशाला डेढ़ वर्ष में बन कर तैयार हो गए।

अब पानी अधिक होने पर कई खेतों में गन्ना भी बोया गया और कई चकों पर जहाँ कहीं तालाब समीप थे वहां पर भी गन्ना बोया गया। इसके अतिरिक्त सरसों, अलसी और तिली बो दी गई। फलस्वरूप जो गुड़ पहले बाहर से

मंगवाया जाता था वह घर में ही बनना आरम्भ हो गया।

इसी तरह से कपड़े बुनने के लिए कुछ व्यक्तियों को खड्डियों (Hand-Loom) का काम सिखाया गया। खद्दर अपनी आवश्यकता के लिए बनाया जाने लगा।

पहले तीन चार साल वर्षा का पानी व्यर्थ में ही बह जाता था परन्तु अब एक तालाब दयालपुर के समीप तथा दूसरा तालाब श्री आनन्दसर के पश्चिम की ओर बनवाए गए जिन में वर्षा का पानी एकत्र किया जाता, जिस से पालतू पशुओं के पीने और सिंचाई के लिये और भी अधिक सुविधा हो गई।

१९४६-१९४७ में बहुत से लोग शरणागत हुये और अधिक संख्या में लोग श्रद्धा से सेवा करने के लिये आए। सेवकों की संख्या बढ़ने पर सेवा को श्री सद्गुरु देव महाराज जी ने विशाल रूप दे दिया तथा श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने शरणागतों की संख्या बढ़ने पर निम्नलिखित स्थान मनियर (शिवपुरी बग़ीचा), प्रेम नगर, राजाढेर, कोलुआ, बांसाखेड़ी तथा सीमाटोरी आदि ख़रीद करवाये और वहाँ निवास स्थान बनवा कर अपने शरणागतों को ठहराया।

वनों में दबी हुई चट्टानों व अन्य खेतों में दबे हुये पत्थरों को निकलवा कर श्री आनन्दपुर के चारों ओर चार दीवारी बनवानी आरम्भ की ताकि हिंस्र पशु अन्दर न आ सकें और किसी प्रकार का नुकसान न कर सकें। लगभग ५-६ फुट की ऊँचाई तक इसे तैयार किया गया।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने प्रवचन फ़रमाये कि जैसे यह दीवार हिंस्र पशुओं से रक्षा करती है वैसे ही सन्त महापुरुषों के द्वारा बताए गये शब्दाभ्यास की दीवार से आन्तरिक हिंस्र शत्रुओं (काम-क्रोध-अहंकार-राग-द्वेष आदि) से सुरक्षा मिलती है।

सत्य है सद्गुरु के नाम की रेखा में इतनी शक्ति है कि जहाँ कहीं भी वन में या पर्वतों अथवा किसी भी जगह पर, किसी कठिनाई के आने पर यह शक्ति सर्वदा साथ देती है; फिर जहाँ पर नाम के प्रदाता सन्त सद्गुरु स्वयं निवास करते हों वहाँ भय का कौन सा काम ? भय तो लाखों कोसों पर भी आतंकित

रहेगा। ये रचनाएं तो महापुरुष केवल मानवी लीला के रूप में रचाते ही रहते हैं। इस प्रकार से श्री आनन्दपुर के चारों ओर एक सीमा भी बन गई। पक्के मकान बनाने के लिए भी इन्हीं पत्थरों (बोल्डरों) से काम लिया जाने लगा। कोट का कार्य इतना बड़ा था कि पाँच छः वर्ष इस को बनाने में लगे। अब आवश्यकताएँ बढ़ती गईं, इसलिये स्थायी निवासियों के लिए भी पक्के भवनों का निर्माण किया गया। बाहर से आने वाली संगतों के लिए बड़े बड़े विशाल भवन बना दिए गए जहाँ पर त्योहारों पर संगतें ठहर सकें। ज़रूरत अनुसार सब कामों की ओर ध्यान दिया गया।

एक लघु धर्मार्थ चिकित्सालय खोल दिया गया जहां पर समीप के गांव के लोग भी औषधि प्राप्त कर सकें तथा आने वाली संगतों तथा शरणागतों की भी कठिनाई दूर हो गई। एक पाठशाला का प्रबन्ध किया गया जहाँ पर शरणागतों के बच्चे तथा निकटवर्ती गांव के बच्चे पढ़ने के लिए आने लगे। अभी तक औषधालय और विद्यालय सफल कार्य कर रहे हैं। देहात के निर्धन लड़कों को कापियां, पुस्तकें, पैंसिलें, स्याही, कपड़े (वर्दी) तथा अन्यान्य वस्तुएँ (Stationery) श्री आनन्दपुर के बच्चों की तरह मुफ़्त दी जाने लगीं और दी जाती हैं।

५ मार्च सन् १९५३ में यहाँ पर डाकखाना भी स्थापित करवाया जिस से आस-पास के ग्रामवासियों को भी लाभ प्राप्त हुआ। श्री आनन्दपुर के निरीक्षण में यह डाकखाना कायम है। आनन्द प्रिंटिंग प्रेस भी लगाई गई जिसमें 'श्री परमहंस अद्वैत मत' की धार्मिक पुस्तकों का प्रकाशन होता है—जिनके स्वाध्याय से जन-साधारण भी अपनी आत्मिक-तृषा बुझा लाभान्वित हो रहे हैं।

श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री दूसरी पादशाही जी ने अपनी भविष्य वाणी में फ़रमाया था कि श्री आनन्दपुर एक तीर्थधाम होगा। यहां से लोग शीशियों में अमृत-जल भर कर ले जाएँगे। सन्त महापुरुषों की भविष्यवाणी अथवा श्री वचन सत्य हैं:—

॥ दोहा ॥

रवि को तेज घटै नहीं, ज्यों घन चढ़ै घमण्ड ।
सन्त वचन पलटै नहीं, जो पलट जाय ब्रह्मंड ॥

इन्हीं वचनों को साकार रूप देने के लिए श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की १६ नवम्बर १९५४ में एक स्थान पर उत्तर-पश्चिमी कोने में जो बिल्कुल ऊजड़ सा भूखण्ड था, वहाँ पर एक सरोवर बनाने की मौज उठी । टीले को खोदकर भूमि समतल की गई । पुनः यहाँ श्री मौज के अनुसार बृहत् आकार रूप में सेवा कार्य आरम्भ हुआ जिसे छः सात वर्षों में पूर्ण किया गया । श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने इसका शुभ नाम 'श्री आनन्दसर' रखा । १३ जनवरी १९६१ माघी के शुभ पर्व पर संगतों को प्रथम स्नान का शुभ अवसर मिला । अब हम देख रहे हैं कि आये हुये यात्री श्री आनन्दसर का चरणामृत शीशियों में भर कर ले जाते हैं ।

सन् १९६२ में श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की मौज उठी कि श्री आनन्दपुर में कई प्रकार के फल अर्थात् पपीते, सन्तरे, आम, माल्टे और मौसमी आदि के वृक्ष फल दे रहे हैं, इनके साथ साथ अँगूर भी होने चाहिएँ । जहाँ कहीं कुछ अच्छी ज़मीन थी, जहाँ अंगूर लग सकते थे वहाँ अंगूरों की बेलें लगाई गईं । तीन वर्ष में अँगूर फल देने लगे । इसके अतिरिक्त आपने और भी कई विशेष आवश्यक उपयोगी कार्य करवाये । उदाहरणतया श्री आनन्द भवन शिमला, श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर, आवश्यकता के अनुसार डेरी फ़ार्म, सैर के लिये कई पार्क तथा बोरिंग आदि विशेष विशेष कार्य-विभागों की व्यवस्था कर दी गई । बैलों के स्थान पर ट्रैक्टरों द्वारा अब खेती होने लगी । इस प्रकार कितने ही कार्य आपने निरन्तर परिश्रम से करवाए । इन सब का विवरण श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी के जीवन चरित्र में कुछ विस्तार से दिया गया है ।

श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम का यह कार्य यहां अत्यन्त संक्षेप में दिया

गया है। यदि इन्हें पूर्ण रूप से लिखा जाये तो उसे लिखने में लेखनी असमर्थ है। इन कार्यों को श्री सद्गुरुदेव जी के करवाने का यह अर्थ नहीं कि उन्होंने केवल श्री आनन्दपुर की बंजर भूमि को आबाद करने के लिये ही अवतार लिया था प्रत्युत् उन्होंने हम जीवों के निमित्त यह सब कष्ट किया। श्री आनन्दपुर को सदा सदा के लिए युग-युगान्तरों तक माया में व्याकुल, अशान्त और दुःखी आत्माओं का आश्रय बनाया। ये चौदह भुवन, तीन लोक एवं दो जहान का सिरमौर श्री आनन्दपुर युग-युगान्तरों तक आत्मिक ज्ञान की ज्योति सबको प्रदान करता रहेगा। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने परमार्थ भक्ति और रूहानी ज्ञान का जो कार्य किया वह अवर्णनीय है एवं प्रशंसनीय है। उसकी तुलना में कोई शब्द ही नहीं जो लिखा जा सके कि यह कार्य आकाश सा असीमित था या समुद्र सा विशाल। श्री आनन्दपुर की रचना आपने न केवल सेवकों के संभरण पोषण के लिये की अपितु आत्मिक उन्नति के लिए अपना एक एक क्षण और कण कण अपने कोमल स्थूल विग्रह पर प्रसन्नचित्त कष्ट सह कर सर्वसाधारण कल्याण के अर्थ होम दिया।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने शरणागतों, जिज्ञासुओं तथा गुरु-सेवा के अभिलाषियों को संगठित रूप में सेवा करने का आदेश दिया। आपने सेवकों के हृदय में ऐसा शौर्य और ओज भर दिया कि आपके प्रेमी तनिक भी घबराते नहीं थे। १९४० के पश्चात् कुछ समय के बाद आपने यह आज्ञा दी कि प्रत्येक गुरुमुख अपने कार्यक्रम के अतिरिक्त प्रतिदिन उस स्थान पर (जहां कोई विशेष सेवा आरम्भ करवाते थे) पहुँच कर एक घंटा सेवा किया करे। इस आदेश को पाकर सब सेवकों का दिल इस कार्य में इस प्रकार लग सा गया कि गुरुमुख रात को भी दिन समझने लगे। जहां भी सेवा आरम्भ होती आप स्वयं वहां पर पहले ही विराजमान होते। श्री दर्शनों की मधुमय छाया के नीचे सभी प्रेमियों में नये रक्त का संचार हो आता जिससे वे अधिक श्रद्धा, विश्वास तथा रुचि से सेवा करने में अपना भाग्य मनाते। आपने प्रेम, एकता, सहानुभूति तथा परमार्थ का उत्कृष्ट आदर्श स्थापित किया। यहां तक कि इस नगरी के कण कण में इन

गुणों ने अपना चमत्कार दिखाया। आपने ऐसे ढंग से कार्य करवाया कि प्रत्येक गुरुमुख प्रेमी के हृदय पर कर्त्तव्य भावना की अमिट छाप अंकित सी हो गई।

परिणाम यह हुआ कि श्रद्धालु शरणागत एवं जिज्ञासु जनों के संगठित रूप में कार्य करने से स्वल्पकाल में ही श्री आनन्दपुर ने सुरम्य रूप धारण किया। जिस का प्रत्यक्ष रूप आज भी देखा जा सकता है। कहीं पर रंग-बिरंगे विभिन्न प्रकार के पुष्प, सुरभित उद्यान शोभायमान होने लगे तो कहीं पर आम्र-मंजरियां झूम उठीं। कहीं लहलहाते अनाज के खेत और कहीं पर तरकारियों की हरी भरी बेलें समग्र सुषमा में नूतन रंग भरने लगीं। जिधर भी दृष्टि डालो अगूँर, सन्तरे, मौसमी आदि के बाग़ ही बाग़–खेत ही खेत दिखाई देने लगे। इन सब के होते हुये भी एकान्त-प्रशान्त-गम्भीर और शीतल वातावरण है यहां। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने 'श्री आनन्दपुर' को आनन्दधाम बना दिया जहां पर आठों याम आनन्द ही आनन्द छाया हुआ है। बच्चे से बूढ़े तक प्रसन्नचित्त, मुस्काते-वदन अपनी ही मस्ती में लीन, न उन्हें है लोक की चिन्ता और न है परलोक का फ़िक्र। बस दो ही बातें देखने में आती हैं—हर समय गुरु-भक्ति के मधुर संगीत उनके ओठों पर और प्रभु-प्रसन्नता प्राप्त करने की हृदय में तड़प—इसके अतिरिक्त मोह-ममता लोभादि विकारों से मानो उन्हें कोई सरोकार ही नहीं। श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने मानो गीता के अठारहवें अध्याय का उपदेश कलियुग में मूर्तिमान् कर दिया है किः—

॥ श्लोक ॥

सर्वं धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

गीता अ० १८. श्लोक ६६

हे अर्जुन! सब धर्मों को छोड़कर तू एक मेरी शरण में आ जा फिर मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा। इस में तू किसी प्रकार का सन्देह मत कर।

श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी ने यही करके दिखा दिया कि जो जीव एक बार

शरण ग्रहण करके तन-मन-धन से श्री आज्ञा व नाम और भक्ति के सांचे में जीवन को ढाल ले उसके आनन्द का अनुभव वही स्वयं कर सकता है। यह आनन्द अनुभूति का ही विषय है। गूँगे को गुड़ का स्वाद है। आप स्वयं वैराग्य स्वरूप थे। आपने श्री आनन्दपुर के अणु-अणु में वैराग्य का पावन अमृत उड़ेल दिया जिससे कि यहां का वातावरण ही मोह शून्य बन चुका है। अब भी जिज्ञासुओं से यही सुना जाता है कि न जाने यहां की भूमि में क्या जादू है—हम घर से इस धाम में आने के लिये जब प्रस्थान करते हैं तो मार्ग में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं परन्तु यहां पहुँचते पहुंचते ही मन में एक प्रकार के असाधारण आनन्द का अनुभव होने लगता है जिससे मोह तो सर्वथा नष्ट हो जाता है। यहां से पुनः घर जाने को दिल ही नहीं करता। इतना स्मरण भी तो नहीं रहता कि हमारा कोई परिवार या सम्बन्धी पीछे है भी। जब वापिस जाना ही पड़ता है तो पहुंचने पर पता चलता है कि शायद हमारे भी कोई और सम्बन्धी हैं।

आपने गुरु-भक्ति के सिद्धान्तानुसार गुरु-सेवा तथा गुरु-आज्ञा को लक्ष्य बताया। जिस सिद्धान्त पर चलकर प्रत्येक प्राणी मानसिक आनन्द और रूहानी खुशी को प्राप्त कर सकता है। सेवा से मन के मोटे बन्धन (स्थूल) कटते हैं तथा भजन से सूक्ष्म। स्थूल अर्थात् जीव जन्मान्तरों से काल और माया का शिकार बना हुआ है। जब भी यह गुरु-भक्ति या सेवा की इच्छा करता है तो मन कोई न कोई विघ्न डाल देता है ताकि यह जीव उस माया से छुटकारा न पा सके। तब श्री गुरुदेव जी की सेवा मन के न चाहते हुए भी श्री आज्ञा को मुख्य मान कर हाथों द्वारा करता जाता है तो मन धीरे धीरे स्वयं सेवा में लगना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार मन पराजित होकर शुद्ध तथा भक्ति-पथ पर चलने के योग्य बन जाता है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की कृपा का आश्रय लेकर नित्यप्रति अभ्यास करने से एवं शब्द में सुरति लगाने से इस के सूक्ष्म बन्धन स्वतः कटने लगते हैं और लक्ष्य-सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी का चरम लक्ष्य तथा ध्येय वस्तुतः अन्तर्मानस के

प्रदेश को सरसाने का था। आपने सेवा के साथ साथ भजनाभ्यास पर भी ज़ोर दिया। जैसे किसी वस्त्र को धोने के लिये उसे केवल साबुन से रगड़ा जाए और उसे पानी में से न निकाला जाए तो उस वस्त्र में चमक दमक नहीं आती या केवल मलिन वस्त्र को पानी से धोया जाए उस पर साबुन न लगाया जाए तो वह साफ़ नहीं होगा। इसी प्रकार ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने सेवा और भजन दोनों पर बल दिया। सेवा साबुन है तो भजन पानी, जो मन रूपी वस्त्र से काम-क्रोध-मोह आदि की मैल को दूर करते हैं। इसी भजनाभ्यास के विषय में अर्शाद हुएः—

"कि प्रत्येक श्री आनन्दपुर निवासी के लिए कम से कम एक घण्टा भजन करना आवश्यक है। इससे अधिक जितना कोई कर सके। रात को सोते समय और प्रातः काल भजन पर अवश्य बैठें। भजन में नींद या सुस्ती नहीं होनी चाहिए। कोई यह शिकायत न करे कि मुझे सेवा से फ़ुरसत नहीं है। भजन सब के लिये अनिवार्य है।"

पुनः श्री वचन हुए कि "श्री आनन्दपुर का बच्चा बच्चा भी भक्ति की कसौटी से निकला हुआ होना चाहिए। दुनिया के सामने एक आदर्श कायम हो--बिल्कुल तैयार गढ़ा-गढ़ाया हो—समय एक मिनट भी व्यर्थ न जाय। हमारा प्रयोजन केवल यही है कि जीव काल और माया के धोखे में न आवे। इसलिए जहाँ तक हो सके समय को भजन और सेवा में लगावे। अधिक से अधिक समय सेवा और भजन में लगाने का प्रयत्न करे। भजन के लिए किसी को भी छुट्टी नहीं है। भजन अर्थात् सुरत-शब्द-योग में ही विमल भक्ति भरी हुई है क्योंकि यह आज्ञा सहित है।"

बार बार यही फ़रमाया कि "एक मिनट भी व्यर्थ न जाये। श्री आनन्दपुर का बच्चा बच्चा इस कसौटी से निकला हुआ हो। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की आज्ञा में रहो।"

इस प्रकार सेवा के साथ साथ भजनाभ्यास पर भी बल दिया। इसके लिए

दोनों तरफ़ 'श्री शान्ति भवन' की स्थापना की। श्री शान्ति भवन उद्यानों के मध्य में श्री आनन्दसर के समीप शान्त वातावरण में स्थित है जहां पर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं नित्यप्रति संध्या समय सब संगतों को मूल मन्त्र का अभ्यास करवाया करते थे। आजकल वहां महात्मा जन व भक्तजन प्रातः सायं भजन-अभ्यास करने जाते हैं। इधर बाइयों व भक्तानियों की तरफ़ श्री शान्ति-भवन (छोटा) है जहां पर बाइयां तथा भक्तानियां भजनाभ्यास के लिये प्रातः तथा सायं जाती हैं।

यातायात के साधन सुगम हो जाने पर प्रत्येक त्यौहार अर्थात् वैसाखी, श्री व्यासपूजा, जन्माष्टमी, दीपावली तथा माघी आदि धूमधाम से यहाँ मनाए जाने लगे। आरम्भ में केवल श्री व्यासपूजा का पर्व ही मनाया जाता था। श्री सद्गुरु देव महाराज जी (श्री तीसरी पादशाही जी) ने जो जो रचना रचाई, लीला की उन सब का सम्पूर्ण वर्णन तो शेष शारदा भी करने में असमर्थ हैं। संक्षेप में इतना ही लिखा है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर के कण कण में जो दिव्य ज्योति भरी वह आज भी इन आँखों से देखी जा सकती है। आपने जड़-चेतन सभी वस्तुओं में नव-जीवन का संचार किया। जहाँ भी पग रखो, जहाँ भी दृष्टि डालो श्री आनन्दपुर का पत्ता-पत्ता, कण-कण, अणु-अणु आपके मधुर संगीत को अलाप रहा है। आपके गुणानुवादों, परोपकारों तथा आभारों का ऋणी है। आपने केवल 'श्री आनन्दपुर' को ही नवजीवन नहीं दिया अपितु श्री आनन्दपुर तीर्थ धाम की रचना कर सर्व सृष्टि में आनन्द बरसाया। सृष्टि के कोने कोने में प्रेम-भक्ति-परमार्थ-सेवा का उपदेश प्रसारित किया। आपने प्रत्येक गुरुमुख प्रेमिजन के हृदय पर राज्य किया। जब श्री आनन्दपुर जो केवल एक तीर्थ-धाम के रूप में है उस के गुणानुवादों का वर्णन करना कठिन है तो उस के निर्माता श्री त्रिभुवन मोहन, हृदय सम्राट्, महाराजाधिराज, भव-पोत श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की अनिर्वचनीय महिमा का वर्णन कहां हो सकता है।

जिन कार्यों को श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही

जी ने अपने युग में प्रारम्भ किया हुआ था, उन्हीं कार्यों को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी साधु वेष में तथा पारमार्थिक राजसिंहासन पर समासीन हो जाने पर भी अन्तिम रूप देने में तल्लीन रहे। जैसे श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर को साज-सज्जाओं से सुभूषित करना—श्री मन्दिर के समीप में स्थित श्री सद्गुरु देव महाराज जी के श्री आनन्द शान्ति भवन का निर्माण कार्य, श्री आनन्दपुर आश्रम के अन्तर्गत अनेक नये भवनों का सूत्रपात करना आदि आदि।

सारांश यह कि श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने जिन जिन स्थानों के निर्माण के लिये रूप रेखा बना दी थी—उन में जो कार्य अभी पूर्ण नहीं हुए थे उन्हें आप (श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी) ने सम्पूर्ण करवाया। उनमें से भी जो शेष रह गये थे उन्हें इस समय श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी सम्पन्न कराने में तत्पर हैं।

श्री आनन्दपुर ट्रस्ट धर्मार्थ चिकित्सालय

परमार्थ पथ के प्रवर्त्तक, युग-सम्राट् श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव, महाराज जी (श्री पंचम पादशाही जी) ने दर्शनार्थियों व जनसाधारण के लाभ हेतु इसका निर्माण करवाया है। सर्व जन हितैषी श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आत्मिक उन्नति के साथ साथ शारीरिक स्वास्थ्य नियमित रखना भी आवश्यक समझा। अतः श्री आनन्दपुर के अधिकृत क्षेत्र चक सुखपुर में इसकी नींव का उद्घाटन १० नवम्बर १९७४ रविवार के दिन निज कर कमलों से किया तथा रूपरेखा भी निज मौजानुसार बनवाई।

इस चिकित्सालय में डॉक्टरों, रोगियों व इनसे सम्बन्धित आवश्यक विभागों की सुव्यवस्था सुचारू रूप से हुई है। योग्य डॉक्टरों की देखरेख में सुव्यवस्थित रूप से चल रहा है। इससे शरणागतों व जनसाधारण को शारीरिक स्वास्थ्य के

साधन सुलभ हो गए हैं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तृतीय पादशाही जी ने एक बार शरणागतों के सम्मुख प्रवचन किए थे कि "यहां पर (श्री आनन्दपुर में) पाठशाला होगी, अस्पताल बनेगा, जंगल की जगह चहल-पहल होगी तथा यह एक महान तीर्थ बनेगा।" ये प्रवचन समयानुसार सत्य सिद्ध होते गए और हो रहे हैं। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी की भी एक बार मौज उठी थी कि यहां पर सर्वजन हिताय चिकित्सालय होना चाहिए तथा उन्होंने श्री आनन्दपुर के क्षेत्र में स्थित चक सुखपुर में इसके निर्माण के लिए संकेत भी किया।

श्री हुज़ूर दाता दयाल जी ने उन प्रवचनों तथा मौज को साकार रूप दिया जोकि श्री आनन्दपुर ट्रस्ट धर्मार्थ चिकित्सालय (चक सुखपुर में) भव्य रूप में सबके सम्मुख प्रत्यक्ष है। इसका अधिकांश भाग १९७७ में निर्मित हो गया।

अतः ८ अप्रैल सन् १९७७ शुक्रवार के दिन श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने श्री आनन्दपुर के शरणागतों व बाहर से आए हुए प्रेमी जिज्ञासुओं को यहां श्री दर्शन देकर इसका उद्घाटन बड़ी धूमधाम से किया। और इसका शुभ नाम श्री आनन्दपुर ट्रस्ट धर्मार्थ चिकित्सालय (Shri Anandpur Trust Charitable Hospital) फ़रमाया।

अतः अब यह दिन प्रतिदिन जनसाधारण को लाभान्वित कर रहा है।

रेलवे सिटी बुकिंग एजेन्सी

दर्शनार्थी संगतों की सुविधा के लिये श्री सद्गुरुदेव जी ने यहाँ अप्रैल १९७८ में रेलवे टिकट घर (Railway City booking Agency) खुलवा दिया है जोकि रेलवे स्टेशन अशोकनगर से सम्बन्धित है।

'श्री आनन्दपुर दरबार' अमर-सत्य का पुजारी, प्रेम-भक्ति-ज्ञान-वैराग्य एवं सेवा का निदर्शन (नमूना) अपने प्रेमिजनों को निष्काम कर्मयोग की रुचिर शिक्षा

देकर इस भूमण्डल पर भास्कर सम दसों दिशाओं को अध्यात्म की प्रखर ज्योति से आलोकित करता रहेगा ।

आज श्री आनन्दपुर के सभी सेवक, शरणागत स्वावलम्बी, परिश्रमी तथा साहसी बन कर एक अद्‌भुत मस्ती में खोए हुए श्री सद्‌गुरुदेव महाराज जी के अनन्त अनन्त उपकारों के सुमधुर गीत गाते हुए स्वतन्त्रता व आनन्द से जीवन बिता रहे हैं । यथार्थ रूप से देखा जाए तो श्री आनन्दपुर की रचना को आदि मानव से लेकर आज के वैज्ञानिक युग तक उन्नति की उपमा दी जा सकती है ।

तीर्थराज श्री आनन्दपुर, भूमण्डल पे इतराता है ।
इस की सुषमा का प्रकाश, कोटि रवि को लजाता है ॥
प्रेमी जन के हिय गगन में, चन्दा की तरह सुहाता है ।
इस की अनूठी शान देख, हैरान हुआ विधाता है ॥

इस भूमि के भाग्यों की, उपमा किस विधि ज़ुबान करे ।
सकुचाए हरि हर कोविद भी, किस मुख से कोई बयान करे ॥
यह अद्‌भुत रचना सचखण्ड की, सृष्टि को हैरान करे ।
इस के गौरव का वर्णन, किस लेखनी से इन्सान करे ॥

श्री परमहंस महाराज जी के, मौजों का भण्डार बनी ।
श्री परमहंस अवतार जी के, लीलाओं का आगार बनी ॥
श्री परमहंसों का संगम स्थल, प्रेमियों का आधार बनी ।
चौदह भुवनों से न्यारी यह, श्री मौजों के अनुसार बनी ॥

कोटि कल्प वर्षों से, बीहड़ धरा ने पुकार करी ।
ऐ करुणेश ! अनुकम्पा कीजै, नज़र करो उपकार भरी ॥
परमार्थ हेतु आते जग में, हो तुम अवतार धरी ।
उद्धार सुधार करो कृपालु, विनती तव चरणार परी ॥

जंगल में मंगल बना दिया, आकर धुरधाम के वासी ।
प्रेम सलिल से मिटाई तृषा, जन्मों से जो थी प्यासी ॥
कहीं बनाया विश्राम गृह, कहीं लीला करें सुख राशी ।
कहीं भव्य भवन निर्माण किए, जहाँ रहें गुरुमुख निवासी ॥

वास स्थान के एक ओर, खड़ा शिमला इठलाए ।
दूसरी ओर श्री आनन्दसर, लहरों में इतराय ॥
हर जगह पे सुरभित उपवन हैं, सुरभित मलय बिखराय ।
कहीं परमहंसों के गीतों को, कोकिला अमराइयों पे गाए ॥

श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर, है कान्तिमय शोभाधाम ।
जहाँ अरुणिम वेला में श्री दर्शन, दें परमहंस सुखधाम ॥
श्री चरणन में पहुँचते ही, मन पाए विश्राम ।
ऐ जगती के पर उपकारक, तुम्हें कोटि कोटि प्रणाम ॥

इस के कण कण से उठती, है मधुर नाम झंकार ।
सुरति शब्द में लय हो जाए, पावे सचखण्ड द्वार ॥
भक्ति अमिय बरसता हरदम, मिलता है सुखसार ।
आत्म ज्ञान का नायक है, श्री आनन्दपुर दरबार ॥

क्या क्या रचनाएँ हैं इस में, गिन कैसे उन्हें सुनाऊँ ।
कोटि कल्प लगि महिमा लिखहुँ, तौ भी लिख न पाऊँ ॥
तीर्थ के सिरमौर श्री आनन्दपुर, की रज बनना चाहूँ ।
ऐ गुरुदेव दया के सागर, देना निज चरणन में ठाऊँ ॥



श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम के शरणागत स्थायी निवासियों के लिए नियम

प्रत्येक स्त्री पुरुष के लिए जो श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम में स्थायी निवासी हैं, निम्नलिखित नियमों का पालन आवश्यक एवं अनिवार्य है:—

१. प्रातःकाल उठकर शौचादि से निवृत्त होने के उपरान्त भजनाभ्यास, आरति-पूजा, नित्य नियमपूर्वक करना, तत्पश्चात् अपने सम्बन्धित कार्य में लगे रहना।

२. अपनी इच्छाओं को नियन्त्रित रखना, सादा व शाकाहारी भोजन करना और सादा वस्त्र पहनना।

३. खान-पान, पहरान जो भी सद्गुरु दरबार से प्राप्त हो, उसी में सन्तुष्ट रहना।

४. ब्रह्मचर्य पालन सब के लिये अनिवार्य है।

५. अपने चित्त में किसी के प्रति वैर-विरोध अथवा द्वेष को स्थान न देना, सद्भावना एवं नम्रतापूर्वक सब के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करना।

६. वादविवाद तथा व्यर्थ गपशप में समय नष्ट करने से परहेज़ करना, अवकाश के क्षणों में सन्तों की वाणियों का स्वाध्याय करना तथा सत्संग में व्यतीत करना।

७. अपने आचरण को पवित्र एवं शुद्ध रखना। चोरी, असत्य-भाषण तथा अन्यान्य बुराइयों से दूर रहना।

८. प्रत्येक के साथ प्रेम और सभ्यता से व्यवहार करना।

९. समय का पूरा पूरा लाभ उठाना। सेवा, भजन-बन्दगी और सत्संग में दिल लगाना।

१०. सचाई, सहनशीलता, सन्तुष्टि आदि गुणों को अपने अन्दर समाहित करने का प्रयत्न करना।

११. दूसरों के अवगुणों पर दृष्टि न रखते हुए अपने अवगुणों का सुधार करना।

१२. भक्ति के नियमों व सिद्धान्तों को अपनाना तथा श्री आज्ञा में सदा तत्पर रहना।

१३. श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के श्री चरणों में अटल श्रद्धा, भक्ति और विश्वास रखते हुए सदैव सद्गुरु की पवित्र आज्ञा व श्री मौज में प्रसन्न रहना।

१४. अपने लक्ष्य अर्थात् 'जीवात्मा के कल्याण' को हर समय याद रखना तथा क्रियात्मिक जीवन बनाना।

१५. हर समय प्रसन्नचित्त रहना क्योंकि प्रसन्नचित्त व्यक्ति ही प्रत्येक कार्य में सफलता प्राप्त कर सकता है। यह प्रसन्नता तथा शान्ति केवल सच्चे नाम से तथा ऊपरलिखित नियमों का पालन करने से ही प्राप्त हो सकती है।

१६. श्री दरबार के नियमों पर चल कर श्री दरबार की प्रबन्धक-समिति के निर्देश का पालन करना।



उपासना के पवित्र स्थान

श्री आनन्दपुर के पश्चिमोत्तर में उद्यानों के बीच पवित्र, निर्मल, सुरभित वातावरण में, एकान्त प्रशान्त प्रदेश है, जो कि श्री आनन्दसर की सीमा में स्थित है, ये उपासना के पवित्र स्थान उसी में हैं। भक्ति-परमार्थ के विराट् केन्द्र श्री आनन्दपुर को तीर्थधाम बनाने का श्रेय लिए हुए हैं। इस स्थान का निर्माण करने की श्री मौज को श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री दूसरी पादशाही जी के श्री प्रवचनानुसार श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी ने पूरा किया।

यह स्थान ऐसा महामहिम है जिसकी उपमा नहीं की जा सकती। वैसे तो श्री आनन्दपुर का समस्त क्षेत्र ही पूजनीय, वन्दनीय है क्योंकि श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी ने इस सम्पूर्ण क्षेत्र में ही प्रेम उड़ेला, परन्तु इस स्थान की जिस का ऊपर उल्लेख आया है विशेष महत्ता है। यह स्थान श्री परमहंसों का संगम स्थल है तथा प्रेमियों के हृदयों के लिए चलचित्र गृह का रूपक है। यहां पर पहुँचते ही श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की प्रत्येक लीला, समय-समय पर श्री मुख से फ़रमाए गए प्रवचन तथा अनूठा गुरु-सेवा और भक्ति का ढंग—ये सब दृश्य एक एक कर के आँखों के सम्मुख साकार रूप में घूमते हुए दिखाई देते हैं।

ये स्थान श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की अनुपम लीलाओं का भण्डार रहे थे तथा प्रेमियों को श्री कृपा तथा प्रसन्नता प्रदान करने के साधन थे। यह स्थान ऐसे लगता है मानो अत्यन्त पुण्यशील, भाग्यवान् तथा जन्म-जन्मान्तरों की तपस्या को लिए हुए था तभी तो यहीं पर सदा के लिए उपासना के स्थान बने। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी स्वयं निज मुख से इस स्थान के विषय में फ़रमाया करते थे—"यह क्षेत्र (जिसे उपमा दी जा रही है) ऋषियों-

मुनियों की तपोभूमि रहा है।" तभी तो इसे श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी तथा श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी (श्री चौथी पादशाही जी) ने कृतार्थ किया और वर्त्तमान समय में युग सम्राट् श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी इस क्षेत्र का निर्माण करवा कर इसे उन्नति दे रहे हैं।

श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी ने एक बार मौजवश फ़रमाया था कि "ये स्थान सचखंड के उतरे हुए मानचित्र हैं। यहाँ पर प्रमुख स्थान अति भव्य बने हुए होंगे आदि आदि।" अब वही श्री प्रवचन धीरे धीरे साकार रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हो रहे हैं और हो जाएंगे। इस वन्दनीय, पूजनीय स्थान की महिमा किन शब्दों में की जाएः—

गिरिराज हिमालय से पूछा, सब पर्वत करूँ स्याही।
सात समँद के पानी में, मसि घोलूँ मैं जाही॥
ऐ धरती के वन्य प्रदेश, तुम लेखनि सब बन पाही।
कागद धरती-अम्बर कर दूँ, लेखक शेष बनाही॥
दिल में उल्लसित उमंग, कछु लिखि महिमा जाय।
जितनी बुद्धि है उतनी ही सही, सुन हियरा हर्षाय॥
धरती अम्बर गिरिराज, बनराय समँद यह सुनाय।
हमें करो कृतार्थ, हम पर महिमा कहां समाय॥

इस महिमा योग्य स्थान के दृश्य इस प्रकार हैंः—

श्री आनन्दसर

श्री आनन्दपुर के आवास स्थान से लगभग दो-तीन फर्लांग उत्तर पश्चिम की ओर यह स्थान स्थित है। आवास स्थान से यहाँ तक जाते हुए बल खाती

हुईं पक्की सड़कें व मार्ग में सुरभित पुष्पों से सुसज्जित उद्यानों की छटा अत्यन्त रमणीय है। यह स्थान श्री पवित्र मौज के अनुसार सात वर्षों में बन कर तैयार हुआ था। इस सरोवर की लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक ८७५ फुट तथा पूर्व से पश्चिम तक ८४६ फुट है। चौड़ाई १०० फुट है। इस के चारों ओर बाहर सड़कें हैं तथा इस के किनारे पर चारों ओर रंगीन सुन्दर जंगले लगे हुए हैं। तट के साथ साथ सड़कों के एक ओर हरे-भरे सुन्दर पेड़ हैं और दूसरी ओर सुगन्धित उद्यान सुशोभित हैं। इन उद्यानों की छटा अपरिमित है। कहीं पर गुलाब, कहीं मोतिया, चमेली, नरगिस, गेंदा तथा अन्य विभिन्न प्रकार के पुष्प अनूठी शान के साथ उद्यानों में झूम रहे हैं। जहाँ तक दृष्टि डालो हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है।

महात्मा जन तथा भक्त जन व बाइयों-भक्तानियों के लिए श्री आनन्दसर को गेट द्वारा दो भागों में विभक्त किया हुआ है। स्त्रियां अपनी ओर तथा पुरुष अपनी ओर स्नान करते हैं। श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर तक पहुँचने के लिए मार्ग भी भिन्न भिन्न हैं। ये मार्ग पुलों द्वारा परस्पर मिले हुए हैं। श्री मन्दिर के एक ओर भक्तों व महात्मा जनों के लिए पुल है और दूसरी ओर बाइयों व भक्तानियों के लिए। श्री आनन्दसर लहरों के ताल पर इष्टदेव के गीतों को गाता हुआ इठला रहा है। इसी श्री आनन्दसर के तट पर महात्मा-भक्तों की ओर श्री शान्ति-भवन भी स्थित है। जिस में श्री आज्ञानुसार श्री आरति से पहले गुरुमुख प्रेमी एक घण्टा भजनाभ्यास के लिए बैठते हैं। एकान्त, प्रशान्त, सुरभित वायुयुक्त वातावरण में अनायास ही सुरति शब्द में विलीन होकर आनन्द में झूमने लगती है। बाइयां व भक्तानियों के आवास स्थान से श्री आनन्दसर के मार्ग में छोटा 'श्री शान्ति भवन' स्थित है, जहाँ बाइयां व भक्तानियां श्री आरति से पहले एक घण्टा भजनाभ्यास के लिये जाती हैं।

इस के दोनों कोनों पर छतरियां बनी हुई हैं। श्री आनन्दसर की सम्पूर्ण परिक्रमा करते समय दर्शनार्थ यात्री यहां बैठ कर श्री आनन्दसर की कलोल भरी

लहरों तथा प्रशान्त वातावरण का आनन्द लेते हैं। इसके निर्माण का विवरण पीछे दिया जा चुका है। अधिक उपमा न करते हुए केवल इतना ही काफ़ी है कि श्री आनन्दसर सर्व तीर्थों का सिरमौर श्री परमहंसों की मौजों का साकार रूप तथा श्री आनन्दपुर में उपासना योग्य स्थान के रूप में शोभायमान है। इसमें मज्जन कर प्रेमिजन कृतार्थ हो रहे हैं और होते रहेंगे।

श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर

यह श्री आनन्दसर के लगभग मध्य में स्थित है। श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी ने इसे अपनी रहस्यमयी श्री मौज के अनुसार बनवाया। यह एक विशाल संगमरमर की शिलाओं से बना हुआ भव्य भवन श्री मन्दिर के रूप में है। इस भवन के बीच में श्री परमहंस विभूतियां— श्री परमहंस दयाल जी श्री प्रथम पादशाही जी, श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री द्वितीय पादशाही जी, श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तृतीय पादशाही जी की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। इस श्री मन्दिर में श्री परमहंस प्रतिमाओं के विराजमान करने का स्थान अद्भुत् छटा को लिए हुए है। जब इस श्री मन्दिर में प्रेमिजन प्रवेश करते हैं तो श्री परमहंसों की दिव्य झलक से जो किरणें फूटती हैं, वे गुरुमुखों के हृदय में एक अनोखा आनन्द प्रकट कर देती हैं।

इस श्री मन्दिर के चारों ओर अन्दर जाने के लिये संगमरमर से बनी हुई सीढ़ियां हैं। इन सीढ़ियों को पार करते ही बरामदे के पश्चात् चारों ओर बड़े बड़े द्वार तथा खिड़कियां हैं।

यहां प्रातःकाल प्रेमिजन श्री आज्ञानुसार श्री आरति पूजा का कार्यक्रम मिल कर करते हैं। धूप, दीप, अगरबत्ती की सुवासित पवन, श्री परमहंसों की दिव्य झाँकियां, प्रेमिजनों का तन्मय होकर श्री आरति पूजा को श्रद्धा, निष्ठा व प्रेम विभोर होकर करना--मानो ऐसे लगता है जैसे सचखण्ड ही यहां उतर कर आ

गया हो। गुम्बज़ से मधुर, सुरीली एवं रसमयी यशोगान की ध्वनि नभमण्डल के वातावरण में गूँज उठती है। प्रातःकाल उठते ही श्री परमहंसों के श्री दर्शन कर हृदय सारा दिन प्रफुल्लित रहता है तथा अपनी मस्ती व आनन्द में लीन गुरुमुख प्रेमी आत्मिक आनन्द में विभोर रहते हैं।

श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के बाहर का दृश्य भी अति लुभावना चित्ताकर्षक है। प्रातः समय ब्रह्म मुहूर्त्त में जाग कर जब प्रेमिजन यहाँ आते हैं तथा श्री आनन्दसर के निर्मल एकान्त वातावरण से गुज़रते हैं तो उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि हृदय के अन्तर में कई लहरें उठ रही हों। ये लहरें अजपा जाप के रूप में प्राणों में स्वयं ही संचरित होना प्रारम्भ हो जाती हैं। गुरुमुख हंस आत्माएँ इस अजपा जाप के मुक्ताकणों को चुगती हैं। खगदल भी इसी सुवासित पवन में गुरुमुखों के संगीत की लहरों में अपना स्वर मिला कर राग अलापते हैं। नील-गगन में गुम्बज़ की शोभा ऐसे निखरी हुई प्रतीत होती है मानो तारिकाएं भी लड़ियों के रूप में यहां उपस्थित हों। गुम्बज़ की शिखा भी रजत सम है जो शरद् पूर्णिमा में सफ़ेद संगमरमर पर अपनी धवल किरणें बिखरा कर ऐसे इठलाती है जैसे हिम के पर्वतों पर चन्द्रमा।

श्री आनन्दसर का मार्ग आरम्भ होते ही प्राणी स्वयं नतमस्तक हो जाता है। श्री परमहंस अद्वैत मंदिर श्री परमहंसों का संगम स्थल श्री आनन्दपुर दरबार के लिए अद्वितीय निर्माण है।

श्री आनन्द शान्ति भवन

श्री परमहंस अद्वैत मंदिर के पश्चिम में श्री आनन्दसर के पश्चिमी तट पर 'श्री आनन्द शान्ति भवन' स्थित है। यह स्थान प्रातः स्मरणीय, नयनाभिराम, हृदय सम्राट् श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री तीसरी पादशाही जी का पुण्य स्मारक है। इस की नींव श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चौथी पादशाही जी ने निज कर-कमलों से रखी थी। यहां पर श्री समाधि जी के ऊपर श्री श्री १०८ श्री

सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी की प्रतिमा विराजमान है। श्री प्रवचनानुसार यहाँ पर सायं समय आरति-पूजा सभी गुरुमुख प्रेमिजन मिल कर किया करते हैं। इस की रूपरेखा भी एक विशाल भवन के रूप में है जिस में हज़ारों की संख्या में प्रेमिजन श्री दर्शन कर सकें।

इस की रूपरेखा के अनुसार छत्त पर चढ़ने के लिए बरामदों में चारों कोनों पर चक्करदार सीढ़ियां हैं। बरामदे की छत्त पर चारों कोनों पर चार गुम्टियाँ हैं। इस विशाल भवन के ठीक मध्य में श्री समाधि जी के ऊपर गुम्बज़ बना हुआ है। श्री आनन्दसर के तट पर 'श्री आनन्द शान्ति भवन' श्री आनन्दसर की लहरों के साथ कलोल करता हुआ अपनी ही शोभा निरखा रहा है। शेष कार्य पूर्ण किया जा रहा है।

श्री आनन्द शान्ति धाम

श्री आनन्द शान्ति भवन की बाईं ओर यह 'श्री आनन्द शान्ति धाम' स्थित है। सम्प्रदाय के चतुर्थ उन्नायक श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी की श्री समाधि का यह स्थान है। यहां पर श्री समाधि जी के ऊपर १६ जुलाई सन् १९७० ईस्वी तदनुसार श्रावण संक्रान्ति सम्वत् २०२७ आषाढ़ सुदी द्वादशी वीरवार को श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री पंचम पादशाही जी ने श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री चतुर्थ पादशाही जी की प्रतिमा को स्थापित किया तथा २ जून १९७१ तदनुसार २० ज्येष्ठ संवत् २०२८ बुधवार ज्येष्ठ सुदी नवमी को प्रथम वार्षिक भण्डारा के शुभ दिन निज कर कमलों से भवन निर्माण की नींव रखी।

इस स्थान की रूपरेखा के अनुसार यह भव्य भवन बन कर तैयार हो गया है। इस भवन के मध्य में श्री समाधि जी के ऊपर गुम्बज़ बना हुआ है। यह भवन भी संगमरमर से ही निर्मित किया गया है। इस के पिछली ओर बरामदे में ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां बनी हुई हैं। इस स्थान पर श्री आज्ञानुसार दोनों समय श्री

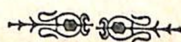
आरति-पूजा नियुक्त गुरुमुख (जो वहां सेवा-कार्य के लिए नियुक्त हों) ही करते हैं। यह श्री आनन्दसर के तट पर ऐसे शोभायमान हो रहा है जैसे मानसरोवर में राजहंस। इसके शेष कार्य को भी पूर्ण किया जा रहा है।

श्री आनन्द अमृत कुण्ड

श्री आनन्द अमृत कुण्ड जो कि श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर के चारों कोनों पर बनाने निश्चित किये गए थे— इस की नींव श्री श्री १०८ श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री तीसरी पादशाही जी ने निज कर कमलों से रखी तथा श्री प्रवचन फ़रमाए थे कि इस श्री आनन्द अमृत कुण्ड में से सब लोग चरणामृत लेंगे और श्रद्धा एवं भक्ति से पूर्ण हो अपने जीवन का कल्याण करेंगे। यह स्थान अभी विकास-काल की प्रतीक्षा में है।

सारांश यह है कि ये सब स्थान—श्री परमहंस अद्वैत मन्दिर, श्री आनन्द शान्ति भवन, श्री आनन्द शान्तिधाम, जो कि श्री आनन्दसर के घेरे के अन्तर्गत हैं, ये सब उपासना के पवित्र स्थल हैं। श्री आनन्दसर इन स्थानों की सीमा बना हुआ है। अपनी लहरों से प्रमुदित कर श्री आनन्दपुर को तीर्थधाम बनाने के श्रेय को चरितार्थ कर रहा है।

श्री आनन्दपुर अति पावन तीर्थ स्थान है। यों तो इस का सम्पूर्ण भू भाग ही तीर्थ रूप है, तथापि इन स्थानों को श्री आनन्दपुर को महान् तीर्थ धाम बनाने का विशेष श्रेय प्राप्त है। आज ये स्थान श्री परमहंस महान् विभूतियों की स्मृतियों को लिए हुए अपने भाग्य पर श्री आनन्दपुर में अनूठी शान से इठला रहे हैं जहाँ दूर तथा निकट से श्रद्धालु और प्रेमिजन एवं जिज्ञासु स्त्री, पुरुष श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के पावन दर्शन, तीर्थ स्नान, सत्संग तथा अध्यात्म-विद्या को प्राप्त करने की दृष्टि से आते हैं।



हार्दिक अभिलाषा

सरल भक्ति का विराट् स्वरूप 'श्री आनन्दपुर सत्संग आश्रम' तथा उन के प्रवर्त्तक श्री परमहंस विभूतियों के प्रयासों के फलस्वरूप आज विश्व के कोने कोने में इस परमार्थ की ज्योति का आलोक जगमगा रहा है। यह सम्प्रदाय अपनी सत्यता पर अटल रह कर युग-युगान्तरों तक पथ-विचलित रूहों को सन्मार्ग दिखाने के लिये हिमालय की भाँति अटल रहे। जब तक सूर्य और चाँद गगन में स्थिर हैं, जब तक पृथ्वी का अस्तित्व है तब तक इस दिव्य ज्योति की किरणें इस पावन उच्च दरबार से विकीर्ण होकर जन जन के हृदय के गहन अन्धकार को मिटाने में समर्थ हों।

विश्ववन्द्य श्री परमहंस महान् विभूतियों के श्री पद-पंकजों में वन्दना कर यही विनय करते हैं कि श्री श्री १०८ श्री परमहंस सद्गुरुदेव जी श्री पंचम पादशाही जी इस सम्प्रदाय के महाराजाधिराज, उन्नायक, परमपुरुष युग-युगान्तरों तक परमार्थ-भक्ति का पथ दर्शाते हुये प्रेमियों के सिरमौर बने रहें। हम अवगुणयुक्त, चरण-रज उपासक दासानुदास आपके ही श्री चरणारविन्दों के भ्रमर बन कर जन्म-जन्मान्तरों तक प्रेम भक्ति के सुरभित मकरन्द का पान करते रहें।

युग सम्राट् महाराजाधिराज,
युग युग अटल रहे तेरा राज।
भक्त वत्सल है नाम तुम्हारा;
सन्तन के हो तुम सिरताज॥

कोटि कोटि यह विनय हमारी,
सम्मुख रहे मधुर छवि प्यारी ।
हृदय के हृदयेश तुम्हीं हो;
जाएं सदा तुम पे बलिहारी ॥

श्री आनन्दपुर तख़्त रूहानी,
त्रिभुवन में अनुपम लासानी ।
परमार्थ की अमर ज्योति यह;
महिमा जाय न इस की बखानी ॥

परमहंसों की ज्योति जगमगाय,
दिव्य स्वरूप में प्रभु सुहाय ।
कीन्हीं कृपा अपार जीवों पे;
दाता दयाल जी नाम धराय ॥

प्रेम-पयोधि करुणा के सागर,
तुम से हुए तिहुँ लोक उजागर ।
आनन्द कन्द प्रशान्त मूर्त्ति;
धन्य हुए हम तुम को पाकर ॥

त्रय ताप तव सुषमा हरती,
जन मन में आनन्द है भरती ।
त्रिभुवन-मोहन नयन अभिराम;
वचनावलि हिय शीतल करती ॥

कोटि कल्प युग जीओ करुणेश,
लाखों वर्ष का हो क्षण परमेश ।
छत्रच्छाया तेरी रहे सदा;
वन्दन करते सुर मुनि नर शेष ॥

दासानुदास पड़ा शरण तिहारी,
करो स्वीकार यह विनय हमारी ।
क्षमाशील तुम दाता दयालु;
बिरद् निभाना सदा हमारी ॥

इन अभिलाषा रूपी तुच्छ पुष्पों को श्री चरणों में अर्पित कर श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के सम्मुख कृपा के लिए दामन पसारे हैं कि वे अपने वरदमय कृपा-भण्डार से सदा हम सेवकों के आंचल को भरकर कृतार्थ करते रहें ।



सद्गुरु की देन

॥ दोहा ॥

सद्गुरु की महिमा अमित, किए उपकार अनन्त ।
जिन की आशिष राशि से, पूर्ण हुआ यह ग्रन्थ ॥
सद्गुरु सद्गुण धाम हैं, त्रिभुवन माहिं अनूप ।
दाता हैं गुरु भक्ति के, अनुपम ज्योति सुरूप ॥

॥ चौपाई ॥

परमहंस शुभ चरित सुहावा । कलियुग में जनु सुदृढ़ नावा ॥
सद्गुरु केवट बन कर आए । भवनिधि डूबत जीव बचाए ॥
काम क्रोध मद दारुण कारा । जीव परत पावें दुःख भारा ॥
माया ममता अनिक प्रकारा । करती व्याकुल जीव अपारा ॥
अज्ञानी बरबस लिपटाई । नहिं जानत मन की कुटिलाई ॥
सद्गुरु प्रकटे पथ दर्शाने । सत् असत् का भेद बताने ॥
परमात्म गुरु रूप धराने । अंशज अंशी एक बनाने ॥
मृगतृष्णा सम माया जानो । ब्रह्म रूप निज को पहचानो ॥

॥ दोहा ॥

चरित पयोधि में भरे, ज्ञान भक्ति के लाल ।
अचल प्रेम से काढ़ि ले, मुक्ता राशि विशाल ॥
प्रकटै जन कल्याण हितु, श्री परमहंस महान ।
जिनके दर्शन मात्र से, पावै पद निर्वाण ॥

॥ चौपाई ॥

जहँ घट प्रेम करे निवासा । प्रखर प्रभा का होत प्रकासा ॥
मोह अरु लोभ निकट न आवै । काम क्रोध नहिं ताहि सतावै ॥
अहंकार सब ही मिटि जाय । आधि व्याधि त्रय ताप नसाय ॥
पांचों रस न करते क्रीड़ा । दुःख चिन्ता न व्यापै पीड़ा ॥
जीव रहे मुद-मंगल राता । प्रभु-पद प्रेमहि उसको भाता ॥
ऋद्धि सिद्धियां बनहिं चेरी । तत्पर रहत करत न देरी ॥
प्रेमी हृदय प्रेम को जानै । रसना सकत न ताहि बखानै ॥
अमृत रस पीवत न अघावै । गुरु पद पंकज प्रीति लगावै ॥

॥ दोहा ॥

अति पावनतम प्रेम ही, संसृति में वरदान ।
शेष शारदा देवगण, कर नहीं सकत बखान ॥
प्रेम मार्ग दर्शावने, प्रकटे प्रेम स्वरूप ।
प्रेमभक्ति पथ दृढ़ कियो, परमहंस प्रभुरूप ॥

॥ चौपाई ॥

प्रेम भक्ति मग कैसे पावा । गुरु पद प्रथमहिं सीस निवावा ॥
श्रद्धा प्रबल होय हिय जासू । गुरु वचनन महँ हो विश्वासू ॥
निज जीवन गुरु-सेवा जानै । दीन हीन आपन को मानै ॥
गुरु-किरपा का होय भिखारी । सदा रहत जो झोलि पसारी ॥
सुरति रहे नाम लिव लागी । गुरु दर्शन का हो अनुरागी ॥
दृढ़ संकल्प धनी जो होई । हर्ष शोक न व्यापै कोई ॥
तबहि उपजै भक्ति अनूपा । सरल विमल अति प्रेम स्वरूपा ॥
अन्तःस्तल में होत प्रकासा । जग सूँ दीसत सदा उदासा ॥

॥ दोहा ॥

गुरु–किरपा भव जलधि में, एकौ जानि ओटि ।
दया दृष्टि की झलक से, बिनसत हैं अघ कोटि ॥
गुरु प्रसाद ते पाइए, प्रेम भक्ति सत्संग ।
दिव्यचक्षु भी उघरहिं, सद्‌गुरु के हि प्रसंग ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु गम अगम भेद बतलाए । प्रेम भक्ति पथ सरल बताए ॥
अति श्रद्धालु होय जिज्ञासु । विमल भक्ति का हो अभिलासु ॥
पढ़त चरित हिय अति हर्षाय । सन्त समागम जाहि सुहाय ॥
सन्तन वचन रहे उर धारा । कर्म करे जो विधि अनुसारा ॥
उपजहिं ज्ञान विवेक विरागा । प्रभु-पद होय विपुल अनुरागा ॥
सेवा प्रेम भक्ति त्रिवेनी । अति पावनतम मोक्ष निसेनी ॥
मिलहि सदा सन्तन कै द्वारा । अनुपम भक्ति ज्योति उजियारा ॥
काल जाल की काटैं त्रासा । तीन ताप का होय विनासा ॥

॥ दोहा ॥

निज पूँजी इस जन्म की, गुरु की सेवा जान ।
पातक पुञ्ज विनाशिनी, मुद मंगल की खान ॥
जो करता निष्काम हो, गुरु सेवा चित्त दे ।
मन निर्मल हो जात है, गुरु प्रसन्नता ले ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु सेवा महिमा अधिकाई । चारों युग इस की प्रभुताई ॥
जप-तप-संजम आदिक साधन । इसके तुल्य न लोक मंझारन ॥
सरल मार्ग सद्‌गुरु दर्शाते । सेवा विधि का पाठ पढ़ाते ॥

गुरु सेवा से उपजै ज्ञाना । ब्रह्म तत्त्व की हो पहचाना ॥
गुरु की सेवा मंगलकारी । संजीवन रस शुभ गुणकारी ॥
गुरु सेवा अनुराग बढ़ावे । रोम रोम पुलकित हो जावे ॥
सकल विकार दग्ध हो जाते । सेवक जीवन सौरभ पाते ॥
गुरु सेवा गुरु भक्ति कहावे । भाग्यशील जन लाभ उठावे ॥

॥ दोहा ॥

जीव ब्रह्म हो जात है, मिटै अहन्ता भाव ।
बिन्दु सिन्धु समात है, रहै न जग का चाव ॥
गुरु-आज्ञा के दुर्ग में, सुरती करत विहार ।
अगम भेद को बूझ कर, हो जाती भव पार ॥

॥ चौपाई ॥

गुरु वचनों का करता सरवन । उनका पुनि जब होता मन्थन ॥
करे निदिध्यासन अति सुन्दर । रहे सदा वचनों में तत्पर ॥
मनवांछित मञ्जुल फल पावे । भक्ति सुधा में वह सरसावे ॥
अनायास मुक्ति मिल जाती । सुरति परम शान्ति को पाती ॥
आवागमन सकल मिटि जाई । करता जो साधन मन लाई ॥
सेवक गुरु वचनन अनुसरहीं । भव बन्धन से निश्चय तरहीं ॥
साक्षात्कार इन्हीं से होवे । यदि साधक निष्ठा नहिं खोवे ॥
शाश्वत सुख पावे दिन राता । सद्गुरु अनुकम्पा में ही राता ॥

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस अद्वैत मत, ग्रन्थन में शुभ ग्रन्थ ।
पढ़ै सुनै कर आचरण, सुखद बनाता पन्थ ॥
श्री परमहंस अद्वैत मत, प्रेम भक्ति भरपूर ।
श्रद्धा पूर्वक जो पढ़ै, अज्ञान तिमिर हो दूर ॥

॥ चौपाई ॥

भक्ति सुधा की बहती धारा । परमहंसों का चरित निखारा ॥
जीवन-गाथा सुरसरि बहती । मज्जन कर वाणी सुख लहती ॥
निष्काम-कर्म कालिन्दी चलती । कलियुग की कालिख सब दलती ॥
सरस्वती वचनावली पावन । बहे त्रिवेणी दुरित नसावन ॥
मज्जन पान करे चित्त लाई । सकल कुटिलता वेगि नसाई ॥
प्रतिदिन पाठ करे हित चित्त से । अन्तस्तल से पातक निकसे ॥
उर में प्रेम भक्ति विश्वासा । गुरु-प्यार की हिय में आसा ॥
ध्यान विभोर करै जो पूजा । रहै मनोरथ कोइ न दूजा ॥

॥ दोहा ॥

श्री परमहंस अद्वैत मत, शाश्वत् ज्योति प्रचण्ड ।
अनुपम आनन्द रूप है, दायक भक्ति अखण्ड ॥
श्री परमहंस अद्वैत मत, कलियुग में भवपोत ।
निष्ठा पूर्वक जो पढ़ै, सत्यकाम वह होत ॥





श्री सद्गुरु देवाय नमः

प्रतिदिन प्रातः सायं गायन करने वाली

श्री आरति



आराधन

टेक:—अमृत वेले गुरु दर्शन पाइये,
अपने गुरु जी पै बलि बलि जाइये ।

१—परम पुरुष पूरण गुरु मेरे, जिनके सिमरत सूख घनेरे;
स्वाँस स्वाँस में नाम ध्याइये । अमृत वेले........॥

२—गुरु मूरत का करिये ध्यान, गुरु से मांगिये भक्ति दान;
गुरु चरणों में प्रेम बढ़ाइये । अमृत वेले........॥

३—अमृतमयी सतगुरु की बाणी, आनन्ददायक सुख की खानी;
गुरु जी की बाणी हिरदय बसाइये । अमृत वेले........॥

४—सेवक बन गुरु सेवा करिये, जन्म—मरण के दुःख सब हरिए;
सेवा कर अपने भाग मनाइये । अमृत वेले........॥

५—गुरु बिन कोई मीत न भाई, लोक परलोक में संग सहाई;
गुरु आज्ञा में मन चित्त लाइये । अमृत वेले........॥

६—सतगुरु महिमा अगम अनन्त, जिसका कोई न पावे अन्त;
निशिदिन गुरु जी की महिमा गाइये । अमृत वेले........॥

७—परमहंस सतगुरु अवतार, दासनदास की यह ही पुकार;
पल पल साचा नाम जपाइये । अमृत वेले........॥



आरति

ॐ जय श्री जगतारण, स्वामी जय श्री जगतारण ।
शुभ मग के उपदेशक, यम त्रास निवारण ॥ ॐ जय०

(१)

परमारथ हित अवतार जगत में,
गुरु जी ने है लीन्हा; मेरे स्वामी जी ने है लीन्हा ।
हम जैसे भागियन को, गृह दर्शन दीन्हा ॥ ॐ जय०

(२)

कलि कुटिल जीव निस्तारण को,
प्रभु सन्त रूप धर के; स्वामी सन्त रूप धर के ।
आतम को दर्शावत, मल धोये हैं मन के ॥ ॐ जय०

(३)

आप पाप त्रय ताप गये,
जो गुरु शरणी आये; मेरे स्वामी शरणी आये ।
गुरु जी से लाल अमोलक, तिस जन ने पाये ॥ ॐ जय०

(४)

सहज-समाधि अनाहत-ध्वनि,
जप अजपा बतलाये; स्वामी अजपा बतलाये ।
प्राणायाम की लहरें, मेरे मन भाये ॥ ॐ जय०

(५)

हरि किरपा कर जन्म दियो,
जग मात पिता द्वारे; स्वामी मात पिता द्वारे ।
उन से अधिक गुरू जी हैं, भवनिधि से तारें ॥ ॐ जय०

(६)

तले की वस्तु गगन ठहरावे,
गुरु के शब्द शर से; सतगुरु के शब्द शर से ।
सो सूरा सो पूरा, बल में वह बरते ॥ ॐ जय०

(७)

तत्—स्नेह प्रेम की बाती,
योग अगनि जिन के; स्वामी योग अगनि जिन के ।
आरति लायक सो जन, जो हैं शुद्ध मन के ॥ ॐ जय०

(८)

श्री परमहंस–सतगुरु जी की आरति,
अष्टपदी रच के; स्वामी अष्टपदी रच के ।
'साहिबचन्द' ने गाई, पद रज सज कर के ॥ ॐ जय०



विनती

॥ दोहे ॥

श्री परमहंस दयाल जी, पूरण सुख के धाम ।
बार बार दण्डवत करूँ, कोटिन कोटि प्रणाम ॥ १ ॥
हाथ जोड़ विनती करूँ, सतगुरु कृपानिधान ।
सेवा अपनी दीजिये, और भक्ति का दान ॥ २ ॥
सुखदाता दुःखभंजना, सतगुरु तुमरो नाम ।
नाम अमोलक दीजिये, भक्ति करूँ निष्काम ॥ ३ ॥
नाव बनाई शब्द की, बहुत किया उपकार ।
भवसागर में डूबते, लीन्हे जीव उबार ॥ ४ ॥
तुम बिन कोई मीत नहिं, स्वारथ का संसार ।
बिन स्वारथ सतगुरु करें, निशिदिन पर उपकार ॥ ५ ॥
मैं निर्बल अति दीन हूँ, तुम समरथ बलवान् ।
सब विधि मम रक्षा करो, दीनबन्धु भगवान् ॥ ६ ॥
बिरद सम्भारो नाथ जी, शरणागत प्रतिपाल ।
बांह गहे की लाज है, मेरी करो सम्भाल ॥ ७ ॥
समरथ सतगुरुदेव जी, लीन्ही तुमरी ओट ।
तुमरी कृपा से मिटत हैं, जन्म जन्म के खोट ॥ ८ ॥
मैं अपराधी जीव हूँ, नख शिख भरा विकार ।
अपनी दया से सतगुरु, कीजै भव से पार ॥ ९ ॥
भटक भटक कर आईया, परिया तुम्हरे द्वार ।
चरण-शरण में राख लो, अपनी किरपा धार ॥ १० ॥

तुझसा मुझको है नहीं, मुझसे तुम्हें अनेक ।
राखो चरणन छाँव में, गही तुम्हारी टेक ॥ ११ ॥
टेक एक प्रभु आपकी, नहीं भरोसा आन ।
तुमरी किरपा दृष्टि से, पाईये पद निर्वाण ॥ १२ ॥
अनिक जन्म भरमत रहियो, पायो न बिसराम ।
आया हूँ तव शरण में, कृपा सिन्धु सुखधाम ॥ १३ ॥
लिव श्री चरणन में लगे, जैसे चन्द चकोर ।
रैन दिवस निरखत रहूँ, गुरु मूरत की ओर ॥ १४ ॥
श्री गुरु चरण सरोज में, राखूं अपना शीश ।
चाहूँ तुझसे मैं सदा, प्रेम भक्ति बख़्शीश ॥ १५ ॥
पत राखो मेरे साईयां, दयासिंधु दातार ।
बार बार विनती करूँ, सतगुरु तव चरणार ॥ १६ ॥
पारब्रह्म सतगुरु मेरे, पूरण सच्चिदानन्द ।
नमस्कार प्रभु आपको, भक्तन के सुखकन्द ॥ १७ ॥
श्री मात-पिता सतगुरु मेरे, शरण गहूँ किसकी ।
गुरु बिन और न दूसरा, आस करूँ जिसकी ॥ १८ ॥

जयकाराः निस्ताराः धर्म का द्वाराः झूलेगी ध्वजा,
बजेगा नककाराः सुनकर बोलेगा सो निहाल होयगा,
॥ बोल साचे दरबार की जय ॥



स्तोत्र

जय सत्-चित्-आनन्द मूरति, स्वामी जो के चरण वन्दनम् ।
जो दे उपदेश क्लेश नाशैं, कलि के कलुष विभञ्जनम् ॥ १ ॥

जो ज्ञान-निधि विज्ञान-दायक, घायकं सब दुष्कृतम् ।
युत योग भोगहिं रोग जानैं, सुख-दुखं सम अरि-मितम् ॥ २ ॥

परमारथ पथ भेद वेद के, खेद बिन जो दायकम् ।
शरणागत के भरम हत के, सत् ही के कर लायकम् ॥ ३ ॥

मलयदल-अमल अचल पदाम्बुज, सद्गुरु के जो ध्यावतम् ।
सुख सुयश सुगति सुबुद्धि सुशान्ति, बिन प्रयास सो पावतम् ॥ ४ ॥

है जग जन्म सफल तिसका, जो गुरु-पद-रज मन लावहिं ।
ज्यों पारस परसि कुधातु सुधरे, त्यों फिर जन्म न आवहिं ॥ ५ ॥

दया के सिन्धु ज्यों शीतल इन्दु ज्यों, ओ३म् के बिन्दु ज्यों भासतम् ।
तेजमय भानु ज्यों, विद्या की खान ज्यों, अहनिशि ध्यान में वासतम् ॥ ६ ॥

परम धर्म श्री सद्गुरु की सेवा, विदित नरक निवारणम् ।
जासु शब्द भव-बन्धन काटत, समझ पड़त यहि कारणम् ॥ ७ ॥

सन्त महात्मा और बुध-जन, वेद पुराण यहि गावहिं ।
प्रभु ते अधिक गुरु जो सेवत, सो निश्चय प्रभु पावहिं ॥ ८ ॥

शुक-सनकादिक ध्रुव-नारदादिक, गुरु-उपदेश ते अमरणम् ।
ऋषि मुनि जन प्रकृत जग में, ले दीक्षा प्रभु सुमिरणम् ॥ ९ ॥

गुरु-यश दिक्-पद अहनिशि गावत, दसहुँ दिशि भ्रम दुःख जारतम् ।
गुरु-पद-जलज अलि मन जाको, 'साहिब चन्द' उच्चारतम् ॥ १० ॥

छन्द

टेकः—स्वामी मेरा परमहंस महाराज, विद्यासागर परम आनन्द ॥

१—आपने गुरु जी की सेवा कीन्ही, उनसे निर्गुण भक्ति लीन्ही ।
गुरु जी को हिरदे बैठक दीन्ही, थे वे परम पुरुष आनन्द ॥

२—आपने ध्यान में लिव लगाई, सकल ब्रह्म आतम जोत जगाई ।
जीव अजीव ब्रह्म दरसाई, होवे अज्ञान से ज्ञान आनन्द ॥

३—गुरु जी की महिमा अति अगम, बुद्धि समझ न पावे गम ।
हिरदे शुद्ध दृष्टि सम, मस्तक दरशे सूरज चन्द ॥

४—गुरु जी की मधुर बाणी और पन्द, शक्कर से ज़्यादा मीठी कन्द ।
करें सब सामय उसे पसन्द, सुने से मिटे दरद दुःख द्वन्द ॥

५—दर पर भले बुरे सब आवें, इच्छा पूरण होकर जावें ।
पाछे सब से यही बतलावें, प्रीति गुरु जी की मुझ पै बुलन्द ॥

६—गुरु जी की किरपा सब पर भारी, जो समझे वो है अधिकारी ।
जो न समझे वो नाकारी, आप हैं साचे और पाबन्द ॥

७—गुरु जी ने दुःख सुख एक सा माना, सब घट आतम को पहचाना ।
जिस ने मता आपका जाना, मिटाया उसके जग का फन्द ॥

८—स्वामी ! गो हूँ मैं सेवा हीन, पर हूँ किरपा के आधीन ।
तुम्हरी चरण-शरण की लीन, काटो क्लेश दुःख और द्वन्द ॥

९—भवसागर से हमें उबारो, करुणा-जहाज़ बना कर तारो ।
वैतरणी से पार उतारो, सवारी देकर ज्ञान समन्द ॥

१०—गुरु जी की महिमा क्या कोई गावे, जाकी बुद्धि पर नहीं पावे ।
पर मन चित्त से शरणी आवे, उसी को होवे सदा आनन्द ॥

११—गुरु जी की शोहरत जग में फैली, बट रही धन मुक्ति की थैली ।
दुनिया न समझे अलबेली, बुद्धिहीन जीव मति मन्द ॥

१२—गुरु जी की महिमा सब मिल गावो, और अभिमान को दूर हटावो ।
प्रेम की नदियाँ खूब बहावो, जोड़कर कहै छन्द यह 'नन्द' ॥

स्तुति

पूरण सतगुरु ब्रह्म स्वरूप ।
महिमा जिनकी अगम अनूप ॥ १ ॥

पारब्रह्म गुरु सुख की खान ।
पर उपकारी पुरुष महान ॥ २ ॥

गुरु की महिमा अगम अपार ।
वेद न पावें पारावार ॥ ३ ॥

गुरु समरथ गुरु कर्णाधार ।
जन जन का करते निस्तार ॥ ४ ॥

वचन गुरु के अमृत वाणी ।
सुनत आनन्द रस पावे प्राणी ॥ ५ ॥

गुरु का वचन मेटे अज्ञान ।
बख्शे नाम रतन धन खान ॥ ६ ॥

सार शब्द गुरु का उपदेश ।
मन अन्तर के मिटें क्लेश ॥ ७ ॥

जीव ब्रह्म का भेद बतावें ।
सुरत शब्द का मेल करावें ॥ ८ ॥

गुरु मूरत का करिये ध्यान ।
गुरु ऊपर जाइये कुर्बान ॥ ९ ॥

सब तीरथ गुरु चरणन माहीं ।
चरण परस कलिमल धुल जाहीं ॥ १० ॥

गुरु के चरण राखे उर धार ।
हिरदै माहिं होए उजियार ॥ ११ ॥

भाग बड़े गुरु दर्शन पाये ।
जन्म मरण के त्रास मिटाये ॥ १२ ॥

जो गुरु सेवा में चित लावे ।
कलह कलेश सभी मिट जावे ॥ १३ ॥

गुरु की सेवा सब सुख खान ।
सेवक पावे दरगह मान ॥ १४ ॥

गुरु आज्ञा में रहे जो कोई ।
तिस सेवक को दूख न होई ॥ १५ ॥

जप तप संयम करे अनेक ।
गुरु बिन कबहुँ न होय विवेक ॥ १६ ॥

गुरु गोबिन्द एको कर जान ।
गुरु सम दूजा और न मान ॥ १७ ॥

जिस पर होवें गुरु दयाल ।
भगती धन से करें निहाल ॥ १८ ॥

परमहंस सतगुरु अवतार ।
चरण कमल पे सद बलिहार ॥ १९ ॥

दासनदास की एह अरदास ।
राखो चरण कमल के पास ॥ २० ॥



श्री
परमहंस
अद्वैत
मत



श्री आनन्दपुर